

पृथ्वीराज रासउ

पाठालोचन इतिहास, तथा साहित्यालोचन सबधो भूमिका,
निर्धारित पाठ, पाठान्तर, अर्थ और टिप्पणियो से युक्त

संपादक

डॉ० माताप्रसाद गुप्त, एम ए, डी. लिट्.
प्रोफेसर एव अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय

प्रकाशक

साहित्य-सदन,
चिरगाँव (भाँसी)

प्रथमवार

स० २०२० वि०

इस संस्करण का कोई अंश किसी अन्य पुस्तक में सम्पादक की
अनुमति के बिना कृपया न छापा जाए ।

मूल्य ३० ••

श्रीसुमित्रानन्दन गुप्त द्वारा
साहित्य मुद्रण, चिरगाँव (भॉसी) में मुद्रित,
और
साहित्य-सदन, चिरगाँव (भॉसी) से प्रकाशित ।

देश और आदर्शों के लिए मर-मिटने वाले
भारतीय इतिहास के अद्वितीय वीर
पृथ्वीराज
की अमर कीर्तिगाथा
और
पुरानी हिन्दी का एक सब से उज्ज्वल रत्न
पृथ्वीराज रासउ
अपने प्रस्तुत वैज्ञानिक संस्करण के रूप में
नव भारत के निर्माता
और
उसके सर्वोच्च आदर्शों के प्रतीक
माननीय पं० जवाहरलालजी नेहरू
को
समस्त श्रद्धा के साथ समर्पित है

—माताप्रसाद गुप्त

विषयानुक्रमिका

विषय	पृष्ठ
प्रस्तावना	
भूमिका	
१ पृथ्वीराज रासउ की प्रयुक्त प्रतियाँ और उनका पाठ	३
२ पृथ्वीराज रासउ के मूल रूप के निकटतम प्राप्त पाठ	२१
३ पृथ्वीराज रासउ का मूल रूप (आकार)	४२
४ पृथ्वीराज रासउ का मूल रूप (पाठ)	७३
५. पृथ्वीराज रासउ के निर्धारित पाठ की छद-सारिणी	८५
६ पृथ्वीराज रासउ का कथा-सार	९८
७ पृथ्वीराज रासउ की ऐतिहासिकता ✓	१००
८ पृथ्वीराज विजय और पृथ्वीराज रासउ	११४
९ हम्मीर महाकाव्य और पृथ्वीराज रासउ	११६
१० पुरातन प्रबध सग्रह और पृथ्वीराज रासउ	१२५
११ सुर्जन चरित महाकाव्य और पृथ्वीराज रासउ	१३४
१२ आईन-ए-अकबरी और पृथ्वीराज रासउ	१४२
१३ पृथ्वीराज रासउ की भाषा	१५०
१४ पृथ्वीराज रासउ में प्रयुक्त विदेशी शब्द	१६२
१५. पृथ्वीराज रासउ का रचनाकाल	१६४
१६. पृथ्वीराज रासउ का रचयिता	१६६
१७. रासो काव्य-परंपरा और पृथ्वीराज रासउ	१७२
१८. पृथ्वीराज रासउ की प्रबध-कल्पना	१८५
१९ पृथ्वीराज रासउ की चरित्र-कल्पना	१८६
२०. पृथ्वीराज रासउ की रस-कल्पना ✓	१८८
२१. पृथ्वीराज रासउ के वर्णन	१९६
२२. पृथ्वीराज रासउ के छंद	२०६
२३. पृथ्वीराज रासउ की शैली	२१२
२४. पृथ्वीराज रासउ का महाकाव्यत्व	२१६

विषय	पृष्ठ
पृथ्वीराज रासउ (पाठ)	
१ मङ्गलाचरण और भूमिका	३
२ जयचंद का राजसूय यज्ञ और सयोगिता का प्रेमानुष्ठान	१०
३ कयमास-वध	४३
४ पृथ्वीराज का कन्नौज-गमन	६४
५ पृथ्वीराज का कन्नौज में प्राकट्य	१०६
६ सयोगिता-परिणय	१४२
७ पृथ्वीराज-जयचन्द-युद्ध (पूर्वार्द्ध)	१६६
८ पृथ्वीराज-जयचन्द-युद्ध (उत्तरार्द्ध)	२०८
९ पृथ्वीराज-सयोगिता का केलि-विलास और षड्भक्तु	२४१
१० पृथ्वीराज का उद्बोधन	२५१
११ शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज-युद्ध	२५७
१२ शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज का अन्त	२६०
अनुक्रमणिका	
शब्दानुक्रमणिका	३३१
छन्दानुक्रमणिका	३४७
परिशिष्ट	
अ. स्वीकृत के अतिरिक्त धा० की पाठ-सामग्री	तीन
आ स्वीकृत तथा धा० के अतिरिक्त मो० की पाठ-सामग्री	आठ
इ स्वीकृत, धा० तथा मो० के अतिरिक्त अ० की पाठ-सामग्री	चौदह
ई. स्वीकृत, धा०, मो० तथा अ० के अतिरिक्त फ० की पाठ-सामग्री	तेतीस
उ. स्वीकृत, धा०, मो०, अ० तथा फ० के अतिरिक्त म० की पाठ-सामग्री	अड़तीस
ऊ स्वीकृत, धा०, मो०, अ०, फ० तथा म० के अतिरिक्त ना० की पाठ-सामग्री	उनहत्तर
ए स्वीकृत, धा०, मो०, अ०, फ०, म० तथा ना० के अतिरिक्त द० की पाठ-सामग्री	एक सौ सात
शुद्धिपत्र	१—८

प्रस्तावना•

१९५३ की बात है। पंजाब यूनीवर्सिटी में पी-एच० डी० के लिए 'पृथ्वीराज रासो की लघु वाचना' पर वहाँ के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष स्वर्गीय डॉ० बनारसीदास जैन की प्रेरणा से और उनके निर्देशन में उनके एक शोध-छात्र श्री वेणीप्रसाद शर्मा ने पी-एच० डी० के लिए कार्य करना प्रारम्भ किया। किन्तु अकस्मात् १९५४ के अप्रैल में डॉ० जैन का देहावसान हो गया। तदनन्तर पंजाब यूनीवर्सिटी ने मुझसे अनुरोध किया कि श्री शर्मा का निर्देशन मैं करूँ। स्वर्गीय डॉ० जैन मुझ पर बड़ा स्नेह रखते थे अतः मैंने उसके लिए स्वीकृति भेज दी। लघु वाचना की प्रतियाँ बीकानेर में प्राप्त थीं। उन्हें मँगाकर श्री शर्मा ने काम आरम्भ कर दिया। उस समय रचना की दो और वाचनाएँ प्राप्त हो चुकी थीं जो उस वाचना से भी छोटी थीं जिस पर श्री शर्मा कार्य कर रहे थे, और इन सब के पूर्व रचना की मध्य और वृहत् वाचनाओं के कई छोटे-बड़े रूप प्राप्त हो चुके थे। इसलिए मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि लघु वाचना के पाठ-निर्णय मात्र से समस्या का हल नहीं होगा, रचना का प्रामाणिक पाठ उसकी समस्त वाचनाओं की सहायता से ही निर्धारित हो सकेगा। किन्तु यह कार्य श्री शर्मा के न बस का ही था और न उनके कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत आता था, इसलिए मैंने स्वयं इस पर कार्य करने का सकल्प किया। यह सकल्प निरन्तर लगे रहने पर पाँच वर्षों में पूरा हुआ। गत चार वर्षों से रचना प्रेस में रही है, और अब वह पाठकों के सम्मुख आ रही है, यह देखकर मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है। श्री शर्मा का कार्य १९५७-५८ में पूरा हो गया था, और पंजाब यूनीवर्सिटी से उन्हें पी-एच० डी० की उपाधि उक्त कार्य पर प्राप्त हो गई थी। अब उनका कार्य विश्वभारती प्रकाशन, चण्डीगढ़ से प्रकाशित भी हो गया है, यह समस्त रासो-प्रेमियों के लिए हर्ष का विषय होगा।

'पृथ्वीराज रासो' के सम्पादन की समस्याएँ अत्यन्त जटिल थीं। पाठालोचन के मेरे दीर्घकालीन अनुभव में हिन्दी की एक भी रचना ऐसी नहीं आई है जिसका पाठ-निर्धारण इतना उलझा हुआ हो। किन्तु मुझे उसके इसी उलझाव ने एक ऐसी नई दृष्टि प्रदान की है जो मुझे पाठालोचन के अपने शेष समस्त कार्य से भी नहीं प्राप्त हो सकी थी। इसलिए मुझे इस कार्य के सम्पन्न होने में और अधिक प्रसन्नता है।

इस महान् यज्ञ में सबसे बड़ा सहयोग मुझे प्रति-दाताओं से प्राप्त हुआ है, और उनके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन के लिए मेरे पास पर्याप्त शब्द नहीं हैं। मैं डॉ० नामवर सिंह तथा मुनि जिनविजय जी का कृतज्ञ हूँ जिनसे मुझे लघुतम वाचना की सामग्री प्राप्त हुई, मैं उपर्युक्त डॉ० वेणीप्रसाद शर्मा और भी अगरचन्द नाहटा का कृतज्ञ हूँ जिनसे मुझे लघु वाचना की प्रतियाँ प्राप्त हुई; मैं प्रयाग के हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के अधिकारियों का कृतज्ञ हूँ जिनसे मुझे मध्य वाचना की प्रतिलिपि प्राप्त हुई, और मैं भाण्डारकर ओरिएंटल इस्टीट्यूट, पूना, रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, बम्बई, नेशनल गैलेरी ऑफ् मॉडर्न आर्ट, नई दिल्ली तथा इलाहाबाद यूनीवर्सिटी लाइब्रेरी के अधिकारियों का कृतज्ञ हूँ, जिनसे मुझे रचना की वृहत् वाचना की सामग्री प्राप्त हुई। इन महानुभावों और संस्थाओं के सहयोग के अभाव में यह यज्ञ किसी प्रकार भी पूरा नहीं हो सकता था।

इस सम्करण की एक पाण्डुलिपि तैयार करने में पाठालोचन विषय के इलाहाबाद यूनीवर्सिटी के मेरे तीन पूर्ववर्ती छात्रों श्री कन्हैया सिंह, श्री हरिशंकर शर्मा, और श्री रामपाल उपाध्याय से मुझे सहायता प्राप्त हुई, इसलिए मैं उनका भी कृतज्ञ हूँ।

प्रकाशको ने रचना को अपनी विवशताओं के कारण कुछ विलंब से मुद्रित और प्रकाशित करते हुए भी छपाई की दृष्टि से ऐसी दुर्गम और दुरूह कृति को अधिक से अधिक शुद्ध रूप में प्रकाशित करने का प्रयास किया है, इसलिए वे मेरे धन्यवाद के पात्र हैं। फिर भी, पाठको को कुछ न कुछ अशुद्धियाँ मिलेंगी, अतः सम्करण के अन्त में एक शुद्धि-पत्र दिया जा रहा है, जिसके अनुसार वे यथास्थान अपनी प्रतियों में सशोधन करने का कष्ट करेंगे।

किन्तु सबसे अधिक मैं कृतज्ञ हूँ स्वतन्त्र भारत के निर्माता माननीय प० जवाहरलाल जी नेहरू के प्रति, जिन्होंने हिन्दी के आदिकाल के इस सर्व-श्रेष्ठ काव्य-पुष्प की मेरी भेंट को ग्रहण करना स्वीकार किया। उनकी इस स्नेहपूर्ण कृपा के लिए मैं आजीवन आभारी रहूँगा।

दो-एक बातें और। भूमिका में रचना का नाम 'पृथ्वीराज रासो' मिलेगा और रचना में 'पृथ्वीराज रासउ'। रचना का नाम कृति के केवल अंतिम छन्द में आया है और वहाँ पर लघुतम वाचना की दो प्रतियों में पाठ क्रमशः 'रासु' और 'रासउ' है, तथा शेष प्रतियों में 'रासौ' है। 'रासु' जिस प्रति में है, उसमें उ की मात्रा का प्रयोग—जैसा आप भूमिका में देखेंगे—अउ, ओ, और औ के लिए भी हुआ है। लघुतम वाचना भी दूसरी प्रति में पाठ 'रासउ' है, इसलिए उक्त 'रासु' के 'रासउ' होने की ही संभावना सबसे अधिक है। भूमिका में कृति के नाम में 'रासो' का प्रयोग केवल इसके अपेक्षाकृत अधिक प्रचलित होने के कारण किया गया है। शेष ग्रंथ में वह सर्वत्र 'रासउ' है। पाठक कृपया 'रासो' को भी 'रासउ' ही पढ़ेंगे।

रचना बारह सर्गों में विभाजित मिलेगी। सर्ग-विभाजन का आधार मैंने यथास्थान भूमिका में स्पष्ट कर दिया है। किन्तु सर्गों का नामकरण मेरा किया हुआ है, और इसलिए कल्पित कहा जा सकता है। लघुतम वाचना में न सर्गों का विभाजन है और न उनका नामकरण। शेष वाचनाओं में उनके जो नाम मिलते हैं उनमें परस्पर साम्य बहुत कम है, और विषय-वस्तु को देखते हुए वे प्रायः अनुपयुक्त भी हैं, इसलिए इन नए नामों की कल्पना करनी पड़ी है। भविष्य में यदि संभव हुआ तो कुछ अधिक ठोस आधारों पर सर्गों का नामकरण किया जा सकेगा।

हिन्दी विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।
११ ५ ६३ ई०

माताप्रसाद गुप्त

भूमिका

१. पृथ्वीराज रासो की प्रयुक्त प्रतियाँ और उनका पाठ

‘पृथ्वीराज रासो’ की प्राप्त प्रतियों की संख्या सौ से ऊपर है। इनकी एक अच्छी सूची डॉ० मोतीलाल मेनारिया के ‘राजस्थानी पिंगल साहित्य’ में दी हुई है।^१ उस सूची में ६० के लगभग प्रतियों के प्राप्ति-स्थान दिए हुए हैं। इनके अतिरिक्त नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी के वार्षिक और त्रैवार्षिक हिन्दी हस्त लिखित पुस्तकों के खोज-विवरणों, ‘राजस्थान में हिन्दी हस्त लिखित ग्रन्थों की खोज’ के विभिन्न भागों तथा विभिन्न पुस्तकालयों और व्यक्तियों के संग्रहों से जिन प्रतियों की सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं, उनकी संख्या भी ४०-४५ से कम नहीं है। किन्तु ये अलग-अलग आकार-प्रकार में उन प्रतियों में से किसी न किसी प्रति से मिलती-जुलती हैं जिनका उपयोग इस संस्करण के प्रस्तुत करने में किया गया है, और ये प्रयुक्त प्रतियाँ अपने आकार-प्रकार की प्रतियों में अनेक दृष्टियों से प्रायः सबसे अधिक महत्व की भी हैं, इसलिए नीचे इन्हीं का विवरण दिया जा रहा है।

(१) धा० : यह प्रति धारणोज, तालुका पाटन, गुजरात में बारोट वीराजी पंथूजी के पास बताई जाती है। मैंने १९५३ के अन्त में उन्हें पत्र लिखा था, तो उन्होंने लिखा था कि उनके पास एक बहुत पुरानी पुस्तक है जो संस्कृत में लिखी हुई है, और जिसे वे पढ़ नहीं पाते हैं किन्तु उनके स्वर्गीय पिता पथूवजा जी कहा करते थे कि वह पोथी ‘पृथ्वीराज रासो’ की है। उन्होंने मुझे पुस्तक दिखाने के लिए तत्परता भी प्रकट की, किन्तु जो समय उन्होंने दिया था वह मुझे अनुकूल नहीं पड़ रहा था, और उनके पत्र से यह भी निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हो रहा था कि जिस पोथी के बारे में उन्होंने लिखा था वह ‘पृथ्वीराज रासो’ की ही थी, इसलिए मैंने उन्हें लिखा कि यदि वे कुछ दिनों के लिए वह पोथी प्रयाग विश्वविद्यालय के पुस्तकालय को भेज सकें तो अच्छा हो। इसका उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। इसके बाद भी मैंने उन्हें तीन पत्र डाले, और स्पष्ट लिखा कि यदि वे उसे विश्वविद्यालय के पुस्तकालय को न भेज सकते हों, तो मैं स्वतः वहाँ पहुँच कर उसे देखूँ, किन्तु फिर भी किसी पत्र का उत्तर उनसे न मिला। एक अनिश्चित वस्तु के लिए गुजरात की यात्रा और वह भी उसके एक देहात की, व्यावहारिक न समझ पड़ी; अतः मूल प्रति का उपयोग मैं नहीं ही कर सका। गुजरात के विश्वविद्यालयों में हिन्दी का अध्यापन हो रहा है। वहाँ के विश्वविद्यालय, उनके कोई उत्साही अध्यापक या अन्वेषण-छात्र इस प्रति की फोटोग्राफ प्राप्त कर सके तो वह बहुत उपयोगी होगा।

इस प्रति का पता कई वर्ष हुए प्रसिद्ध प्राचीन प्रतियों के संग्रहकर्ता मुनि पुण्य विजय जी को लगा था। उन्होंने उसी समय इसकी एक प्रतिलिपि करा ली थी। उनसे यह प्रतिलिपि श्रीअगरचंद नाहटा ने ले ली थी। मूल प्रति के न मिलने पर मैंने मुनिजी को लिखा कि वे इस कार्य के लिए मुझे

^१ मोतीलाल मेनारिया : राजस्थानी पिंगल साहित्य, पृ० ४४।

कुछ समय के लिए उक्त प्रतिलिपि भिजवा दे, और मुनि जी ने नाहटाजी को इसलिए लिखा भी, किन्तु नाहटाजी ने सूचित किया कि उक्त प्रतिलिपि श्री नरोत्तमदास स्वामी के पास थी, और गुम हो गई; उसकी एक प्रतिलिपि स्वामीजी के पास अवश्य थी, जो उन्हीं की की हुई थी। किन्तु स्वामी जी ग्रंथ के 'लघुतम रूपान्तर' का संपादन कर रहे थे, इसलिए वे उसे देने में असमर्थ रहे।

कुछ समय पीछे मुझे यह ज्ञात हुआ कि स्वामी जी के द्वारा की हुई प्रतिलिपि की भी एक प्रतिलिपि डॉ० नामवरसिंह ने अपने 'पृथ्वीराज रासो की भाषा' नामक खोज-प्रबंध के लिए की थी। मेरे अनुरोध पर इस कार्य के लिए उन्होंने उसे कृपापूर्वक मुझे दे दिया, जिसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ। स० १६६७ को लिखी प्रति की तीसरी पीढ़ी की यह आधुनिक प्रतिलिपि ही उक्त प्रति और उसकी प्रथम और द्वितीय प्रतिलिपियों के अभाव में उपयोग में आ सकी है।

मुनिजी के द्वारा कराई गई प्रतिलिपि और उसकी अपनी प्रतिलिपि का परिचय देते हुए श्री नरोत्तमदास स्वामी ने लिखा है, "प्रतिलिपिकार ने बड़ी सावधानी से प्रतिलिपि तैयार की थी, पर 'रासो' की भाषा और भाषा शैली से परिचित न होने के कारण अनेक अशुद्धियाँ रह गयी। मूल प्रतिक का पाठ भी संभवतः शुद्ध नहीं था, ऐसा प्रतीत होता है। फिर भी प्रति बड़ी महत्वपूर्ण थी। इस प्रतिलिपि पर से मैंने एक संशोधित प्रतिलिपि बहुत वर्षों पूर्व तैयार की थी। संशोधन प्रधानतया शब्दों की वर्तनी (Spelling) से ही सम्बन्ध रखने वाले थे जो छन्दानुरोध के कारण किए गए थे।"१ इससे यह प्रकट है कि स्वामी जी के द्वारा की हुई प्रतिलिपि 'संशोधित प्रतिलिपि' थी और संशोधन 'प्रधानतया' शब्दों की वर्तनी के सम्बन्ध के लिए किए गए थे। किन्तु स्वामी जी प्राचीन हिन्दी और राजस्थानी साहित्य के मान्य विद्वान हैं, इसलिए ये संशोधन पर्याप्त सावधानी से किए गए होंगे, यह हमें मान लेना चाहिए।

डॉ० नामवरसिंह के द्वारा की हुई इस प्रति-प्रतिलिपि की प्रतिलिपि अवश्य ही सावधानी से ही हुई है—उन्हे 'रासो' की भाषा पर कार्य करना था। किन्तु ऐसा लगता है कि उक्त आदर्श के कुछ उल्लेख, जो पाठ-निर्धारण की दृष्टि से महत्व के थे, उनके कार्य की दृष्टि से महत्व के न होने के कारण अथवा अनजाने ही छूट गए। संयोग से मुझे स्वामी जी की प्रतिलिपि भारतीय हिन्दी परिषद् के जयपुर अधिवेशन के अवसर पर १९५४ के दिसम्बर में हस्त लिखित ग्रन्थों की प्रदर्शनी में उलट पुलट कर देखने को मिल गई थी। उस समय मैंने अपनी दृष्टि से उसकी एकाध महत्व की बातें लिख भी ली थीं। उन बातों के सम्बन्ध में डॉ० नामवरसिंह की प्रतिलिपि का मिलान करने पर एक-दो स्थलों पर अन्तर दिखाई पड़ा। स्वामी जी की प्रतिलिपि में निम्नलिखित दो दोहों के बीच में "तथा अउर पाठान्तर" शब्दावली मुझे मिली थी, जो डॉ० नामवरसिंह की उस प्रतिलिपि में नहीं मिली :—

सुनि वर सुन्दर उभय हुष स्वेद कंष सुर भंग ।

मनु कमलिनि कल सम हरि अम्रित करने तन रंग ॥

सुनि रव प्रिय प्रियराज कउ उभद रोम तिन अंग ।

सेद कंष सुर भंग भयउ सपत भाइ तिहि अंग ॥२

डॉ० सिंह की प्रतिलिपि में बाद वाला दोहा चौकोर कोष्ठकों के अन्तर्गत रक्खा हुआ है और उसकी क्रम-संख्या भी नहीं दी हुई है, किन्तु पाठालोचक के लिए 'तथा अउर पाठांतर' की शब्दावली स्वतन्त्र महत्व की थी, जो प्रतिलिपि में छोड़ दी गई है। इसी प्रकार स्वामी जी की प्रतिलिपि में निम्नलिखित उल्लेख पुष्पिका के रूप में मिलते हैं :—

^१राजस्थान भारती, अप्रैल १९५४, 'पृथ्वीराज रासो का लघुतम रूपान्तर', पृ० ३ ।

^२जागरी प्रचारिणी सभा संस्करण, ६१, ११५९ ।

“ इति श्री कवि भट्ट चंदवरदायी कृत राजा भी प्रियराज चहूआण रासउ रसाल संपूर्ण । सं० १६६७ वर्षे शाके १५३२ प्रवर्तमाने आसाढ मासे शुक्ल पक्षे पंचमी तिथौ महाराजाधिराज महाराजा श्री कल्याण मल्ल जी तत्पुत्र राजा श्री भाव जी तत्पुत्र राजा श्री भगवानदास जी पाठनार्थ ।

यह रासो की बुक धारणोजग्राम निवासी बारोट पथुवजा की है । और वह धारणोज निवासी सेठ किशोरदास हेमचंद शाह के द्वारा कॉपी करने को प्राप्त हुई है ।”

डॉ० सिंह की प्रतिलिपि में केवल प्रथम वाक्य आता है, शेष नहीं ।

डॉ० सिंह की प्रतिलिपि के साथ एक और कठिनाई हुई—कन्नौज-प्रयाण तथा कन्नौज-युद्ध सम्बन्धी उसका सम्पूर्ण अंश मुद्रित रूप में ही मुझे प्राप्त हो सका, क्योंकि उस अंश की प्रतिलिपि प्रेस कापी के रूप में प्रेस चली गई थी और अप्राप्त हो गई थी । स्वाभाविक है कि इस मुद्रित अंश में मुद्रण-जनित कुछ ग्राह्य-विकृतियाँ भी आ गई होंगी । किन्तु इन त्रुटियों के होते हुए भी चूँकि डॉ० सिंह ने अपनी ओर से पाठ-संशोधन का कोई प्रयास नहीं किया या इसलिए यह प्रतिलिपि उतनी ही विश्वसनीय थी जितनी सामान्यतः कोई भी हस्तलिखित प्रतिकृति हो सकती थी, इसलिए मूल प्रति तथा उसकी प्रथम और द्वितीय प्रतिलिपियों के अभाव में इसका उपयोग बिना किसी हिचक के किया जा सका है ।

इस प्रति के पाठ की विशेषता यह है कि रचना के प्राप्त समस्त पाठों में यह सब से छोटा है, यद्यपि पूर्ण है । इसमें न खण्ड-विभाजन है और न छन्दों की क्रम-संख्या दी हुई है—कहीं-कहीं वार्त्ताओं के रूप में वर्णित कथा की सूचना मात्र दे दी गई है । गिनने पर कुल रूपक^१-संख्या ४२२ ठहरती है ।

ति भी पूर्ण है, यह प्रसन्नता की बात है । इसकी पुष्पिका ऊपर दी ही जा चुकी है ।

(२) मो० : यह प्रति प्रसिद्ध जैन विद्वान् मुनि जिनविजय के समग्र की है । यह ‘रासो’ के सबसे छोटे पाठ की एक मात्र अन्य प्राप्त प्रति है, और उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी धा० है । इस प्रति के लिए मुनि जी को जब मैंने लिखा, वह श्री अगरचन्द नाहटा के पास थी । कदाचित् प्रति की जोर्णता के ध्यान से नाहटा जी ने मूल प्रति न भेजकर उसकी एक फोटो-स्टैट कापी मुझे भेज दी । इस बहुमूल्य प्रति के उपयोग के लिए मैं मुनि जी का अत्यन्त आभारी हूँ । प्रस्तुत कार्य के लिए इसी फोटो-स्टैट कापी का उपयोग किया गया है । मूल प्रति मैंने १९५६ के जून में डा० दशरथ शर्मा के पास दिल्ली में देखी थी । फोटो-स्टैट होने के कारण यह कॉपी प्रति की एक वास्तविक प्रतिकृति है ।

इस प्रति के प्रारम्भ के दो पन्ने नहीं हैं, शेष सभी हैं । इसमें भी खण्ड-विभाजन और छन्दों की क्रम-संख्या नहीं है । इसमें वार्त्ताओं के रूप में इस प्रकार के संकेत भी प्रायः नहीं दिए हुए हैं जैसे धा० में हैं । प्रारम्भ के दो पन्ने न होने के कारण इसकी निश्चित छन्द संख्या कितनी थी, यह नहीं कहा जा सकता है, किन्तु इन त्रुटित दो पत्रों में से प्रथम पृष्ठ रचना के नाम का रहा होगा, जैसा अनिवार्य रूप से मिलता है, और शेष तीन पृष्ठ ही रचना के पाठ के रहे होंगे । तीसरे पत्र के प्रारम्भ में जो छन्द आता है वह धा० १७ है, जिसका कुछ अंश पूर्ववर्तीय द्वितीय पत्र पर रहा होगा और धा० की तुलना में इसमें ३४—३१ प्रतिशत रूपक अधिक हैं, इसलिए धा० के १६ रूपकों के स्थान पर इसके प्रथम दो पत्रों में २०—२१ रूपक रहे होने चाहिए । फलतः इन निकले हुए दो पत्रों में २० छन्द मान लेने पर प्रति की कुल रूपक संख्या ५५२ ठहरती है । यह प्रति अत्यन्त सुलिखित है और उपर्युक्त दो पत्रों के ३ तिरिक्त पूर्णतः सुरक्षित भी है । इसका आकार ६”२५”×३” और इसकी पुष्पिका इस प्रकार है :—

^१ ना० प्र० स० संस्करण में प्रारम्भ में रूपक और छन्द-संख्या दोनों दी गई हैं, किन्तु पीछे केवल छन्द-संख्या दी गई है । छन्द-संख्या छन्द के एक वृत्त में जितने चरण होने चाहिए, उसके आधार पर दी जाती है; किन्तु कुछ छन्द मालाओं के रूप में भी चलते हैं, यथा भुजंगी, पद्मडी आदि । ऐसे छन्दों के सम्बन्ध में पूरी माला की गणना एक रूपक के रूप में की जाती है । पुरानी प्रतियों में सामान्यतः रूपक-गणना ही मिलती है ।

“इति श्री कविचन्द विरचिते प्रथीराज रासुं संपूर्ण । पंडित श्री दान कुशल गणि । गणि श्री राजकुशल । गणि श्री देव कुशल । गणि धर्म कुशल । मुनि भाव कुशल लभित । मुनि उदय कुशल । मुनि मान कुशल । सं० १६९७ वर्षे पौष सुदि अष्टम्या तिथौ गुरु वासरे मोहनपूरे ।”

यह एक काफ़ी सुरक्षित पाठ-परम्परा की प्रति लगती है, क्योंकि इसमें पाठ-त्रुटियाँ बहुत कम हैं, और अनेक स्थलों पर एक मात्र इसी में ऐसा पाठ मिलता है जो बहिरंग और अंतरंग सभी सम्भावनाओं की दृष्टि से मान्य हो सकता है । फिर भी श्री नरोत्तमदास स्वामी ने कहा है कि इसका “पाठ बहुत ही अशुद्ध और भ्रष्ट है ।”^१ उन्होंने यह धारणा इस प्रति के सम्बन्ध में कैसे बनाई है, यह उन्होंने नहीं लिखा है । किन्तु इस प्रकार की धारणा के दो कारण संभव प्रतीत होते हैं, एक तो यह कि इसमें वर्तनी-विषयक कुछ ऐसी विशिष्ट प्रवृत्तियाँ मिलती हैं जिनके कारण शब्दावली और भाषा का रूप विकृत हुआ लगता है, दूसरे यह कि इसका पाठ अनेक स्थलों पर अपनी सुरक्षित प्राचीनता के कारण दुर्बोध हो गया है, और उन स्थलों पर अन्य प्रतियों में बाद का प्रक्षिप्त किन्तु सुबोध पाठ मिलता है । कहीं कहीं पर ये दोनों कारण एक साथ इकट्ठा होकर पाठक को और भी अधिक उलझा देते हैं ।

वर्तनी सम्बन्धी इसकी सबसे अधिक उलझन में डालने वाली प्रवृत्तियाँ आवश्यक उदाहरणों के साथ निम्नलिखित हैं:—

[१] इसमें ‘इ’ की मात्रा का अपना सामान्य प्रयोग तो है ही, ‘अइ’ के लिए भी उसका प्रयोग प्रायः हुआ है, यथा:

गुन तेज प्रताप ति घणि ‘कहि’ । दिन पंच प्रजत न अंत लहइ । (मो० ९५.५१-५२)
ब्रह्म वेद नहि चधि अलप युधिष्ठिर ‘बोलि’ ।
जु शायर (सायर) जल ‘तजि’ मेर मरजादह डोलइ । (मो० २२४.३-४)
रहि गय उर अषेव उरह मि (=मइ) अवर न बुझइ ।
मुउ न जीवइ कोइ मोहि परमपर ‘सूक्षि’ । (मो० ५४५.३-४)
किरणाटी रांणी ‘कि’ (=कइ) आवासि राजा विदा मांगन गयु । (मो० १२२ अ)
‘पछि’ (=पछइ) राजा परमारि आवासि विदामांगन गयु । (मो० १२३ अ)
‘पछि’ (=पछइ) राजा परमारि सुषुली विदा मांगन गयु । (मो० १२४ अ)
‘पछि’ (=पछइ) राजा वाघेली कै अवास विदा मांगन गयु । (मो० १२५ अ)

तुलना कीजिये:—

‘पछइ’ राजा कछवाही ‘कइ’ आवासि विदा मांगन गयु । (मो० १२६ अ)
मनु अकाल टडीअ शवन ‘पवि’ (=पवइ) छूटि प्रवाह । (मो० २३४.२)
तिन ‘मि’ (=मइ) दसि ‘सि’ (=सइ) अरि दलन ‘उप्पारि’ (उप्पारइ) गज दंत । (मो० ४३८.२)
तिन ‘मि’ (=मइ) कवि गन पंच सिहि (=सइहिं) साष भाष दिठउ काज ।
विन ‘मि’ (=मइ) दिवगति देवन समह तिन महि पुहु प्रथीराज । (मो० ४३९)
जे कछू साध मन ‘मि’ (=मइ) भइ सब ईछा रस दीन्ह । (मो० ५१३.२)
‘असमि’ (=असमइ) सोइ मग्यु सुकवि नृपति ‘विचार’ (=विचारइ) सब । (मो० ५३०.२)
इस प्रवृत्ति की पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि कहीं कहीं ‘इ’ की मात्रा को ‘अइ’ के रूप में पढ़ा गया है:—

तम ‘सरवगइ’ (=सरवगि) सू केवि राज गुरु राज सम । (मो० ४०२.३)
[२] ‘इ’ की मात्रा का प्रयोग पुनः ‘ऐ’ के लिए भी हुआ मिलता है, यथा: ऊपर मो० १२२ अ, १२३ अ, १२४ अ, तथा १२५ अ के उद्धरणों में आए हुए ‘कि’ की तुलना कीजिए:—

^१ ‘प्रथीराज रासो का लघुतम रूपान्तर’, राजस्थान भारती, अप्रैल १९५४, पृ० ३६।

पछइ राजा भटिआनी कै आवासि विदा मांगन गयु । (मो० १२७अ)
 भरी भोज 'भाजि' (=भाजइ) झंही सारि भागि ।
 भरि मल मानै नही लोह लागै । (मो० ३२७.१९-२०)
 सुनि त पंग चहुआन कुं मुष जंषि इह 'विन' (=वैन) ।
 बोल सूर सामंत सब कहु एकहु शेन (=सेन) । (मो० २२९)-
 जल विन भट सुभट भो करि अपहि भुज 'विन' (=वैन) ।
 परमतत्व सूझि (=सूझइ) नृपति मगि मणि फरमानेन (<फरमानेन) । (मो० ५४७)
 'ति' (=तै) राषु ह्रींदुआन गंज गोरी गाहंतु ।
 'तै' राषु जालोर चंपि चालुक चाहतु ।
 'तै' राषु पगुरु भीम भटी 'दि' (=दै) मथु ।
 'तै' राषु रणथंभ राय जादव 'सि' (=सइ) दिथु । (मो० ३०८.१-४)
 भये तोमर मतिहीन करीय किली 'ति' (=तै) दिल्ली । (मो० ३३.४)
 'ति' (=तै) जीतु गजंजुं गंजि अपार हमीरह ।
 'ति' (=त) जीतु चालुक विहरि संनाह सरीरह ।
 'ति' (=तै) पदुपंग सू गहु इहु जिम गहि सूरहह ।
 'ति' (=तै) गोरीय दल दहु वारि कठ जिन वन दहह ।
 तुव तुंग तेग तव उचमन ति (=तै) तो पोशन मिलयु । (मो० ४२४.१-५)
 भरे देव दांनव जिम 'विर' (वैर) चीतु । (मो० ४५४.४९)
 इस प्रवृत्ति की पुष्टि भी इस प्रकार होती है कि कहीं-कहीं पर 'इ' की मात्रा को 'ऐ' के रूप में पढ़ा गया है, यथा :—

चिद्वजन 'बोलै' (=बोलि) दिन धरहु आज । (मो० ४०.५४)
 [३] कहीं-कहीं 'इ' की मात्रा का प्रयोग 'अय' के लिए भी हुआ मिलता है, यथा.—
 'किमास' (मो० ७३.४)
 वही (मो० ७७.१)
 वही (मो० ८२.२)
 वही (मो० ९९.२)
 वही (मो० १०१.२)
 वही (मो० १०५.१)
 वही (मो० १०८.३)
 वही (मो० ११६.१)
 वही (मो० १२१.१)
 वही (मो० ५४८.३)

तुलना कीजिए :—

सामंत्री 'कयमास' काम अंधा देवी विइदा गति । (मो० ७४.४)
 हि (=हइ) 'कयमास' कहूं कोइ जानहुं । (मो० ९८.४)
 [४] 'इ' की मात्रा का प्रयोग 'ए' की मात्रा के लिए भी हुआ है, यथा:—
 दुहु राय रषत ति रत 'उठि' ।
 विहुरे जन पावस अभ उठे । (मो० ३१४.५-६)
 नीयं देह दिषि बिरषि ससाने ।

जिते मोह मज्जा लगये 'आसमानि' ।

(मो० ४९८.३५-३६)

शकुंने मरने जनने निहाने ।

वजे दहु हुंभिदे विभू 'मनि' ।

(मो० ४९८.३९-४०)

इस प्रवृत्ति की पुष्टि भी कहीं-कहीं 'इ' की मात्रा के 'ए' की मात्रा के रूप में पढ़े गए होने से होती है, यथा :—

विनि गंडु नृप अर्धनिसा सम दासी 'सूरिआते' (सुरिआति) ।

देव धरह जल घन अनिल कहिग चंद कवि प्रात ॥

(मो० ८७)

पहिचानु जयचंद इहतु ढिलीसुर पेवै ।

नहिन चंद उनुहारि दुसह दारुण तब दिवै ।

(मो० २२३.१-२)

गहीय चहु रह गजने जाहां सजन जु 'नरेद' ।

कबहु नयन निरषहु मनहु रवि भरविद ।

(मो० ४७४)

[५] 'इयइ' या 'इयै' के स्थान पर प्रायः 'ईइ' लिखा गया है यथा :—

सोइ एको बान संभरि धनी बीड बान नह 'संधीइ' ।

वरिआर एक लग भोगरीअ एक बार नृप हुकीयै ।

(मो० ५४४.५-६)

हम बोल रिहि कलि अंतरि देहि स्वामि 'पारथीइ' (=पारथियइ) ।

अरि असीइ लष को अंगमि परणि राय 'सारथीइ' (=सारथियइ) ।

(३०५.५-६)

मंगल वार हि मरन की ते पति सथि तन 'षडीइ' (=षडियइ) ।

जेत चढि युध कमधज सू मरन सब मुष 'मंडीइ' (=मडियइ) ।

(मो० ३०९.५-६)

श्रिजु इक दरहि 'विलंबीइ' (विलवियइ) कवि न करि मनु मंदु ।

(मो० ४८८.२)

सह सहाब दर 'दिषीइ' (=दिषियइ) सु कलू भूमि पर मिछ ।

(मो० ४७९.२)

सीरताज साहि 'सोभीइ' (=सोभियइ) सुदेसि ।

(मा० ४९२.१७)

'सुनीइ' (=सुनियइ) पुन्य सभ मझ राज ।

(मो० ५२.५)

[६] 'इयउ' के स्थान पर प्रायः 'ईउ' लिखा मिलता है :—

इम जंपि चंद 'विरदीउ' (विरदियउ) सु प्रथीराज उनिहारि एहि । (मो० १८९-६; १९०.६)

इम जंपि चंद विरदीउ (=विरदियउ) पट त कोस चहुवांन गयु । (मो० ३३५.६)

इम जंपि चंद 'विरदीउ' (=विरदियउ) दस कोस चहुवांन गउ । (मो० ३४३.७)

जिम सेत वज 'साजीउ' (=साजियउ) पथ ।

(मो० ४९२.२४)

[७] 'उ' की मात्रा का प्रयोग प्रायः 'अउ' के लिए हुआ है, यथा :—

तव ही दास कर हथ सुवंय सुनाययूउ ।

बानावलि वि दहु बांन रोस रिस 'दाहयु' ।

मनहु नागपति पतिन अप 'जगाइयु' ।

(मो० ८०.२-४)

पायक धनू घर कोटि गनि असी सहस हयमंत जहु ।

पंगुर किहि सामंत सुइ जु जीवत ग्रहि प्रथीराज 'कुं' ।

(मो० २३०.५-६)

निकट सुनि सुरतांन वांम दिसि उच हथ 'सु' (सउ)

जस अवसर सतु सचि अछि लूटीय न करीय 'भू' (भउ) ।

(मो० ५३३.३-४)

'सु' (=सउ) बरस राज तप अंत किन ।

(मो० २१ की अंतिम अर्द्धाली)

'सु' (=सउ) उपरि 'सु' (=सउ) सहस दीह अगनित लष दह ।

(मो० २८३.२)

कन [उ] ज राडि पहिलि दिवसि 'शु' (=शउ) मिं सात निवटिया ।

(मो० २९८.६)

[८] कभी-कभी 'उ' की मात्रा से 'औ' की मात्रा का भी काम लिया गया है :—

निशपल पंच वटीए दोई 'धायु' ।

आखेटकखे नृप. आयौ । (मो० ९२.३-४)

[९] और कभी-कभी 'उ' की मात्रा से 'ओ' की मात्रा का काम लिया गया है:—

कवि देवत कवि कु मन 'रत्तु' ।

न्याय नयन कन [उ] जि पहुत्तो । (मो० १७६.१-२)

इसकी पुष्टि एकाध स्थान पर 'उ' के स्थान पर 'ओ' की मात्रा मिलने से भी होती है:—

प्रात राउ संप्रापतिग जहां दर देव • 'अनोप' ।

सयन करि दरबार जिहि सात सृहस अंस भूप ॥ (मो० २१४)

[१०] इसी प्रकार कहीं कहीं 'उ' वर्ण का प्रयोग 'ओ' के लिए हुआ मिलता है —

तुलंत जू तुज तराजून्ह गोष ।

मनु वन मक्षि तडितह 'उप' । (मो० १६१.२७-२८)

गंग जल जिमन धर हलि 'उजे' ।

पंगरे राय राहुर फोजे । (मो० २८४.१५-१६)

प्रति की वर्त्तनी-सम्बन्धी ऐसी ही प्रवृत्तियों का यहाँ उल्लेख किया गया है जो हिंदी की प्रतियों में प्रायः नहीं मिलती है, और इसीलिए हिंदी पाठक को ऐसा लग सकता है कि ये प्रतिलिपिकार की अयोग्यता के कारण हैं। किन्तु ऐसा नहीं है। नारायणदास तथा रत्नरंग रचित 'छिताईवार्त्ता' की भी एकप्रति में, जो इस प्रति के कुछ पूर्व की है, वर्त्तनी-सम्बन्धी ये सारी प्रवृत्तियाँ मिलती हैं, यद्यपि वे परिमाण में कम हैं;^१ पश्चिमी राजस्थानी तथा गुजराती की इस समय की प्रतियों में तो ये प्रवृत्तियाँ प्रचुरता से पाई जाती हैं।^२ फलतः वर्त्तनी-सम्बन्धी इन प्रवृत्तियों का परिहार करके ही प्रति के पाठ पर विचार करना उचित होगा। और इस प्रकार के परिहार के अनन्तर मो० का पाठ किसी भी प्रति से बुरा नहीं रहता है, वरन् वह प्रायः प्राचीनतर—और इसलिए कभी-कभी दुर्बोध भी—प्रमाणित होता है, यह सम्पादित पाठ और पाठातरो पर दृष्टि डालने पर स्वतः स्पष्ट हो जायगा।

(३) अ० : अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर में रचना की तीन महत्व की प्रतियाँ हैं, जिन पर पुस्तकालय की संख्याएँ ५९, ६० तथा ६२ पड़ी हुई हैं। तीनों प्रतियाँ एक ही पूर्वज आदर्श की हैं—क्योंकि अनेक स्थलों पर तीनों में समान अशुद्धियाँ हैं, और तीनों में छन्द-भेद के आवार पर छन्दों की क्रम-संख्या देने की पद्धति, छन्दों का क्रम तथा दो-चार अपवादों को छोड़ कर छन्द-संख्या भी वही है। अन्तर तीनों में यह है कि ५९ तथा ६२ संख्यक प्रतियों में त्रुटित स्थल बहुतावत से हैं, जब कि ६० संख्यक प्रति में त्रुटित स्थल इने-गिने हैं। इससे सामान्यतः यह समझा जाता है कि ६० संख्यक प्रति उक्त पूर्वज आदर्श की उस समय की हुई किसी प्रतिलिपि की परम्परा में आती है जब वह अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित थी और ५९ तथा ६२ संख्यक प्रतियाँ उसकी उस समय की हुई किसी प्रतिलिपि की परम्परा में आती हैं जब वह कीटभक्षण से अथवा अन्य किसी प्रकार से स्थान-स्थान पर कुछ कट-फट

^१ दे० 'छिताईवार्त्ता', सम्पा० माताप्रसाद गुप्त, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, १९५८ ।

^२ दे० 'षष्टि शतक प्रकरण', सम्पा० भोगीलाल ज० साडेसरा, बड़ोदा, १९५४,

'वसन्त विलास फागु', सम्पा० कान्तिलाल व्यास, बंबई, १९४२,

'औक्तिक प्रकरण' [प्राचीन गुजराती गद्य सन्दर्भ], सम्पा० मुनि जिन विजय, अहमदाबाद सं० १९८६,

'सम्यक्त्व कथाओं'

”

”

”

'जिन वल्लभसूरि गुरु गुण वर्णन'

”

”

”

'कान्हुड दे प्रबन्ध', सम्पा० कान्तिलाल व्यास, जयपुर, १९५३ ।

गया था ।^१ तथ्य यह है कि ५९ तथा ६२ का सामान्य पूर्वज तथा ६० का पूर्वज लगभग एक ही समय उक्त पूर्वज आदर्श से उतारे गए और उस समय ही वह पूर्वज कोटादि के द्वारा क्षत-विक्षत था । किन्तु पूर्वज आदर्श की उक्त प्रतिलिपि तथा ६० संख्यक प्रति के बीच की किसी पीढ़ी में इन क्षत-विक्षत स्थलों पर त्रुटित पाठ को पूरा करने के लिए काफी मात्रा में प्रक्षेप-क्रिया हुई, जिसके परिणाम स्वरूप देखने में ६० संख्यक प्रति ५९ तथा ६२ संख्यक प्रतियों की तुलना में अवश्य अधिक त्रुटिहीन लगती है, किन्तु ५९ तथा ६२ संख्यक प्रतियाँ प्रायः प्रक्षेपहीन हैं, जो निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट हो जावेगा, इसीलिए इस शाखा के पाठ के पुनर्निर्माण की दृष्टि से ये ६० की अपेक्षा कहीं अधिक विश्वासनीय और महत्वपूर्ण हैं:—

खण्ड १. मोती० ८(=स० २.३५५) इसके दूसरे तथा तीसरे चरणों का पाठ अन्य प्रतियों में है:—

कमोदनि कुदह केतुकि बील । कनैर कसौंदिय केबर कोह ।

५९ में 'कमोदनि' से 'कनैर' तक की शब्दावली छूटी हुई है । प्रति ६० में चरण २ तथा ३ को मिला कर निम्नलिखित शब्दावली रख दी गई है:—

करिकै सब ग्वारिनि हुँदै फिरि एक परस्पर अस्पत कोह ।

६२ यहाँ खण्डित है ।

२. भुजग (= स० १.५—१०) के पूर्व ५९ में निम्नलिखित शब्दावली और आती है—

लाल माली कवित्त ।

जिनै उच्चरी बुद्धि गंगा पवित्त ।

गिरा शेष वाणी कवि काव्व वंदे ।

अन्तिम छूटे हुए चरण के स्थान पर ६० में है:—

नाम वषाणन चन्द छन्दे ।

और ६२ में है:—

प्ररूपं ति वाणी भली कवि चन्दे ।

वास्तव में ये त्रुटित चरण पूरे रूपक के अन्तिम चार चरण हैं, जो इन प्रतियों में भी अन्यत्र प्रायः इसी प्रकार आते हैं:—

सतें दंडमाली सुलाली कवित्त । जिन बुद्धि तारग गंगा पवित्त ।

गिरा शेष वाणी कवि कव्य वंदे । तिनै हि पुलिउच्छिष्ट कवि चंद छंदे ।

ये चरण इन प्रतियों के पूर्वज आदर्श में किसी प्रकार से रूपक के प्रारम्भ में भी त्रुटित रूप में आ गये थे, और ५९ में उसी प्रकार उतरे रहे, किन्तु ६० तथा ६२ के बीच के किन्हीं पूर्वजों में मनमाने ढंग से ठीक कर लिए गए ।

उपर्युक्त रूपक में ही अन्य प्रतियों में आने वाला अन्त का निम्नलिखित चरण ५९ तथा ६२ में नहीं है:—

जिनै सेत बंध्यौ जु भोज प्रबन्ध ।

६० में इसकी अभावपूर्ति निम्नलिखित चरण द्वारा की गई है:—

अनेक अगे अन्न हुए अनह ।

उपर्युक्त रूपक में ही अन्य प्रतियों में आने वाला अन्त का निम्नलिखित चरण ५९ में नहीं है:—

गिरा शेष वाणी कवि कवि वंदे ।

श्री अगरचन्द नाइटा : 'पृथ्वीराज रासो और उसकी हस्तलिखित प्रतियाँ', राजस्थानी, भाग ३, अंक २, पृ० २३ ।

६० में इसकी अभावपूर्ति निम्नलिखित चरण द्वारा की गई है :—

कवि एम रच्यो जु अगो सु वदे ।

६२ यहाँ पर खण्डित है ।

२. उधोर ८ (= स० १८४१—५६) : इस छन्द के चरण २९—३० अन्य प्रतियों में निम्नलिखित हैं :—

चढि बनसपति सोहति दंति । मानहुं इंद्रबनु की पति ।

५९ तथा ६२ में 'चढि बनसपति' मात्र शेष है, ६० में वह भी निकाल दिया गया है ।

३. दो० ५ (= स० ४५. २१७) : इस दोहे का प्रथम चरण अन्य प्रतियों में है :—

घटि बढि केलि कनउज्जनी पेम स दीरघ होत ।

५९ तथा ६२ में 'केलि' के बाद की शब्दावली नहीं है, जब कि ६० में यह है :—

कलिंग अवर देस कहुं केन ।

३. कवि० ७ (= स० ४६. १११) का चतुर्थ चरण अन्य प्रतियों में है :—

छिति छितान घर धर्म कर्म हिय भरतिहि रोचन ।

५९ तथा ६२ में यह चरण छूटा हुआ है, और ६० में है :—

सूर वीर गम्भीर धीर क्षत्रिय मन रोचन ।

४. कवि० २ (= स० १२. ५४) का प्रथम चरण अन्य प्रतियों में है :—

आसोजै रानिंग राव परबत वेहानै ।

५९ तथा ६२ में यह चरण छूटा हुआ है, जबकि ६० में है :—

होलाराइ हमोर धीर कहि कहूं बधानौ ।

४. कवि० ७ (= स० १२. १६९) का अन्तिम चरण अन्य प्रतियों में है :—

बेदलह वाइ वध्वाइयां बोल उंचा उंचा भरी ।

५९ तथा ६२ में यह चरण छूटा हुआ है, जबकि ६० में है :—

जो चढत दलहं बद्धयौ सुबल धरा धुंधु मिलि धरहरी ।

४. कवि० ९ (स० १३. ३५) के अन्तिम दो चरणों का पाठ अन्य प्रतियों में है :—

उत्तंग ढाल की बैरषह को हंके अद्वारहां ।

निसि जाम तीनि वित्तेपतिय पंजू राग सुढारहां ।

५९ तथा ६२ में 'वैरषह' तथा 'पंजू' के बीच की शब्दावली नहीं है, जबकि ६० में एक और चरण गढ़कर अभावपूर्ति निम्नलिखित प्रकार से की गई है :—

उत्तंग ढाल की बैरषह पंजू राग सुढारहां ।

गय थट्टह हया हेषारवां चलियारह हज्जारहां ।

५. नारा० १ (= स० १२. २२८) का अन्तिम चरण अन्य प्रतियों में है :—

चरीत्त चारु चालुकं नरिंद को नरथती ।

५९ तथा ६२ में यह छूटा हुआ है, ६० में इसके स्थान पर है :—

गजत्थटं हयत्थटं नरत्थटं नरपति ।

५. दो० ११ (= स० १२. १५५) के दूसरे चरण का पाठ अन्य प्रतियों में है :—

वीरंदाइ वसीठियां द्वै हिंदू सुलतान ।

५९ तथा ६२ में यह चरण छूटा हुआ है और ६० में इसका पाठ है :—

• धर धक्यौ लीनी धरा जित्यौ भीम परान ।

६. पद० २ (= स० ४८. ४९-६१) के चरण ७-१० का पाठ अन्यों में है :—

मुकले दूत तव तिहि रिसाइ । असमथ्य सेव किम भूमि षाइ ।

बंधौ समेत सामन्त सथ्य । उत्तरे आनि दरबार तथ्य ।

५९ तथा ६२ में 'असमथ्य' के बाद 'सथ्य' तक की शब्दावली छूटी है। किन्तु ६० में इन चरणों के स्थान पर दो चरण निम्नलिखित कर लिये गए हैं:—

मुकले दूत तव तिहि समथ्य । रिसाइ उत्तरे अगि दरबार तथ्य ।

१०. कवि० ५ (= स० ६१.१५३३) का चरण ३ अन्य प्रतियों में है:—

पर्यो चंद मुंडीर चंद पिण्यौ मारंतौ ।

५९ तथा ६२ में प्रथम 'चंद' के बाद दूसरे 'चंद' तक के शब्द छूटे हुए हैं, ६० में इनके स्थान पर 'पुन्नपामार' शब्द रख दिये गए हैं।

११. कवि० ९ (= स० ६१.१८३१) के चरण १ और २ का पाठ अन्यो में है

हय हय हय आयास केलि सज्जी सुब्बोम सिर ।

किल किलंत कामक्कि डक्क वज्जी सुहंस हर ।

५९ तथा ६२ में 'सज्जी' के बाद 'वज्जी' तक की शब्दावली छूटी हुई है। ६० में दोनों चरणों का पाठ इस प्रकार है:—

हय हय हय आयास केलि सज्जिय सुहंस हरि ।

कहुं गघरिग कहुं परिग अरिग थरहरिग सुहड भर ।

१२. कवि० ३ (= स० ६१.२१६४) के चरण २ और ३ अन्यो में हैं:—

हय तुम दुस्सह मिलन स्वामि हुज्जै सुअथ घर ।

हौं रविमंडल भेदि जीव लागि सत्त न छंडौ ।

५९ तथा ६२ में 'मिलन' के 'मिल' के बाद 'ल' के 'ल' तक का अंश छूटा हुआ है, ६० में दोनों चरण इस प्रकार कर दिए गए हैं:—

हम तुम दुसह मिलगि सत्त न छंड्यौ सदर ।

इमह वंस भजिग नरेस करि षंड विहंड्यौ ।

ये उदाहरण भी ग्रंथ के पूर्वार्द्ध मात्र से हैं, उत्तरार्द्ध में ६० में इस प्रकार के प्रक्षेप और भी अधिक हैं; ५९ तथा ६२ उत्तरार्द्ध में भी वैसे ही हैं, जैसे ऊपर पूर्वार्द्ध में मिले हैं। प्रकट है कि ६० अपनी शाखा के पाठ की वास्तविक प्रतिनिधि नहीं रह गई है, ५९ तथा ६२ ही में उसकी प्रतिनिधि होने की योग्यता है। पुनः ५९ और ६२ में से, जैसा हमने ऊपर देखा है, ६२ की अपेक्षा ५९ कम प्रक्षिप्त है। वह कुछ कम खण्डित भी है—केवल प्रारम्भ के ३३ रूपक इसमें नहीं हैं, जबकि ६२ में प्रारम्भ के १७ रूपक नहीं हैं। इसलिए अ० के पाठ के लिए ५९ संख्यक प्रति का ही उपयोग किया गया है, केवल प्रारम्भ के उस अंश के लिए जो ५९ संख्यक प्रति में खण्डित है, ६० संख्यक प्रति का उपयोग किया गया है। इस शाखा के पाठ में कुल १९ खण्ड हैं, और कुल रूपक-संख्या १११० के लगभग है।

अ० परिवार की ये प्रतियाँ मुझे लुधियाना के श्री वेणीप्रसाद शर्मा के द्वारा प्राप्त हुई थी, जिन्होंने इन्हे इस शाखा के पाठ संपादन के लिए प्राप्त किया था। इस कृपा के लिए मैं उनका आभारी हूँ।

५९ संख्यक प्रति सुलिखित है। इसका आकार १०'५" × ६'२५" है। इनमें प्रतिलिपि-तिथि नहीं दी हुई है। अन्त में निम्नलिखित दोहा अवश्य आता है जो ६० तथा ६२ में नहीं है:—

महाराज नृप सूर सूव कूरमचंद उदार ।

रासौ पृथीयराज कौ राख्यौ लागि संसार ॥

किन्तु यह दोहा पुष्पिका का नहीं लगता है, बल्कि निम्नलिखित पूर्ववर्ती छन्द पर आधारित उसका विस्तार मात्र लगता है:—

प्रथम वेद उद्धरिय बंभ मच्छह तनु किन्नड ।
दुतीय वीर वाराह धरनि उद्धरि जसु लिन्नो ।
कौमारिक भहेस धम्म उद्धरि सुर सव्विय ।
कूरम सूर नरेस हिंदु हद उद्धरि रव्विय ।
रघुनाथ चरितु हनुमंत कृत भूप भोज उद्धरिय जिमि ।
पृथिराज सुजसु कविचंद्र कृत चंद्रसिंह उद्धरिय तिमि ॥

यह छन्द ६२ में भी है ।

६० संख्यक प्रति में इसी प्रकार निम्नलिखित दोहे आते हैं :—

मन्त्रीश्वर मण्डन तिलक वच्छा वंश भरभाण ।
कर्मचंद सुत कर्म बद्ध भागचंद सब जाण ॥ १ ॥
तसु कारण लिखियो सही पृथ्वीराज चरित्र ।
पढता सुख संपत्ति सकल मन सुख होवे मित्र ॥ २ ॥

इन कर्मचन्द तथा भागचन्द का ठीक पता लग गया है । कर्मचन्द कल्याणमल्ल के अमात्य थे, जिनके प्रयत्नों से कहा गया है कि अकबर ने कल्याणमल्ल को जोधपुर की अधीशता प्रदान की थी । इन कर्मचन्द के दो पुत्र थे, भागचन्द और लक्ष्मीचन्द । कर्मचन्द का यह वंश उनके एक पूर्वपुरुष 'वत्सराज' के नाम पर 'वच्छावत' कहलाता था । भागचन्द जहाँगीर के शासन काल में थे और कहा जाता है कि बीकानेर-नरेश सूरसिंह ने इन्हें सपरिवार बीकानेर लाकर घोखे से मरवा डाला था ।^१ इसी प्रकार सूरसिंह सुत चन्द्रसिंह कूर्मवशीय का भी पता लग गया है । ये चन्द्रसिंह कूर्म वशी सूरसिंह के पुत्र थे जो प्रायः तीन सौ वर्ष पूर्व विद्यमान थे ।^२ अतः यह प्रमाणित हो जाता है कि तीनों प्रतियों परस्पर बहुत आस-पास की हैं और इनमें ६० संख्यक प्रति—जिसमें भागचन्द का उल्लेख होता है—कुछ पूर्व की और ५९ तथा ६२ संख्यक प्रतियाँ उसके कुछ बाद की हैं । फलतः ६० संख्यक प्रति प्रायः सवा तीन सौ वर्ष और ५९ तथा ६२ संख्यक प्रतियाँ प्रायः तीन सौ वर्ष पुरानी होनी चाहिए और इन प्रतियों की जीर्णता देखने में भी इतनी जात होती है ।

(४) फ० : यह प्रति मूलतः उसी आदर्श की है जिसकी अ० परिवार की प्रतियाँ हैं, क्योंकि उस परिवार का पाठ-त्रुटियों में से अधिकतर इसमें भी पाई जाती है । फिर उस परिवार की ६० संख्यक प्रति कि भाँति इसमें भी प्रक्षेप के द्वारा त्रुटि-परिहार का यत्न किया गया है । नीचे दिए हुए उदाहरणों से यह बात देखी जा सकती है :—

२. उधोर ८ : अ० परिवार की प्रतियों की भाँति इसमें भी चरण २१ नहीं था किन्तु इस त्रुटि का परिहार फ० में इस प्रकार किया गया कि चरण २३ के अंतिम शब्द बदल दिए गए जिससे उसका तुक चरण २२ से मिल जावे और फिर चरण २४ के बाद निम्नलिखित चरण अर्द्धाली पूरी करने के लिए बढ़ा लिया गया :—

शोभित भृकुटि भामिनि सोरु ।

३. कवि० ३ : अ० परिवार की भाँति इसमें भी चरण २ तथा ३ परस्पर स्थानान्तरित थे, जिसके कारण अन्त्य-वैषम्य था, फ० में मूल के चरण ३ तथा ४ के अन्त के शब्दों को बदल कर इसे ठीक कर लिया गया ।

३. कवि० ४ : अ० परिवार की भाँति इसमें भी चरण ४ नहीं था, उसके स्थान पर इसमें निम्न लिखित नया चरण गढ़ लिया गया :—

^१ दे० श्री शिवदत्त शर्मा : 'मन्त्री कर्मचन्द', नागरी प्रचारिणी पत्रिका, १९८१ पृ० २९५ ।

^२ दे० श्री नरोत्तमदास स्वामी : 'पृथ्वीराज रासो', राजस्थान भारती, वर्ष २, अंक-१, पृ० ६ ।

तू करिष्य शिष्यहि करै जू प्रीतम दाउन ।

३. कवि० ७ : अ० परिवार की भाँति इसमें भी चरण ४ का अधिकांश नहीं था। उसके स्थान पर इसमें निम्नलिखित चरण गढ़ लिया गया :—

बंस मध्य वरु वीस भरिह संग्राम अरोचन ।

४. कवि० २ : अ० परिवार की भाँति इसमें भी चरण १ नहीं था, उसके स्थान पर इसमें यथा चरण २ निम्नलिखित नया चरण गढ़ लिया गया :—

पुकारइ पम्मार झइत सब जगही जानै ।

४ कवि० ७ : अ० परिवार की भाँति इसमें भी चरण ६ नहीं था, उसके स्थान पर यथा चरण ५ निम्नलिखित नया चरण गढ़ लिया गया :—

सावंत सकल सूरति मिलति इह स बात दढाँह करी ।

४. कवि० ९ : अ० परिवार की भाँति इसमें भी चरण ५ तथा ६ की शब्दावली छूटी हुई थी जो एक चरण की शब्दावली के लगभग थी, इस त्रुटि को ठीक करने के लिए इसमें निम्नलिखित नया चरण गढ़ कर यथा चरण ६ रख लिया गया —

सुलतान राउ प्रथीराज तनु लिषगि जेन प्रौढारहह ।

५. नारा० १ : अ० परिवार की भाँति इसमें भी चरण ४ नहीं था; इसकी पूर्ति निम्नलिखित नवनिर्मित चरण ४ से कर ली गई :—

त्रलोक लोक संहरं सुता सुपाद संमत्री ।

५. दो० ११ : अ० परिवार की भाँति इसमें भी चरण २ नहीं था, जिसकी पूर्ति निम्नलिखित नवकल्पित चरण से कर ली गई :—

इच्छन इच्छइ नन भूरि ता भीम नृप मानु ।

९. कवि० ३ : अ० परिवार की भाँति इसमें भी चरण १ नहीं था; इसकी पूर्ति यथा चरण ३ निम्नलिखित नवनिर्मित चरण बढ़ा कर कर ली गई :—^१

इच्छन इच्छा इष्वनन भूरि ता भीम नृप मानु ।

१३ दो० १७ : अ० परिवार की भाँति इसमें भी चरण १ की शब्दावली छूटी हुई थी, उसकी पूर्ति निम्नलिखित नवकल्पित चरण २ जोड़ कर कर ली गई :—

पृथ्वीराज चहुवान कौ तौ जिनु अपै मोहि ।

ये सभी प्रक्षेप अ० परिवार के ६० सख्यक प्रति के प्रक्षेपों से भिन्न हैं, इसलिए दोनों का प्रक्षेप-सम्बन्ध नहीं है ।

इस प्रकार के प्रक्षेपों के अतिरिक्त इसमें लगभग ९० रूपक और मिलते हैं, जो परिवार अ० की किसी प्रति में नहीं मिलते हैं; लगभग ये सभी छन्द आगे उल्लिखित ना० तथा स० में मिल जाते हैं, और फ० में उसकी अपनी क्रम सख्याओं के बाहर पड़ते हैं। इसलिए यह प्रकट है कि ये छन्द फ० में बाद में मिलाए गए, और प्रक्षेप अथवा पाठ मिश्रण के द्वारा उसमें आए ।

इन दृष्टियों से देखने पर फ० प्रति अ० परिवार की प्रतियों के होते हुए महत्वहीन और भ्रामक प्रमाणित होती है, और इसलिए यह अ० परिवार की प्रतियों का स्थान नहीं ग्रहण कर सकती है। फिर भी इसमें अनेक ऐसे स्थल हैं जो अत्रुटित हैं और अ० परिवार की प्रतियों में त्रुटिपूर्ण अथवा प्रक्षिप्त हैं :—

२. भुजं० १, चरण १५

२. उधोर ८, चरण २८-२९

^१ यह द्रष्टव्य है कि उद्धृत ५. दो० ११ की त्रुटि-पूर्ति भी इसी नवकल्पित चरण द्वारा की गई है ।

३. दो० ३, चरण २ •
३. दो० ५, चरण १ के कुछ शब्द
६. पद्य० २, चरण ७-१०
९. कवि० ३, चरण १
१२. दो० १२ के पूर्व का कवित्त, चरण १, २ के कुछ शब्द
१५. कवि० ८, चरण १, ४
१५. कवि० १६, चरण १, २ •
१६. कवि० १६, चरण २
१७. कवि० ४ के बाद की विज्जुमाला, चरण ७, ८
१७. कवि० १५, चरण ४
१७. त्रोटक ५, चरण १४, १५
१८. कवि० २, चरण ३, ४
१८. दो० ११ के कुछ शब्द
१९. दो० १४, चरण २

इन पूर्ण पाठों के सम्बन्ध में जो कि प्रक्षिप्त नहीं है—क्योंकि अन्य शाखाओं की प्रतियों में भी मिलते हैं—दो बातें सम्भव हो सकती हैं : एक तो यह कि फ० उस समय की प्रतिलिपि है जबकि इसका और अ० परिवार का पूर्वज आदर्श और इतना त्रुटित नहीं था जितना अ० परिवार की प्रतियों की प्रतिलिपि के समय हो गया : दूसरा यह कि फ० में किसी अन्य शाखा के पाठ की सहायता से त्रुटियाँ दूर कर दी गईं । किन्तु अब भी फ० में ऐसे बहुतेरे स्थल हैं जहाँ पर पाठ उसी प्रकार त्रुटित है जिस प्रकार अ० परिवार की प्रतियों में है; अतः यदि पाठ त्रुटियों को दूर करने के लिए किसी अन्य शाखा की प्रति या प्रतियों का सहारा लिया गया होता तो इस पिछले प्रकार की त्रुटियाँ भी अधिकतर दूर हो गई होतीं, जैसा कि नहीं हुआ है । इसलिए यही सम्भावना अधिक प्रतीत होती है कि इसकी प्रतिलिपि अ० परिवार की प्रतियों के कुछ पूर्व हुई थी जब इन सबका सामान्य मूलादर्श क्षत-विक्षत होते हुये भी इतना क्षत-विक्षत नहीं हुआ था जितना अ० परिवार की प्रतियों की प्रतिलिपि के समय हो गया था । अतः अ० परिवार की प्रतियों के होते हुए भी इस प्रति का महत्व है, विशेष रूप से उन स्थलों पर अपनी शाखा का पाठ-निर्धारित करने के लिए जो अ० परिवार की प्रतियों में त्रुटित अथवा प्रक्षिप्त हैं ।

इसका आकार लगभग १२" × ७" २५" तथा इसकी पुष्पिका निम्नलिखित है :—

“सं० १७२८ मार्गसिरु सुदि १ बूधवासरे फतेपुरा मध्ये लिखत अमरा आत्मार्ये ।”

यह महत्वपूर्ण प्रति श्री अगरचन्द नाहटा के संग्रह की है और उन्हीं से मुझको प्रस्तुत कार्य के लिए प्राप्त हुई थी, जिसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ ।

(५) म० : यह भाडारकर आरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट की १४५५ (१८८१-९५) संख्याक प्रति है । इसका पत्रा २ से ४२ तक का अंश खण्डित है । इसका पाठ खण्डों में विभाजित है । छन्दों की क्रम-संख्या कुछ दूर तक छन्द-भेद के अनुसार प्रायः उसी प्रकार चलती है जिस प्रकार अ० या फ० में पूरे पाठ में चला है, किन्तु तदनंतर वह एक सम्मिलित संख्या के रूप में चलने लगती है, जैसे वह ना० या स० में चली है, जिनका उल्लेख आगे होगा ।

खण्डों के नामों में भी इसी प्रकार की अनेकरूपता परिलक्षित होती है । प्रथम खण्ड को ‘अव्याय’ कहा गया है, दूसरे को प्रारम्भ में ‘पर्व’ किन्तु अन्त में ‘खण्ड’ कहा गया है । इसके बाद एक अंश आता है जिसके न प्रारम्भ में कोई शीर्षक दिया गया है और न अन्त में कोई पुष्पिका ही दी गई है । अ० सं० फ० में यह अंश दूसरे ही खण्ड में सम्मिलित है जबकि ना० तथा स० में यह अंश स्वतन्त्र है

और तीन भिन्न-भिन्न खण्डों में बँटा हुआ है। इस दृष्टि से देखने पर यह अंश अ० और फ० के साथ सादृश्य रखता हुआ प्रतीत होता है, और उपर्युक्त दूसरे खण्ड का परिशिष्ट-सा लगता है। इसके अनन्तर जो खण्ड आता है उसके प्रारम्भ में कोई शीर्षक नहीं दिया हुआ है और वह पन्नो के निकल जाने से खण्डित है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि इसे क्या कहा गया था। इस खण्ड के प्रारम्भ के दो रूपको तक क्रम-संख्या छन्द-भेद के अनुसार मिलती है किन्तु तदनन्तर पद्धति बदल जाती है और प्रति के अन्त तक वह एक सम्मिलित क्रम-संख्या के रूप में चलती है। इस खण्डित अंश के बाद दो खण्ड आते हैं जिन्हें 'प्रस्ताव' कहा गया है, दो खण्ड आते हैं जिन्हें पर्व-खण्डादि कुछ नहीं कहा गया है, एक खण्ड आता है, जिसे 'खण्ड' कहा गया है, तीन खण्ड आते हैं जिन्हें पर्व-खण्डादि कुछ नहीं कहा गया है और एक खण्ड आता है जिसे 'प्रस्ताव' कहा गया है और यही प्रति का अन्तिम खण्ड है। 'अध्याय', 'पर्व', 'खण्ड' और 'प्रस्ताव'—चार भिन्न-भिन्न नामों के आधार क्या है, यह स्पष्ट नहीं होता है। इस प्रकार के अध्याय, पर्व, खण्ड और प्रस्ताव कुल मिलाकर इस प्रति में १० होते हैं। इस प्रति का आकार लगभग ८'१" × ४'५" तथा इसकी प्रति की पुष्पिका इस प्रकार है :—

“संवत् १८०५ वर्षे मागसिर सुदि ११ तिथौ शनिवासरे ग्राम मथाणीया लिषतं पं० उदैराज।”

इस प्रति में कन्नौज-युद्ध के अनन्तर पृथ्वीराज के दिल्ली-आगमन तथा उसकी केलि-विलास तक की कथा आती है। इतने अंश में यद्यपि यह खण्ड-विभाजन और कथा-क्रम में प्रायः अ० और फ० के साथ सादृश्य रखती है, किन्तु इसमें 'हासी प्रथम युद्ध' तथा 'हासी द्वितीय युद्ध' नाम के दो खण्ड ऐसे हैं जो अ० और फ० में नहीं हैं, ना० और स० में हैं और शेष खण्डों में भी अनेक छन्द अ० और फ० की तुलना में अधिक हैं, जो प्रायः संपूर्ण रूप से केवल स० परिवार की प्रतियों में मिलते हैं, ना० परिवार की प्रतियों में नहीं। फलतः जबकि अ० में कथा के इस अंश में कुल ६८३ रूपक हैं, इसमें प्रति के प्राप्त १८५ पन्नो में ही लगभग १८५० रूपक हैं, और यदि खण्डित २२ पन्नो में उसी अनुपात से २२० रूपक के लगभग मान लिये जावे तो इस प्रति की कुल रूपक-संख्या २०७० के लगभग पहुँचती है। फलतः इस प्रति के पाठ का आकार अ० की तुलना में लगभग तिगुना है।

यह प्रति इस प्रकार अपने ढंग की अकेली है। ऐसा लगता है कि इसका कोई पूर्वज प्रायः उसी आकार-प्रकार का था जिस आकार-प्रकार का अ० का था, किन्तु पीछे उसमें इतनी पाठ-वृद्धि की गई कि छन्दों की क्रम-संख्या देने में कुछ दूर तक, गलत-सही, पूर्ववर्ती विधि का निर्वाह करने के बाद यह असंभव दिखाई पड़ा कि और आगे भी उसको चलाया जा सके, इसलिए उक्त दूसरी पद्धति को अपना लिया गया। इस प्रक्रिया के अवशेष म० के खण्ड १० तथा ११ में अभी तक सुरक्षित हैं। खण्ड १० में १४२ तक छन्द-संख्या लिखी जाकर पुनः १२५ से प्रारम्भ हुई है और ११ में ९८ तक छन्द-संख्या पहुँचकर ९० से और पुनः ९७ तक पहुँच कर ९२ से प्रारम्भ हो गई है।

इस प्रति में खण्ड १ में ही निम्नलिखित छन्द-लक्षण आते हैं :—

- अ० १. नारा० ६ के बाद : पढमो बारह मत्ते लीयां अठारह साहिणा अठो ।
जहाँ पढमं तहाँ तीयौ दह पंचमि भूमीयं गाहा ॥ १॥
- : जां पढम ताय पंचम सत्तम असेस होइ गुरुद्वग ।
गुब्बिणी विण पईणा गाहा दोस पदासई ॥ २॥
- अ० १. दो० ४ के बाद : सगुणा जिह च्यान पडंत परी ।
ठचि सोलहमत्त विसामु करी ।
सुणि प्यंगलिणा जहि वीर इयं ।

दे० आगे 'म० के क्रम-संख्या के बाहर के छन्द' उपशीर्षक 'रचना का मूल रूप' शीर्षक के अन्तर्गत।

अ० १. दो० ५ के बाद

यह तोडय जाणहु पायडियं ॥
पयोहर च्यारि पसठिय तांम ।
ति सोलह मत्तह मुत्तीयदाम ।
णपुथह हारु भरे हय अंत ।
ति अठह अगल छप्पण मंत ॥

अ० १. दो० २२ के पूर्व :

पढ पंदह हरणं अहसह हणं फुनि वसु हरणं षट् हरणं ।
अंते गुर मोहै सतहुवन मोहै सिठि सरोहै परतोहै ।
जे परय मनोहर हरई मनोहर सा सकरं ।

ये छन्द 'प्राकृत पैगल' में क्रमशः १.५४, १.६५, २.१२९, २.१३३ तथा १.१९४ हैं। किन्तु 'प्राकृत पैगल' में इन लक्षण के छन्दों के साथ 'पृथ्वीराज रासो' का एक भी छन्द उदाहरण में नहीं दिया गया है, इसलिए 'रासो' के इस पाठ में ये छन्द 'प्राकृत पैगल' से आए होंगे और इस पाठ को अन्तिम रूप 'प्राकृत पैगल' के बाद मिला होगा।

यह मूल्यवान् प्रति मुझको इन्स्टीट्यूट से ही प्राप्त हुई थी, जिसके लिए मैं उसका अत्यन्त आभारी हूँ।

(६) ना० : यह प्रति श्री अगरचन्द नाहटा के संग्रह में है, जिसकी एक प्रतिलिपि हिन्दी साहित्य सम्मेलन संग्रहालय, प्रयाग के लिए उन्होंने करा दी थी। मूल प्रति के लिए मैंने नाहटाजी को लिखा था, किन्तु उसकी जीर्णवस्था के कारण उन्होंने भेजने में असमर्थता सूचित की। अतः इसकी उक्त प्रतिलिपि का ही उपयोग किया जा सका है।

इस प्रति का पाठ भी खण्डों में विभाजित है—कुल ४६ खण्डों में रचना समाप्त हुई है। यह प्रति आदि से अन्त तक पूर्ण है। कुल मिलाकर इसमें ३३९७ रूपक हैं।

इसके पाठ में दो बातें ऐसी हैं जिनसे शत होता है कि इसके पूर्व की किसी पीढ़ी में न खण्ड-संख्या इतनी थी और न छंद-संख्या ही और दोनों में वृद्धि हुई है। खण्डों के वर्तमान पाठ में भी कुछ खण्डों की पुष्पिकाओं में उनकी पुरानी क्रम-संख्या पड़ी रह गई है जो उनकी वर्तमान स्थिति से बहुत पिछड़ी हुई है, यथा:—

पुष्पिका में दी हुई खण्ड-संख्या	वर्तमान पाठ में खण्ड-स्थिति
पृथ्वीराज वंशावलि राजाजन्म कथा : ३	२
मुगलपराजय पृथ्वीराज विजय : ७	८
कान्हपाटी बन्धन कथा : ८	१०
दिल्ली राज्याभिषेक चामण्ड राय हस्तेन पतिसाह ग्रहण : ९	१२
कनवज गमन जयचन्द द्वारे संप्राप्तो : २१	३१

इस सूची में से प्रथम ही ऐसा खण्ड है जो पुष्पिका के अनुसार वर्तमान स्थिति से आगे बढ़ा हुआ लगता है, शेष सभी वर्तमान स्थिति से पिछड़े हुए हैं। किन्तु प्रथम भी वर्तमान स्थिति में कदाचित् इसलिए तृतीय से द्वितीय हो गया है कि पहले वंशावली के सम्बन्ध का जो द्वितीय खण्ड था, वह वर्तमान पाठ में प्रथम के साथ मिला दिया गया, जैसा प्रथम खण्ड की पुष्पिका की वर्तमान शब्दावली "आदि प्रबन्ध मंगलाचरण वंशावलि वर्णन" से प्रकट है। पूर्ववर्ती ७, ८, ९ क्रमशः वर्तमान ८, १०, १२ हैं। अतः इनके बीच में वर्तमान खण्ड ९ तथा ११ पीछे किसी समय मिलाये गए, यह प्रकट है। छन्द-संख्या के बारे में भी यही बात दिखाई पड़ती है : बीच-बीच में अनेक छन्द ऐसे मिलते हैं जो दी हुई क्रम-संख्या के बाहर पड़ते हैं। वर्तमान खण्ड ३१ में तो १४ तक रूपक-संख्या एक बार चल लेने के बाद पुनः १ से प्रारम्भ होकर ६४ तक चलती है।

इस प्रति की पुष्पिका निम्नलिखित है :—

“संवत् १७९२ वर्ष मार्ग शीर्ष मासे शुक्ल...श्री तोलीयासर ग्रामे वाचक श्री पुन्योदय जी गणि शिष्य...श्रीरस्तु ॥ शुभम्”

इस प्रति का आकार १३.७५" × ९.५" है।

इस पाठ की और भी कुछ प्रतियाँ मिलती हैं, और एकाध कुछ पहले की भी हैं, किन्तु वे खण्डित हैं। यह प्रति पूर्ण और अत्यन्त सुरक्षित है। इस महत्वपूर्ण प्रति का उपयोग मैं सम्मेलन के अधिकारियों की कृपा से कर सका, इसलिए उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

(७) द० : यह रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन के टॉड संग्रह की ८२ संख्यक प्रति है। यह रचना की प्राचीनतम प्राप्त प्रतियों में से है और सं० १६९२ की है। इसमें कुल ३६ खण्ड हैं। यह ‘वान वेध खण्ड’ के पूर्व ही समाप्त हो गई है। इसके अतिरिक्त चौथे ‘नाहर राय कथा’ खण्ड के छन्द ५-१२, सत्ताईसवें ‘शुक वाक्य खण्ड’ के दो पत्रे (छन्द ५-४८) तथा छत्तीसवें ‘पृथ्वीराज ग्रहण खण्ड’ का एक पत्रा (छन्द ४-१९) त्रुटित है, और सातवाँ खण्ड ‘देवगिरि युद्ध’ अपूर्ण छूटा हुआ है : केवल ९ रूपक उसके उतारे गए हैं। टॉड संग्रह की ६० तथा १५७ संख्यक प्रतियाँ भी मूलतः इसी परिवार की हैं, किन्तु उनमें ‘शुकवाक्य’ तथा ‘देवगिरि’ खण्ड नहीं हैं। इसलिए उपर्युक्त त्रुटित अंशों में से शेष तीन के सम्बन्ध में ही उनका सहारा लिया जा सकता है। नागरी प्रचारिणी सभा के संस्करण तथा उस संस्करण के पाठ वाली प्रतियों में ‘देवगिरि समय’ में द० के ९ रूपकों के बाद ४१ रूपक आते हैं और ‘वानवेध खण्ड’ में टॉड संग्रह की ६० संख्यक प्रति में २८६ रूपक हैं। द० के प्राप्त रूपकों में इतने और रूपक जोड़ने पर उसकी कुल रूपक-संख्या लगभग ३४७० होती है।

द० का आकार १३ ८" × ९.५" है। इसकी पुष्पिका इस प्रकार है :—

“संवत् १६९२ वर्ष चैत्र मासे शुक्ल पक्षे २ द्वितीया रविवारे लिखितं।”

इसके अनंतर कुछ और लिखा हुआ है जिस पर इस समय कुछ पोता हुआ है और इसलिए वह अपाठ्य हो गया है। उसके बाद आता है :—

“संवत् १९२६ वर्ष कानी सुद ५ सो यै पोथी दसोरा कृपाराम सीताराम कनै थी मोल लीधु रुपीया २५ आकरा दीघा पोथी वणारणजी श्री रूपचन्द जी...जो री उदैपुर मध्ये लीधी।”

इस पाठ में भी बाद में की हुई पाठ-वृद्धि के लक्षण स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं : ‘रितु वर्णन’ नामक ३४ वें खण्ड के प्रथम पाँच रूपकों के बाद ५१ रूपकों का ‘शुकचरित्र’ रख दिया जाता है, और तदनंतर पुनः ‘रितु वर्णन’ खण्ड के रूपकों की क्रम-संख्या ५ से प्रारम्भ होकर १४० तक चलती है।

इस महत्वपूर्ण प्रति का माइक्रोफिल्म इलाहाबाद यूनिवर्सिटी पुस्तकालय से मुझे प्राप्त हुआ था, जिसके लिए मैं पुस्तकालय के अधिकारियों का अत्यन्त आभारी हूँ।

टॉड संग्रह में इस परिवार की और भी कुछ प्रतियाँ हैं, किन्तु वे प्रायः खण्डित हैं; ऊपर जिस अन्य प्रति का उल्लेख किया गया है, उसका भी आदर्श कीटादि से बहुत क्षत-विक्षत हो गया था जिसके कारण प्रतिलिपिकार को स्थान-स्थान पर त्रुटित पाठ को छोड़ना पड़ा है। अतः इस प्रति का महत्व अपने परिवार का प्रतियों में सबसे अधिक है।

(८) शा० : यह प्रति नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के पुस्तकालय में है। यह दो मोटी जिल्दों में है। यह प्रति रचना के सबसे बड़े पाठ की सब से प्राचीन प्रति है। इसमें खण्डों की संख्या तथा रूपक-संख्या प्रायः वही है जो सभा के संस्करण की है, केवल ‘महोबा खण्ड’ इसमें नहीं है। इसमें कुल रूपक-संख्या अन्त में १०७०९ दी हुई है।—

इसका आकार १२" × १०" के लगभग है, और इसकी पुष्पिका इस प्रकार है :—

“रासारो पोथी रा रूपक संख्या १०७०९ बत्तीम अक्षर मोलने इलोक ग्रन्थ जेन्तो छे। ८ पोथी

श्री दीवानजी रै थी उतरी छे । लिषतं गणि ज्ञान विजयै । श्री बड़ा तलाब मध्ये लिषतं । सव...४७वर्षे आश्विन मासे ।”

‘४७’ के पूर्व के अङ्क तथा अक्षर पूर्ववर्ती पत्रे के यहाँ पर चिपक जाने के कारण मिट गए हैं।

इस प्रति की एक आधुनिक प्रतिलिपि, जो मशीन के कागज पर की हुई है, सौभाग्य से उस समय की की हुई मिल गई है जब यह विकृति नहीं हुई थी। यह प्रति रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, बम्बई में है और उसकी बी. डी. २७४ है। इसके कुछ खण्डों के अन्त या प्रारम्भ में निम्नलिखित शब्दावली आती है, जो आदर्श की है —

खण्ड २ अन्त : “महामहोपाध्याय श्री १०६ श्रीअमर विजय गणि । शिष्य चेला गणि ज्ञान विजय लिषतं आत्मार्थे श्री उदयपुर मध्ये सं० १७४७ रा भाद्रवा सुदि २ दिने ।”

खण्ड ३ अन्त : “लिषतं गणि ज्ञान विजयै आत्मार्थे ।”

खण्ड ४ अन्त : “गणि ज्ञान विजय लिषतं ।”

खण्ड ७ अन्त : “संवत् १७४७ वर्षे सकल वाचक शिरोमणि महामहोपाध्याय श्री अमर विजय गणि । तत् शिष्य ज्ञान विजय गणि लिषतं आत्मार्थे । सकल मासोत्तम भाद्रमासे ।”

खण्ड २१ प्रारम्भ : “अथ सकल वाचक शिरोमणि महामहोपाध्याय श्री ५ श्री अमर विजय गणि गुरुभ्यो नमः ।

खण्ड २१ अन्त : गणि गिनान विजय लिषतं श्री उदयपुरे ।

खण्ड २२ अन्त : संवत् १७४७ वर्षे आसू सुदि १० दिने ।

इधर बहुत दिनों से यह विवाद रहा है कि सभा की प्रतिसं० १६४७ की है या १७४७ की। इस प्रतिलिपि से यह प्रवाद समाप्त हो जाता है।

खेद है कि सभा के अधिकारियों से सभा को प्रति न प्राप्त हो सकी, अतः इस प्रतिलिपि का ही उपयोग प्रस्तुत कार्य के लिए करना पड़ा है। इस प्रतिलिपि के लिए मैं रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, बम्बई के अधिकारियों का अत्यन्त आभारी हूँ।

(९) उ० : यह प्रति पहले आगरा कालेज में थी और अब भारतीय सरकार की नेशनल गैलरी ऑफ् मॉडर्न आर्ट में है। यह रचना के सबसे बड़े पाठ की एक अत्यन्त सुरक्षित और मूल्यवान् प्रति है। यह चार जिल्दों में है और १६०० पृष्ठों में समाप्त हुई है। यह प्रति आगरा कालेज को १८६१ में उदयपुर के महाराजा ने भेंट की थी, यह उक्त प्रति के मुखपृष्ठ पर उस समय के प्रिंसिपल श्री पियर्सन द्वारा सितम्बर २, १८६१ की तिथि देते हुए लिखा हुआ है।

इसमें खण्डों या प्रस्तावों का क्रम और उनकी संख्या वही है जो उपर्युक्त शा० अथवा नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित संस्करण में है, केवल ‘महोबा समय’ इसमें भी नहीं है और कुछ खण्ड सभा के संस्करण को तुलना में इसमें कुछ आगे-पीछे मिलते हैं। प्रस्तुत संस्करण में सुविधा के लिए उनकी क्रम-संख्या वही दी गई है जो सभा के संस्करण में है।

प्रति का आकार लगभग १२"×१०" है। इतनी बड़ी प्रति एक ही व्यक्ति की लिखी है, केवल अन्त के दो पत्रे अन्य व्यक्ति के लिखे हैं। सम्भावना यह प्रतीत होती है कि पूर्ववर्ती पत्रों के जोर्ण होकर निकल जाने के बाद वे फिरसे जोर्ण पत्रों से ही उतारकर लगाए गए हों। वर्तमान अन्तिम पत्रपर पुष्पिका के नाम पर केवल इतना है :—

“ह० गौकुललाल पुरोहित ॥”

कुछ खण्डों की पुष्पिकाएँ दूरी हुई हैं, किन्तु प्रतिलिपि-सम्बन्धी कोई उल्लेख कहीं नहीं है। ‘राजा रयन सी समय’ और ‘विवाह समय के’ बीच ‘विज्ञप्ति’ शीर्षक के साथ निम्नलिखित छन्द अवश्य आते हैं, जो सभा के संस्करण में नहीं हैं :—

मिलि पंकज ग (गुन ?) उदधि करद कागद कातरणी ।
 कोटी कवीका जलद कमल कटि कते करनी ।
 इहि तिथि संख्या गुनित कहे कका कवि यानै ।
 इह श्रम लेपन (लेपन) हार भेद भेदै सो जानै ।
 इन कष्ट ग्रंथ पूरन करय मन बझा दुख ना लहय ।
 पालियै जतन पुस्तक पवित्र लिखि लेखक विनती करय ॥१॥
 गुन मनियन रस पौड चंद कवियन करि दिह्यीय ।
 छन्द गुनि ते तुटि मंद कवि भिन भिन किह्यीय ।
 देस देस बिषरिय मेल गुन पार न पावय ।
 उद्दिम करी मेलवत आश्विन आलय आवय ।
 चित्रकोट रांन अमरस नृप हित श्री मुख आयस दयौ ।
 गुन विन कहना उदधि लिखि रासो उद्दिम कीयो ॥२॥
 लघु दीरघ ओछो अविक जो कछु अन्तर होय ।
 सो कवियन मुख सुद्ध ते कहो आप बुद्धि सोइ ॥

॥ इति विज्ञप्ति ॥

विशति के ये छन्द आदर्श के शात होते हैं; इनमे राणा अमरसिंह के आदेश से चन्द के बिखरे हुए छन्दों को इकठा कर उसके पाठ के पुर्ननिर्माण का उल्लेख हुआ है। राणा अमरसिंह का राज्यकाल सं० १६५३ से १६७६ तक है। छन्दों का पाठ कुछ विकृत हो जाने के कारण ठीक तिथि नहीं शात हो रही है; वह सम्भवतः १६७३ है जो 'गुन' 'उदधि' के उलट कर पढ़ने से बनती है। किन्तु इतना तो स्पष्ट ही है कि किन्हीं कका कवि ने उक्त राणा के आदेश से वह आदर्श विभिन्न प्रतियों की सहायता से बनाया जिससे यह प्रति या इसकी कोई पूर्वज प्रति उत्तारी गई। अन्य साक्ष्यों के अभाव में इसे २ सितम्बर, १८६१ (= सं० १९१८) के कुछ पूर्व की प्रतिलिपि मानना चाहिए।

यह महत्वपूर्ण प्रति मुझे भारतीय सरकार की नेशनल गैलरी आव् मॉडर्न आर्ट, नई दिल्ली के क्यूरेटर, श्री मुकुल डेसे प्राप्त हुई थी, इसलिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ। इसे मेरे उपयोग के लिए प्रयाग विश्वविद्यालय के भूतपूर्व वाइस चांसलर श्री भैरवनाथ झा ने मंगा दिया था, इसलिए मैं उनका भी आभार मानता हूँ।

पिछली शा० तथा यह लगभग एक ही पाठ देती हैं, इसलिए रचना के पूर्वार्द्ध के पाठ के लिए एक तथा उत्तरार्द्ध के पाठ के लिए दूसरी का उपयोग कर लिया गया है।

(१०) स० : यह नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा कई जिल्लों में प्रकाशित रचना का प्रसिद्ध संस्करण है, जो श्री मोहनलाल विष्णुलाल पाडूया द्वारा संपादित होकर कई वर्षों में १९१० ई० तक प्रकाशित हुआ था। इसका आकार वही है जो शा० का है, जा इस संस्करण का मुख्याधार है। शा० परिवार की कुछ अन्य प्रतियों का भी उपयोग इसके संपादन में किया गया है। इसमें 'महोबा समय' भी अन्त में जोड़ दिया गया है, जो इस पाठ की भी प्रति में नहीं मिलता है, केवल अलग स्वतन्त्र खण्ड के रूप में मिलता है। यह संस्करण सावधानी से तैयार किया गया है, और मुद्रण की भूलों के अतिरिक्त शा० परिवार के पाठ को प्रायः ठीक-ठीक प्रस्तुत करता है। अब यह संस्करण दुर्लभ हो गया है। इसकी प्रति मुझे प्रयाग विश्वविद्यालय पुस्तकालय से प्राप्त हुई थी, जिसके लिए मैं उसके अधिकारियों का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

२. पृथ्वीराज रासो के मूल रूप के निकटतम प्राप्त पाठ

ऊपर जिन प्रतियों का परिचय दिया गया है, उनमें रूपक-संख्या, हमने देखा है, निम्नलिखित है:—

(१) धा० : ४२२, (२) मो० : ५५२, (३) अ० : १११०, (४) फ० : १२००, (५) म० [अ० परिवार के ६८३ रूपकों के स्थान पर] : २०७०, (६) ना० : ३३९७, (७) द० : ३४७०, (८) ज्ञा० : १०७०९, (९) उ० : यथा ज्ञा०, (१०) स० : यथा ज्ञा० । साथ ही यह भी हम देखते हैं कि धा० के प्रायः सभी छन्द मो० में, मो० के लगभग सभी छन्द अ० में, अ० के सभी छन्द फ० में, फ० के लगभग सभी छन्द म० में, म० के अधिकतर छन्द ना० में किन्तु प्रायः सभी छन्द ज्ञा० उ० स० में, ना० के अधिकतर छन्द ज्ञा० उ० स० में, और द० के सभी छन्द ज्ञा० उ० स० में पाये जाते हैं।^१ अतः पहला प्रश्न यह उठता है कि इस पूरी पाठ-परम्परा में क्या निरन्तर पाठ-वृद्धि होती रही है, और आकार की दृष्टि से मूल या उसके सब से अधिक निकट पाठ धा० का रहा होगा, अथवा मूल या उसके सब से अधिक निकट पाठ ज्ञा० उ० स० का पाठ रहा होगा और उत्तरोत्तर संक्षेप होते-होते उस का आकार धा० का हुआ होगा; अथवा मूल पाठ की स्थिति बीच में कहीं पड़नी चाहिए और एक ओर जहाँ उसमें उत्तरोत्तर पाठ-वृद्धि हुई, दूसरी ओर उसका उत्तरोत्तर संक्षेप भी हुआ। ये विकल्प विचारणीय हैं। इन विकल्पों पर विचार कर लेने के पश्चात् ही यह निश्चय किया जा सकेगा कि रचना के मूल पाठ का आकार क्या था। रचनाओं में पाठ-वृद्धि होना ही सामान्यतः देखा जाता है, संक्षेप-क्रिया अपवाद के रूप में ही मिल सकती है, इसलिए धा० को आधार मान कर पहले हमें यह देखना चाहिए कि अधिकाधिक छन्द-संख्या वाली प्रतियों के पाठों में उत्तरोत्तर पाठवृद्धि के प्रमाण मिलते हैं या नहीं; इस विकल्प के लिये सन्तोषजनक प्रमाण न मिलने पर ही अन्य दो विकल्पों के विषय में विचार करना आवश्यक होगा।

उक्ति-शृंखला

यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो यह दिखाई पड़ेगा कि धा० में अनेक स्थलों पर एक रूपक में—प्रायः उसके अन्त में—जो उक्ति आई है उसकी कुछ न कुछ शब्दावली बाद वाले रूपक में—प्रायः उसके प्रारम्भ में—भी है और इस प्रकार एक उक्ति-शृंखला बनी हुई है, यथा निम्नलिखित रूपकों के बीच। जिन प्रतियों में उक्ति-शृंखला बीच में अन्य रूपकों के आने के कारण त्रुटित हुई है, उनका उल्लेख धा० का पाठ देते हुये नीचे दाहिने सिरे पर किया जा रहा है:—

(१) धा० ५१ : जो थिर रहै सु कहहुं किन हूँ पूछ तुम्ह सोइ ।

धा० ५२ : थिर बाले बहलम मिलनु जउ जोवन दिन होइ ।

१ देखिये विभिन्न परिशिष्ट ।

- (२) धा० ६८ : तदित करिग अंगुलि धरह बान भरिग प्रिथिराज ।
धा० ७० : भरिग बान चहुवान जानि दुर देव नाग नर ।
(धा० मा० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स०)
- (३) धा० ७४ : तउ मानउं स्वामिनि सकल जइ तुंसी होइ परतबिख ।
धा० ७५ : भइ परतबिख कवी मनि आइय । (शा० उ० स०)
- (४) धा० ८१ : तिहुं पुर परागवानी अगो आउ राय भायेसु ।
धा० ८२ : आइसु सुनि सुनि अगो गे दियो मानकर अप्पु । (शा० उ० स०)
- (५) धा० ८६ : कैबनाउ कैवास मोहि कै हर सिद्धि वर छडि ।
धा० ८७ : जो छंडइ तपताप करि वर छडै कवि चन्द । (शा० उ० स०)
- (६) धा० १०१ : अतिबल सुं बल ना कह्यौ किम चल्लइ भूआल ।
धा० १०२ : चल्लौ चन्द सस्थह सेवग सुअ ।
- (७) धा० १२१ : अरि नयर नीर उत्तर कहे स ।
धा० १२२ : भुल्लि भट्ट पुव्वहि चलयो कहि उत्तर कनवज्ज ।
(धा० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स०)
- (८) धा० १२९ : कंचन करस झकोलति गगह जलु भरहि ।
धा० १३० : भरंति नीर सुन्दरी । (धा० म० ना० द० शा० उ० स०)
- (९) धा० १४१ : अगम हट्ट पट्टन नयर रतन मोति मनियार ।
धा० १४२ : अमगति हट्टति पट्टन मंझ । (शा० उ० स०)
- (१०) धा० १४२ : जु पुच्छत चन्द गयो दरवार ।
धा० १४६ : पुच्छत चन्द गयो दरवारह ।
(धा० मो० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स०)
- (११) धा० १६१ : एक चहुवान प्रिथिराज टारे ।
धा० १६२ : सुनि निपत्ति रिपु कै सबद तामस नयन सुरत्त । (ना०)
- (१२) धा० १६६ : वरनइ वइ उनिहारि इह ज्यूं चहुवान संउत्त ।
धा० १६७ : इम जंपइ चन्द वरदिया प्रिथिराज उनिहारि इहि ।
- (१३) धा० १७४ : सुमनु भट्ट सस्थह अछै जिह करति त्रिय लाज ।
धा० १७५ : एक कहइ विट्ठिय सुभट इह न सत्थि प्रिथिराज । (म० शा० उ० स०)
- (१४) धा० १८३ : पुफांजली पंग सिर नाइ जयति पिय कामदेव ।
धा० १८४ : पुफांजलि सिर मंडि प्रभु गुरु लग्गी फिरि वाइ ।
- (१५) धा० १८६ : किहु कामिनि मुख (सुख-दोष में) रति समर नृप निय निंद बिसारि ।
धा० १८७ : सुखं सुख म्निदंग तार जयनै रागं कला कोकिलं ।...
ए सह सुख सुखाइ तार सहिता जै राय राज्य गता ॥ (धा० म० शा० उ० स०)
- (१६) धा० १८८ : तरुने प्रान लटापट प्पगयरा जइ राय संप्राप्ति ।
धा० १८९ : प्राति राड संपरपतिग जह दर देव अनूप । (म० शा० उ० स०)
- (१७) धा० १९१ : द्रव्य दरिस बहु संग लिपु भट्ट समप्पन जाइ ।
धा० १९२ : गयो राज मिल्लान चन्द वरदिहह समप्पन । (म० शा० उ० स०)
- (१८) धा० १९२ : पान देहि दिदु हत्थ गहि ।
धा० १९३ : सुनि तमूळ सापट्टि करि वर उठिय डिठि वंक्र । (धा० म० ना० शा० उ० स०)
- (१९) धा० १९३ : सुनित मूळ सापट्टि करि वर उठिय डिठि वंक्र ।

धा० १९५ : भुव वंक्रिय करि पगु नृप अण्णिग हस्थ तंबोल ।

(धा० मो० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स०)

(२०) धा० १९८ : जड मुक्कहि सत सत्थअनु तो कत लीन्हसि सत्थ ।

धा० १९९ : जड मुक्कउँ सत सत्थअनु तो संमरि कुल लाज ।

(२१) धा० २०० : मनु अकाल तिडिय सन्न चल्या तु छुटि प्रवाह ।

धा० २०१ : प्रवासी [प्रवाहे-पाठां०] त तज्जी न लज्जी अहारे ।

(मो० ज० फ० म० ना० द० शा० उ० स०)

(२२) धा० २०२ : जल छंडहि अच्छहि करइ मीन चरित्तनु भुल्ल ।

धा० २०३ : भुल्लयो पुहवि नरिंद त जुद्ध विनुद्ध सह । (म० शा० उ० स०)

(२३) धा० २०३ : भुल्लयो पुहवि नरिंद त जुद्ध विनुद्ध सह ।

धा० २०४ : भुल्लयो रंग सुमीन नृप पंगु चढ्यो हय पुट्टि । (म० ना० शा० उ० स०)

(२४) धा० २०४ : सुनि सुन्दरि वर वज्जने चढी अवासन उट्टि ।

धा० २०५ : दिक्खति सुन्दरि दर वलनि चमकि चढंति अवास ।

(२५) धा० २०५ : नर कि देउ किधु काम हर गंग हसंत अयास ।

धा० २०६ : इक्क कहै दुर देव है इक्क कह इंदु फनिन्द । (म० ना० शा० उ० स०)

(२६) धा० २०६ : इक्क कहै असि कोटि नर इहु प्रिथिराज नरिंद ।

धा० २०७ : सुनि वर सुन्दर उभय हुव स्वेद कंष सुरभंग । (ना० द०)

(२७) धा० २११ : मनो दान दुज अंध समप्पति अंजुलिय ।

धा० २१२ : अपंति अंजुलीय दान जान सोभ लगण । (म० ना० द० शा० उ० स०)

(२८) धा० २१८ : मिलत हस्य (हस्थ-पाठां०) ककम (कंकन-पाठां०) लखिउ कहहिकन्ह यहु काहु ।

धा० २१९ : इह अपुव्व धीरत्त तुहि कंकन हस्थ नरिंद ।

(२९) धा० २३७ : सय रिपु दिव्लियनाथो स एव आला अग्य धुंसनं ।

धा० २३८ : सुनि स्रवननि प्रिथिराज कहु भयो निसानह घाउ ।

(३०) धा० २४२ : [मनुइलंक विग्रह करन चलउ रघुप्पति राउ-पाठां०]

धा० २४४ : [रामइल बंनर सयल] औहि रखखण बहु बंध ।

(धा० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स०)

(३१) धा० २४५ सहु दिक्खइ मयमत्त ।

धा० २४६ : दिक्खयहि मंत मयमत्त मत्ता । (म० ना० द० उ० स०)

(३२) धा० २४६ : जु कहि जु कहि प्रिथिराज गहियो ।

धा० २४७ : गहि गहि कहि सेनान सब चलि हयगय मिलि एक ।

(३३) धा० २४७ : जाणू पावस चुम्बइ (पुव्वइ-पाठां०) अनिल हलि वहल बहु भेक ।

धा० २४८ : हबं गयं नरं भरं उने विये जलदर (जलदरं-पाठां०) ।

(३४) धा० २६३ : [रावत्त कह स रयरष्यनठ] रखत रखहि राव तिह ।

धा० २६४ : तै रखे हिंदुवाण गंजि गोरी गाहंतो । (म० ना० द० शा० उ० स०)

(३५) धा० २६४ : पहु परनि जाहु ठिहलो लगै जु होइ घरे घरु मंगुली (मंगली-पाठां०)

धा० २६५ : सूर मरन मंगली सार (स्यार-पाठां०) मंगली ग्रिह आये । (म० शा० उ० स०)

(३६) धा० २६५ : स्त्रित चह्नि राइ राठौर सउं मरण सनंमुख मंढियइ ।

धा० २६६ : मरन दिजइ प्रिथिराज दसहि छत्रिय करि पयठो ।

(३७) धा० २६९ : इक कियित नयक तठक्क (ठठक्क-पाठां०) परी ।

- धा० २७० : ठठक्की सेन सभि मीर मिड्ले । (धा० म० ना० द० शा० उ० स०)
- (३८) धा० २७० : चंपे चाहि चहुवान हरि सिंघ नायो ।
धा० २७१ : करि लुहोर हर सिंघ नयो चहुवान पहिल्लो । (मो० म० शा० उ० स०)
- (३९) धा० २७६ : निडर निसंक जुझत रन आठ कोस चहुवान गउ ।
धा० २७७ : सम रठोरनि राठवर निडर जुझ गिरि जाम ।
(मो० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स०)
- (४०) धा० २७७ : दिनयर दल्ले प्रिथिराज कूँ चंपिउ पंग सम ताम ।
धा० २७८ : चंपति पिछोरिय गति चखह हय पट्टन तनु देख । (म० शा० उ० स०)
- (४१) धा० २७९ : जब लगि सहु दल रुक्कियो तब सुकन्ह हयवर चढ्यो ।
धा० २८० : चढत कन्ह सामंत हय जय जय कहै सहु देव । (ना० शा० उ० स०)
- (४२) धा० २८२ अ : सिर अघौँ कर स्वामिकै हनौ गयंदन जोढ ।—मो०]
धा० २८३ : सिर तुटै रुंघयो गयंद कढ्यो कटारो । (म० ना० शा० उ० स०)
- (४३) धा० २८३ : तिम थहि सो लोयन गगधर तिमतिम संकर सिर धुन्यो ।
धा० २८४ : धुनि सीस ईस सिर अलहनह धन धन कहि प्रिथिराज । (म० शा० उ० स०)
- (४४) धा० २८७ : सामंत पंच खित्तिहि खपिग मिरत भंति भइ विक्खहर (विपहर-पाठां०) ।
धा० २८८ : विखहर (विपहर-पाठां०) पहट परयं हय गय नर भार सार हथेन ।
(म० शा० उ० स०)
- (४५) धा० २९० : सामंत निघट तेरह परिग नृपति सुपट्टिअ पंच सर ।
धा० २९३ : संझ सपट्टिय नृपति रण दिय पारस परिकोट ।
(धा० मो० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स०)
- (४६) धा० ३०१ : मरन जानि मन मरुझ रिउ गिर लक्खनह वघेल ।
धा० ३०० : जिते समर लक्खन वघेल आहनति खगवर । (म० शा० उ० स०)
- (४७) धा० ३०४ : सामंत सत्त जुझे प्रथम ढिल्लीपति प्रिथिराज भउ ।
धा० ३०५ : ढिल्लीपति ढिल्लीय संपत्तउ ।
(मो० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स०)
- (४८) धा० ३०६ : जस मंडन नरभर सयल महि मंडन महिलानु ।
धा० ३०७ : पहिलहि (महिलहि—पाठां०) मंडन नृपति ग्रिह कनकंति ललनानि । (मो०)
- (४९) धा० ३१३ : गुरुबंधधव (बंधधव-पाठां०) भृति लोइ भई विपरीत गति ।
धा० ३१४ : सकल लोक पुच्छत गुरु इच्छहि ।
(मो० अ० फ० ना० द० शा० उ० स०)
- (५०) धा० ३१९ : मरन छंडि महिला मन मोह्यो ।
धा० ३२० : विहि महिला महिला विसराई ।
- (५१) धा० ३२० : सुनि सुनि समो राजगुरु नाई ।
धा० ३२१ : समउ जानि गुरुराज रहि कहि कहि कवि सहु वत्त ।
- (५२) धा० ३२७ : उभय उभय रिस उप्पज्यो मिलिय चंद गुरुराज ।
धा० ३२८ : मिलिय चंद गुरुराज विराजहि राज दर । (ना० द० शा० उ० स०)
- (५३) धा० ३३२ : कहा पयंपइ नृपति सूँ कहो चंद गुरु भासि ।
धा० ३३३ : कागद अप्पहि राजगुरु मुख जंपइ इहु वत्त ।
- (५४) धा० ३३३ : कागद अप्पहि राजगुरु मुख जंपइ इहु वत्त ।

- धा० ३३४ : अन्य महिल दासी निरखि परखि पर्यपन जोगु । (अ० फ० ना० द० शा० उ० स०)
- (५५) धा० ३४० : स्रवन मंडि कनवजिनी स सुपनंतरि तथ्य ।
धा० ३४१ : सपनंतरि सुंदरिय रभ लग्गी परिरंभह । (मो०)
- (५६) धा० ३४२ : तिहि दिवस देव प्रथिराज वर संझ सुवर भर महल दिय (किय-पाठां०) ।
धा० ३४३ : करि महल मंत मंड्यो छंडहि चामंडराय वर वंदी । (द० शा० उ० स०)
- (५७) धा० ३४६ : जे भर भीर संमुह सहहि ते बत्तीस हजार ।
धा० ३४७ : लज्या धर तिणि धरि गणहि ते पहु पंच हजार ।
- (५८) धा० ३४७ : लज्या धर तिणि धरि गणहि ते पहु पंच हजार ।
धा० ३४८ : पंच हजारह मंहि जुडइ जे अग्या वर स्वामि ।
- (५९) धा० ३४८ : कर वज्जी वज्जह सहइ ते सौ पंच अछामि ।
धा० ३४९ : तिनमंहि सौ जे भयहरण सीलसत्त जमजित्त ।
- (६०) धा० ३४९ : तिनमंहि दसवारण दलण उप्पारहि गयदन्त ।
धा० ३५० : तिनमंहि पंच प्रपंच से लखिय न गति तिन काज ।
- (६१) धा० ३५९ : मिले पुढ पच्छिम हुती चाहुवान सुरताण ।
धा० ३६० : मिले जाइ चहुवान सुरताण खगो । (धा० मो० ना० द० शा० उ० स०)
- (६२) धा० ३६५ : दुह दुज्जी दुज्जी घरी दिन पछर्यो (पलट्यो-पाठां०) चहुवान ।
धा० ३६६ : दिन पलट्यो पलट्यो न मनु भुज वाहे सब शस्त्र ।
- (६३) धा० ३६६ : अरि भिर्यो (भिर्यो-पाठां०) भिट्टे न को लखो जु धाता पत्र ।
धा० ३६७ : विधात्रा लिखत यस्य न तेन सुच्चति मानवा ।
- (६४) धा० ३६९ : तजि पुन मित्र माया सकल गहिय चन्द गज्जनइ रहि ।
धा० ३७० : गहिय चन्द रह गज्जने जह सजन नू नरिंद । (अ० फ० ना० द० शा० उ० स०)
- (६५) धा० ३७५ : भवन भोग रह छंडिकै किम जोगे (जोगी-पाठां०) रह भट ।
धा० ३७६ : बहु संजोगी बहु संजोगी जमन परदार ।
- (६६) धा० ३७७ : छन इक दरहि बिलंबिय मन न करिय कवि मंदु ।
धा० ३७८ : तिहि बिलम्ब कवियन करिग सुरुचि अप्पनिय इच्छ । (शा० उ० स०)
- (६७) धा० ३८१ : कर अनन्य (अन्यन-पाठां०) दीधो असीस ।
धा० ३८२ : दइत असीस न सिर नयो वन अच्छयो फुरमान ।
(धा० अ० फ० ना० द० शा० उ० स०)
- (६८) धा० ३८३ : जिहि बहुत चन्द महिमान कीन ।
धा० ३८४ : करहि चन्द महिमान सब अगर धूप दिव देह ।
(मो० अ० फ० ना० द० शा० उ० स०)
- (६९) धा० ३८५ : झखत चन्द मन मरनसू इम इच्छयो सुविहानु ।
धा० ३८६ : भउ विहान दर वजे ता दव निसान । (शा० उ० स०)
- (७०) धा० ३९१ : [दौरि चंदि संमुह चलै वे बुल्लै सुरतान ।—मो०]
धा० ३९२ : बोख्यो सु चंद हज्जूर गाहि । (मो० ना० द० शा० उ० स०)
- (७१) धा० ३९२ : जोगहि विरुद्ध हम मिलण मत्ति ।
धा० ३९३ : हमहि मिलहि वे चंद सुनि विरहि दलिद्र सलोभ । (ना० द० शा० उ० स०)
- (७२) धा० ३९२ : जोगहि विरुद्ध हम मिलण मत्ति ।
धा० ३९४ : जोग भोग रह रीति सब सब जाणउ सुविहान ।

- (७३) धा० ३९८ : सु [दु] रोग मन रोग भो कढन करुं सु विहान ।
 धा० ३९९ : जू कडूढग कूँ पतिसाह तुही । (शा० उ० स०)
- (७४) धा० ४०० : अंलि हीन बलहीन तउ (भउ-पाठां०) को (का-पाठां०) मगगइ मति नट्ट ।
 धा० ४०१ : अंलि विनट्टी बल घट्यो मति नट्टी सुलतान ।
- (७५) धा० ४०५ : पहिचानि चंद वर धुनिग सीस । सिर नयो नहीं मन भई रीस ।
 धा० ४०७ : रिस धुनि सीसु निषेधु कीय जिय लुभि चंद मुहाल । (ना० द० शा० स० उ०)
- (७६) धा० ४०६ : संभरि नरैस करि रीस सीस धुनहि न धनु सज्जहि ।
 धा० ४०७ : रिस धुनि सीसु निषेधु कीय जिय लुभि चंद मुहाल ।
- (७७) धा० ४१६ : इनौ रिपू धरियार सउ जउ अप्पइ विय वान ।
 धा० ४१७ : इक्क वाण चहुवाण राम रावण उथ्यप्पिय ।
- (७८) धा० ४२० : सुलताण पर्यो खां पुक्करयो त दिन चंद राजन मरण ।
 [धा० ४२२ : मरन चंद वरदिया राज पुनि सुनिग साह हनि ।—मो०] ।

(धा० अ० फ० ना० द० शा० उ० स०)

उपर्युक्त को देखने से ज्ञात होगा कि उक्ति-शृंखला के ७८ स्थलो मे से ५४ स्थलों पर विभिन्न प्रतियों मे ऐसे अंश आते हैं जो उस शृंखला को त्रुटित करते हैं, और अलग-अलग प्रतियों मे इस शृंखला-त्रुटि की संख्या है : धा० : १३, मो० : १५, अ० फ० : १५, म० : २९,^१ ना० : ३३, द० : २७, शा० उ० स० : ४९ । शृंखला-त्रुटि उपस्थित करने वाले छन्द इन समस्त प्रतियों मे अन्यथा भी सदोष है और प्रसङ्ग मे अनावश्यक हैं, यह स्वतः देखा जा सकता है ।^२

उपर्युक्त विश्लेषण से तीन बातें ज्ञात होती हैं :—

[१] धा०, मो० तथा अ० फ० मे उक्ति-शृंखला प्रायः सब से कम स्थलों पर त्रुटित है, ना० और द० में उसके प्रायः दूने स्थलो पर त्रुटित है, म० मे तिगुने और शा० उ० स० मे साढ़े तीन गुने । उक्ति-शृंखला के इस प्रकार अधिकाधिक त्रुटित होने का एक मात्र कारण ऐसे व्यक्तियों के द्वारा की हुई पाठ-वृद्धि होनी चाहिये जो इसे जान नहीं सके और इसलिए इसे सुरक्षित रखते हुए पाठ-वृद्धि न कर सके । अतः यह प्रकट है कि धा०, मो० तथा अ० फ० रचना के मूल पाठ के सबसे अधिक निकट हैं, ना० तथा द० अपेक्षाकृत दूर और म० तथा शा० उ० स० सब से अधिक दूर । यदि संक्षेप-क्रिया हुई होती तो परिणाम इसका ठोक उलटा मिलता—शा० उ० स० म० के पाठ सब से अधिक सुशृंखलित मिलते, उनसे कम ना० तथा द० के और इनसे भी कम अ० फ०, मो० तथा धा० के ।^३

^१ ऊपर हम देख चुके हैं कि म० में रचना का दो-तिहाई पाठ ही है, पूरा पाठ होता तो यह संख्या कदाचित् ४४ के लगभग होती ।

^२ आगे 'पृथ्वीराज रासो का मूल रूप' शीर्षक के अन्तर्गत धा० में मिलने वाली उक्ति-शृंखला-त्रुटियों पर विचार किया गया है ।

^३ कई वर्ष पूर्व जब मुझे रचना के अन्य पाठ प्राप्त नहीं हुए थे, इस समस्या पर विचार मैंने प्राप्त तीन पाठों अ०, ना० तथा स० में मिलने वाले अत्युक्ति-सूत्र की सहायता से किया था । (पृथ्वी-राज रासो के तीन पाठों का आकार-सम्बन्ध—हिन्दी अनुशीलन पौष-चैत्र, स० २०११) उक्त पाठों में आए हुए संख्यात्मक विवरणों की तुलना के अनन्तर मैं इस परिणाम पर पहुँचा था कि ना० और तदनन्तर स० में उत्तरोत्तर अ० की तुलना में अत्युक्ति-वृद्धि हुई दिखाई पड़ती है, इस लिये वे उत्तरोत्तर अ० के अधिकाधिक प्रक्षिप्त रूपांतर होंगे, यह नहीं कि ना० और फिर अ०

[२] पहले हमने देखा है कि मो० पाठ आकार में धा० का लगभग सवाया है, अ० फ० पाठ मो० का लगभग दूना है, म० ना० तथा द० पाठ अ० के लगभग तिगुने हैं, और शा० उ० स० पाठ अलग-अलग म० ना० द० का भी तिगुना है। किन्तु यहाँ हम देखते हैं कि विभिन्न पाठों में शृंखला-त्रुटि इस अनुपात में नहीं मिलती है, यद्यपि मोटे ढंग पर धा०, मो० तथा अ० फ० की तुलना में वह ना० तथा द० में अधिक है, और ना० तथा द० की तुलना में वह म० तथा शा० उ० स० में अधिक है। प्रश्न हो सकता है कि इसका कारण क्या है। इसका कारण यही है कि पाठ-वृद्धि मुख्यतः दो दिशाओं में हुई है : एक तो नए-नए प्रसङ्गों और नई-नई कथाओं की कल्पना की दिशा में और दूसरे प्राप्त प्रसंगों और कथाओं को कुछ और विवरणों के साथ प्रस्तुत करने की दिशा में। ऊपर शृंखला-त्रुटियों पर जो विचार किया गया है उसमें इस दूसरी दिशा में की हुई पाठ-वृद्धि ही ली जा सकती है। पहली दिशा में की हुई पाठ-वृद्धि नहीं, क्योंकि उसमें ऐसे ही कथा-प्रसंग देखे जा सके हैं जो रचना के सब से छोटे पाठ धा० तक में मिलते हैं, शेष कथा-प्रसंग छूट गए हैं।

[३] रचना के जो सब से छोटे पाठ धा० तथा मो० हैं, वे भी इस प्रकार किए गये प्रक्षेपों से मुक्त नहीं हैं। दो-एक स्थलों तक इस प्रकार की कोई बात होती, तो यह समझा जा सकता था कि धा० तथा मो० में पाई जाने वाली वह उक्ति-शृंखला-त्रुटि अन्यो के द्वारा की हुई पाठ-वृद्धि के आतिरिक्त किसी और प्रकार से भी हुई हो सकती है, किन्तु एक दर्जन के लगभग स्थलों पर मिलने वाली यह उक्ति-शृंखला-त्रुटियाँ प्रक्षेप पूर्ण पाठ-वृद्धि के कारण ही हुई हो सकती हैं, किसी अन्य प्रकार से नहीं।

छंद-शृंखला

ऊपर हमने जिस प्रकार धा० के छंदों को लेकर देखा है कि मूल रचना में आदि से अन्त तक उक्ति-शृंखलाएँ रही होंगी, जो बीच में नवीन छंदों के रखने से उत्तरोत्तर त्रुटित होती रही हैं, उसी प्रकार यदि हम धा० के छंदों को लेकर पुनः ध्यान से देखें और विभिन्न पाठों का मिलान करें तो ज्ञात होगा कि पहले अनेक छंद या रूपक एक और अविभक्त थे किन्तु बाद में उनको विभक्त कर बीच-बीच में नए छंद रख दिए गए, जिससे पूर्ववर्ती छंद-शृंखला रचना में अनेक स्थलों पर त्रुटित हो गई। नीचे धा० में आने वाले ऐसे रूपक दिए जा रहे हैं, जो रचना की किन्हीं भी प्रतियों में त्रुटित हुए हैं। उनकी रूपक-संख्या धा० से देते हुए, जिन प्रतियों में वे त्रुटित हुए हैं उन का उल्लेख किया जा रहा है।

(१) धा० ३३-३४ : छंद पढ़डी है। अ० फ०, ना० तथा द० में यह एक ही रूपक है किन्तु धा० तथा मो० में यह दो रूपकों में बँटा हुआ है, जिनके छंद अलग-अलग बताए गए हैं, यद्यपि बीच में कोई अन्य रूपक नहीं आते हैं। म० यहाँ खंडित है। शा० उ० स० में धा० और मो० के दो रूपकों के बीच तीन अन्य रूपक भी आते हैं जो अन्य किसी प्रति में नहीं हैं।

(२) धा० ३६ : छंद पढ़डी है। धा० तथा अ० फ० में यह एक रूपक है। मो० में यह दो

उत्तरोत्तर स० के संक्षिप्त रूपांतरों के रूप में निर्मित हुए हों, क्योंकि संक्षेप-क्रिया में छन्द कम किए जा सकते हैं, पंक्तियाँ कम की जा सकती हैं, किन्तु यह नहीं हो सकता है कि संख्याएँ घटा-बढ़ा दी जावें। संख्याओं में परिवर्तन केवल प्रक्षेप की दृष्टि से किए जा सकते हैं, और अ० की तुलना में ना० में और ना० की तुलना में स० में जो पाठ-भेद संख्यात्मक विवरणों में मिलता है उसमें अत्युक्ति-मूलक प्रक्षेप की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर अधिकाधिक प्रबल दिखाई पड़ती है, इसलिए अ० पाठ की तुलना में ना० पाठ तथा ना० पाठ की तुलना में स० पाठ को परवर्त्ती होना चाहिए। मुझे प्रसन्नता है कि उक्त परिणाम की पुष्टि उक्ति-शृंखला त्रुटियों के इन अधिक दृढ़ प्रमाणों द्वारा हुई है।

रूपकों में बँट गया है और दोनों के बीच में तीन नए रूपक आ गए हैं। म० खंडित है। द० शा० उ० स० में यह तीन तथा ना० में यही पाँच रूपकों में बँट गया है और इन खंडों के बीच अनेक छंद आते हैं जो धा० अ० फ० में नहीं मिलते हैं।

(३) धा० ४० : छंद पद्धती है। धा० तथा अ० फ० में यह एक रूपक है। मो० में यह दो रूपकों में बँट गया है, और दोनों के बीच धा० ३९ (=अ० ६. दो० ३) को रख दिया गया है। म० खंडित है। ना० द० शा० उ० स० में भी यह दो रूपकों में बँटा हुआ है, और बीच में धा० ३९ (आ० ६. दो० ३) के अतिरिक्त एक अन्य रूपक भी रख दिया गया है।

(४) धा० १९३ : छंद दोहा है। यह धा० मो० अ० फ० ना० द० में एक रूपक है, किन्तु म० शा० उ० स० में दो और पंक्तियों को मिला कर दो रूपकों में बाँट दिया गया है।

(५) धा० २४१ : छंद भुजगी है। यह धा० मो० अ० फ० में एक ही रूपक है, किन्तु म० ना० द० शा० उ० स० में दो रूपकों में बँट गया है, और उनके बीच में कुछ अन्य रूपक भी रख दिए गए हैं जो धा० मो० अ० फ० में नहीं हैं।

(६) धा० २६९ : छंद त्रोटक है। यह धा० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स० में एक ही रूपक है। मो० में इसे दो रूपकों में बाँट कर धा० २३९ को रख दिया गया है।

(७) धा० २९१ : छंद दोहा है। यह धा० मो० अ० फ० द० में एक ही रूपक है, किन्तु म० ना० शा० उ० स० में दो रूपकों में बँट गया है जिनके बीच में एक और रूपक रख दिया गया है।

(८) धा० २७० : छंद त्रोटक है। यह धा० अ० फ० में एक ही रूपक है, किन्तु मो० म० न० द० शा० उ० स० में इसे दो रूपकों में बाँटकर बीच में धा० २८७, २८८, २८९, २९०, २९१, २९२, २९३, २९४ तथा २९५ को तथा कुछ ऐसे रूपकों को भी रखा गया है जो धा० अ० फ० में नहीं हैं।

(९) धा० ३६०-३६२ : छंद भुजगी है। यह मो० ना० द० उ० स० में एक ही रूपक है किन्तु धा० में दो रूपकों में और अ० फ० में तीन रूपकों में बँट गया है, जिनके बीच में अनेक रूपक ऐसे आते हैं जो धा० मो० में नहीं हैं, यद्यपि वे ना० द० शा० उ० स० में अन्यत्र आते हैं।

(१०) धा० ३६९ : छंद कवित्त है। यह केवल धा० में एक रूपक है, शेष समस्त अर्थात् मो० अ० फ० ना० द० शा० उ० स० में दो रूपकों में बँट गया है : कवित्त के प्रथम चार चरणों के साथ अन्य दो चरण मिलाकर एक रूपक बना लिया गया है, बीच में अन्य अनेक रूपक और रख दिए गए हैं, तदनंतर पूर्ववर्ती कवित्त के शेष दो चरण एक स्वतन्त्र रूपक के रूप में आते हैं।

(११) धा० ३८३ : छंद पद्धती है। यह धा० मो० अ० फ० ना० द० में एक ही रूपक है। शा० उ० स० में दो रूपकों में बँट गया है जिसके बीच में एक अन्य रूपक भी रख दिया गया है।

(१२) धा० ४०३-४०५ : छंद पद्धती है। यह अ० फ० में एक रूपक है, धा० में यह दो रूपकों में बँट गया है, मो० ना० द० शा० उ० स० में यह तीन रूपकों में बँट गया है, और बीच-बीच में दूसरे रूपक भी आ गए हैं, जिनमें से कुछ धा० अ० फ० में मिलते हैं और कुछ नहीं मिलते हैं।

इन छंदों को प्रसंग-शृंखला की दृष्टि से स्वतः देखा जा सकता है।^१ उपर्युक्त में द्वितीय अर्थात् धा० ३६ ही एक मात्र ऐसा छंद है जिसमें सयोगिता और उसकी सखियों की वसंतागमन में हर्षोत्फुल्लता का वर्णन करके अन्त के चार चरणों में एक भिन्न विषय-पृथ्वीराज के सामन्तों का मिलकर कन्नौज पर चढ़ाई करने के निश्चय—का उल्लेख है। शेष छंदों में आदि से अन्त तक एक ही विषय है और उनकी छंद-शृंखला त्रुटित होने के साथ साथ प्रसंग-शृंखला भी त्रुटित हुई है।

^१ धा० के छंद-शृंखला-अतिक्रमण पर विचार 'पृथ्वीराज रासो का मूलरूप' शीर्षक के अन्तर्गत आगे किया गया है।

विभिन्न प्रतियों में उपयुक्त बारह छंद-त्रुटियों इस प्रकार आती हैं :—

धा०	:	१
अ० फ०	:	२
मो०	:	६
म०	:	४ ^१
ना०	:	७
द०	:	७
शा० उ० स०	:	१०

यह ध्यान देने योग्य है कि विभिन्न प्रतियों के पाठों के बारे में जिस परिणाम पर हम ऊपर उक्ति-शृंखला-त्रुटियों के आधार पर पहुँचे हैं, लगभग उसी परिणाम पर हम ही यहाँ छंद-शृंखला-त्रुटियों के आधार पर भी पहुँच रहे हैं। अन्तर केवल मो० के सम्बन्ध में पड़ा है : वहाँ मो० प्रति धा० तथा अ० फ० के साथ दिखाई पड़ी थी, और यहाँ वह म० ना० द० के साथ है।

सब से कम शृंखला त्रुटि वाली प्रतियों में पूर्वापर सम्बन्ध

अब प्रश्न यह उठता है कि जब धा० मो० तथा अ० फ० में उक्ति-शृंखला लगभग समान रूप से कम त्रुटित है, और छंद-शृंखला धा० अ० फ० में सबसे कम त्रुटित है, फिर भी तीनों की रूपक-संख्या भिन्न भिन्न है, तो इन चारों के पाठों में कोई पूर्वापर सम्बन्ध भी है या नहीं, और यदि है तो वह किस रूप में है।

यदि हम अ० फ० के पाठ को ले, तो देखेंगे कि उसमें निम्न-लिखित उल्लेख-वैषम्य मिलते हैं :—

(१) अ० ८. भुज० १ में अचलराय, जयसिंह चन्देल, देवराज बारर, बरनराय, बीकम कमधुज्ज, रूपरायदाहिमा, सदाशिव, सारन तथा सेनचन्द्र पृथ्वीराज के साथ कन्नौज जाते हैं, किन्तु तदनन्तर न इनका उल्लेख उन योद्धाओं में होता है जो वहाँ युद्ध में मारे जाते हैं, और न वहाँ से लौटे हुए योद्धाओं की नामावली (अ० १२. पद० ३) में होता है।

(२) अ० ९. भुज० ३ = धा० १६१ में जिन स्थानों के जयचन्द द्वारा विजित होने का उल्लेख है, उनमेंसे अधिकतर का उल्लेख, अ० ३. दो० २, ३, तथा नारा० १ में उसके पिता विजयपाल के द्वारा विजित स्थानों में उसके पहले ही मिलता है, यथा कर्णाट, गूर्जर, गुंड और मिथिला।

(३) अ० ६. साट० १ = धा० ४७ में मडोवर को पृथ्वीराज द्वारा दलित कहा गया है, और अ० ६. साट० २ = धा० ४८ में उसी को जयचन्द द्वारा भी दलित कहा गया है।

(४) अ० १०. कवि० ५ = धा० २५६ में गोविंदराय गुहलौत के मारे जाने का उल्लेख है, जब कि बाद में अ० १४. कवि० २९ में शहाबुद्दीन के अन्तिम युद्ध के समय की गोष्ठी में उसके सम्मिलित होने का भी उल्लेख हुआ है।

(५) अ० ११. कवि० २ = धा० २८९ में यट्टा का शासक भान भट्टी (एक राजपूत) बताया गया है, जब कि अ० १४. कवि० १२ में उसके ब्राह्मण शासक का चामडराय द्वारा पराजित किया जाना कहा गया है।

(६) अ० ११. कवि० ८ में पट्टन का स्वामी प्रतापराय कहा गया है, जो कन्नौज के युद्ध में जयचन्द की ओर से लड़ता है; अ० १८. कवि० ९ में इसका स्वामी सावलिंग सिंह बताया गया है, जो पृथ्वीराज की ओर से शहाबुद्दीन से लड़ता है।

^१ किन्तु म० में पूरी कथा का केवल दो-तिहाई आता है, इसलिए संपूर्ण कथा के अनुपात से यह संख्या ६ होगी।

(७) अ० ९. भुजगी १ मे० मारुराय कन्नौज गया है और वहाँ लड़ा भी है (अ० ११. कवि० ४ = धा० २९२); पीछे वह पुनः पृथ्वीराज की ओर से शहाबुद्दीन के साथ के उसके अन्तिम युद्ध में भी लड़ता है (अ० १५. कवि० १९, १७. कवि० ७, कवि० ९, कवि० १०, दो० २)। फिर भी उन योद्धाओं की सूची (अ० १२. पद० ३) में इसका नाम नहीं है जो पृथ्वीराज के साथ कन्नौज-युद्ध के अनन्तर वापस होते हैं।

(८) अ० २. पद० ७ में मोरीराज के दल को सोमेश्वर ने नष्ट किया था, यह कहा गया है, अ० ६. साट० १ में पुनः पृथ्वीराज के सम्बन्ध में यही बात कही गई है, फिर भी अ० १५. कवि० १८ में वह पृथ्वीराज की ओर से शहाबुद्दीन से लड़ा है।

(९) अ० १३. कवि० १८ तथा अ० १४. वार्त्ता ४ में शहाबुद्दीन को जलालुद्दीन नन्दन कहा गया है, जबकि अ० १९. कवि० १३ में जलालुद्दीन स्वयं शहाबुद्दीन है।

(१०) अ० १६. दो० ४ तथा पूर्ववर्ती कुण्डलिया में जैत के मारे जाने का उल्लेख है, किन्तु अ० १७. साट० ३ तथा अ० १७. भुज० ३ में उसे शहाबुद्दीन के विरुद्ध लड़ता हुआ दिखाया गया है।

(११) १८. कवि० १० में 'बदी' (= कृष्णपक्ष) का उल्लेख है, जबकि उसके पूर्व ही अमावास्या का उल्लेख हुआ है (१६. कवि० ७, १७. त्र० ५)।

(१२) अ० १४. दो० २९ में चामड राय को मानपुंड़ीर के कुल का कहा गया है, किन्तु अ० १४. दो० ३१ और दो० ३२ में उसे दाहिमा कहा गया है जब कि दाहिमा तथा पुंड़ीर दो भिन्न भिन्न राजपूत जातियाँ हैं (अ० १४. दो० २९)।

(१३) अ० खण्ड ४ में जिन योद्धाओं का उल्लेख गोरी-पृथ्वीराज युद्ध में होता है वे हैं : — चामंडराय, प्रसगराय खींची, देवराय बागरी, महनसिंह परिहार, जाज यादव, जामानी यादव, सलष पेंवार, तथा आजानु बाहु लोहाना। किन्तु बाद में (अ० ७. त्र० २) में जिन सामन्तों को उक्त युद्ध में विजय का श्रेय दिया जाता है वे हैं : नीडुर, पहाड़राय तोमर और अल्ह, जिनका नाम भी खण्ड ४ में कहीं नहीं आता है।

(१४) अ० खण्ड ५ में जिन योद्धाओं का उल्लेख भीम-पृथ्वीराज युद्ध में होता है, वे हैं :— देवराय बागरी, जामानी यादव, जाज यादव, रामराय बड़गूजर, जैत पेंवार, गोविन्दराय गुहलौत, गाजी गौड़, असाराव हाड़ा, लंगा लगरीराय, बलीराय, कहरराय कूरंभ, नियराय, गजू, अजू, अजून, पहाड़ पारारि, और हमीर : किन्तु बाद में (अ० ७. त्र० २) में जिन सामन्तों को उक्त युद्ध में विजय का श्रेय दिया जाता है, वे हैं हरसिंह तथा विश्वराज, जिनका कोई उल्लेख खण्ड ५ में नहीं होता है।

(१५) अ० ११. कवि० २७ (= धा० २६६) में अपने सामन्तों में यह विश्वास दिलाने पर कि वे कन्नौज से दिल्ली के 'पंच घाटि सौ कोस' के मार्ग भर एक-एक करके जूझते हुए जिस प्रकार भी सम्भव होगा पृथ्वीराज और संयोगिता को दिल्ली पहुँचा देगे, पृथ्वीराज दिल्ली की ओर मुड़ पड़ता है। अ० १२. कवि० २३ (= धा० ३०४) में उन सामन्तों की नामावली मार्ग की उस दूरी के साथ दी गई है जो उन्होंने जूझते हुए पृथ्वीराज और संयोगिता को तै कराई है, और इसका योग पूर्वोक्त छन्द में दी हुई कन्नौज से दिल्ली की दूरी से मिलती है। अ० फ० के विभिन्न अतिरिक्त छन्दों में, जो धा० में नहीं मिलते हैं, अ० १२. कवि० २३ (= धा० ३०४) में उल्लिखित सामन्तों के अतिरिक्त निम्नलिखित के भी लड़ते हुए जूझ जाने का विवरण मिलता है, और वह भी अ० १२. कवि० २३ (= धा० ३०४) के ठीक पूर्व :—

अ० १२. कवि० १६ : पठन के चालुक कचरा राय का,

अ० १२. कवि० १७, तथा कवि० २० : जंधारा राव भीम का,

अ० १२. भुज० तथा कवि० १ : सिंह (सादूल) बारर का,

अ० १२ कवि० २० : अजमेर के सागर गौड़ का,

अ० १२ कवि० २० : एक जॉगरा शूर का ।

प्रकट है कि यह विस्तार प्रक्षिप्त है ।

इस उल्लेख-वैषम्य के अतिरिक्त अ० फ० में तीन ऐसे इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्तियों के उल्लेख भी आते हैं जो पृथ्वीराज के बहुत पीछे हुए हैं :—

(१) अ० ११ कवि० ६ : महाराष्ट्रपति कन्हराय,

(२) अ० १४ कवि० ६—अ० १६ कवि० २ : चित्तौर नरेश रावल समरसी,

(३) अ० १५ कवि० ८ : हमीर देव ।

कन्नौज के युद्ध में महाराष्ट्रपति कन्हराय जयचन्द की ओर से सम्मिलित हुआ है, जब कि उसका राज्य-काल सं० १३०४ से १३१७ तक था ।^१ गोरी और पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में पृथ्वीराज की ओर से रावल समरसी सम्मिलित हुआ है, जब कि उसके शिलालेखादि सं० १३३० से १३५८ तक के मिलते हैं ।^२ वर-प्राप्ति के लिए हमीर के द्वारा देवी को अपना सिर काट कर भेंट करने की बात कही गई है,^३ जब कि उसने सं० १३५८ में अलाउद्दीन से लड़ कर वीर गति प्राप्त की थी ।

किन्तु इनमें से एक भी धा० या मो० में नहीं है, यह तथ्य भी इसी ओर संकेत करता है कि अ० फ० पाठ धा० तथा मो० पाठों के बाद का है ।

यहाँ पर यह शंका उठाई जा सकती है कि यदि अ० फ० पाठ धा० तथा मो० के बाद का है तो अ० फ० पाठ में भी लगभग उतनी ही उक्ति-शृङ्खला-त्रुटि क्यों मिलती है जितनी धा० अथवा मो० में मिलती है और छन्द-शृङ्खला त्रुटि भी प्रायः बराबर ही किन्तु मो० से बहुत कम मिलती है । इसका समाधान यही है कि अ० फ० के प्रक्षेपकार ने मुख्यतः नवीन प्रसङ्ग तथा कथा-कल्पना की दिशा में प्रक्षेप किया, प्राप्त प्रसंगों में विवरण-विस्तार का यत्न बहुत कम किया, जिससे कि पूर्व प्राप्त पाठ की उक्ति और छन्द शृङ्खलाएँ बहुत कुछ सुरक्षित रह सकीं; यह भी असम्भव नहीं है कि उक्ति और छन्द-शृङ्खलाओं को जान कर पाठवृद्धि करते हुए उसने उन्हें बचाने का यत्न किया हो ।

कुछ समय पूर्व^४ 'पृथ्वीराज-रासो का लघुतम रूपान्तर (?)' शीर्षक एक लेख लिखते हुए मैंने धा० तथा मो० में कुछ ऐसी बातें दिखाई थीं कि जिनसे धा० और मो० रचना के पूर्ण पाठ की प्रतियों न ज्ञात होकर किसी प्रक्षेपयुक्त छन्द-चयन या प्रक्षेप मात्र की प्रतियाँ प्रतीत होती हैं । ये बातें तीन प्रकार की थीं । एक तो धा० पाठ के अन्त में मिलने वाले दोहे और उसकी पुष्पिका के सम्बन्ध की थी, जिनमें रचना को 'पृथ्वीराज रासो रसाल' कहा गया है, दूसरी उन प्रसङ्ग-त्रुटियों के सम्बन्ध की थी जो धा० और मो० के पाठों में ही मिलती हैं, अन्य पाठों में नहीं, और तीसरी उन पाठ और प्रसङ्ग-त्रुटियों के विषय की थी जो धा० और मो० के अतिरिक्त अ० फ० में भी मिलती हैं । नीचे उक्त लेख के आवश्यक अंश दिए जा रहे हैं :—

ऊपर उद्धृत [धा० तथा मो० का] पुष्पिकाओं को ध्यान से देखने पर ज्ञात होगा कि यद्यपि मो० में रचना का नाम "पृथ्वीराज रासु (रासौ)" दिया गया है, धा० में उसे "राजा श्री प्रिथीराज चहुआण रासु रसाल" कहा गया है । अभी तक जितनी भी अन्य प्रतियाँ रचना की प्राप्त हुई हैं,

^१ भांडारकर : अली हिस्ट्री ऑव दि डेकन, पृ० २०९ ।

,, : इन्स्कृशन्स ऑव नॉर्दन इण्डिया, पृ० ८२-५२ ।

^३ तुलना० 'हौ रनथभउर नौह हमीरु। कलपि माँथ जेहँ दीन्ह सरीरु।' जायसी-ग्रथावली (हिन्दुस्तानी एकेडेमी) 'पद्मावत' ४९१, ३ ।

^४ दे० हिन्दी अनुशीलन, जुलाई-सितम्बर, १९५७, पृ० ९-१५ ।

उनमे से किसी मे उसे “रसाल” नहीं कहा गया है। इतना ही नहीं, इस प्रति के पाठ के अन्त मे एक दूहा आता है, और इसमे भी रचना का नाम यही है :—

सा... .. मरणहु चद नरिंद ।

रासउ रसाल नवरस निबंधि अचरिज इंदु फणिंद ॥

और यह दूहा भी अन्य पाठ या प्रति मे नहीं मिलता है। अतः उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ने से पूर्व इस ‘रसाल’ शब्द पर विचार कर लेना आवश्यक होगा।

कोशो मे इस शब्द के आम, ईख, गेहूँ आदि कुछ अर्थ मिलते हैं, जिनमे से कोई यहा सगत नहीं है। इससे मिलता हुआ एक शब्द ‘रसालु’ मिलता है, जिसका प्रयोग प्राकृत ग्रंथो मे हुआ है, और ‘पाइअ सह महणवो’ मे इसका अर्थ “मज्जिका या राज-योग्य पाक विशेष” देते हुए बताया गया है कि यह घृत, मधु, दही, मिर्च तथा चीनी से बनता है। इस अर्थ से भी हमे कुछ अधिक सहायता नहीं मिलती है। किन्तु इस शब्द का एक और प्रयोग भी मिलता है—वह है संकलन या चयन-ग्रंथ के अर्थ में। एक अज्ञात लेखक द्वारा संकलित ‘उपदेश रसाल’ नामक एक ग्रन्थ है, जिसमे जैन धर्मोपदेश को लक्ष्य करके अनेक कथा-कहानियाँ रत्नमन्दिर कृत ‘उपदेश तरंगिणी’ तथा अन्य ग्रन्थो से उद्धृत की गई हैं। उसकी पुष्पिका मे लिखा है :—

“इति श्री उपदेश रसाल नामा ग्रन्थ उपदेश तरंगिणी २४ प्रबन्धादि बहु शास्त्राण्यऽवलोक्यउ [द] धृतः १

यह अवश्य है कि ‘रसाल’ शब्द का यह प्रयोग पाक-विशेष अर्थ वाले ‘रसाल’ का ही एक साहित्यिक उपयोग प्रतीत होता है। मुझे ऐसा लगता है कि ऊपर ‘पृथ्वीराज रासो’ के साथ आए हुए ‘रसाल’ शब्द का अभिप्राय भी कुछ इसी प्रकार का है : ‘पृथ्वीराज रासो’ के विविध प्रसंगों से कुछ उत्कृष्ट छंद लेकर उक्त पाठ को तैयार किया गया, इसीलिए उसे ‘पृथ्वीराज रासउ रसाल’ कहा गया।

‘रासउ रसाल’ के छन्द-संकलन पर दृष्टि डालने पर यह तथ्य प्रमाणित हो जाता है।

(१) ‘रासउ रसाल’ मे खट्टू मे द्रव्य-प्राप्ति प्रकरण^२ का केवल एक छन्द है :—

[खट्टू आखेटक रवन] महिम मुरस्थल थांनु ।

नागवरी गवरी गुरन मति निम्मल परधान ॥ (घा० २६ = स० २४.१)

कथा में इस छन्द की संगति क्या है, यह उक्त प्रकरण के अन्य छन्दो के अभाव मे ज्ञात नहीं होता है।

(२) ‘रासउ रसाल’ में दिल्ली-दान प्रकरण^३ के केवल निम्नलिखित दो छन्द हैं :—

जोगिनिपुर चहुवान लिय पुत्तिय पुत्त नरेस ।

अनंगपार तोंवर तिरण किय तीरथ परवेस ॥ (घा० २८ = स० १८.९६)

पटदह सह मामन्त सजि बजै निरघोष सुनिंद ।

सोमेसुर नन्दन अटल दिल्ली सुचिर नरिंद ॥ (घा० २९ = स० १८.१०४)

स्वभावतः यहाँ पर प्रश्न उठता है कि योगिनीपुर (दिल्ली) को चहुवान पृथ्वीराज ने किस प्रकार लिया। अतः यह प्रसंग भी उसमे अधूरा रह जाता है।

^१ दे० ‘कैटेलॉग ऑफ़ डॉड कलेक्शन इन दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी लाइब्रेरी,’ जर्नल ऑफ़ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी, अप्रैल १९४०, पृ० १३२ ।

^२ अ० २, साट० ३ से अ० २, कपि० ४ तक; स० खंड २४ ।

^३ अ० २, दो० १७ से अ० २, दो० २२ तक; स० खंड १८ ।

(३) 'रासउ रसाल' में जयचन्द तथा संयोगिता के पूर्व-परिचय,^१ भीम चौलुक्य तथा शहाबुद्दीन गोरी से पृथ्वीराज के संघर्ष और इच्छिनी विवाह^२ के एक भी छन्द नहीं है। उसमें दिल्ली-दान प्रकरण के बाद ही 'कनवज के राजा की बात' प्रारम्भ हो जाती है और हमें संयोगिता प्रथम दर्शन में मृगों को अपने हाथों से यवाकुर चुगाती हुई दिखाई पड़ती है।^३ यह संयोगिता कौन है, न इस छंद में कहा जाता है और न इसके पहले कहीं। इसी प्रकार आगे कैवास-वध प्रकरण^४ में पट्टराजी इच्छिनी के ही बुलाने पर आखेट से आकर पृथ्वीराज कैवास का वध करता है और 'रासउ रसाल' में वहाँ इच्छिनी पट्टराजी होते हुये भी^५ एक ऐसे पात्र के रूप में हमारे सामने आती है जिससे पहले से हम बिल्कुल परिचित नहीं हैं। 'रासउ रसाल' की कथा में जयचन्द, संयोगिता और इच्छिनी के पूर्व-परिचय का अभाव इसलिए प्रबन्ध-त्रुटि लगता है। कथा में भीम चौलुक्य और शहाबुद्दीन गोरी से संघर्ष की कथाये इच्छिनी विवाह की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करती हैं।

•• (४) 'लघु पाठ' (अ० फ०) में जयचन्द ने संयोगिता के पास उसकी कुछ सखियों को इसलिए भेजा है कि वे उसे पृथ्वीराज के अनुराग से विरत करे, और इस प्रकरण में जयचन्द की उन दूतियों तथा संयोगिता का एक अच्छा संवाद है।^६ 'रासउ रसाल' में इस प्रकरण के कुछ स्फुट छन्द ही हैं, जिनमें उक्त संवाद सुश्रुत और उत्तर-प्रतिउत्तर-पूर्ण नहीं है। उदाहरण के लिए दूतियाँ प्रेम की तुलना में यौवन की जो महत्ता प्रतिपादित करती हैं,^७ उसका कोई उत्तर संयोगिता की ओर से नहीं है, जो प्रसंग में अनिवार्य है।

(५) कैवास-वध प्रकरण में 'लघु पाठ' (अ० फ०) के वे छन्द 'रासउ रसाल' में नहीं हैं जिनमें इच्छिनी ने पृथ्वीराज को कैवास को कर्नाटी के कक्ष में दिखाया है।^८ उक्त प्रकरण में इस प्रकार के 'केत के अभाव में पृथ्वीराज का कैवास को वाण का संधान कर मारना, जैसा बाद के छन्दों में आया है, किसी प्रकार संभव नहीं लगता है।

(६) 'रासउ रसाल' में पृथ्वीराज के साथ जाने वाले १०६ योद्धाओं की वह संक्षिप्त परिचय-युक्त सूची नहीं है जो 'लघु पाठ' (अ० फ०) में है।^९ इन योद्धाओं में से अधिकतर के नाम 'रासउ रसाल' में भी बाद में आने वाले कन्नोज-युद्ध प्रकरण में आते हैं। अतः इस सूची के अभाव में उक्त योद्धाओं का उल्लेख अत्यन्त आकस्मिक लगता है, और कभी-कभी तो यहाँ तक नहीं पता चलता है कि कौन किस ओर से युद्ध कर रहा है।

इन प्रबन्ध-त्रुटियों से 'रासउ रसाल' का एक चयनात्मक संक्षेप मात्र होना प्रमाणित है। यह चयन किस पाठ से हुआ, यह दूसरा प्रश्न है जो विचारणीय है। ऊपर हम यह बता ही चुके हैं कि 'रासउ रसाल' के प्रायः समस्त छन्द 'लघु पाठ' (अ० फ०) में आते हैं। पुनः 'लघु पाठ' (अ० फ०)

^१ अ० खंड ३; स० खंड ४५—४७।

^२ अ० खंड ४—५, स० खंड १२—१३।

^३ धा० ३५, अ० ६, रासा १, स० ४८, ७९।

^४ अ० खंड ७, स० खंड ५७, धा० ४८—१०६।

^५ धा० ६२।

^६ अ० ६, दो० ४—खंड के अन्त तक; स० खंड ५०।

^७ धा० ५२; अ० ६, दो० ८; स० ५०, ४४।

^८ अ० ७, दो० ६—दो० १०, स० ५७, ८२—८६।

^९ अ० ७, दो० ११; स० ५७, ८७; धा० ६८।

^{१०} अ० ८, अ० १; स० ६१, १०९—१३२।

के भी समस्त छन्द, आधे दर्जन के लगभग छन्दों को छोड़कर, उस पाठ में आते हैं जिसे 'मध्यम' (ना०) कहा जाता है, और 'मध्यम' के भी अधिकतर छन्द उस पाठ में आते हैं जिसे 'बृहद' (ज्ञा० उ० स०) कहा जाता है। किन्तु 'रासउ रसाल' में तीन-चार छन्दों को छोड़ कोई छन्द ऐसे नहीं है जो 'मध्यम' या 'बृहद' में हो और 'लघु' में न हो, इसलिए यह प्रकट है कि 'रासउ रसाल' 'लघु' का ही एक संकलित संक्षेप है।

इस तथ्य की पुष्टि एक और प्रकार से भी होती है। 'रासउ रसाल' में जो पाठ-भ्रंश आदि के स्थल हैं, उनमें से कुछ 'लघु पाठ' (अ० फ०) में भी पाए जाते हैं। नीचे इस प्रकार के दो प्रमुख उदाहरण दिये जा रहे हैं :—

(१) 'रासउ रसाल' में नीचे लिखी गद्य-वार्त्ता आती है^१ :—

“पात्र नाम दर्पकांगी नेत्रचंगी कुरंगी कोकाक्षी कोकिला रागीमे भागवतानी अंगोल डोल
एक बोल अमोल पुष्पांजली पंग सिर नाइ जयति पिय कामदेव ।”

मो० में भी पाठ लगभग यही है, केवल साधारण पाठांतर के अतिरिक्त अन्त में आए हुये 'पिय' के स्थान पर पाठ 'बिअ' है।

प्रकट है कि यह केवल पातरो (नर्तकियों) की नामावली नहीं है, यह किसी छन्द का एक त्रुटित रूप है, जिसमें नर्तकियों के नाम गिनाकर कहा गया है कि उन्होंने पंग (जयचन्द) के सिर पर पुष्पांजलि डालते हुये एक स्वर से कहा, “हे प्रिय (मो० पाठ के अनुसार 'दूसरे') कामदेव, तुम्हारी जय हो ।”

'लघु पाठ' (अ० फ०) में भी इस छन्द की स्थिति यही है, केवल इसे उसमें 'वार्त्ता' नहीं कहा गया है, न 'पात्र नाम' का शीर्षक दिया गया है, और अन्त में आये हुए 'पिय' या 'बिअ' के स्थान पर पाठ 'तुव' है।^२ केवल एक प्रति 'लघु पाठ' की ऐसी है जिसमें यह अंश एक साटक (शार्दूल विक्रीडित) के रूप में इस प्रकार आता है^३ :—

दीपांगी चन्द्रनेत्रा नलिन अलि मिली नैनरंगी कुरंगी ।

कोकाक्षी दीर्घनासा सुगसरि कलिरवा नारिदं सारवंगी ।

इंद्रानी लोल डोला चपल मतिधरा एक बोली अबोली ।

दूहपा वानी विसाला सुभ गिरवरा जैतरंभा सुबोली ॥

मेरा अपना अनुमान कि पाठभ्रंश के पूर्व 'लघु पाठ' में छन्द कुछ इस प्रकार रहा होगा :—

दीपांगी चन्द्रनेत्रा नेत्रवंगी कुरंगी ।

कोकाक्षी कोकिलानी राग में भागवानी ।

अंगोले लोल डोल एक बोल अमोल ।

पुष्पांजलि पंग सिर नाइ जयति बिअ कामदेव ॥

और किसी प्रकार पत्र-क्षति के कारण जब इस छन्द के कुछ अंश त्रुटित हो गए, 'रासउ रसाल' तथा 'लघु पाठ' (अ० फ०) की प्रतियों में इसका त्रुटित पाठ हो उतरा। तदनंतर छन्द का रूप तथा आशय पूरा स्पष्ट न होने के कारण 'रासउ रसाल' में इसे 'वार्त्ता' कह कर 'पात्र नाम' का शीर्षक दे दिया गया, जब कि 'लघु पाठ' की प्रतियों में इसे यथावत् रहने दिया गया, केवल 'लघु पाठ' की उपर्युक्त

^१ धा० १८४ के पूर्व; स० ६१, ८४४ ।

^२ आ० ९, साट० ३ ।

^३ म० १०, ४०८; यह प्रति पूना के भांडार ओरिण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट की संख्या १४५५ [१८८१-९५] (उपर्युक्त म०) है ।

अपवाद वाली प्रति (म०) के आदर्श में त्रुटि पाठ को प्रक्षेप करके एक भिन्न छन्द के रूप में पूरा कर लिया गया ।

(२) 'रासउ रसाल' में एक—निम्नलिखित में से प्रथम—तर्था 'लघु पाठ' की समस्त प्रतियों (अ० फ०) में निम्नलिखित दो छन्द 'मध्यम' (ना०) तथा 'वृहद्' पाठ (शा० उ० स०) में मिलनेवाली 'दिल्ली किल्ली कथा' के ऐसे हैं जो उस कथा के अन्य छन्दों के अभाव में बिल्कुल बेतुके लगते हैं ।^१ इन छन्दों में जगजोति व्यास ने अनंगपाल से [दिल्ली की] कीली को ढोली कर देने का भावी दुष्परिणाम घोषित किया है :—

अनंगपाल चक्कवै बुद्ध जो इसी उक्किलिय ।
भयौ तुअर मतिहीन वरी दिल्लीय तै दिल्लीय ।
कहै व्यास जगजोति अगम आगम हौ जानो ।
तुअर तै चहुआन अंत ह्वै हैं दुरकानो ।
तुअर सु अवटि मंडव धरह इक्क राय बलि चक्कवै ।
नवसत्त अन्त मेवात पति इक्क छत्त महि चक्कवै ॥ (धा० २७=स० ३.२६)
सोरै सै सत्योत्तरै विक्रम माक वदीत ।
दिल्ली धर मेवातपति लैहि षग बल जीत ॥

(अ० २. दो० २=स० ३.४४)

यह जगजोति व्यास कौन था, दिल्ली की वह कीली अनंगपाल ने क्यों और कैसे ढोली की—आदि बातों का इनमें कोई उल्लेख नहीं होता है । अतः ऐसा लगता है कि 'लघु पाठ' (अ० फ०) के आदर्श के इस प्रकरण में दुरी तरह से खण्डित हो जाने के कारण 'लघु पाठ' की प्रतियाँ (अ० फ०) में केवल दो छन्द आ पाए और 'रासउ रसाल' में इनमें से भी एक ही लिया गया ।

इन दो पाठ-त्रुटियों में से कोई भी 'वृहद् पाठ' (शा० उ० स०) नहीं आती है और 'मध्यम पाठ' (ना०) में केवल प्रथम आती है, दूसरी नहीं, अतः इन पाठ-त्रुटियों से यह भी स्पष्ट ज्ञात होता है कि 'रासउ रसाल' का संकलन 'लघु पाठ' (अ० फ०) से किया गया है, 'मध्यम' (ना०) या 'वृहद्' (शा० उ० स०) से नहीं ।

यह 'लघुतम रूपान्तर' (धा० मो०) प्रक्षेपों से भी शून्य नहीं है । इसका एक प्रक्षेप तो अति प्रकट है । 'पृथ्वीराज रासो' के 'षट ऋतु वर्णन' के छन्द^२ संयोगिता के साथ पृथ्वीराज के दिल्ली-आगमन के अनन्तर के नवदंपति के संभोग शृंगार के हैं, यह भली भाँति प्रमाणित है, क्योंकि इनमें से एक छन्द में 'संयोग भोगायते' शब्दावली आती है,^३ और 'सयोगी' ग्रन्थ भर में संयोगिता के लिए आया है । किन्तु धा० और मो० में यह छन्दावली पृथ्वीराज के कन्नौज-प्रयाण के पूर्व आती है, और मो० में यहाँ तक कथा गढ़ ली गई है कि पृथ्वीराज की छः रानियाँ हैं जो कन्नौज-प्रयाण से उसे कम से कम एक वर्ष तक—प्रत्येक अलग-अलग एक-एक ऋतु की रमणीयता की ओर उसका ध्यान दिलाते हुए—रोक लेती हैं । इस प्रसंग में विचारणीय यह है कि 'पृथ्वीराज रासो' के समस्त पाठों में इस ऋतु-वर्णन के बहुत पूर्व यह कहा जा चुका है कि जयचंद के राजसूय यज्ञ और उसके साथ ही होने वाले संयोगिता के

^१ धा० २७; अ० २. कवि० ६ तथा २. दो० २ आ; स० ३.२६ तथा ३.४४ ।

^२ धा० १०७-११२, अ० १३. साट० २-साट० ७; स० ६१.९; ६१.१८; ६१.२७; ६१.३९; ६१.४९; ६१.६२ ।

^३ अ० १३. साट० २; स० ६१.९, धा० १०७ [धा० में यह शब्दावली छूटी हुई है, किन्तु मो० में है] ।

स्वयंवर के लिए एक विशिष्ट योग युक्त मुहूर्त निश्चित हो गया और उस मुहूर्त को ध्यान में रखते हुए पृथ्वीराज ने कन्नौज पर चढ़ाई कर दी :—

सैयंवर सग अरु जग्गु काज ।
विद्वज्जन बुलि दिनधरहु आज ॥^१
रवि जोग पुष्य ससि तीय धाम ।
दिन धरिग देउ पंचमि प्रमान ॥^२
पर उछह देखित भयो मलान ।
विग्रहन टेस चढ़ि चाहुवान ॥

अतः यह प्रकरण न केवल सर्वथा असंगत है, यह कल्पना भी कि उक्त मुहूर्त के साल भर आगे-पीछे तक पृथ्वीराज जयचन्द के यज्ञ-विध्वंस और सयोगिता के अपहरण के लिए कन्नौज ~~ज~~ सकता था, नितान्त हास्यास्पद है ।

यह अवश्य है कि वे गद्य-वार्त्ताएँ जो मो० में विभिन्न रानियों का इस प्रसंग में उल्लेख करती हैं धा० में नहीं हैं, किन्तु गद्य-वार्त्ताओं के विषय में, जैसा ऊपर कहा है, इन प्रतियों के प्रतिलिपिकार बहुत साग्रह नहीं जात होते हैं, क्योंकि दोनों में ऐसी अनेक गद्य-वार्त्ताएँ आती हैं जो एक में हैं तो दूसरी में नहीं हैं, इसलिए दोनों के इस पाठांतर पर अधिक बल नहीं दिया जा सकता ।

फलतः (१) 'लघुतम रूपान्तर' की दोनों प्राप्त प्रतियाँ (धा० मो०) 'पृथ्वीराज रासो' के एक छन्द-चयन मात्र की प्रतियाँ हैं,

(२) यह छन्द-चयन 'पृथ्वीराज रासो' के 'लघु पाठ' (अ० फ०) से किया गया है, तथा

(३) छन्द-चयन के अनन्तर भी इस पाठ (धा० मो०) में प्रक्षेप किया गया है ।

इसलिए इस पाठ (धा० मो०) को 'पृथ्वीराज रासो' का 'लघुतम पाठ' या उन्ही अर्थों में 'लघुतम रूपान्तर' कहना और यह समझना कि इसे 'पृथ्वीराज रासो' का मूल—या कम से कम प्राचीनतम—पाठ माना जा सकता है, ठीक नहीं है ।

किन्तु इधर और अधिक अध्ययन करने पर उक्त लेख में उठाई गई शंकाओं में से कुछ के किंचित् भिन्न समाधान मुझे स्वयं मिले, जिनका उल्लेख यथाक्रम नीचे किया जा रहा है ।

धा० पाठ का अन्तिम दोहा तथा उसकी पुष्पिका में दिया हुआ रचना का "प्रिथीराज चहुआण रासु (= रासउ) रसाल" नाम किसी भी अन्य प्रति में—मो० तक में—नहीं मिलते हैं । धा० के इस अन्तिम दोहे के स्थान पर जो छन्द समस्त पूर्ण पाठ की प्रतियों में समान रूप से मिलता है, वह [मो० के अनुसार] निम्नलिखित है :—

मरण चंद बरदीआ राजधुनि साह हन्युं (= हन्यउ) सुनि ।

पुष्पांजलि असमान सीस छोडि (= छोडी) त देवतनि ।

मेछछ अवधित धरणि वरणि नव त्रीय सूहसिग ।

तिनहि तिही सं योति (= जोति) योति (= जोति) योतिहि (= जोतिह) संपत्तिग ।

रासु (= रासउ) असंभु नवरस सरस चहु चंदु (छन्दु ?) कीअ अमीअ सम ।

शृंगार वीर करुण विभक्षु (विभक्षु ?) भअ रुद सूत (संत ?) हसंत शम (सम) ॥

धा० के उक्त अन्तिम दोहे का भाव प्रायः वही है जो इस छन्द का है, दोहे की प्रथम पक्ति की शब्दावली तक इस छन्द की भी प्रथम पक्ति में मिलती है : दोहे के 'मरण', 'चंद' तथा 'नरिंद' इस

^१ धा० ३३; अ० ६, पद० २ : स० ४८, ७१ ।

^२ धा० ३६; अ० ६, पद० ४; स० ४८, ९९-१०० तथा ४८, १२७ ।

छन्द की प्रथम पंक्ति में मिलते ही है—केवल दोहे के 'नरिंद' के स्थान पर छन्द में उसका पर्याय 'राज' शब्द आता है; दोहे की दूसरी पंक्ति का पूर्वार्द्ध भी इस छन्द की अन्तिम पंक्ति के पूर्वार्द्ध के रूप में मिलता है, केवल दोहे के 'रसाल' के स्थान पर छन्द में 'असंभु' तथा उसके 'निबन्धि' के स्थान पर इसमें 'सरस' शब्द आते हैं। ऐसा लगता है कि धा० के किसी पूर्वज में उसके अन्तिम पत्र के क्षत-विक्षेप होने के कारण छन्द इस प्रकार त्रुटित हो गया था कि उसके प्रथम चरण के 'मरन चन्द वरदिआ राज' तथा पंचम चरण के 'रासउ असंभु नवरस' मात्र शेष रह गये थे और इन्हीं से, कुछ घटा-बढ़ा कर, सार्थक पाठ देने की दृष्टि से धा० पाठ का उक्त दोहा बना लिया गया, क्योंकि इतने बड़े और सुनियोजित काव्य का उपसंहार मूल में 'रासउ रसाल नवरस निबन्धि अचरिज इदु फणिद' मात्र शब्दों के द्वारा हुआ हो, ~~यथा~~-नायक पृथ्वीराज का मरण एक अति सामान्य घटना के रूप में 'मरणहु चन्द नरिंद' शब्दों से उल्लिखित मात्र हुआ हो, और गोरी के बध पर कवि ने कोई टिप्पणी उसमें न की हो यह भी सम्भव नहीं ज्ञात होते हैं। धा० का पाठ प्रक्षेप मुक्त नहीं है, यह जैसा हमने ऊपर देखा है त्रुटित उक्त-श्रृंखलाओं से प्रमाणित है, इसलिए इस समाधान के सम्बन्ध में शंका के लिए कोई कारण न होना चाहिए।

पुष्पिका में आए हुए 'रसाल' शब्द का समाधान भी उपर्युक्त ही ज्ञात होता है। धा० के किसी पूर्वज आदर्श में उसके अन्तिम पत्र के क्षत-विक्षेप हो जाने के कारण यदि पुष्पिका निकल गई हो और प्रतिलिपि-परम्पराओं में कहीं वह भी उपर्युक्त दोहे की भाँति गढ़ ली गई हो तो कुछ आश्चर्य नहीं।

जहाँ तक 'रसाल' के 'चयन' या 'संग्रह' ग्रन्थ के लिए प्रयुक्त होने की बात है, वह अपनी जगह पर ठीक लगती है, किन्तु दोहे में 'रसाल' शब्द 'नवरस' के प्रसंग में 'रसपूर्ण' के अर्थ में यदि प्रयुक्त हुआ हो, और उसी से वह उस दोहे के साथ गढ़ी गई पुष्पिका में भी आ गया हो तो असम्भव नहीं है।

धा० की प्रसंग-त्रुटियों के जो उल्लेख किए गए हैं, उनमें से प्रथम और द्वितीय 'द्रव्य प्राप्ति' और 'दिल्ली दान' प्रकरणों की है। विवेचन की सुविधा के लिये इन्हीं के साथ धा० की उस प्रसंग-त्रुटि को भी लेना होगा जिसका उल्लेख उक्त लेख में धा० मो० तथा अ० फ० की सामान्य प्रसंग-त्रुटि के रूप में बाद में किया गया है, जो 'दिल्ली किल्ली' प्रकरण की है और उपर्युक्त दोनों के बीच में पड़ती है। ये छन्द ऐसा लगता है कि पहले धा० परम्परा के पूर्वागत पाठ में नहीं थे, पीछे पाठमिश्रण के द्वारा उसमें आए : उक्त अन्य प्रति में ये छन्द एक ही प्रकरण के रूप में या एक साथ पृथ्वीराज के 'वंशोत्पत्ति प्रकरण' के बाद दिए हुये थे, और उससे मिलान करने पर मिलान करने वाले को जब यह दिखाई पड़ा कि धा० के उसको उपलब्ध पूर्वज में ये नहीं हैं, उसने इन्हें धा० के उक्त पूर्वज में रख लिया। पुनः ऐसा लगता है कि यह अन्य प्रति अथवा इसका कोई पूर्वज किसी ऐसे पाठ के छन्द-चयन के द्वारा तैयार किया गया था जिसमें ये समस्त छन्द एक ही प्रकरण में आते थे। ऊपर हमने देखा है कि म० में उसके दूसरे खण्ड 'अबुद खण्ड' के बाद ही बिना किसी अथ-इति के कुछ छन्द आते हैं जो अ० फ० में उपर्युक्त दूसरे खण्ड में पूर्ण रूप से सम्मिलित कर लिये गये हैं : अ० फ० में न केवल म० की निम्नलिखित 'अबुद खण्ड' विषयक पुष्पिका नहीं रह गई है :—

“इति श्री कवि चन्द विरचिते श्री पृथ्वीराज रासके अबुद खण्ड दुतीयर ॥

इन अतिरिक्त छन्दों की क्रम संख्या भी उसी क्रम में कर दी गई है जिसमें पर्ववर्त्ती छन्द आते हैं। धा० २५, २६ इस अंश के प्रारम्भ के हैं, धा० २७ इस अंश के मध्य का है और धा० २८, २९ तथा ३० इस अंश के अन्त के हैं। धा० २६ ऊपर दिया जा चुका है, धा० २५ निम्नलिखित है :—

राजजं भजमेर केलि कविलं त्रितां रता संभरी।

दुद्धारा भर भार नीर वहनो दहनो दुरग्रं अरी।

सोमसो सुर नद वद गहिला वहिलावन वासिनं।

निरमानं विवनान जानि कविता दिल्लीपुर भासिनं ॥

धा० २७, २८ तथा २९ भी उद्धृत है। धा० ३० निम्नलिखित है :—

एका दस सय पच दह विक्कम साकु अनन्द ।

तिहि पुर रिपु जय हरूण भयो प्रिथिराज नरिन्द ॥

अतः उक्त पाठ-चयन की प्रति यदि म० अथवा अ० फ० परम्परा की किसी प्रति से तैयार की गई हो तो आश्चर्य न होगा। यहाँ पर यह शंका अवश्य उठाई जा सकती है कि छन्द-चयन की यह परम्परा विचित्र सी लगती है, किन्तु इस प्रकार की एक परम्परा के प्रमाण 'पृथ्वीराज रासो' के ही पाठों में मिलते हैं। रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन की दो प्रतियाँ इसी प्रकार की हैं ~~यह~~ टॉड सग्रह की प्रति संख्या १६० तथा १६१।^१ इन दोनों में छन्द-सकलन मनमाने ढंग से किया गया है।

उक्त सग्रह की १६० संख्यक प्रति के प्रथम खण्ड में, जिसे 'आदि पर्व' कहा गया है, केवल दस रूपक हैं और ये दस रूपक ठीक-ठीक वे ही हैं जो शा० उ० स० के प्रथम दस हैं। प्रथम चार रूपकों तक आदि देव, धर्म, कर्म तथा मुक्ति की स्तुति है, पाँचवें रूपक में पूर्ववर्ती कवियों की स्तुति है, जिसमें चंद द्वारा अपनी रचना को उनका 'उच्छिष्ट' कहा गया है, रूपक ६ तथा ७ में उसके 'उच्छिष्ट' कहने पर चंद की खी शका करती है, रूपक ८ में चंद उसका समाधान करता है, रूपक ९ में वह पुनः उसी सम्बन्ध में शका करती है, और रूपक १० में चंद उसका समाधान करता है; यही पर 'आदि पर्व' की 'इति' की जाती है। ग्रन्थ का विषय क्या है और किस प्रकार उसके रचयिता को ग्रन्थ-रचना के लिए प्रेरणा मिली, यह सब कुछ नहीं कहा जाता है। इस प्रकार प्रकट है कि इस पाठ में खण्ड के प्रारम्भ के ही रूपक देकर उसकी इति दे दी गई है।

द्वितीय खण्ड में भी उस पाठ के उस खण्ड के केवल प्रारम्भ के तीन रूपक हैं और वे उसी क्रम में दिए हैं जिस क्रम में वे शा० उ० स० में मिलते हैं, तीसरा रूपक तो पूरा दिया भी नहीं गया है जिससे कृष्ण कथा तक भी पूरी नहीं हो पाई है, और स० २. ५७ पर खण्ड समाप्त कर दिया जाता है यद्यपि पुष्पिका में खण्ड को 'दशावतार वर्णन खण्ड' कहा जाता है। किन्तु इसीलिए नवे तथा दसवे अवतारों का नामोल्लेख तक नहीं हो पाता है।

तृतीय खण्ड में 'दिल्ली कीली' कथा है। इस खण्ड के प्रथम २० रूपक वे ही हैं जो शा० उ० स० के इस खण्ड के हैं और ठीक उसी क्रम में भी हैं। बीसवें रूपक में कीली को दोबारा शुभ सुहूर्त में गाढ़ने का उल्लेख होता है और उसके अनन्तर ही खण्ड का ३१वाँ रूपक (स० ३.४४) — जो बीच का एक रूपक है और जिसमें स० १६०७ में मेवातपति के द्वारा दिल्ली की धरा कीँ जीते जाने की भविष्यवाणी है — दे दिया जाता है। यह भविष्यवाणी किसने की, क्यों की, आदि के सम्बन्ध का कोई विवरण नहीं है। यही पर खण्ड की 'इति' दे दी जाती है।

चौथा खण्ड 'कन्हपट्टी समय' है जो उस पाठ में पाँचवाँ है। इसमें खण्ड के प्रारम्भ के १६ रूपक शा० उ० स० पाठ के अनुसार ही आते हैं, जिनमें प्रताप सी के पृथ्वीराज की सभा में आने तक की कथा आती है; आगे क्यों कन्ह ने उसे मार डाला और इस पर किस प्रकार रष्ट होकर पृथ्वीराज ने उसकी आँखों पर पट्टी बँधने का दण्ड दिया, जो कथा का सबसे आवश्यक भाग है, नहीं आता है।

इस प्रति का पाँचवाँ खण्ड 'लोहाना आजान बाहु समय' है जो उस पाठ का चौथा खण्ड है। अपवाद-स्वरूप यह खण्ड पूरा है और शा० उ० स० के खण्ड के समान है।

^१ इन प्रतियों के माइक्रोफिल्म प्रयाग विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में हैं।

प्रति के शेष खण्डों की दशा वही हैं जो इन पाँच खण्डों की बताई गई है। कहने को इसमें शा० उ० स० पाठ के प्रायः समस्त खण्ड हैं, किन्तु यह छन्द-संकलन मात्र, पूर्ण पाठ नहीं हैं।

टॉड संग्रह की १६१ संख्याक प्रति प्रथम खण्ड में द० के पाठ का अनुसरण करती है और तदनन्तर ना० परिवार की किसी प्रति के पाठ का।

इसके प्रथम खण्ड के रूपक ३५ (स० १ ११२) तक परीक्षित को सर्वदशन से मृत्यु का शाप मिलने तक की कथा आती है, जो कि पिंमल कर्ता नाग के अवतार प्रसंग में कही गई है। किन्तु इसी रूपक के अनन्तर 'इति दुहा राकस कथा' उल्लेख मिलता है, जिससे यह प्रकट है कि बीच के अनेक छन्द, जिनमें दुहा राकस की कथा तक पृथ्वीराज के पूर्वजों की कथा आती थी, छोड़ कर उस कथा की 'इति' मात्र दे दी गई है।

इसके अनन्तर वीसलदेव के छत्र धारण करने से कथा फिर चलती है—यह प्रति के आदर्शका रूपक ९७ (स० १ ३४०) है, और वीसल की कथा भी पूरी नहीं हो पाती कि प्रथम खण्ड समाप्त कर दिया जाता है; पृथ्वीराज के शेष पूर्वजों तथा उसके जन्म आदि की कथा छोड़ दी जाती है, यद्यपि इस खण्ड की पुष्पिका है "इति . . . अर्बुद उत्पत्ति चहुआन उत्पत्ति दुहा उत्पत्ति प्रीथीराज जन्म नाम कथा प्रथम खण्ड समाप्त।"

इसके बाद 'दशावतार वर्णन खण्ड' आता है, किन्तु कथा वाराह अवतार तक (स० २.१५८) ही आकर रुक जाती है, राम तथा वृष्ण अवतारों तक की कथा नहीं आती है। किन्तु तदनन्तर पुनः अनेक छन्द और कोई खण्ड भी छोड़कर इति 'ढोली कीली कथा' की दी जाती है।

इसके अनन्तर 'अथ हुसेन कथा' लिखकर वह कथा दी जाती है जो स० के खण्ड ११ में आती है, किन्तु स० ११.२५ तक के ही छन्द आते हैं, जिनमें किस प्रकार अरब खा से शहाबुद्दीन गोरी को चित्ररेखा मिलती है, यहा तक भी कथा पूरी नहीं कही जाती है और इति 'चित्ररेखा पात्र कथा' की दे दी जाती है।

यही दशा प्रति के अन्य खण्डों के पाठ की भी है, यद्यपि प्रति पूर्ण है और 'वाणवेध खण्ड' तक के छन्द इसमें आते हैं।

इन दो उदाहरणों से यह प्रकट है कि रचना की कुछ ऐसी प्रतियाँ भी तैयार की जाती थीं जिनमें प्रत्येक खण्ड के कुछ छन्द रख लिए जाते थे। किसलिए ऐसा होता था, यह एक भिन्न प्रश्न है, जिस पर विचार करना यह आवश्यक नहीं है।

धा० मो० की प्रसंग-त्रुटियों में से वे जो लेख में संख्या (३) पर दी गई हैं, अ० फ० के खण्ड ३, ४, ५ से सम्बन्धित हैं। अ० फ० खण्ड ३ में जयचन्द तथा सयोगता का पूर्व-परिचय है; खण्ड ४ में पृथ्वीराज-गोरी युद्ध है, और खण्ड ५ में पृथ्वीराज-भीम चौलुक्य युद्ध है।

जहाँ तक खण्ड ३ की बात है उसमें, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, विजयपाल की दिग्विजय में (अ० ३. नारा० १, दो० २, दो० ३) भी उन में से अनेक देशों का उल्लेख होता है जिनका पीछे जयचन्द की विजयों में (अ० ६. साट० २, ९ भुज० ३ = क्रमशः धा० ४८, १६१) हुआ है, यथा : तिरहुत, गुड, तिल्लिग, गोवाल-कुड कर्णाट और गूर्जर।

जहाँ तक खण्ड ४ तथा ५ की बात है, ऊपर हम देख चुके हैं कि जिन सामंतों के उल्लेख इनमें वर्णित युद्धों में होते हैं, उनसे सर्वथा भिन्न सामंतों को पीछे (अ० ७. त्रोट० २ = धा० ८०) को इन युद्धों में विजय का श्रेय दिया जाता है। इससे प्रकट है कि अ० के खण्ड ४ तथा ५ की कल्पना अ० ७. त्रोट० २ = धा० ८० की रचना के भी बाद—जो स्वतः एक प्रक्षेप प्रतीत होता है जैसा हम आगे देखेंगे—किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा की गई जिसका ध्यान कैवास-वध प्रकरण के इस छन्द पर नहीं गया था।

धा० मो० की प्रसंग-त्रुटियों में से वे जो लेख में संख्या (४) पर बताई गई हैं, संयोगिता के पृथ्वीराज-प्रेम विषयक उसके और उसकी सखी के बीच हुए संवाद से सम्बन्धित हैं। अन्य प्रतियों में इस प्रसंग में धा० मो० के अतिरिक्त जो छन्द आते हैं, उन पर विचार करना आवश्यक है। धा० ४६ तथा धा० ४७ के बीच धा० मो० के अतिरिक्त समस्त प्रतियों में एक ही छन्द आता है, जो निम्नलिखित है :—

अथवा राजन राजगृह अथवा माइ लुहानि ।

विधि बंधिय पटल सिरह सुप कहि मंदौ जानि ॥ (अ० ६. दो० ६)

अर्थात् संयोगिता ने कहा, “चाहे वह (पृथ्वीराज) राजन्य और राजगृह में [उत्पन्न] हो चाहे, हे सखी, वह लुहान (लघु या हीन) हो, जो कुछ भी विधाता ने सिर (भाग्य) के पटल पर बंध दिया, [उसके सम्बन्ध में] मुख से कुछ कह कर तुम मानो मद (बुरा) करती हो ॥”

इस कथन का भाग्यवाद बाद में आए हुये छन्द धा० ४७ के पृथ्वीराज-स्तवन के विरुद्ध पड़ता है जिसमें संयोगिता ने पृथ्वीराज को एक पराक्रमी वीर बताया है, जिसने अनेक देशों पर विजय प्राप्त की है।

धा० ४७ तथा धा० ४८ के बीच केवल अ० फ० में तीन छन्द आते हैं, जो अन्य समस्त प्रतियों में इनके बहुत पूर्व आते हैं; ये छन्द पूर्ववर्ती वर्णन के हैं भी, संवाद के नहीं हैं। इनका वही स्थान सम्भव है जो इनका अ० फ० के अतिरिक्त प्रतियों में है। इस प्रकार वास्तव में धा० ४७ तथा धा० ४८ के बीच कोई छन्द किसी भी प्रति में नहीं आते हैं। धा० ४८ तथा धा० ५२ के बीच अ० में भी वे ही छन्द आते हैं जो धा० मो० में हैं। धा० ५२ तथा धा० ५३ के बीच धा० मो० के अतिरिक्त सभी प्रतियों में निम्नलिखित दो दोहे आते हैं :—

तुव सम मात न तात तन गात सु रतरियाहं ।

जुवनु धन अस्थिर रहै अंभु कि अजुरियाहं ॥ (अ० ६. दो० ९)

ताहि अनुग्रह तुम करहु जौ तुम सखी समान ।

हौं लज्जा करि का कहौं तुम मो तात प्रमान ॥ (अ० ६. दो० १०)

इनमें से प्रथम ही पूर्णतः सङ्गत और सुनिर्मित है : सखी ने धा० ५२ में यौवन की जिस महत्ता का प्रतिपादन किया है, उसका अच्छा उत्तर इस दोहे में है, और इसकी आवश्यकता है, क्योंकि अन्यथा, जैसा लेख में कहा गया है, संयोगिता सखी के उक्त कथन को सुन कर निरुत्तर रहती है। दूसरा दोहा अवश्य अनावश्यक ही नहीं प्रक्षिप्त भी लगता है : सखी से अनुग्रह न करने का जो अनुरोध संयोगिता करती है, और फिर उसे “तात (पिता ?) समान” कहती है, ये दोनों बातें एक असमर्थ प्रक्षेपकार के प्रयास की ओर स्पष्ट संकेत करती हैं।

धा० ५३ और ५४ के बीच केवल अ० फ० में दो छन्द आते हैं, जो संवाद के नहीं हो सकते हैं। ये दोनों छन्द अन्य समस्त प्रतियों में संवाद से कुछ पहले आते हैं और वही संगत हो सकते हैं।

इस प्रकार (४) संख्यक प्रसंग-त्रुटियों में एक मात्र धा० ५२ तथा ५३ के बीच की प्रसंग-त्रुटि मान्य लगती है, किन्तु उनके बीच में आया हुआ केवल अ० ६. दो० ९ प्रसंगसम्मत है, दूसरा स्पष्ट प्रक्षेप लगता है।

(५) संख्यक प्रसंग-त्रुटि योद्धाओं की उस नामावली के अभाव के विषय की है जो पृथ्वीराज के साथ कन्नौज जाते हैं और कन्नौज-युद्ध में उसके साथ भाग लेते हैं। किन्तु ऊपर दिखाया जा चुका है कि इस नामावली में ऐसे अनेक नाम आते हैं जिनका तदनन्तर कोई उल्लेख नहीं होता है, न जिनके सम्बन्ध में यही कहा जाता है कि वे कन्नौज-युद्ध में मारे गए अथवा वे पृथ्वीराज के साथ दिल्ली लौटे (अ० १२, पद० ३)। अतः यह नामावली भी प्रक्षिप्त लगती है।

इस प्रकार धा० तथा मो० पाठों की जो प्रसंग-त्रुटियाँ लेख में (३), (४), (५), (६)

संख्याओं पर ही दी गई हैं, उनमें से एक ही—जो यौवन की महत्ता विषयक कथोपनयन से सम्बन्धित है—वास्तव में प्रसंग-त्रुटि है, शेष के स्थान पर जो छन्द धा० मो० के अतिरिक्त प्रतियों से मिलते हैं, वे प्रसंग-सम्मत नहीं हैं और प्रक्षिप्त लगते हैं।

जहाँ तक धा० मो० में पाई जाने वाली नर्तकियों की नामावली विषयक छन्द की उस पाठ-त्रुटि की बात है, जो अ० फ० में भी पाई जाती है, वह प्रक्षेप-सम्बन्ध के कारण ही नहीं, अन्य प्रकार से भी धा० मो० के अ० फ० सम्बन्धित होने पर आ सकती थी।

उक्त लेख में धा० मो० के प्रक्षेपों की जो बात कही गई है, वह ठीक है और उनमें पाई जाने वाली उक्ति-श्रुत खला सम्बन्धी त्रुटियों से और भी पुष्ट हुई है।

अतः उक्त लेख में प्रस्तुत किए गए परिणामों को अब संशोधित रूप में इस प्रकार रखना अधिक उचित होगा—

(१) 'लघुतम पाठ' की दोनों (प्रतियों) प्राप्त धा० तथा मो० मूलतः किसी पूर्ण पाठ की प्रतियाँ थीं किन्तु बाद में उस में कुछ छन्द एक ऐसी प्रति से लेकर मिला लिए गए जो ग्रन्थ के छन्द-चयन के किसी पाठ की थीं;

(२) इस अन्य प्रति का छन्द-चयन रचना के 'लघु पाठ' की म० या अ० फ० जैसी किसी प्रति से किया गया था।

(३) धा० तथा मो० के पाठों में प्रक्षेपों का भी अभाव नहीं है।

(४) फिर भी, धा० तथा मो० के पाठ समस्त प्राप्त पाठों में से मूल के सबसे अधिक निकट पहुँचते हैं।

अब प्रश्न धा० और मो० के पाठों के बीच शेष रहा। दोनों में अन्तर अधिक नहीं है : फिर भी मो० में ऐसे छन्द हैं जो प्रक्षेप-पूर्ण पाठ-वृद्धि के परिणाम हैं और धा० में नहीं हैं। उदाहरणार्थ : आबू-राज सलष कन्नौज के युद्ध में लड़ता हुआ मारा जा चुका है (मो० ३५० = धा० २९९, मो० ३५१ = धा० ३०१), उसका पुत्र जैत भी 'आबूपति' होकर गोरी-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में वीरगति को प्राप्त हो चुका है (मो० ४५४ = धा० ३६२), फिर भी मो० में सलष को गोरी-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में सम्मिलित किया गया है (मो० ४५६, ४५७, ४५८, ४५९)। धा० में यह उल्लेख-वैषम्य नहीं है; इसके अतिरिक्त ऐसे कोई भी उल्लेख-वैषम्य नहीं हैं जो धा० में हों और मो० में न हों। और, यह कहा जा चुका है कि धा० के प्रायः सभी छन्द मो० में आते हैं। अतः यह सुगमता से जाना जा सकता है कि धा० स्थूल रूप में मो० की तुलना में एक पूर्वतर स्थिति का पाठ देती है।

फिर भी हम ऊपर देख चुके हैं कि धा० का पाठ सर्वथा मूल का नहीं हो सकता है। अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि आकार-प्रकार में वह मूल के सबसे अधिक निकट है एवं उत्तरोत्तर उससे बड़े पाठ मूल से उत्तरोत्तर दूर और दूरतर होते गए हैं।

३. पृथ्वीराज रासो का मूल रूप (आकार)

हम देख चुके हैं कि धा० पाठ भी रचना के मूल आकार में सुरक्षित नहीं है, यद्यपि वह मूल के निकटतम प्रमाणित होता है, अतः रचना का मूल आकार निर्धारित करने की आवश्यकता बनी रही जाती है। प्रश्न यह है कि वह किस प्रकार निर्धारित हो सकता है। किसी लेखक की अपनी प्रति अथवा उसकी प्रमाणित प्रतिलिपि के अभाव में उसकी रचना का मूल रूप तभी सुगमता से निर्धारित हो सकता है जबकि उसकी दो या अधिक ऐसी प्रतियाँ उपलब्ध हों जो परस्पर विकृति-सम्बन्ध से सम्बन्धित न हों, अर्थात् जो अलग-अलग प्रतिलिपि परम्पराओं की हों। किन्तु 'पृथ्वीराज रासो' की ऐसी कोई भी दो प्रतियाँ उपलब्ध नहीं हैं। उदाहरण के लिये जिन छन्दों के द्वारा ऊपर उल्लिखित निम्नलिखित छन्द-शृंखलाये त्रुटित होती हैं, वे सभी प्रतियों में समान रूप से पाये जाते हैं :—

- (१) धा० ६८ तथा ७० के बीच,
- (२) धा० १४२ तथा १४६ के बीच,
- (३) धा० १९३ तथा १९५ के बीच, और
- (४) धा० २९० तथा २९३ के बीच।

प्रश्न यह है कि ऐसी स्थिति में रचना के मूल आकार तक पहुँचना किस प्रकार संभव है। इसकी एक मात्र व्यावहारिक विधि यही प्रतीत होती है कि मूल के निकटतम प्राप्त पाठ धा० से किसी प्रकार से प्रश्नेषो को अलग किया जाये; और इस दृष्टि से हम निम्नलिखित उपायों का अवलंबन कर सकते हैं :—

(१) ऊपर हम देख चुके हैं कि रचना में अनेक स्थलों पर उक्ति-शृंखला मिलती है, धा० के जो छन्द या वाताये इन शृंखलाओं को अतिक्रान्त करते हों, उन्हें बिना इसके विपरीत प्रमाण के मिले प्रक्षिप्त मान लेना चाहिये।

(२) ऊपर हम यह भी देख चुके हैं कि रचना में अनेक स्थलों पर छन्द-शृंखला मिलती है, धा० के जो छन्द या वाताये इन शृंखलाओं का अति क्रमण करती हों, उन्हें भी बिना इसके विपरीत प्रमाण के मिले प्रक्षिप्त मान लेना चाहिए।

(३) धा० में जहाँ पर दो छन्द एक ही वृत्त—या लगभग एक ही वृत्त—के हों और उनकी शब्दावली और उनके अर्थों में इतना ही अन्तर हो जितना 'पाठांतर' में हो सकता है, वहाँ पर दो में से एक ही छन्द को स्वीकार करना चाहिए।

(४) धा० के जो छन्द शेष अन्य प्रतियों में न मिलते हों, बिना विपरीत प्रमाण के मिले उन्हें प्रक्षिप्त मान लेना चाहिए।

(५) धा० के जो छन्द या छन्दाश किसी भी प्रति में किसी भी छन्द या छन्दाश की पुनरावृत्तियों के बीच में आते हों, उन्हें विपरीत प्रमाण के अभाव में प्रक्षिप्त मान लेना चाहिये। अन्तिम के सम्बन्ध में कुछ विस्तार से हमें समझ लेना चाहिए।

किसी भी पहले से प्रस्तुत प्रतिलिपि के पाठ में जब पाठ-वृद्धि की जाती है, तब यथास्थान हस पद बनाकर या तो पाठ-वृद्धि का अंश हाशिए में लिख दिया जाता है और या तो—यदि वह अंश कुछ बड़ा हुआ—अलग कागज पर लिख कर उस प्रति में रख दिया जाता है। हस पद कभी-कभी भूल से नहीं बनाया जाता है, हाशिए में लेख यों ही लिख दिया जाता है, अथवा उक्त सशोधित प्रति से प्रतिलिपि करने वाले का ध्यान हस पद पर नहीं जाता है। इसके अतिरिक्त, हाशिया कम ही चौड़ा होता है, जिससे एक छोटे से छन्द का भी लेख उसमें किसी एक ही पंक्ति के सामने समाप्त न होकर कई पंक्तियों के सामने लिखा जाकर पूरा होता है। परिणाम यह होता है कि यदि हसपद न बनाया गया अथवा उसपर प्रतिलिपिकार का ध्यान न गया, तो हाशिए के उक्त लेख के सामने पड़ने वाला छन्द या छन्दाश प्रतिलिपि में कभी-कभी दो बार लिख उठता है : एक बार तो उक्त बढ़ाये गये लेख के पूर्व और पुनः उक्त लेख के अनन्तर। अतः छन्दों की पुनरावृत्तियों के बीच आने वाले अंशों के बाद में बढ़ाए हुए होने की संभावना बहुत होती है।

(६) धा० के जो छन्द किसी भी प्रति के छन्दों की क्रम-संख्या में व्यवधान उपस्थित करते हों, उन्हें विपरीत प्रमाण के अभाव में प्रक्षिप्त मान लेना चाहिए।

आगे इन्हीं उपायों की सहायता से धा० के प्रक्षिप्त छन्दों का निर्धारण किया जा रहा है।

उक्ति-शृंखला का अतिक्रमण

धा० में निम्नलिखित स्थलों पर उक्ति शृंखला का अतिक्रमण मिलता है :—

- | | |
|--------------------------------|------------------------------------|
| (१) धा० ६८ तथा ७० के बीच, | (२) धा० १२१ तथा १२२ के बीच; |
| (३) धा० १२९ तथा १३० के बीच, | (४) धा० १४२ तथा १४६ के बीच; |
| (५) धा० १८६ तथा १८७ के बीच, | (६) धा० १९२ तथा १९३ के बीच, |
| (७) धा० १९३ तथा १९५ के बीच, | (८) धा० २४२ तथा २४४ के बीच; |
| (९) धा० २६९ तथा २७० के बीच, | (१०) धा० २९० तथा २९३ के बीच, |
| (११) धा० ३५८ तथा ३६० के बीच, | (१२) धा० ३८१ तथा ३८२ के बीच, तथा |
| (१३) धा० ४२० तथा ४२२ के बीच। | |

नीचे आवश्यक अंश उद्धृत करते हुए अन्तर्साक्ष्य की दृष्टि से क्रमशः इन पर विचार किया जा रहा है।

(१) धा० ६८ : रतिपति मुच्छिद्य लच्छि तनु तरनी रवन वय काज ।

तडित करिग अंगुल धरह वान करिग (भरिग-पाठां०) प्रिथीराज ॥

वार्त्ता—एक वाण तो राजा चूक्यो। जांहनै कांख विचि आघात भयो। कइमास परन डारि दिये। कइवासेनोक्त ।

धा० ६९ : अरुजनो नाम नास्ति दशरथो नैव दृश्यते।

स्वामिनो आखेटकव्रती वाणो न चतुरो नरो ॥

वार्त्ता—दूसरउ वाण आन दियउ ।

धा० ७० : भरिग वान चहुवान जानि दुर देव नाग नर ।

सुटि दिटि रस डुलिग चुक्कि निक्करिग इक्क सर ।

उभय आनि दिय हस्थि पूठि पावारि पचार्यो ।

वानी वर तरकंत छुटि धार धर उपार्यो ।

इय कब्बु सब्बु सरसइ मुनित फुणि त क्हो कविचंद तव ।

इम परयो अवास अयासते जिम निस....नछत्रपति ॥

यहाँ हम देखते हैं कि धा० ६८ का 'भरिग वान प्रिथिराज' तथा धा० ७० का 'भरिग वान चहुवान' सर्वथा एक है, और बीच में आई हुई दो वार्त्ताओं तथा श्लोक में वे ही बातें कही गई हैं जो धा० ७० में आती हैं, और वह भी उपर्युक्त 'भरिग वान चहुवान' के अनन्तर । वार्त्ताएँ तो इस विषय में स्पष्ट हैं, किन्तु श्लोक धा० ६९ का कथन भी पृथ्वीराज के द्वारा छोड़े हुए प्रथम वाण के चूक कर निकल जाने पर ही कहा जा सकता था, इसलिए उसकी स्थिति भी वही है जो ऊपर उद्धृत वार्त्ताओं की है । फलतः यह प्रकट है कि धा० ६९ तथा ७० के बीच आया हुआ सम्पूर्ण अंश प्रक्षिप्त है ।

(२) धा० १२१ : नृप भ्रमिग कहंगि (कहंगि-शेष में) पहु पुव्व देस ।

अरिय नीर (अरिनयर-शेष में) नीर उत्तर कहेस ।

वर सिंघु विघु कनवज्ज राउ ।

निहि चडिउ स्वर्ग धुरि धर्म चाउ ॥

धा० १२२ : रवि तुम्हइ समुहउ उहइ इह तुम्ह मग्ग समुज्ज ।

भुल्लि भट्टि एव्हि चलयो कहि उत्तर कनवज्ज ॥

उद्धरण की प्रथम दो पक्तियों तथा अंतिम दो पक्तियों में उक्ति-शृंखला स्पष्ट है, बीच की दो पक्तियाँ सर्वथा निरर्थक और असंगत लगती हैं और उक्ति-शृंखला को भग करती हैं । ये पक्तियाँ वस्तुतः धा० ३१ के प्रथम दो चरणों से बनी हैं, जो हैं :—

कलि अथ पथ कनउज्ज राज । सतपित्त सेव धरि धम्म चाउ ॥

(३) धा० १२९ : चख चंचल तन सुद्धि त सिद्धिहु मनु हरिह ।

कचन करस झकोलति गंगह जलु भरहि ।

वार्त्ता—ते किसी एक पनिहारी है ।

धा० १३० : भरति नीर सुन्दरी ।

ति पानि पत्त अंगुरी ।

धा० १२९ के 'गंगह जलु भरहि' तथा धा० १३० के 'भरति नीर सुन्दरी' में उक्ति-शृंखला प्रकट है, बीच में आने वाली वार्त्ता उस उक्ति-शृंखला को भग करती है और साथ ही शीघ्रक प्रकृति की तथा अनावश्यक भी है । म० ना० द० उ० स० में बीच में कुछ छन्द आते हैं जो इस उक्ति-शृंखला को और भी अधिक त्रुटित करते हैं ।

(४) धा० १४२ : दह दिसि देखि हअगय भार ।

जु दिखलत (पुच्छत-पाठां०) चंद गयो दरबार ।

धा० १४३ : भाखन भाख सुमिहलहि सि देइ सिसिर बन इंद ।

रथनवै नवि रसस अरु जोध सुपंग नरिंद ॥

धा० १४४ : निसि नौबति पल प्रात मिलि हय गय दिखयो त्राज ।

विरंचि सुहरु करिवर गह्यो किनहि क्हो प्रिथिराज ॥

धा० १४५ : कहे चंद दंडु न करहु रे सामन्त कुमार ।

तिन्न लख निसि दिन रहंहि इह जैचन्द दुभार ॥

वार्त्ता—चांद राजा के दरबार ठाढ़ो रह्यो ।

धा० १४६ : पुच्छन (पुच्छत-शेष में) चंद गयो दरबारह ।

हेजम जह रघुवंस कुमारह ।

यहाँ हम देखते हैं कि धा० १४२ का 'पुच्छत चन्द गयो दरबार' और धा० १४६ का 'पुच्छत

चन्द गयो दरबारह' एक हैं, बीच में आए हुए धा० १४३ की सार्थकता और संगति स्पष्ट नहीं हैं; शेष के सम्बन्ध में यहाँ पर दर्शनीय यह है कि समय प्रभात का नहीं था। सूर्य तो (धा० १२२) उदित हो चुका था, उसके बाद पृथ्वीराज और उसके साथी गगातट के प्रातः कालीन दृश्यों को देखते हुए (छन्द १२९) नगर-दर्शन करने लगे थे और (छन्द १४२) उन्होंने कन्नोज की हाटों का निरीक्षण कर लिया था। फिर, इसी छन्द के अन्त में आता है कि "पूछता-पूछता चन्द के दरबार को गया।" पृथ्वीराज को 'सामंत कुमार' कहना भी कुछ ठीक नहीं लगता है। वार्ता के बाद आए हुए छन्द धा० १४६ में 'पुच्छत चन्द गयो दरबारह' द्वारा चन्द के दरबार की ओर जाने मात्र की बात कही गई है, किन्तु वार्ता में कहा गया है "चन्द राजा (जयचन्द) के दरबार में पहुँचकर खड़ा हो रहा।" इन उल्लेख-विरोधों से भी प्रकट है कि धा० १४२ तथा धा० १४६ के बीच का अंश प्रक्षिप्त है। इनमें से धा० १४३ अ० फ० में नहीं है, शेष में है, और धा० १४४ तथा १४५ सभी में है। वार्ता धा० के अतिरिक्त किसी में नहीं है।

(५) धा० १८६ : जाम एक छनि रास घटि सत्तिहु सत्ति न वारि ।

किहु कामिनो मुख (सुष-शेष में) रतिसमर नृप निय निंद विसारि ॥

वार्ता— राजा कइसी नीद विसारी ।

धा० १८७ : सुख सुख त्रिदंग तार जयनै रागं कला कोकिलं ।

कंठी कंठ सुवासिनं मनयितं कामंकला पोखनं ।

उभ्री रंभ पिता गुना हरिहरी सुश्रीय पवनायता ।

ए सह सुख सुखाइ तार साहिता जै राय रायं गता ॥

दोनों छन्दों में उक्ति-शृंखला प्रकट है : धा० १८६ के 'सुख' को लेकर धा० १८७ में उसका विस्तार दिया गया है। दोनों के बीच धा० में एक वार्ता आती है, वार्ताकार को यह ध्यान नहीं था कि धा० १८७ में धा० १८६ के 'सुख' का विस्तार किया गया है, न कि 'नीद' का। इसलिए वार्ता स्पष्ट ही प्रक्षिप्त है। म० शा० उ० स० में धा० १८६, तथा धा० १८७ के बीच कुछ छन्द आते हैं। वे भी इसी प्रकार प्रक्षिप्त हैं।

(६) धा० १९२ : थिर रहै थवाहस (थवाइत-शेषमें) विजुकर छंडि सिकरहि

... .. पान देहि दिठ हथ्य गहि ॥

मो० का इन पंक्तियों का अत्रुटित पाठ है :—

थिर रहिहि थवाइत वज्र कर छंडि सीकारह बिनु परिहि ।

जिहि असी लष पल्लाणिइहि तिन पान देहि दिठ हथ्य गहि ॥

वार्ता—राजा आइसुते गीज सोधा चहुवान को भट्ट आयो है ताहि इतनो दज्यो ।

धा० १९३ : सुनि तमूल सा पट्टि करि वर उट्टिय डिठि वंक ।

मनो मोहनि सुमन मलिंग मनु नव उदित मयंक ॥

यहाँ पर धा० १९२ के अन्तिम शब्दों 'पान देहि दिठ हथ्य गहि' तथा धा० १९३ के 'सुनि तमोल' का उक्ति-सम्बन्ध प्रकट है, और बीच में आई हुई वार्ता उस उक्ति-शृंखला को भंग तो करती ही है साथ ही असंगत और निरर्थक भी है। म० ना० द० उ० स० में यहाँ कुछ छन्द आते हैं; वे भी उक्त उक्ति-शृंखला को इसी प्रकार भंग करते हैं।

(७) धा० १९३ : सुनि तमूल सा पट्टि करि वर उट्टिय डिठि वंक ।

मनो मोहनि सुमन मलिंग मनु नव उदित मयंक ॥

धा० १९४ : तुलसाइ विप्र हस्तेषु विभूतिः वर योगिना ।

चंद्रिय पुत्र तँवोरह त्रीणि देयानि सादरं ॥

धा० १९५ : भुव वकीय करि पंगुनृप अप्पिग हत्थ तबोल ।

मनहु वज्जगति वज्ज गहि सह अप्पिया सजोर ॥

यहाँ हम देखते हैं कि धा० १९३ की वर 'उट्टिय डिठि वक' और धा० १९५ की 'भुव वंक्रिय करि' की शब्दावली एक है, और बीच में जो आर्या आती है वह सर्वथा असंगत है; उसमें कहा गया है : "तुलसी-दल विप्र के हाथ में, विभूति श्रेष्ठ योगी के हाथ में, और तावूल चंडीपुत्र के हाथ में सादर देना चाहिये ।" किन्तु जयचन्द किन अर्थों में 'चंडी पुत्र' है, यह नहीं ज्ञात होता है : 'चण्डी पुत्र' का अर्थ 'चण्डी का भक्त' या 'चण्डी का उपासक' ही हो सकता है, किन्तु जयचन्द एक राजा के रूप में अपने अतिथि चन्द के सामने उपस्थित हुआ है, चण्डी के उपासक के रूप में नहीं और न उसे रचना भर में कहीं भी चण्डी-भक्त कहा गया है। इसके अतिरिक्त इस आर्या के कथन की प्रतिक्रिया पृथ्वीराज में क्या दिखाई पड़ी, धा० १९५ में इसका कोई उल्लेख नहीं किया जाता है। अतः यह प्रकट है कि धा० १९३ तथा धा० १९५ के बीच आई हुई आर्या प्रक्षिप्त है।

(८) धा० २४२ धा० का पाठ प्रथम चरण के पूर्वार्ध के बाद किसी प्रतिलिपिकार की भूल से वही हो गया है जो धा० २०० का है और धा० २४४ का पाठ त्रुटित है, २४३, तथा धा० २४४ का पाठ अत मो० से दिया जा रहा है :—

धा० २४२ : सुनि वज्जन रज्जन चडिग बहु पण्णर समहाउ ।

मनुह लंक विग्रह करन चलु (चलउ) रघुपति राय ॥

धा० २४३ : चडिय सूर सामंत सह नृप धर्मह कुल काज ।

सह समूह दिखिय नयन त्रिणवर गिन प्रथिराज ॥

धा० २४४ : राम दल वंनर सयल उहि रण्ण वहु बंधु ।

असी लण्ण सु(सउ)सम भिरिग सु धनि प्रथिराज नरेंद ॥

धा० २४२ के दूसरे तथा धा० २४४ के प्रथम चरण में उक्ति-शृंखला स्पष्ट है—धा० २४४ में कवि ने धा० २४२ की उक्ति पर भी एक विशेषोक्ति जड़ने की चेष्टा की है; बीच में आया हुआ धा० २४३ उसे त्रुटित करता है और असंगत भी है।

(९) धा० २६९ : सर एक स विज्जत (विध्वत-शेष में) सत्त वरी ।

दल लिखित नयक तठक (टठक-शेष में) परी ।

जहं जानइ सूरन भीर परी ।

ठिल्लइ चहुवान तु अप्प वरी ।

धा० २७० : ठठक्की सेन समि मीर मिले ।

विडुरिय सेन सब्बे नकिल्ले (निकल्ले-पाठां०) ।

धा० २६९ से उद्धृत दूसरी 'दल...ठठक्क परी' तथा धा० २७० की प्रथम पंक्ति के 'ठठक्की सेन' में उक्ति-शृंखला प्रकट ही है, बीच की दो पंक्तियाँ उस शृंखला को भंग करती हैं और स्पष्ट ही अनावश्यक तथा असंगत हैं : विपक्षी दल का पृथ्वीराज के शौर्य से ठठक पड़ना उसकी एक निश्चित समय की मनस्थिति की सूचना देता है, जिसके बाद उसका 'विडरना' एक संलग्न परवर्ती क्रिया के रूप में प्रारम्भ हो जाता है। इन दोनों के बीच में उस दल का पृथ्वीराज के दल पर आक्रमण करते रहना और पृथ्वीराज का उन्हें पिछड़ाते रहना एक भिन्न और अधिक व्यापक समय की अपेक्षा करते हैं।

(१०) धा० २९० : अरि अह्न रत्त कोतुक कलह भयो न भवह भिरंत भर ।

सामंत निघटं तेरह परिग नृपति सुपट्टिअ पंच सर ॥

धा० २९१ : दुइ सर अस्व सि पक्खरह दुइ नृप इक संजोगि ।

जुरि धर अस्थि नरस्थि करि अब जंगलवै भोगि ॥

धा० २९२ : रयन रास (राम) रावत्त रनह रन रग रंग रंग रस ।

उठत एकु धावत्त पंच वाहत्त वीर दस ।

वलि चालड मोहिल्ल मयंदु मारुव मुह मंधड ।

अरुन अरि लंधिया पग पारस दल खंधड ।

नारयन नीर बंबड वरन दिव दिवानै गो देवरड ।

कलहंत जीव सामंत सुअ रहिउ रशमि सिर सेहरड ।

धा० २९३ : संज्ञ सपत्तिअ (सुपट्टिअ-वाठा०) नृपति रन द्विय पारस परि कोटि ।

रहे सूर सामंत जकि दिखिय नृपति तन चोट ॥

धा० २९० की अन्तिम शब्दावली 'नृपति सुपट्टिय पंच सर' और धा० २९३ की प्रारम्भ की शब्दावली 'सज्ञ सुपट्टिय नृपतिरन' में साम्य यथेष्ट है। बीच में धा० २९१ में 'पंचसर' का जो विवरण प्रस्तुत किया गया है, वह सर्वथा अग्राह्य है। 'सपट्टिअ' का अर्थ धा० २९० तथा २९३ दोनों में 'अलंकृत' या 'विभूषित' प्रतीत होता है [दे० पाइअ स ह महण्णवो]। धा० २९० में कहा गया है कि 'नृपति (पृथ्वीराज) पाँच वाणों से अलंकृत हुआ।' और धा० २९३ में कहा गया है कि "सन्धा को [इस प्रकार] अलंकृत नृपति....." किन्तु धा० २९१ में पाँच वाणों से अलंकृत होने के स्थान पर उसे दो वाणों से अलंकृत कहा गया है, शेष तीन में से दो वाण उसके अश्व के पक्खर में और एक स योगिता को लगे कहे गए हैं। यहाँ पर कथन वैषम्य स्पष्ट है। धा० २९२ में धराशायी सामंतों की सूची मात्र बड़ी करने का प्रयास है। इसलिए प्रकट है कि धा० २९० तथा २९३ के बीच आने वाले छन्द उनकी उक्ति-शृंखला को भङ्ग करते हैं और उनके विरुद्ध भी जाते हैं।

(११) धा० ३५८ : दरस दल वडल विषम राग लाग अलि निसान ।

मिले पुण्व पच्छिम हुति चाहुवान सुरताण ॥

धा० ३५९ : दुह दल डोल सुमाल हलि दुहुं दल सिन्धुअराग ।

जु रहिति सुभग सुभाग तिन मुरि कायरह अभाग ।

धा० ३६० : मिले जाइ चहुवान सुरताण खगगे ।

मनो वारुणी छवे वारुणी लगगे ।

धा० ३५८ के दूसरे चरण की शब्दावली धा० ३६० के प्रथम चरण में आई है, इसलिए दोनों में उक्ति-शृंखला प्रकट है। धा० ३५९ इस शृंखला को भंग करता ही है और असंगत भी है : अभी तो युद्ध प्रारम्भ भी नहीं हुआ है, केवल दोनों ओर से सेनाएँ इकट्ठी हुई हैं, अतः सैनिकों के युद्ध में 'जुटने' या युद्ध से 'मुड़ने' का कोई प्रसंग नहीं है।

(१२) धा० ३८१ : बन बहु विभूति अवधूत दीस ।

कर अनन्य (अन्यन—मो०) दीधी असीस ॥

वार्ता— विरदावली किसी दीन्ही ।

साहि झार साहिब सार ।

वरिया साहि कंध कुदार ।

सबर साहि मान मर्दन ।

निबर साहि थापना चार ।

दुरी साहि धारी तरक्क ।

नारी साहि मस्तक त्रिसूल ।

लोली साहि पूर्व साहि ।
पश्चिम साहि दखनी साहि ।
चारि पाहि बेला वीधाहित वलेश्वर ।

धा० ३८२ : दइत असीस न सिर नयो वन अच्छयो फुरमान ।

दुसह भट्ट पिख्यौ नयन के पूछ्यो सुरतान ॥

धा० ३८१ के अन्तिम चरण के 'दीधी असीस' तथा धा० ५८२ के प्रथम चरण के 'दइत असीस' में उक्ति-शृंखला स्पष्ट है, बीच की समस्त पक्तियाँ इस उक्ति-शृंखला को भंग करती हैं, और सर्वथा अनावश्यक और बहुत-कुछ निरर्थक हैं । वे स्पष्ट ही बाद में रखी गई लगती हैं, जैसा उनके शीर्षक 'विरदावली किसी दीन्ही' से प्रकट है ।

(१३) धा० ४२० : लइ दसण रसण दसरध हुई बहु कपट विधिग सघण ।

सुलताण पर्यो खां पुक्कीयो त दिन चंद राजन मरण ।

धा० ४२१ : परत भूमि सुलताण खान मिलि पलक पिट्टि सिर ।

मइं वरजिउ बहु वार साहि दुसमन भसंभ वर ।

भोग छडि करि जोग भट्ट आयो जु संधि करि ।

वचन विधि तिहि कमय लियो गोरीह नरिंद हरि ।

दुक मंझि दुंद दुकरे करहु तवसु साहि गोरी धरउ ।

हजि जाण खाण इम उच्चरिय भव कवित्त कोइ कवि करउ ।

धा० ४२२ : सो मरणहु चंद नरिंद ।

रासउ रसाल नवरस निबंधि अचरिज इंदु फणिंद ॥

धा० ४२० के 'चंद राजन मरण' और धा० ४२२ के 'मरणहु चंद नरिंद' में उक्ति-शृंखला अति प्रकट है । धा० ४२१ में केवल धा० ४२० के 'सुलताण पर्यो खा पुक्कीयो' का अनावश्यक विस्तार किया गया है, जिसके कारण उक्ति-शृंखला समाप्त हो जाती है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जिन तेरह स्थलों पर पाठवृद्धि के कारण धा० में उक्ति-शृंखला का अतिक्रमण मिलता है, वह प्रक्षिप्त पाठवृद्धि के कारण है ।

परिणामस्वरूप उक्ति-शृंखलाओं को भंग करने वाले धा० के निम्नलिखित अंश प्रक्षिप्त प्रमाणित होते हैं :—

- (१) धा० ६८ के अनन्तर की वार्त्ता, धा० ६९ तथा धा० ६९ के अनन्तर की वार्त्ता,
- (२) धा० १२१ के अन्तिम दो चरण,
- (३) धा० १२९ के बाद की वार्त्ता,
- (४) धा० १४३, धा० १४४, धा० १४५ तथा धा० १४५ के बाद की वार्त्ता,
- (५) धा० १८६ के बाद की वार्त्ता,
- (६) धा० १९२ के बाद की वार्त्ता,
- (७) धा० १९४,
- (८) धा० २४३,
- (९) धा० २६९ के अन्तिम दो चरण,
- (१०) धा० २९१, धा० २९२,
- (११) धा० ३५९,
- (१२) धा० ३८१ के बाद की वार्त्ता, तथा
- (१३) धा० ४२१ ।

छंद-शृंखला-अतिक्रमण

धा० मे छंद-शृंखला के अतिक्रमण का एक ही स्थल है, जो निम्नलिखित प्रकार से मिलता है :—

धा० ४०२ : छन्द—सुरतान जमन फुरमान दीन । (१)

सब नयर छोरि घरियार लीन । (२)

सुक्किलिउ चंद राजनहि पास । (३)

तुम गहहु हम दिखवहि तमास । (४)

धा० ४०३ : दस हथ रखि दीनी असीस । (५)

सिर नयो नयो नहि मान रीस । (६)

राजन है सुरति इक्क । (७)

घरियार सत्त सर विद्ध नेक्क । (८)

वार्ता : हम तमास गीर हा भाई वे हुज [१] ब खा हबसी इसके साहिब कूं दस हथ राखि गहही कराउ राजा छइ दिखाउ किस्यो देख्यो ।

धा० ४०४ : दूहा—चक्खहीन दुव्वल निपत बंभन रहियो पासि ।

रोस अगनि तन निप जरइ भरि चितइ चिंता स ॥

वार्ता : राजा हे समस्या माहि आलीबाद दीन्हउ ।

धा० ४०५ : घर पंथ राइ आजान बाह ।

दुज्जने राइ वर वीर दाह ।

चालुक्क राइ पर पैजु पारि ।

पंगुरे राइ जग जगु ढारि ।

धा० ४०३ की पुनरुक्ति पर आगे विचार किया गया है : वहाँ हम देखते हैं कि कदाचित् पाठ-मिश्रण के कारण धा० ४०३ में धा० ४०५ की स्फुट पंक्तियाँ आ गई हैं । शेष पाठ में से प्रथम वार्ता धा० ४०२ के चरण ३ और ४ के भाव का अधिकांश में विस्तार करती है, द्वितीय वार्ता धा० ४०५ का शीर्षक मात्र देती है । अन्य अनेक प्रतियों में धा० ४०२ तथा धा० ४०५ एक ही रूपक के दो अंश हैं जो बीच की इन पक्तियों के द्वारा जुड़े हुए हैं :—

गयउ चंद तव तेहि ठाहि ।

नृप मित्त वयहुउ जहां चाहि ।

धा० ४०४ के 'बंभन रहियो पासि' की कोई संगति प्रसंग में नहीं है और किसी ब्राह्मण की सम्पत्ति में पृथ्वीराज और चन्द की गोरी का प्राणांत करने के सम्बन्ध की कोई बात होना असंभव भी थी, अतः धा० ४०४ स्पष्ट ही प्रक्षिप्त है । धा० पाठ में पृथ्वीराज के पास चन्द के जाने का भी कोई उल्लेख नहीं होता है, जैसा बीच की ऊपर उद्धृत पक्तियों द्वारा कुछ अन्य पाठों में हुआ है । इन दृष्टियों से विचार करने पर धा० में जो छन्द-शृंखला का अतिक्रमण हुआ है, वह स्पष्ट ही धा० ४०२ तथा धा० ४०५ के बीच प्रक्षिप्त सामग्री को रखने के लिए किया गया है ।

पाठांतर-ग्रहण

धा० १५० तथा १५२ :—

धा० १५० : तिकवि आइ कवियहि संपत्ते ।

नवरस भाख ज पुच्छन लत्ते ।

कवि अनेक बहु बुधि गुन रत्ते ।

कहि न एक कवि चन्द समत्ते ।

धा० १५२ : ते कवि आइ कवियहि संपत्तउ ।
गुण व्याकरणइ रहि रस रत्तउ ।
थकि प्रवाह गंगा मुख मंती ।
सुर नर स्रवण मंडि रहि चंती ।

दोनों छन्दों में अन्तर होते हुए भी प्रथम चरण के विषय में पूर्ण साम्य है, और दोनों छन्द एक-दूसरे के अत्यन्त निकट आते हैं, केवल एक छन्द बीच में पड़ता है, इसलिए दो में से एक धा० में अपने कुल के पाठ के अनुसार तथा दूसरा पाठ-मिश्रण के कारण किसी अन्य कुल के पाठ के अनुसार आया होगा। धा० १५२ सभी प्रतियों में समान रूप से मिलता है, जबकि धा० १५० की स्थिति विभिन्न प्रतियों में भिन्न-भिन्न है। मो० में धा० १५० है नहीं, अ० फ० में उसके केवल चरण २, ३, ४ हैं, दोनों पाठों में पहला चरण एक ही होने के कारण उसे फिर नहीं लिखा गया है, और म० ना० द० उ० स० में केवल प्रथम दो चरण हैं, शेष दो चरण नहीं हैं। इसलिए धा० १५० धा० १५२ का 'पाठांतर' मात्र लगता है जो हाशिए की भूल के कारण कुछ पहले लिख उठा।

(२) धा० १५५—५६ इस प्रकार हैं :—

अहो चंद बरदायि कहूं हूँ । (१)
कनकजह दिखन आय हूँ । (२)
जे सरसइ जवनहुं निप सचउ । (३)
गजपति गरुव गेह किमि गंजहु । (४)
किनि गुनि पंगु राइ मन रंजहु । (५)
जो सरसइ जानहु वर रचउ । (६)
तो अद्रिस्ट वरनहि निप संचउ । (७)

उपर्युक्त तीसरी तथा छठवीं पंक्तियाँ एक ही हैं, जिनमें पुनरावृत्ति हो गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि ४ वीं तथा ५ वीं पंक्तियाँ ६ठी-७वीं पंक्तियों के 'पाठांतर' के रूप में हाशिए में लिखी थीं—आशय दोनों पाठों का बहुत-कुछ एक है, किन्तु इन पाठांतर की पंक्तियों को सम्मिलित करते हुए उपर्युक्त तीसरी पंक्ति को प्रतिलिपिकार ने दो बार लिख डाला। विभिन्न प्रतियों में उपर्युक्त ४ वीं तथा ५ वीं पंक्तियों की स्थिति इस प्रकार है : मो० में ये पंक्तियाँ नहीं हैं, अ० फ० में ५ वीं पंक्ति नहीं है, म० ना० द० उ० स० में ५ वीं का एक और पाठ है : 'श्रीधर बरनि पंग मन रंजहु' और इस पाठ को लेकर पंक्ति ५ म० उ० स० में पंक्ति ४ के साथ दो बार आई है। म० द० उ० स० में पंक्तियाँ ४ और ५ पुनः उपर्युक्त पंक्तियाँ १, २ के स्थान पर भी आई हैं।

(३) धा० २०७ तथा धा० २०८ :—

धा० २०७ : सुनि वर सुन्दर उभय हुव स्वेद कंप सुर भंग ।
मनु कमलिनि कल समहरि अभृत करने तन रंग ॥
धा० २०८ : सुनि रव प्रिय प्रिथीराज कउ उभद रोम तिन अंग ।
सेद कंप सुरभंग भयउ सपत भाइ तिहि अंग ॥

धा० में इन दो छन्दों के बीच लिखा हुआ है "तथा अउर पाठांतर"। मो० में इनमें से केवल धा० २०७ है, अ० फ० में भी धा० की भाँति दोनों छंद हैं, केवल पाठांतर विषयक उल्लेख नहीं है। म० उ० स० में धा० २०७ के चरण १ का पूर्वाद्ध तथा धा० २०८ के शेष अंश है; ना० में म० उ० स० की भाँति एक दोहा की शब्दावली तो है ही, उसके बाद धा० २०७ का दूसरा चरण भी दे दिया गया है। इसलिए प्रकट है कि धा० २०८ धा० २०७ का 'पाठांतर' मात्र है।

पाठांतर-ग्रहण, के कारण परिणामतः धा० के निम्नलिखित छंद पाठ-वृद्धि के हैं :—
धा० १५०, १५६, २०८ ।

मो० अ० फ० म० ना० द० उ० ज्ञा० स० में छन्दाभाव

धा० के निम्नलिखित छन्द मो० अ० फ० म० ना० द० उ० ज्ञा० स० में नहीं हैं :—

(१) धा० १५७ : यह छंद धा० के अतिरिक्त किसी प्रति में नहीं है । यह प्रहेलिका के रूप में दिया गया नारी का नख-शिख है । यह जयचन्द को सम्बोधित किया गया है (चरण ५), किन्तु अभी चन्द जयचन्द के सामने पहुँचा नहीं है, जयचन्द के कविगण उसकी परीक्षा लेने आए हैं, और उन्होंने अदृष्ट जयचन्द का वर्णन करने को चन्द से कहा है । इसमें 'सुजानगिरि' की छाप (चरण ५) आती है, इसलिए यह छन्द चन्द का हो भी नहीं सकता है । यदि कहा जावे कि 'सुजानगिरि' जयचन्द का विशेषण है :

जयचन्द राय सुजानगिरि राठोर राय गुन जानिहै ।

तो यह कथन ठीक नहीं हो सकता है : 'गिरि' शब्द का इस प्रकार का प्रयोग कहीं नहीं देखा जाता है । अतः धा० १५७ प्रक्षिप्त है ।

(२) धा० ४२२ : यह छन्द भी धा० के अतिरिक्त किसी प्रति में नहीं है । यह निम्नलिखित है :—

दूहा—सा मरणहु चन्द नरिंद ।

रासउ रसाल नव रस निबन्धि अचरिज इंदु फणिंद ॥

निम्नलिखित कवित्त इसी विषय का है, जो शेष सभी प्रतियों में मिलता है (मो० पाठ) :—

कवित्त—मरन चंद बरदीआ राज धुनि सा हन्युं (= हन्यउ) सुनि ।

पुष्पांजलि असमान सीस छोडि (= छोडी) त देवतनि ।

मेछ अवधि त धरणि धरणि नव त्रीय सूहसिग ।

तिन हि तिही सं योति योति योतिहि संपत्तिग ।

रासु (= रासउ) असंभु नवरस सरस चंद चंदु (छंदु ?) कीअ अमीअ सम ।

शृंगार धीर करुण विभक्षु (= विभक्षु) भय रुद सूत (संत ?) हसंत सम ॥

दोहे के अधिकतर शब्द इस कवित्त में मिलते हैं, केवल अन्त के कुछ शब्द नहीं मिलते हैं । 'रासउ रसाल' शब्दावली पर विचार करते हुए इसलिए, जैसा पहले भी कहा जा चुका है, ऐसा लगता है कि कवित्त के किसी त्रुटित पाठ से धा० के दोहे की रचना की गई है ।

मो० अ० फ० म० द० उ० ज्ञा० स० में छन्दाभाव

धा० का निम्नलिखित छन्द मो० अ० फ० म० द० उ० ज्ञा० स० में नहीं है :—

(१) धा० ३५९ : ऊपर धा० की उक्ति-शृङ्खला-त्रुटियाँ दिखाते हुए यह दिखाया जा चुका है कि धा० ३५८ तथा ३६० में स्पष्ट उक्ति-शृङ्खला है, जिसको धा० ३५९ त्रुटित करता है जो प्रसंग में संगत भी नहीं है । अतः धा० ३५९ प्रक्षिप्त है ।

मो० अ० फ० म० ना० में छन्दाभाव

धा० का निम्नलिखित छन्द मो० अ० फ० म० ना० में नहीं है :—

(१) धा० ३६१ : धा० ३६० तथा ३६२ में स्पष्ट छन्द-शृङ्खला है, धा० ३६१ जिसको त्रुटित करता है । धा० ३६० में केवल निम्नलिखित पक्तियाँ हैं :—

मिले जाइ चहुवान सुरताण खगो ।

मनो वारुणी छवे वारुणी लगो ।

यह छन्द अधूरा है यह प्रकट है। यह भुजंगी है, जिसे धा० में गलत ही 'निबधु' कहा गया है, और भुजंगी रचना भर में कहीं भी दो चरणों का नहीं आया है, कम से कम चार चरणों का आया है। फिर इस छन्द का कथन भी अधूरा रह जाता है, वह धा० ३६१ के अनन्तर आई हुई भुजंगी धा० ३६२ में चलता रहता है। अतः धा० ३६१ प्रक्षिप्त है।

म० ना० द० उ० ज्ञा० स० में छन्दाभाव

धा० का निम्नलिखित छन्द म० ना० द० उ० ज्ञा० स० में नहीं है:—

(१) धा० १२३ : आगे हम देखेंगे कि यह छन्द ना० की पुनरावृत्तियों के बीच आता है और प्रसंग में अनावश्यक भी है। अतः यह छन्द प्रक्षिप्त है।

अ० म० में छन्दाभाव

धा० का निम्नलिखित छन्द अ० म० में नहीं है।

(१) धा० १ : इसकी प्रथम पंक्ति है :

प्रथम मंगल मूल श्रुत वीथ ।

और धा० २ की प्रथम पंक्ति है :

प्रथम भुजंगी सुधारी ग्रहण ।

अतः दोनों छन्दों को प्रामाणिक मानने पर 'प्रथम' विषयक पुनरुक्ति होती है, जिसका मूल रचना में इस प्रकार होना संभव नहीं लगता है। धा० २ सभी प्रतियों में मिलता है और धा० २ में प्रथम, द्वितीय आदि संख्या-शृंखला भी है, जो धा० १ में नहीं है। धा० १ वंदना का है भी नहीं, उसमें श्रुतियों, पुराणों आदि की उत्पत्ति विषयक उक्ति मात्र है, जो कि ग्रंथारंभ में उपयुक्त नहीं है। अतः धा० १ प्रक्षिप्त लगता है।

मो० में छन्दाभाव

धा० के निम्नलिखित छन्द मो० में नहीं हैं:—

(१) धा० १५० : यह, जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, धा० १५२ का 'पाठांतर' मात्र है और धा० १५२ सभी प्रतियों में है, इसलिए यह प्रक्षिप्त लगता है।

(२) धा० १५६ : यह जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, धा० १५५ का 'पाठांतर' मात्र है और धा० १५६ सभी प्रतियों में मिलता है, इसलिए यह प्रक्षिप्त लगता है।

(३) धा० २०८ : यह, जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, धा० २०७ का 'पाठांतर' मात्र है और धा० २०७ सभी प्रतियों में मिलता है, इसलिए यह प्रक्षिप्त लगता है।

(४) धा० २२४ : यह सुभ्रषित के ढंग का एक श्लोक है, जिसके न होने पर भी प्रसंग को कोई क्षति नहीं पहुँचती है, इसलिए यह प्रक्षिप्त लगता है।

(५) धा० २४३ : ऊपर हम देख चुके हैं कि धा० २४२ तथा २४४ में उक्ति-शृंखला है, जो धा० २४३ से त्रुटित होती है, अतः धा० २४३ प्रक्षिप्त है।

(६) धा० ३९६ : ऊपर हम देख चुके हैं कि धा० ३९५ तथा ३९७ में उक्ति-शृंखला है जो, धा० ३९६ से त्रुटित होती है, और धा० ३९६ प्रसंग-विरुद्ध भी है, क्योंकि पृथ्वीराज के पूर्व पराक्रम का, जो इस दोहे में आता है, यहाँ कोई प्रसंग नहीं है, अतः वह प्रक्षिप्त है।

(७) धा० ४२१ : ऊपर हम देख चुके हैं कि धा० ४२० तथा ४२२ में उक्ति-शृंखला है, जो धा० ४२१ से त्रुटित होती है, फिर उसमें आया हुआ 'तब सु साहि गोरी घाँउ' सर्वथा असंगत भी है, इसलिए यह छन्द प्रक्षिप्त है।

अ० फ० में छन्दाभाव

धा० के निम्नलिखित छन्द अ० फ० में नहीं हैं:—

(१) धा० ११४ : ना० के सख्या-व्यतिक्रम के छन्दो पर विचार करते हुए आगे देखेंगे कि यह छन्द प्रक्षिप्त है।

(२) धा० १२० : यह छन्द प्रसंग में आवश्यक है, क्योंकि पूर्ववर्ती छन्द में दिन का उल्लेख है और परवर्ती में प्रभात का, अतः बीच में रात्रि और उसके अनंतर प्रभात होने का उल्लेख होना चाहिए जो इसी छन्द में होता है। इसलिए यह छन्द अ० फ० में भूल से छूटा लगता है।

(३) धा० १४३ : हम ऊपर देख चुके हैं कि धा० १४२ तथा धा० १४६ के बीच स्पष्ट उक्ति-शृंखला है, इसलिए यह छन्द प्रक्षिप्त है।

(४) धा० १७० : प्रसंग में यह छन्द आवश्यक है। धा० १६९ में जयचन्द ने चन्द को पान अर्पित करने के लिए और उसके बहाने उसके अनुचर (पृथ्वीराज) का रहस्य जानने के लिए आदेश किया है कि कुमारियों ताबूल के साथ प्रस्तुत हो, धा० १७० उन्हें कुमारियों के सम्बन्ध में कहता है कि ऐसी कुमारियाँ जिनके हाथों के लिए राजाओं ने याचना की थी, चन्द को पान अर्पित करने के लिए चल पड़ीं, धा० १७१ में कहा गया है कि उन षोडश वर्षीया सुन्दरियों ने चतुर दासियों को साथ लेकर धवल-गृह छोड़ा। अतः धा० १७० इस प्रसंग में सगत लगता है और प्रक्षिप्त नहीं प्रतीत होता है।

(५) धा० २३२ : धा० २३१ तथा २३२ में स्पष्ट प्रसंग-शृंखला है : धा० २३१ में युद्ध में न प्रवृत्त हुए पृथ्वीराज को आता देखकर संयोगिता ने यह कह कर सिर पीट लिया है कि 'जिस प्रियजन के लिए लोगों उँगलियाँ उठे, उस प्रियजन का क्या प्रयोजन?' धा० २३२ में कहा गया है कि संयोगिता के इस वाक्य को सुनकर पृथ्वीराज के सामंतों ने कहा कि '[पृथ्वीराज यहाँ युद्ध से भयभीत होकर आया है उसे यह न समझना चाहिए, क्योंकि]' इसके साथ जो सामंत-भट्ट हैं, वे हाथियों को भी ठेल देते हैं।' अतः धा० २३२ प्रसंग में आवश्यक है और प्रक्षिप्त नहीं लगता है।

(६) धा० ३०८ : इस छन्द में 'कामाग्नि-भोग' की बात कही गई है, जो युक्ति-औचित्य की दृष्टि से ठीक नहीं है, अग्नि भोग की वस्तु नहीं हो सकती है, 'सरइ नि खलु लगत पलिति निरूप नयनन ति संयोग' के उत्तरार्द्ध का शेष वाक्य से कुछ सम्बन्ध भी नहीं जात होता है, फिर इस प्रसंग में केवल सामान्य विलास-वैभव का वर्णन किया गया है (धा० ३०६—३१२), उसके बीच संयोगिता और पृथ्वीराज के प्रेम की बातें लाना असंगत लगता है। अतः धा० ३०८ प्रक्षिप्त ज्ञात होता है।

(७) धा० ३५७ : मो० की पुनरावृत्तियों के प्रसंग में हम देखेंगे कि यह छंद उनके बीच आता है और प्रक्षिप्त है।

म० में छंदाभाव

धा० के निम्नलिखित छंद म० में नहीं हैं.—

(१) धा० १५ : आगे हम देखेंगे कि यह छंद ना० की पुनरावृत्तियों के बीच आता है और प्रक्षिप्त है।

(२) धा० ५२ : धा० ५१ के साथ इसकी उक्ति-शृंखला है, यह हम ऊपर देख चुके हैं, अतः यह छंद प्रक्षिप्त नहीं है।

(३) धा० ६१ : इसमें कैवोस-करनाटी केलिके प्रसंग में 'निमि भद्व' कहा गया है किंतु आगे इसी प्रसंग में धा० ८४ में 'उदित अगस्त' कहा गया है और कन्नौज-प्रयाण इसी घटना के बाद होता है, इसलिए धा० ६१ प्रक्षिप्त लगता है।

(४) धा० ८२ : आगे सू० की पुनरावृत्तियों पर विचार करते हुए हम देखेंगे कि यह उसकी पुनरावृत्तियों के बीच आता है और प्रक्षिप्त है।

(५) धा० १३७ : यह छंद धा० १३८ से प्रसंगतः संबद्ध है, धा० १३७ में कहा गया है:—

यह चरित्त कब लगि गिनै चलउ संदेह दुवार ।
और धा० १३८ की प्रथम पंक्ति है :—

देखिय जाइ संदेह सोह ।

अतः धा० १३७ प्रक्षिप्त नहीं हो सकता है ।

(६) धा० २८० : धा० २७९ तथा इस छन्द में उक्ति-शृंखला हम ऊपर देख चुके हैं, अतः यह छन्द प्रक्षिप्त नहीं लगता है ।

ना० में छंदाभाव

धा० का निम्नलिखित छन्द ना० में नहीं है :—

(१) धा० ८ : ना० की पुनरावृत्तियों में, आगे हम देखेंगे, यह उन छन्दों में आता है जो प्रक्षिप्त माने गए हैं ।

द० में छंदाभाव

धा० का निम्नलिखित छन्द द० में नहीं है :—

(१) धा० २१ : यह छन्द ग्रन्थ की छन्द-संख्या विषयक है, जिसमें “सहस्र पञ्च (या ‘सहस्र सप्त’) नवसिष” इसका आकार बताया गया है, किन्तु यह छन्द-संख्या ग्रन्थ के किसी पाठ में नहीं मिलती है, अतः छन्द प्रक्षिप्त लगता है ।

उ० ज्ञा० में छंदाभाव

धा० का निम्नलिखित छन्द उ० ज्ञा० में नहीं है :—

(१) धा० ८१ : स० की पुनरावृत्तियों पर विचार करते हुए आगे हम देखेंगे कि यह छन्द उनमें आता है और प्रक्षिप्त है ।

उपर्युक्त छन्दों के अतिरिक्त धा० में अनेक वार्त्ताएँ भी आती हैं, जिनमें से कुछ के सम्बन्ध में हम ऊपर उक्ति-शृंखला-त्रुटियों का विवेचन करते हुए हम विचार कर चुके हैं । शेष भी प्रायः उसी प्रकार की हैं और इनमें से एक भी समान रूप से शेष समस्त प्रतियों में नहीं पाई जाती है, अतः इन पर विचार करना अनावश्यक होगा । इस प्रकार धा० की समस्त वार्त्ताएँ प्रक्षिप्त लगती हैं ।

परिणामतः हम देखते हैं कि विभिन्न प्रतियों में न मिलने वाले धा० के छन्दों में से निम्नलिखित प्रक्षिप्त प्रमाणित होते हैं :—

मो० अ० फ० म० ना० द० उ० ज्ञा० स० में अप्राप्य	:	धा० १५७ ।
मो० अ० फ० म० द० उ० ज्ञा० स०	” :	धा० ३५९ ।
मो० अ० फ० म० ना०	” :	धा० ३६१ ।
म० ना० द० उ० ज्ञा० स०	” :	धा० १२६ ।
अ० म०	” :	धा० १ ।
मो०	” :	धा० १५०, १५६, २०८, २२४, २४३, ३९६, ४२१ ।
अ० फ०	” :	धा० ११४, १४३, ३०८, ५७
म०	” :	धा० १५, ६१, ८२ ।
ना०	” :	धा० ८ ।
द०	” :	धा० २१ ।
उ० ज्ञा०	” :	धा० ८९ ।

धा० अ० फ० ना० म० ज्ञा० उ० स० मे पुनरावृत्ति

(१) धा० २३९ के चरण २१ तथा ३६ :—

धा० २३९, २१ : निप जोइ फवज्जनि वट्टि लियं ।

धा० २३९, ३६ : निप जोइ फवज्जइ वंट लियं ।

ये दोनों चरण एक-दूसरे से इतने अभिन्न और दूर हैं कि कोई भी किसी के 'पाठांतर' के रूप में ग्रहण न किया गया होगा । मो० के अतिरिक्त सभी प्रतियों में ये पंक्तियाँ इसी प्रकार दो बार आती हैं, केवल मो० में धा० २३९ ३६ के स्थान पर है :—

निप इक इक योजन बंटि लियं ।

किन्तु यहाँ पर कन्नौज और दिल्ली की दूरी को एक-एक योजन करके बाँट लेने का कोई प्रसंग नहीं है, यह प्रसंग तो काफी बाद में आता है; और 'निप' (पृथ्वीराज) ने 'एक-एक योजन बाँट लिया' यह वास्तविक भी नहीं है, कन्नौज से दिल्ली की दूरी को उसके सामन्तों ने आपस में बाँटा है (धा० २६१) । इसलिए मो० का पाठ अग्राह्य है, और दूसरे स्थान पर भी धा० का पाठ ही ग्राह्य है, यह प्रकट है । प्रश्न यह है कि ऐसी पुनरावृत्ति क्यों हुई । यह पुनरावृत्ति पाठ-वृद्धि के कारण ही हुई शायद होती है । पुनरावृत्ति के बीच की पंक्तियों में चामंडराय के सेना के मुख पर नियुक्त होने का उल्लेख होता है, किन्तु पूरे कन्नौज-युद्ध में चामंडराय का उल्लेख पुनः कहीं नहीं मिलता है; इसी प्रकार आरम्भ, क्रूरम्भ, और मोरीराज की भी नियुक्तियाँ इन पंक्तियों में उल्लिखित हुई हैं, किन्तु कहीं भी इनका उल्लेख कन्नौज-युद्ध में अन्यत्र नहीं होता है । इसके विपरीत मोरीराज को सोमेश्वर और पृथ्वीराज दोनों ने अलग-अलग पहले दलित किया है (धा० १७, ४७), इस लिए उसका पृथ्वीराज के पक्ष में लड़ना असम्भव ही है । धा० में पूरे कन्नौज-युद्ध में ४६ योद्धाओं के नाम आए हैं ।^१ इन पंक्तियों में कुल छः नाम ही आते हैं, और उनमें भी तीन इस प्रकार गलत हैं यह प्रमाणित करता है कि ये पंक्तियाँ प्रक्षिप्त हैं और पुनरावृत्ति प्रक्षिप्त पाठवृद्धि के कारण हुई है ।

धा० मो० ना० ज्ञा० उ० स० मे पुनरावृत्ति

(१) धा० ४०३ : दस हस्थ रस्खि दीनी असीस ।

सिरु नयो नयो नहि मान रीस ।

राजन..... है सुरति इक्क ।

घरियार सत्त सर विद्ध नेक्क ।

धा० ४०५ : राजन सुदान है सुरत इक्क ।

घरिआर सत्त सिर विघन इक्क ।...

पहिचानि चंद वर धुनिग सीस ।

सिर नयो नयो नहि मान रीस ॥

दोनों छन्दों में साम्य इतना अधिक है कि 'पाठांतर' के नाते दोनों में से किसी एक को न लिया गया होगा । धा० ४०३ जहाँ पर है, वहाँ पर सर्वथा अस्मृत है; धा० ४०२ में गोरी ने चंद से कहा है कि वह पृथ्वीराज से घड़ियालों के वेधने की बात कहे और यदि पृथ्वीराज स्वीकार करे तो वह तमाशा देखे, धा० ४०३ के बाद एक वार्ता आती है, जिसमें गोरी हुजाबखाँ हबशी को हुक्म देता है कि वह चंद को पृथ्वीराज से दस हाथ दूर रख कर उससे बातें करावे, धा० ४०४ में आता है कि चंद ने राजा को दुर्बल और

^१ दे० धा० २५३, २५६, २८९, २९०, २९२, ३०४ ।

उदास पाया, इसके अनन्तर धा० मे एक शीर्षक जैसी वार्ता आती है कि चंदने राजा को आशीर्वाद दिया, धा० ४०५ मे उसका राजा को आशीर्वाद देना और उसे उस के वचन की स्मृति कराना आता है जिसमे उसने सात घड़ियालों को एक शर से वेधने की बात कही थी। ऐसी दशा मे प्रकट है कि धा० ४०३ की पंक्तियाँ अपने स्थान पर सर्वथा असंगत हैं। ये इतनी फुटकल भी हैं कि इनमे कोई एकसूत्रता नहीं है। लगता है कि किसी प्रति के क्षत-विक्षत हो जाने के अनन्तर एक पूरे रूपक की येही पंक्तियाँ ठीक-ठीक पढ़ी जा सकती थी और मिलान करते समय धा० ४०५ से इन्हे भिन्न छंद की पंक्तियाँ समझकर उसी प्रति से ये उतारी गईं। इसलिए धा० ४०३ उसमे पाठ-वृद्धि के रूप मे आया, यह प्रकट है।

धा० मे पुनरावृत्तियाँ

(१) धा० १२० तथा १८० :—

धा० १२० : भइत निसा दिस सुदित तिम उडनिष तेज विराज ।
कथित साथि कथहे कथा सुख सयन प्रिथिराज ॥

धा० १८० : भयत निसा दिसि सुदित वनु उड निष तेज विराज ।
कथिक सत्य (सत्य) कथहित कथा सुख सयन प्रिथिराज ॥

पाठ की दृष्टि से दोनों छन्द प्रायः परस्पर अभिन्न हैं और स्थान की भी दृष्टि से एक दूसरे से बहुत दूर हैं, इसलिए कोई भी किसी के 'पाठांतर' के रूप में ग्रहण किया हुआ नहीं हो सकता है।

अ० फ० के अतिरिक्त शेष प्रतियों मे धा० १२० के स्थान पर (मो० पाठ) है :—

त्रयत यांम वासर विसर घटिग हंस तनु रात ।

जुकछु इच्छि चच्छनु हूति (हुती) सै सव दिषव प्रात ॥

प्रसंग से यह प्रकट है कि धा० १२० के स्थान पर प्रभात होने का उल्लेख होना चाहिए जैसा मो० आदि हुआ मे है, क्योंकि धा० १२१ मे प्रभात-कालीन दृश्यों का वर्णन है, और धा० १८० के स्थान पर, जैसा सभी प्रतियों मे है, रात्रि होने का उल्लेख होना चाहिए, क्योंकि धा० १८१ मे जय-चन्द के 'अवसर' (नृत्य-संगीत-समाज) का वर्णन है। इसलिए यह स्पष्ट है कि धा० मे छन्द अपने वास्तविक स्थान के अतिरिक्त एक गलत जगह पर भी आ गया है। प्रश्न यह है कि ऐसा क्यों हुआ होगा। एक सम्भावना तो यह है धा० मे भी यहाँ वही दोहा था जो मो० आदि मे है और उसके 'त्रयत' को 'भइत' पढ़कर—क्यों कि पुरानी राजस्थानी लिपि के त्र और भ मे क्वचित् साम्य मिलता है—प्रतिलिपिकार ने स्मृति-भ्रम से उस दाहे के स्थान पर भी धा० १८० को लिख डाला। दूसरी संभावना यह है कि धा० के विसी पूर्वज मे पत्र चूटित होने के कारण इस छन्द का 'त्रइत' मात्र शेष था, उसको 'भइत' पढ़कर स्मृति-प्रमाद से धा० १८० को यहाँ भी लिख डाला गया। इसलिए यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित नहीं हो सकती है।

(२) धा० २०० तथा २४२ :—

धा० २०० : भय डामक दिसि विदिसि हुइ लोह पषर तिह राउ ।

मनु अकाल तिडिय सघन चल्या तु छूटि प्रवाह ॥

धा० २४२ : सुणिम वयण राजन चडिय बहु पक्खर भर राहु ।

मनु अकाल तेडिय सघन पवय छूटि परवाहु ॥

दोनों छन्दों में पाठ-भेद केवल दोनों के प्रथम चरणों के पूर्वाद्ध मे है, शेष छन्द दोनों मे एक ही है। किन्तु दोनों परस्पर इतने कम भिन्न होते हुए भी एक दूसरे से इतने दूर हैं कि कोई भी एक दूसरे के 'पाठांतर' के रूप में ग्रहण किया हुआ नहीं हो सकता है। वस्तुस्थिति क्या रही होगी, यह विचारणीय है।

मो० तथा अन्य प्रतियों में धा० २०० तो अपने स्थान पर है, किंतु धा० २४२ के स्थान पर (मो० पाठ) है :—

सुनि तज्जन रज्जन चडिग बहु पण्णर समहाउ ।
मनुह लंक विग्रह करन चलु (=चलउ) रघुपति राय ॥

धा० २०० तथा २०१ में उक्ति-शृंखला प्रकट है :—

धा० २०० : मनु अकाल तिडिध सवन चल्या तु छूटि प्रवाह ।

धा० २०१ : प्रवाली (प्रवाहे-शेष में) त तज्जी न लज्जी अहारे ॥

इसी प्रकार धा० २४१ तथा २४२ (मो० पाठ) में प्रसंग-शृंखला है । धा० २४१ में रण-वाद्यों के बजने का वर्णन है, और फिर कहा गया है :—

उष्ममा खंड नव नयन सरगी ।

भनो राम रावन्न हत्ये विलगी ॥

धा० २४२ (मो० पाठ) में बाघा को सुनकर चढ़ाई करने का उल्लेख है, और कहा गया है कि पृथ्वीराज जयचन्द्र से विग्रह करने उसी प्रकार चल पड़ा जैसे रावण से विग्रह करने राम चल पड़े थे । इसलिए प्रकट है कि धा० २४२ के स्थान पर भी गलत ढङ्ग पर धा० २०० आया हुआ है ।

यह पुनरावृत्ति भी पूर्ववर्ती की भाँति स्मृति-भ्रम से हुई लगती है । प्रथम चरण के उत्तरार्द्ध में दोनों में 'बहुपण्णर' आता था और एक का 'समहाउ' तथा दूसरे का 'भरराहु' (भरराउ-शेष में) भी एक से थे, इसलिए धा० २४२ के लिखते समय प्रतिलिपिकार ने 'बहुपण्णर' तक तो ठीक प्रतिलिपि की किंतु उसके बाद वह बहक गया और शेष शब्दावली स्मृति-भ्रम से उसने धा० २४२ के स्थान पर भी धा० २०० की लिख डाली । अतः प्रकट है कि यह पुनरावृत्ति भी पाठवृद्धि-जनित नहीं हो सकती है ।

मो० में पुनरावृत्तियाँ

(१) मो० २५२ तथा मो० २७२ :—

मो० २५२ : आलोक्य नृप नयनं वचनं धर्मस्य कातरं ।

स्वामि दोस भहं कावे सेमि निदा स उदये ॥

मो० २७२ : आलोकित नृप नयनं वचनं जिह्वा सु कातरा ।

श्रवन सुनत सामतया सुस्वामि निदा उदिमं तथा ॥

दोनों पाठों में पर्याप्त साम्य है, किंतु एक दूसरे से दोनों काफी दूर पड़े हैं इसलिए यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित हो सकती है, और न 'पाठांतर'-ग्रहण जनित । ऐसा लगता है कि पहले छंद मो० में उपर्युक्त दो में से एक ही स्थान पर था, किंतु किसी अन्य प्रति से मिलान करने पर मिलान करने वाले को यह छंद भिन्न स्थान पर मिला और उसने यह समझा कि उसकी प्रति में यह छंद नहीं है, इस लिए उक्त अन्य प्रति से इस भिन्न स्थान पर भी उसने छंद को उतार लिया ।

(२) मो० ३१४ तथा मो० ४४८ :—

दोनों छंद सर्वथा एक ही हैं, पाठ भी दोनों का सर्वथा एक ही है, यहाँ तक कि दोनों में निम्न-लिखित गलत पंक्ति अन्त में रूपान्तर से आती है :—

नृप हक हक योजन बाँटि लिखं ।

और दोनों एक दूसरे से बहुत दूर भी हैं, एक कन्नौज-युद्ध में और दूसरा गोरी-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में; अतः दो में से कोई भी पाठ 'पाठांतर' समझ कर न उतारा गया होगा । इस छंद में निर्वाण चन्देल के पृथ्वीराज के द्वाग सेना में एक विशिष्ट स्थान पर नियुक्त किए जाने की बात कही गई है,

और मो० ३१९ (= धा० २८९) में निर्वाण वीर के युद्ध में धराशायी होने का भी उल्लेख हुआ है, अतः यह निश्चित है कि छंद का वास्तविक स्थान मो० ३१९ (= धा० २८९) से पूर्व होना चाहिए, और मो० ४५० इसका वास्तविक स्थान नहीं हो सकता है। इसके अतिरिक्त इसके द्वितीय तथा पंचम चरण क्रमशः इस प्रकार हैं —

दुहु राय महा भर थं मिलिय ।

दुहु राय रषत्त^० ति रत्त उठे ।

इस लिए भी यह छंद पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध का होना चाहिए, पृथ्वीराज-गोरी युद्ध का नहीं। अब प्रश्न है कि मो० ४५० के स्थान पर यह पुनः कैसे लिख उठा। धा० में यह मो० ३१४ के स्थान पर ही है, किन्तु मो० के अतिरिक्त शेष प्रतियों में यह मो० ४५० के स्थान पर है। ऐसा लगता है कि पहले मो० में यह पहले स्थान पर ही था किन्तु बाद में किसी अन्य प्रति के अनुसार दूसरे स्थान पर भी रख लिया गया। यह अन्य प्रति भी मो० के ही कुल की लगती है, क्योंकि छन्द के अन्तिम चरण का उपर्युक्त गलत पाठ मो० में दोनों स्थानों पर आता है। फलतः यह पुनरावृत्ति भी पाठवृद्धि-जनित नहीं लगती है।

(३) मो० ४४६ के चरण ११, १२ तथा उसी के २९, ३० :—

चरण ११, १२ : प्रजरि (= प्रज्जरइ) पंथ पट्टनि ति सिंध ।

मिलि चलहि संग आरम्भ गिधि ॥

चरण २९, ३० : प्रजलहि पंथ पट्टनि (= पट्टनइ) सिंधु ।

मिलि चलिग अ अरंभ गिधु ॥

ये चरण दो बार 'पाठांतर'-ग्रहण के परिणाम-स्वरूप आए हुए नहीं हो सकते हैं, क्योंकि दोनों स्थान एक दूसरे से दूर हैं। धा० अ० फ० में ये चरण बाद वाले स्थान पर हैं और ना० शा० स० में पहले स्थान पर हैं, ऐसा लगता है कि मो० में पहले स्थान पर ये चरण अपने पूर्ववर्ती पाठ के कारण बने रहे, और दूसरे स्थान पर किसी अन्य प्रति के पाठ-मिश्रण के परिणाम-स्वरूप आ गए। फलतः यह पुनरावृत्ति भी पाठवृद्धि-जनित नहीं लगती है।

(४) मो० ४४६ के अन्तिम दो चरण तथा मो० ४५० :—

मो० ४४६ के अन्तिम दो चरण ,

उचरहि चंद भर भरन काज ।

राषीयु (= राषियउ) आज प्रथीराज राज ॥

मो० ४५० : उचरह चंदु भर भरन काज ।

रषिउ (= रषिअउ) आज प्रथीराज राज ॥

दोनों स्थानों पर इन चरणों का पाठ बहुत-कुछ एक ही है और ये दोनों स्थान एक दूसरे से कुछ दूर हैं, इस लिए यह पुनरावृत्ति 'पाठांतर'-ग्रहण के कारण हुई नहीं लगती है। दूसरे स्थान पर छन्द के केवल दो चरण हैं, चार भी नहीं—पूरा छंद मो० में ४० चरणों का है। इस लिए यह भी सम्भव नहीं है कि छंद को किसी अन्य प्रति में दूसरे स्थान पर देख कर वहाँ भी उतार लिया गया हो। यहाँ स्पष्ट ही पाठ वृद्धि जनित पुनरावृत्ति दिखाई पड़ती है। मो० ४४६ और ४५० के बीच आए हुए मो० ४४७, ४४८, ४४९ में से मो० ४४८ के विषय में कुछ ऊपर विचार किया जा चुका है। उसके साथ और दो छंद (मो० ४४७, ४४९ = धा० ३५६, ३५७) इस स्थान पर मो० के आदर्श में बढ़ाए गए, इसी कारण मो० में यह पुनरावृत्ति हो गई।

(५) मो० ५२२.४ तथा मो० ५२६.४ :

मो० ५२२.४ : सिर नाइ नहीं तिहि करीय रीस ।

मो० ५२६.४ : सिर नाइ नही मन भई रीस ।

दोनो का पाठ बहुत-कुछ समान है, और दोनो एक दूसरे से काफी दूर भी है, इस लिए दोनों में से कोई भी दूसरे का 'पाठांतर' समझ कर ग्रहण नहीं किया गया होगा । दोनो के बीच जो छद मो० में आते हैं, वे अन्य प्रतियों में भी आते हैं और प्रसंग में आवश्यक हैं । इस लिए लगता यह है कि मो० में पहले बीच के छद छूट गए थे, बाद में वे किसी अन्य प्रति के आधार पर बढ़ाए गए, जिससे पुनरावृत्ति हो गई । फलतः यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित नहीं लगती है ।

(६) मो० ५२६.२ तथा मो० ५२९.३ —

मो० ५२६.२ : अंषि पांन मनु चितह लग ।

मो० ५२९.३ : अंषि पांन मनु चितह लग ।

ये दोनो एक दूसरे से कुछ दूरी पर हैं, इस लिए यह सम्भव नहीं है कि दोनो में से कोई अन्य का 'पाठांतर' समझ कर ग्रहण किया गया हो । दोनो के बीच में जो छद मो० में आते हैं, वे अन्य प्रतियों में भी आते हैं और प्रसंग में आवश्यक हैं, इस लिए ऊपर की पुनरावृत्ति की भाँति यहाँ भी, ऐसा लगता है, मो० में कुछ छद छूट गए थे जिन्हें किसी दूसरी प्रति की सहायता से जब उतारा गया, उस अन्य प्रति का 'पाठांतर' भी उतर आया, यद्यपि वह 'पाठांतर' समझ कर नहीं उतारा गया । अतः यह पुनरावृत्ति भी पाठवृद्धि-जनित नहीं लगती है ।

अ० फ० में पुनरावृत्ति

(१) अ० १. अन्त तथा अ० २. भुज० १ : अ० फ० में अ० २. भुज १ के कुछ चरण अ० खण्ड १ के अन्त में भी आ गए हैं । दोनों के बीच में कोई छन्द नहीं है और पाठ भी दोनो का एक ही है, इसलिए लगता है कि अ० फ० के किसी पूर्वज में इस छन्द की पंक्तियाँ भूल से दो बार लिख उठी थीं ।

फ० में पुनरावृत्ति

निम्नलिखित पुनरावृत्ति फ० में ही है, अ० में नहीं है :—

(१) अ० फ० १४. कवि० १० के बाद फ० में आया हुआ दोहा तथा अ० फ० १४. दो० ३५ : अ० फ० १४. कवि० १० के बाद फ० में है :—

तब सावंत स सिर धरीय मुष जपी इह वैनु ।

तुम काहु के नृपति हौ विभीक गोरी सैन ॥

अ० फ० १४. दो० ३५ : तब सावंत जु सिर धरी मुष जंपयिहु वैन ।

जा सिर पर प्रथिराजु है कभौ गोरी सैन ॥

दोनों छन्द एक दूसरे से काफी दूर हैं और दोनो के पाठों में भी अधिक अन्तर नहीं है, इस लिए इनमें से किसी के भी 'पाठांतर' के रूप में ग्रहीत हुए होने की सम्भावना नहीं है । अतः यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित ही लगती है ।

इस पुनरावृत्ति के बीच में धा० ३४४, तथा ३४५ आते हैं ।

म० स० में पुनरावृत्ति

(१) म० १२. ५८६ तथा १२. ६०७ और स० ६१. २४५७ तथा ६१. २४८९ :—
म० १२. ५८६, स० ६१. २४५७ :

एक अंग तिय सकल बिकल उच्चरिय राजमुष ।

भृकुंठि भंक बंकुरिय सुतिहि लिषिय मद्धि रूप ।

विय विमान उप्पारि देव डुल्लिय मिलि चल्लिय ।

भ्रम भ्रमंकि आयास प्राण ति अच्छरि मिलीय ।
दस एक चवै कवि कवि कमल असि सुगति धूम करि करिय नृप ।
तन राज काज जाजह भिरिग सुमति सीह भई देव वप ॥

म० १२.६०७, स० ६१.२४८९ :

एक अग तिय सकल विकल विचरीय राज मुप ।
भृकुटि भग्न भंकुरिय प्रमान तरु लपित मद्धि रूप ।
विय विमान उचरीय देव डुल्लिय मिलि वहलीय ।
आभा भ्रम कीय आय पंति अच्छरीय सु मिलिलिय ।
दस एक चवकवि कवि कमल अस मग तिन भ्रम करिय नृप ।
तन राज काज जाजह भिरिग मित्त सीह मिलि देव विय ॥

दोनों छन्द एक दूसरे से दूर हैं, और दोनों के पाठ लगभग एक हैं, इसलिए इनमें से कोई भी किसी के 'पाठांतर' के रूप में ग्रहण किया गया होगा, इसकी सम्भावना नहीं है। पाठवृद्धि के कारण हुई पुनरावृत्ति की भी सम्भावना नहीं है, क्योंकि दूसरे स्थान पर युद्ध का कोई प्रसंग ही नहीं है; वहाँ तो युद्ध से लौटे हुए पृथ्वीराज और संयोगिता का केलि-विलास वर्णन प्रारम्भ हुआ है। इसलिए प्रकट है कि दूसरे स्थान पर यह छंद किसी प्रकार भूल से पहुँच गया है।

स० में दूसरे स्थान पर अन्तिम दो चरण भिन्न हैं। ऐसा लगता है कि छंद को उस प्रसंग में खपाने के लिए जाज के धराशायी होने की बात ठीक न समझ कर पाठ-परिवर्तन किया गया है। स० में इनका पाठ है :

स० ६१.२४८९ : संजोग जोग रचि व्याह मन गुरु जन सुत अरु निगम घन ।

प्रोहित पंग अरु द्वा रिपि प्रसन्न सुख वर दुष्प मन ।

किन्तु व्याह की बात तो बहुत पीछे आती है, और यह शब्दावली कुछ न कुछ वही की है :

स० ६१.२५३७ : हेम हयगय अंबरह दासि सहस सत दीन ।

प्रोहित पंग सुब्रह्म रिपि व्याहु विद्धि बहु कीन ॥

म० ना० स० में पुनरावृत्ति

(१) म० ५१ तथा म० ८१ (= घा० ५८), ना० २०.४० तथा २८.७२ के बाद का छंद और स० ५०.१, ५५.१२२ तथा ५७.३६ :—

सभी स्थानों पर इस छंद का पाठ प्रायः एक ही है और निम्नलिखित है :

तिहि तप आखेटक भमै थिर न रहै चहुवान ।

वर प्रधान जोगनि पुरह घर रषै वर वान ॥

सभी स्थल एक दूसरे से बहुत दूर हैं, इसलिये 'पाठांतर'-ग्रहण के कारण पुनरावृत्ति हुई, यह सम्भव नहीं है। म० ८.१, स० ५७.३६, ना० २८.७२ के बाद के छंद के स्थान पर इसकी संगति प्रकट है, वहाँ प्रसंग कैवास-करनाटी-केलि का है : प्रधान अमात्य (कैवास) का इसीलिए इस छंद में उल्लेख होता है और जहाँ म० ५.१ है और वहाँ कैवास का कोई प्रसंग नहीं आता है, केवल पृथ्वीराज के आखेट का प्रसंग आता है, इसलिए छन्द पूरा-पूरा उक्त स्थल पर सगत नहीं है। इसी प्रकार ना० २०.४०, स० ४५.१२२ के पूर्व जयचन्द की दिल्ली पर चढ़ाई वर्णित है, जिसका कैवास-करनाटी-केलि से कोई सम्बन्ध नहीं है जो परवर्ती स्थल पर मिलती है। केवल सामान्य प्रसंग-साम्य के कारण यह छन्द वहाँ भी रख लिया गया होगा, ऐसा लगता है; पाठवृद्धि के कारण यह पुनरावृत्ति हुई नहीं ज्ञात होती है।

म० मे पुनरावृत्ति

(१) म० ९ २४ तथा म० १२.६३० (= धा० ३१३) :—

म० ९.२४ : अह निसि सुधि न जानिय मानिय प्रौढ रति ।

गुर बंधव भृत भोय भइय रीति गति ॥

म० १२.६३० : अह निसि सुधि न जानिय मानिय प्रौढ रति ।

गुर बंधव भृत भोइ भई रीति गति ॥

दोनों छन्द एक दूसरे से बहुत दूर हैं, और पाठ दोनों का सर्वथा एक है यहाँ तक कि 'लोइ' और 'विपरीत' के स्थान पर दोनों में गठत पाठ 'भोइ' तथा 'रीति' है, इसलिए यह प्रकट है कि दोनों में से कोई दूसरे के 'पाठांतर' के रूप में नहीं ग्रहण किया गया होगा। किंतु यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित भी नहीं हो सकती है, क्योंकि प्रथम स्थान पर छन्द सर्वथा असंगत है : छन्द के प्रथम दो चरणों में कहा गया है :—

इन विधि विलसि आसर (असार) सुसार कीय ।

दै सुप जोगि संजोगि भोगि प्रथिराज प्रीय ॥

किंतु म० खण्ड ९ में तो पृथ्वीराज ने कन्नौज के लिए प्रयाण तक नहीं किया है, संयोगिता को संयोग-सुख देने की बात तो दूर है। इसलिए किसी प्रकार भूल से यह छन्द म० खण्ड ९ में भी पहुँच गया है।

ना० द० उ० स० में पुनरावृत्ति

(१) ना० १३.५७ तथा १३.३०, द० १५.२८ तथा २६.७७, और स० १४.१६३ तथा ४६.११२ :—

तीनों प्रतियों में दोनों स्थानों पर इस छन्द का पाठ प्रायः एक ही है, और निम्नलिखित है :

सुनत कथा अछि बत्तरी गइ रत्तरी बिहाइ ।

हुज कही दुजि संभरइ जिहि सुप खवन सुहाइ ॥

और दोनों छंद एक-दूसरे से काफी दूरी पर हैं, इसलिए यह प्रकट है कि दो में से कोई भी 'पाठांतर' के रूप में ग्रहण किया हुआ नहीं हो सकता है। तीनों प्रतियों में ये 'इछनी विवाह' तथा 'विनय मंगल' के समयों के अन्त में आते हैं, और दोनों स्थानों पर संगत है। अतः यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित लगती है।

ना० में इस पुनरावृत्ति के बीच धा० के कोई छन्द नहीं पड़ते हैं, किंतु द० तथा स० में धा० २८ तथा २९ पड़ते हैं। ये दोनों छन्द क्रमशः अनंगपाल द्वारा पृथ्वीराज को दिल्ली-दान तथा पृथ्वीराज के दिल्ली-सिंहासनारोहण विषयक हैं, और अन्यथा भी प्रक्षिप्त जान पड़ते हैं। सा० में इनके अतिरिक्त धा० २६ भी पड़ता है, जो 'धन कथा' का है, और वह भी प्रक्षिप्त जान पड़ता है।

ना० उ० स० में पुनरावृत्ति

(१) ना० १३. ५७ तथा १६. ३४ और स० ४६. २७ तथा ४८. १०१ :—

दोनों स्थानों पर छन्द का पाठ लगभग एक ही है और निम्नलिखित है :

अन्यथा नैव पिष्यति द्विजस्य वचनं यथा ।

प्राप्ते च जुगिनी नाथे संयोगिता तत्र गच्छति ॥

दोनों छन्द एक दूसरे से दूर भी हैं, इसलिए कोई छन्द शेष अन्य के 'पाठांतर' के रूप में ग्रहण न किया गया होगा, यह प्रकट है। प्रथम स्थल पर छन्द 'विनय मंगल' खण्ड के अन्तर्गत द्विज-द्विजी संवाद में आता है और संगत लगता है, द्वितीय स्थल पर छन्द ना० में शुकवर्णन प्रसंग में

आता है और संगत नहीं लगता है। स० में भी प्रथम स्थल पर यह संगत है, जहाँ ग्रह 'विनय मंगल' खण्ड में द्विज-द्विजी संवाद में आता है, द्वितीय स्थल पर इसके बाद आने वाले छन्दों का प्रथम स्थल पर इसके पूर्व आने वाले छन्दों से कोई सम्बन्ध नहीं है : वे पृथ्वीराज के दूत के द्वारा अपने अपमान की बात सुनकर कन्नौज आक्रमण की तैयारी से सम्बन्धित हैं। इसलिए यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित नहीं है।

ना० में पुनरावृत्तियाँ

(१) ना० १.१६ तथा २.१२४ :—

छन्द का पाठ दोनों स्थलों पर प्रायः एक है और निम्नलिखित है :

छंद प्रबंध कवित जुति साटक गाह दुअथ ।

लहु गुरु मंडित पंडियह पिंगल अमर भरथ ॥

और दोनों छन्द एक-दूसरे से काफी दूर हैं, इसलिए यह प्रकट है कि उपर्युक्त में से कोई भी स्मृति अन्य के 'पाठांतर' के रूप में ग्रहण किया हुआ नहीं हो सकता है। प्रथम स्थान पर यह ग्रन्थ के संगलाचरण के अनन्तर उसकी भूमिका के प्रारम्भ में आता है। इन दोनों स्थानों के बीच में छन्द आते हैं जिनमें पृथ्वीराज के कुल का इतिहास है, और वे भूमिका के नहीं हो सकते हैं। अतः यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित है, यह प्रकट है।

इस पाठवृद्धि के अन्तर्गत धा० के जो छंद आते हैं, वे हैं धा० ३ से धा० १९ तक।

(२) ना० २८.१ तथा ना० ३० के प्रारम्भ का संख्याहीन छंद :—

दोनों स्थानों पर इस लम्बे छंद का पाठ प्रायः एक ही है, केवल बाद वाले स्थान पर प्रथम स्थान के पाठ के चरण ५, ७, तथा ८ नहीं हैं, और दोनों स्थल एक-दूसरे से दूर भी हैं। इसलिए यह सम्भव नहीं लगता है कि दोनों स्थलों में से किसी स्थल का पाठ शेष अन्य के 'पाठांतर' होने के कारण ग्रहण किया गया हो। यह छन्द जयचन्द के राजसूय यज्ञ से सम्बन्धित है और ना० के खण्ड २८ के प्रारम्भ में ही आ सकता है। ना० खंड ३० 'दुर्गा केदार समय' है, जिसमें कहा गया है कि शहाबुद्दीन के दुर्गा केदार भट्ट और पृथ्वीराज के राज कवि चंद में पृथ्वीराज के तत्वावधान में तन्त्र-मंत्रोपचार तथा वाद-विवाद प्रतियोगिता होती है, जिसमें दोनों तुल्य प्रमाणित होते हैं, और जब दुर्गा केदार लौटकर जाता है, शहाबुद्दीन पृथ्वी पर आक्रमण करता है। प्रकट है कि इस कथा से विवेच्य छंद का कोई सम्बन्ध नहीं है। ना० खंड ३० के प्रारम्भ में यह छंद-संख्या-हीन भी है, इसलिए यह निश्चित है कि यह वहाँ किसी प्रकार बाद में सम्भवतः किसी भूल के कारण पहुँच गया।

(३) ना० २९. १० तथा ३९. १५१ :—

ना० २९. १० : ले बेरी लोहान गेह चामंड सपत्तौ ।
 धरि अगौ चामुंड दिग्धि प्रज्जरि चित चिल्यौ ।
 कहै राइ चामंड सुनौ लोहान तुम्ह घर ।
 नृप अग्या सिर सजुं नतरु जानौ तुम्ह हित हर ।
 नीय स्यामि धर्म छेडु नहीं हीय आरोहीय सदहर
 लिन्नी सु बेरि चामंड विहसि पय आरोहीय अप्प कर ।
 ना० ३९. १५१ : ले बेरी लोहान गेह चामंड सपत्तौ ।
 धरि अगौ चामुंड
 सुनौ लोहान तुम्ह घर ।
 नृप आशा सिर सजुं नतरु जानहु तुम हित हर ।

द्वीय स्वामिधर्म छंदु नहीं हरय आरोहीय सद हर ।

लिम्नी सु वेरि चामंड विहसि पय आरोही अप्प कर ॥

दोनों छन्दों का पाठ एक ही है, और दोनों एक दूसरे बहुत दूर भी है, इसलिये यह प्रकट है कि इनमें से कोई किसी के 'पाठांतर' के रूप में ग्रहण किया हुआ नहीं हो सकता है । ना० खंड २९ कैवास-वध विषयक है । वहाँ इस छंद की कोई सगति नहीं है । यह ना० खंड ३९ का ही हो सकता है, जिसके अन्य कुछ छंदों में भी (ना० ३९ १०९—१११) चामंड की बेड़ी का प्रसंग आता है । ना० खंड २९ में यह छंद अतः भूल से किसी प्रकार चला गया लगता है और पाठवृद्धि के परिणाम-स्वरूप गया हुआ नहीं प्रतीत होता है ।

(४) ना० २९. ८६ के बाद का साटक और ना० ४१.१० :—

दोनों छंदों का पाठ प्रायः एक है और निम्नलिखित है :

सामगं कल धूत नूत मिषरे मधुरेहि मधु वेष्टिता ।

वाता सीत सुगद मंद सरसा आलोल सा चेष्टिता ।

कंठी कूल कुलाहले मुकलया कामस्य उद्दीपनो ।

रत्ते रत्त बसंत पत्त सरसा संजोगि भोगाइते ॥

दोनों छन्द एक दूर से भी हैं इसलिए कोई किसी के 'पाठांतर' के रूप में ग्रहण किया हुआ नहीं हो सकता है । यह छंद पहले स्थान पर असंगत है, क्योंकि तब तक सयोगिता के 'भोगाइत' होने की कोई बात नहीं है और न तब तक उसकी प्राप्ति के लिए कन्नौज-प्रयाण ही पृथ्वीराज ने किया है । पहले स्थान पर यह सख्या-हीन भी है, जिससे यह वहाँ बाद में रखा गया लगता है, और इस लिए यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित नहीं ज्ञात होती है ।

(५) ना० ३१.२८ तथा ३१.३७ :—

दोनों छन्दों का पाठ प्रायः एक ही है, और निम्नलिखित है :

हो सावंत सु मंतु कहु सुहरि चित्त तजि वाज ।

त्रिपथ लोक प्रिथिराज सुनि नमसकार किय साज ॥

और ये छन्द एक-दूसरे से दूरी पर भी हैं, इसलिए 'पाठांतर' समझ कर इनमें से कोई भी ग्रहण न किया गया होगा । यह छन्द ना० ३१.२८ के पूर्ववर्ती तथा ना० ३१.३७ के परवर्ती छन्दों के प्रसंग में हैं, इसलिए पुनरावृत्ति पाठ-वृद्धि जनित ज्ञात होती है ।

इस पुनरावृत्ति के बीच घा० १२५ और घा० १२६ आते हैं जो घा० १२७ के होते हुए प्रसंग में आवश्यक भी नहीं है, क्योंकि घा० १२७ में भी गंगा की स्तुति है जैसी इन छन्दों में है । इसलिए ये छन्द प्रक्षिप्त लगते हैं ।

(६) ना० ३३.१०७ तथा ३५.५ (= घा० २४०) :—

ना० ३३.१०७ : जदिन रोस राठौर चंपि चहुवान गहन कहुं ।

स उपपरि सै सहस बिबह अगनिस्त लष दह ।

टुटि डूंगर जल मुरिग भजिग जलगंग प्रवाहहि ।

सह अच्छरि अच्छहि विवान सुरलोक नाग तिहि ।

कहि चंद दंद दुहु दल भयो घन जिम सिर सारह झरिगु ।

घर सेस हार हर ब्रह्मतन त्रिहु समाधि तदिन टरिगु ॥

ना० ३५.५ : जदिस रोस राठौर चंपि चहुवान गहन कहुं ।

सै उपपरि सै सहस बिबह अगनिस्त लष दह ।

हुटि हूंगर जल भरिग फुटि जल थलति प्रवाहिग ।
सह अछरि अछहि बिवान सुरलोक बनाइग ।
कहि चंद दंद दुहु दल भयौ घन जिम मिर सारह झरिग ।
धर सेस हार हर ब्रह्म तन त्रिहु समाधि तदिन वरिग ॥

दोनों पाठों में अन्तर अवश्य है, किन्तु इतना नहीं है कि किसी के 'पाठांतर' के रूप में शेष अन्य ग्रहण किया गया हो। दोनों छन्द एक दूसरे से काफी दूर हैं, यह तथ्य भी इसी बात की पुष्टि करता है। साथ ही, कुछ प्रतियों में यह छन्द पहले स्थान पर है और कुछ में दूसरे। इसलिए यही सम्भावना प्रतीत होती है कि ना०-में एक स्थल पर छन्द अपने कुल के पाठ के अनुसार था और दूसरे स्थल पर किसी अन्य कुल के पाठ-मिश्रण के कारण आया। प्रसंग से छन्द की स्थिति पर कोई निश्चित प्रकाश नहीं पड़ता है।

(७) ना० ३४.६१ तथा ना० ३६.५ :—

ना० ३४.६१ : दूरि निसान गत भान कलाकर मुद्दयउ ।
सुनि सामंत नरेस छिनकु धर धुककयउ ।
पिषप पंगदल दिष्टि झिष्टि निहारयउ ।
अंचरि अमा संजोग रेन मझारयो ॥
ना० ३५.५ : घुरि निसान उगि भान कलाकर मुद्दयउ ।
सम सामंत नरिंद छिनकु धर धुककयउ ॥
सपिष पंग दल दिष्टि सरोस निहारयउ ।
अंचर अमी संजोगि रेन मझारयउ ॥

ये छंद एक दूसरे से दूर हैं, और इनके पाठ में अन्तर साधारण है। इस लिए इनमें कोई शेष अन्य के 'पाठांतर' के रूप में ग्रहण किया हुआ नहीं हो सकता है। साथ ही कुछ प्रतियों में यह छंद पहले स्थान पर है और कुछ में दूसरे, इसलिए सम्भावना यही लगती है कि एक स्थान पर छंद अपने कुल की परम्परा के अनुसार है और दूसरे स्थान पर पाठ-मिश्रण के कारण किसी अन्य कुलकी परम्परा के अनुसार आया है। प्रसंग के अनुसार यह छंद पहले स्थान पर ही आना चाहिए, क्योंकि वहाँ दिनांत का वर्णन है, दूसरे स्थान पर दिन उगने का वर्णन आता है। इसलिए छंद वहाँ संगत नहीं है। छंद में दूसरे स्थान पर 'गत भान' के स्थान पर इसीलिए 'उगि भान' किया गया है; किन्तु दूसरे चरण में सामंतों और पृथ्वीराज के श्रमिंत हो कर धरा पर धुकने का उल्लेख होता है, और चतुर्थ चरण में अञ्जल द्वारा सयोगी के पृथ्वीराज की रेणु झाड़ने की बात आती है, जो प्रभात-कालीन परिस्थितियों में असंभव है।

(८) ना० ३५.१५ : तथा ना० ३५.२० :—

ना० ३५.१५ : संक्ष संपत्तिय नरपति रण फिरि सज्जे दलपंग ।
चलिग पंग पहु पंति मिलि सौ भर नि किय अंगु ॥
ना० ३५.२० : संक्ष संपत्तिय रत्त भर कलि सज्जे दल पंग ।
चलिग पंग पहुपंति मिलि सौ भर नि किय अंगु ॥

दोनों छन्दों में जो पाठ-सादृश्य है, उससे यह नहीं लगता है कि कोई भी छन्द किसी के 'पाठांतर' के रूप में ग्रहण किया गया होगा और दोनों के बीच के अंश के निकल जाने पर प्रसंग को कोई क्षति भी नहीं पहुँचती है, इसलिए यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित लगती है।

इन पुनरावृत्ति के बीच घा० २९१ तथा २९२ आते हैं। घा० २९० तथा घा० २९३ में उक्ति-शृंखला प्रकट है, घा० २९१ में घा० २९० के 'नृपति सपट्टिय पंचसर' का जो विस्तार किया गया है उसमें

दो ही पृथ्वीराज को, शेष दो अश्व के पाखर, मे तथा एक संजोगी को लगे बताये गए हैं, जो स्पष्ट ही घा० २९० से भिन्न कल्पना है। अतः घा० २९१ तथा २९२ प्रक्षिप्त हैं।

द० ये पुनरावृत्तियाँ

(१) द० १३.१ तथा २६.७८ :—

दोनों स्थानों पर छन्द का पाठ प्रायः एक ही और निम्नलिखित है

अठतालीसा सुक्रवार 'पण्यह पंग जगरीय।

भोरे राइ भीमंग सोर सिचपुरी प्रजारिय।

आरज सांइ सलष्य राज संभरि संभारिय।

चाहुवान सामंत मंति कयमास पुकारिय।

धर जात पवारां पटनह बोले बक दुराइ दिलि।

कै बार कथ्य नाथह तनी षगे राज क्रिवान पल॥

यह छन्द द० खण्ड १३ के प्रारम्भ में तो सगत है, द० खण्ड १३ पृथ्वीराज-भीम युद्ध का है, किन्तु खण्ड द० २६ के अन्त में सगत नहीं है, क्योंकि द० खण्ड २६ संयोगिता के 'विनय मगल' का है। ना० में 'विनय मगल' खण्ड 'भीम युद्ध' खण्ड के ठीक पहले आता है। द० भी मूलतः उसी परिवार की है, इसलिए यदि इसमें भी वह उसी प्रकार पहले आता रहा हो तो आश्चर्य नहीं होगा। ऐसा लगता है कि पीछे किसी समय 'विनय मगल' खण्ड को द० परम्परा में बाद में रखने का जब निश्चय हुआ तो हाशिए में जो तत्सम्बन्धी सकेत लिखा गया वह 'विनय मगल' खण्ड के अन्त और 'भीम युद्ध' खण्ड के प्रथम छन्द-दोनों के सम्मने पड़ता था, इसीलिए द० में यह पुनरावृत्ति हो गई। फलतः इस पुनरावृत्ति के बीच में जो छन्द पड़ते हैं, पाठवृद्धि के कारण द० में आए नहीं माने जा सकते हैं।

उ० ज्ञा० स० में पुनरावृत्तियाँ

(१) स० ५७.१७१ तथा ५७.२१९ :—

दोनों स्थानों पर छन्द का पाठ प्रायः एक ही है और निम्नलिखित है :।

मखि पहर पुच्छै प्रभु पंडिय।

कहि कवि विजै साहि जिहि मंडिय।

सकल सूर बेठवि सभ मंडिय।

आसिष आनि दीय कवि चंडिय॥

दूसरे तथा तीसरे चरणों में 'मंडिय' 'मंडिय' का एक पुनरावृत्तिपूर्ण तो है ही, दूसरे चरण में 'मंडिय' पाठ असम्भव भी है : आशय शाह के विजय माडने का नहीं है, बल्कि पृथ्वीराज के द्वारा शाह पर माडी हुई उस विजय का है जिसमें शाह दंडित हुआ था। इसलिए अन्य प्रतियों का 'दंडिय' ही द्वितीय चरण का अन्तिम शब्द हो सकता है। इस प्रकार स० के दोनों पाठ प्रायः सर्वथा एक ही हैं—क्योंकि दोनों में अशुद्धि तक एक ही है। स० ५७.१७१ के पूर्व तथा ५७.२१९ के बाद के छंद प्रसंग द्वारा सम्बन्धित भी हैं : ५७.२१९ के बाद उस सभा का वर्णन है जिसको ५७.१७१.३ में माँडा गया है। इसलिए बीच के छन्द पाठवृद्धि के हैं और पुनरावृत्ति पाठवृद्धि जनित है।

इस पुनरावृत्ति के बीच घा० ७९, ८०, ८१, तथा ८२ आते हैं।

परिणामतः विभिन्न प्रतियों में मिलने वाली पुनरावृत्तियों से प्रक्षिप्त प्रमाणित होने वाले घा० के छन्द निम्नलिखित हैं :—

घा० अ० फ० ना० म० शा० उ० स० : घा० २३९ चरण २२-३५।

घा० मो० ना० शा० उ० स० : घा० ४०३।

मो० : धा० ३५६, धा० ३५७ ।
 अ० फ० : X
 फ० : धा० ३४४, धा० ३४५ ।
 म० उ० स० : X
 म० ना० उ० स० : X
 म० : X
 ना० द० उ० स० : धा० २६, धा० २८, धा० २९ ।
 ना० उ० स० : X
 ना० : धा० ३—१९, धा० १२५, धा० १२६, धा० २९१, धा० २९२ ।
 द० : X
 उ० स० : धा० ७९—८२ ।

नीचे विभिन्न प्रतियों में आने वाले छन्द-संख्या-व्यतिक्रम और उनके कारणों का विश्लेषण किया जा रहा है ।

अ० फ० में छन्द-संख्या-व्यतिक्रम

धा० तथा मो० में छन्दों की क्रम-संख्याएँ नहीं दी हुई हैं, यह बताया जा चुका है, इसलिए इस दृष्टि से उनके छन्दों पर विचार नहीं किया जा सकता है, शेष प्रतियों के छन्दों पर ही विचार किया जा सकेगा ।

अ० फ० में छन्दों की क्रम-संख्या छन्द (वृत्त) भेद के आधार पर दी गई है, यथा किसी खण्ड में आए हुए कवित्त की क्रम-संख्या एक है, दोहा की दूसरी, गाथा की तीसरी, किन्तु वे छन्द जिनकी मालाएँ मिलती हैं, अर्थात् जिनके चरणों के सम्बन्ध में यह प्रतिबन्ध नहीं माना गया है कि उनकी संख्या सर्वत्र एक सी हो, यथा भुजगी, त्रिभंगी, त्रोटक, पद्धड़ी, वे सभी एक सम्मिलित क्रम-संख्या में डाल दिए गए हैं और उनकी क्रम-संख्या छन्द (वृत्त) भेद के आधार पर नहीं चली है ।

इस दृष्टि से देखने पर धा० के निम्नलिखित छन्द जो अ० फ० में उपर्युक्त संख्या-विधान के बाहर पड़ते हैं, विचारणीय हैं :—

(१) धा० २८, २९, ३० : ये छन्द अ० फ० के उन पाँच दोहों में से हैं जो उसके खण्ड २ के अन्त में आते हैं । इनके पूर्व जो दोहा अ० फ० में मिलता है वह ॥ २० ॥ है, किन्तु अ० में धा० २८ को ॥ २ ॥, धा० २९ को ॥ २२ ॥ तथा धा० ३० को ॥ २२ ॥ की क्रम-संख्या दी गई है । ॥ २० ॥ के अनन्तर इसी प्रकार फ० में इन छन्दों की संख्या ॥ १ ॥ से प्रारम्भ कर दी गई है और इस नवीन संख्या-विधान में धा० २८ ॥ १ ॥ है, धा० २९ ॥ ४ ॥ है और धा० ३० ॥ ५ ॥ है । यह ध्यान देने योग्य है कि अ० में केवल ॥ २१ ॥ नहीं हैं और ॥ २२ ॥ को संख्या दो दोहों को समान रूप से की गई है, जबकि फ० में इन सभी की क्रम-संख्या नई कर दी गई है । प्रश्न यह है कि धा० २८ को ॥ २ ॥ क्रम-संख्या अ० में किस प्रकार दी गई है । इसका स्पष्ट समाधान यह है कि जब अ० फ० में पूर्ववर्ती दोहा ५ तथा दोहा ६ के बीच एक दोहा बढ़ाया गया और उसके साथ ही अ० फ० दोहा २० के बाद कुछ दोहे बढ़ाए गए, तो प्रथम स्थान की पाठवृद्धि को ॥ १ ॥ तथा द्वितीय स्थान की पाठवृद्धि को ॥ २ ॥ की संख्याएँ देकर छोड़ दिया गया, और इन्हीं के साथ अ० फ० के ॥ २१ ॥ की क्रम-संख्या भी बदल कर ॥ २ ॥ कर दी गई । इसके बाद किसी समय एक और दोहा जोड़ा गया और ऊपर के तीन दोहों में लगातार ॥ २ ॥ क्रम-संख्या देखकर इस नवीन दोहे को पूर्व-

वर्ती दोहा ॥ २२ ॥ के अनुसरण में ॥ २२ ॥ की क्रम-संख्या दे दी गई। इस दृष्टि से देखने पर धा० २८ तथा धा० ३० अ० फ० में बाद में रखे गए लगते हैं।

(२) धा० १५८, धा० १८७, धा० १८८ : अ० फ० खण्ड ९. साटक १ (= धा० १५१) के बाद उसमें ये तीन साटक आते हैं जिनकी क्रम-संख्या नहीं दी हुई है। किन्तु ऊपर हम देख चुके हैं कि धा० १८६ तथा १८७ और इसी प्रकार धा० १८८ तथा १८९ में स्पष्ट उक्ति-शृंखला है, अतः धा० १८७ तथा धा० १८८ प्रक्षिप्त पाठवृद्धि के नहीं हैं। धा० १५८ की स्थिति इतनी स्पष्ट नहीं है।

(३) धा० १९३ : अ० फ० खण्ड ९ में यह दोहा संख्याहीन है, और इसके पूर्व अ० फ० खण्ड ९ दोहा ॥ ४३ ॥ तथा बाद में दोहा ॥ ४४ ॥ आता है, अतः यह प्रकट है यह दोहा अ० फ० की क्रम-संख्या के बाहर पड़ता है। किन्तु हम ऊपर देख चुके हैं कि धा० १९२ तथा १९३ और इसी प्रकार धा० १९३ तथा १९५ के बीच उक्ति-शृंखला है। अतः यह प्रकट है कि धा० १९३ प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं है।

(४) धा० २४८, धा० २५० : अ० फ० खण्ड १० में ये दोनों छन्द एक रूपक के अन्तर्गत हैं और संख्याहीन हैं। ये उस प्रकार की छन्दमाला में आते हैं जिनकी अ० फ० में सम्मिलित क्रम-संख्या दी गई है : इनके पूर्व भुजंगी ॥ २ ॥ है और बाद में रसावला ॥ ४ ॥ है। ऊपर हम देख चुके हैं कि धा० २४७ तथा २४८ में स्पष्ट उक्ति-शृंखला है। और अ० फ० में धा० २५० अलग छन्द नहीं है, वह धा० २४८ के सिलसिले में ही आता है, इसलिए दोनों की सम्मिलित संख्या ॥ ३ ॥ होनी चाहिए थी, जो किसी प्रकार छूट गई है। अतः धा० २४८ तथा धा० २५० प्रक्षिप्त पाठवृद्धि के नहीं हैं।

(५) धा० ३१०-३१३ : ये रासा अ० फ० में १३. दो० ७ के बाद आते हैं और पूर्व या बाद में इस खण्ड में और रासा नहीं आते हैं। इन छन्दों का संख्या-व्यतिक्रम अतः स्पष्ट नहीं है। किन्तु ये छन्द एक वर्णन-शृंखला के हैं और इनमें से अन्तिम का उक्ति-शृंखला सम्बन्ध, जैसा हमने ऊपर देखा है, धा० ३१४ से है, अतः ये प्रक्षिप्त पाठवृद्धि के नहीं हैं।

(६) धा० ३४३ : यह दोहा अ० में १४. कवि० ५ के बाद आता है। इसकी संख्या अ० में ॥ १ ॥ और फ० में ॥ २१ ॥ दी हुई है, यद्यपि पूर्ववर्ती दोहा ॥ १९ ॥ है और अ० फ० का दोहा ॥ २१ ॥ बाद में ही आता है, इसलिए संख्या-व्यतिक्रम स्पष्ट है। किन्तु धा० ३४३ की धा० ३४४-३४५ से प्रसंग-शृंखला है, और धा० ३४४ ३४५ फा० की पुनरावृत्तियों के द्वारा प्रक्षिप्त प्रमाणित हो चुके हैं, अतः यह छन्द भी प्रक्षिप्त ज्ञात होता है।

(७) धा० ३८६ : यह छन्द अ० में संख्याहीन है, फ० यहाँ पर खण्डित है। यह अ० में १९. दो० १९ के बाद आता है और इसके बाद दो दोहे और आते हैं तब १९. दो० २२ आता है। किन्तु हम ऊपर देख चुके हैं धा० ३८६ धा० ३८५ से उक्ति-शृंखला से सम्बद्ध है। इसलिए यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं हो सकता है।

(८) धा० ३९० : यह छन्द भी अ० फ० खण्ड १९ में क्रम-संख्या के बाहर पड़ता है। यह दोहा है और इसके पूर्व का दोहा ॥ २३ ॥ तथा बाद का ॥ २४ ॥ है। यह तातार खों और गोरी के संवाद का है, और इसके पूर्व तथा इसके बाद के दोहों अर्थात् धा० ३८९ तथा ३९१ में परस्पर प्रसंग-शृंखला स्पष्ट है : धा० ३८९ में गोरी का आदेश-है, और धा० ३९१ में कहा गया है

यह सहाब मुप उच्चरिय

इन दोनों के बीच धा० ३९० के रूप में तातार खों का कोई कथन आना असंगत है। अतः यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का लगता है।

म० में छन्द-संख्या-व्यतिक्रम

(१) धा० ५९ : म० में ८२ और ८३ के बीच यह छन्द आता है। धा० ५८ के साथ यह प्रसंगत : सम्बद्ध है। धा० ५९ में कहा गया है कि पृथ्वीराज 'अपने श्रेष्ठ प्रधान (प्रधानाभात्य) कैवास को धरा (राज्य) की रक्षा के लिए दिल्ली छोड़ कर आखेट के लिए चला गया था।' इस छंद में कैवास के सम्बन्ध में कहते हुए कहा गया है, 'राज जा प्रतिमा' अर्थात् 'जो राजा का प्रतिनिधि था।' इस लिए यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं लगता है।

(२) म० खण्ड १० में छन्द-संख्या १४२ तक चल कर पुनः १२५ से प्रारम्भ होती है, और खण्ड के अन्त तक चलती है। इस व्यतिक्रम का एक कारण तो यह हो सकता है कि दूसरी बार की १२५ से १४२ तक की संख्याओं के छन्द पीछे बढ़ाए गए हों और उनकी क्रम-संख्या भी १२४ के बाद दे दी गई हो, दूसरी सम्भावना यह है कि १४२ को भ्रम से ४ तथा २ को विपर्यय से १२४ समझ कर संख्या १४२ के बाद पुनः १२५ से प्रारम्भ कर दी गई हो। दूसरी सम्भावना अधिक युक्ति-संगत लगती है क्योंकि प्रथम के विरुद्ध यह कहा जा सकता है कि यदि बढ़ाए हुए छन्दों की संख्या १४२ तक ही गई होती तो बाद के छन्दों की क्रम-संख्याओं में भी संशोधन किया गया होता। इसलिए इस खण्ड की १२५ से १४२ तक की संख्या-विषयक पुनरावृत्ति इस प्रसंग में विचारणीय नहीं है।

(३) धा० १९६ : म० में १०.४६४ के अनन्तर यह छन्द पुनः ॥ ४६४ ॥ की संख्या देकर आता है। किन्तु प्रसंग में यह आवश्यक है, धा० १९५ में पृथ्वीराज के द्वारा जिस भंगिमा से जयचंद को तांबूल अर्पित करने की बात कही गई है, उसका परिणाम यही होना चाहिए जो इस छन्द में वर्णित है—कि जयचन्द पहिचान गया हो कि पान देने वाला पृथ्वीराज है। अतः यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं है।

(४) धा० २०६ : म० में छन्द का उत्तरार्द्ध मात्र आया है और ११.९० के बाद उसकी कोई संख्या नहीं दी हुई है। ऊपर हम देख चुके हैं कि धा० २०५ तथा धा० २०७ के साथ इसका उक्ति-शृंखला सम्बन्ध है, इसलिए यह छंद प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं हो सकता है।

(५) म० में ११.९८ के अनन्तर छन्द-संख्याएँ ॥ ९० ॥ से ॥ ९७ ॥ तक दुहरा उठी हैं : यह ९८ को विपर्ययभ्रम से ८९ पढ़ने के कारण हुआ शत होता है, जैसा हमने ऊपर इस प्रति की एक अन्य संख्या-सम्बन्धी पुनरावृत्ति के विषय में भी देखा है। अतः इस पुनरावृत्ति के बीच में आए हुए छन्दों पर पाठवृद्धि की दृष्टि से विचार करना उचित न होगा।

(६) म० में उपर्युक्त पुनः आने वाले ११.९७ के अनन्तर की छन्द-संख्याएँ ॥ ९२ ॥ से ॥ ९८ ॥ तक दुहरा उठी हैं, और तदनन्तर खण्ड की छन्द-संख्याएँ इस संख्या के क्रम में चली हैं। यह भी ९७ के ७ को १ पढ़ने की भूल के कारण हुई प्रतीत होती है—७ की नोक यदि कुछ आगे तक खींच कर न बनाई जावे तो उससे १ का भ्रम हो सकता है। अतः क्रम-संख्या सम्बन्धी इस पुनरावृत्ति के बीच आए छन्दों पर भी प्रक्षिप्त पाठवृद्धि की दृष्टि से विचार करना उचित न होगा।

(७) धा० २४५ : म० में १२.२८ के बाद पुनः ॥ २८ ॥ की संख्या के साथ यह छन्द दे दिया गया है। किन्तु धा० २४६ के साथ इसकी उक्ति-शृंखला ऊपर देखी जा चुकी है, इसलिए यह छंद प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं हो सकता है।

(८) धा० २९७ : म० में १२.५३३ के अनन्तर पुनः ॥ ५३३ ॥ की संख्या के साथ यह छन्द दिया गया है। धा० २९८ में विंश चालुक्य के धराशायी होने पर जयचन्द के दल की प्रतिक्रिया वर्णित है, धा० २९७ में उसका युद्ध करना और धराशायी होना वर्णित है, उसके पूर्व के एक छन्द में जो

धा० २८६ है, बिंश की युद्ध में प्रवृत्त होना कहा गया है, अतः यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं हो सकता है।

ना० में छंद-संख्या-व्यतिक्रम

(१) धा० १९ : ना० में २१२२ के अनन्तर यह छन्द भी ॥ १२२ ॥ करके दिया गया है। इसमें चन्द के जन्म ग्रहण करने का उल्लेख है। धा० १८ में पृथ्वीराज के जन्म ग्रहण करने तथा धा० २० में 'रासो' की विविध छन्दों में रचना बरने को प्रस्तावनी है। धा० १९ दोनों के बीच में अतः खटकता है और प्रक्षेप के रूप में रक्खा गया लगता है।

(२) धा० ६६ : ना० में २०३२ के अनन्तर यह छन्द भी ॥ ३३ ॥ की संख्या के साथ दिया गया है। इसमें पट्टराज्ञी की दूती के साथ कैवास वध के लिए पृथ्वीराज के आने का उल्लेख किया गया है। धा० ६५ में केवल उसकी दूती के द्वारा पृथ्वीराज के जगाए जाने का कथन है, और धा० ६७ में कैवास के ऊपर उसके बाण-संवान का; अतः बीच का धा० ६६ का उल्लेख प्रसंग में आवश्यक है, और प्रक्षिप्त नहीं है।

(३) धा० ६७ अ (छन्द ६७ के बाद वार्त्ता के साथ आया हुआ छन्द का अवशेष) : ना० में २९३२ के बाद यह छन्द भी ॥ ३२ ॥ करके दिया गया है। इसमें पृथ्वीराज का इस विषय में आश्चर्यान्वित होना कहा गया है कि दनुज, देवता या गन्धर्व कौन करनाटी के साथ विलास-लित था। किन्तु यह तो पट्टराज्ञी को ज्ञात ही था कि उक्त व्यक्ति कैवास था और पृथ्वीराज ने भी यही जान कर उसे मारा था, इसलिए यह छन्द प्रक्षिप्त लगता है। धा० में यह छन्द कुछ भिन्न और त्रुटित पाठ के साथ आता है और छन्द के पूर्व एक वार्त्ता भी आती है जिसमें कहा जाता है कि पट्टराज्ञी ने चित्रशाला में काम-रत कैवास की ओर सकेत किया।

(४) धा० ७६ : ना० में २९४६ के बाद यह छन्द भी ॥ ४६ ॥ करके दिया गया है। धा० ७५ निम्नलिखित है :—

भइ परतविख कवी मनि आइय ।
उक्ति कंठ कंठ समझाइय (समुहाइय—पाठां०) ।
वाहन हंस हंस (अंस—पाठां०) सुखदाइय ।
तब तिहि रूप चंद कवि धाइय (गार्ह्यं—पाठां०) ।

धा० ७६ में सरस्वती के इसी रूप का ध्यान वर्णित है और उसका शिख-नख निरूपित हैं। अतः धा० ७६ प्रसंग में आवश्यक लगता है।

(५) धा० ९२ : ना० में यह छन्द २९६५ के अनन्तर पुनः ॥ ६५ ॥ करके दिया गया है। धा० ९० में चंद ने कैवास-वध का रहस्योद्घाटन पृथ्वीराज की सभा में किया है। धा० ९१ में उसके अनन्तर रात्रि में सभा के विसर्जन की बात कही गई है। धा० ९३ में प्रातः ही कैवास की स्त्री का चंद के पास उसकी सहायता से पति का शव प्राप्त करने के लिए आगमन कहा गया है। धा० ९२ में कहा गया है कि चंद के उक्त रहस्योद्घाटन के अनन्तर कैवास के वध की बात घर-घर फैल गई थी। अतः यह छन्द प्रसंग में आवश्यक लगता है।

(६) धा० ११३ : यह छन्द ना० में ३११ के बाद पुनः ॥ १ ॥ की संख्या देकर रक्खा गया है। इसमें पृथ्वीराज के कन्नौज के लिए प्रस्थान करने की तिथि सं० ११५१, चैत्र तृतीया, रविवार दी गई है। यह तिथि असंभव तो है ही—सं० ११५१ में पृथ्वीराज जन्मा भी नहीं था—इस छन्द के न रहने से पूर्वापर के प्रसंग-क्रम में कोई व्याघात नहीं होता है। इसलिए यह छन्द प्रक्षेपपूर्ण पाठवृद्धि का लगता है।

(७) धा० ११४ : यह छन्द ना० मे ३१ ४ के वन्द पुनः ॥ ४ ॥ करके दिया गया है। इसमें कहा गया है कि पृ-वीराज ने 'एक सौ सुभटों को लेकर कन्नौज के लिए प्रस्थान किया, (फिर भी वे कड़ा जा रहे थे) यह था तो चन्द जानता था या पृ-वीराज ।' किन्तु साथ में सौ योद्धा हों और उन्हें यहाँ तक न बनाया गया हो कि उन्हें बिधर ले जाया जा रहा है, यह प्रायः असम्भव है, फिर कन्नौज पहुँचने पर इन योद्धाओं ने इस पर कोई अश्चर्य भी नहीं प्रकट किया है कि वे कहाँ ले आए गए हैं। अतः यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का लगना है।

(८) धा० १४३ : यह छन्द ना० मे ९४ के अनन्तर पुनः ॥ ४ ॥ की संख्या देकर रक्खा गया है, किन्तु ऊपर हम देख चुके हैं कि धा० १४२ के साथ इसका उक्ति-शृंखला सम्बन्ध है, अतः यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं है।

(९) धा० १४७ : यह छन्द ना० मे ९६ के अनन्तर पुनः ॥ ६ ॥ की संख्या देकर रक्खा गया है। धा० १४६ में चन्द ने हेजम-वाँ अपना परिचय दिया है, धा० १४७ में हेजम जयचन्द को उसके आगमन की सूचना देने गया है, और धा० १४८ में उसने जयचन्द को उक्त सूचना दी है। अतः धा० १४७ प्रसंगतः रहले तथा पीछे के छन्दों से निवृत्त रूप से संबद्ध है, और प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं है।

(१०) धा० २०७ : ऊपर दिवाया जा चुका है कि धा० २०७ तथा २०८ एक ही छन्द के दो भिन्न-भिन्न पाठ हैं, ना० मे धा० २०८ यथा ३३ ३९ हैं और धा० २०७ का दूसरा चरण भी उसमें ॥ ३९ ॥ संख्या देकर 'पाठांतर' के रूप में सम्मिलित कर लिया गया है।

(११) धा० २८१ : ना० मे ३६ २८ के अनन्तर यह छन्द नी ॥ २८ ॥ संख्या देकर दिया गया है, किन्तु धा० २८० तथा २८२ से प्रसंगतः यह सन्निवृत्त रूप से संबद्ध है : धा० २८० में कन्ह घंड़े पर युद्ध के लिए चढ़ा है, धा० २८१ में वह लड़ता हुआ मारा गया है, और धा० २८२ में कन्ह के मरने पर जयचन्द के दल की प्रतिक्रिया वर्णित है। इसलिए यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं है।

(१२) धा० ३५३ : ना० मे ४३ ५५ के अनन्तर यह छन्द पुनः ॥ ५५ ॥ की संख्या देकर दिया हुआ है। किन्तु यह पूर्ववर्ती छन्द धा० ३५२ से प्रसंगतः सम्बन्ध है : धा० ३५२ में गोरी ने ततार खों तथा रस्तम खों से कुरान की सौगन्ध लेकर पृथ्वीराज का सामना करने और उसे पकड़ कर बन्दी करने के लिए कहा है, और धा० ३५३ में ततार खों तथा रस्तम खों ने सौगन्ध लेकर तदनुसार प्रतिज्ञा की है। इसलिए यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं है।

(१३) धा० ४०६ : ना० मे ४६ १३७ के अनन्तर यह छन्द पुनः ॥ १३७ ॥ की संख्या देकर दिया गया है। किन्तु ऊपर हम देख चुके हैं कि यह छन्द धा० ४०७ के साथ उक्ति-शृंखला द्वारा संबद्ध है, इसलिए यह प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं है।

द० में छन्द-संख्या व्यतिक्रम

(१) धा० १६ : द० में १ १३५ के अनन्तर पुनः वही संख्या देकर यह छन्द दिया गया है। इसमें दुंढा के द्वारा आनल्ल को राज्य मिलता है। दुंढा की वेष कथा इसके पूर्व आती है, और धा० १७ की प्रथम पक्ति में ही आता है कि आनल्ल ने राजा होकर अजमेर में निवास किया। अतः यह छन्द प्रसंग में आवश्यक है, और इस प्रति में पाठवृद्धि के परिणाम स्वरूप नहीं आया है, यद्यपि दुंढा की पूरी कथा के छन्द—जैसा हमने ऊपर ना० स० की पुनरावृत्तियों में देखा है—प्रक्षिप्त पाठवृद्धि के हैं।

(२) धा० १०९ : द० में ३४.५ के अनन्तर 'शुक्र-चरित्र' के छन्द आते हैं, जो स्पष्ट ही बाद में

रक्खे गए हैं, क्योंकि उनकी क्रम संख्याएँ इस खण्ड के बीच होते हुए भी स्वतन्त्र हैं और उनके बाद पुनः पूर्ववर्ती क्रम संख्या में छन्द दिए जाते हैं। किंतु इस बार का प्रथम छन्द भी ॥ ५ ॥ ही है, जब कि पिछली बार का अन्तिम छन्द ॥ ५ ॥ था। फिर भी यह छन्द धा० के षट ऋतु वर्णन के छः छन्दों में से है और इसके अभाव में एक ऋतु का वर्णन ही नहीं रह जाता है, इसलिए यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं हो सकता है।

(३) धा० १४० : द० में ३३६१ के अनन्तर पुनः वही संख्या देकर यह छन्द दिया गया है। पूर्ववर्ती छन्द धा० १३९ में नगर-वर्णन के अन्तर्गत नायिकाओं के गीत-नृत्य का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उनके भाव का वर्णन करना कठिन लगता है। यह कह कर कहा गया है कि 'उस पट्टन के यह सँवारे हुए दिखाई पड़े।' इससे ज्ञात होता है कि नायिकाओं का वर्णन धा० १३९ में ही समाप्त कर दिया गया। अतः धा० १४० में पुनः उनके गीत-नृत्यादि का वर्णन प्रक्षिप्त लगता है।

(४) धा० १४५ : द० में ३३६७ के अनन्तर पुनः वही संख्या देकर यह छन्द दिया गया है। इसके पूर्व धा० १४४ में कहा गया है कि 'पृथ्वीराज ने किसी से कहा कि वह सुभट [दरबार तक पहुँचने के लिए] युक्ति पूर्वक कोई श्रेष्ठ हाथी पकड़ लावे।' इस छन्द में कहा गया है कि यह सुन कर चन्द ने मना किया कि 'यहाँ पर झगड़ा करना ठीक नहीं है, क्योंकि जयचन्द के द्वार पर तीन लाख सैनिक दिन-रात रहते हैं' और इसके अनन्तर हाथी पकड़े जाने का कोई उल्लेख नहीं होता है। प्रकट है कि धा० १४५ धा० १४४ से प्रसगतः संबद्ध है, अतः यह धा० १४४ के बाद की पाठवृद्धि का नहीं है, यद्यपि दोनों प्रक्षेपपूर्ण पाठवृद्धि के छन्द हैं, यह हम धा० की उत्ति-शृंखला की त्रुटियों पर विचार करते हुए देख चुके हैं।

(५) धा० २६३ : द० में ३३३५५ के अनन्तर पुनः वही संख्या देकर यह छन्द दिया गया है। धा० २६३ में धा० २६२ में पृथ्वीराज के इस कथन का उत्तर है कि 'वह अपने सामन्तों का यह बोझ (अहसान) नहीं चाहता कि, वे अपनी जान गँवा कर इसे बचावें और वह युद्ध छोड़ कर दिल्ली जावे।' धा० २६३ के निकल जाने पर उसके इस कथन का कोई उत्तर नहीं रह जाता है यद्यपि वह सामन्तों के द्वारा उपस्थित की गई इसी युक्ति का अनुसरण करना है, इसलिए यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं है।

(६) धा० २९५ : द० में ३३४१४ के बाद पुनः वही संख्या देकर यह छन्द दिया गया है। इसमें कन्नौज के युद्ध में सोलह धराशायी शूरों के नाम देने की बात कही गई है :

✓ परे सूर सोलह तिके नाम आनं ।

किन्तु कुल मिला कर केवल बारह ऐसे शूरों के नाम इस छन्द की सूची में आते हैं; ये हैं : मंडलीराय, मालहन हंस, जावला, जालह, बाघराय बागरी, बलीराय यादव, सारंग गाजी, पाधरी राय परिहार, साखुला सिंह, सिंहली राव (सिंघ सिंघा—धा०), सातल मोरी, भोज तथा भुआल राय। इसलिए इस छन्द की स्थिति संदिग्ध लगती है। यह अवश्य असम्भव नहीं है कि ऊपर जो बारह नाम दिए गए हैं, उनमें से किन्हीं चार में दो-दो नाम मिल गए हों। पूर्ववर्ती छन्द धा० २०४ में भी सोलह सामन्तों-शूरों के धराशायी होने की बात कही गई है, और जहाँ-जहाँ धराशायी शूरों-सामन्तों की संख्या दी गई है, उनकी नामावली भी दी गई है, इसलिए यह छन्द मूल रचना का भी हो सकता है।

परिणामतः विभिन्न प्रतियों की छन्द-संख्या-व्यतिक्रम से धा० के निम्नलिखित छन्द प्रक्षिप्त ठहरते हैं —

१ ध० फ० : धा० २८, ३०, ३४३, ३९०।

२ ना० : धा० ६७ अ, ११३, ११४।

३ द० : धा० १४०।

धा० के प्रक्षिप्त छंद

ऊपर विभिन्न उपायो का अवलम्बन करके हमने देखा है कि धा० में वार्त्ताओं के अतिरिक्त निम्नलिखित छन्द और छन्दाश प्रक्षिप्त ठहरते हैं :—

धा० १, ३-१९, २१, २६, २८-३०, ६१, ६७ अ, ६९, ७९-८२, ११३, ११४, १२१ के अंतिम दो चरण, १२५, १२६, १४०, १४३, १४४, १४५, १५०, १५६, १५७, १९४, २०८, २२४, २३९ के चरण २२ ३५, २४३, २६९ के अंतिम दो चरण २९१, २९२, ३०८, ३४३ ३४५, ३५६, ३५७, ३५९, ३६१, ३९०, ३९६, ४०३, ४४४, ४२१ ।

उपर्युक्त के अतिरिक्त धा० का केवल निम्न लिखित छंद और प्रक्षिप्त ज्ञात होता है :—

(१) धा० २७ : यह ढीली कीली कथा का एक मात्र छंद है जो धा० में आया हुआ है : इसमें जगजोति व्यास के द्वारा अनंगपाल को [ढीली की] कीली ढीली करने का परिणाम यह बताया गया है कि तोमरो के बाद चहुवान और चहुवानो के बाद तुर्क दिल्ली के अधीश्वर होंगे । किन्तु अनंगपाल तोमर ने कीली किस प्रकार ढीली की, और वह कीली कैसी थी आदि किसी बात का उल्लेख धा० के अन्य किसी छंद में नहीं हाता है । अनंगपाल तोमर और दिल्ली-दान के संबंध के धा० के अन्य छंद भी (धा० २६, २८, ३०) ऊपर प्रक्षिप्त प्रमाणित हो चुके हैं । इसलिए धा० २७ भी प्रक्षिप्त ज्ञात होता है । प्रक्षेप-क्रिया के समस्त चिह्न प्राप्त प्रतियों से किसी न किसी में सुरक्षित है, यह नहीं माना जा सकता है, इसलिए इस प्रकार के एकाध अपवाद के लिए हमें तैयार रहना चाहिए ।

धा० में छूटे हुए छंद

धा० में केवल निम्न लिखित दो छंद छूटे जान पड़ते हैं, जिन्हें प्रसंग की दृष्टि से मूल का मानना आवश्यक जान पड़ता है :—

(१) मो० ३४५ : यह छंद धा० के अतिरिक्त सभी प्रतियों में है । इसमें कन्ह के घराशायी होने पर अल्ह के युद्ध में प्रवृत्त होने का उल्लेख होता है । धा० २८३ में उसके लड़ते हुए घराशायी होने का उल्लेख है । इसलिए उसके युद्ध में उतरने के संबंध का मो० ३४३ भी प्रसंग अनिवार्य है ।

(२) अ० ६. दो० ९ : यह छन्द धा० मो० में नहीं है, शेष समस्त प्रतियों में है । इसमें जयचन्द की दूती द्वारा यौवन की महना प्रतिपादित करने वाले कथन का संयोगिता द्वारा दिया गया उत्तर है । यह उत्तर प्रसंग में नितान्त आवश्यक है क्योंकि अन्यथा उक्त दूती का कथन उत्तरहीन रह जाता है, यद्यपि सवाद आगे चलता है, और संयोगिता उसका उत्तर न दे इस बात का कोई कारण नहीं दिखलाई पड़ता है । अतः यह छंद भी मूल पाठ का प्रतीत होता है ।

एक प्रति में एक छन्द का छूटना साधारण बात है, और दो प्रतियों में भी किसी एक छोटे छन्द का स्वतंत्र रूप से अलग-अलग छूट जाना असंभव नहीं है, इसलिए इन दोनों छंदों को मूल का स्वीकार करना चाहिए ।

उपर्युक्त प्रक्षिप्त छन्दों और वार्त्ताओं को निकाल देने तथा इन को छन्दों दो सम्मिलित कर लेने पर धा० का आकार प्रसंग-शृंखला, उक्ति-शृंखला, प्रबंध-शृंखला आदि की समस्त दृष्टियों से इतना सुगठित हो जाता कि वह मूल का प्रतीत होने लगता है । * आगे हम देखेंगे कि वह अन्य प्रकारों से भी प्रायः मूल का ही प्रमाणित होता है ।

* इन छंदों की ग्रंथ की विभिन्न प्रतियों में पाठ स्थिति के लिए दे० आगे 'पृथ्वीराज रासो के निर्धारित मूल रूप की छंद-सारिणी' शीर्षक ।

४. पृथ्वीराज रासो

का

मूल रूप (पाठ)

मूल रचना में कौन-कौन से छंद रहे होंगे यह निर्धारित कर लेने के बाद पाठभेद के स्थलों पर कौन से पाठ स्वीकृत होने चाहिए और कौन-से नहीं, यह निर्धारित करना रह जाता है। इस प्रकार के पाठ-निर्धारण का कार्य सन्तोषजनक रूप से तभी संभव हो सकता है जब विभिन्न प्रतियों का पाठ संबंध निर्धारित हो जाये। यह अवश्य है कि इस प्रकार का संबंध-निर्धारण हम विभिन्न प्रतियों के उन्ही अंशों तक सीमित रख सकते हैं जो ऊपर निर्धारित मूल के अन्तर्गत आते हैं, क्योंकि हमारा अभिष्ट इसी मूल का पाठ-निर्धारण है। ये प्रतियाँ अपने अन्तिम रूपों में परस्पर किस प्रकार संबद्ध हैं, यह निश्चय करना प्रस्तुत कार्य के लिए आवश्यक नहीं है।

इस पाठ-संबंध-निर्धारण के लिए हमें विभिन्न प्रतियों में इन्हीं छंदों में आने वाली ऐसी समस्त पाठ विकृतियों का लेखा लेना होगा जो किन्हीं भी दो या अधिक प्रतियों के पाठ-संबंध पर प्रकाश डाल सके। केवल सुनिश्चित पाठ-विकृतियों की ही यहाँ लिया जा सकेगा। ये प्रायः संपादित पाठ में निर्दिष्ट स्थानों को देखने पर स्वतः स्पष्ट हो जावेगी, इसलिए नीचे संपादित पाठ और उसके अनंतर विकृत पाठ देते हुए इनके संबंध में वही पर कुछ विस्तार से कहा जावेगा जहाँ इनके संबंध में संकेत करना मात्र पर्याप्त न समझा जाएगा।

धा० मो० म० ना० उ० ज्ञा० स०

✓ (१) धा० ३०३. ३ हर हृथ्यहि हरि गहहि वाम रण्विहि इनि वारहि।

प्रसंग पहाड़ राय तोमर द्वारा किये हुए भयानक युद्ध का है। इन प्रतियों में 'हर हृथ्यहि' के स्थान पर धा० मो० में 'हरि हृथ्यहि', ना० में 'हरि हृथ्यह' और यह म० उ० स० में 'हरि हृथ्या' है।

(२) धा० ३२४. २ संजोगि जीवन जंबनं।

सुनि श्रवण दे गुरुराजनं।

प्रसंग सयोगिता के नख-शिख वर्णन का है। इन प्रतियों में 'श्रवण दे' के स्थान पर पाठ 'सर्वदा' है।

(३) धा० ३२४. ७ : नग हेम हीर जु थप्पनं।

गय हस मग उथप्पनं।

प्रसंग सयोगिता के चरणों के वर्णन का है। इन प्रतियों में 'हीर' के स्थान पर पाठ 'हंस' है।

धा० मो०

(४) धा० १३६*३२ : रोहि आ रोहि मंजीर संहं।

मन्द मृदु तेज परजीर वंहं।

प्रसंग सयोजिता के नूपुरो की ध्वनि के वर्णन का है। धा० मो० में परकीर (<प्रकीर) के स्थान पर 'प्रकार' है।

(५) धा० १६९.२ : जे त्रिय पुरुष रस परस त्रिनु उठिग राय सुर सान ।
धवल गृह ते अनसरई भट्टहि अप्पन पान ॥

प्रसंग स्वतः प्रकट है। धा० और मो० में 'भट्टहि अप्पन' के स्थान पर क्रमशः है 'रिपु मंगन सु' तथा 'रिपु मंगन वह'।

(६) धा० १८८.१ : कांती भार पुरा पुनर्विगलित शाखान गंड स्थल ।
उच्छं तुच्छ तुरा स शशिकमन करि कुभ निद्धाडियं ।

प्रसंग प्रातः की वेला के वर्णन का है। धा० मो० में 'कांती भार' के स्थान पर पाठ 'काता भार' है।

(७) धा० १९३.२ : सुनि तंबोल पट्टिय सुकर बर उठि दिट्ठिअ बंक ।
मनु रोहनि सु यमुन मिलिग मनु बिबि उदित मयंक ॥

प्रसंग अवाइत वेवधारी पृथ्वीराज के द्वारा जयचन्द्र को पान अर्पित किए जाने का है। धा० और मो० में 'मनु रोहनि सु यमुन मिलिग' के स्थान पर क्रमशः है 'मनो मोहनि सु मन मलिग' तथा 'मन मोहनि सु मन मिलिग'।

मो० ना० उ० ज्ञा० स०

(८) धा० ३४७-३५० : सहहि भीर त्रिप पी जिहि जिन सिर झरहि दुवार ।
लाज धरहि तिनबरि गाणहि ते पुहु 'पच हजार' ॥
'पंच हजार' ति मझि 'दुइ' जे अग्या बर सामि ।
कर वज्जइ वज्जइ सहइ ते 'सै पंच' अछ्छामि ॥
तिन महि 'सौ' जे भय हरण सील सन्त जम जित्त ।
तिन महि 'दस' वारण दलण उपपारहि गयदन्त ॥
तिन महि 'पंच' प्रपंच से लखिय न गति तिन काज ।
देवगति देवानसउ तिन महि पहु प्रथिराज ॥

प्रसंग पृथ्वीराज की सेना-वर्णन का है। इन प्रतियों में उपर्युक्त (१) 'पच हजार', (२) 'दुइ' [हजार], (३) 'सै पंच', (४) 'सौ', (५) 'दस' तथा (६) 'पंच' के स्थान पर क्रमशः (१) 'बीस हजार' (२) 'दस [हजार]', (३) 'पच [हजार]', (४) 'दोइ [हजार]' मो०, 'बीस से'—ना०, 'पञ्च से'—ना० (५) 'दस' सह, (६) 'पञ्च सह' है।

(९) धा० ३६२.२७ : परे सहस 'सोरह' सह सेन गोरी ।

प्रसंग गोरी-पृथ्वीराज युद्ध में गोरी की सेना के सहार का है। इन प्रतियों में 'सोरह' के स्थान पर 'पचीस' है।

(१०) धा० ३८६ : भय विहान 'सुरितान' दर वज्जि निसांन निसांन ।
तम चूरन जूरण किरणि त प्रगटि दिसांन दिसांन ॥

इन प्रतियों में 'सुरितान' के स्थान पर 'सु विहान' है, जब कि पूर्ववर्ती शब्द भी 'विहान' है।

मो० ना०

सुनत बोल हेजमइ उठत दिसित चन्द हित ताहि ।

त्रिप अगगइ गुदरन मयउ जहां पंगु त्रिप आहि ॥

ना० मो० में इसके पूर्व निम्नलिखित दोहा आता है (ना० पाठ) :—

सुनत हेत हेजम उल्यौ कह्यो चन्द कवि आउ ।

बलि समान बलि करन सुत इह भौमी मान राउ ॥

ना० मे वा० १४७ के देहे को इस दहे का 'पाठानर' कहा गया है ।

(१२) धा० २९७६ : बलि गयउ न मांदर दिसि रहउ मरण जाणि बुझउ अनी ।

विश्व लागि दाग तिलक मिमि 'बहु बहु बहु भगुल धनी' ॥

प्रसंग पृथ्वीराज की रक्षा के लिए हुए 'नितराज' के युद्ध का है । इन प्रतियों में 'बहु बहु बहु भगुल धनी' के स्थान पर पाठ है : मा० 'बहुल भगि समरि धनी' ना० [वा] 'हुं भगि' संमर धनी' । विश्व ने पृथ्वीराज की ओर से युद्ध फिना था (धा० ३०४) इसलिए 'बहुल भगि समरि धनी' अथवा '[वा] हुं भगि समरि धनी' पाठ असम्भव है ।

(१३) धा० ३१६१ : तब 'गुरराज राज कवि' बुझइ ।

तुहि बरदाइ तिन्न पुरु सुझइ ।

इन प्रतियों में 'गुरराज राज कवि' के स्थान पर पाठ है : मो० 'गुरु राज राज गुरु' और ना० 'वविराय राजगुरु' । दूसरे चरण से प्रकट है कि प्रश्न बरदाई से राजगुरु ने किया है ।

(१४) धा० ३२४४९ : 'मणि बन्ध' पुष्प सु दीसये ।

जानु कन्ह कालीय सीसये ।

प्रसंग संयोगिता के नख-शिख वर्णन का है । इन प्रतियों में 'मणि बन्ध' के स्थान पर 'मणि बिब' है ।

(१५) धा० ३७६.१ : 'हउं सु जोगिय हउं सु जोगिय' जमन परिदार ।

प्रसंग गोरी के दरबान के द्वारा चंद से किए गए 'किमि तई जोगी भयु भट्ट' विषयक प्रश्न के उत्तर का है । इन प्रतियों में 'हउं सु जोगिय हउं सु जोगिय' के स्थान पर है : मो० 'तब पेणु' ना० 'तव पिणै' । किन्तु दरबान चन्द को पहले ही देव चुका है (धा० ३७५.३) : यहाँ तो दरबान के प्रश्न का उत्तर चन्द के द्वारा दिया जाना चाहिए था ।

धा० अ० फ० म० ना० उ० ज्ञा० स०

(१६) धा० १०९१ : आनंदउ 'कविचंदु जिय' निप लिय सच विचार ।

प्रसंग कन्नौज ले चलने के लिए चन्द से पृथ्वीराज द्वारा किए गए अनुरोध पर चंद के आनंदित होने का है । इन प्रतियों में 'कवि चंदु जिय' के स्थान पर पाठ है : धा० 'कवि कव्यनु', अ०फ 'कवि सुनि वयनु', न० 'कवि वयन विनु', ना० 'कवि इक वयन', उ०स० 'कवि के वयन' । इस छन्द के पूर्व सभी प्रतियों में पृथ्वीराज के वाक्य आते हैं, इसलिए इन प्रतियों के पाठ सम्भव नहीं हैं ।

(१७) धा० १२१.१३.१४ : पुह फटिग घटिग सरवरि सरीर ।

झलकंति दनंक दिष्य गम नीर ।

इन प्रतियों में ठोक इसके पहले और है :—

घर हरिग सीत सुर मंद मंद ।

उपजगो जुद्ध आवध्व दंद ॥

किन्तु यहाँ प्रसंग पृथ्वीराज के कन्नौज पहुँचने मात्र का है, युद्ध के दृढ़ तो बहुत बाद में प्रारम्भ होते हैं ।

(१८) धा० १७२.१० : धनुष्य भउंह अंकुरे

नयन्न बान बंकुरे ।

प्रसंग जयचन्द की दासियों के नख-शिख का है । इन प्रतियों में 'नयन्न बान' के स्थान पर पाठ 'मनो नयन्न' है, किन्तु 'नयन' मौहों के उपमान नहीं हो सकते हैं ।

(१९) धा० १९६.६ : पारस्व मडि प्रथिराज कउ कहइ भलै रजपूत सउ ।

प्रसंग छद्मवेशी पृथ्वीराज को जयचन्द के पहचानने और उसको पकड़ने की आज्ञा देने पर पृथ्वीराज के सामंतों की प्रतिक्रिया का है। इन प्रतियों में पाठ है धा० म० उ० स० 'सावत सूर हसि राजसू (सौ—म०)', अ० फ० 'सावत सूर हरि परसपर', ना० 'मर भरणि आउ पुजीय घरीय'। 'पारस्व मडि प्रथिराज कउ' (=पृथ्वीराज के पार्श्व में आकर) के एक दुर्बोध पाठ को हटाकर इन प्रतियों में एक सरल पाठ को रखा गया है।

(२०) धा० २१०.१ : जउ इन लष्पन सऱ सहित प्रिचार न तऱव करि ।

प्रसंग संयोगिता के अपनी दासी को मोतियों का थाल लेकर पृथ्वीराज के पास भेजने का है। इन प्रतियों में 'सहित' शब्द नहीं है। 'इन लष्पन' शब्दों से प्रकट है कि 'सहित' होना चाहिए।

(२१) धा० २११.३ : कमलिति कोमल पांनि कलिकुल अंगुलिय ।

प्रसंग उपर्युक्त दासी के मोती अर्पित करने का है। इन प्रतियों में 'कलि कुल' (=वलिका-कुल) के स्थान पर 'केलि कुल' है, जो उँगलियों के लिए निरर्थक है।

(२२) धा० २२९.२ : बहुत जतन संजोगी समवै ।

सोम अमृत कमल तुम्ह नु छवै ।

इह कहि बाल गवर्षिन पत्तिय ।

पति देषत मन महि नहि रत्तिय ।

प्रसंग संयोगिता को वरण करके पृथ्वीराज के चले जाने पर उसके विरह का है। इन प्रतियों में दूसरे चरण का पाठ है : धा० अ० फ० 'सोम कमल अमृत दरसाए', म० ना० उ० स० 'सोम कमल दिनयर दरसाए'। कहा गया है "[उस विरह-दाह को शांत करने के लिए] संयोगिता ने बहुत से उपाय किए, [किन्तु कोई लाभ न होता देखकर] वह कहने लगी, 'हे सोम, अमृत और कमल तुम्हें [कोई] न छवै।' और यह कह कर वह गवाक्षो तक गई..." इन प्रतियों का पाठ चरण तीन के 'इह कहि' को निरर्थक कर देता है। 'दरसाए' तो निरर्थक है ही—कमल और अमृत के दर्साने से कोई शीतलता नहीं प्राप्त होती है।

(२३) धा० २२९.३ : ऊपर के छन्द में तीसरे चरण का पाठ इन प्रतियों में है : 'उझकि झकि दिखउ पन पत्तिय'। यह परिवर्तन पूर्ववर्ती से संबद्ध है।

(२४-२५) धा० २३९.२०, २२ : दरसी दल कांदल झलरियं । (१९)

समरे घर कायर बलरियं । (२०)

जिनके मुष मुच्छ ति मच्छरियं । (२१)

निरषे तिनके तन अच्छरियं । (२२)

इन प्रतियों में २० तथा २२ वें चरण नहीं है, स्पष्ट है कि वे छूटे हुए हैं।

(२६) धा० २५०.३ : नीच कंधे 'प्रही' रोम सीस ।

प्रसंग मीर बंदन के वर्णन का है। इन प्रतियों में 'प्रही' के स्थान पर पाठ 'तुच्छ' है। 'प्रही' का अर्थ 'झड़े हुए' होता है और वही सगत लगता है। यहाँ अर्थ की दुर्बोधता के कारण सरल पर्याय रखा दिया गया है।

(२७) धा० २६२.१ : मति घट्टी सामंत मरण 'हउ' मोहि दिखावहु ।

इन प्रतियों में 'हउ' के स्थान पर 'भय' है। 'हउ' 'भय' का अपभ्रंश रूप है, किन्तु 'भय' की अपेक्षा 'हउ' (<हउआ) अधिक उपयुक्त शब्द है। 'हउ' दुर्बोध होने के कारण बदल दिया गया, और कर उसके स्थान पर 'भय' कर दिया गया है।

(२८) धा० २६९.९ : धर वेह मऊष त पीत पनी । (९)

दिषि लज्जति रेण सरह तन्ने । (१०)

चरण ९ का पाठ इन प्रतियों में है : धा० अ० फ० 'हरिपत्थि हिमाउत पीत पनी', ना० उ० स० 'हरिपष्य हुमा (इमा-स०, उमा-उ०) उपवीत (उअपीत-स०, पतिपीत-उ०) वनी (पनी-ना० उ०)' । प्रसंग सेना के प्रयाण का है । निर्धारित पाठ का आशय है : 'धरा की धूल [उड़कर] सूर्य की किरणों में [ऐसा] पीलापन ला रही है.....' । इन प्रतियों के पाठ निरर्थक हैं ।

(२९) धा० २७०.२ : 'विजे सव सेन' तिक्के नकरे ।

इन प्रतियों में 'विजे सव सेन' के स्थान पर पाठ है : धा० अ० फ० ना० 'विडुरिय सेन', म० उ० स० 'डरं विडुडुरी सेन' । 'विज्' का अर्थ भागना होता है, उसके स्थान पर उसकी दुर्बोधता के कारण प्रसंग से समझकर 'विडुडुरिय' शब्द दे दिया गया है ।

(३०) धा० २७३.१ फुनि प्रथिराज अछिछ 'देह' वलु रट्टिवर नरेस ।

सिर सरोज चहुआन कड अमर सस्त्र सम भेस ॥

इन प्रतियों में 'देह' के स्थान पर 'दल' है । संपादित पाठ के प्रथम चरण का अर्थ है : 'फिर पृथ्वीराज को आँखों से देखकर राठौर नरेश [जयचंद] धूम पड़ा ।' 'देह' का अर्थ देखना है, उसको न समझ कर प्रसंग के सहारे पाठ 'दल' कर दिया गया है ।

(३१) धा० २८५.३ : मछछ् तिहेवर फुरहि कछछ गज कुंभ 'विदारहि' ।

उअहंस उडि चलहि हंसमुख कमल विराजहि ॥

इन प्रतियों में 'विदारति' के स्थान पर भी 'विराजति' है जो उसके तुक में बाद की ही पंक्ति में आता है ।

(३२) धा० ३२७ : उहि उहि उभय रस उप्पजउ मिले चन्द गुरराज ।

कइ बन्धव सउं मनसिनउ कइ धन निरिष्यति राज ॥

इन प्रतियों में द्वितीय चरण का पूर्वार्द्ध है : धा० 'के वयनन अयनन' मिलहि, अ० फ० 'कै पिय वहि अवनिहि मिलै', ना० 'के वयन अपन न मिलनि', ज्ञा० स० 'कव वयनन आनन मिलै' । प्रसंग पृथ्वीराज की विलास-मग्नता का है; दूसरे चरण में गुरु राज तथा चंद का यह सम्मिलित अनुमान दिया गया है कि 'या तो राजा बांधवों से मनसिन् (उनका ध्यान रखने वाला) होगा, और या तो वह अपनी स्त्री (संयोगिता) को ही देखेगा (उसी पर ध्यान देगा) ।' प्रकट है कि इन प्रतियों का पाठ निरर्थक है, और एक दुर्बोध पाठ के स्थान पर इनमें एक सरल पाठ प्रसंग की सहायता से रखने का प्रयास किया गया है ।

(३३) धा० ३३१.१ : 'आसन आइस सुधि दिय' कच झारिय तइ रेनु ।

सुभ सिंगार सुंदरिय 'अंगे आभरनेन' ॥

प्रथम चरण के पूर्वार्द्ध का पाठ इन प्रतियों में है : धा० 'आसन असु दिय चरन की', अ० फ० 'आसन दिय अनु चरन (वरनि) परि', ना० 'आसन असु दिय चरन किय' ज्ञा० स० 'आसन असु दिय चरन रज' । किंतु चरण पढ़ने की बात तो पूर्ववती छंद में आ चुकी है :

तब कुडिल भोह चष 'सोह ति मोहन दास दस ।

कछु हंसि वछु पय लगि पयंपइ लीय रसि ॥

(३४) धा० ३३१.२ : पूर्वोल्लिखित दोहे के ही द्वितीय चरण का उत्तरार्द्ध इनमें है : धा०

अ० फ० ज्ञा० स० 'आदर आभर नैन (आभरनेन-धा०)' ना० 'आभर आभ नैन' ।

इन प्रतियों का पाठ निरर्थक है यह प्रकट है ।

(३५) धा० ३३८.२ : कहु सु प्रियह पडमिनिय कंत धनु धरउ तउ न धन ।

सुर सुप मार आरोहु 'असर' संसार मरण मन ॥

इन प्रतियों में द्वितीय चरण के 'असर' के स्थान पर पाठ 'सार' है। 'असर' का अर्थ है अ+स्मर काम विहीन है, और वही सार्थक है। 'सार' प्रसंग में निरर्थक है। 'असर' का अर्थ न समझ पाने के कारण पाठ-परिवर्तन किया गया है।

(३६) धा०-३१४.२ : मेछु मरुति सति क्रिय बंचि कुलांन कुरान ।

'वीर चिक्क वततिह कियउ' दिअउ मिलांन मिलांन ॥

इन प्रतियों में दूसरे चरण के पूर्वाद्ध का पाठ है : 'वीर विचार ति (त—अ०) रत्त (रत्ति—धा० क्षा० हु० हुअ)'। स्वीकृत पाठ का अर्थ होगा 'तथैव उन वीरों ने बातें थोड़ी कीं।' 'चिक्क (< स्तोक)' को न समझ पाने के कारण पाठ-परिवर्तन किया गया है।

(३७) धा० ३६०.५ : बडे सो ओलगगी बजी धार धारं ।

भयो सेन दुम्भइ दुह मार मारं ।

:उद्धता प्रथम चरण का पाठ इनमें है : धा० शा० स० 'बड़ी संग लगी (लज्जी-धा०, लगी क्षा०)', अ० फ० 'बड़ी भंग लगी', ना० 'बड़ी सिंग लगी'। ये सभी पाठ निरर्थक हैं, और 'ओलगि (< अवलग्न) भृत्य' के अर्थ को न समझने के कारण पाठ-परिवर्तन किया गया है।

(३८) धा० ३१८.१ : तिहि आयउ तुहि आस करि तुहितु पास चहु आन ।

सोइ दुरोग लगहुँ मनह कढहन कउ सु दिहान ॥

ति हि इस प्रतियों में प्रथम चरण का पाठ है : 'अप्रमान (दा सुनंत शा० स०) कंयो (करयरो-धा०) हियौ दिल न रह्यौ (रहै-धा० ना० थिर थान (काम-धा०))'। ये पाठ प्रसंग में निरर्थक हैं, यह स्वतः देखा जा सकता है।

धा० अ० फ० ना०

(३९) धा० ३८३.४ : अमिय कलस आयास लिअउ अछरी उछंगह ।

तब सु भई परतखि 'अरीत अरीत कहत कह' ॥

उद्धता दूसरे चरण के उत्तराद्ध का पाठ इन प्रतियों में है 'सद् जय जय सु कह कह'। 'अरीत (< अरिक्त)' का अर्थ न समझने के कारण यह पाठ-परिवर्तन किया गया है : दुर्बोध पाठ को निकाल कर प्रसंग से अनुमोदित एक सुगमतर पाठ दे दिया गया है।

(४०) धा० ३८०.२ : हदफ साह पेलन चढ़उ मनुहु 'उदधि अरणन ।

इन प्रतियों में 'उव्यउ अरणन' के स्थान पर पाठ है 'उदधि अररान'। हदफ (=लक्ष्यवेध) खेलने के लिए धोड़े पर सवार हुए शाह की कल्पना 'उदित अरण' के अप्रस्तुत के साथ ही संमत लगती है, 'उदधि अररान' की उक्ति तो किसी 'सेना' के ही अप्रसर होने के सम्बन्ध में संगत हो सकती थी।

धा० अ० फ०

(४१) धा० ५७.३, ४ : 'जिउ' सूर तेज तुच्छत जल मीनह ।

'तिउ' पंगह भय दुज्जन भय पीनह ।

इन प्रतियों में दोनों चरणों में 'जिउ' और 'तिउ' नहीं हैं। इनके न होने से अर्थ दुरुहता से लगता है; केवल छन्द में मात्राधिक्य समझ कर इन शब्दों को निकाल दिया गया है।

(४२) धा० १०२.२ : चलउ भट्ट सेवग होइ सथ्हं ।

जउ बोलउ 'त हथ्यु तुह सथ्हं' ।

इन प्रतियों में दूसरे चरण का उत्तराद्ध है 'अत्थि डुल्लै धुव', जो निरर्थक है। यह 'तुम्हारे मस्तक पर मेरा हाथ है' की सौगंध न समझ पाने के कारण बदल कर किया गया है।

(४३) धा० १९०.१ : मिसि वज्जहि गंगह रवनि 'दान कवि पति सेइ' ।

चठित सुवासन समुह हुआ सब सामंत समेव ॥

इन प्रतियों में प्रथम चरण का उच्चारण है : 'धा०... ..मोह, अ० फ० 'कनि पति मृत (मृति-अ०) समूह (मूह—अ०)' । धा० त्रुटित है किन्तु उसके पाठ के अन्तिम अक्षर 'मोह' 'समूह' का ही कोई अंश है—उकार, ऊकार और ओकार में प्रायः भ्रम किया जाता रहा है । यह पाठ असंगत और अर्थहीन है, यह स्पष्ट है, स्वीकृत पाठ ही सार्थक है ।

(४४) धा० २२७.३ विन उत्तर 'तु मौन' सुष रषी ।

जिम चातुकि पावस रति नषी ।

उद्धृत प्रथम चरण के 'तु मौन' के स्थान पर धा० अ० में है 'मोहन'; फ० में यह चरण छूटा हुआ है । 'मोहन' प्रसंग में निरर्थक है ।

(४५) धा० २४७.१, २ : गहि गहि कहि सेना तिसह 'चलि हय गय मिलि तव्व ।

जिम पावस पुव्वइ अनिल 'हलि गत वददल सव्व ॥

इन प्रतियों में प्रथम तथा द्वितीय चरणों के उच्चारण क्रमशः हैं 'चलि (हलि-फ०) हय गय मिलि इक्क', तथा 'हति वदल (चदल-फ०) वहु भिष (भेष—धा०, मषि—फ०)' । 'इक्क' पाठ प्रसंग में सर्वथा निरर्थक है, यह प्रकट है । दूसरे चरण में पाठ-परिवर्तन 'हलिगत = हलगत' — आस-पास आ जाते हैं' को न समझ पाने के कारण किया गया है ।

(४६) धा० २६०.१ : यतो नीरं ततो नलिनी यतो नलिनी ततो नीरं ।

त्यजति ग्रहं न यत्र ग्रहनी यतो नलिनी ततो ग्रहं ।

इन प्रतियों में प्रथम चरण का उच्चारण भी वही है जो पूर्वाद्ध है : 'यतो (यतो—अ० फ०) नीर ततो नलिनी' । अशुद्धि प्रकट है ।

(४७) धा० २८७.६ : सामंत पंच घेतह परिग भिरइ भंति भए 'विषपहर ।

इन प्रतियों में 'विषपहर' = दो पहर, के स्थान पर 'विषहर' है । अशुद्धि प्रकट है ।

(४८) धा० ३०४.२ : 'काम' वान हर नयन निडर नीडर सोइ सुझर ।

इन प्रतियों में 'काम' के स्थान पर पाठ 'इक्क' है । प्रसंग विभिन्न सामंतों के पृथ्वीराज को कन्नौज से दिल्ली की दिशा में आगे बढ़ाने की दूरी का है । धा० २७६ में नीडर के सम्बन्ध में कहा गया है :

नीडर निसक झुझत रण अड कोस चहुआन ग्रय ।

इस 'अड' की संख्या के लिए 'काम वान (५) + हर नयन (३)' पाठ ही ठीक है, 'इक्क वान कन्नौज' स्पष्ट ही अशुद्ध है ।

(४९) धा० ३११.१ दादुर 'सादुर' सोर नव पुर नारि वन ।

इन प्रतियों में 'सादुर' शब्द नहीं है । 'दादुर' से वर्ण-साम्य होने के कारण प्रतिलिपि करने समय यह शब्द छूट गया है, यह स्वतः प्रकट है ।

(५०) धा० ३१८.३ : 'जिहि' धन त्रिभ सरणु त्रिनि वर जाने ।

सो काम देव त्रिभ वसि करि माने ॥

इन प्रतियों में 'जिहि' शब्द नहीं है । छंद का मात्राधिक्य ठीक करने के लिए यह निकाल दिया गया है, यद्यपि इससे वाक्य अपूर्ण रह जाता है ।

देखिए इसी भूमिका में 'प्रयुक्त प्रतियाँ और उनके पाठ' शीर्षक के अन्तर्गत मो० रावजी की प्रतिकृति ।

(५१) धा० ३५३.१, २ तव पान पुरासान ततार पान रुस्तम कर जोरइ ।

आन साहि मरदान आन सुविहान विछोरहि ।

इन दो चरणों के स्थान पर धा० तथा अ० में एक ही चरण है :

धा० तबहि पान पुरासान पान रुस्तम विछोरहि ।

अ० फ० पां पुरासान ततार पान सुविहान विछोरे ।

ऐसा लगता है कि प्रथम चरण के 'कर' से लेकर द्वितीय चरण के 'आन' तक का अक्ष निकला हुआ था, धा० या उसके किसी पूर्वज में दूसरे चरण के 'सुविहान' तथा अ० या उसके किसी पूर्वज में 'रुस्तम' को निकाल कर पकित की मात्राएँ ठीक करली गईं । फ० में यह भूल नहीं है, किंतु फ० के परिचय में ऊपर हम चुके हैं कि उसमें ऐसे लगभग ९० छंद हैं जो अ० के छंदों की क्रम-संख्या के बाहर पड़ते हैं और ना० तथा स० में मिलते हैं । इस लिए यदि का फ० का पाठ उक्त पाठ-मिश्रण के अनंतर ठीक कर लिया गया हो तो आश्चर्य न होगा ।

(५२) धा० ३६२.१९ : परे चाइ चालुक्क ते साटिदूने ।

सुरे मोरिआ सब्ब भये जात सुने ॥

अ० फ० में उद्धृत प्रथम चरण की 'साठि' तक की शब्दावली नहीं है । धा० में इस छूटी हुई शब्दावली के स्थान पर है : 'निने नूप सा सूप मखेन' जो कि सर्वथा निरर्थक है, और केवल चरण पूर्ति के लिए गढ़ ली गई है ।

(५३) धा० ३९३.२ : हमहि मिलइ जि चंद सुनि चरह दलिही लोभ ।

अरु जि दुनी महि संचरइ हम सउं मिलत न सोभ ॥

द्वितीय चरण का उत्तरार्द्ध इन प्रतियों में है : धा० 'हय गय गहि न सोभ', अ० फ० 'हय गय महि तन सोभ' । संभवतः पूर्व में पाठ त्रुटित होगया था, उसके स्थान पर प्रसंग के अनुकूल एक नवीन पाठ की कल्पना कर ली गई ।

(५४) धा० ३९९.३ : बहुन कउ पतिसाहि तुही ।

मनमझ्झ रहउ कवि साल जु ही ।

गयउ तु आज करि पइजु तुही ।

बनि जाउं साहि सुरतान मही ।

तीसरे चरण का पाठ इनमें है : 'दे अज्ज किधौं करि हे (करिहुं-अ०, करिहो फ०) जु (कि-अ०, के-फ०) नहीं' । प्रथम तथा द्वितीय चरणों के साथ स्वीकृत पाठ ही संगत है । प्रसंग यहाँ पर 'साल' = 'शल्य' का है । चंद गोरी से कहता है कि "(१) उस शल्य को काटने में तूही समर्थ है [२] यह जो शल्य कवि के मन में [खटकता] रहा है, [३] वह आज गया ही है यदि तू [उसके निकालने की] प्रतिज्ञा कर, [४] और (तदनंतर) हे सुल्तानों के शाह, मैं बन चला जाऊँ [यही मेरे मन में है] ।" प्रकट है कि इस प्रसंग में गोरी से 'नहीं' कराने की बात, जो इन प्रतियों के पाठ में आती है चंद मुख पर भी ला नहीं सकता था ।

अ० फ० म० ना० उ० ज्ञा० स०

(५५) धा० २४२.१ : सुनि वज्जन राजन चडिग 'बहु पणवर समहाउ ।'

मनुह लंक विग्रह करन चलउ रघुपतिराउ ॥

इन प्रतियों में प्रथम चरण के उत्तरार्द्ध के रूप में है : 'सहस संघ धुनि चाव (चाय-म०, चाउ ना०, चाइ-उ० स०)' । इन प्रतियों में आगे शंखध्वनि नाम के योगी-दल का प्रक्षिप्त प्रसंग है । हो सकता है कि इन प्रतियों के इस पाठांतर का संबंध उक्त प्रक्षेप से हो । अन्यथा युद्ध के प्रसंग में शंखध्वनि का उल्लेख ग्रंथ में नहीं हुआ है ।

(५६) धा० ३१२.४ : केवर भाष पराकृति संकृति देव सुर ।

के गुन ग्यान सुजान विराजहि राजवर ।

उद्धृत दूसरे चरण का पाठ इन प्रतियों में है : 'के वरवीन विराजहि वीर वर', फ० 'के वरि वीन प्रवीनु विराजहि वीर वर', म० 'के वर वीन विराजत राज दरवार वर', उ० स० 'के वर वीन विराजित राजहि वार पर'। किंतु वीणा में प्रवीण दासियों का उल्लेख इसके पूर्ववर्ती छंद में ही हो चुका है।

तहं तहं अथि सुवीन प्रवीन ति दासि दस ।

इस लिए इन प्रतियों की पाठ विकृति प्रकट है।

(५७) धा० ३२६.१ : किय अचिरज तब राजगुरु न्यायनु राज रस रत्त ।

जस भावी नर भोगवइ तस बिधि अप्पइ मत्त ।

इन प्रतियों में प्रथम चरण का पाठ है : 'मानि (मन्नि-शा० स०) राजा गुरु राजरस (रसि-फ०) तँ कवि (कविवर-ना० जा० स०) बरनी (चरनी-फ०) सत्ति ।' 'न्यायनु राज रसरत्त' में पृथ्वीराज के भावी पतन की जो व्यजना है, वही चरण २ के साथ सागत है, इन प्रतियों के पाठ में वह सागति नहीं है।

ध० फ० ना०

(५८) धा० ३०२ : परत बघेल सु मेल किय रन राठवर सु भार ।

'जब दसकोस ढिलिय रही' फिरि तोमर पाहार ॥

इन प्रतियों में द्वितीय चरण के पूर्वार्द्ध के स्थान पर है 'दस योजन ढिलीय रहि (ढिल्ली परहु—ना०)'। कुल दूरी कन्नौज और दिल्ली के बीच 'पाच घाट सो कोस' कही गई है (धा० २६६.३), और इस दूरी को ग्यारह सामन्तों ने निपटाया है, जिनमें से अन्तिम पाहाड़ तोमर है (धा० ३०४)। प्रकट है कि यह दूरी जिसे पाहाड़ तोमर ने तै कराया दस कोस की ही हो सकती है, दस योजन की नहीं।

म० ना० उ० ज्ञा० स०

(५९) धा० ४५३-४ : षट छह जिहि सामंत सोइ प्रथीराज कोइ ।

दान षग भय मानि न मुक्कळ तात सोइ ॥

इन चरणों के स्थान पर इन प्रतियों में है :

सत्त सेन सामंत सूर छह मंडलिय ।

बरन इच्छ वर मो हिअ हंति अखंडलिय ॥

'षट्+दह' = सोलह के स्थान पर सामन्तों की संख्या १०० करने के लिए उद्धृत प्रथम चरण में पाठ-परिवर्तन किया गया लगता है, किन्तु इन प्रतियों का चरण का शेष पाठ अर्थहीन हो गया है; उद्धृत द्वितीय चरण का उत्तरार्द्ध भी इसी प्रकार इन प्रतियों में अर्थहीन हो गया है।

(६०) धा० ६३ : सं साहिस्स 'सहाब' साहि सकलं इच्छामि युद्धाहने ।

इन प्रतियों में 'साहिस्स सहाब' के स्थान पर म० 'साहि साहि', द० 'बसाह', उ० स० 'बसाह साह' ना० 'बसाहि बद्ध' पाठ हैं। ऐसा लगता है कि पूर्ववर्ती पाठ 'साहिस्स [सहा] ब साहि' का 'सहा' निकल गया था, इसलिए इन प्रतियों में यह पाठ-विकृति हुई : म० में प्रक्षेप का प्रयास कदाचित् नहीं किया गया, शेष में प्रसंग से 'बसाहि' के बाद 'साहि' जोड़ कर पाठ पूरा कर लिया गया।

(६१) धा० १७८.१ : आयस रावन सथि चलि 'असिभ सहस' तिहि सथि ।

इन प्रतियों में 'असिय सहस' के स्थान पर 'अयुत एक' है, जो स्पष्ट प्रक्षेप है और संख्या बढ़ा कर बताने के लिए किया गया है।

(६२) घा० २८४.१ : पुष्पांजलि 'सिरि मंडिप्रभु' फिरि लग्गी गुर पाय ।

'सिरि मंडि प्रभु' के स्थान पर इन प्रतियों में है 'दिसि बाम कर' जो कि सर्वथा अर्थहीन है । पूर्व के छन्द से इस छन्द की उक्ति-शृंखला है और उसका अन्तिम चरण स्वीकृत पाठ का ही समर्थन करता है :

पुष्पांजलि पंग सिरि णाइ जयति विभ कामदेव ।

(६३) घा० १८६.१ : जाम एक छनदा घटित 'ससि हू सत्ति' निवारि ।

कहु कामिनि-सुख रति समर नृपति हु नींद बिसारि ॥

इन प्रतियों में प्रथम चरण के 'ससि हू सत्ति' के स्थान पर पाठ 'सत्तमि सत्त' है । सप्तमी को केवल एक प्रहर रात्रि मत होने से उसके सत्व का निवारण नहीं हो जाता है, सप्तमी को लगभग दो प्रहर रात्रि तक उसका सत्व बना रहता है, उसके अनन्तर उसमें परिवर्तन आता है । इसलिए इन प्रतियों का पाठ विकृत है ।

(६४) घा० १९२.३ : 'बहुत किअउ आलाप' आउ कनवज्ज मुकट मनि ।

इह ढिल्लिअसुर दत्त बिअउ नन कहूं तुइअ गिनि ॥

उद्धृत प्रथम चरण के पूर्वार्द्ध का पाठ इन प्रतियों में है 'कवि आदर बहु कियौ' । किन्तु इस पाठ में आगे आए हुए कथन के विषय में 'कहा' अर्थ वाची कोई क्रिया नहीं आती; 'बहुत किअउ आलाप' में यह त्रुटि नहीं है । अतः इन प्रतियों का पाठ विकृत लगता है ।

(६५) घा० १९७.१ : सुनउ सबे सामंत हो कइइ निपति प्रथीराज ।

जउ अछुछउ षिन वेत मइ तउ दक्खिन नयर विराज ॥

प्रथम चरण के स्थान पर इन प्रतियों में है :

सकल सूर सामंत सम वर बुल्यौ प्रथीराज ।

इस पाठ में एक तो कोई सम्बोधन नहीं है, दूसरे 'सूर' शब्द अनुपयुक्त है : केवल सूर सामन्तों से नहीं, पृथ्वीराज ने सभी सामन्तों से कहा होगा; फिर 'वर' शब्द भी भरती का है । स्वीकृत पाठ में ये त्रुटियाँ नहीं हैं ।

(६६) घा० २३३.१ : मदन सराल ति विवहा 'निमिष दइत' प्रांन प्राणेन ।

नयन प्रवाह ति विवहा दिवा कथय कथा ॥

इन प्रतियों में प्रथम चरण के 'निमिष दइत' के स्थान पर 'जिह्वा रट्योति' है । स्वीकृत पाठ का अर्थ है 'मदन के शर रूपी काल से विनष्टा [सयोगिता] के प्राण एक निमिष के लिए दक्षित (प्रिय पति) के प्राणों से [अभिन्न] हो रहे ।' प्रकट है कि 'निमिष दइत' स्थान पर 'जिह्वा-रट्योति' शब्द सर्वथा निरर्थक हैं, और पूरे वाक्य के अर्थ को छिन्न भिन्न करते हैं ।

(६७) घा० २३४.४ : मोहि कंप सुरलोक 'कंप तप्पिय तह' नाग नर ।

इन प्रतियों 'कंप तप्पिय तह' के स्थान पर पाठ है : 'पन्न (पति-म० उ० स०) पन्नग अरु (पंस नर-म० पन्नगर-उ० स०)' । 'नाग' ठीक बाद में आता ही है, इसलिए 'पन्नग' वाले कोई भी पाठ सम्भव नहीं हैं ।

(६८) घा० २४६.१९ : 'सिंधु सा बंध' बंधे धुरंगा ।

संग संगीत डरि येभ संग ।

'सिंधु सा बंध' स्थान पर इन प्रतियों में है । 'विरद (विरुद-ना०) वरदाइ' । प्रसंग युद्ध में लाए गए हाथियों का है । प्रथम चरण का आशय है 'सिंधु देश के धुरंगे (हाथी) बन्धनों से बंधे हुए हैं' । यहाँ पर 'विरद वरदाइ' सर्वथा निरर्थक है ।

(६९) घा० २७८.१ : 'चंपत पिच्छोरिय गति' चषह अपन तन दिष ।

तन तुरंग तिलु ति तिलु कर भयउ कन्ह मन भिष्य ॥

प्रथम चरण पूर्वार्द्ध का पाठ इन प्रतियो मे है : म० उ० स 'चपत अच्छरि रिठ (रिठ-उ०) लगि', ना० 'चंपित अच्छरि डिभ लगि' जो सर्वथा अर्थहीन है; अप्सरा का कोई प्रसंग यहाँ नहीं है। (७०) धा० २८२.२ : धरणी कन्ह परत प्रगट ठट्टि पंगु निप हंकि ।

मनु अकाल 'अवली जरल' गहि अतुष्टि धनु रंक ॥

इन प्रतियो मे 'अवली जरल' के स्थान पर है 'संकरह हसि' । अकाल के समय शंकर का हँसना एक भद्दी कल्पना है, जो कि पूर्ववर्ती पाठ की दुर्बोधता के कारण उसको हटाकर रक्खी गई है; स्वीकृत पाठ का आशय है : मानो अकाल मे [रंक-] अवली ने, जो रो-चिल्ला रही थी, अटूट धन प्राप्त किया हो ।'

ना० उ० ज्ञा० स०

(७१) धा० ३४७ : सहहिं भीर निप पीर जिहि 'जिन सिर झरहिं दुधार ।'

लाज धरहिं तिन वरि गणहि ते पुहु पंच हजार ॥

इन प्रतियो मे प्रथम चरण के 'जिन सिर झरहिं दुधार' के स्थान पर है, 'लज्जा धर (धरन-ज्ञा०) भर भार', तथा दूसरे चरण के 'लाज धरहिं' के स्थान पर है 'धरनि (भिरण-ना०) धरणि ।' 'धरनि धरणि' असम्भव है, और 'भिरण धरणि' निरर्थक । स्वीकृत पाठ ही सम्भव है ।

(७६) धा० ३५२.५ : तिहि गहन हउं इछुहुं 'सुमन सच्च' करतार कर ।

मरगहु अगम भृत संगहहु धरहुं लज्ज लज्जहुं न भर ॥

इन प्रतियो में 'सुमन सच्च' के स्थान पर है 'साच झूठ' । यहाँ गोरी अपने सामंतों को आक्रमण का उद्देश्य बताता हुआ कह रहा है कि 'उसी पृथ्वीराज को मैं पकड़ना चाहता हूँ, मेरे मन की वह बात कर्तार सच्ची (पूरी) करे !' यहाँ पर 'साच' के साथ 'झूठ' असंगत है, 'झूठ' कहने से सामंतों से वह उत्साहपूर्ण सहयोग की अपेक्षा नहीं कर सकता है ।

(७३) धा० ३६५.२ : सहउं न बोल संमुह हन्यउ बान धान घुरासन ।

'टुहु टुजन पूजिअ घरी' दिन पलटउ चहुआन ॥

इन प्रतियो में दूसरे चरण के पूर्वार्द्ध के स्थान पर है 'इह अपुव्व सजोगि सुनि' । संयोगिता यहाँ पर कही नहीं आती है, युद्ध-विषयक विमर्श-संयोगिता सम्वाद के प्रक्षेप को रचना में पिरोने के लिए यह प्रक्षेप किया गया है ।

म० उ० स० ज्ञा०

(७४) धा० ११५.३-४ : चहुआन राठवर जांति पुंडीर गुहिल्ला ।

वड गूजर पांमार कुरुंभ जांगरा रोहिल्ला ।

इत्ते सहित्त भुझ पति चलउ उडी रेन किन्नउ नुभउ ।

एक एकु लष्व वह लष्ववह चले सथ रजपुस्त सउ ॥

उद्धृत प्रथम दो पंक्तियों का पाठ इन प्रतियो में है :

चाहुआन कूरंभ गौर गाजी वडगुज्जर ।

जादव रा रघुवंस पार पुंडीर ति पष्वर ॥

'रा' 'राज' के लिए आता है, किन्तु यहाँ किसी राजा या सामंत का प्रसंग नहीं है, यहाँ तो उन राजपूत जातियों का प्रसंग है जो पृथ्वीराज के साथ कन्दौज गई थीं; 'पार पुंडीर ति पष्वर' तो सर्वथा निरर्थक है ।

(७५) धा० १८४ अ. ३-४ : अंगोले लोल डोलं एक बोलं भमोलं ।

पुष्पांजलि पंग सिर-गाइ जयति विभ कामदेव ।

इन पक्तियों के स्थान पर इन प्रतियों में है :

इंद्रानी लोल डोला चपल मतिधरा एक बोली अमोली ।

पूहपा (दूहपा-म०) बानी विसाला सुभग (सुभ-म०) गिरवरा जैतरंभा सुबोली ।

स्वीकृत पाठ का अर्थ है : 'उन [नर्तकियों की] अगूठियाँ [उनकी घूमती-फिरती उँगलियों के साथ] चपलता पूर्वक डोल रही थीं और [उनके मुखों में] एक ही अमूल्य बोल था, पग (जयचन्द) के सिर पर पुष्पाञ्जलि डाल कर [मे कह रही थी] "हे दूसरे कामदेव, तुम्हारी जय हो!" इन प्रतियों के पाठ में 'सुबोली' अन्तिम चरण में पुनः आता है, किन्तु 'एक बोली अमोली' और 'जैतरंभा सुबोली' का कोई कर्म नहीं है। 'पूहपा बानी विसाला सुभग गिरवरा' तो निरर्थक है ही ।

(७६) धा० १९१

'दस हथिय' सुत्तिय सघन 'सत तुरंग जिति भाय ।'

दव्व सरस बहु संगि लिय भट्ट समष्ण जाय ॥

इन प्रतियों में प्रथम चरण के 'दस हथिय' के स्थान पर है 'तीस करिय' (करी—म० उ०) और 'सत तुरंग जिति भाय' के स्थान पर है : म० 'द्वे सै चपल तुरंग', उ० स० 'द्वे सै तुरंग बनाय' । इसके अतिरिक्त म० में द्वितीय चरण के 'जाय' के स्थान पर 'अंग' है । प्रक्षेप-क्रिया अति प्रकट है ।

(७७) धा० २०४.२ : सुनि सुंदरि वर वज्जने 'चढ़ी अवासह उट्ठि' ।

इन प्रतियों में चरण के उत्तरार्द्ध का पाठ है : 'अई अपुव्व कोइ (कौ—म०) दिठ्ठ (दुट्ठ-उ०, दुट्ठि-म०)' । प्रसंग में इस पाठ की कोई सार्थकता नहीं है । वाक्यों को सुनकर 'अई (?) अपूर्व कोई दिखाई पड़ा' सगतिहीन भी लगता है ।

(७८) धा० २२७.४ : विन उत्तर तु मौनमुष रण्णी ।

जिम चातुकि पावस रति नण्णी ॥

उद्धृत दूसरे चरण का पाठ इन प्रतियों में है : 'मन वच क्रम प्रीतम रस कषिय' (चषीय—म०) । ऐसा लगता है कि अन्तिम चरण किसी प्रकार नष्ट हो गया था, इसलिए उसके स्थान पर प्रसंग के अनुसार एक सर्वथा नवीन चरण की कल्पना कर ली गई ।

(७९) धा० २२८.४ : दे अंचल चंचल द्विग मुदइ ।

कुल सुभाउ तुरी जिम कुदइ ।

इन प्रतियों में उद्धृत दूसरे चरण का पाठ है 'विरहायन दाहन रवि उदहि' । यह पाठ सर्वथा असंगत है । प्रथम मिलन के अनन्तर पृथ्वीराज के चले जाने पर संयोगिता की जो दशा होती है, उसी का इन पंक्तियों में वर्णन है । स्वीकृत पाठ का अर्थ है, 'वह अञ्चल देकर अपने चञ्चल नेत्रों को मुदती [किन्तु वे न मान रहे थे] जैसे अपने कुल-स्वभाव के कारण बाँधने पर भी घोड़ा कूदा-उछला करता है।' विरह का भाव कुछ और तीव्रता के साथ लानेके लिए यह प्रक्षेप किया गया लगता है ।

(८०) धा० २६७.८

मिटयउ न जाइ कहनो वय कवि चंद सार सा मंत ।

प्राची हय गय वहनो रहनो गत चिंता नरेद्र तह ॥

इन प्रतियों में दूसरे चरण का पाठ है : 'प्राची क्रम्मविधान नामान भावई गत्त ।' किन्तु यहाँ 'क्रम विधान' का कोई प्रसंग नहीं है : 'प्राची' को प्राचीन समझ लिया गया है । स्वीकृत पाठ ही सार्थक और संगत है, जिसका आशय है 'जब कि प्राची (पूर्व—कन्नौज) के हय, गय, वाहन, रथादि तथा नरेन्द्र (जयचन्द) गतचिंता हो रहे हैं' ।

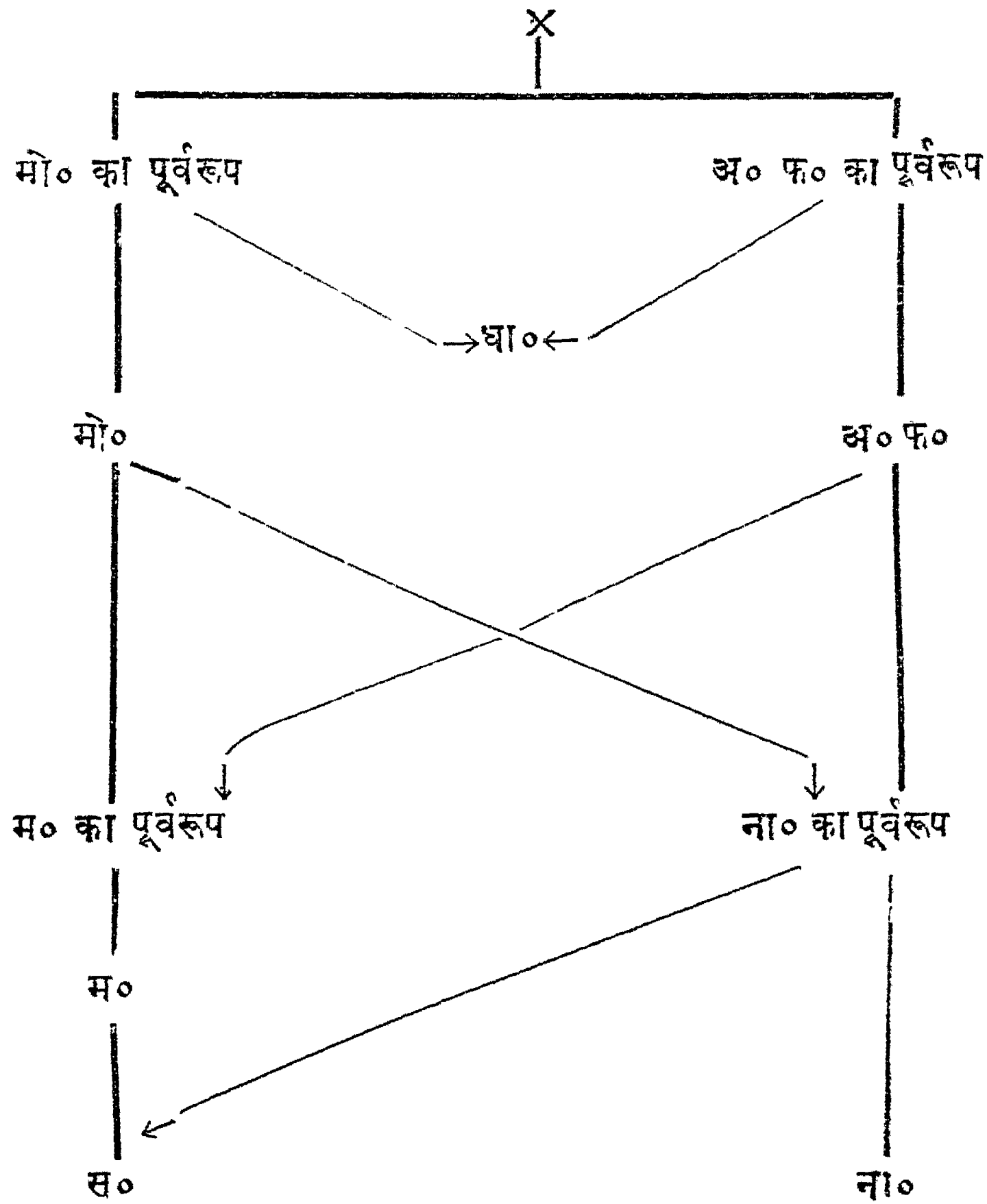
उपर्युक्त विवेचन से निम्नलिखित पाठ सम्बन्ध स्थापित होते हैं :—

१—धा० मो० म० ना० उ० शा० स०

२—धा० मो०

- ३—मो० ना० उ० ज्ञा० स०
 ४—मे० ना०
 ५—धा० अ० फ० म० ना० उ० ज्ञा० स०
 ६—धा० अ० फ० ना०
 ७—धा० अ० फ०
 ८—अ० फ० म० ना० उ० ज्ञा० स०
 ९—अ० फ० ना०
 १०—म० ना० उ० ज्ञा० स०
 ११—ना० उ० ज्ञा० स०
 १२—म० उ० ज्ञा० स०

इन पाठ-सम्बन्धों को हम स्थूल रूप से निम्नांकित रेखाचित्र द्वारा व्यक्त कर सकते हैं :—



यहां पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि यह पाठ-सम्बन्ध-निर्धारण विभिन्न प्रतियों के उन्ही अंशों के आधार पर किया गया है जो रचना के मूल रूप के लिए स्वीकृत हुए हैं।

पाठ-निर्धारण के आधार और सिद्धान्त

ऊपर के पाठ-सम्बन्धों को देखने पर ज्ञात होगा कि रचना के समस्त पाठ स्थूल रूप से मो० तथा अ० फ० के पूर्वरूपों से विकसित हुए हैं, और पाठ की दृष्टि से स्वतन्त्र शाखाओं का निर्माण

केवल मो० तथा अ० फ० के ये पूर्वरूप ही करते हैं, शेष समस्त पाठ उक्त दोनों के मिश्रण से निर्मित होते हैं। इसलिए पाठ-निर्धारण की दृष्टि से मो० तथा अ० फ० सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। घा० पाठ मो० तथा अ० फ० के उक्त पूर्वरूपों के मिश्रण से निर्मित है, उनके प्राप्त पाठों से नहीं, इसलिए उसका भी महत्व है, यद्यपि पाठ-मिश्रण के कारण वह महत्व पाठ-निर्धारण के लिए घट गया है। रचना के प्रारम्भ के जिन अंशों में मो० का पाठ अप्राप्य है, उन अंशों के लिए घा० का महत्व प्रकट है। मो० के अन्यत्र के त्रुटित पाठों के लिए भी घा० की सहायता ली जा सकती है। इसी प्रकार अ० फ० के त्रुटित पाठों के स्थलों पर घा० की सहायता ली जा सकती है। एक बात और घा० के मिश्र पाठ से प्रमाणित होती है, वह यह है कि मो० तथा अ० फ० के ये पूर्वरूप जिनके मिश्रण से घा० तैयार हुआ, घा० से बड़े नहीं थे। ऊपर रचना के मूल रूप का जो आकार निर्धारित हुआ है, वह घा० से भी कुछ छोटा है, यह हम देख चुके हैं।

अतः पाठ-निर्धारण के लिए निम्नलिखित सिद्धान्त निकलते हैं :—

अपने मूल रूपों में मो० तथा अ० फ० पाठ मात्र स्वतन्त्र हैं, इसलिए जहाँ पर इन दोनों में एक पाठ मिलता है, अन्य कोई पाठ मान्य नहीं होना चाहिए।

जहाँ पर मो० तथा अ० फ० भिन्न-भिन्न पाठ देते हों, और एक दूसरे से विकृत हुआ प्रमाणित होता हो, वहाँ वही पाठ स्वीकृत होना चाहिए जिससे अन्य पाठ विकृत हुआ प्रमाणित होता है।

जहाँ पर मो० तथा अ० फ० एक दूसरे से सर्वथा भिन्न पाठ देते हों, वहाँ पर समस्त प्रकार की सम्भावनाओं पर ध्यान रखते हुए दोनों में से जो पाठ मूल का लगता हो उसे स्वीकार करना चाहिए।

कहना नहीं होगा कि प्रस्तुत कार्य में इन सिद्धान्तों का पूर्ण रूप से पालन किया गया है। किंतु प्रतिलिपि-परम्परा में भाषा निरन्तर अधिकाधिक आधुनिक होती जाती है, केवल इसी बात को ध्यान में रखते हुए मो० तथा अ० फ० पाठों में जहाँ पर समान किन्तु अपेक्षाकृत बाद का रूप मिलता है, और घा० या किसी अन्य प्रति में प्राचीनतर रूप मिलता है, वहाँ पर अपवाद स्वरूप इस प्राचीनतर रूप को स्वीकार किया गया है।

**५. पृथ्वीराज रासो
के
निर्धारित पाठ की छंद-सारिणी**

संपादित	धा०	मो०	अ० फ०	म०	ना०	द०	स०
१.१	२३	३०	१. साट० १	१. साट० १	१ १	१.८	१.५४
१.२	२४	२९	१. साट० २	१ साट० २	१.२	१.७	१.५३
१.३	२२	२७	१ विरा० १	१. विअ०	१.५	१.११	१.७०-७५
१.४	२	ख०	२. भुज० १	२. भुज०	१.८	१.३	१.५ १०
१.५	२०	२५	२. दो० ९	२. दो० ९	१.१६/ २.१२४	१ १६	१.८१
१.६	२५	३१	२. साट० ३	२. साट०	४ १	३.१	३.१
२.१	३१	३८	६. पद्ध० १	ख०	२८.३	२८.५	४८.१९-३२
२.२	३२	३९	६. गाथा १	खं०	२८.५	२८.७	४८.९
२.३	३३-३४	४० ४१	६ पद्ध० २	ख०	२८.६	२८.८	४८ ४९-७४
२.४	३५	४२	६. रासा १	ख०	२८.९	२८.११,	४८.७९
२.५	३६/१	४३	६. पद्ध० ४/१	खं०	२८.११, २८.१३, १३, १५, १६ १५	२८.१३,	४८ ८१-८२, ८४-८५, ९१-९८
२.६	३६/२	४७	६. पद्ध० ४/२	खं०	२८.२६ २८.१७/ २८.२८	२८.१७/	४८.९९-१००/ ४८.१२७
२.७	३७	४८	६ भुज० ५	ख०	२८.४२	२९.१	४८.२२५ २६७
२.८	३८	४९	६. दो० १	ख०	२८.४३	२९.२	४८.२७१
२.९	३९	५१	६. दो० ३	४.३	२८.४७	२९.६	४९.२२
२.१०	४०	५० ५२	६. पद्ध० ६	ख०, ४,४	२८.४५, ४८	२९.५, २९.७	४९.१२, २३, २६
२.११	४१	५३	६. दो० ४	५.२३	२८.४९	२९.८	५०.२७
२.१२	४२	५४	६. दो० ५	५.२५	२८.५०	२९.९	५०.२८
२.१३	४३	५७	६. नारा० ७	५.१६	२८.५३	२९.११	५०.१६-२०
२.१४	४४	५८	६. रासा २	५.१८	२८.५४	२९.१३	५०.२२
२.१५	४५	५९	६. रासा ३	५.२७	२८.५६	२९.१५	५०.३०
२.१६	४६	६०	६. गाथा २	५.३०	२८.५७	२९.१६	५०.३३

૨.૧૭	૪૭	૬૧	દ. સાટ૦ ૧	૫.૩૩	૨૮.૫૯	૨૯.૧૮	૫૦.૩૬
૨.૧૮	૪૮	૬૨	દ. સાટ૦ ૨	૫.૩૪	૨૮.૬૦	૨૯.૧૯	૫૦.૩૭
૨.૧૯	૪૯	૬૩	દ. અનુ૦ ૨	૫.૩૫	૨૮.૬૧	૨૯.૨૦	૫૦.૩૮
૨.૨૦	૫૦	૬૪	દ. સાટ૦ ૩	૫.૪૩	૨૮.૬૨	૨૯.૨૨	૫૦.૪૭
૨.૨૧	૫૧	૬૫	દ. દો૦ ૭	૫.૩૮	૨૮.૬૩	૨૯.૨૩	૫૦.૪૧
૨.૨૨	૫૨	૬૬	દ. દો૦ ૮	—	૨૮.૬૪	૨૯.૨૪	૫૦.૪૨
૨.૨૩	—	—	દ. દો૦ ૯	૫.૪૦	૨૮.૬૬	૨૯.૨૬	૫૦.૪૪
૨.૨૪	૫૩	૬૭	દ. સાટ૦ ૪	૫.૪૧	૨૮.૬૭	૨૯.૨૭	૫૦.૪૫
૨.૨૫	૫૪	૬૮	દ. અનુ૦ ૩	૫.૪૫	૨૮.૬૮	૨૯.૨૮	૫૦.૪૯
૨.૨૬	૫૫	૬૯	દ. દો૦ ૧૩	૫.૪૮	૨૮.૬૯	૨૯.૨૧	૫૦.૫૨
૨.૨૭	૫૬	૭૦	દ. દો૦ ૧૪	૫.૫૨	૨૮.૭૧	૨૯.૩૦	૫૦.૫૬
૨.૨૮	૫૭	૭૧	દ. અહિ૦	૫.૫૫	૨૮.૭૨	૨૯.૩૧	૫૦.૬૬
૩.૧	૫૮	૭૨	૭. દો૦ ૧	૫.૧/૮.૧	૨૦.૪૦/૨૦.૭૨અ	૩૦.૪૦	૫૦.૧/૫૭.૧૨૨, ૫૭.૩
૩.૨	૫૯	૭૪	૭. સાટ૦ ૨	૮.૨આ	૨૯.૩	૩૧.૩	૫૭.૫૮
૩.૩	૬૦	૭૫	૭. દો૦ ૨	૮.૩	૨૯.૧૮	૩૧.૧૬	૫૭.૪૫
૩.૪	૬૨	૭૭	૭. કવિ૦ ૨	૮.૫	૨૯.૨૬	૩૧.૨૪	૫૭.૬૨
૩.૫	૬૪	૭૮	૭. ગાથા ૧	૮.૬	૨૯.૨૯	૩૧.૨૭	૫૭.૭૦
૩.૬	૬૩	૭૯	૭. સાટ૦ ૩	૮.૭	૨૯.૩૦	૩૧.૨૮	૫૭.૭૧
૩.૭	૬૫	૮૦	૭. રાસા ૧	૮.૯	૨૯.૩૩	૩૧.૩૧	૫૭.૭૪
૩.૮	૬૬	૮૧	૭. રાસાર	૮.૧૧	૨૯.૩૩અ	૩૧.૩૩	૫૭.૭૯
૩.૯	૬૭	૮૨	૭. દો૦ ૫	૮.૧૨	૨૯.૩૪	૩૧.૩૪	૫૭.૮૦
૩.૧૦	૬૮	૮૩	૭. દો૦ ૧૧	૮.૧૮	૨૯.૪૦અ	૩૧.૪૧	૫૭.૮૭
૩.૧૧	૭૦	૮૫	૭. કવિ૦ ૩	૮.૨૦	૨૯.૪૨	૩૧.૪૩	૫૭.૯૦
૩.૧૨	૭૧	૮૬	૭. ગાથાર	૮.૨૧	૨૯.૪૩	૩૧.૪૪	૫૭.૯૧
૩.૧૩	૭૨	૮૭	૭. દો૦ ૧૨	૮.૨૩	૨૯.૪૪અ/૧	૩૧.૪૫/૧	૫૭.૧૦૨
૩.૧૪	૭૩	૮૮	૭. દો૦ ૧૩	૮.૨૫	૨૯.૪૪અ/૨	૩૧.૪૫/૨	૫૭.૧૧૪
૩.૧૫	૭૪	૮૯	૭. દો૦ ૧૪	૮.૨૬	૨૯.૪૫	૩૧.૪૭	૫૭.૧૦૧
૩.૧૬	૭૫	૯૦	૭. અહિ૦ ૧	૮.૨૭	૨૯.૪૬	૩૧.૪૮	૫૭.૧૧૮
૩.૧૭	૭૬	૯૧	૭. નારા ૧	૮.૨૮	૨૯.૪૬અ	૩૧.૪૯	૫૭.૧૧૯-૧૩૪
૩.૧૮	૭૭	૯૨	૭. અહિ૦ ૨	૮.૨૯.૧	૨૯.૪૭	૩૧.૫૦	૫૭.૧૩૭
૩.૧૯	૭૮	૯૩	૭. અહિ૦ ૩	૮.૨૯.૨	૨૯.૪૯	૩૧.૫૨	૫૭.૧૫૧
૩.૨૦	૮૩	૯૮	૭. અહિ૦ ૪	૮.૩૦	૨૯.૫૪	૩૧.૫૯	૫૭.૨૧૧
૩.૨૧	૮૪	૯૯	૭. દો૦ ૧૬	૮.૩૪	૨૯.૫૫	૩૧.૫૮	૫૭.૨૨૪
૩.૨૨	૮૫	૧૦૦	૭. દો૦ ૧૭	૮.૩૫	૨૯.૫૬	૩૧.૫૯	૫૭.૨૨૭
૩.૨૩	૮૬	૧૦૧	૭. દો૦ ૧૮	૮.૩૬	૨૯.૫૯	૩૧.૬૦	૫૭.૨૨૮
૩.૨૪	૮૭	૧૦૨	૭. દો૦ ૧૯	૮.૩૭	૨૯.૫૮	૩૧.૬૧	૫૭.૨૩૦
૩.૨૫	૮૮	૧૦૩	૭. દો૦ ૨૦	૮.૩૮	૨૯.૫૯	૩૧.૬૨	૫૭.૨૩૧

୩.୨୬	୮୯	୧୦୪	୭. ଦୌ ୨୧	୮.୩୯	୨୯.୬୦	୩୧.୬୩	୫୭.୨୩୩
୩.୨୭	୯୦	୧୦୫	୭. କବି ୪	୮.୪୧	୨୯.୬୨	୩୧.୬୫	୫୭.୨୩୬
୩.୨୮	୯୧	୧୦୬	୭. ଅଢି ୫	୮.୪୩	୨୯.୬୪	୩୧.୬୭	୫୭.୨୪୦-୨୪୮
୩.୨୯	୯୨	୧୦୭	୭. କବି ୫	୮.୪୪	୨୯.୬୫	୩୧.୬୮	୫୭.୨୪୯
୩.୩୦	୯୩	୧୦୮	୭. ଭୁଜ ୦ []	୮.୪୫	୨୯.୬୭	୩୧.୭୦	୫୭.୨୫୯
୩.୩୧	୯୪	୧୦୯	୭. କବି ୬	୮.୪୭	୨୯.୬୩	୩୧.୭୬	୫୭.୨୬୭
୩.୩୨	୯୫	୧୧୦	୭. କବି ୭	୮.୪୮	୨୯.୭୪	୩୧.୭୭	୫୭.୨୬୯
୩.୩୩	୯୬	୧୧୧	୭. କବି ୮	୮.୪୯	୨୯.୭୫	୩୧.୭୮	୫୭.୨୭୧
୩.୩୪	୯୭	୧୧୨	୭. ଗାଥା ୬	୮.୫୧	୨୯.୭୭	୩୧.୮୦	୫୭.୨୭୩
୩.୩୫	୯୮	୧୧୩	୭. ଦୌ ୨୨	୮.୫୨	୨୯.୭୮	୩୧.୮୧	୫୭.୨୭୪
୩.୩୬	୯୯	୧୧୪	୭. କବି ୯	୮.୫୩	୨୯.୭୯	୩୧.୮୨	୫୭.୨୭୫
୩.୩୭	୧୦୦	୧୧୫	୭. ଦୌ ୨୨	୮.୫୫	୨୯.୮୧	୩୧.୮୪	୫୭.୩୦୮
୩.୩୮	୧୦୧	୧୧୬	୭. ଦୌ ୨୩	୮.୫୬	୨୯.୮୨	୩୧.୮୫	୫୭.୩୦୯
୩.୩୯	୧୦୨	୧୧୮	୭. ଅଢି ୬	୮.୫୭	୨୯.୮୩	୩୧.୮୬	୫୭.୩୧୦
୩.୪୦	୧୦୩	୧୧୫	୭. ଦୌ ୨୪	୮.୫୮	୨୯.୮୦	୩୧.୮୩	୫୭.୩୦୭
୩.୪୧	୧୦୪	୧୧୯	୭. ଅଢି ୭	୮.୫୮	୨୯.୮୪	୩୧.୮୬	୫୭.୩୧୧
୩.୪୨	୧୦୫	୧୨୦	୭. ଦୌ ୨୫	୮.୫୯	୨୯.୮୫	୩୧.୮୭	୫୭.୩୧୨
୩.୪୩	୧୦୬	୧୨୧	୭. ରାମା ୪	୮.୬୦	୨୯.୮୬	୩୧.୮୮	୫୭.୩୧୩
୪.୧	୧୧୫	୧୩୨	୮. କବି ୧	୧୦.୩୪	୩୧.୪୫	୩୩.୫	୬୧.୧୦୫
୪.୨	୧୧୬	୧୩୩	୮. ଦୌ ୧୧	୧୦.୬୧	୩୧.୨୦	୩୩.୧୬	୬୧.୧୮୧
୪.୩	୧୧୭	୧୩୪	୮. ଦୌ ୧୦	୧୦.୬୧	୩୧.୨୧	୩୩.୧୭	୬୧.୧୮୨
୪.୪	୧୧୮	୧୩୫	୮. ଦୌ ୯	୧୦.୬୧	୩୧.୨୨	୩୩.୧୮	୬୧.୧୮୩
୪.୫	୧୧୯	୧୩୬	୮. ଦୌ ୧୨	୧୦.୧୦୫	୩୧.୨୦	୩୩.୨୧	୬୧.୨୭୨
୪.୬	୧୨୦	୧୩୭	—	—	୩୧.୨୧	୩୩.୨୨	୬୧.୨୭୫
୪.୭	୧୨୧	୧୩୮	୮. ପଞ୍ଚ ୨	୧୦.୧୧୯	୩୧.୨୩	୩୩.୨୪	୬୧.୨୯୦-୨୯୮
୪.୮	୧୨୨	୧୩୯	୮. ଦୌ ୧୩	୧୦.୧୨୨	୩୧.୨୫	୩୩.୨୬	୬୧.୩୦୧
୪.୯	୧୨୩	୧୪୦	୮. ଦୌ ୧୪	୧୦.୧୨୩	୩୧.୨୬	୩୩.୨୭	୬୧.୩୦୨
୪.୧୦	୧୨୪	୧୪୧	୮. ଭୁଜ ୦ ୩	୧୦.୧୨୬	୩୧.୨୭	୩୩.୨୮	୬୧.୩୦୫-୩୧୦
୪.୧୧	୧୨୫	୧୪୨	୮. ତ୍ରିମ ୦ ୫	୧୦.୧୨୬	୩୧.୨୮	୩୩.୨୯	୬୧.୩୦୬-୩୧୧
୪.୧୨	୧୨୬	୧୪୩	୮. ସାଟ ୧	୧୦.୧୨୮	୩୧.୨୯	୩୩.୩୦	୬୧.୩୦୭
୪.୧୩	୧୨୭	୧୪୪	୮. ରାମା ୧	୧୦.୧୨୯	୩୧.୩୦	୩୩.୩୧	୬୧.୩୦୮
୪.୧୪	୧୨୮	୧୪୫	୮. ନାରା ୦ []	୧୦.୧୩୧	୩୧.୩୧	୩୩.୩୨	୬୧.୩୦୯-୩୧୪
୪.୧୫	୧୨୯	୧୪୬	୮. ଦୌ ୧୮	୧୦.୧୨୫	୩୧.୩୨	୩୩.୩୩	୬୧.୩୧୦
୪.୧୬	୧୩୦	୧୪୭	୮. ଦୌ ୧୯	୧୦.୧୨୬	୩୧.୩୩	୩୩.୩୪	୬୧.୩୧୧
୪.୧୭	୧୩୧	୧୪୮	୮. ଦୌ ୨୦	୧୦.୧୨୮	୩୧.୩୪	୩୩.୩୫	୬୧.୩୧୨
୪.୧୮	୧୩୨	୧୪୯	୮. ଦୌ ୨୧	୧୦.୧୨୯	୩୧.୩୫	୩୩.୩୬	୬୧.୩୧୩
୪.୧୯	୧୩୩	୧୫୦	୮. ଦୌ ୨୨	୧୦.୧୩୧	୩୧.୩୬	୩୩.୩୭	୬୧.୩୧୪
୪.୨୦	୧୩୪	୧୫୧	୮. ଭୁଜ ୦ ୧୭	୧୦.୧୩୩	୩୧.୩୭	୩୩.୩୮	୬୧.୩୧୫-୩୧୯
୪.୨୧	୧୩୫	୧୫୨	୮. ଦୌ ୨୩	—	୩୧.୩୮	୩୩.୩୯	୬୧.୩୧୬

૪.૨૨	૧૩૮	૧૫૫	૮. મુજ૦૮	૧૦.૧૫૨	૩૧અ.૫૮	૩૩.૫૩	૬૧.૩૮૮-૩૯૪
૪.૨૩	૧૩૯	૧૫૭	૮. મુજ૦૯	૧૦.૧૬૯	૩૧અ.૬૫	૩૩.૬૦	૬૧.૪૨૫-૪૩૦
૪.૨૪	૧૪૧	૧૬૦	૮. દો૦૨૫	૧૦.૧૭૨	૩૧અ.૬૮	૩૩.૬૨	૬૧.૪૩૫
૪.૨૫	૧૪૨	૧૬૧	૮. મોતી૦[]	૧૦.૧૭૩	૩૧અ.૬૯	૩૩.૬૫	૬૧.૪૩૬-૪૪૫
૫.૧	૧૪૬	૧૬૫	૯. મુહિ૦૧	૧૦.૧૯૨	૩૨.૪આ	૩૩.૬૮	૬૧.૪૬૪
૫.૨	૧૪૭	૧૬૮	૯. દો૦૬	૧૦.૨૦૬	૩૨.૬અ	૩૩.૭૩	૬૧.૪૭૮
૫.૩	૧૪૮	૧૬૯	૯. રહુા ૧	૧૦.૨૦૯	૩૨.૯-૧૦	૩૩.૭૪	૬૧.૪૮૧
૫.૪	૧૪૯	૧૭૨	૯. મુહિ૦૨	૧૦.૨૧૮	૩૨.૧૩	૩૩.૭૭	૬૧.૪૯૦
૫.૫	૧૫૨	૧૭૩	૯. અહિ૦૧	૧૦.૨૨૧	૩૨.૧૫	૩૩.૭૯/૧	૬૧.૪૯૭
૫.૬	૧૫૩	૧૭૪	૯. મુહિ૦[૫]/૧	૧૦.૨૨૨	૩૨.૧૬	૩૩.૭૯/૨	૬૧.૪૯૮
૫.૭	૧૫૧	૧૭૫	૯. સાટ૦૧	૧૦.૨૨૮	૩૨.૨૨	૩૩.૮૦	૬૧.૫૦૪
૫.૮	૧૫૪	૧૭૬	૯. મુહિ૦[૫]/૨	૧૦.૨૨૯	૩૨.૨૪	૩૩.૮૧	૬૧.૫૦૫
૫.૯	૧૫૫	૧૭૮	૯. મુહિ૦૪	૧૦.૨૩૪/	૩૨.૨૫	૩૬.૮૨,૮૫	૬૧.૫૧૦,
				૧૦.૨૩૭			૬૧.૫૧૩
૫.૧૦	૧૫૮	૧૮૦	૯. સાટ૦૨	૧૦.૨૪૧	૩૨.૩૦	૩૩.૮૮	૬૧.૫૨૪
૫.૧૧	૧૫૯	૧૮૧	૯. દો૦૨૮	૧૦.૨૪૪	૩૨.૩૧	૩૨.૮૯	૬૧.૫૨૭
૫.૧૨	૧૬૦	૧૮૨	૯. દો૦૧૧	૧૦.૨૪૫	૩૨.૩૨	૩૩.૯૦	૬૧.૫૪૯
૫.૧૩	૧૬૧	૧૮૩	૯. મુજ૦૩	૧૦.૨૬૭	૩૨.૩૩	૩૩.૯૪	૬૧.૫૭૧-૭૭
૫.૧૪	૧૬૨	૧૮૪	૧. દો૦૧૨	૧૦.૨૬૮	૩૨.૪૨	૩૩.૯૫	૬૧.૫૭૮
૫.૧૫	૧૬૩	૧૮૫	૯. દો૦૧૩	૧૦.૨૭૭	૩૨.૪૪	૩૩.૧૦૦	૬૧.૫૮૮
૫.૧૬	૧૬૪	૧૮૬	૯. દો૦૧૪	૧૦.૩૧૨	૩૨.૭૬	૩૩.૧૩૨	૬૧.૬૪૮
૫.૧૭	૧૬૫	૧૮૭	૯. દો૦૧૫	૧૦.૩૧૪	૩૨.૭૭	૩૩.૧૩૩	૬૧.૬૫૦
૫.૧૮	૧૬૬	૧૮૮	૯. દો૦૧૬	૧૦.૩૧૭	૩૨.૭૯	૩૩.૧૩૫	૬૧.૬૫૩
૫.૧૯	૧૬૭	૧૮૯	૯. કવિ૦૨	૧૦.૩૧૮	૩૨.૮૦	૩૩.૧૩૬	૬૧.૬૫૪
૫.૨૦	૧૬૮	૧૯૦	૯. દો૦૧૭	૧૦.૩૨૧	૩૨.૮૨	૩૩.૧૩૮	૬૧.૬૫૭
૫.૨૧	૧૬૯	૧૯૨	૯. દો૦૨૩	૧૦.૩૩૧	૩૨.૮૩	૩૩.૧૩૯	૬૧.૬૮૭
૫.૨૨	૧૭૦	૧૯૩	—	૧૦.૩૩૪	૩૨.૮૫	૩૩.૧૪૧	૬૧.૬૯૦
૫.૨૩	૧૭૧	૧૯૪	૯. દો૦૨૪	૧૦.૩૩૫	૩૨.૮૬	૩૩.૧૪૨	૬૧.૬૯૧
૫.૨૪	૧૭૨	૧૯૫	૯. પ્રવા૦[]	૧૦.૩૩૬	૩૨.૮૭	૩૩.૧૪૩	૬૧.૬૯૨-૭૧૨
૫.૨૫	૧૭૩	૧૯૬	૯. અહિ૦ ૩	૧૦.૩૩૮	૩૨.૮૮	૩૩.૧૪૪	૬૧.૭૧૪
૫.૨૬	૧૭૪	૧૯૭	૯. દો૦ ૨૫	૧૦.૩૪૧	૩૨.૯૧	૩૩.૧૪૬	૬૧.૭૧૭
૫.૨૭	૧૭૫	૧૯૮	૯. દો૦ ૨૬	૧૦.૩૪૬	૩૨.૯૦	—	૬૧.૭૨૨
૫.૨૮	૧૭૬	૧૯૯	૯. દો૦ ૨૭	૧૦.૩૪૭	૩૨.૯૨	૩૩.૧૪૭	૬૧.૭૨૩
૫.૨૯	૧૭૭	૨૦૦	૯. દો૦ ૨૯	૧૦.૩૪૮	૩૨.૯૩	૩૩.૧૪૮	૬૧.૭૨૪
૫.૩૦	૧૭૮	૨૦૧	૯. દો૦ ૩૦	૧૦.૩૪૯	૩૨.૯૪	૩૩.૧૪૯	૬૧.૭૨૫
૫.૩૧	૧૭૯	૨૦૨	૯. દો૦ ૩૧	૧૦.૩૮૨	૩૨.૧૧૭	૩૩.૧૬૯	૬૧.૭૯૦
૫.૩૨	૧૮૦	૨૦૪	૯. દો૦ ૩૨	૧૦.૩૯૭	૩૨.૧૨૭	૩૩.૧૭૭	૬૧.૮૨૪
૫.૩૩	૧૮૧	૨૦૬	૯. દો૦ ૩૬	૧૦.૪૦૪	૩૨.૧૩૦	૩૩.૧૮૦	૬૧.૮૩૨

५.३४	१८२	२०७	[९. दो० ३७]*	१०.४०६	३२.१३१	३३.१८१	६१.८३४
५.३५	१८३	२०८	[९. दो० ३८]*	१०.४०७	३२.१३२	३३.१८२	६१.८३५
५.३६	१८३ अ	२०९	९. [साट० ३]	१०.४०८	३२.१३३	३३.१८३	६१.८४४
५.३७	१८४	२१०	९. दो० ३९	१०.४०९	३२.१३४	३३.१८४	६१.८४५
५.३८	१८५	२११	९. नारा० ६	१०.४१२	३२.१३५	३३.१८५	६१.८४८-८५८
५.३९	१८६	२१२	९. दो० ४०	१०.४१३	३२.१३६	३३.१८६	६१.८५९
५.४०	१८७	२०५	९. साट० [४]	१०.४१५	३२.१३७	३३.१८७	६१.८६१
५.४१	१८८	२१३	९. साट० [५]	१०.४१६	३२.१३८	३३.१८८	६१.८६२
५.४२	१८९	२१४	९. दो० ४१	१०.५१९	३२.१३९	३३.१८९	६१.८६५
५.४३	१९०	२१५	९. दो० ४२	१०.४३०	३२.१४०	३३.१९०	६१.८८७
५.४४	१९१	२१६	९. दो० ४३	१०.४३४	३२.१४१	३३.१९१	६१.९००
५.४५	१९२	२१७	९. कवि० ४	१०.४५२	३२.१४२	३३.१९२	६१.९१३
५.४६	१९३	२१८	९. दो० []	१०.४४८ १	३२.१४८	३३.१९३	६१.९१९/१,
				१०.४४५/२			६१.९१६/२
५.४७	१९५	२२२	९. दो० ४५	१०.४५६	३२.१५३	३३.१९९	६१.९२७
५.४८	१९६	२२३	९. कवि० ५	१०.४६४ अ	३२.१५९	३३.२००	६१.९७५
६.१	१९७	२२६	९. दो० ४६	११.३३	३३.१०	३३.२०७	६१.१०४७
६.२	१९८	२२७	९. दो० ४७	११.३५	३३.११	३३.२०८	६१.१०५०
६.३	१९९	२२८	९. दो० ४८	११.३६	३३.१२	३३.२०९	६१.१०५१
६.४	२००	२३१	९. दो० ५०	११.५६	३३.२५	३३.२२२	६१.१०७८
६.५	२०१	२३५	९. मुज० []	११.५७	३३.२६	३३.२२३	६१.१०७९-१०८०
६.६	२०२	२३७	९. दो० ५३	११.८६	३३.२८	३३.२५	६१.११३६
६.७	२०३	२३८	९. रासा []X	११.९०	३३.२९	३३.२६	६१.११४४
६.८	२०४	२३९	९. दो० ५४	११.९३	३३.३१	३३.२७	६१.११४७
६.९	२०५	२४०	९. दो० ५५	११.९४	३३.३२	३३.२९	६१.११४८
६.१०	२०६	२४१	९. दो० ५६	११.९०क	३३.३३	३३.२३०	६१.११५८
६.११	२०७	२४२	९. दो० ५७	११.९१क/१	३३.३९अ	३३.२३७	६१.११५९/१
६.१२	२०९	२४३	९. मुडि० १२	११.९६क	३३.४३	३३.२४१	६१.११६८
६.१३	२१०	२४४	९. रासा० २	११.९८क	३३.४५	३३.२४३	६१.११७१
६.१४	२११	२४५	९. रासा० ३	११.९४ख	३३.४७	३३.२४५	६१.११७४
६.१५	२१२	२४६	९. नारा० ८	११.९७ख	३३.५०	३३.२४८	६१.११७७-११८५
६.१६	२१३	२४७	९. दो० ५९	११.११३	३३.५६	३३.२५०	६१.१२०६
६.१७	२१४	२४८	९. गाथा १	११.११५	३३.५८	३३.२५१	६१.१२०८
६.१८	२१५	२४९	९. दो० ६०	११.१४४	३३.६१	३३.२५४	६१.१२४३
६.१९	२१६	२५०	९. दो० ६१	११.१४५	३३.६२	३३.२५५	६१.१२४४
६.२०	२१७	२५३	९. दो० ६३	११.१४७	३३.६४	३३.२५७	६१.१२४६
६.२१	२१८	२५४	९. दो० ६४	११.१४९	३३.६५	३३.२५८	६१.१२४८

* ये छन्द अ० फ० में नहीं हैं किन्तु उमी कुल की उस प्रति में हैं जो भागचन्द के लिए लिखी गई थी ।

X यह छन्द अ० में नहीं है, किन्तु अ० में बाद वाले दोहे के पूर्व 'रासा' शब्द है; फ० में यह छन्द है ।

૬.૨૨	૨૧૯	૨૫૫	૯. દોં ૬૫	૧૧.૧૫૦	૩૩.૬૬	૩૩.૨૫૯	૬૧ ૧૨૪૯
૬.૨૩	૨૨૦-૨૨૩	૨૫૬-૨૫૯	૯. ચૌં ૧-૩	૧૧.૧૫૩, ૧૫૪, ૧૫૬	૩૩.૭૧ ૭૪-	૩૩.૨૬૧ ૨૬૨, ૨૬૪	૬૧.૧૨૫૩, ૧૨૫૪, ૧૨૫૬
૬.૨૪	૨૨૫	૨૬૦	૯. દોં ૬૬	૧૧.૧૬૦	૩૩.૭૬	૩૩.૨૬૫	૬૧.૧૨૬૦
૬.૨૫	૨૨૬	૨. ૧	૯. મુઢિં ૧૩	૧૧ ૧૬૨	૩૩.૭૮	૩૩.૨૬૭	૬૧.૧૨૬૨
૬.૨૬	૨૨૭	૨૬૨	૯. અઢિં ૧૪	૧૧.૧૬૪	૩૩.૮૦	૩૩.૨૬૯	૬૧.૧૨૬૪
૬.૨૭	૨૨૮	૨૬૩	૯. મુઢિં ૪	૧૧.૧૬૩	૩૩.૭૯	૩૩.૨૬૮	૬૧.૧૨૬૩
૬.૨૮	૨૨૯	૨૬૪	૯. મુઢિં ૧૫	૧૧ ૧૬૭	૩૩.૮૧	૩૩.૨૭૦	૬૧.૧૨૬૭
૬.૨૯	૨૩૦	૨૬૫	૯. અનું ૪	૧૧.૧૭૨	૩૩.૮૭	૩૩.૨૭૫	૬૧ ૧૨૭૨
૬.૩૦	૨૩૧	૨૬૬	૯. દોં ૭૦	૧૧.૧૭૩	૩૩.૮૮	૩૩.૨૭૬	૬૧.૧૨૭૩
૬.૩૧	૨૩૨	૨૬૮	—	૧૧ ૧૭૮	૩૩ ૯૧	૩૩.૨૭૮	૬૧.૧૨૭૮
૬.૩૨	૨૩૩	૨૬૯	૯. ગાથા ૫	૧૧.૧૭૯	૩૩.૯૨	૩૩.૨૭૯	૬૧.૧૨૭૯
૬.૩૩	૨૩૪	૨૭૩	૯. કવિં ૧૭	૧૧.૧૯૫	૩૩ ૧૦૨	૩૩.૨૮૪	૬૧ ૧૨૯૫
૬.૩૪	૨૩૫	૨૭૪	૯. રાસા ૪	૧૧ ૨૨૦	૩૩.૧૦૪	૩૩.૨૮૬	૬૧.૧૩૨૨
૭.૧	૨૩૬	૨૭૫	૯. દોં ૮૧	૧૨.૧૩	૩૩.૧૦૬	૩૩ ૨૯૫	૬૧.૧૩૪૦
૭.૨	૨૩૭	૨૮૧	૯. ગાથા ૭	૧૨.૧૮	૩૪.૯	૩૩.૨૯૯	૬૧.૧૩૪૫
૭.૩	૨૩૮	૨૮૨	૯. દોં ૭૮	૧૨.૧૯	૩૪.૧૦	૩૩.૩૦૦	૬૧.૧૩૪૬
૭.૪	૨૩૯	૩૧૪/૪૫૨	૧૫ મમં []	—	૪૩.૯૫	—	૬૬.૮૭૬-૮૮૫
૭.૫	૨૪૦	૨૮૩	૧૨ કવિં ૧૯	૧૨.૨૧૮	૩૩.૧૦૭/	૩૩.૩૮૮	૬૧.૧૭૦૬
				—	૩૫.૩		
૭.૬	૨૪૧	૨૮૪	૧૦. મુજં ૧	૧૨.૨૦, ૨૬	૩૪.૧૧, ૧૩	૩૩.૩૦૧, ૩૩ ૩૦૩	૬૧.૧૩૪૭ ૧૩૫૬, ૬૧.૧૩૬૨-૧૩૬૬
૭.૭	૨૪૨	૨૮૫	૯. દોં ૭૯	૧૨.૨૭	૩૪ ૧૫	૩૩.૩૦૪	૬૧.૧૩૬૭
૭.૮	૨૪૪	૨૮૬	૯. દોં ૮૦	૧૨.૨૮	૩૪.૧૬	૩૩.૩૦૫	૬૧.૧૩૬૮
૭.૯	૨૪૫	૨૮૭	૧૦ દોં ૨	૧૨.૨૮અ	૩૪.૧૭	૩૩.૩૦૬	૬૧.૧૩૬૯
૭.૧૦	૨૪૬	૨૮૮	૧૦. મુજં ૨	૧૨.૩૦	૩૪.૧૯	૩૩.૩૦૮	૬૧.૧૩૭૧-૭૭
૭.૧૧	૨૪૭	૨૮૯	૧૦ દોં ૩	૧૨.૩૧	૩૪.૨૦	૩૩.૩૦૯	૬૧.૧૩૭૮
૭.૧૨	૨૪૮	૨૯૦	૧૦. પ્રવાં []	૧૨.૩૨	૩૪.૨૧	૩૩.૩૧૦	૬૧.૧૩૭૯-૧૩૮૫
૭.૧૩	૨૪૯	૨૯૧	૧૦. દોં ૪	૧૨.૪૧	૩૪.૨૩	૩૩.૩૧૨	૬૧.૧૪૦૧
૭.૧૪	૨૫૦	૨૯૨	૧૦. [મુજં]	૧૨.૫૩	૩૪.૩૨	૩૩.૩૨૧	૬૧.૧૪૧૩
૭.૧૫	૨૫૧	૨૯૩	૧૦. રસાં ૪	૧૨.૫૪	૩૪.૩૩	૩૩.૩૨૨	૬૧.૧૪૧૪-૧૪૧૯
૭.૧૬	૨૫૨	૨૯૪	૧૦ અઢિં ૧	૧૨.૫૫/૧	૩૪.૩૪/૧	૩૩.૩૨૩/૧	૬૧.૧૪૨૦
૭.૧૭	૨૫૩	૨૯૫	૧૦. મુજં ૫	૧૨.૫૫/૨, ૧૨.૧૦૬	૩૪.૩૪/૨, ૩૪.૩૬	૩૩.૩૨૩/૨	૬૧.૧૪૨૧ ૧૪૨૨, ૬૧.૧૫૧૧-૧૫૨૧
૭.૧૮	૨૫૪	૨૯૬	૧૦ ગાથા ૧	૧૨.૧૧૨	૩૪.૫૦	૩૩.૩૩૧	૬૧.૧૫૩૧
૭.૧૯	૨૫૫	૨૯૭	૧૦. દોં ૧૦	૧૨.૧૧૫	૩૪.૫૧	૩૩.૩૪૦	૬૧ ૧૫૩૪
૭.૨૦	૨૫૬	૨૯૮	૧૦. કવિં ૫	૧૨.૧૧૪	૩૪.૫૩	૩૩.૩૪૨	૬૧.૧૫૩૩
૭.૨૧	૨૫૭	૨૯૯	૧૦. કવિં ૭	૧૨.૧૨૦	૩૪.૫૫	૩૩.૩૪૪	૬૧.૧૫૪૩
૭.૨૨	૨૫૮	૩૦૦	૧૦. રાસા ૧	૧૨.૧૨૫	૩૪.૫૯	૩૩.૩૪૮	૬૧.૧૫૪૮

७.२३	२५९	३०१	१०. राधा १ १२.१२६	३४.६०	३३.३४९	६१.१५४९
७.२४	२६०	३०२	१०. अनु० १ १२.१२७	३४.६२	३३.३५०	६१.१५५०
७.२५	२८७	३१७	१०. कवि० १ १२.२३०	३५.६	३३.३८९	६१.१७३३
७.२६	२८८	३१८	१०. गाथा १ १२.२२०	३५.७	३३.३९०	६१.१७०८
७.२७	२८९	३१९	११. कवि० २ १२.२२४	३५.८	३३.३९१	६१.१७१८
७.२८	२९०	३२०	११. कवि० ३ १२.२२५	३५.९	३३.३९२	६१.१७१९
७.२९	२९३	३२३	११. दो० ३ १२.२४१	३५.१४	३३.३९७	६१.१७७०
७.३०	२९४	३२६	११. कवि० १२ १२.३१९	३५.२८	३३.४०९	६१.१९२६
७.३१	२९५	३२७	११. भुज० ६ १२.३२०	३५.२४	३३.४१४अ	६१.१९२७ १९३२
८.१	२६१	३०५	११ कवि० २२ १२.१३७	३४.६६	३३.३५४	६१.१५६१
८.२	२६२	३०६	११. कवि० २३ १२.१४०	३४.६७	३३.३५५	६१.१५६४
८.३	२६३	३०७	११. कवि० २४ १२.१४३	३४.७०	३३.३५५अ	६१.१५६७
८.४	२६४	३०८	११. कवि० २५ १२.१४८	३४.७४	३३.३५९	६१.१५७२
८.५	२६५	३०९	११. कवि० २६ १२.१५०	३४.७५	३३.३६०	६१.१५७४
८.६	२६६	३१०	११. कवि० २७ १२.१५१	३४.७६	३३.३६१	६१.१५७५
८.७	२६७	३११	११. गाथा २ १२.१६४	३४.७७	३३.३६२	६१.१५८८
८.८	२६८	३१२	११. गाथा ३ १२.१८७	३४.९०	३३.३७१	६१.१६२८
८.९	२६९	३१३, ३१५	११. चोट० ९ १२.१९५	३४.९७	३३.३७८	६१.१६४० —१६४९
८.१०	२७०	३१६, ३३१	१२. छंद १ १२.२१६, १२.४५३/१	३५.४, ३६.१२/१	३३.३८७, ३३.४६४	६१.१६९५-१७४२, ६१.२१४६
८.११	२७१	३३२	१२. कवि० १ १२.४५८	३६.१३	३३.४६५	६१.२१६१
८.१२	२७२	३३३	१२. दो० ६ १२.४५९	३६.१५	३३.४६७	६१.२१६२
८.१३	२७३	३३४	१२. दो० ७ १२.४६०	३६.१६	३३.४६८	६१.२१६३
८.१४	२७४	३३५	१२. कवि० ३ १२.४६० अ	३६.१७	३३.४६९	६१.२१६४
८.१५	२७५	३३६	१२. दो० ८ १२.४६५	३६.१८	३३.४७०	६१.२१७८
८.१६	२७६	३३७	१२. कवि० ४ १२.४७४	३६.१९	३३.४७१	६१.२२०८
८.१७	२७७	३३९	१२. दो० १० १२.४७३	३६.२२	३३.४७४	६१.२२०७
८.१८	२७८	३४०	१२. दो० ११ १२.४७८	३६.२३	३३.४७५	६१.२२१२
८.१९	२७९	३४१	१२. कवि० ५ १२.४७९	३६.२४	३३.४७६	६१.२२१३
८.२०	२८०	३४२	१२. दो० १२ —	३६.२७	३३.४७७	६१.२२१७
८.२१	२८१	३४३	१२. कवि० ६ १२.४९८	३६.२८ अ	३३.४७९	६१.२२४७
८.२२	२८२	३४४	१२. दा० [१३] १२.५१३	३६.२९	३३.४८०	६१.२२८३
८.२३	—	३४५	१२. दो० १४ १२.५१४	३६.३०	३३.४८१	६१.२२८४
८.२४	२८३	३४६	१२. कवि० ७ १२.५१७	३६.३२	३३.४८२	६१.२२९७
८.२५	२८४	३४७	१२. दो० १५ १२.५१९	३६.३३	३३.४८३	६१.२२९९
८.२६	२८५	३४८	१२. कवि० ८ १२.५२५	३६.३४	३३.४८४	६१.२३१२
८.२७	२८६	३४९	१२. दो० १६ १२.५२७	३६.३५	३३.४८५	६१.२३१४
८.२८	२९७	३५०	१२. कवि० ९ १२.५३३ अ	३६.३६	३३.४८६	६१.२३४५

८.२९	२९८	३५१	१२. दो० १७	१२.५३४	३६.३७	३३.४८७०	६१.२३४६
८.३०	२९९	३५२	१२. कवि० १०	१२.५४२	३६.३९	३३.४८९	६१.२३५६२
८.३१	३०१	३५३	१२. दा० १९	१२.५४३	३६.४०	३३.४९०	६१.२३६३
८.३२	३००	३५४	१२. कवि० ११	१२.५४६	३६.४१	३३.४९१	६१.२३७२
८.३३	३०२	३५५	१२. दो० २०	१५.५५०	३६.४२	३३.४९२	६१.२३७६
८.३४	३०३	३५६	१२. कवि० १२	१२.५५७	३६.४३	३३.४९३	६१.२३८३
८.३५	३०४	३५७	१२. कवि० २३	१२.५६५	३६.४५	३३.४९५	६१.२४०३
८.३६	२९६	३५७	१२. दो० २८	१२.४१६	३७.२०	३३.४५५	६१.२०९२
९.१	३०५	३६५	१३. अडि० १	१२.६०५/२	३८.७	३३.५२५	६१.२४८७
९.२	३०६	३६६	१३. दो० ५	१२.६१८	३८.१०	३३.५२७	६१.२४९२
९.३	३०७	३६९	१३. दो० ६	१२.६११	३८.११	३३.५२८	६१.२४९३
९.४	३०९	३७१	१३. दो० ७	१२.६२५	३८.१३	३३.५३०	६१.२५४०
९.५	३१०	३७२	१३. [रासा १]	१२.६२७	३८.१४/१	३३.५३१ १	६१.२५४२
९.६	३११	३७३	१३. [रासा २]	१२.६२८	३८.१४/२	३३.५३१, २	६१.२५४३
९.७	३१२	३७४	१३. [रासा ३]	१२.६२९	३८.१४/३	३३.५३१/३	६१.२५४४
९.८	३१३	३७५	१३. [रासा ४]	९.२४,	३८.१४/४	३३.५३१/४	६१.२५४५
				१२.६३०			
९.९	१०७	१२३	१३. साट० २	९.२०	२९.८६ आ/	३४.१७८	६१.९
					४१.१०		
९.१०	१०८	१२४	१३. साट० ३	९.१	३९.२	३४.१	६१.१८
९.११	१०९	१२५	१३. साट० ४	९.५	३९.६	३४.५ अ	६१.२७
९.१२	११०	१२६	१३. साट० ५	९.१०	३९.१३	३४.१६८	६१.३९
९.१३	१११	१२७	१३. साट० ६	९.१३	४१.३	३४.१७१	६१.४९
९.१४	११२	१२८	१३. साट० ७	९.१६*	४१.६	३४.१७४	६१.६२
१०.१	३१४	३८६	१४. मुडि० १		४२.४१	३६.३५	६६.१९२
१०.२	३१५	३८७	१४. दो० २		४२.४२	३६.३६	६६.१९३
१०.३	३१६	३८८	१४. मुडि० २		४२.४३	३६.३७	६६.१९४
१०.४	३१७	३८९	१४. दो० ३		४२.४४	३६.३८	६६.१९५
१०.५	३१८	३९०	१४. अडि० १		४२.४५	३६.३९	६६.१९६
१०.६	३१९	३९१	१४. मुडि० ३		४२.४६	३६.४०	६६.१९७
१०.७	३२०	३९२	१४ अडि० २		४२.४७	३६.४३	६६.१९८
१०.८	३२१	३९३	१४. दो० ४		४२.४८	३६.४४	६६.१९९
१०.९	३२२	३९४	१४. दो० ५		४२.४९	३६.४५	६६.२००
१०.१०	३२३	३९५	१४. गाथा ३		४२.५०	३६.४६	६६.२०१
१०.११	३२४	३९६	१४. गीता० १		४२.५१	—	६६.२०३-२५
१०.१२	३२५	३९७	१४. दो० ६		४२.५२	३६.४७	६६.२१७
१०.१३	३२६	३९८	१४. दो० ७		४२.५३	३६.४८	६६.२१८

* म० प्रति यहीं पर समाप्त हो जाती है ।

१०.१४	३२७	३९९	१४.दो०८	४२.५४	३६.४३	६६.२१९
१०.१५	३२८	४००	१४.रासा१	४२.५९	३६.५५	६६.२२७
१०.१६	३२९	४०१	१४.दो०९	४२.६०	३६.५६	६६.२२८
१०.१७	३३०	४०२	१४.रासा२	४२.६१	३६.५७	६६.२३२
१०.१८	३३१	४०३	१४.दो०१०	४२.६२	३६.५८	६६.२३३
१०.१९	३३२	४०५	१४.दो०११	४२.६४	३६.५९	६६.२३६
१०.२०	३३३	४०६	१४.दो०१२	४२.६५	३६.६०	६६.२३७
१०.२१	३३४	४०७	१४.दो०१४	४२.६९	३६.६४	६६.२४१
१०.२२	३३५	४०८	१४.दो०१५	४२.७०	३६.६५	६६.२४२
१०.२३	३३६	४०९	१४.कवि०२	४२.७१	३६.६६	६६.२४४
१०.२४	३३७	४१०	१४.दो०१६	४२.७२	३६.६७	६६.२४५
१०.२५	३३८	४११	१४.कवि०३	४२.७६	३६.७०	६६.२४९
१०.२६	३३९	४१२	१४.दो०१७	४२.७३	३६.६८	६६.२४७
१०.२७	३४०	४१४	१४.दो०१९	४२.७८	३६.७२	६६.२५१
१०.२८	३४१	४१६	१४.कवि०४	४२.७९	३६.७३	६६.२५२
१०.२९	३४२	४१७	१४.कवि०५	४२.८०	३६.७५	६६.२५४
११.१	३४६	४३५	१५.दो०१७	४३.४७	३६.२३८	६६.७६८
११.२	३४७	४३६	१५.दो०१८	४३.४८	३६.२३९	६६.७६९
११.३	३४८	४३७	१५.दो०१९	४३.४९	३६.२४०	६६.७७०
११.४	३४९	४३८	१५.दो०२०	४३.५०	३६.२४१	*
११.५	३५०	४३९	१५.दो०२१	४३.५१	३६.२४२	६६.७७१
११.६	३५१	४४१	१५.दो०२२	४३.५२	३६.२४३	६६.७७४
११.७	३५२	४४२	१५.कवि०१५	४३.५४	३६.२४४	६६.७७५
११.८	३५३	४४३	१५.कवि०१६	४३.५५अ	३६.२४५	६६.२४८
११.९	३५४	४४५	१०.दो०१५	४३.७७	—	६६.८२८
११.१०	३५५	४४६, ४५०	१५.छंद०[]	४३.७९	—	६६.८३५
११.११	३५८	४५२	१५.दो०२५	४३.१०४	३६.२९०	६६.९३०
११.१२	३६२	४५४	१६.मुज०१	४३.१०६, ४३.१११	३६.२९४	६६.९३२-९३४, ६६.९३८-९४५
११.१३	३६३	४५५	१८.दो०६	४५.७	३६.४१०	६६.१५२४
११.१४	३६४	४६५	१८.दो०७	४५.९	३६.४१३	६६.१५२७
११.१५	३६५	४६६	१८.दो०८	४५.१०	३६.४१४	६६.१५२८
११.१६	३६६	४६७	१८.दो०९	४५.११	३६.४१५	६६.१५२९
११.१७	३६७	४६८	१८.अनु०१	४५.१२	३६.४१६	६६.१५३०
११.१८	३६८	४६९	१८.कवि०२४	४५.४७	३६.४५१	६६.१६१०
१२.१	३६९	४७०	१८.कवि०२७	४५.५१	३६.४५५X	६६.१६२६

* यह छन्द स में नहीं है किन्तु शा० में ६३.४३० है।

X द० प्रति खड ३६ पर समाप्त हो जाती है। खड ३७ के स्थल-निर्देश टॉड द० के अनुसार हैं।

		୪୭୩	୧୮. ଦୋ ୧୪	୪୬.୯	୩୭.୧୫	୬୭.୧୯
୧୨.୨	୩୭୦	୪୭୪	୧୯. ଦୋ ୨	୪୬.୧୭	୩୭.୨୨	୬୭.୨୩
୧୨.୩	୩୭୧	୪୭୫	୧୯. ଦୋ ୩	୪୬.୧୬	୩୭.୨୩	୬୭.୨୬
୧୨.୪	୩୭୨	୪୭୬	୧୯. ଦୋ ୪	୪୬.୨୧	୩୭.୩୪	୬୭.୮୯/୯୫
୧୨.୫	୩୭୩	୪୮୪	୧୯. ଦୋ ୧୨	୪୬.୩୮	୩୭.୫୮	୬୭.୧୪୧
୧୨.୬	୩୭୪	୪୮୫	୧୯. ଦୋ ୧୩	୪୬.୩୯	୩୭.୫୯	୬୭.୧୪୩
୧୨.୭	୩୭୫	୪୮୬	୧୯. ବୟୁ ୧	୪୬.୪୧	୩୭.୬୬	୬୭.୧୬୩
୧୦.୮	୩୭୬	୪୮୭	୧୯. ବୟୁ ୨	୪୬.୪୨	୩୭.୬୭	୬୭.୧୬୪
୧୨.୯	୩୭୭	୪୮୮	୧୯. ଦୋ ୧୪	୪୬.୪୪	୩୭.୭୪	୬୭.୧୮୨
୧୨.୧୦	୩୭୮	୪୮୯	୧୯. ଦୋ ୧୫	୪୬.୪୫	୩୭.୭୫	୬୭.୧୮୭
୧୨.୧୧	୩୭୯	୪୯୦	୧୯. ମୁଜ ୪	୪୬.୪୭	୩୭.୭୬-୭୯	୬୭.୧୮୯-୧୯୬
୧୨.୧୨	୩୮୦	୪୯୧	୧୯. ଦୋ ୧୬	୪୬.୪୮	୩୭.୮୦	୬୭.୧୯୮
୧୨.୧୩	୩୮୧	୪୯୨	୧୯. ପଢ଼ ୫	୪୬.୪୯	୩୭.୮୧ ୮୮	୬୭.୨୦୨-୨୧୯
୧୨.୧୪	୩୮୨	୪୯୩	୧୯. ଦୋ ୧୭	୪୬.୫୧	୩୭.୯୦	୬୭.୨୨୧
୧୨.୧୫	୩୮୩	୪୯୪	୧୯. ପଢ଼ []	୪୬.୫୩	୩୭.୯୧	୬୭.୨୨୪-୩୬
୧୨.୧୬	୩୮୪	୪୯୬	୧୯. ଦୋ [୧୮]	୪୬.୭୨	୩୭.୧୧୪	୬୭.୨୩୯
୧୨.୧୭	୩୮୫	୫୦୦	୧୯. ଦୋ ୧୯	୪୬.୭୭	୩୭.୧୨୭	୬୭.୨୪୧
୧୨.୧୮	୩୮୬	୫୦୧	୧୯. ଦୋ []	୪୬.୭୮	୩୭.୧୨୮	୬୭.୨୯୫
୧୨.୧୯	୩୮୭	୫୦୨	୧୯. ପଢ଼ ୯	୪୬.୮୦	୩୭.୧୨୭	୬୭.୨୯୯
୧୨.୨୦	୩୮୮	୫୦୩	୧୯. ଦୋ ୨୨	୪୬.୮୩	୩୭.୧୩୯	୬୭.୩୦୭
୧୨.୨୧	୩୮୯	୫୦୪	୧୯. ଦୋ ୨୩	୪୬.୮୧	୩୭.୧୪୦	୬୭.୩୦୮
୧୨.୨୨	୩୯୧	୫୦୭	୧୯. ଦୋ ୨୪	୪୬.୯୧	୩୭.୧୪୨	୬୭.୩୧୯
୧୨.୨୩	୩୯୨	୫୧୦	୧୯. ପଢ଼ ୧୦	୫୬.୯୭	୩୭.୧୫୭-୧୬୬	୬୭.୩୩୨-୩୪୧
୧୨.୨୪	୩୯୩	୫୧୧	୧୯. ଦୋ ୨୫	୪୬.୧୦୫	୩୭.୧୬୭	୬୭.୩୫୭
୧୨.୨୫	୩୯୪	୫୧୨	୧୯. ଦୋ ୨୬	୪୬.୧୦୬	୩୭.୧୬୮	୬୭.୩୬୪
୧୨.୨୬	୩୯୫	୫୧୩	୧୯. ଦୋ ୨୭	୪୬.୧୦୭	୩୭.୧୮୨	୬୭.୩୬୫
୧୨.୨୭	୩୯୮	୫୧୪	୧୯. ଦୋ ୨୯	୪୬.୧୦୯		୬୭.୩୬୬
୧୨.୨୮	୩୯୮	୫୧୫	୧୯. ଦୋ ୩୦	୪୬.୧୧୦/	୩୭.୧୮୪	୬୭.୩୬୭/
				୪୬.୧୧୧		୬୭.୩୬୮
୧୨.୨୯	୩୯୯	୫୧୬	୧୯. ଗ୍ରୋଟ ୧୧	୪୬.୧୧୨	୩୭.୧୮୫	୬୭.୩୭୦
୧୨.୩୦	୪୦୦	୫୧୭	୧୯. ଦୋ ୩୧	୪୬.୧୧୪	୩୭.୧୮୬	୬୭.୩୭୧
୧୨.୩୧	୪୦୧	୫୧୮	୧୯. ଦୋ ୩୨	୪୬.୧୧୫	୩୭.୧୮୭	୬୭.୩୭୨
୧୨.୩୨	୪୦୨	୫୨୯	୧୯. ପଢ଼ ୧୨	୪୬.୧୧୬		୬୭.୩୭୭
୧୨.୩୩	୪୦୩, ୫୨୧, ୫୨୩	୫୨୧, ୫୨୩	୧୯. ପଢ଼ ୧୪/୪	୪୬.୧୧୭,	୩୭.୧୯୨-୧୯୪	୬୭.୩୯୧ ୩୯୫,
	୪୦୫	୫୨୬, ୫୨୯		୪୬.୧୧୮	୩୭.୨୦୩	୬୭.୪୦୨
୧୨.୩୪	୪୦୭	୫୩୨	୧୯. ଦୋ ୩୪	୪୬.୧୧୫	୩୭.୨୧୦	୬୭.୪୦୮
୧୨.୩୫	୪୦୬	୫୩୩	୧୯. କବି ୧	୪୬.୧୧୭	୩୭.୨୧୨	୬୭.୪୦୩
୧୨.୩୬	୪୦୮	୫୨୫	୧୯. ଦୋ ୩୫	୪୬.୧୧୮	୩୭.୨୦୧	୬୭.୩୯୬

१२.३७ ४१० ५१७	१९. दो० २६	४६.१३२ ३७.२०७	६७ ४०५
१२.३८ ४०९ ५३४	१९. कवि० ३	४६.१३८ • ३७.२१९	६७.४११
१२.३९ ४११ ५२८	१९. [चउ०]१	४६.१३३ ३७.२०८	६७ ४०६
१२.४० ४१२ ५३७	१९. कवि० ४	४६.१४५ ३७.२४४	६७.४३५
१२.४१ ४१३ ५३८	१९. कवि० ५	४६.१४६ ३७.२४५	६७.४३६
१२.४२ ४१५ ५४२	१९. कवि० ६	४६.१५० ३७.२४८	६७.४५५
१२.४३ ४१४ ५३९	१९. दो० ३८	४६.१४७ ३७.२२५	६७.५३८
१२.४४ ४१६ ५४३	१९. दो० ३९	४६.१६५	६७.५१४
१२.४५ ४१७ ५४४	१९. कवि० ७	४६.१६७ ३७.२५०	६७.५१५
१२.४६ ४१८ ५४८	१९. कवि० ९	४६.१७१ ३७ २५३	६७.५२४
१२.४७ ४१९ ५३५	१९. दो० ४०	४६.१६४ ३७.२२२	६७.४८८
१२.४८ ४२० ५५१	१९. कवि० १०	४६.१७४ ३७.२७९	६७.५४९
१२.४९ ४२२ ५५२	१९. कवि० १२	४६.१७६ ३७.२८३	६७.५५६

६. पृथ्वीराज रासो का कथा-सार

नीचे रचना के प्रस्तुत संस्करण की कथा का सार दिया जा रहा है। यह सार जान-बूझ कर कुछ विस्तारों के साथ दिया जा रहा है, जो कि सामान्यतः छोड़े जा सकते थे। ऐसा इसलिए किया जा रहा है कि रचना की कथा के समस्त तत्व पाठक की दृष्टि में एक-साथ आ सकें और इस सार को देखकर ही वह न केवल प्रबन्ध की दृष्टि से रचना के सम्बन्ध में धारणा बना सकें, वरन् उसके ऐतिहासिक, अर्द्ध ऐतिहासिक और इतर तत्वों के सम्बन्ध में भी पूर्ण रूप से अवगत हो सकें। इसलिए आशा है कि यह विस्तार रोचक और उपयोगी सिद्ध होगा। विभिन्न सर्गों का सार देते हुए नीचे कोष्ठकों में दी हुई संख्याएँ उनके छन्दों की हैं।

१. मंगलाचरण और कथा की भूमिका

गणेश (१) और सरस्वती (२) की वन्दना करने के अनन्तर शिव को नमस्कार करके (३) अपने पूर्व के कवियों को 'पृथ्वीराज रासो' के कवि ने स्मरण किया है, और ये हैं शिव, यम, व्यास, शुकदेव, श्रीहर्ष, कालिदास तथा दण्डी (४); छन्द-प्रबन्ध के प्रसंग में उसने पिंगल^१, [के छन्द-सूत्र] भरत [के नाट्य सूत्र] तथा महाभारत को भी [पीछे ?] छोड़ने का संकल्प किया है (५) और इसके अनन्तर उसने कथारम्भ किया है।

पृथ्वीराज का पूर्व-परिचय देते हुए उसने कहा है कि उसकी कपिल (धूल-धूसरित) केलि अजमेर में हुई थी, रक्त (राग पूर्ण) जीवन के वृत्त सौमर में हुए थे, वह सोमेश्वर का पुत्र और बहिला वन का निवासी था और दिल्लीपुर में भासित होने के लिए ही मानो वह विधाता द्वारा निर्मित हुआ था (६)।

२. जयचन्द का राजसूय और संयोगिता का प्रेमानुष्ठान

इसी समय जयचन्द कन्नौज का शासक था जो धार्मिक था तथा हय-गजादि से सम्पन्न था; उसने कीर्ति-वर्धन के लिए राजसूय यज्ञ करने की ठानी; उसने पृथ्वीराज के अनेक राजाओं को जीत लिया (१)। उसने पृथ्वीराज के पास दूत भेजे कि वह भी उसके राजसूय यज्ञ में सहयोग करे; पृथ्वीराज की सभा में उसके इन दूतों ने जयचन्द का सन्देश सुनाया; पृथ्वीराज चुप रहा किन्तु उसके एक गुरुजन गोविन्दराज ने जयचन्द के इस प्रस्ताव का विरोध किया; यह गोविन्दराज यमुना तटवर्ती [कुरु] जागल का निवासी था, उसने कहा कि वह तो जरासंध के वंश के उस पृथ्वीराज को ही

^१ यह सम्भव नहीं है कि कवि का 'पिंगल' से तात्पर्य 'प्राकृत पिंगल' से हो, भरत के भी पूर्व पिंगल का नाम लेने से उसका तात्पर्य उन छन्द-सूत्रों के रचयिता से ही ज्ञात होता है जो पिंगल के नाम से प्रसिद्ध रहे हैं।

राजा मानता था जिसने तीन बार शहाबुद्दीन को बन्दी किया था और जिसने भीमसेन (भीम चौलुक्य) [की शक्ति] को नष्ट किया था, उसने कहा कि जब तक उस (पृथ्वीराज) के कंधे पर सिर था, राजसूय यज्ञ नहीं हो सकता था, उसके इन वचनों को सुनकर कन्नौज के दूत लौट गए; कन्नौज-राज ने इस समय पृथ्वीराज से झगड़ा न करके यज्ञ सम्पन्न करने का निश्चय किया, उसने द्वारपाल के रूप में पृथ्वीराज की एक सोने की प्रतिमा स्थापित की और उसने यज्ञ और उसके साथ ही अपनी कन्या संयोगिता के स्वयंवर की तिथि निश्चित कर दी (३)। सूर्य के पुष्य नक्षत्र में तथा चन्द्रमा के तीसरे स्थान पर होने का देव पंचमी का दिन निर्धारित हुआ; [यह सुनकर] पृथ्वीराज ने कन्नौज पर चढ़ाई करने का निश्चय किया (६)।

पृथ्वीराज ने खोखन्द (कोहकन्द) और बलख के राजाओं को परास्त किया था, गजनी में विशोभ उपस्थित कर दिया था (८) और उसने मरुहरा को दण्डित किया था (९), [इस पृष्ठभूमि में] पृथ्वीराज के वैमनस्य की बात सुनकर जयचन्द के उक्त आयोजन का रंग फीका पड़ गया था, और जयचन्द की पुत्री संयोगिता ने पृथ्वीराज के वरण के लिए व्रत लिया था, यह समाचार पृथ्वीराज को मिला (१०)। उसने सुना कि संयोगिता ने पिता के वचन और उक्त आयोजन की उपेक्षा कर यह निश्चय किया है कि वह या तो पृथ्वीराज का पाणिग्रहण करेगी, अन्यथा गंगा में कूद कर प्राण दे देगी (११)। यह सुनकर पृथ्वीराज को उसके अनुराग का विश्वास हो गया (१२)। उधर जयचन्द ने संयोगिता को उसके इस संकल्प से विचलित करने के लिए कुछ दासियाँ उसके साथ रख दीं (१३)। उन्होंने उससे प्रश्न किया कि वह अपने पति के रूप में किसे चाहती थी (१४)। संयोगिता ने बताया कि वह पृथ्वीराज को चाहती थी, जिसके साथ (?) सामन्त थे (१५)। उन दासियों ने कहा कि वह तो लघु (हीन) कुल का था (१६)। इस पर संयोगिता ने कहा कि पृथ्वीराज की ही कृपाण ने अजमेर में घूम मचा रखी थी, मण्डोवर को तहस-नहस कर डाला था, मरुस्थल के मोरी राजा को दण्डित किया था, रणस्तम्भपुर (रंथम्भौर) को आग की लपटों के समान दग्ध किया था, कालिंजर को जलमग्न कर दिया था, और गोरी-धरा पर वह घन बनकर घहराई थी, क्या फिर भी उसे लघु (हीन) कहा जा सकता था (१७)। इस पर उन दासियों ने कहा कि उसे स्मरण रखना चाहिए कि वह ऐसे महाराज (जयचन्द) की पुत्री है जिसने महाराष्ट्र, थढ़ा, नीमच, और वैरागर को भ्रष्ट किया, कर्णाट, करवीर, गुण्ड और गुर्जर की कांति को राहु के समान ग्रस लिया और मालव, मेवाड़ और मण्डोवर को निर्माल्य के समान हस्तगत किया; उसकी सेवा में रहने वाले देव-तुल्य राजाओं में से वह किसी को क्यों नहीं वरण करती थी (१८)। संयोगिता ने उत्तर दिया कि वह किन्हीं भी बातों में नहीं आ सकती थी, और उसने संकल्प कर लिया था कि चाहे सौ जन्म ग्रहण करने पड़े, वह पृथ्वीराज को ही वरण करने वाली थी (१९)। जब अनेक प्रकार से संयोगिता को समझाने पर भी वे दूतिया कृतकार्य नहीं हुईं तो जयचन्द ने रुष्ट होकर उसको गंगातटवर्ती एक आवास में भिजवा दिया (२०)।

३. कैवास-वध

[संयोगिता के इस विरह-] ताप में पृथ्वीराज का मन स्थिर नहीं रहता था, इसलिए वह राजधानी में प्रधान अमात्य कैवास को छोड़कर आखेट में फिरेने लगा था (१)। इधर कैवास पृथ्वीराज की अनुपस्थिति में उसकी कर्नाटी दासी पर अनुरक्त होकर एक रात्रि उसके कक्ष में पहुँच गया (३)। पटरानी की ताबूल बाहिका सखी ने यह देख लिया और उसने पटरानी को इसकी सूचना कर दी; यह सुनते ही पटरानी ने भुजपत्र पर पत्र लिखकर एक दासी को पृथ्वीराज के पास भेजा और पृथ्वीराज को दो घड़ियों के भीतर आने के लिए लिखा (५)। जिसने जयचन्द की विशाल सेना से भय नहीं माना था, शहाबुद्दीन से साहस और इच्छापूर्वक युद्ध किए थे, और जो जिस समय चौलुक्य भीम को मन्त्री कैवास ने बन्दी किया था, स्वतः दूर विश्वास में रहा था, खेद कि ऐसे पृथ्वीराज

को भी वह कैवास नहीं जान पाया था (६)। पत्र पाते ही पृथ्वीराज दो घड़ियों में आ गया (८)। कैवास और कर्नाटी को लक्ष्य करके उसने रात्रि के अन्धकार में ही एक वाण छोड़ा, किन्तु वह वाण क्रोध के कारण उसकी मुट्ठी के हिल जाने से चूक गया, तदनन्तर [पटरानी] परमारिनी ने उसे दो वाण और दिए; उन वाणों के लगते ही कैवास धराशायी हो गया (११)। दासी के साथ कैवास को रातों-रात पृथ्वीराज ने गड़वा खनवा कर गड़वा दिया (१३), और वह आखेट के लिए वन फिर चला गया (१४)। यह घटना और किसी को शान्त नहीं होने पाई, केवल चन्द को इसे सरस्वती ने स्वप्न में बताया (१४)। पृथ्वीराज सवेरा होने पर राजधानी को लौट आया (१८)। मध्य के प्रहर में उसने पण्डित [जयानक] को बुलाकर उससे शहाबुद्दीन पर प्राप्त अपनी विजय-गाथा के कहने [लिखने] के लिए कहा, और तदनन्तर उसने सभा बुलाई, जिसमें चन्द ने आकर उसे आशीर्वाद दिया (१९)। उस सभा में पृथ्वीराज ने पहले शूरो [सामन्तो] से कैवास के बारे में पूछा, किन्तु कोई बता नहीं सका कि वह कहाँ था (२०)। तदनन्तर उसने चन्द से यही प्रश्न किया (२१)। चन्द ने पहले उत्तर न देना ही ठीक समझा, किन्तु पृथ्वीराज के हठ करने (२५) पर उसने उत्तर दिया (२६)। उसने उस रात्रि की सारी घटना सुना दी (२७)। सभा विसर्जित हुई (२८)। कैवास की स्त्री को जब यह शान्त हुआ, उसने चन्द से मृत पति का शव दिलाने के लिए कहा, चन्द के बहुत कहने पर पृथ्वीराज ने कैवास का शव दिलाना इस शर्त पर स्वीकार किया कि चन्द उसे जयचन्द का दर्शन करावेगा (३७)। पृथ्वीराज अनुचर के रूप में चन्द के साथ जाने को प्रस्तुत हुआ (३९), दोनों कसकर गले मिले और रोए और पृथ्वीराज ने कहा कि उस अपमानपूर्ण जीवन से मरण अच्छा था (४०)। कवि ने उसके इस विचार का समर्थन किया (४२) और कैवास का शव उसकी विधवा स्त्री को दिया गया (४३)।

४. पृथ्वीराज का कन्नौज-गमन

पृथ्वीराज ने चंद के साथ कन्नौज के लिए प्रयाण किया, साथ में अनेक शूर सामन्त भी थे, कुल सौ राजपूत थे (१)। तीन दिन, तीन रात और एक पल कम तीन प्रहर में वे इक्कीस योजन पहुँच गए (५)। रात्रि के अनन्तर प्रभात होने पर वे कन्नौज पहुँच गए (८)। उन्होंने गंगा का दर्शन किया और उसकी स्तुति की (११)। घाटों पर उन्हें जल भरती हुई सुन्दरियाँ दिखाई पड़ीं (१३)। उन्होंने जाकर सदेह देवी के दर्शन किए, पृथ्वीराज को देख कर उसने आशीर्वाद दिया कि विजय उसके पक्ष में हो (२२)। वे लोग तदनन्तर नगर-दर्शन करते हुए आगे बढ़े (२३-२५)।

५. पृथ्वीराज का कन्नौज में प्राकट्य

दरबार को पूछता-पूछता चंद कन्नौज के कोटपाल के पास पहुँचा (१)। उसने जयचंद को चंद के आने की सूचना दी (३)। जयचन्द ने अपने गुणीजन को चन्द की परीक्षा ले [कर उसे ला] ने को भेजा (४)। चन्द से मिल कर उन्होंने उसके बिना देखे ही जयचन्द का वर्णन करने के लिए कहा (९)। जयचन्द (१०) तथा उसकी सभा (१२) का वर्णन करते हुए चन्द ने उसकी विजय-गाथा कही : उसने कहा कि जयचन्द ने सिंधु [नदी] का अवगाहन कर तिमिर (म्लेच्छ-दल) को भगाया, उसने हिमालय में स्थित राज्यों को दहाया और एक दिन में आठ सुलतानों को बश में किया, तिरहुत में जाकर उसने सेना स्थापित की, उसने डाहल के कर्ण को दो बार बंदी किया, [गूर्जर के] सोलंकी (चौलुक्य) सिद्ध (जैन) राजा को कई बार खदेड़ा, उसने तिलंग और गोवल्लकुण्ड को तोड़ा, गुण्ड के जीरा शासक को बंदी करके छोड़ा, वैरागर के सब हीरे लिए, गजनी के शाह शहाबुद्दीन के सेवक निसुरच खाँ को बंदी किया, भूल कर लंका जा पहुँचा और विभीषण से कलह कर बैठा, और खुरासान के अमीर को बंदी किया; ऐसा विजयपाल का पुत्र जयचन्द

था (१३)। इसके अनन्तर वे गुणीजन चन्द को जयचन्द की सभा में लिवा ले गए (१४)। जयचन्द ने कवि का अदर करने के अनन्तर उससे पृथ्वीराज के शौर्य तथा रण-कौशल के बारे में पूछ कर (१५-१७) उसकी उनहार पूरी (१८)। चन्द ने बताया कि पृथ्वीराज उस समय ३६ वर्ष तथा ६ मास का था, दुर्जनो के लिए राहु के समान था, और चारों दिशाओं के हिन्दू उसकी मुड़ी में थे (१९)। इस समय जयचन्द ने चन्द के अनुचर (अनुचर-वेशी पृथ्वीराज) को स्थिर दृष्टि से देखा तो नेत्रों-नेत्रों में बल पड़ गया (२०)। जयचन्द ने चन्द को पान अर्पित करने के लिए राज-भवन की कुमारी दासियों को बुलवाया (२१) और वे सुंदरियाँ एक साथ भट्ट (चन्द) को पान अर्पित करने के लिए चल पड़ी (२२)। इनमें एक पहले पृथ्वीराज की दासी रह चुकी थी, और वहाँ से लुप्त होकर जयचन्द की सेवा में आ गई थी, वह बाल खाले रहा करती थी, किन्तु [अनुचर-वेशी] पृथ्वीराज को देखते ही उसने सिर ढँक लिया (२५)। दासी का यह कृत्य देखकर जयचन्द को शका हुई कि वह पुरुष जो चन्द के साथ उसके अनुचर के रूप में था, कदाचित् पृथ्वीराज था (२६), किन्तु किसी ने कहा कि चन्द पृथ्वीराज का अभिन्न सखा था इसलिए दासी ने चन्द को देखकर इस प्रकार लजा की (२७)। तदनन्तर एक सुवासित आवास में चन्द को ठहराया गया (२८)। उस आवास में पृथ्वीराज की सभा लगी (३१) और तदनन्तर उसने शयन किया (३२)। इसी समय जयचन्द का अवसर (संगीत-समारोह) नियोजित हुआ (३३)। सबेरा होने पर जयचन्द चन्द के लिए उपहारादि लेकर उसके समक्ष उपस्थित हुआ (४४), किन्तु जब वहाँ पहुँच कर उसने सिंहासन और उस पर अनुचर वेशी पृथ्वीराज को बैठा देखा, वह ठमक गया, चन्द ने उसका स्वागत करते हुए उसे बताया कि यह सिंहासन पृथ्वीराज से उसको मिला था और इसके अनन्तर उसने अपने अनुचर (पृथ्वीराज) से जयचन्द को पान अर्पित करने के लिए कहा (४५)। अनुचर ने उसको पान देने के लिए हाथ आगे बढ़ाया और वक्र दृष्टि से उसे देखा (४६)। जयचन्द ने पहचान लिया कि यह पृथ्वीराज है और उसने आदेश किया कि सगठित रूप में पृथ्वीराज पर आघात (आक्रमण) किया जावे, ताकि वह भाग न सके (४८)।

६. संयोगिता-परिणय

उधर पृथ्वीराज अपने साथी सामंतों से युद्ध-क्षेत्र में होने (जाने) के लिए कह कर नगर की प्रदक्षिणा के लिए निकल पड़ा (१)। वह गङ्गा-तट पर पहुँच कर मछलियों की क्रीड़ा में लीन हो रहा और उन्हें मोती चुगाने लगा (७)। उधर सैनिक वाद्यों को सुनकर संयोगिता जब अपने आवास [की छत] के ऊपर चढ़ी, वह गङ्गा-तट पर इस नवागंतुक को देखकर विस्मय में पड़ गई कि यह कौन था (८-९)। तदनन्तर उसने एक अनुचरी को थाल भर मोतियों देकर उस नवागंतुक के पास भेजा, और कहा कि यदि वह इन मोतियों के सम्बन्ध में कुछ न पूछे, तो वह दासी समझ ले कि वह नवागंतुक पृथ्वीराज था और तब वह (संयोगिता) उसे इस शरीर से ही वरण कर ले (१३)। दासी ने वैसा ही किया, और जब थाल के मोती समाप्त हो गए, उसे वह अपनी कण्ठ-माला तोड़ कर उसकी पोते अर्पित करने लगी; पृथ्वीराज ने जब मोतियों के स्थान पर हाथ में पोते देखी, उसने दृष्टि फेरी और उस सुन्दरी दासी को देखा; प्रश्न करने पर उस दासी ने बताया कि वह जयचन्द के घर की दासी थी, और उसकी पुत्री (संयोगिता) के द्वारा भेजी हुई थी जो कि जीवन का मोह छोड़ कर उस पर अनुरक्त थी, यह सुनकर पृथ्वीराज ने धोड़ा मोड़ दिया और संयोगिता से जा मिला; दोनों का पाणिग्रहण हुआ, और तदनन्तर संयोगिता को वहीं छोड़कर युद्ध के लिए पृथ्वीराज लौट पड़ा। रात्रि हो गई थी, उसके सामंत उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे (१९)। कन्ह नामक सामंत ने जब उसके हाथ में पाणिग्रहण का कंकण बँधा हुआ देखा, तो वह समझ गया कि पृथ्वीराज संयोगिता का परिणय करके आया है (२१)। उसके सामंतों ने उसकी धीरता की

प्रशंसा की (२२), किन्तु उन्होंने उससे कहा कि परिणय करके वह सुन्दरी को छोड़ कर आ सकता था, ऐसा वे नहीं समझते थे (२३)। तदनंतर वे सब उसके साथ संयोगिता के आवास पर पहुँचे (२४)। संयोगिता पृथ्वीराज के विरह में व्यथित हो रही थी (२५-२७), किन्तु जब उसने पृथ्वीराज को लौटते देखा तो [युद्ध छोड़ कर अपने पास आते हुए देख कर] वह [वीर क्षत्राणी] उस पर प्रसन्न नहीं हुई (२८) और सिर पीट कर सखियों से कहने लगी कि जिस प्रियजन की ओर लोगो की उँगलियाँ उठे, उस प्रियजन से क्या प्रयोजन (३०)? यह सुनकर सामंतों ने उसे समझाने का यत्न किया (३१)। किन्तु उस विनष्टा के नेत्र-प्रवाह उस दिवस की कथा कहते ही रहे (३२)। यह देख कर नरनाह कन्ह ने कहा कि यद्यपि कोटि कादर भृत्य अपने स्वामी जयचन्द के साथ चढ़ाई कर चुके हैं, वह अकेला अपनी भुजाओं के बल से कन्नौज को दिल्ली कर सकता था, और पृथ्वीराज को दिल्ली का सिंहासन दिला सकता था (३३)। [युद्ध के इस उन्माद को देखकर] संयोगिता हर्ष से पूरित हो गई; इसी समय पृथ्वीराज ने उसकी बाँह पकड़ कर उसे अपने साथ घोड़े की पीठ पर बिठा लिया (३४)।

७. पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध (पूर्वार्द्ध)

संयोगिता का परिणय करके पृथ्वीराज ने दिल्ली की ओर प्रस्थान करने की आशा की, इसी समय चन्द ने जयचन्द को ललकार कर बताया कि उसका शत्रु पृथ्वीराज यज्ञ-ध्वंस करने आया था, और उसकी पुत्री का परिणय करके उसके आभूषणों के रूप में जयचन्द से युद्ध माँग रहा था (१-२)। यह सुन कर जयचन्द के धौसों पर चोट पड़ी (३)। पृथ्वीराज के सौ राजपूतों के ऊपर जयचन्द के सौ हजार सैनिक टूट पड़े, उसकी इस सेना की अगणित पक्तियाँ में तो दस लाख सैनिक थे (५)। जयचन्द की इस विशाल वाहिनी के विरुद्ध पृथ्वीराज के सौ योद्धाओं का चल पड़ना वैसा ही था जैसे रावण की विशाल सेना के विरुद्ध राम की वानरी सेना का प्रयाण करना (७)। किन्तु राम के दल में भी वानरों की एक विशाल संख्या थी, यहाँ तो अस्सी लाख सेना से केवल सौ योद्धा भिड़ रहे थे (८)।

जयचन्द ने मीर बदन को पृथ्वीराज को पकड़ने का आदेश किया (१३)। पृथ्वीराज की ओर से कन्ह ने मोर्चा लिया और उसके प्रहार से मीर कट कर गिरने लगे (१७)। दो हजार घोड़े-हाथियों और सात हजार मोरों को मार कर चहुवान (कन्ह) ने रण-स्थल को ढक दिया (१९)। प्रथम दिन के इस युद्ध में गोविन्दराज गहलोत, नागौर निवासी नरसिंह दाहिमा, चन्द्र पुंड़ीर, सारंग सोलकी तथा पालहन देव कूरम अपने दो बाघों के साथ गिरे : इस प्रकार सौ में से सात योद्धा घट गए (२०)। भरणी के भोग में अष्टमी, शुक्रवार को यह युद्ध हुआ (२१)।

शनिवार के युद्ध में पृथ्वीराज के सामन्तों ने धावा किया (२५) और दोपहर तक में उनमें से पाँच खेत रहे (२५)। ये थे : गुर्जर धरा का माल चंदेल, थड़ा का भूपाल भान भट्टी, सामला शूर अच्छ पमार तथा धार का निरवान वीर (२७)। दोपहर से पृथ्वीराज-पक्ष में जंगलीराय ने युद्ध किया, किन्तु वह भी खेत रहा, इस प्रकार अब तक पृथ्वीराज के तेरह सामंत खेत रहे थे और पृथ्वीराज को भी पाँच बाण लग चुके थे (२८)। संध्या तक पृथ्वीराज के सोलह ओर सामंत खेत रहे (३०)। इनके नाम इस प्रकार थे : मंडलीराय मालन हंस, जावला, जाल्ह, बाब बागरी, बलीराय यादव, सारंग, गाजी, पाधरी राय, परिहार राणा, साधुला, सिंह [राय], सिंहली राय, सातल्ल मोरी, भोज, मल्ल तथा भोजाल राय (३१)।

८. पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध (उत्तरार्द्ध)

पृथ्वीराज के सामंतों ने अब उससे अनुरोध किया कि वह दिल्ली की ओर बढ़े और उसके मार्ग की रक्षा उनमें से एक-एक भट करे, इस प्रकार वे उसे युद्ध से बचाते हुए दिल्ली पहुँचा देते, अन्यथा अस्सी लाख शत्रु-सेना को कौन झेल सकता था (१)? पृथ्वीराज ने सामंतों के इस प्रस्ताव का

विरोध करते हुए कहा कि मरण से उसे भयभीत नहीं किया जा सकता था, क्योंकि बिना काल के किसी का मरण नहीं होता है; वे भीम [चौलुक्य] को नष्ट करने के गर्व से मदमत्त होकर ऐसा कह रहे थे, किन्तु उसने भी तो सरवर में शहाबुद्दीन गोरी को वश में किया था; जिसकी शरण में हिन्दू और तुर्क दोनों हो चुके थे, उसे वे शरणागत करना चाहते थे (२) ! किन्तु सामंतों ने कहा कि राजा और रावत अन्योन्याश्रित हैं : वह उनकी रक्षा करता है, तो वे भी उसकी रक्षा करते हैं (३) । उन्होंने कहा, “तुमने शहाबुद्दीन गोरी को बन्दी कर हिन्दुओं की रक्षा की, विजयाकाक्षी [भीम] चौलुक्य का दमन कर जालोर की रक्षा की, भीम भट्टों को हार देकर पंगुर (?) की रक्षा की, यादव-राज से रणथम्भ (रथभौर) की रक्षा की, यह युद्ध जयचन्द की मरण-कीर्ति और तुम्हारी जीवन-कीर्ति का है, [हमारी कामना है कि] प्रभु संयोगिता का परिणय करके दिल्ली पहुँचे और घर-घर मंगल हो (४) ।” पंचानवे कोस दूर दिल्ली तक स्वामी को पहुँचाने के लिए क्रमशः एक-एक वीर जयचन्द की सेना से मोर्चा लेकर कट मरे—यह कहते हुए चन्द ने भी इस योजना का समर्थन किया (६) । फलतः पृथ्वीराज ने इसे स्वीकार किया (७) और नवमी को उसने दिल्ली की दिशा में अपने घोड़े की बाग मोड़ी (१०) ।

पृथ्वीराज-पक्ष का पहला योद्धा जो [इस योजना में] आगे आया हरसिंह चहुआन था; उसके जूझते-जूझते तक पृथ्वीराज चार कोस आगे निकल गया (११) । इसके अनन्तर कनक बड़गूजर आगे आया; उसके जूझते-जूझते तक पृथ्वीराज छ कोस और आगे निकल गया (१४) । इसके अनन्तर निडर राठौर आगे आया, जो वर सिंह का पुत्र था; उसके जूझते-जूझते तक पृथ्वीराज आठ कोस और आगे निकल गया (१६) । तदनन्तर कन्ह आगे आया (१८), और वह मारा गया (२२) । तदनन्तर अल्हन आगे बढ़ा (२३), और वह मारा गया (२४) । तदनन्तर अचलेस आगे आया (२५), जो बाहर [राय] का पुत्र था (२६), और वह मारा गया । तदनन्तर पट्टनपति और पट्ट प्रभु को छलने वाला बिंझ आगे आया (२७), और यह भग्गुल पति बिंझ चौलुक्य भी मारा गया (२८-२९) । तदनन्तर आवूपति सलख पमार आगे बढ़ा (३०), और वह भी मारा गया; तदनन्तर लषन बघेल आगे बढ़ा (३१), और वह भी मारा गया (३२) । इस समय तक दिल्ली दस कोस रह गई थी जब पाहार तोमर आगे आया (३३) [और वह भी मारा गया] । इस प्रकार हरसिंह ने ४ कोस, कनक बड़गूजर ने ६ कोस, निडर ने ८ कोस, कन्ह ने १० कोस, अल्हन ने १२ कोस, अचलेस ने १४ कोस, बिंझ ने १६ कोस, सलख ने ५ (?) कोस, लषन ने १० (?) कोस, तथा पाहार ने १० कोस पृथ्वीराज को आगे बढ़ाया; और इतने शूरों के जूझते-जूझते पृथ्वीराज दिल्ली पहुँच गया (३५) ।

६. पृथ्वीराज-संयोगिता का कैलि-विलास

पृथ्वीराज दिल्ली पहुँचा, तो जयचन्द कन्नौज लौट गया (१) । इसके अनन्तर पृथ्वीराज विलास में पड़ गया और अपनी शक्ति को उसने नष्ट कर दिया : निरन्तर उसके मन में [एक मात्र] संयोगिता को सुख देने की कामना रहती थी और उसकी प्रौढ़ रति में पड़ कर उसे दिन-रात की सुधि नहीं रहती थी; परिणाम स्वरूप उसके गुरु, बांधवों, भृत्यों और प्रजा में असन्तोष उत्पन्न हो गया था (८) । ऋतुएँ आती थीं और चली जाती थीं किन्तु संयोगिता ने पृथ्वीराज को इस प्रकार अपने वश में कर लिया था कि उसको छोड़ कर कहीं जाना उसके लिए असम्भव हो गया था—[यहाँ छः छन्दों में कवि ने सुन्दर ढङ्ग से षड् ऋतु-वर्णन करते हुए नायिका के प्रेमानुरोधों का उल्लेख किया है (९-१४)] ।

१०. पृथ्वीराज का उद्बोधन

सारी प्रजा राजगुरु से पूछती कि राजा छः महीने से नहीं दिखाई पड़ा था, इसका क्या कारण था; अतः गुरु इस प्रश्न को लेकर चन्द के पास आए (१) और उससे उन्होंने यही प्रश्न

किया (३)। चन्द ने बताया कि जिस कामिनी के लिए पृथ्वीराज ने कलह किया था, अब उसी कामिनी का वह भोग वह रहा था (४)। गुरु को इस पर विश्वास नहीं हो रहा था, उन्होंने कहा “जिसने [सदेव] धन, स्त्री और जीवन को तृण के समान गिना था, उसने काम की वश्यता किस प्रकार स्वीकार की ?” (५)। चन्द ने संयोगिता के नख-शिख का वर्णन कर उसकी इस शका का समाधान किया (११)। गुरु ने समझ लिया कि जैसी मनुष्य की भावी होती है, वैसी ही विधाता उसे मति भी अर्पित करता है (१३)। इस वार्तालाप के अनन्तर गुरु और चन्द ने पृथ्वीराज के उद्धोघन का संकल्प किया—उन्होंने कहा या तो वह बाधवों से मनसिन् (उनका ध्यान रखने वाला) होगा, और या तो अब वह उस संयोगिता को ही देखेगा (१४)।

गुरु और चन्द राजद्वार पर पहुँचे, जहाँ संयोगिता का आदेश चलता था (१५)। दासियों के द्वारा उन्होंने राजा को एक पत्रिका भेजी और उन्हें मौखिक रूप से यह कहने के लिए कहा, “गोरी तेरी धरा पर अनुरक्त है और तू गोरी (संयोगिता) पर अनुरक्त हो रहा है (२०)।” उस पत्र की पहली पक्ति पढ़ते ही राजा लज्जित होकर भूमि पर जा पड़ा (२२)। पत्र में लिखा था, “शहाबुद्दीन की आज्ञा से उसकी अपूर्व सेना [पुनः] एकत्रित हुई है और वह उससे आदर प्राप्त कर दिल्ली की दिशा में बढ़ रही है, उसमें दस हजार हाथी तथा दस लाख घोड़े हैं, इसी प्रकार उसके अनेक सुभट तथा योद्धा अमीर भी हैं जो गम्भीर और अविचलित रहने वाले हैं, हे चहुवान, सुन, बाण तो अपने अधीन है, अतः उद्योग करके प्राणों की रक्षा कर और सामन्तों से वह मन्त्र कर कि तेरे कारण दिल्ली की धरा डूब न जावे (२३)।” इस पत्र को सुनते ही [वह विलास-निद्रा से जग गया और] उसने तरकस संभाला (२४)।

यह देख कर संयोगिता ने जीवन में काम-सुख का महत्व प्रतिपादित करते हुए उसे उसके संकल्प से विरत करना चाहा (२५), किन्तु पृथ्वीराज ने प्रिया का मुख देखा और जी को निर्भय (कठोर) बना कर कहा, “तुमने हे श्रेष्ठ स्त्री, मेरे बाहुओं की पूजा की है, और वही तुम मुझा इस समय काम की बातें कर रही हो (२६) ?” इसके अनन्तर पृथ्वीराज ने उसे अपने स्वप्न की कथा सुनाई (२७)। उसने कहा, स्वप्न में एक सुन्दरी उससे आरम्भ-परिरम्भ करने लगी; उस समय उसका पति भी उसके साथ था, जिसका तेज ग्रीष्म के रवि का था; उस पुरुष ने मुझसे झगडा किया और वह मेरा हाथ पकड़कर बड़बड़ाने लगा; इन प्रकार वहाँ पर एक संकट उपस्थित हो गया और मैं ने देखा कि वह पुरुष [रोष में] दातों को दाब रहा है। किन्तु तदनन्तर न मैं था, और न वह सुन्दरी थी; ‘हर-हर’ का स्वर उत्पन्न हुआ, पता नहीं देवगण का क्या अभिमत है, और वे किस उद्देश्य से क्या करना चाहते हैं (२८)।” संयोगिता ने यह सुन कर गुरु और कवि को बुलाया, उन्होंने स्वप्न के अनिष्टकारी प्रभाव के शमन के लिए उपचार किए; तदनन्तर उसी दिन संध्या समय पृथ्वीराज ने सुभटों की सभा की।

११. शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज युद्ध

पृथ्वीराज की सब सेना सत्तर हजार थी, जिनमें से बत्तीस हजार आगे बढ़ रहे थे (१)। इनमें पाँच हजार ऐसे थे जो राजा के लिए समस्त संकट सहने को तैयार थे (२)। इनमें भी दो हजार स्वामी की आज्ञा से सब कुछ कर सकते थे, और इन दो हजार में भी पाँच सौ ऐसे थे जो वज्र सहन कर सकते थे (३)। इनमें भी सौ शील और सत्य में यम को जीतने वाले थे और इनमें भी दस हाथियों के दाँत उखाड़ने वाले थे (४)। इनमें भी पाँच ऐसे थे कि उनके कार्यों की गति अमम्य थी; पृथ्वीराज इन्हीं में (इन्हीं से परिवेष्टित) था (५)। पावस के आगमन पर जब धरा अगम्य हो रही थी, तुर्क और हिन्दू सेनाएँ सुसज्जित हुईं (६)।

सिन्धु पार कर शहाबुद्दीन ने खुरासान खॉ, तातार खॉ और रस्तम खॉ से कहा कि वह उस पृथ्वीराज पर आक्रमण कर रहा था जिसने उसे बन्दी बना कर छोड़ दिया था, और जिसे उसे सात बार कर दिया था : उसने उनसे मार्ग में और भी भृत्यों का संग्रह करने के लिए कहा (७) । उन्होंने उसे पूर्ण आश्वासन दिया (८) ।

दोनों दलों में युद्ध आरम्भ हुआ (११) । दोपहर तक में चामण्ड (?) वीर ढाई सौ खेत रहे, चालुक्य योद्धा एक सौ बीस गिरे, कूरम शूर छः हजार गिरे, खीची गिरे, आवूराज जैत पमार गिरा, पच्चीस सौ चहुवान गिरे और अन्त में केवल चौदह सौ योद्धा पृथ्वीराज के साथ शेष रहे; शहाबुद्दीन के सोलह हजार सैनिक गिरे, पृथ्वीराज की सेना रण-क्षेत्र से लौट पड़ी और शहाबुद्दीन विजयी हुआ (१२) । पृथ्वीराज को शत्रुओं ने घेर लिया (१३), उन्होंने उसे खुरासान खॉ की बाहो में सिगिनी अर्पित करने को कहा (१४) । इस बात को पृथ्वीराज सहन न कर सका और उसने खुरासान खॉ को एक बाण से समाप्त कर दिया, किन्तु पृथ्वीराज के दिन अब दिन दूसरे आ गये थे (१५) । अन्त में एक म्लेच्छ सरदार के द्वारा वह बन्दी हुआ (१७) ।

१२. शहाबुद्दीन तथा पृथ्वीराज का अन्त

पृथ्वीराज को बन्दी कर शहाबुद्दीन गजनी गया, उसने दिल्ली का राज्य उसके पुत्र को दिया और छः महीने बाद ही शहाबुद्दीन ने पृथ्वीराज को नेत्रहीन कर दिया, यह बात जब चन्द ने सुनी, उसने गजनी की राह पकड़ी (१) । उसने एक अवधूत की वेष-भूषा बनाई और इस प्रकार [चल कर] वह गजनी पहुँचा (३) । तीसरे पहर शहाबुद्दीन हृदय (लक्ष्य वेध) खेलने के लिए निकल रहा था (१२) । आगे आगे निसुरत खॉ चल रहा था; शहाबुद्दीन की कटि में तूणीर था और हाथ में सिगिनी थी, कवि ने दौड़ कर उसका मार्ग रोका, और उसे बाएँ हाथ से आशीर्वाद दिया (१३) । चन्द को अवधूत के उस वेष में देख कर शाह ने उससे पूछा (१४) तो चन्द ने अपना परिचय दिया; उसने बताया कि उसने पृथ्वीराज के साथ अवतार (जन्म) लिया था, उसके बन्दी हो जाने से वह अनाथ हो गया था और जब उसने सुना कि वह बिना आँख का कर दिया गया था, उसने बदरिकाश्रम में जाकर तप करने का निश्चय किया था; शाह ने कहा कि पृथ्वीराज अंधा होने पर भी अपनी वक्र दृष्टि नहीं छोड़ रहा था, इसलिए उसे थाने में रख दिया गया था, इस समय वह (शहाबुद्दीन) हृदय (लक्ष्य वेध) खेलने जा रहा था, दूसरे दिन वह उससे बातें कर सकता था (१५) ।

दूसरे दिन शाह ने चन्द को निसुरत खॉ के द्वारा बुलवाया (१९) । तातार खॉ ने कहा कि चन्द बड़ा चतुर व्यक्ति था, उसका विश्वास न करना चाहिए था (२०) । किन्तु शाह ने कहा कि वह (चन्द) तपस्या करने जा रहा था तो अतः यदि वह चाहता था तो उससे दो बातें कर सकता था या कुछ दान ले सकता था (२१) । तदनुसार चन्द शाह के समक्ष बुलाया गया (२२) । सुल्तान ने पूछा कि योगी-विरागी को उससे मिलने की क्या आवश्यकता हो सकती थी (२३) ? चन्द ने कहा कि योग-भोग की बातें वह दूसरे दिन उसे बतावेगा (२५) । इस समय उसे एक अन्य बात कहनी थी—बचपन में पृथ्वीराज उसकी सब साधें पूरी करता था (२६) और उसी समय उसने कहा था कि बिना फल के बाण से ही वह सात घड़ियालों को सिगिनी लेकर वेध सकता था (२७), उसी को देखने की इच्छा शेष थी, इसलिए उसके पास वह आया था; वह (शहाबुद्दीन) चाहता तो उसकी यह साधें पूरी हो सकती थी (२८), और फिर इस साध के पूरी होते ही वह (चन्द) वन चला जाता (२९) । शाह को इस पर विश्वास नहीं हुआ कि इस अवस्था में भी पृथ्वीराज यह कर सकता था (३०), फिर भी उसने चन्द को इसकी स्वीकृत दे दी (३१) । चन्द अब पृथ्वीराज के पास गया और आशीर्वाद देते हुए उसने उससे कहा, “तुमने चौलुक्य राज (भीम) पर अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया, जयचन्द के यज्ञ का विध्वंस किया, ... तुम साँभर नरेश, और सोमेश्वर के

पुत्र हो; क्या तुम्हें स्मरण है कि तुमने सात घड़ियालो को [एक] वाण से बंधने का मुझे वचन दिया था ?” चन्द का यह कथन सुनकर एक बार उसका व्यग्र देह मानो नवीन हो गया, किन्तु फिर [निराशा से] उसका सिर झुक गया (३३) । चन्द ने पुनः उसे उत्तेजना दी, और कहा कि शाह निकट ही बाई ओर पर सौ हाथ ऊपर सुन रहा था; इस समय मानो सौ अवसर एक साथ नाच उठे थे और उसे निर्भय होकर अर्थ-साधन करना चाहिए था (३५) । बड़ी कठिनाई से किसी प्रकार राजा को तैयार कर चन्द शाह के पास गया, और उसने कहा कि राजा को कठिनाई से उसने तैयार किया था किन्तु केवल शाह का फर्मान पाने पर वह वाण पकड़ने पर तैयार हुआ था (४०) । तातार खों ने कहा कि राजा से कुछ हो नहीं सकता था इसलिए यह उसका बहाना मात्र था, शाह तो तीन फर्मान देने को तैयार था (४१) । चन्द प्रसन्न होकर राजा के पास लौट गया (४२) । राजा ने कहा इस कार्य के लिए उसे दो वाण चाहिए थे (४४) । चन्द ने समझा-बुझा कर उसे एक वाण से ही यह कार्य करने को तैयार किया (४५) । उसने कहा कि जो कुछ उसने कैवास के साथ किया था अब उसका फल उसे मिलने वाला था (४६) । राजा प्रस्तुत हुआ (४७) । शाह ने फर्मान दिए, तीसरा फर्मान होते ही शाह वाण से विद्ध हुआ भूमि पर पड़ा था; राजा का भी अन्त हुआ (४८) । देवताओं ने इस घटना पर आकाश से पुष्प-वर्षा की (४९) । इस प्रकार नव रस से सरस और अपूर्व इस ‘रासो’ की चन्द ने रचना की (४९) ।

७. पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता

पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता पर विचार करने की दृष्टि से नीचे उसके प्रस्तुत संस्करण में आए हुए ऐतिहासिक व्यक्तियों और घटनाओं से सम्बन्धित उल्लेखों का विवेचन किया जा रहा है।

(१) कर्ण . डाहल के कर्ण के विषय में कहा गया है कि जयचन्द ने उसे दो बार बन्दी किया था :

करण डाहल दु बार बांध्यउ । (५.१३)

डाहल का सब से अधिक प्रतापी शासक लक्ष्मी कर्ण कर्ण नाम से प्रसिद्ध था। इसका समय सं० १०९७-११२७ के बीच पड़ता है।^१ सं० ११३० से इसके उत्तराधिकारी और पुत्र यशः कर्ण देव के अभिलेख मिलने लगते हैं।^२ प्रकट है कि लक्ष्मी कर्ण जयचन्द का समकालीन नहीं था। किन्तु उसके दो उत्तराधिकारियों—यशः कर्ण और गय कर्ण—के नामों में भी 'कर्ण' लगा रहा है, इसलिए असम्भव नहीं कि कवि का आशय यहाँ डाहल के जयचन्द के समकालीन कलचुरि शासक से हो; वैसे जयचन्द के समकालीन डाहल के कलचुरि शासक क्रमशः नरसिंह (सं० १२१२-१२२७), जयसिंह (सं० १२३२), तथा विजयसिंह (सं० १२३७-१२५२) थे।^३

(२) कैवासः प्रस्तुत संस्करण का एक पूरा सर्ग तृतीय कैवास की कथा से सम्बन्धित है। कहा गया है कि वह पृथ्वीराज का प्रधान अमात्य था, और और पृथ्वीराज की एक करनाटी दासी पर अनुरक्त था और पृथ्वीराज की अनुपस्थिति में यह उस दासी के कक्ष में पहुँच गया था; पृथ्वीराज को ज्यों ही इस बात की सूचना मिली, उसने आकर कैवास और दासी का वध किया। रचना के अन्त में भी एक प्रसंग में (१२.४६) इस वध के सबन्ध में संकेत हुआ है।

जयानक रचित 'पृथ्वीराज विजय' में मन्त्री कदम्ब वास का उल्लेख है, और कहा गया है कि उसी के संरक्षण में पृथ्वीराज बालक से युवा हुआ था।^४ 'विजय' की प्राप्ति प्रति इसके कुछ ही आगे खण्डित है, इसलिए उससे इसके आगे का वृत्त नहीं प्राप्त होता है। जिनपाल उपाध्याय (सं० १२६२) द्वारा लिखित 'खरतर गच्छ पट्टावली' में मडलेश्वर कैवास का उल्लेख है, और कहा गया है कि जैनाचार्य के शास्त्रार्थ में पृथ्वीराज के विश्राम काल में इसने मन्व्यस्थता का कार्य

^१ हेमचन्द्र रे : डाइनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ़ नॉर्दर्न इण्डिया, भाग २, पृ० ८१८ ।

^२ वही, पृ० ७८९ ।

^३ वही, पृ० ८१८ ।

^४ पृथ्वीराज विजय, सपा० गौरीशंकर होराचन्द ओझा, सर्ग ९, श्लो० ४४ ।

किया था।^१ कैवास के पृथ्वीराज के प्रधान अमात्य होने और पृथ्वीराज के द्वारा उसके निकाले जाने की एक कथा 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह' के पृथ्वीराज-प्रबन्ध में है, यद्यपि उसके निष्कासन का कारण भिन्न बताया गया है, और यह कहा गया है कि वह इसी कारण शहाबुद्दीन से मिल गया था, और पृथ्वीराज की पराजय का वह कारण बना।^२ इस प्रबन्ध के सम्बन्ध में अन्यत्र विस्तार से विचार किया गया है।^३ फलतः कैवास का पृथ्वीराज का अमात्य होना ऐतिहासिक प्रतीत होता है। किन्तु 'रासो' में उसके वध की जो कथा आती है, वह भी ऐतिहासिक है या नहीं, यह कहना कठिन है।

(३) गोविंदराज : यह पृथ्वीराज के मुख्य सामंतों में से है और जयचन्द के राजसूय यज्ञ का निमन्त्रण लेकर जब उसके दूत पृथ्वीराज के पास आते हैं, यह उसके निमन्त्रण का उत्तर देता है। वहाँ यह अपने को [कुरु] जाङ्गल का निवसी बताता है (२.३)। यह पृथ्वीराज-जयचन्द के युद्ध में मारा जाता है (७.२०)। मिर्जाजुस्सिराज की 'तबकात-ए-नासिरी' के अनुसार, जिसकी रचना सं० १३०६ में हुई थी, गोविंदराज—जो कि दिल्ली का था—शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में मारा गया था।^४ यदि 'रासो' का गोविंदराज वही हो जो 'तबकात-ए-नासिरी' का है, तो दोनों उल्लेखों में अन्तर स्पष्ट है, यद्यपि उसका पृथ्वीराज का सामंत होना ऐतिहासिक प्रमाणित होगा।

(४) जयचन्द . रचना के सर्ग २ और ४ से ८ पृथ्वीराज तथा जयचन्द के स्वर्ण के हैं, जो कि जयचन्द के राजसूय यज्ञ तथा उसकी पुत्री सयोगिता के कारण हुआ है। एक छन्द (५.१३) में जयचन्द के सम्बन्ध में कहा गया है कि उसने सिंधु नदी पार कर ग्लेच्छों को भगा दिया था, हिमालय के राज्यों को तहस-नहस किया था और आठ सुल्तानों को वश में किया था, तिरहुत में थाना स्थापित किया था, दक्षिण में सेतुबन्ध तक गया था, डाहल के कर्ण को दो बार बन्दी किया था, सोलंकी (चौलुक्य) सिद्धराज को कई बार खदेड़ा था, तिल्लिंग और गोवाल कुण्ड को तोड़ा था, गुण्डके जीरा को बाँध कर छोड़ा था, वैरागर के हीरे लिए थे, गजनी के शहाब शाह के सेवक निसुरतखों को बन्दी किया था [लङ्का जाकर] विभीषण से भिड़ गया था, खुरासान के अमीर को बन्दी किया था, विजयपाल का पुत्र जयचन्द इस प्रकार का था। इतिहास जयचन्द्र को विजयपाल का नहीं, विजयचन्द्र का पुत्र बताता है।^५ इस प्रकार दोनों नामों में कुछ अन्तर है। जयचन्द्र पृथ्वीराज का समकालीन था, यह इतिहास से प्रमाणित है। अपने पिता विजयचन्द्र के साथ यह दिग्विजय में सम्मिलित था, यह सं० १२२४ के कमौली के दान-पत्र से प्रमाणित है जो वास्तव में विजयचन्द्र तथा युवराज जयचन्द्र के द्वारा प्रदत्त है और जिसमें 'भुवन दलन हेला' शब्दावली आती है।^६ किन्तु ऊपर उल्लिखित समस्त राजाओं को उसने परास्त किया था, इसके प्रमाण नहीं मिलते हैं, लगता है कि कुछ नाम केवल सूची-वृद्धि के लिए सम्मिलित किए गए हैं; लङ्का के विभीषण से जा भिड़ना तो एक अनर्गल

^१ अगर चन्द नाहटा : पृथ्वीराज की सभा में जेनाचार्यों के शास्त्रार्थ, हिन्दुस्तानी, भाग १०, पृ० ७१।

^२ पुरातन प्रबन्ध संग्रह, संपा० मुनि जिनविजय, पृ० ८३-८७।

^३ दे० इसी भूमिका में अन्यत्र 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह और पृथ्वीराज रासो' शीर्षक।

^४ इलियट और हाउसन, भाग २, पृ० २९६-२९७।

^५ भांडारकर : इन्सक्रिप्शन्स ऑव नॉर्दर्न इंडिया, अभिलेख सं० ३३३, ३३६, ३३७, ३४०, ३४५।

^६ इपिग्राफिया इंडिका, भाग ४, पृ० ११७।

कल्पना मात्र है। जिन राजाओं के सम्बन्ध के ऐतिहासिक उल्लेख प्राप्त हैं, उनके साथ हुए उसके संघर्ष पर उन राजाओं के नामों से अलग विचार किया गया है।

‘रासो’ में आए हुए पृथ्वीराज-जयचन्द संघर्ष तथा पृथ्वीराज-सयोगिता विवाह के सम्बन्ध में इतिहास मौन है। गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का कथन है कि जयचन्द एक बहुत दानी राजा था, जो उसके दिए हुए अनेक दान-पत्रों से प्रकट है, किंतु किसी दान-पत्र में भी राजसूय यज्ञ का उल्लेख नहीं है; नयचन्द्र सूरि ने स० १४६० के लगभग लिखते हुए ‘हम्मीर महाकाव्य’ तथा ‘रंभा मंजरी नाटिका’ में, पृथ्वीराज-जयचन्द के संघर्ष अथवा जयचन्द के राजसूय यज्ञ और सयोगिता-स्वयंवर का कोई उल्लेख नहीं किया है, यद्यपि ‘हम्मीर महाकाव्य’ में उसने पृथ्वीराज और शहा-बुद्दीन के संघर्ष की कथा विस्तार से दी है, और ‘रंभा मंजरी’ में, जिसका नायक जयचन्द है, जयचन्द की प्रशंसा में पन्ने रंगते हुए भी उसके द्वारा किए हुए किसी राजसूय यज्ञ अथवा सयोगिता-स्वयंवर का उल्लेख नहीं किया है, इसलिए ‘रासो’ के ये विवरण अनैतिहासिक हैं। किंतु जहाँ तक दानपत्रों की बात है, ‘रासो’ के अनुसार पृथ्वीराज ने आरम्भ में ही उक्त राजसूय यज्ञ का विध्वंस किया था, इसलिए तत्सम्बन्धी दानपत्रों का न मिलना आश्चर्यजनक नहीं है। ‘हम्मीर महाकाव्य’ और ‘रंभा मंजरी’ को, जो स० १४६० के लगभग लिखे गए, और काव्य को दृष्टि से लिखे गए, ऐतिहासिक महत्व प्रदान करना उचित नहीं है। ‘हम्मीर महाकाव्य’ के पृथ्वीराज-चरित्र में पृथ्वीराज और परमर्दि देव के भी युद्ध का भी उल्लेख नहीं है, जो उस युग की एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना थी, जिसके स्मारक में स० १२३९ का मदनपुर का शिलालेख है।^२ ‘रंभा मंजरी’ में तो जयचन्द को मल्लदेव का पुत्र कहा गया है, और कहा गया है कि वह लाट के मदन वर्मा की पुत्री रंभा से विवाह करता है।^३ जयचन्द्र का पिता विजयचन्द्र था, न कि कोई मल्लदेव, यह इतिहास प्रसिद्ध है; मदनवर्मा एक ही ज्ञात है जो चेदि का चंदेल शासक था। लाट से, जो गुर्जर देश का एक प्रान्त रहा है, इसका कोई सम्बन्ध नहीं था। इस मदन वर्मा का अन्तिम अभिलेख स० १२१९ का एक दानपत्र है, और इसके उत्तराधिकारी परमर्दि देव का प्रथम अभिलेख स० १२३३ का प्राप्त है।^४ इसलिए यह जयचन्द का समकालीन अवश्य था। फलतः जयचन्द्र के उक्त दोनों काव्यों के आधार पर उपर्युक्त प्रकार का कोई परिणाम निकालना उचित नहीं माना जा सकता है।

दूसरी ओर, डॉ० दशरथ शर्मा का कथन है कि पृथ्वीराज से जयचन्द की कन्या के विवाह की घटना इतिहास-सम्मत ज्ञात होती है, क्योंकि ‘पृथ्वीराज विजय’ में पृथ्वीराज के तिलोत्तमा के चित्र पर मुग्ध होने और उसके विरह में व्यथित होने की जो कथा है, वह बाद में किसी राजकुमारी से होने वाले उसके विवाह की भूमिका मात्र है, और यह राजकुमारी गङ्गा-तटवर्ती किसी स्थान की थी, यह उक्त काव्य के अन्तिम प्राप्त सर्ग के ७८ वें त्रुटित श्लोक के ‘नाक नदी तट स्थितः’ शब्दावली से ज्ञात होता है, इसलिए यदि ‘विजय’ में इस कथा के अनन्तर ‘रासो’ में वर्णित पृथ्वीराज-सयोगिता अथवा ‘सुर्जन चरित’ में वर्णित पृथ्वीराज-कातिमती के विवाह की बात आई हो तो आश्चर्य न होगा।^१ जैसा अन्यत्र दिखाया गया है, ‘सुर्जन चरित महाकाव्य’ में वर्णित पृथ्वीराज का समस्त चरित्र ‘रासो’ के प्रस्तुत संस्करण का अनुसरण करता है, इसलिए उसमें आई हुई कातिमती

^१ पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, स० १९८६, पृ० ५८।

^२ भांडारकर : इस्क्रिप्शंस ऑव नॉर्दर्न इंडिया, पृ० ५८।

^३ पृ० ६० उपाध्ये : नयचन्द्र ऐंड हिज रंभा मंजरी, जर्नल ऑव यू० पी० हिस्टॉरिकल सोसाइटी, ९, पृ० ९०।

^४ भांडारकर : इस्क्रिप्शंस ऑव नॉर्दर्न इंडिया, पृ० ४७, ४९।

के साथ पृथ्वीराज के विवाह की कथा 'रासो' में वर्णित पृथ्वीराज-संयोगिता विवाह के सम्बन्ध में स्वतंत्र साक्ष्य के रूप में नहीं रक्खी जा सकती है। ('पृथ्वीराज विजय' में आई हुई 'नाक नदी तट स्थितः' शब्दावली ही उसके पक्ष में रक्खी जा सकती है, किंतु वह जयचन्द की कन्या के सम्बन्ध की ही रही होगी, यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन है।)

समसामयिक मुसलमान इतिहास-लेखकों मिनहान उस्सिराज तथा हसन निज़ामी के अनुसार^१ शहाबुद्दीन के दोनो आक्रमणों के समय—मुसलमान इतिहास लेखक पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन में दो ही युद्ध हुए मानते हैं—पृथ्वीराज अजमेर का शासक था; दिल्ली का शासक गोविंदराय या खाडेराय था जो उसकी ओर से दोनो युद्धों में लड़ता था। जयचन्द और पृथ्वीराज के संघर्ष की कथा 'रासो' के अनुसार शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के इन दोनों संघर्षों के बीच में पड़ती है, जयचन्द के विरुद्ध अतः पृथ्वीराज ने दिल्ली से प्रस्थान किया था और जयचन्द-पुत्री संयोगिता को लेकर दिल्ली लौटा था, यह काल्पनिक लगता है।

(५) पृथ्वीराज : दिल्ली के शासक होने के पूर्व का पृथ्वीराज का चरित्र 'रासो' के प्रस्तुत संस्करण में अति संक्षेप में है। उसे एक ही छन्द में देते हुए कहा गया है कि उसका शैशव अजमेर में व्यतीत हुआ था, उसके जीवन के अनुरागपूर्ण वृत्त सौंभर में हुए थे, वह बहिला वन का निवासी था, और वह सोमेश्वर का पुत्र दिल्ली में भासित होने के लिए विधाता द्वारा निर्मित हुआ था (१.६)। बहिला वन के सम्बन्ध में निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है, किन्तु शेष उल्लेख इतिहास-सम्मत ही हैं।

कहा गया है कि उसने बलख के शासक को हराया था और गजनी के शाह शहाबुद्दीन को हराया था (२.७)। बलख के शासक को हराने की बात इतिहास-सम्मत नहीं प्रतीत होती है। गौरी को पराजित करने के सम्बन्ध में अलग विचार किया गया है। कहा गया है कि मुर (मरु) घरा को उसने विजित किया था (२.९), मंडोवर को तहस-नहस किया था (२.१७), मरुमंड [मरु स्थल] के मोरी राजा को दंडित किया था (२.१७), रथंभौर को आग की लपटों के समान जलाया था (२.१७) और कालिंजर को जलमग्न किया था (२.१७)। अन्यत्र कहा गया है कि उसने भीमभट्टी से पंगुर और यादवराज से रथंभौर की रक्षा की (८.४) थी। पृथ्वीराज अपने युग का एक अति पराक्रमी शासक था, और उसने अनेक लड़ाइयाँ लड़ी थीं, कालिंजर के चन्देल शासक परमर्दि पर उसकी विजय-गाथा मदनपुर के सं० १२३९ के शिलालेख में अंकित है। (असम्भव नहीं कि ये अन्य विजयें भी जिनका उल्लेख ऊपर हुआ है, उसको प्राप्त हुई हों, किन्तु यह भी असम्भव नहीं है कि कुछ नाम कल्पना से रख दिए गए हों; इस प्रकार के काव्यों में सूची-वृद्धि एक सामान्य बात रही है।)

(६) भीम चौलुक्य : 'रासो' में कहा गया है कि पृथ्वीराज ने युद्ध करके भीम की शक्ति को नष्ट किया (२.३, १२.३३); वह दूर के विश्वास में था, जब उसने मन्थ्री (कैवास) को भीम को बन्दी करने भेजा था (३.६); उसके सामन्तों ने ही भीमसेन को पराजित किया था (८.२) और भीमसेन से पृथ्वीराज ने जालौर की रक्षा की थी (८.४)।

गूर्जराधिपति भीम (सं० १२३५-१२९८)^२ पृथ्वीराज का समकालीन था, यह प्रमाणित है। 'पृथ्वीराज विजय' में शहाबुद्दीन के भीम पर किए गए आक्रमण की ओर संकेत करते हुए कदम्ब वास

^१ दे० इलियट और डाउसन : भाग २, पृ० २९५-२९७; तथा हेमचन्द्र रे : डाइनैस्टिक हिस्ट्री ऑफ नॉर्थवेस्ट इंडिया, पृ० १०८७-१०९३।

^२ हेमचन्द्र रे : डाइनैस्टिक हिस्ट्री ऑफ नॉर्थवेस्ट इंडिया, पृ० १०४८।

द्वारा कहलाया गया है कि “जैसे तिलोत्तमा के लिए हृद और उपहृद नष्ट हुये थे, वैसे ही मनोज्ञा लक्ष्मी के उद्देश्य से आपके शत्रु स्वयं नष्ट हो जायेंगे।”^१ प्राहादन के ‘पार्थ पराक्रम व्यायोग’ में भीम के सामन्त आबू के परमार घारावर्ष पर जागल-नरेश पृथ्वीराज के किए हुए एक असफल सौतिक प्रस्ताव (रात्रि कालीन आक्रमण) का उल्लेख हुआ है।^२ जिनपाल उपाध्याय (सं० १२६२) द्वारा रचित ‘खरतर गच्छ पट्टावली’ में पृथ्वीराज और भीम चौलुक्य के सेनापति जगदेव प्रतिहार के बीच कठिनाई से हो पाई एक संधि का उल्लेख हुआ है।^३ इस प्रकार भीम चौलुक्य और पृथ्वीराज में पारस्परिक वैमनस्य और छेड़ छाड़ के प्रमाण मिलते हैं। जालोर की रक्षा के लिए भी दोनों में कोई युद्ध हुआ था यह शत नही है।

(७) शहाबुद्दीन गोरी : शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज के बीच हुए केवल एक ही—अन्तिम युद्ध—का वर्णन ‘रासो’ के प्रस्तुत संस्करण में मिलता है, इसके पूर्व के युद्धों के सम्बन्ध में कहा गया है—कि पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन को तीन बार बंधा था (२.३), अन्यत्र यह कि उसने शहाबुद्दीन को सरवर में परास्त किया था (८.४)। एक स्थान पर आता है कि भीम को जब मन्त्री (कैवास) ने बन्दी किया था, पृथ्वीराज दूर विश्वास में था (३.६); असम्भव नहीं कि ‘सरवर’ से तात्पर्य इसी विश्वास से हो अन्यत्र यह कि उसने गजनी कोनष्ट किया (२.१७)। एक स्थान पर शहाबुद्दीन से कहलाया गया है :

जिहि हउं गहि छंडियउ वार सत हउं अप्पउ कर । (११.७)

जिसके कम से कम दो अर्थ सम्भव हैं : एक तो यह कि ‘जिसने मुझे सात बार पकड़ा और छोड़ा और जिसे मैंने कर अर्पित किया’, दूसरा यह कि ‘जिसने मुझे पकड़ कर छोड़ा और जिसे मैंने सात बार कर अर्पित किया।’ मुसलमान इतिहासकारों के अनुसार शहाबुद्दीन के दो ही युद्ध पृथ्वीराज से हुए थे : एक जिसमें शहाबुद्दीन पराजित हुआ था, और दूसरा जिसमें पृथ्वीराज पराजित हुआ और मारा गया था।^४ ‘रासो’ में सरवर और विश्वास का उल्लेख हुआ है। मुसलमान इतिहासकारों ने स्थान का नाम ‘तबर हिन्द’ : या ‘सर हिन्द’ दिया है। सरवर (सर हिंद ?) के युद्ध के अतिरिक्त अन्तिम युद्ध से पूर्व के युद्धों का कोई विवरण ‘रासो’ में नहीं मिलता है, और न तत्कालीन इतिहास में मिलता है; वे काल्पनिक ही प्रतीत होते हैं।

‘रासो’ के प्रस्तुत संस्करण में पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन के बीच हुए केवल अन्तिम युद्ध का वर्णन हुआ है। कहा गया है कि शहाबुद्दीन ने पावस में आक्रमण किया था (११.६), युद्ध में पृथ्वीराज पराजित और बन्दी हुआ (११.१७), तदनंतर शहाबुद्दीन इसे गजनी ले गया (१२.१), दिल्ली का हय-गज-भाडार उसके पुत्र को सौंप दिया (१२.१) और कुछ समय बाद उसने पृथ्वीराज की आँखें निकलवा लीं (१२.१); यह सुनकर चन्द ने गजनी की राह पकड़ी (१२.१), उसने वहाँ जाकर शहाबुद्दीन से कहा कि पृथ्वीराज बिना फल के वाण से घड़ियालों को वेध सकता था, यह उसने उससे किसी समय कहा था, और अब चन्द तप के लिए जाना चाहता था, इसलिए इसके पूर्व उस साध को पूरी कर लेना चाहता था, जो कि केवल शाह की अनुमति से ही संभव था (१८.२७-२८); शाह को भी इस वौतुक को देखने की उत्सुकता हुई अतः उसने इसके आयोजन की अनुमति दे दी (१२.३१); चन्द ने पृथ्वीराज को भी इस योजना के लिए तैयार कर लिया, और शाह से उसने

१ ‘पृथ्वीराज विजय’, सर्ग ११, प्रारम्भ।

२ ‘पार्थ पराक्रम व्यायोग’, गायकवाड़ औरिण्टल सीरीज, पृ० ३।

३ अगरचन्द नाहटा : जगदेव और पृथ्वीराज की संधि, हिन्दुस्तानी, भाग १०, पृ० ९८।

४ मिनहाजुस्तिराज : ‘तबकात-ए-नासिरी’, इलियट और डाउसन, भाग २, पृ० २९५-२९७ तथा हेमचन्द्र रे, डाइनैस्टिक हिस्ट्री ऑफ नॉर्डन इण्डिया, पृ० १०८८-१०९३।

कहा कि उसके तीन मौखिक फरमान प्राप्त करके ही पृथ्वीराज लक्ष्य वेध करने के लिए तैयार हुआ था (१२.४०), अतः शाह ने इसे भी स्वीकार कर लिया, और जब उसने तीसरा फरमान सुनाया, पृथ्वीराज का वाण उसको वेधता हुआ निकल गया (१२.४८); तदनन्तर राजा का भी मरण हुआ (१२.४८)। प्रायः समसामयिक सुसलमान इतिहासकारों मिनहाजुस्सिराज तथा हसन निजामी के अनुसार^१ पृथ्वीराज अजमेर में शासन करता था, दिल्ली का शासक गोविन्द राय या खाडे राय था जो पृथ्वीराज की ओर से शहाबुद्दीन से दोनों युद्धों में लड़ा था; हसन निजामी के अनुसार शहाबुद्दीन ने दूसरे आक्रमण के पूर्व अजमेर एक दूत भेजा था और कहलाया था कि वह इस्लाम और उसकी अधीनता स्वीकार करे। चौहान के रोषपूर्ण उत्तर के अनन्तर उसने उस पर आक्रमण किया था। हसन निजामी ने यह भी कहा है इस आक्रमण के समय पृथ्वीराज ने कहला भेजा था कि यदि सुल्तान अपने राज्य की सीमाओं में चला जावे तो वह उसका पीछा नहीं करेगा; इस पर सुल्तान ने उत्तर भेजा कि वह अपने बड़े भाई के आदेश से कठिनाइयाँ झेलता यहाँ आया था, और उससे आदेश लेकर ही लौट सकता था जिसके लिए समय अपेक्षित था; पृथ्वीराज ने यह मान लिया तो रात में सारी तैयारी करके दूसरे दिन प्रातः काल ही जब राजपूत अपने नित्य कर्म में लगे हुए थे सुल्तान ने आक्रमण कर दिया; पृथ्वीराज की सेना इसके लिए तैयार नहीं थी और शीघ्र ही वह पराजित हुआ इसके अनन्तर अजमेर का शासक पृथ्वीराज का पुत्र बनाया गया। दोनों के अनुसार पराजित होने पर पृथ्वीराज भागता हुआ सरस्वती के निकट पकड़ा गया और मार डाला गया। प्रकट है कि 'रासो' की उपर्युक्त कथा काल्पनिक ही है।

(८) सलष और जैत परमार: 'रासो' के अनुसार सलष आबू-नरेश था और जयचन्द से हुए पृथ्वीराज के युद्ध में पृथ्वीराज की ओर से लड़ता हुआ मारा गया (८.३०)। इसी प्रकार उसमें कहा गया है कि उसका पुत्र जैत [जो उसके अनन्तर आबू-नरेश था], शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में पृथ्वीराज की ओर से युद्ध करता हुआ मारा गया (११.१२)।

(किन्तु पृथ्वीराज के समय में घारावर्ष परमार आबू-नरेश था^२, जो कि भीम का सामन्त था, जैसा उसके अभिलेख^३ तथा प्राह्लादन के 'पार्थ पराक्रम व्यायोग'^४ से प्रमाणित है। सलष और जैत के आबू-नरेश होने का उल्लेख इतिहास-विरुद्ध है।)

उपर्युक्त के अतिरिक्त 'रासो' के प्रस्तुत संस्करण में पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध के प्रसंगों में पृथ्वीराज पक्ष के अनेक योद्धाओं के नाम आते हैं; ये हैं: कन्ह (८.१८-२२), नागोर-निवासी नरसिंह दाहिमा (७.२०), चन्द्र पुण्डीर (७.२०), सारंग सोलंकी (७.२०, ७.३१), पालहनदेव कूरंभ (७.२०), गुर्जर का माल चन्देल (७.२७), यट्टा का भूपाल भान भट्टो (७.२७), सामला शूर (७.२७), अच्छ परमार (७.२७), धार का निरवान वीर (७.२७), जगली राय (७.२८), मडली-राय मालहन हंस (७.३१), जावला (७.३१), जाल्ह (७.३१), बाघ बागरी (७.३१), बलीराम यादव (७.३१), गाजी (७.३१), पाधरी राय (७.३१), परिहार राणा (७.३१), साँखुला (७.३१), सींह (७.३१), सिहली राय (७.३१), भोज (७.३१), मल्ल (७.३१), भोआल राय (७.३१), हरसिंह चहुआन (८.११), कनक बड़ गूजर (८.१४), निडर राठौर (८.१६), अल्हन (८.२३-२४)।

इलियट और डाउसन, भाग २, पृ० २९५-२९७ तथा हेमचन्द रे: डाइनैस्टिक हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, भाग २, पृ० १०८८-१०९३।

^२ हेमचन्द रे: डाइनैस्टिक हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, भाग २, पृ० ९२९।

^३ भांडारकर: इस्क्रिप्शन्स ऑफ़ नार्दन इंडिया, अभिलेख संख्या ४५४ तथा ४८८।

^४ 'पार्थ पराक्रम व्यायोग', गायकवाड ओटोपेंटल सीरीज, पृ० ३।

बाहर सुत अचलेस (८.२५), भग्गुल पति विंझ चालुक्क (८.२७-२९), लघन बघेल (८.३१) और पाहार तोमर (८.३३) ।

इसी प्रकार शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के युद्ध में शहाबुद्दीन के तीन योद्धाओं के नाम आते हैं : खुरासानखॉ (११.७; ११.१४), तातारखॉ (११.७) तथा रुस्तमखॉ (११.७); शहाबुद्दीन-बध के प्रसंग में भी दो नाम आते हैं : तातारखॉ (१२.२०, १२.४१) तथा निसुरतखॉ (१२.१३, १२.१९) ।

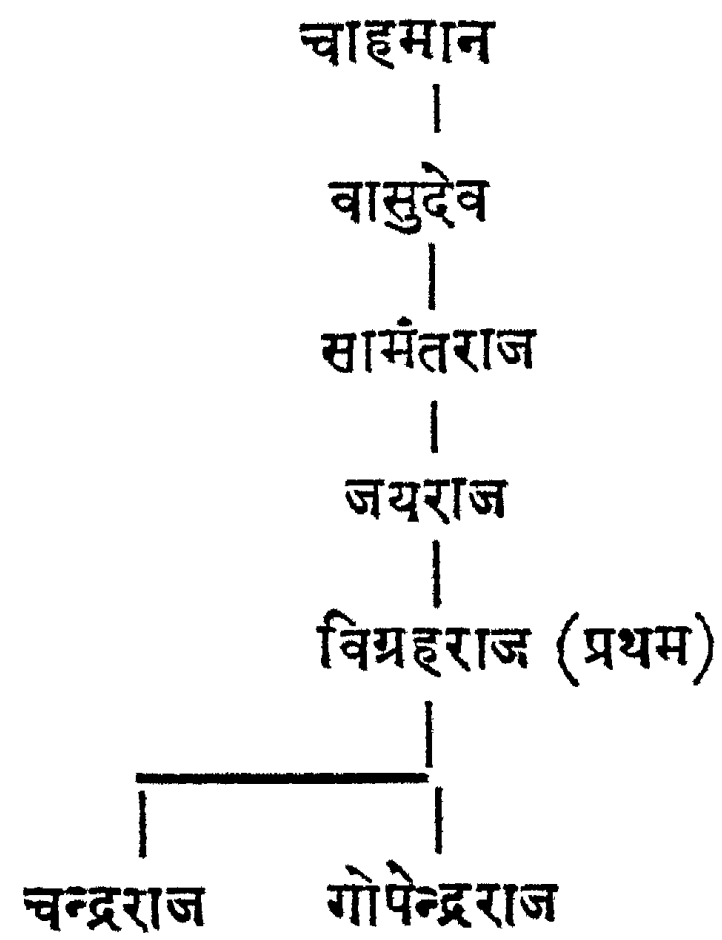
इन नामों के सम्बन्ध में ऐतिहासिक साक्ष्य अप्राप्त है । युद्ध-विषयक ऐतिहासिक काव्यों में इस प्रकार की नामावली प्रायः कल्पित होती और वैसी ही कदाचित् यह भी है ।

परिणामतः हम देखते हैं कि 'रासो' संपूर्ण रूप से ऐतिहासिक रचना नहीं है, उसके अनेक उल्लेख या विस्तार अवश्य ही कल्पना-प्रसूत हैं, और इतिहास से समर्थित नहीं हैं । फिर भी अपने व्यापक रूप में वह एक ऐसे जिम्मेदार कवि की रचना प्रतीत है जिसने हिंदू सूत्रों से प्राप्त सामग्री का यथेष्ट सावधानी के साथ उपयोग किया, और कथा-नायक के समय के बाद की किसी घटना अथवा किसी व्यक्ति का घाल-मेल कथा में नहीं किया । 'रासो' के कवि की इन दोनों विशेषताओं पर विचार करने पर शायद यह होता है कि निस्संदेह वह पृथ्वीराज का समकालीन तो नहीं था, किन्तु बहुत बाद का भी नहीं था, और उसने रचना यद्यपि काव्य की दृष्टि से अधिक और इतिहास की दृष्टि से कम की, फिर भी सुलभ सामग्री का उपयोग जिम्मेदारी और कुशलता के साथ किया है ।

यह कहना अनावश्यक होगा कि हमें संपूर्ण रचना को प्रायः उसी दृष्टि से देखना चाहिए जिस दृष्टि से हम मध्य युग में लिखे गए एक अच्छे से अच्छे ऐतिहासिक कथा-काव्य को देख सकते हैं, और इस दृष्टि से देखने पर 'पृथ्वीराज रासो' प्रस्तुत रूप में, मेरी अपनी राय में, एक सफल रचना मानी जा सकती है ।

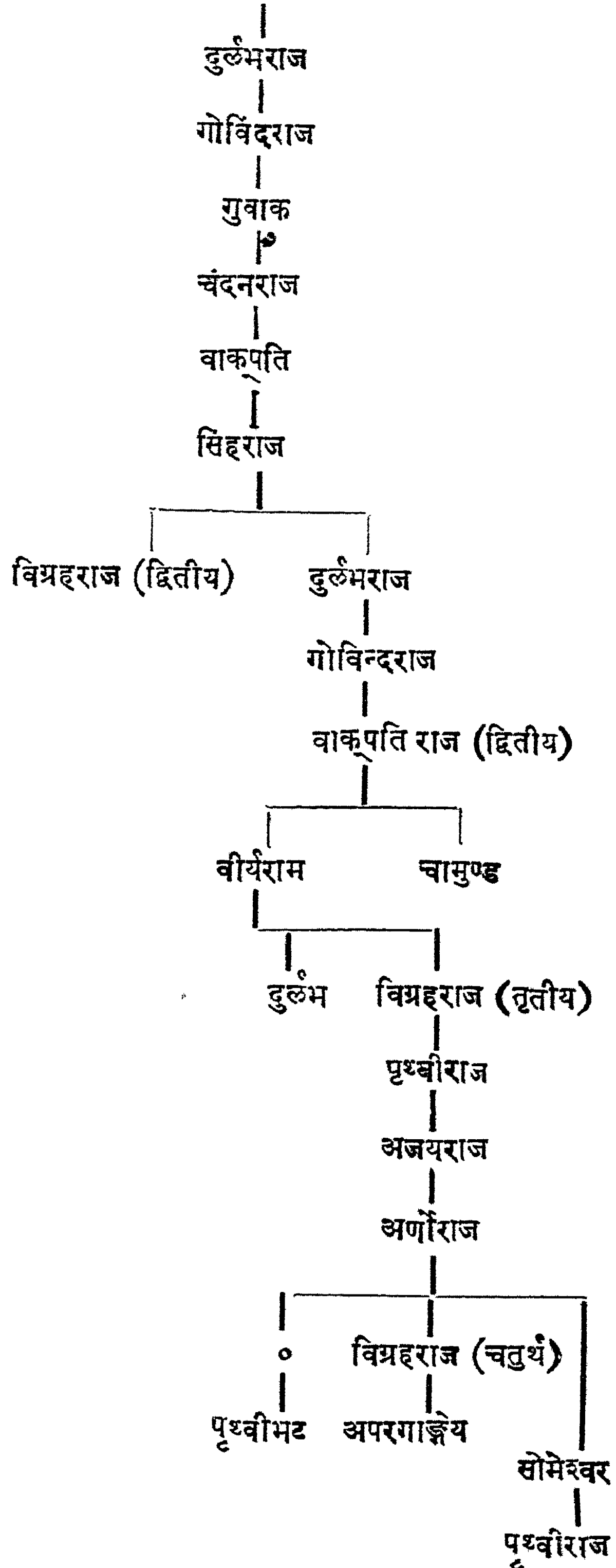
८. 'पृथ्वीराज विजय' और 'पृथ्वीराज रासो'

सन् १८७५ ई० में प्रसिद्ध विद्वान् डा० ब्रूह्लर को संस्कृत ग्रन्थों की खोज में काश्मीर में 'पृथ्वीराज विजय' की एक अति खंडित प्रति प्राप्त हुई थी,^१ जिसने चन्द के 'पृथ्वीराज रासो' की ऐतिहासिक प्रतिष्ठा को एकदम समाप्त कर दिया। तब से उसकी ऐतिहासिक प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करने के प्रयास होते आ रहे हैं, किन्तु यह मानना पड़ेगा कि वे असफल ही रहे हैं। और, 'रासो' के प्राप्त रूपों में से किसी के आधार पर भी उसकी ऐतिहासिक प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करना कभी भी सम्भव होगा, यह आशा नहीं करनी चाहिए क्योंकि 'रासो' के प्राप्त सभी रूपों में चित्य अनैतिहासिक तत्व मिलते हैं। कुछ विद्वानों ने उसकी इस त्रुटि का समाधान यह बता कर करना चाहा है कि वह काव्य है, इतिहास नहीं है। किन्तु 'विजय' भी तो काव्य है, फिर भी उसमें 'रासो' जैसे अनैतिहासिक तत्व नहीं मिलते हैं। उदाहरण के लिए 'पृथ्वीराज विजय'^२ के प्रथम छः सर्गों में पृथ्वीराज के पूर्व-पुरुषों की कथा देते हुए उसके पूर्व-पुरुषों की जो वशावली दी गई है वह इस प्रकार ठहरती है :—



'डिटेल्ड रिपोर्ट आन् ए टूअर इन सर्च, आन् संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स मेड इन काश्मीर, राजपूताना ऐंड सेंट्रल इंडिया'—लेखक डॉ० ब्रूह्लर, पृ० ६३।

'पृथ्वीराज विजय महाकाव्य'—संपा० गौरीशंकर होराचन्द ओझा, सं० १९५७।



‘रासो’ के इतिहास-प्रेमी आलोचकों को दिखाई पड़ा कि ‘रासो’ (नागरी प्रचारिणी सभा संस्करण) में प्राप्त पृथ्वीराज के पूर्व-पुरुषों की वंशावली इससे बहुत भिन्न और अनैतिहासिक है। अब ‘पृथ्वीराज रासो’ के बड़े-छोटे कई रूप मिलते हैं और उनमें तदनुसार वंशावली भी बड़ी-छोटी

मिलती है। कहा गया है कि 'रासो' के इन विभिन्न रूपों में से जो सबसे छोटा है, वही उसका मूल रूप होगा, और उत्तरोत्तर जो बड़े रूप हैं वे अधिकाधिक प्रक्षिप्त होंगे। इसलिए इस सबसे छोटे रूप को जिसे 'लघुतम रूपान्तर' कहा गया है सम्पादित करके प्रकाशित भी किया जा रहा है।^१ उसके अनुसार पृथ्वीराज के पूर्व-पुरुषों की वंशावली निम्नलिखित है :—

मानिककराय

• |

वीसल

|

सारंग

|

आनल

|

जयसिंहदेव

|

आनन्द

|

सोमेश्वर

|

पृथ्वीराज

चहुवान वंश की पृथ्वीराज तक की वंशावली के लिए सबसे प्रामाणिक साक्ष्य तीन शिलालेखों से प्राप्त है : एक है सं० १०३० वि० का हरस का,^२ दूसरा है सं० १२२६ का वीजोल्यो का^३ और तीसरा है सं० १२३९ का मदनपुर का^४। 'पृथ्वीराज विजय' में जो वंशावली आती है, वह लगभग वही है जो इन शिलालेखों में आई है, किन्तु 'पृथ्वीराजरासो' में आई हुई वंशावली इस वंशावली से बहुत भिन्न है। 'रासो' के सबसे छोटे रूप की वंशावली के सात नामों में से तीन ही 'पृथ्वीराज विजय' और इन शिलालेखों की वंशावली में आते हैं— वीसल, आनल और सोमेश्वर; शेष उसमें नहीं मिलते हैं। कहना नहीं होगा कि 'रासो' के बड़े पाठों में जो अतिरिक्त नाम आते हैं, वे भी इसी प्रकार भिन्न ठहरते हैं।

यह सब होते हुए भी जो बात आश्चर्य में डालने वाली है—फिर भी जो अभी तक 'पृथ्वीराज रासो' के पारखियों की दृष्टि में नहीं आई है—वह यह है कि 'रासो' के लेखक को 'पृथ्वीराज विजय' का यथेष्ट ज्ञान था, और उसने 'विजय' की रचना का अपने काव्य में उल्लेख भी किया है। उसका यह उल्लेख कैवास-वध-प्रकरण में हुआ है।^५ पूरा प्रसंग 'रासो' में इस प्रकार है।

कैवास पृथ्वीराज का मन्त्री है—जैसा वह (कदंबवास) 'पृथ्वीराज विजय' में भी है। वह पृथ्वीराज की कर्नाट देश की एक दासी पर आसक्त हो जाता है, और एक दिन जब पृथ्वीराज आखेट के लिए बाहर जाता है, वह अवसर पा कर रात्रि के प्रारंभिक प्रहर में उस दासी के कक्ष में

^१ पृथ्वीराज रासो का लघुतम रूपान्तर—संपा० नरोत्तमदास स्वामी, 'राजस्थान भारती' भाग ४, अंक १, पृ० १२-३५ तथा परवर्ती कुछ अंक।

^२ देखिए भांडारकर : 'इंस्क्रिप्शन्स ऑफ् नादन' इंडिया', अभिलेख संख्या ८२।

^३ वही " संख्या ३४४।

^४ वही " संख्या ३९८।

^५ दे० प्रस्तुत संस्करण का सर्ग ३।

घुस जाता है। पट्टरानी को जब इस बात की सूचना मिलती है, वह पृथ्वीराज को बुलवा भेजती है। पृथ्वीराज रात्रि में ही आकर कैवास का वव करता है, और 'उसकी भूमि में गढ़वा कर पुनः आखेट पर वह चला जाता है। सबेरा होने पर वह राजधानी लौटता है। यहीं पर 'विजय' के सम्बन्ध का निम्नलिखित कथन आता है :—

मझ्झ पहर पुच्छइ तिहि पडिय ।
कहि कवि 'विजय' साह जिह दडिय ।
सकल सूर बोलवि सभ मंडिय ।
आसिष जाय दीध तब चंडिय ॥

अर्थात्—प्रहर के मध्य में पंडित से वह (पृथ्वीराज) पूछता (कहता) है, “हे कवि, तुम [मेरी] विजय (का काव्य) कहो, जिस प्रकार मैंने [युद्ध में] शाह (शहाबुद्दीन) को दण्डित किया है।” [तदनन्तर] समस्त शूरों को बुलवा कर उसने सभा मँडो (की) [जिसमें] जाकर तब चण्डी-भक्त [चन्द] ने आशीर्वाद दिया।

इस उल्लेख में 'विजय' के सम्बन्ध की कुछ बातें अत्यन्त प्रकट हैं :—

१. 'विजय' की रचना पृथ्वीराज के आदेश से हुई।
२. 'विजय' का कर्त्ता कोई 'पण्डित' कवि था।
३. 'विजय' में शाह (शहाबुद्दीन) पर प्राप्त पृथ्वीराज की विजय की कथा कही गई।
४. यह 'पण्डित' कवि चन्द नहीं था, चन्द तो इस प्रसंग के बाद आता है। और 'रासो' भर में चन्द 'भट्ट' है, 'पण्डित' नहीं है।

'पृथ्वीराज विजय' की जो प्रति प्राप्त हुई है, वह पृथ्वीराज के राज्य-ग्रहण-प्रकरण के कुछ ही पीछे खण्डित हो जाती है। उसके प्राप्त अन्तिम अंश में पृथ्वीराज की सभा में काश्मीर के कवि पण्डित जयानक का आगमन होता है^२ और इसकी शैली काश्मीरी काव्यों की शैली का अनुसरण करती है, इसलिए विद्वानों ने अनुमान किया है कि 'विजय' का कवि यही पण्डित जयानक है।^३ इस काव्य के प्रारम्भ में ही कहा गया है कि पृथ्वीराज ने ['विजय' के] कवि का आदर किया था, और उसी ने यह काव्य लिखने के लिए उसे प्रेरित किया था,^४ इसलिए और इसलिए भी कि इस ग्रन्थ से कुछ उदाहरण स० १२०० ई० के लगभग होने वाले जयार्थ के द्वारा लिखित राजानक स्यक के 'अलंकार सर्वस्व' की 'अलंकार विमर्षिणी' नाम की टीका तथा उसी के द्वारा लिखित 'अलंकारोदाहरण' में दिए गए हैं अनुमान किया गया है कि इसकी रचना पृथ्वीराज के जीवन-काल में (सन् ११९३ में उसका देहान्त हुआ) हुई होगी।^५ इसमें ११९१ ई० में प्राप्त शहाबुद्दीन पर पृथ्वीराज के विजय की कथा कही गई थी, यह भी अनुमान किया गया है।^६ उपर्युक्त प्रथम तथा तृतीय अनुमानों की पुष्टि 'रासो' की ऊपर उद्धृत पक्तियों से भली भाँति हो जाती है। द्वितीय अनुमान बहुत युक्त-संगत नहीं लगता है, और 'रासो' से उसकी पुष्टि भी पूर्ण रूप से नहीं होती है। 'रासो' के प्राप्त समस्त रूपों के अनुसार शहाबुद्दीन पर पृथ्वीराज के विजय की घटना कैवास-वध के पूर्व

^१ प्रस्तुत संस्करण, सर्ग ३, छन्द १९।

^२ 'पृथ्वीराज विजय', सर्ग १२, छन्द ६३ तथा ६८।

^३ वही, प्रस्तावना, पृ० २।

^४ वही, सर्ग १, छन्द ३१-३५।

^५ 'पृथ्वीराज विजय', प्रस्तावना, पृ० २।

^६ वही, पृ० २।

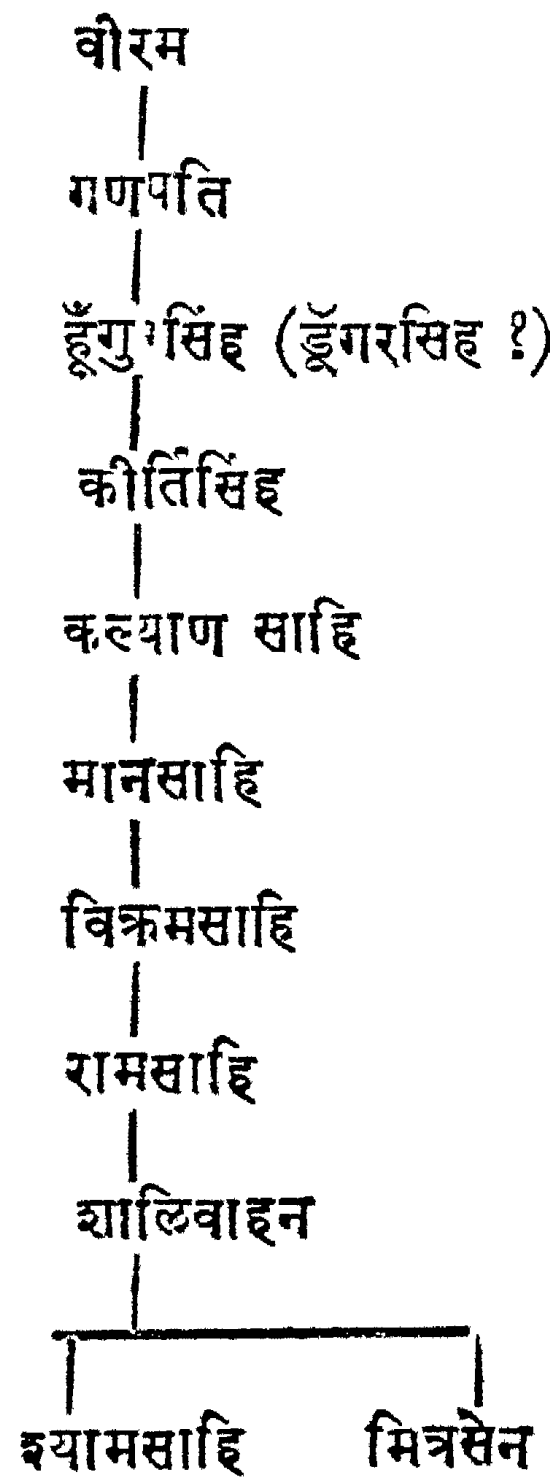
आती है, तदनन्तर कैवास-वध आता है, फिर संयोगिता के लिए पृथ्वीराज और जयचन्द का संघर्ष आता है, जिसमें सफलता पृथ्वीराज को प्राप्त होती है, और अन्त में पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन का वह युद्ध आता है जिसमें पृथ्वीराज पराजित और बन्दी होता है। 'रासो' के अनुसार 'विजय' 'पण्डित' को काव्य कहने का आदेश कवास-वध प्रकरण में होता है, और यह असम्भव नहीं है कि उसने 'विजय' काव्य पृथ्वीराज के जीवन-काल में अर्थात् पृथ्वीराज-शहाबुद्दीन के अन्तिम युद्ध के पूर्व समाप्त कर लिया हो। किन्तु 'रासो' में पुनः किसी प्रसंग में पण्डित से 'विजय' काव्य सुनने की या उसकी रचना के लिए उसे पुरस्कृत किए जाने का उल्लेख नहीं होता है, इसलिए 'रासो' के आधार पर यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि उसके कवि 'पण्डित' ने उसे उक्त अन्तिम युद्ध के पूर्व पूर्ण भी कर लिया था।

'पृथ्वीराज रासो' से 'पृथ्वीराज विजय' के सम्बन्ध में जो यह निश्चित प्रकाश पड़ता है, वह अत्यन्त महत्व का है, और इस प्रकाश के लिए हमें 'रासो' के कवि का अत्यन्त कृतज्ञ होना चाहिए। प्रकट है कि जब 'रासो' के कवि को 'विजय' का ऐसा निकट का परिचय था, तो 'रासो' के मूल रूप में हमें—अन्य अनैतिहासिक उल्लेखों को यदि छोड़ दिया जाय—ऐसे उल्लेख न मिलने चाहिए 'विजय' के विरुद्ध जाते हैं। और यह बतलाना अनावश्यक होगा कि 'रासो' के प्रस्तुत पाठ-निर्धारण के अनन्तर इस परिणाम की पुष्टि पूर्ण रूप से हुई है।

'विजय' के उपर्युक्त उल्लेख से यह भी प्रमाणित होता है कि 'रासो' अपने मूल रूप में निरा 'भट्ट भण्त' नहीं था, जैसा प्रायः समझा जाता है; वह एक ऐसे जिम्मेदार कवि की कृति था, जो भले ही कथा-नायक का समसामयिक न रहा हो, पर जिसने उसकी जीवन-गाथा से परिचित होने का यत्न किया था, और जो उसकी सबसे अधिक पूर्ण और प्रामाणिक जीवन-कथा 'पृथ्वीराज-विजय' से भली भाँति परिचित था। ✓

१. 'हम्मीर महाकाव्य' और 'पृथ्वीराज रासो'

हम्मीर महाकाव्य', जैसा रचना के अन्त में कहा गया है,^१ जयसिंह सूरि के शिष्य नयचन्द्र सूरि द्वारा तोमर नरेश वीरम के समय में रचा गया था। तोमर वीरम की निश्चित तिथि शत नहीं है, किन्तु सं० १६८८ का रोहतास (जिला-झेलम, पंजाब) का एक शिलालेख तोमर मित्रसेन के समय का है, जिसमें उसके पूर्व-पुरुषों की नवी पीढ़ी में गोपाचल (ग्वालियर) नरेश तोमर वीरम आते हैं।^२ यह वंशावली इस प्रकार है :—



✓^१ 'हम्मीर महाकाव्य', सपा० नीलकण्ठ जनार्दन कीर्तने, मुद्रक एजुकेशन सोसाइटी प्रेस, बम्बई, पृ० १३३-१३५।

✗^२ देखिए भांडारकर : 'इस्क्रिप्शन्स ऑफ् नार्दन इंडिया', अभिलेख संख्या ९८८ तथा 'जनरल ऑफ् एशियाटिक सोसाइटी ऑफ् बंगाल' भाग ८, पृ० ६९५।

इन नौ पीढ़ियों के लिए, यदि प्रत्येक पीढ़ी के लिए २५ वर्ष के हिसाब से, २२५ वर्ष मान लिये जावे तो तोमर वीरम का समय सं० १४६३ के लगभग होना चाहिये। इसका समथन गोपाचल नरेश हूँगर सिंह के समय के एक अभिलेख से भी होता है जो स० १५१० का है और अलवर (राजपूताना) की एक मूर्ति पर अङ्कित है।^१ अतः प्रकट है कि 'हम्मीर महाकाव्य' का रचना-काल सं० १४६० के आस-पास होना चाहिए।

इस रचना में हम्मीर के पूर्व-पुरुष होने के नाते पृथ्वीराज तथा उनके भी पूर्व-पुरुषों का चरित अङ्कित हुआ है। पृथ्वीराज के पूर्व-पुरुषों की वंशावली इसमें इस प्रकार मिलती है^२ :—

चंद्रमान
|
वासुदेव
|
नरदेव
|
चंद्रराज
|
जयपाल चक्री
|
जयराज
|
सामन्त सिंह
|
गुयाक
|
नन्दन
|
वप्रराज
|
हरिराज
|
सिहराज
|
भीम
|
विग्रहराज
|
गङ्गदेव
|
वल्लभराज
|
राम
|

भांडारकर : 'इंस्क्रिप्शन्स ऑफ् नॉर्डर्न इंडिया', अभिलेख सं० ८१२।

'हम्मीर महाकाव्य', उपर्युक्त, संपादकीय वक्तव्य, पृ० १४-१५।

चासुण्डराज
|
दुर्लभराज
|
दुग्गल
|
विश्वल
|
पृथ्वीराज (प्रथम)
|
अल्हण
|
अनल
|
जगद्देव
|
विशाल
|
जयपाल
|
गङ्गपाल
|
सोमेश्वर
|
पृथ्वीराज (द्वितीय)

पृथ्वीराज के इन पूर्व-पुरुषों के वृत्त अति संक्षेप में देकर कवि ने पृथ्वीराज का वृत्त कुछ विस्तार पूर्वक कि है, जो संक्षेप में इस प्रकार है :—

गङ्गदेव के देहान्त के अनन्तर सोमेश्वर राजा हुआ। उसका विवाह कर्पूर देवी से हुआ, जिसने एक पुत्र को जन्म दिया। इस पुत्र का नाम पृथ्वीराज रखा गया। दिन-दिन शिशु बढ़ता रहा और एक पुष्ट तथा स्वस्थ बालक हो गया। जब उसने पढ़ने और शस्त्रास्त्र के प्रयोग में क्षमता प्राप्त कर ली, सोमेश्वर ने उसे सिंहासिनासीन कर दिया और स्वयं वन में जाकर योग द्वारा शरीर त्याग कर दिया। जिस प्रकार पूर्वाचल दिनकर की किरणों से प्रकाश पा कर चमक उठता है, उसी प्रकार पृथ्वीराज अपने पिता से राज्य प्राप्त कर चमका।

इसी समय शहाबुद्दीन पृथ्वीराज को वश में करने का यत्न कर रहा था। पश्चिम के राजागण ने उसके द्वारा अस्त होकर गाविंदराज के पुत्र चन्द्रराज को अपना प्रमुख बनाया और मिलकर वे पृथ्वीराज के पास आए। पृथ्वीराज ने उनके मुखों पर विषाद की रेखाएँ देख कर उनके विषाद का कारण पूछा। चन्द्रराज ने कहा कि एक मुसलमान, जिसका नाम शहाबुद्दीन था, राजागण के विनाश के लिए उदित हो गया था, जिसने उनके अधिकतर नगरों को लूट लिया और जला दिया था, उनकी स्त्रियों को भ्रष्ट कर दिया था, और उन्हें सर्वथा एक दयनीय दशा को पहुँचा दिया था। उसने सुल्तान में अपनी राजधानी स्थापित कर ली थी। वे उसी नृशंस शत्रु और उसके अत्याचारों से पीड़ित होकर पृथ्वीराज की शरण में आए थे।

पृथ्वीराज ने जब शहाबुद्दीन के इन दुष्कृत्यों को सुना, वह रोष से भर गया; भावावेश के कारण उसका हाथ खतः उसकी मूर्छों पर पहुँच गया और उसने आगत राजागण से कहा कि वह इस शहाबुद्दीन को घुटने टेके, हाथ जोड़े और घेरों में वेड़ियाँ पहने हुए उनसे क्षमा-याचना के लिये विवश कर देगा, नहीं तो वह सच्चा चौहान नहीं।

कुछ दिनों बाद एक अच्छी सेना लेकर पृथ्वीराज मुल्तान पर आक्रमण करने के लिए चल पड़ा और कई पड़ावों के बाद शत्रु के देश में प्रविष्ट हो गया। जब शहाबुद्दीन को राजा के पहुँचने का समाचार मिला, वह भी उसका सामना करने के लिए बढ़ा। उस युद्ध में जो इस समय हुआ, पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन को बंदो किया, और इस प्रकार उसने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की; उसने इस अभिमानी मुसलमान को विवश किया कि वह इन राजागण से, जिन्हें उसने बरबाद कर दिया था, घुटने टेककर क्षमा-याचना करे। प्रतिज्ञा पूरी हो जाने पर, पृथ्वीराज ने शरणागत राजाओं को बहु-मूल्य उपहार देकर विदा किया और शहाबुद्दीन को भी उसी प्रकार उपहार देकर उसने मुल्तान जाने की अनुमति दी।

शहाबुद्दीन इस प्रकार सद्ब्यवहार प्राप्त करके भी प्राप्त पराजय के कारण अत्यधिक लज्जित हुआ। इसके बाद सात बार वह अपनी पराजय का प्रतिशोध लेने के लिए पृथ्वीराज पर चढ़ आया, और प्रत्येक बार पूर्ववर्ती बार की अपेक्षा अधिक तैयारी करके आया, किन्तु वह उस हिन्दू राजा के द्वारा हर बार पूर्ण रूप से पराजित हुआ।

जब शहाबुद्दीन ने देखा कि वह पृथ्वीराज को शास्त्रास्त्र के बल अथवा नीति-बल से परास्त नहीं कर सकता था, उसने घटैक देश के शासक को अपनी बार-बार की पराजय का विवरण लिख भेजा और उससे सहायता की याचना की। यह उसको उस राजा के घोड़ों तथा सैनिकों के रूप में प्राप्त हुई। इस प्रकार से शक्ति-संवर्द्धन करके शहाबुद्दीन ने द्रुत गति से दिल्ली की ओर प्रस्थान किया और उसे शीघ्र ही ले लिया। वहाँ के निवासी इससे भयभीत हो उठे और वे चारों दिशाओं में भागने लगे। पृथ्वीराज को यह देख कर बहुत आश्चर्य हुआ और उसने कहा कि यह शहाबुद्दीन एक नटखट बालक के समान आचरण कर रहा था, क्योंकि वैसे ही कई बार उसके द्वारा पराजित हो चुका था और हर बार अपनी राजधानी को जाने के लिए सर्वथा निरापद छोड़ दिया जाता था। पृथ्वीराज शत्रु पर प्राप्त अपनी पूर्ववर्ती विजयों के कारण भूला हुआ केवल उस छोटी-सी सेना को इकट्ठी कर जो उसके आस-पास थी आक्रमण-कर्त्ता का सामना करने के लिए आगे बढ़ा।

राजा की सेना यद्यपि छोटी ही थी, उसके आगमन का समाचार पाकर शहाबुद्दीन अत्यधिक भयग्रस्त हुआ, क्योंकि उसे अपनी पूर्ववर्ती पराजयों और दुर्गतियों का स्मरण अत्यन्त स्पष्ट था। रात में, इसलिए, उसने अपने कुछ विश्वस्त भूत्यों को राजा के शिविर में भेजा, और उनके द्वारा प्रचुर धन देने का प्रलोभन देकर उसने राजा के अश्वाधानिक और वाद्यको को मिला लिया। उसने तब बहुत से मुसलमानों को गुप्त रूप में शत्रु के शिविर में भेज दिया, जो इसमें बहुत तड़के, जबकि चन्द्रमा पश्चिम के क्षितिज पर पहुँच ही पाया था, और सूर्य ने पूर्व को ज्योतिर्मय करना प्रारम्भ ही किया था प्रविष्ट हो गए।

यह देखकर राजा के शिविर में बड़ा हल्ला हुआ और गड़बड़ी मच गई। जबकि राजा के भूत आक्रान्ताओं का सामना करने को सन्नद्ध हो रहे थे, राजा का विश्वासघाती अश्वाधानिक, जैसा कि उससे उसके मिलाने वालों ने कह रक्खा था, राजा के उस घोड़े को जीन कस कर लाया जो नाट्यारंभ कहलाता था; वाद्यक भी जो अपना अवसर देख रहे थे, जब राजा घोड़े पर सवार हो गया, अपने वाद्यों पर वे वे राग बजाने लगे जो राजा को प्रिय थे। इस पर राजा का घोड़ा

वाद्यकों के संगीत पर ताल देता हुआ गर्वोन्मत्त होकर नाचने लगा। राजा का चित्त कुछ देर के लिए इस खेल में लगा रहा, और उस क्षण के सर्वाधिक महत्व के कार्य को वह भूल गया।

मुसलमानों ने राजा की असावधानी का लाभ उठाया और जोरों का आक्रमण किया। इस दशा में राजपूत कुछ न कर सके। पृथ्वीराज यह देखकर घोड़े से उतर पड़ा। हाथ में तलवार लेकर उसने अनेक मुसलमानों को काट डाला। इसी बीच एक मुसलमान ने घोड़े से पीछे की ओर से उसके गले में धनुष डाल कर राजा को गिरा दिया, जब कि अन्य मुसलमानों ने उसे बन्दी कर लिया। इसी समय से बन्दी राजा ने भोजन और विश्राम छोड़ दिया।

शहाबुद्दीन का सामना करने के लिए निकलने के पूर्व पृथ्वीराज ने उदयराज को आदेश दे रक्खा था कि वह उसके पीछे आकर शत्रु पर आक्रमण करे। उदयराज रणक्षेत्र में लगभग उस समय पहुँचा जब मुसलमान राजा को बन्दी करने में सफल हो चुके थे। शहाबुद्दीन उस समय उदयराज से युद्ध करने में हार की आशंका करके बन्दी राजा को साथ लिए नगर के भीतर चला गया।

जब उदयराज ने पृथ्वीराज के बन्दी होने का समाचार सुना, उसका हृदय अत्यधिक पीड़ित हो उठा। राजा को अपने भाग्य के सहारे छोड़ कर वह लौटना नहीं चाहता था, क्योंकि यह करना उसके निर्मल यश के लिए उसके गौड़ देश में कलंक माना जाता। इसलिए उसने शत्रु के नगर (योगिनीपुर—दिल्ली) के चारों ओर घेरा डाल कर उसके फाटक पर युद्ध करता एक मास तक डटा रहा।

इस घेरे के बीच एक दिन शहाबुद्दीन का एक भृत्य उसके पास गया और उससे कहने लगा कि उसे एक बार उस पृथ्वीराज को मुक्त करना चाहिए था जिसने उसे अनेक बार बन्दी किया था और आदरपूर्वक मुक्त किया था। शहाबुद्दीन इस भले मानस की बात से प्रसन्न नहीं हुआ और उसके बोला कि उसके जैसे परामर्शदाता ही राज्यों के पतन के कारण होते हैं। तब क्रुद्ध शहाबुद्दीन ने आज्ञा दी कि पृथ्वीराज को दुर्ग के भीतर ले जाया जावे। जब यह आदेश दिया गया, वीरों ने लज्जा से अपनी गर्दने नीची कर ली, और धर्मनिष्ठों ने आँखों में आते हुए आँसुओं को रोकने में अपने को असमर्थ पाकर नेत्रों को आकाश को ऊपर उठा लिया। पृथ्वीराज इसके कुछ दिनों बाद देह त्याग कर स्वर्ग-वासी हुआ।

जब उदयराज ने अपने मित्र के देहान्त की बात सुनी, उसने सोचा कि अब उसके लिए सर्वश्रेष्ठ स्थान वही था जहाँ उसका मित्र जा चुका था। उसने इसलिए अपने समस्त अनुचरों को एकत्र किया और उनको लेकर घमासान युद्ध करते हुए अपनी समस्त सेना के साथ वहाँ गिरा और अपने तथा उनके लिए स्वर्ग का शाश्वत सुख प्राप्त किया।

‘हम्मीर महाकाव्य’ की इस समस्त कथा का आधार क्या है, यह उसके लेखक ने नहीं कहा है। यह तो प्रकट ही है कि ‘पृथ्वीराज रासो’ का कोई भी रूप इसका आधार नहीं है, क्योंकि न इसमें दी हुई उपर्युक्त वंशावली उसमें मिलती है और न इसमें दी हुई पृथ्वीराज की उपर्युक्त कथा ही। इसकी वंशावली प्रायः ‘पृथ्वीराज विजय’ तथा शिला-लेखों में आई हुई वंशावली का अनुसरण करती है, केवल कुछ नाम इसमें अधिक हैं।^१ इसकी कथा पूर्णतः किसी शांत ग्रन्थ की कथा से नहीं मिलती है, केवल पृथ्वीराज के अन्त की जो कथा ‘पुरातन प्रबन्ध संग्रह’ के पृथ्वीराज-प्रबन्ध^२ में दी हुई है वह इस ग्रन्थ की तत्संबन्धी कथा से कुछ मिलती है। दोनों में शहाबुद्दीन पराजित होने के

१ दे० इसी भूमिका में अन्यत्र आया हुआ ‘पृथ्वीराज विजय और पृथ्वीराज रासो’ शीर्षक।

२ दे० इसी भूमिका में अन्यत्र आया हुआ ‘पुरातन प्रबन्ध संग्रह और पृथ्वीराज रासो’ शीर्षक।

अनन्तर बन्दी हुआ और पृथ्वीराज के द्वारा मुक्त किया गया है—सुसलमान इतिहास-लेखक मिन-हाजुस्सिराज के अनुसार उसकी सेना युद्ध-स्थल छोड़कर भाग गई थी और वह भी अपने एक गुलाम के द्वारा युद्ध-स्थल से दूर हटा लिया गया था, बन्दी नहीं हुआ था,^१ दोनों में शहाबुद्दीन के सात बार असफल आक्रमण करने की बात आती है—मिनहाजुस्सिराज के अनुसार शहाबुद्दीन ने केवल एक असफल आक्रमण किया था।^२ दोनों में नाट्यारंभाद्व पर सवार होने के कारण राजा का पराभव हुआ है, यद्यपि 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के पृथ्वीराज-प्रबन्ध में उस पर सवार कराने का षड्यन्त्र कदम्बवास के द्वारा किया गया लगता है और इस ग्रन्थ में वह शहाबुद्दीन के भृत्यों द्वारा पृथ्वीराज के अश्वाधानिक और वाद्यकों को मिलाकर किया गया है। इसी प्रकार पृथ्वीराज को मुक्त किए जाने के विषय में शहाबुद्दीन से दोनों रचनाओं में कहा गया है, यद्यपि 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के पृथ्वीराज प्रबन्ध में यह स्वयं पृथ्वीराज से कहलाया गया है जब कि इस रचना में किसी अन्य के द्वारा। फलतः आशिक रूप में दोनों रचनाओं में साम्य प्रकट है।

अन्यत्र हम देखते हैं कि 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' का पृथ्वीराज-प्रबन्ध निस्संदेह 'पृथ्वीराज रासो' के बाद की रचना है—उसमें 'रासो' के दो छन्द उद्धृत हैं जो कि किसी सुनियोजित प्रबन्ध-काव्य के अंश हैं और उसमें आई हुई कथा भी अंशतः इस ग्रन्थ की कथा का भी अनुसरण करती है।^३ यहाँ हम देखते हैं कि वह अंशतः इस ग्रन्थ की कथा का भी अनुसरण करती है। और 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के पृथ्वीराज-प्रबन्ध का इन दोनों की अपेक्षा निकटतर साम्य किसी प्राचीन रचना से ज्ञात नहीं है। इसलिए यह प्रतीत होता है कि उसकी रचना 'रासो' तथा 'हम्मीर महाकाव्य' अथवा उसके आधार-सूत्रों की सहायता से, जो अब उपलब्ध नहीं हैं, हुई। 'रासो' के विभिन्न पाठों में समान रूप से मिलने वाली कथा सादी है और लगभग उतनी ही सादी कथा 'हम्मीर महाकाव्य' की भी है जो हमें ऊपर मिली है, जब कि 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के पृथ्वीराज प्रबन्ध की कथा काफी पेचोली बनावट-बिनावट की है।^४ इसलिए यह किसी प्रकार संभव नहीं लगता है कि 'हम्मीर महाकाव्य' की कथा 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के पृथ्वीराज-प्रबन्ध की कथा के आधार पर लिखी गई हो। उसको लेकर निमित्त किए जाने पर उसके कैवास और चन्द का भी इसमें किसी न किसी मात्रा में आना प्रायः अवश्यभावी होता।

—:~:—

^१ दे० इलियट और हाडसन, भाग २, पृ० २९५-९७।

^२ दे० वही।

^३ दे० इसी भूमिका में अन्यत्र आया हुआ 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' और पृथ्वीराज रासो' शीर्षक।

^४ दे० वही।

१०. 'पुरातन प्रबन्धसंग्रह'

और

'पृथ्वीराज रासो'

इक्कीस वर्ष हुए प्रसिद्ध जैन विद्वान् श्री मुनि जिनविजय ने 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' नाम से कुछ जैन लेखकों द्वारा लिखे हुए कथा-प्रबन्धों का एक संग्रह प्रकाशित किया था,^१ जिन में अन्य प्रबन्धों के साथ 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' तथा 'जयचन्द प्रबन्ध' भी थे। इन प्रबन्धों के अन्तर्गत क्रमशः पृथ्वीराज तथा जयचन्द की कथाएँ दी हुई हैं, और साथ ही दो-दो छप्पय भी उद्धृत किए गए हैं जो चन्द बलिहिक (बरदाई) के रचे हुए कहे गए हैं। इन प्रबन्धों से चन्द बरदाई और एक अन्य कवि जल्ह के समय पर नया प्रकाश पड़ा है।^३ यहाँ हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि उसमें दिए हुए पृथ्वीराज-प्रबन्ध से चन्द की पृथ्वीराज सम्बन्धि रचना के स्वरूप पर क्या प्रकाश पड़ता है। यह प्रबन्ध-संग्रह संस्कृत में है, इसलिए नीचे इसके पृथ्वीराज-प्रबन्ध का एक हिन्दी भाषांतर दिया जा रहा है और साथ ही इसमें उद्धृत चन्द के छप्पयों का अर्थ भी पाद-टिप्पणी में यथास्थान प्रस्तुत किया जा रहा है। कोष्ठकों में आई हुई शब्दावली आशय के स्पष्टीकरण के लिये प्रस्तुत लेखक द्वारा दी जा रही है।

“शाकंभरी नगरी मे चाहमान वंश में श्री सोमेश्वर नामक राजा था। उसका पुत्र पृथ्वीराज था और उस (पृथ्वीराज) का भाई यशोराज था। उस (पृथ्वीराज) का शल्यहस्त श्रीमाल जाति का प्रताप सिंह था और मन्त्री कैवास था। इन दोनों में परस्पर विरोध था। वह राजा पृथ्वीराज योगिनीपुर (दिल्ली) में राज्य करता था। उसके धवलगृह के द्वार पर न्याय का घंटा था। वह महा बलवान और धनुर्धरो का धुरीण राजा था। यशोराज आशी (हाँसी) नगर में कुमारभुक्त (गुजारेदार) था। उस (पृथ्वीराज) का वाराणसी-अधिपति जयचन्द से वैर था।

एक बार गर्जनक (गजनी) के तुर्काधिपति (शहाबुद्दीन) ने पृथ्वीराज से वैर रखते हुए योगिनीपुर (दिल्ली) पर चढ़ाई की। पृथ्वीराज का अमात्य दाहिमा जाति का कैवास नाम का मन्त्रीश्वर था। उसकी अनुमति (मन्त्रणा) से राजा (पृथ्वीराज) दो लाख घोड़े तथा पाँच सौ हाथी लेकर (तुर्क सेना के) सामने चल पड़ा। तुर्क सेना से युद्ध हुआ। शक (तुर्क) सेना छिन्न-भिन्न हो गई। सुल्तान (शहाबुद्दीन) जीवित पकड़ा गया। सोने की बेड़ियों में खाला जाकर वह योगिनीपुर (दिल्ली) लाया गया और [पृथ्वीराज की ?] माता के कहने पर छोड़ दिया गया। इसी प्रकार वह सात बार बँध-बँध कर मुक्त हुआ और करद बना लिया गया।

^१ पुरातन प्रबन्ध संग्रह, प्रकाशक सिंघी जैन ज्ञानपीठ, कलकत्ता, १९३६ ई०।

^२ वही, पृ० ८६-८७ तथा ८८-९०।

^३ देखिए अन्यत्र 'पृथ्वीराज रासो का रचना काल' शीर्षक।

[शल्यहस्त] प्रतापसिंह कर वसूल करने गर्जनक (गजनी) जाया करता था । एक बार वह एक मसजिद देखने गया और वहाँ दरवेश आदि को उसने एक लक्ष स्वर्ण टकक (सिक्के) दिए । [इस पर] मन्त्री (कैवास) ने राजा से कहा, 'देव, गर्जनक (गजनी) के [कर के] धन से [राजकार्य का] निर्वाह होता है [और उसे] वह (प्रतापसिंह) इस प्रकार बर्बाद कर रहा है ।' राजा ने [प्रतापसिंह से] पूछा, तो उसने कहा 'देव की ग्रहविषमता जान कर ही उस समय मैंने [यह धन] धर्म में व्यय किया था । ज्योतिषियों से मैंने पूछा था, उन्होंने आप को कष्ट बताया था ।'

इधर शल्यहस्त (प्रताप सिंह) ने राजा के कानों में लगकर कहा, 'मन्त्री कैवास ही बार बार तुम्हें को लाता (बुलाता) है ।' राजा [यह सुनकर] रुष्ट हुआ, और इसलिए उसने मन्त्री (कैवास) को मारने की ठानी । इसके बाद रात्रि में सर्व अवसर (दरबार-ए-आम) के उठने पर मन्त्रीव (कैवास) जब प्रतोली (मुख्यद्वार) से निकल रहा था, राजा ने दीपक के अभिज्ञान से बाण छोड़ा । वह (बाण) मन्त्री (कैवास) की कक्ष (काँख) के नीचे से होता हुआ दीपधर के हाथ में जा लगा और [उसके] हाथ से दीपक गिर गया । कोलाहल होने पर राजा ने पूछा, 'अरे, यह (कोलाहल) क्या (क्यों) है ?' [लोगो ने कहा,] 'देव, घातक के द्वारा मन्त्री (कैवास) पर बाण छोड़ा गया था ।' [पृथ्वीराज ने पूछा,] 'अरे ! क्या मन्त्री [कैवास] जीवित है ?' [लोगों ने कहा,] 'देव, वे कुशल पूर्वक हैं ।' इसके बाद रात्रि के पिछले भाग में द्वारभट्ट चन्द बलिहिक (बरदाई) ने राजा [पृथ्वीराज] से कहा—

(१)

इक्कु वाण पहुबीसु जु पइं कैवासह मुक्कओ ।
उर भितरि खडहडिउ धीर कक्खंतरी चुक्कउ ।
बीअं करि संघीउं भंमइ सुमेसर नंदण ।
एहु सु गडि दाहिमओ खणइ खुदइ सइंभरि वणु ।
फुड छंडि न जाइ इहु लुब्भिउ वारइ पलकउ खल गुलह ।
नं जाणउं चंद बलिहउ किं न विछुटइ इह फलह ॥^१

(२)

अगहु मगहि दाहिमओ [राय ?] रिपु राय खयंकरु ।
कूहु मंत्र मम ठवओ एहु जंबूय मिलि जग्गरु ।
सह नामा सिक्खवउं जइ सिक्खवउं बुज्झई ।
जंपइ चंद बलिह मज्झ परमक्खर सुज्झइ ।
पहु पहुविराय सइंभरि धणी सयंभरि सउणइ संभरिसि ।
कइंवास बिभास विसठ विणु मच्छि बंधि बद्धओ मरिसि ॥^२

^१. अर्थात् 'हे पृथ्वीराज (पृथ्वीराज), तुमने जो एक (पहला) बाण कैवास को [लक्ष्य करके] छोड़ा, उस बाण ने [उसके] हृदय के भीतर खलवली कर दी और धीर (कैवास) की काँख के नीचे से घइ चुक [कर निकल] गया । हे सोमेश्वरनन्दन, तुमने दूसरा बाण हाथ में साँधा तो [उसके लगने से] वह अमि्त हो गया । इस प्रकार वह दाहिमा (कैवास) [पृथ्वी में] गड़कर साँभर के बन को खन खोद रहा है । इस लोभी और पलक्क (लंपट) से इस बार (समय) [पृथ्वी का] यह खल गुड (कवच) स्फुट रूप में नहीं छोड़ा जा रहा है । बलिहिक चन्द कहता है, न जाने क्यों यह (कैवास) [अपने कर्मों के] इस फल से नहीं छूट पा रहा है ।'

^२ अर्थात् '[हे राजा,] रिपुराज (शहाबुद्दीन) को क्षय (नष्ट) करने [कीं] सामर्थ्य रखने] वाला दाहिमा (कैवास) अगह (अग्राह्य, अथवा अगाध) मार्ग में [जा चुका] है [जिससे वह वापस नहीं बुलाया जा सकता है] । [तुम] कूट मन्त्र मत स्थित करो [क्योंकि] इस प्रकार [तुम्हारा शत्रु] जम्बू [-पति] से

राजा (पृथ्वीराज) ने भेद के भय से अन्वकार करा दिया। पहले प्रहरिक काल में सर्व अवसर (दरबार-ए-आम) में [जब] मंत्री (कैवास) आया, तो वह विसृजित (अलग) कर दिया गया। भट्ट (चंद बलिहिक) निषकसित कर दिया गया। उस (चंद) ने कहा, 'पुनः तुम्हारे कल्याणमत के धरे मैं [कुछ] नहीं कर रहा हूँ। मैं सिद्ध सारस्वत (सरस्वती-पुत्र) हूँ। तुम म्लेच्छ के द्वारा बंधकर शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होगे।' [ऐसा कहता हुआ] वह निकल कर वाराणसी चला गया। [वहाँ पर] राजा जयचन्द ने [उससे] कहा, 'मैंने तुम्हें बुलाया, किंतु तुम नहीं आए।' [चंद ने उत्तर दिया,] 'देव, तुम भी मृत्यु के निकट हो, इसलिए मैं यहाँ भी नहीं ठहरूँगा।' *

इधर कैवास के हटने पर नया मन्त्री हुआ। राजा ने [शल्यहस्त] प्रताप सिंह के भतीजे को अत्यधिक शक्तिसपन्न समझकर कारागार में डाल दिया। मन्त्री (कैवास) अलग होने पर भी [राजा को] छोड़ नहीं (चैन लेने नहीं दे) रहा था। वह सुल्तान (शहाबुद्दीन) से मिला। उसने शर्कों (तुर्कों) का कटक बुलाया। [तुर्कों को] आया सुनकर पृथ्वीराज सामने निकल आया। तीन लाख घोड़े, दस सहस्र हाथी, पंद्रह लाख मनुष्य, इस प्रकार.....। आशी (हाँसी) का अतिक्रमण करके [तुर्क] कटक आगे चला गया। इसके अनन्तर सुल्तान (शहाबुद्दीन) की मन्त्री (कैवास) से बातें हुई। उसने कहा, 'समय आने पर बुलाऊँगा।'।

अब पृथ्वीराज दस दिन तक सोया रहा, परन्तु कोई उसे जगाता नहीं था, [क्योंकि] जो उसे जगाता था, उसी को वह मार डालता था। इसी समय प्रधान (कैवास) के द्वारा सुल्तान बुलाया गया। राजा जागता नहीं था। धीरे धीरे कितने ही सामंत युद्ध करके मारे गए। कुछ भाग भी गए। सहस्र अश्वों.....के शेष रहने पर बहिन ने कहा, 'तुम अपने ही लोगों को मारते हो। तुम्हारे सोते सोते [तुम्हारा] सारा कटक मारा गया।' राजा [पृथ्वीराज] ने कहा, 'मैं मन्त्री (कैवास).....' उसके विनष्ट होने पर राजा (पृथ्वीराज) शार्ङ्गभरी [देवी] को स्मरण करके नाटारंभाश्व पर चढ़कर भागा। भाई (यशोराज) सहित वह पीछा करने वाले तुर्कों के हाथ में नहीं आया।

इधर आशी (हाँसी)..... देश में दो पर्वतिकाओं के बीच में भट्ट [चन्द] था। [वहाँ] राजा (पृथ्वीराज) को भेजकर जसराज (यशोराज) खड़ा हो गया। वह [सुल्तान के] कुछ कटक को [काट कर] खलिहान कर चुका था [जब] वह वहाँ मारा गया। सुल्तान साहबदीन (शहाबुद्दीन) ने उस मन्त्री (कैवास) को.....। '[राजा] पूँछ रहित सर्प के समान कर दिया गया है, [अपने] स्थान पर पहुँच जाने पर यह किस प्रकार पकड़ा जा सकेगा?' उस [मन्त्री] ने कहा, 'छलू से।' जैसे ही घोड़ा [नाटारंभाश्व] नाचने लगा, बाजा बजाया जाने लगा, ऐसा करने से घोड़ा [नाटारंभाश्व] नाचता ही रह गया, चला नहीं [और] राजा के गले में सिंगिनी डाल दी गई। सुल्तान ने राजा को पकड़ लिया। स्वर्ण की बेड़ियों में [उसे] डाल कर और योगिनीपुर (दिल्ली) लाकर [सुल्तान ने उससे] कहा, 'राजा, यदि तुम्हें जीवित छोड़ दूँ तो तुम क्या करोगे?' राजा (पृथ्वीराज) ने कहा, 'मैंने तुम्हें सात बार मुक्त किया है; क्या तुम मुझे एक बार भी नहीं छोड़ रहे हो?'।

मिलकर झगड़ रहा है। मैं तुम्हें सब परिणाम सिखा रहा हूँ कि तुम सीख कर भी जान सको। बलिह चन्द कहता है, मुझे परम अक्षर (ज्ञान) सूझ रहा है। हे प्रभु पृथ्वीराज, साँभरपति, साँभर के शकुन को सँभालो (स्मरण करो)। व्यास (बुद्धिमान) और वशिष्ठ (श्रेष्ठ) कइवास के बिना तुम [शत्रु द्वारा] मस्त्यबंध (मछली की भोंति जाल) में बंधकर मृत्यु को प्राप्त होगे।'।

अब जिसकी [आँखों की] पुतलियाँ निकाल ली गई थीं, ऐसे राजा (पृथ्वीराज) के सम्मुख सुल्तान (शहाबुद्दीन) सभा में बैठा । राजा (पृथ्वीराज) खेद कर रहा था । उससे प्रधान (कैवास) ने कहा, 'देव, क्या किया जाए ? दैव से ही यह [सकट] उत्पन्न हुआ है ।' राजा ने कहा, 'यदि मुझे सिंगिनी और वाण दे दो, तो इस (सुल्तान) को मार डालूँ ।' उसने कहा, 'ऐसा ही करिए ।' फिर उसने जाकर सुल्तान (शहाबुद्दीन) से, निवेदन किया, 'यहाँ पर तुमको नहीं बैठना चाहिए ।' [अतः] वहाँ अपने स्थान पर सुल्तान (शहाबुद्दीन) ने लोहे का एक पुतला बिठा दिया । राजा (पृथ्वीराज) को सिंगिनी दी गई । राजा (पृथ्वीराज) ने वाण छोड़ा [और] लोहे के पुतले के दो टुकड़े कर दिए । राजा (पृथ्वीराज) ने [तदनंतर] सिंगिनी त्याग दी । [उसने अपने मन में कहा,] मेरा काम तो हो नहीं पाया, [इसलिए अब] कोई और [मुझे ही] मारेगा ।' इसके बाद वह सुल्तान (शहाबुद्दीन) के द्वारा गढ़ में डाला जाकर ढेलों से मारा गया । सुल्तान (शहाबुद्दीन) ने कहा, 'इसके रुधिर का भूमि पर गिरना ही शुभ है ।' तदनुसार वह मारा गया । संवत् १२४६ में वह स्वर्ग सिधारा । योगिनीपुर (दिल्ली) लौट कर सुल्तान वही रह गया ।"

'पुरातन प्रबन्ध सग्रह' में उपर्युक्त प्रबन्ध के अतिरिक्त नीचे लिखा हुआ वृत्त भी दिया हुआ है—
 "योगिनीपुर (दिल्ली) में श्री प्रथमराज (पृथ्वीराज) के ऊपर अठारह लाख घोड़ों (घुडसवार सेना) के साथ बादशाह (शहाबुद्दीन) चढ़ आया । तब एकादशी का पारण करके राजा निद्रामिभूत हो सो गया था । तब महायुद्ध के [उपस्थित] होने पर (गढ़ का) प्राकार टूटकर गिर पड़ा । डर के मारे राजा को कोई जगाता नहीं था । कुब्जिका ने (उसका) अँगूठा दबाकर जगाया । तब उसको मारकर वह फिर सो गया । दूसरे दिन चार वीरों के द्वारा वह जगाया गया । स्वरूप (परिस्थिति) को जानने पर वह प्राकार के वातायन में बैठा । शत्रुओं ने खूब युद्ध किया । [वह पकड़ा गया] तब अत्यधिक व्याकुलता के साथ राजा (पृथ्वीराज) ने तारा देवी का स्मरण किया । वह प्रकट हुई । उसी के द्वारा बादशाह के समीप वह रात्रि में मुक्त किया गया । जब उसे मारने के लिए प्रहार किया गया, विष्णु के दर्शन हुए और वह छोड़ दिया गया, दूसरी बार [इसी प्रकार] जटाधारी (शिव) दिखाई पड़े वह छोड़ दिया गया, तीसरी बार ब्रह्मा दिखाई पड़े और [तारा] देवी ने कहा भी, इसलिए [वह] मारा नहीं गया । [अपने] वस्त्र, हथियार आदि लेकर वह चला आया । सबेरे बादशाह ने वह सब देखा और कहा, '[तुम] जैसे वस्त्र लाये हो, वैसे मारे [भी] जाओगे ।' बादशाह ने सारे वस्त्र माँगे । राजा ने कहा, 'जाने पर इसका सतगुना भेजूँगा ।' ऐसा होने पर सेना वापस चली गई । तदनन्तर राजा जीवग्राह के द्वारा पकड़ा गया । [उसके] बन्दी हो जाने पर उसको दिया गया भोजन कुत्ता खा गया, यह देखकर वह विषण्ण हुआ । [उसने मनमें कहा] 'अरे, यह क्या ? मेरी रसोई सात सौ साँड़नियों के द्वारा लाई जाती थी [और अब यह अवस्था हो गई !] तब तो हम लोग युद्ध के द्वारा मारे गए ।'

कहने की आवश्यकता नहीं कि यह अन्तिम वृत्त कथा-प्रबन्ध की दृष्टि से नहीं, तारा देवी और देवताओं के स्मरण का महत्व प्रतिपादित करने के लिए लिखा गया है । कथा-प्रबन्ध की दृष्टि से केवल पृथ्वीराज-प्रबन्ध ही विचारणीय है ।

पृथ्वीराज-प्रबन्ध के लेखक ने यह नहीं बताया है कि उसकी कथा उसे किस रचना से प्राप्त हुई है । अतः इस प्रसंग में पहला विचारणीय प्रश्न यह है कि उपर्युक्त पृथ्वीराज-प्रबन्ध की कथा का आधार क्या है । ऊपर दिए हुए 'पृथ्वीराज-प्रबन्ध' में तीन कथाएँ आती हैं—एक तो पृथ्वीराज पर किए हुए शहाबुद्दीन के असफल आक्रमण की है, दूसरी कैवास के मन्त्रिपद से हटाए जाने और द्वारभट्ट चन्द के निष्कासित किये जाने की है, और तीसरी पृथ्वीराज पर किए हुए शहाबुद्दीन के

अन्तिम आक्रमण और पृथ्वीराज के अन्त की है। अभी तक 'पृथ्वीराज रासो' के जितने पाठ प्राप्त हुए हैं उनमें भी ये तीन कथाएँ आती हैं—केवल एक पाठ में जो 'लघुतम' कहा जाता है शहाबुद्दीन के उक्त असफल आक्रमण की कथा नहीं आती है, फिर भी उसमें शहाबुद्दीन के एक असफल आक्रमण का उल्लेख स्पष्ट रूप से होता है। किन्तु दोनों का मिलान करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' तथा 'पृथ्वीराज रासो' में इन कथाओं की कल्पना, कुछ अति प्रचलित सामान्य तत्वों को छोड़कर, भिन्न भिन्न प्रकार से हुई है।

'पृथ्वीराज रासो' में उपर्युक्त तीनों कथाएँ इस प्रकार विवृत्त हैं:—

१—उसके तीन पाठों बृहत्, मध्यम तथा लघु में पहली कथा इस प्रकार कही गई है: गुर्जर का चौलुक्य नरेश भीम आबू के सलष पेंवार की कन्या इच्छिनी से विवाह करना चाहता था। उसने सलष के पास इस आशय का सदेश भेजा। सलष के अस्वीकार करने पर उसने उक्त आबूपति पर आक्रमण कर दिया। सलष ने जो पृथ्वीराज का सामन्त था, जब इस आक्रमण की सूचना पृथ्वीराज को भेजी, पृथ्वीराज सेना लेकर भीम का सामना करने के लिए चल पड़ा। तब तत्काल दूसरी ओर से शहाबुद्दीन ने भी आक्रमण कर दिया था, इसलिए उसने उक्त सेना के दो भाग कर एक को कैवास के नायकत्व में भीम का सामना करने के लिए भेज दिया और दूसरे को लेकर शहाबुद्दीन का सामना करने के लिये स्वयं बढ़ा। शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज की सेनाओं की मुठभेड़ सरवर में हुई, और भीम से कैवास का युद्ध सोझत्ती में हुआ। दोनों युद्धों में पृथ्वीराज को एक साथ विजय प्राप्त हुई, इससे पृथ्वीराज की आन बहुत बढ़ गई। 'लघुतम पाठ' में इन दो युद्धों के विवरण नहीं आते हैं, किन्तु उसमें भी ऐसे छन्द आते हैं जिनमें इन दोनों युद्धों में पृथ्वीराज को विजय प्राप्त होने का उल्लेख होता है।^१

२—'पृथ्वीराज रासो' के समस्त पाठों में दूसरी कथा इस प्रकार कही गई है: पृथ्वीराज की एक दासी थी जो कर्नाट देश की थी। उस पर पृथ्वीराज का मन्त्री कैवास अनुरक्त हो गया था। अवसर पाकर एक दिन जब पृथ्वीराज आखेट के लिए गया हुआ था, रात्रि में कैवास उस दासी के कक्ष में गया। पटरानी को एक दासी ने यह सूचना दी, तो उसने पृथ्वीराज को अविलम्ब आने के लिए सन्देश भेजा। सदेश पाकर पृथ्वीराज आ गया। उसने वाण का संवाण किया। पहला वाण तो कैवास की काँख के नीचे से होता हुआ निकल गया, किन्तु दूसरा वाण उसके प्राण लेकर निकला। पृथ्वीराज ने मृत कैवास को गढ़ा खुदवा कर गड़वा दिया। यह घटना रातोंरात इस प्रकार घटित हुई कि किसी को पता तक नहीं लगा। पृथ्वीराज पुनः आखेट के लिए लौट गया। दूसरे दिन आखेट से आकर उसने दरबार किया। उसमें उसने कैवास के सम्बन्ध में प्रश्न किया कि वह कहाँ था किन्तु किसी को भी यह श्रात नहीं था कि कैवास कहाँ था। पृथ्वीराज ने चन्द से भी यही प्रश्न किया। रात्रि में चन्द से सारी घटना सरस्वती ने बता दी थी, इसलिये चन्द ने कैवास के वध की समस्त घटना विवृत्त कर दी। दरबार समाप्त हुआ। इधर कैवास की स्त्री को जब यह श्रात हुआ, उसने चन्द से कैवास का शव दिलाने के लिये अनुरोध किया। चन्द ने पृथ्वीराज से कैवास का शव उसकी स्त्री को प्रदान किए जाने के लिये प्रार्थना की, तो पृथ्वीराज ने उसकी प्रार्थना इस शर्त पर स्वीकार की कि वह उसे अपने साथ ले जाकर कन्नौज दिखावेगा। चन्द के इसे स्वीकार करने पर कैवास का शव उसकी विधवा को दिया गया, जिसको लेकर वह सती हुई।

३—तीसरी कथा पृथ्वीराज के तीन पाठों बृहत्, मध्यम तथा लघु में इस प्रकार कही गई है: कन्नौज से संयोगिता को लाने के अनन्तर पृथ्वीराज विलास में लिप्त हो गया। वह महल के

^१ दे० प्रस्तुत संस्करण के २.३, ३.६, ८.२ तथा ८.४।

भीतर ही पड़ा रहता था, और इस विलासाधिक्य के कारण उसका पौरुष भी घट गया था। उसके सामंत उसके इस आचरण से बहुत असन्तुष्ट हो गए थे। उधर शहाबुद्दीन पृथ्वीराज पर आक्रमण करने की घात में निरन्तर रहता था। अतः उपयुक्त अवसर समझकर उसने पृथ्वीराज पर आक्रमण कर दिया। राजगुरु तथा चन्द के प्रयत्नों से पृथ्वीराज की विलास-निद्रा भग हुई। किन्तु विलम्ब हो चुका था। संयोगिता के लिए किए हुए कन्नौज के युद्ध में उसके अधिकतर वीर सामन्त कट चुके थे, रहे सहे जो थे, वे भी रूठ गए थे, और एक प्रमुख सामन्त हाहुलीराय जो जम्बू (जम्मू) का अधिपति था शहाबुद्दीन से मिल भी गया था। इसलिए पृथ्वीराज इस बार शहाबुद्दीन का सामना सफलता पूर्वक नहीं कर सका। युद्ध में सम्मिलित सामन्तों में से अधिकतर के कट जाने के बाद वह स्वयं युद्ध करने लगा। इसी समय एक तुर्क सरदार के द्वारा वह बन्दी हुआ। तदनन्तर शहाबुद्दीन उसे गजनी ले गया जहाँ उसने कुछ समय पीछे उसकी आँखें निकलवा ली। इस बीच चन्द जम्बूपति हाहुलीराय को मनाकर पृथ्वीराज के पक्ष में करने के लिए उसके पास गया हुआ था, तो हाहुलीराय ने उसे जालन्धर की देवी के मंदिर में देवी का आदेश प्राप्त करने के बहाने ले जाकर बन्द कर दिया था। किसी प्रकार वहाँ से मुक्त होकर जब चन्द दिल्ली लौटा, तो उसने पृथ्वीराज के बन्दी बनाए जाने और नेत्रविहीन किए जाने की सारी घटना सुनी। उसने अविलम्ब गजनी की राह ली और अपने स्वामी पृथ्वीराज का शहाबुद्दीन से उद्धार कराने का संकल्प किया। गजनी पहुँचकर शहाबुद्दीन को उसने पृथ्वीराज का शर-सन्धान कौशल देखने के लिये राजी कर लिया। पृथ्वीराज शब्दवेध में अत्यन्त कुशल था। कौशल-प्रदर्शन का आयोजन हुआ। चन्द ने शहाबुद्दीन से कहा कि जब तक शहाबुद्दीन स्वयं तीन बार पृथ्वीराज को बाण चलाने का आदेश न देगा, वह बाण न चलाएगा। अतः शहाबुद्दीन ने उसे तीन बार आदेश देना भी स्वीकार कर लिया। शहाबुद्दीन का तीसरा आदेश होते ही पृथ्वीराज ने जो बाण छोड़ा, उसने शहाबुद्दीन का प्राणांत कर दिया। इसके अनन्तर पृथ्वीराज का भी प्राणांत हो गया। 'पृथ्वीराज रासो' के लघुतम पाठ में भी यह समस्त कथा है, केवल हाहुलीराय के सम्बन्ध के विस्तार उसमें नहीं है।

ऊपर दी हुई 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' तथा 'पृथ्वीराज रासो' की इन कथाओं में जो साम्य तथा अन्तर है वह इस प्रकार है :—

पहली कथा में साम्य इतना ही है कि पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन में एक युद्ध हुआ जिसमें शहाबुद्दीन को पराजय मिली। अन्तर दोनों में यह है कि उसी समय 'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार पृथ्वीराज ने भीम चौलुक्य जैसे एक अन्य प्रबल शत्रु का भी सफलता पूर्वक सामना किया, जिससे उसकी शक्ति की आन बहुत बढ़ गई।

दूसरी तथा तीसरी कथाओं के सम्बन्ध में दोनों में जहाँ पर साम्य इस बात में है कि पृथ्वीराज ने कैवास और शहाबुद्दीन पर बाण छोड़े, अन्तर यह है कि 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में दोनों अवसरों पर वह अकृतकार्य हुआ है, जब कि 'पृथ्वीराज रासो' में वह दोनों अवसरों पर पूर्ण रूप से कृतकार्य हुआ है। 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में कैवास पर बाण-प्रहार पृथ्वीराज यह समझकर करता है कि वही शहाबुद्दीन को बार बार बुलाता है, जब कि 'पृथ्वीराज रासो' में उसकी लपटता के कारण वह उसे मारता है। 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में पृथ्वीराज कैवास पर एक ही बाण छोड़ता है, जब कि 'पृथ्वीराज रासो' में उसके चूक जाने पर वह दूसरा बाण भी छोड़ता है, जो कैवास का प्राणांत कर देता है। 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में कैवास और चन्द दोनों को पृथ्वीराज उनके पदों से अलम्ब कर देता है, किन्तु 'पृथ्वीराज रासो' में वह कैवास का प्राणांत कर देता है और चन्द को पूर्ववत् अपना कृपापात्र और सहचर बनाए रखता है। 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में अलग किए जाने पर कैवास अपने स्वामी के शत्रु से मिलकर स्वामी का पराभव और अन्त कराता है, और चन्द भी अपने स्वामी के एक शत्रु के पास जाता है,

यद्यपि वह वहाँ रुकता नहीं है, किन्तु 'पृथ्वीराज रासो' में दो में से एक बात भी नहीं चटती है; 'पृथ्वीराज रासो' में शहाबुद्दीन पृथ्वीराज पर स्वयं यह जानकर आक्रमण करता है कि उसकी शक्ति कन्नौज के युद्ध में क्षीण हो चुकी है, और उसके सामन्त उससे रुठे हुए हैं।^६ 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में पृथ्वीराज इस युद्ध में नाटारंभाश्व पर चढ़ कर भाग निकलता है, यद्यपि मन्त्री कैवास के छल से पकड़ा जाता है; 'पृथ्वीराज रासो' में वह उठ कर युद्ध करता है और युद्ध करते हुए छल से पकड़ा जाता है। दूसरी ओर, 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में उस जम्बूपति हाहुली राय का कोई उल्लेख नहीं होता है जिसने 'पृथ्वीराज रासो' में शत्रु पक्ष से मिल कर अपने राजा पृथ्वीराज का पराभव कराया है। अतः यह नितान्त प्रकट है कि 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' की कथा सर्वथा 'पृथ्वीराज रासो' के किसी भी ज्ञात रूप का अनुसरण नहीं करती है। अन्यत्र हम देखते हैं कि वह सर्वथा 'हम्मीर महाकाव्य' की कथा का भी अनुसरण नहीं करती है। फिर भी वह अशतः इसका और अंशतः उसका अनुसरण करती है,^७ इसलिए ऐसा लगता है कि वह 'रासो' तथा 'हम्मीर महाकाव्य'—दोनों की कथाओं को सामने रखते हुए कुछ नई कल्पना का भी पुट देते हुए बिनी-बनाई गई है।

कहा जा सकता है कि 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' के लेखक के सम्मुख 'पृथ्वीराज रासो' का कोई अन्य पाठ रहा होगा जो अभी तक हमें प्राप्त नहीं हुआ है, और बहुत सम्भव है कि 'रासो' का वही मूल अथवा कम से कम प्राचीनतर पाठ रहा हो। किन्तु यदि उद्धृत छन्दों को ध्यान पूर्वक देखा जाए तो यह कल्पना निराधार प्रमाणित होती है।

उद्धृत प्रथम छन्द में कहा गया है कि प्रथम वाण-प्रहार से अकृतकार्य होने पर कैवास पर 'पृथ्वीराज ने दूसरा वाण छोड़ा : 'बीभं कर संधीउ भंभइ सुमेसरनंदण।' यह विवरण स्पष्ट ही 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' के विवरण के विरुद्ध है। फिर छन्द में कहा गया है कि 'इस प्रकार दाहिमा (कैवास) [पृथ्वी में] गड़ कर सॉभर के वन को खन-खोद रहा है' : 'एहु सु गडि दाहिमओ खणइ खुइइ सइभरि वणु' और 'स्फुट रूप से इस लोभी और लंपट (कैवास) से [पृथ्वी का] वह खल (कठिन) गुड (कवच) नहीं छोड़ा जा रहा है' : 'फुड छडि न जाइ इह लुब्भिउ वारइ पलकड खल गुलह', जिससे यह प्रमाणित है कि कैवास मारा जाकर भूमि में गाड़ दिया गया था। यह विवरण तो 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' के कैवास सम्बन्धी समस्त विवरणों के विरुद्ध जाता है। इतना ही नहीं, छन्द में जो 'पलकहु' (पलकक = लंपट) शब्द आता है, वह भी कैवास-वध की उस कथा को प्रमाणित करता है जो 'रासो' के समस्त पाठों में आती है।

दूसरे छन्द में भी इसी प्रकार कहा गया है कि 'यह (शत्रु) [इस बार] जम्बू [पति] से मिल कर तुम से झगड़ रहा (युद्ध कर रहा) है' : 'कूड मंत्र मन ठवओ एहु जंबूय मिलि जगगरु', और जम्बू मति (हाहुलीराय) से मिल कर शहाबुद्दीन के पृथ्वीराज से युद्ध करने की कथा 'रासो' के ही पाठों में आती है, 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में नहीं।

साथ ही ऊपर उद्धृत दोनों छन्द 'पृथ्वीराज रासो' में मिल जाते हैं। पहला तो सभी प्राप्त पाठों में मिलता है, दूसरा उसके मध्यम तथा बृहत् पाठों में मिलता है। इसलिए यह प्रकट है कि 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में उद्धरण के लिए छन्दों को 'रासो' से लेते हुए भी कथा-योजना में पूरी स्वतंत्रता बरती गई है और इसलिए 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' के आधार पर हम यह नहीं मान सकते हैं कि 'रासो' का कोई ऐसा रूप भी था जिसमें कथा लगभग वह आती थी जो 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में आती है।

अन्यत्र हम देखते हैं कि 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह' के 'जयचन्द-प्रबन्ध' में जो छन्द चन्द के कहे गए बताए गए हैं, वे चन्द के नहीं हैं जल्ह कवि के हैं—'जल्ह कवि' की छाप स्पष्ट रूप से उक्त

दोनों छन्दों में आई हुई है।^१ अतः इन जैन प्रबन्धों की कथा के आधार पर 'पृथ्वीराज रासो' या चंद द्वारा रचित पृथ्वीराज विषयक काव्य की कथा की कल्पना करना उचित न होगा।

किंतु क्या, इसी प्रकार, हम यह भी कह सकते हैं कि 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में उद्धृत चन्द के छन्दों से 'पृथ्वीराज रासो' के स्वरूप के सम्बन्ध में भी हम कोई कल्पना नहीं कर सकते हैं? कुछ विद्वानों का यही मत है। एक विद्वान ने लिखा है, "मुनि जिन विजय जी को मिले चार फुटकर छप्पयो से 'पृथ्वीराज रासो' का रचा जाना सिद्ध नहीं होता है। हो सकता है कि चन्द नामक किसी कवि ने 'पृथ्वीराज' की जीवन-घटनाओं पर कुछ फुटकर छन्द ही लिखे हो, इस चन्द का अधुना प्रचलित पृथ्वीराज रासो से सम्बन्ध जोड़ना अनुचित है।"^२ किंतु इन छन्दों से यह स्वतः प्रकट है, जैसा हमने ऊपर देखा है, कि ये स्वतन्त्र या फुटकर ढंग पर लिखे हुए छन्द नहीं हैं: ये तो कुछ विवृत प्रकरणों के छन्द हैं, और उनके अभाव में इनकी रचना की कल्पना नहीं की जा सकती है। अतः यह मानना पड़ेगा कि ये छन्द चन्द की किसी प्रबंध कृति से लिए गए हैं, भले ही उसका नाम 'पृथ्वीराज रासो' रहा हो या कुछ और। और हम ऊपर यह भी देख चुके हैं कि 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में उद्धृत उपर्युक्त छन्द 'अधुना प्रचलित पृथ्वीराज रासो' के कथाप्रबंध में पूर्ण रूप से ठीक बैठते हैं, उसमें वे मिलते तो हैं ही। अतः 'अधुना प्रचलित पृथ्वीराज रासो' से इन छन्दों के रचयिता चंद का सम्बन्ध जोड़ना किसी प्रकार भी अनुचित नहीं माना जा सकता है। यह प्रश्न भिन्न है कि 'अधुना प्रचलित पृथ्वीराज रासो' में इन छन्दों के रचयिता चन्द की रचना कितनी है, और कितनी दूसरों की है।

अब दूसरा विचारणीय प्रश्न यह है कि उपर्युक्त 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' के लेखक के सामने 'रासो' का कौन सा पाठ था। 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' के ऊपर उद्धृत दो छन्दों में से द्वितीय इस सम्बन्ध में एक निश्चयात्मक प्रकाश डालता है। नीचे बहिरंग तथा अन्तरंग संभावनाओं की दृष्टि से इस पर विचार किया जा रहा है।

'रासो' के विभिन्न पाठों में से यह केवल मध्यम तथा बृहत् पाठों की प्रतियों में मिलता है, शेष में नहीं मिलता है, और मध्यम तथा बृहत् की प्रतियों में भी एक स्थान पर नहीं मिलता है, भिन्न-भिन्न स्थानों पर और भिन्न-भिन्न प्रसंगों में मिलता है; मध्यम की ना० प्रति में यह छन्द धीर पुडीर के द्वारा शहाबुद्दीन के पराजित और बन्दी होने के अनन्तर पृथ्वीराज के द्वारा उसके मुक्त किए जाने के प्रसंग में आता है (खड ३९, छन्द १४९), टॉड सग्रह की प्रति स० ६० में यह छन्द वाण-वेध-प्रकरण में आता है, जिसमें शब्द-वेध कौशल से पृथ्वीराज शहाबुद्दीन का प्राणांत करता है (वानवेधखड, छन्द २१६); ना० उ० तथा स० में यह छन्द शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध के पूर्व हुई पृथ्वीराज के सामन्तों की विचार-गोष्ठी के प्रसंग में आता है। 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में हम ऊपर देख ही चुके हैं कि यह छन्द कैवास वध-प्रकरण में आता है। अतः जब हम यह देखते हैं कि यह छन्द रचना के लघुतम तथा लघु पाठों की किसी भी प्रति में नहीं आता है और उसके मध्यम तथा बृहत् पाठों में और 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में भिन्न-भिन्न स्थानों और प्रसंगों में मिलता है, इसकी प्रामाणिकता नितान्त सदिग्ध लगने लगती है।

यदि हम प्रसंग की दृष्टि से देखें तो प्रकट है कि यह छन्द कैवास-वध प्रकरण का नहीं हो सकता है, क्योंकि उस समय तक जम्बूपति और शहाबुद्दीन की कूट संधि का प्रसंग 'रासो' के किसी भी पाठ में नहीं आता है और इस छन्द में जम्बूपति और शहाबुद्दीन की कूट संधि का स्पष्ट उल्लेख होता है;

^१ दे 'हिन्दी रासो परंपरा का एक विस्मृत कवि जब्ब', हिन्दी अनुशीलन, भाग १०, अंक १, पृ० १।

^२ श्री मोतीलाल मेनारिया 'राजस्थान का पिंगल साहित्य', क्रमशः पृ० ४९ तथा ३८।

धीर पुडीर द्वारा शहाबुद्दीन के पराजित और बन्दी होने तथा पृथ्वीराज के द्वारा उसके मुक्त किए जाने के प्रसंग का भी यह नहीं हो सकता, क्योंकि उस समय तो शहाबुद्दीन पृथ्वीराज के एक सामन्त द्वारा पराजित और बन्दी था ही; वाग-वेध प्रसंग का भी यह नहीं हो सकता, क्योंकि उस समय तो सारा युद्ध समाप्त था, पृथ्वीराज स्वयं शहाबुद्दीन का बन्दी था : ऐसे समय में जब कि चन्द पृथ्वीराज को शहाबुद्दीन के वध के लिए तैयार करने गया था वह और भी पृथ्वीराज को निरुत्साह करने वाले ऐसे वाक्य नहीं कह सकता था कि वह शत्रु द्वारा मत्स्य बध में बँधकर मृत्यु को प्राप्त होगा । यदि यह छन्द किसी हद तक प्रसंग-सम्मत कहा जा सकता था तो केवल शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध के पूर्व हुई पृथ्वीराज के सामन्तों की विचार-गोष्ठी के प्रसंग में, जिसमें यह 'रासो' के वृहत् पाठ की प्रतियों में आता है । उक्त अन्तिम युद्ध में लघु, मध्यम तथा वृहत् पाठों की समस्त प्रतियों के अनुसार जम्बूपति हाहुलीराय शहाबुद्दीन से मिल गया था । किन्तु यहाँ पर भी प्रश्न यह उठता है कि चन्द को अपने स्वामी पृथ्वीराज को इस प्रकार उसके मरण की विभीषका दिखाकर निरुत्साह करने की कौन सी आवश्यकता थी जब कि उसके सभी सामन्त उक्त विचार-गोष्ठी में शहाबुद्दीन का वीरतापूर्वक सामना करने के लिए उसे परामर्श दे रहे थे । चन्द के इस कथन पर पृथ्वीराज की प्रतिक्रिया क्या हुई, यह भी इस प्रसंग में 'रासो' के उपर्युक्त किसी पाठ में नहीं बताया गया है । इसलिए यह प्रकट है कि 'रासो' के जिन दो पाठों की प्रतियों में यह छन्द आता है, उनमें भी यह छन्द पहले से नहीं था, बाद में मिलाया गया और अलग है ।

इस प्रसंग में एक और बात भी विचारणीय है : 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में उद्धृत प्रथम छन्द में चन्द ने ही कैवास को लोभी और पलक (लंपट) कहा है :—

(फुड छंडि न जाइ इह लुम्भउ बारइ पलकउ खक गुलह । ✓

जबकि इस दूसरे छन्द में उसे चन्द ही ने व्यास (बुद्धिमान) और वसिष्ठ (श्रेष्ठ) कहा है :—

(कैवास विष्णुस विसट्ट बिनु मच्छि बन्धि बद्धो मरिसि । ✓

चन्द के ही कहे जाने वाले इन दोनों कथनों में विरोध प्रत्यक्ष है । और कैवास को लोभी-लंपट कहने वाला चन्द का उक्त छन्द रचना की समस्त प्रतियों में उसी स्थान पर पाया जाता है जिस पर वह 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में पाया जाता है, इसलिए यह प्रकट है कि 'पृथ्वीराज-प्रबन्ध' का उपर्युक्त दूसरा छन्द मूल रचना का नहीं है, प्रक्षिप्त है, और 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' के लेखक के सामने 'रासो' का प्रामाणिक रूप नहीं, कोई प्रक्षिप्त रूप ही था ।

११. 'सुर्जन चरित महाकाव्य' और 'पृथ्वीराज रासो'

चंद्रशेखर कृत 'सुर्जनचरित महाकाव्य'^१ की रचना अकबर के समकालीन और उसके अधीनस्थ हाड़ा राय सुर्जन की प्रेरणा से प्रारम्भ हुई थी,^२ किंतु उसकी समाप्ति उसके उत्तराधिकारी राय भोज के समय में हुई थी।^३ कवि ने ग्रन्थ का रचना-काल नहीं दिया है, किन्तु इसमें उसने राय सुर्जन के देहान्तोपरान्त राय भोज के राज्यारोहण का वर्णन मान लिया है, उसके शासन-काल की घटनाओं का कोई विवरण नहीं दिया गया है, इसलिए समझना चाहिए कि ग्रन्थ उसके राज्यारोहण के कुछ ही बाद समाप्त हुआ था। 'आईन-ए-अकबरी' में अकबर के शासन से सम्बन्धित व्यक्तियों की नामावली देते हुए राय सुर्जन (संख्या ९६) तथा राजा भोज (संख्या १७५) दोनों के नाम दिए गए हैं, और राय सुर्जन के सम्बन्ध में 'आईन-ए-अकबरी' के योग्य संपादक ने टिप्पणी देते हुए लिखा है कि 'तबक़ात-ए-अकबरी' (रचना-काल १००१ हि० = १६४९ वि०) से स्पष्ट है कि राय सुर्जन सं० १६४९ वि० के कुछ पूर्व ही दिवंगत हो चुका था।^४

राय सुर्जन के एक पूर्वज होने के नाते इसमें चौहान पृथ्वीराज का भी वृत्त आया है। यह रचना के दसवें सर्ग में है। नीचे इस सर्ग के श्लोको का उल्लेख करते हुए उस वृत्त का सार दिया जा रहा है :—

श्लोक १-१० : गगदेव का पुत्र सोमेश्वर हुआ, जिसने कुलपरम्परागत राज्य का शासन किया। सोमेश्वर ने कुन्तलेश्वर की पुत्री कर्पूर देवी से विवाह किया और कर्पूर देवी से उसके दो पुत्र पृथ्वीराज तथा माणिक्यराज हुए। पिता के दिए हुए राज्य को आपस में बाँट कर श्रेष्ठ बाहुबल से दोनों भाइयों ने शासन किया। पृथ्वीराज ने अपने पराक्रम से राज्य का विस्तार किया।

११-५२ : एक दिन जब पृथ्वीराज नगर के बाहर एक उद्यान में था, कान्यकुब्ज से कोई महिला आकर पृथ्वीराज से मिली और कान्यकुब्जेश्वर की पुत्री कातिमती के सौन्दर्य की प्रशंसा करने के अनन्तर उससे कहने लगी कि कातिमती पिता के चारणों से उसका हाल सुन कर उस पर अनुरक्त हो चुकी थी और उसने एक रात स्वप्न में एक सुन्दर पुरुष को देखा था, तब से वह सर्वथा—

✓^१ 'सुर्जनचरित महाकाव्य', हिन्दी अनुवाद सहित : सम्पादक और प्रकाशक डॉ० चन्द्रधर शर्मा, प्राध्यापक, हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९५२।

^२ वही १.७, तथा २०.६४।

^३ वही, २०.६३।

^४ 'आईन-ए-अकबरी', सम्पादक एच० ब्लॉचमैन, रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, द्वितीय संस्करण, पृ० ४५०।

काम के वश में हो रही थी; उन्हीं दिनों उसने यह भी सुना था कि कान्यकुब्जेश्वर उसे और किसी से ब्याहना चाहते थे, इससे वह बहुत व्यथित थी और इसी लिए उसने पृथ्वीराज के पास सन्देश लेकर उसे भेजा था। यह सुन कर पृथ्वीराज ने कहा कि वह उसके गुणों को बार-बार सुन चुका था, और उसके इस सन्ताप को दूर करने का उपाय अवश्य करेगा। दूती यह आश्वासन लेकर चली गई।

५३-११२ : इसके अनन्तर अपने बन्दी को आगे कर पृथ्वीराज कान्यकुब्ज गया। वेश बदल कर और १५० सामन्तों को साथ लेकर उसने उस वैतालिक का अनुसरण किया। जयचन्द की सभा में वह उस वैतालिक का पार्श्वचर बन कर रहता। वह प्रति दिन घोड़े पर चढ़ कर गंगा तट पर चक्कर लगाता। एक दिन चौदनी रात में वह घोड़े को नदी में पानी पिला रहा था। घोड़े के मुख से निकलते हुए फेन की गन्ध से मछलियाँ जब ऊपर आईं, वह उन्हें अपने कंठहार के मोती निकाल-निकाल कर चुगाने लगा। कान्यकुब्जेश्वर की कन्या ने उसका यह कृत्य देखा, तो उसे उसके सम्बन्ध में जानने की उत्सुकता हुई। उस दासी ने, जिसने उसका सन्देश पृथ्वीराज को पहुँचाया था, उसे पहचान कर बताया कि वह तो पृथ्वीराज ही था और यदि उसे इस विषय में सन्देह था तो वह उसकी परीक्षा कर सकती थी। यह सुनकर राजकुमारी ने मुक्तामाल देते हुए एक दासी को वहाँ भेजा। वह जाकर पृथ्वीराज के पीछे खड़ी हो गई। कंठहार के मोतियों के समाप्त होते ही राजा ने पीछे हाथ बढ़ाया तो दासी ने वह मुक्तामाल उसके हाथों पर रख दिया। जब वे बिना गूँथे हुए मोती भी समाप्त हो गए, तब उस दासी ने अपना कंठहार उतार कर राजा के हाथों पर रखा। स्त्रियों के उस कंठभूषण को देखकर राजा विस्मित हुआ और पीछे मुड़कर देखा तो वह दासी वहाँ मिली। पूछने पर उसने बताया कि कान्यकुब्जेश्वर की कन्या की वह परिचारिका थी। राजा ने उससे कहा कि वह अपनी स्वामिनी से कुछ प्रहर और धैर्य रखने के लिए कहे, दूसरे दिन रात्रि में उसके हृदय को निश्चय हो जावेगा। दूसरे दिन रात्रि में वह राजकुमारी से मित्रा और उसने कहा कि वह अपने सामन्तों को बिना बताए यहाँ आया था, इसलिए उसे लौटना ही था, और उनसे मिलकर वह पुनः आ सकता था। किन्तु राजकुमारों को भावी विरह से व्यथित देखकर उसने उसे साथ ले लिया, और घोड़े पर उसके साथ सवार होकर अपने शिविर को चला गया।

११३-१२८ : इस समय एक सामन्त आकर कहने लगा कि पृथ्वीराज को नव वधू के साथ दिल्ली के लिए प्रस्थान कर देना चाहिए, जब तक वह चार योजन आगे जावेगा, वह शत्रु सेना को रोकेगा। एक दूसरे सामन्त ने उसे छः गव्यूति (तीन योजन) आगे बढ़ाने की प्रतिज्ञा की। इसी प्रकार इन्द्रप्रस्थ तक का सारा मार्ग सामन्तों ने परस्पर बाँट लिया। तब तक शत्रु-सेना आ पहुँची थी। उसने पीछा किया, किन्तु संघर्ष होते-होते पृथ्वीराज इन्द्रप्रस्थ पहुँच गया। जब पृथ्वीराज इन्द्रप्रस्थ पहुँचा, उसके पराक्रमी वीरगण इने-गिने ही बच रहे थे। पृथ्वीराज से हार कर कान्यकुब्जेश्वर यमुना के जल में डूब मरा।

१२९-१३२ : दिग्विजय करके पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन को बाँधा। इक्कीस बार उसे बन्दी करके छोड़ा। किन्तु उसने उपकार नहीं मगना और छल-बल से एक युद्ध में पृथ्वीराज को बन्दी करके उसे अपने देश ले गया और वहाँ उसे नेत्र-हीन कर दिया।

१३३-१६८ : धूमता-फिरता पृथ्वीराज का मित्र चन्द नामक बन्दी भी वहाँ पहुँच गया और उसने पृथ्वीराज को प्रतिशोध के लिए प्रोत्साहित किया। राजा ने कहा उसके पास न सेना थी, और न नेत्र थे; प्रतिशोध लेना किस प्रकार सम्भव था? किन्तु बन्दी ने जब उसे उसके शब्द-वेष कौशल का स्मरण कराया, पृथ्वीराज ने उसका आग्रह स्वीकार कर लिया। तदनन्तर वह बन्दी यवनराज की सभा में गया और कुछ ही दिनों में उसके मन्त्रियों का तथा उसका विश्वास उसने अपने विद्या-कौशल

से प्राप्त कर लिया । किसी प्रसंग में एक दिन उसने कहा कि नेत्रहीन होते हुए भी पृथ्वीराज वाण-द्वारा लोहे के कड़ाहों को देघ सकता था, और उसका यह कौशल दर्शनीय था । यवनराज उसकी बातों में आ गया । एक स्वर्ण-स्तम्भ पर लोहे के कड़ाह रखे गए और पृथ्वीराज को वाण चलाने की आज्ञा हुई । तब वन्दी ने कहा कि यवनराज के तीन बार स्वयं कहने पर वह लक्ष्यवेध करेगा । इस पर शहाबुद्दीन के मुख से वाण चलाने की आज्ञा के निकलते ही पृथ्वीराज का वाण छूटकर उसके तालुमूल से जा लगा और यवनराज का प्राणांत हुआ । वहाँ हलचल देखकर वन्दी ने राजा को घोड़े पर बिठाया और कुरु जागल देश ले गया, जहाँ पृथ्वी को यशःपूर्ण करके राजा परलोक सिधारा ।

‘महाकाव्य’ के लेखक ने यह नहीं बताया है कि पृथ्वीराज की उपर्युक्त कथा उसे कहाँ से प्राप्त हुई, अतः इस प्रसंग में पहली विचारणीय बात यह है कि इस कथा का आधार क्या हो सकता है ? इस कथा में प्रतिशोध-प्रकरण में वन्दी चन्द का नाम आता है, जिसके बारे में यह भी कहा गया है कि वह उसका मित्र था । चन्द के ‘पृथ्वीराज रासो’ में जो कथा आती है, उससे उपर्युक्त कथा का पर्याप्त साम्य भी है यह सुगमता से देखा जा सकता है, और ‘पृथ्वीराज रासो’ ‘सुर्जनचरित महाकाव्य’ से काफी पहले की रचना है, यह इस बात से प्रमाणित हो चुका है कि उसके छन्द पुराने जैन प्रबन्धों में मिलते हैं, जिनमें से एक की प्रति स० १५२८ की है^१ । अतः प्रश्न वास्तव में इतना ही रह जाता है कि ‘सुर्जनचरित महाकाव्य’ में यह कथा सीधे ‘पृथ्वीराज रासो’ से ली गई है, अथवा ‘रासो’ पर आधारित किसी रचना से ।

नीचे उदाहरण के लिए ‘पृथ्वीराजरासो’ से कुछ ऐसे छन्द दिए जा रहे हैं जिनमें वे ही कथा-विस्तार मिलते हैं जो ‘सुर्जनचरित महाकाव्य’ की उपर्युक्त कथा में आए हैं^२ :—

(१) तिहि पुत्तिय सुनि एन इतउ तात वचन सजि काज ।
कइ बहि गंगहि सचरउ कइ पानि गहउ प्रथीराज ॥

(प्रस्तुत संस्करण, २.११)

(२) सुनत राइ अचरिज भयउ हिथइ मन्यउ अनुराउ ।
नृप वर अनि उर अगमइ दैवहि अवर स भाउ ॥

(वही, २.१२)

(३) चलउं भट्ट सेवग होइ सथ्यह ।
जउ बोलउं त हल्यु तुह मथ्यह ।
जबइ राइ जानइ संसुह हुअ ।
तब अंगमउं समर दुहुनि भुअ ॥

(वही, ३.३९)

(४) कनवजिय जयचन्द चलउ ठिलियसुर पेवन ।
चन्द विरदिआ साथि बहुत सामन्त सूर धन ।
चहूआन राठवर जांति पुंढीर गुहिल्ला ।
वडगूजर राठवर कुरुंभ जांगरा रोहिल्ला ।

^१ दे० प्रस्तुत लेखक द्वारा लिखित : (१) ‘पुरातन प्रबन्ध संग्रह, चंद वरदाई और जल्ह का समग्र’ नागरीप्रचारिणी पत्रिका, सं० २०१२, अंक ३-४, पृ० २३४ तथा (२) ‘पुरातन प्रबन्ध-संग्रह और पृथ्वीराजरासो’, शीर्षक इसी भूमिका में अन्यत्र ।

^२ स्थल-निर्देश की प्रथम संख्या सर्ग तथा द्वितीय संख्या छन्द की है ।

इत्ते सहित्त भुअपति चलउ उडी रेन किन्नउ नुभउ ।
एकु एकु लव वर लववइ चले मथ्य रजपुत्त सउ ॥

(वही, ४.१)

(५) करिग देव दक्खिन नयर गंग तरंगह कुल ।
जल छंडइ अछ्छइ करह मीन चरित्तनु भुल ॥

(वही, ६.६)

(६) भूलउ नृप तिहि रग तहि जुध्व विरुद्ध सहु ।
मूगति मीननु मुत्ति लहंति ऊ लव्य दइ ।
होइ तुछ्छ तु तमोर सरंत जु कंठ लहु ।
वंक प्रवेस हसंत तु झरंत जु गग मह ॥

(वही, ६.७)

(७) पंगुराइ सा पुत्तिय मुत्तिय थार भरि ।
यो त्रिय जउ प्रथीराज न पुछ्छइ तोहि फिरि ।
जउ इन लवण सन्न सहित विचार न सोइ करि ।
हइ व्रत मोहि नृ जीव सु लेउ सजोव वरि ॥

(वही, ६.१३)

(८) सुन्दरि आइ स धाइ विचार न बोलइय ।
जउ जल गंगह लोल प्रतीत प्रसगु लिय ।
कमल ति कोमल पांनि कलिकुल अंगुलिय ।
मनहु अध्व दुजदान सु अप्पति अंजुलिय ॥

(वही, ६.१४)

(९) अपंति अंजुलीय दान जान सोभ लगगए ।
मनउ अनंग रंग वस्य रंभ इंद पुज्जए ।
जु पाणि बाहु वार थक्कि थार मुत्ति वित्तए ।
पुनेपि हथ्य कंठ तोरि पोत्ति पुंज अप्पए ।
निरिषि नयन टेरि वयन ता त्रियत्ति चाहियं ।
तरप्पि दासि पासि पंक (पक्क) संकियं न वाहियं ।
अनेक (अनिक्क ?) संग रंग रूप जूप जानि सुंदरी ।
उहंग गंग मझिझ धुक्कि सर्गपत्ति अछ्छरी ।
हउं अछ्छरी नरिंदु नाहि दासि गेह राय पंगुरे ।
तास पुत्ति जंम छाडि ठिल्लि नाथ आदरे ।
सा जम सूर चाहुवान मान इम जानए ।
करेन केहरीन पीन इंदु मीन थानए ।
प्रतप्पि हीर जुध्व धीर यो सु वीर संचही ।
परन्तु प्रान मानिनी चलंति देत गंठही ।
सुनंत सूर अस्व फेरि तेजि ताम हंकिं ।
मनउ दलिद्ध रिद्धि पाय जाय कंठ लगियं ।
कनक्क कोटि अंग घात रास वास माल ची ।
रहंत भउंर झौर झौर साह छत्र काम ची ।

सुधा सरोज मोज मंग अलकक रंग हल्लए ।
मनउ मयन्न फंद पासि काम केलि घल्लए ।
करिस्य काम करुन सुपानि बंध बंधए ।
जु भावरी सषी सलज्ज रुझ तुरय वज्जए ।
आचारु चारु देव सब्ब दोइ पण्ण जंपही ।
गंठि दिठ्ठ इक्क चित्त लोक लोक चंपही ।
अनेक सुण्ण मुण्ण सीस जुध्ध साध लग्गियं ।
सु कंत कंत अंत ता तमोरि मोरि अप्पियं ॥

(वही, ६ १५)

(१०) मिले सब्ब सामंत बोल मग्गहि त नरेसर ।
अप्प मग्ग लग्गिअइ मग्ग रण्णिइ ति इक्क भर ।
एक एक झुझति दंति दंती ठंठोरइ ।
जिके पग राय भिच्च मारि मारिक्कइ मोरइ ।
हम बोल रहइ कलि अतरि देहि स्वामि पारिथ्थिअइ ।
अरि असीइ लण्ण को अंगमइ परणि राय सारिथ्थिअइ ॥

(वही, ८.१)

(११) वेद कोस हरणिध उभय त्रियत वड गुज्जर ।
काम वान हर नयन निडर नीडर सोइ सुझ्झर ।
छगन पठन पल्लानि कन्ह पची दिगपालह ।
अल्हन द्वादस सकल अचल विद्या गति कालह ।
सिंगार विज्ज सलपह सुकथ लषन पाहार आहार सुउ ।
इत्तनइ सूर झुझति ही ठिल्लियपति प्रथीराज भउ ॥

(वही, ८.३५)

(१२) गहि चहुआंन नरिंद गयउ गज्जने साहि धरि ।
सा ठिल्ली हय गय भंडार तेढि तनय अप्पि धर ।
वरस एक तिहि अय्ध मुय्ध किन्हउ नयन्न विनु ।
जंम जम जुग अवरुय्ध जाइ प्रथीराज इक्क पिनु ।
सुनत श्रवन्ननु धरि परउ हरि हरि हरि हरि देव सु कह ।
तजि पुत्त मित्त माया सकल गहिग चद गज्जनेव रह ॥

(वही, १२.१)

(१३) अंषहीन दोउ भयउं तुं चहु अंषिन चूक ।
असुर वध्धु किम विन सुरइ मइ सुरबंधउ अल्लुक ॥

(वही, १२.३७)

(१४) भयउ एक फुरमान एक वानह गुन संधउ ।
सोइ सवदूद अरु वान अग्ग अग्गइ षल बंधउ ।
भयउ बीय फुरमान षंचि रण्णिअउ श्रवन पर ।
तीअउ सबद सुनत सुनउ सुरतान परउ धर ।
लगि दसन रसन दस रुधिअउ विहु कपाट बंधे सघन ।
धरि परउ साहि षाँ पुकरउ भयउ चंद राजहि मरन ॥

(वही, १२.४८)

यदि 'सुर्जनचरित महाकाव्य' के विवरण और 'रासो' से ऊपर उद्धृत पक्तियों को मिलावे तो देखेंगे कि साम्य प्रायः छोटे से छोटे विस्तारों तक में है। यथा :—

(१) दोनों में पृथ्वीराज को यह समाचार मिलता है कि जयचन्द की पुत्री उस पर अनुरक्त है और जयचन्द उसे किसी अन्न से ब्याहना चाहता है, इसलिए वह बहुत व्यथित है।

(२) दोनों में पृथ्वीराज अपने बन्दी के साथ उसके अनुचर के वेश में कन्नौज जाता है और उसके साथ १०० या कुछ अधिक शूर-सामन्त हैं।

✓ (३) दोनों में ठीक एक ही प्रकार से जयचन्द-पुत्री उसे गंगातट पर रात्रि में मछलियों को मोती चुगाते हुए देखती है और एक ही उपाय से इस बात का निश्चय करती है कि वह व्यक्ति पृथ्वीराज ही है।

✓ (४) जयचन्द-पुत्री का अपहरण वह दोनों में एक ही प्रकार से करता है।

✓ (५) दोनों में एक ही समान यह योजना स्थिर होती है कि वह जयचन्द-पुत्री को लेकर दिल्ली की ओर बढ़े और उसके सामन्तगण एक-एक करके जयचन्द की पीछा करने वाली सेना को रोके; इस योजना का निर्वाह भी दोनों में एक ही सा होता है।

✓ (६) दोनों में वह शहाबुद्दीन के साथ के अंतिम युद्ध में बन्दी होता है और गजनी ले जाया जाकर नेत्रविहीन किया जाता है।

(७) दोनों में एक ही प्रकार से चन्द की युक्ति से पृथ्वीराज शहाबुद्दीन से प्रतिशोध लेने में कृतकार्य होता है।

अन्तर दोनों में बहुत साधारण है और मुख्यतः इतना ही है कि :—

(१) 'रासो' में पृथ्वीराज के जयचन्द-पुत्री के अनुरक्त होने का समाचार मात्र मिलता है, 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में उसकी एक दूती पृथ्वीराज से उसका सदेश लेकर मिलती है।

✓ (२) 'रासो' में उस जयचन्द-पुत्री का नाम संयोगिता है, और 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में कान्तिमती।

✓ (३) 'रासो' में पृथ्वीराज जयचन्द-पुत्री से पहचाने जाने पर ही जा मिलता है, यद्यपि उसे लिवा जाता है बाद में, 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में वह उसे मिलता है दूसरे दिन और उसी समय उसे लिवा जाता है।

✓ (४) 'रासो' में पीछा करता हुआ जयचन्द पृथ्वीराज के दिल्ली पहुँच जाने पर कन्नौज लौट जाता है, 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में वह यमुना में डूब मरता है।

✓ (५) 'रासो' में पृथ्वीराज गजनी में ही शाह-वध के अनन्तर मृत्यु को प्राप्त होता है, 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में उसे चन्द कुरु जागल प्रदेश भगा ले आता है, जहाँ वह पीछे मृत्यु को प्राप्त होता है।

उपर्युक्त सन्निकट साम्य की पृष्ठभूमि में जब हम इस अन्तर पर विचार करते हैं तो लगता है कि ये अन्तर 'सुर्जनचरित महाकाव्य' के रचयिता की कल्पना अथवा किन्हीं जनश्रुतियों के परिणाम हैं—जयचन्द का यमुना में डूब मरना अथवा पृथ्वीराज का गजनी से सकुशल कुरु जागल लौट आना 'रासो' की पूर्वकल्पित दिशा में एक कदम आगे बढ़े हुए विस्तार मात्र प्रतीत होते हैं, यह किसी भी अन्य प्राप्त प्राचीन रचना में नहीं मिलते हैं, यह भी इस अनुमान की पुष्टि करता है। फलतः यह प्रकट है कि 'सुर्जनचरित महाकाव्य' की उपर्युक्त कथा का आधार सीधा 'पृथ्वीराज रासो' है।

अब दूसरा प्रश्न यह उपस्थित होता है कि 'सुर्जनचरित महाकाव्य' की उपर्युक्त कथा का आधार 'रासो' का कौन सा पाठ है : 'रासो' के जो चार मुख्य पाठ प्राप्त हैं, उनमें से कौन सा 'सुर्जनचरित महाकाव्य' की उपर्युक्त कथा का आधार हो सकता है ?

इस प्रसंग में द्रष्टव्य यह है कि—

(१) 'रासो' के जो छन्द ऊपर उद्धृत हुए हैं, वे लघुतम से लेकर बृहत् तक 'रासो' के

समस्त प्राप्त पाठों में समान रूप से पाए जाते हैं ।

(२) 'सुर्जनचरित महाकाव्य' का एक भी मुख्य विस्तार उपर्युक्त को छोड़कर ऐसा नहीं है जो 'रासो' के समस्त पाठों में न पाया जाता हो, और अन्तर वाले उपर्युक्त विस्तार 'रासो' के किसी भी पाठ में नहीं मिलते हैं ।

(३) ऐसे कोई भी प्रसंग या विस्तार 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में नहीं हैं जो 'रासो' के लघुतम पाठ में न मिलते हों और उसके अन्य किसी पाठ में मिलते हों ।

अंतिम विशेषता के उदाहरण में निम्नलिखित प्रसंगों और विस्तारों को लिया जा सकता है, जो कि लघुतम पाठ को छोड़कर 'रासो' के समस्त पाठों में पाए जाते हैं—

(१) गुर्जराधिपति भीम चौलुक्य और पृथ्वीराज का युद्ध ।

(२) उसी के साथ-साथ हुआ पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन का युद्ध ।

(३) शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अंतिम युद्ध में पृथ्वीराज के एक सामंत धीर दुंडीर और शहाबुद्दीन का युद्ध ।

(४) शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अंतिम युद्ध में पृथ्वीराज की ओर से चित्तौड़ के रावल समर-सी का सम्मिलित होना ।

(५) उसी युद्ध में पृथ्वीराज के एक सामंत जवूपति हाहुलीराय हम्मीर का शहाबुद्दीन से जा मिलना ।

(६) हाहुलीराय हम्मीर के पास जाकर उसे पृथ्वीराज के पक्ष में लाने के लिए चन्द का प्रयत्न करना ।

और ये प्रायः ऐसे प्रसंग या विस्तार हैं जो यदि 'सुर्जनचरित महाकाव्य' के लेखक के सामने होते तो उसके द्वारा सबके सब कदाचित् छोड़े न गए होते । अतः यह स्पष्ट है कि उसकी उपर्युक्त कथा का आधार 'रासो' का लघुतम या उससे मिलता जुलता ही कोई पाठ हो सकता है ।

अब विचारणीय यह है कि 'सुर्जनचरित महाकाव्य' के उपर्युक्त विवरण का आधारभूत 'रासो' का पाठ उसके प्राप्त लघुतम पाठ से भी किन्हीं बातों में तो लघुतर नहीं था ।

'सुर्जनचरित महाकाव्य' की उपर्युक्त कथा की 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ से तुलना करने पर निम्नलिखित बातें द्रष्टव्य शायद होती हैं :—

(१) 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में कथा जयचन्द-पुत्री कातिमती के प्रेम-प्रसंग से प्रारम्भ होती है, पृथ्वीराज का उसमें कोई वृत्त इसके पूर्व नहीं आता है, जैसा कि 'रासो' के लघुतम पाठ तक उसके समस्त पाठों में आता है ।

(२) उसमें पृथ्वीराज के पूर्व पुरुषों की जो नामावली आती है वह उस नामावली से बहुत भिन्न है जो 'रासो' के लघुतम पाठ तक उसके समस्त पाठों में मिलती है ।

(३) अनंगपाल नोवर द्वारा पृथ्वीराज को दिल्ली प्राप्त होने की जो बात 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ तक उसके समस्त पाठों में आती है, वह भी 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में नहीं आती है ।

(४) पृथ्वीराज के प्रधान अमात्य कैवास अथवा उसके वध का कोई उल्लेख 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में नहीं है, जो कि 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ तक उसके समस्त पाठों में पाया जाता है ।

(५) 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में वे तिथियाँ भी नहीं आती हैं जो 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ तक उसके समस्त पाठों में पाई जाती हैं ।

असम्भव नहीं है कि इनमें से कुछ प्रसंग या विस्तार संक्षेप क्रिया के कारण 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में छोड़ दिए गए हों, किन्तु यह भी असम्भव नहीं है कि उसकी कथा के आधारभूत

‘रासो’ के पाठ में उपर्युक्त में से कुछ न भी रहे हों। यह बात ठीक इसी प्रकार ‘सुर्जनचरित महाकाव्य’ की समकालीन रचना ‘आईन-ए-अकबरी’ में भी दिखाई पड़ती है।^१

इस सम्बन्ध में यह जान लेना कदाचित् उपयोगी होगा कि ‘सुर्जनचरित महाकाव्य’ की रचना सं० १६४९ के लगभग हुई थी, और ‘रासो’ के प्राप्त सभी पाठों की प्रतियाँ उसके बाद की हैं : लघुतम की प्राचीनतम प्राप्त प्रति जो धारणोज (गुजरात) की है, सं० १६६४ की है; लघु की प्राचीनतम प्राप्त प्रति जो बीकानेर की है, जहाँगीर के समकालीन किसी भागचन्द के लिए लिखी गई थी, मध्यम की प्राचीनतम प्राप्त प्रति रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन की है और सं० १६९२ की लिखी है, बृहत् की प्राचीनतम प्राप्त प्रति नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की है और सं० १७४७ की है।

प्राप्त लघुतम पाठ की तुलना में ‘पृथ्वीराज रासो’ का प्रस्तुत संस्करण तो निश्चित रूप से उसके उस पाठ के निकटतर होना चाहिए जिसका आधार ‘सुर्जनचरित महाकाव्य’ में ग्रहण किया गया होगा, यह निम्नलिखित बातों से प्रकट है :—

(१) प्रस्तुत संस्करण में भी कथा ‘सुर्जनचरित महाकाव्य’ की भाँति सयोगिता के प्रेम-प्रसंग से प्रारम्भ होती है, केवल जयचन्द के राजसूय का प्रसंग और प्रस्तुत संस्करण में साथ-साथ चलता है।

(२) प्रस्तुत संस्करण में पृथ्वीराज के पूर्वपुरुषों की नामावली आती ही नहीं है, केवल उसे सोमेश्वर का पुत्र कहा गया है, इसलिये इस बात में दोनों में कोई विरोध नहीं है।

(३) प्रस्तुत संस्करण में अनगपाल तोवर द्वारा पृथ्वीराज को दिल्ली प्राप्त होने की बात भी नहीं आती है, जिस प्रकार वह ‘सुर्जनचरित महाकाव्य’ में नहीं आती है।

(४) प्रस्तुत संस्करण में भी कोई तिथियाँ नहीं आती हैं, जिस प्रकार ‘सुर्जनचरित महाकाव्य’ में वे नहीं आती हैं।

प्रस्तुत संस्करण में कैवास-वध की कथा अवश्य आती है जो ‘सुर्जनचरित महाकाव्य’ में नहीं है, किन्तु मुख्य कथा से उसका कोई अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है, इसीलिए यदि ‘सुर्जनचरित महाकाव्य’ में उसे न दिया गया हो तो आश्चर्य नहीं।

१२. 'आईन-ए-अकबरी' और 'पृथ्वीराज रासो'

'आईन-ए-अकबरी' में दिल्ली के शासन का इतिहास देते हुए पृथ्वीराज के विषय में निम्नलिखित प्रकार से कहा गया है :—

“विक्रमीय वर्ष स० ४२९ (३७२ ई०) में तोवर कुल का अनंगपाल न्यायपूर्वक राज करता था और उसने दिल्ली की स्थापना की। उसी चाद्रसौर वर्ष के सं० ८४८ (७९१ ई०) में उस प्रसिद्ध नगर के निकट पृथ्वीराज तोंवर और और बीलदेव (बीसलदेव) चौहान में घमासान युद्ध हुआ और शासन बाद वाले कुल के हाथों में चला गया। राजा पिथौरा (पृथ्वीराज) के राज्य-काल में सुल्तान मुईजुद्दीन साम ने हिन्दुस्तान पर अनेक आक्रमण किए, जिनमें उसे कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली। हिन्दू इतिहासों का कथन है कि राजा (पृथ्वीराज) ने सुल्तान से सात बार युद्ध किए और उसे पराजित किया। ५८८ हि० (११९२ ई०) में थानेसर के पास आठवाँ युद्ध हुआ और राजा बन्दी हुआ। एक सौ प्रसिद्ध योद्धा (कहा जाता है) उसके विशिष्ट अनुयायी थे। वे अलग-अलग 'सामत' कहलाते थे और उनके असाधारण शौर्य का न वर्णन हो सकता है और न अनुभव या तर्क से उसका समाधान किया जा सकता है कि इस युद्ध में इनमें से कोई नहीं था, राजा भोग-विलास में अपने महल में ही पड़ा काम-केल में समय नष्ट करता रहा और उसने न राज्य के शासन पर ध्यान दिया और न अपनी सेना के कुशल पर।

कथा इस प्रकार कही जाती है कि राजा जयचन्द राठौर, जो हिन्दुस्तान का सर्वोच्च शासक था, कन्नौज में राज्य कर रहा था। दूसरे राजा किसी न किसी मात्रा में उसकी वश्यता मानते थे, और वह स्वयं इतना उदार था कि ईरान और तूरान के अनेक निवासी उसके भृत्य थे। उसने राजसूय यज्ञ करने की घण्टा की और उसकी तैयारियाँ प्रारम्भ कर दीं। इस यज्ञ का एक नियम यह है कि निम्न कोटि की सेवाएँ भी राजागण के द्वारा ही प्रतिपादित होती हैं, यहाँ तक कि राजकीय भोजनालय के बर्तन माँजने-धोने और आग सुलगाने तक के जैसे कार्य भी उनके कर्तव्यों के अंग होते हैं। इसी प्रकार उसने वचन दिया कि वह आगत राजाओं में सर्वोच्च शूर राजा को अपनी सुन्दरी कन्या भी देगा।

राजा पिथौरा ने यज्ञ में उपस्थित होने का निश्चय किया था, किन्तु उसकी सभा के किसी सभ्य के इस आकस्मिक कथन ने कि जब तक चौहान कुल का साम्राज्य था, राजसूय किसी राठौर राजा के द्वारा किया जाना विहित नहीं था, पृथ्वीराज के वंशाभिमान को जागृत कर दिया और वह रुक गया। राजा जयचन्द ने उसके विरुद्ध सेना भेजने की सोची, किन्तु उसके मन्त्रियों ने युद्ध में समय अधिक लगने की संभावना और (राजसूय) सभा की तिथि की सन्निकटता के ध्यान से उसे इस विचार

से विरत कर दिया। मञ्ज को विधि पूर्वक संपन्न करने के उद्देश्य से राजा पिथौरा की एक स्वर्ण-प्रतिमा बनाई गई और वह दरबान के रूप में राजद्वार पर रख दी गई।

इस समाचार से क्रुद्ध होकर राजा पिथौरा छत्रवेष में ५०० चुने हुए योद्धाओं के साथ (कन्नौज के लिए) निकल पड़ा और (राजसूय) सभा में अकस्मात् पहुँच कर अनेक को अपनी तलवार से मारते हुए वह उस प्रतिमा को शीघ्रता के साथ उठा ले गया। जयचन्द की कन्या जिसका वाग्दान एक अन्य राजा से हो चुका था, पृथ्वीराज के इस शौर्य-प्रदर्शन का समाचार सुन कर उस पर अनुरक्त हो गई और उसने वाग्दत्त राजा से विवाह करना अस्वीकार कर दिया। उसके पिता ने इस आचरण पर क्रुद्ध होकर उसे राजभवन से निकाल दिया और एक अन्य भवन में भेज दिया।

इस समाचार से व्यग्र होकर पिथौरा उस (राज कन्या) से विवाह करने का निश्चय करके लौट पड़ा और योजना यह बनाई गई कि चाँदा, एक भाट जो कि चारण कला में पटु था, जयचन्द की सभा में उसके गुण-गान के बहाने पहुँचे और राजा (पृथ्वीराज) स्वयं अपने कुछ चुने हुए अनुयायियों के साथ उसके अनुचर के वेष में उसके साथ जावे। प्रेम ने उसकी आकांक्षा को क्रियात्मक रूप प्रदान किया और इस कौशलपूर्ण उपाय तथा वीरता के द्वारा उसने अपने हृदय की उस कामना (राजकन्या) का अपहरण किया और बल-वीर्य तथा शौर्य के अद्भुत प्रदर्शन के अनन्तर अपने राज्य में वापस पहुँच गया।

[इस प्रत्यावर्तन में] उसके (उपर्युक्त) सौ सामन्त विभिन्न छद्म वेषों में उसके साथ थे। एक के बाद दूसरे ने उसके भागने में उसकी रक्षा की और पीछा करने वालों से वीरता पूर्वक युद्ध करते हुए उन्होंने प्राण दिए। गोविन्दराय गहलोत ने सर्वप्रथम [शत्रुका] आमना किया और वीरता पूर्वक युद्ध करते हुए प्राणोत्सर्ग किया। शत्रु के सात हजार सैनिक उसके समक्ष धराशायी हुए। तदनन्तर नरसिंह देव, चाँदा, पुडीर, सार्दूल सोलंकी तथा अपने दो भाइयों के साथ पालहनदेव कछवाहा ने प्रथम दिन के युद्ध में अद्भुत शौर्य-प्रदर्शन करते हुए महँगे मूल्यों में प्राण दिए, और ये सभी योद्धा उस प्रत्यावर्तन में समाप्त हुए। चाँदा तथा अपने दो भाइयों के साथ राजा अपनी नव-वधू को लेकर जगत् को आश्चर्य-मग्न करता हुआ दिल्ली पहुँच गया।

दुर्भाग्य से राजा अपनी इस सुन्दरी स्त्री के प्रेम में ऐसा लिप्त हो गया कि और सब काम-काज छोड़ बैठा। इस प्रकार एक वर्ष बीत जाने पर, ऊपर वर्णित घटनाओं के कारण सुल्तान शहाबुद्दीन ने राजा जयचन्द से मैत्री स्थापित करली, और एक सेना इकट्ठी कर इस देश पर आक्रमण कर दिया और बहुत से स्थानों को हस्तगत कर लिया। किन्तु किसी को कुछ बोलने तक का साहस न हुआ, उसका प्रतिकार करना तो दूर की बात थी। अन्त में मुख्य सामन्तों ने सभा करके राजभवन के सप्त द्वार से चाँदा को भेजा, जिसने रनिवास में पहुँच कर अपने कथनों से राजा के मन में कुछ क्षोभ उत्पन्न किया। किन्तु राजा अपनी पूर्ववर्ती विजयों के अभिमान में युद्ध में एक छोटी ही सेना लेकर गया। उसके वीर योद्धा अब नहीं थे, [जिसके कारण] उसके राज्य की पुरानी धाक जाती रही थी, और जयचन्द जो उसका पहले का सहयोगी था अपनी पुरानी नीति बदल कर शत्रु के पक्ष में था, फलतः राजा उस युद्ध में बन्दी हुआ और सुल्तान के द्वारा गजनी ले जाया गया।

चाँदा अपनी स्वामिभक्ति के कारण तुरन्त गजनी गया, सुल्तान की सेवा में नियुक्त हो गया और उसका विश्वास-भाजन बन गया। प्रयत्नों से उसने राजा का पता लगा लिया और बन्दीगृह में पहुँच कर उसे सान्त्वना प्रदान की। उसने सुझाया कि वह सुल्तान से उसके धनुर्विद्या के कौशल की प्रशंसा करेगा और जब वह उसके इस कौशल को देखने के लिए तैयार होगा, राजा को उस अवसर से लाभ उठाने का सुयोग प्राप्त हो जावेगा। यह प्रस्ताव मान लिया गया और राजा ने सुल्तान को

एक बाण से विद्ध कर दिया। सुल्तान के भृत्य राजा और चौंदा पर दूट पड़े और उन्होंने उन्हें टुकड़े-टुकड़े काट डाला।

फारसी इतिहासकार एक भिन्न विवरण देते हैं और कहते हैं कि राजा युद्ध में मारा गया।^१

‘आईन-ए-अकबरी’ के लेखक ने यह नहीं बताया है कि उपर्युक्त कथा उसे किस ‘हिन्दू इतिहास’ से प्राप्त हुई, अतः इस प्रसंग में पहला विचारणीय प्रश्न यह है कि ‘आईन-ए-अकबरी’ में दी हुई उपर्युक्त कथा का आधार क्या हो सकता है। इस विवरण में ‘चौंदा’ नामक एक भाट का उल्लेख हुआ है। प्रकट है कि यह ‘चन्द’ है। चन्द के ‘पृथ्वीराज रासो’ में जो कथा आती है उससे उपर्युक्त विवरण में पर्याप्त साम्य भी है, यह सुगमता से देखा जा सकता है; और ‘पृथ्वीराज रासो’ ‘आईन-ए-अकबरी’ से काफी पहले की रचना है यह इस बात से प्रमाणित हो चुकी है कि उसके कुछ छन्द पुराने जैन प्रबन्ध-संग्रहों में मिले हैं जिनमें से एक की प्रति स० १५२८ की है।^२ अतः प्रश्न वास्तव में इतना ही रह जाता है कि ‘आईन-ए-अकबरी’ में यह कथा सीधे ‘पृथ्वीराज रासो’ से ली गई है, अथवा ‘रासो’ पर आधारित किसी रचना से ली गई है।

नीचे उदाहरण के लिए ‘रासो’ से कुछ ऐसी पंक्तियाँ दी जा रही हैं जिनमें वे ही कथा-विस्तार मिलते हैं जो ‘आईन-ए-अकबरी’ के उपर्युक्त विवरण में आए हैं^३—

(१)

पहु पग राउ राजसू जगु ।
आरंभ रंभ कीनउ सुरंग ।
जित्तिआ राउ सब सिन्धु आर ।
मेलिया कंठ जिम मुत्तिहार ।
जोगिनी पुरेस सुनि भयउ वेद ।
आवइ न माल मझ इह अभेद ।
मोकले दूत तब ही रिसाइ ।
असमथ सेव किम भूमि खाइ ।
बंधू समेत सामंत सथ ।
उत्तरे आनि दरबार तथ ।
बोलउ न वयण प्रथिराज ताहि ।
संकरिउ सिव गुरजनन चाहि ।
उच्चरउ गुरुअ गौयंद राज ।
कलि मझिअ जगु को करइ आज ।
कलि मझिअ जगु को करण जोग ।
विगगरइ तु बहु विधि हसइ लोग ।
दल दळब गव्व तुम अप्रमान ।

^१ ‘आईन-ए-अकबरी’ (एच० एस० गैरेट द्वारा अनूदित) संशोधित संस्करण, द्वितीय भाग, पृ० ३०५-३०७ का यह हिन्दी रूपान्तर है।

^२ दे० प्रस्तुत लेखक का ‘पुरातन प्रबन्ध संग्रह, चन्द बरदाई और जल्ह का समय’, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सं० २०१२ अंक ३-४, पृ० २३४।

^३ छन्दों का यह ‘पृथ्वीराज रासो’ के प्रस्तुत संस्करण का है, स्थल-निर्देश की प्रथम संख्या उसके सर्ग की तथा दूसरी संख्या उसके छन्द की है।

बोलहु त बोल देवन समान ।
 तुम जानउ बित्री हइ न कोइ ।
 निठवीर पुहवि कबहुं न होइ ॥
 सइंभरि सकोप सोमेस पुत्त ।
 दानव ति रूच अवतार धुत्त ।
 तिहि कवि सीस किम जग्य होइ ।
 जु प्रिथिमी नहीं चहुआन कोइ ।
 बोल्यउ सु मंत परधान तव्व ।
 कनवज्ज नाय करि जगु अक्क ।
 जब लगि गहिहि चहुआन चाहि ।
 तव लगि ताहि टलि काल जाहि ।
 ये आसमुइ नृप करहि सेव ।
 उच्चरहु कामु सो करहु देव ।
 सोवन्न प्रतिमा प्रथीराज धान ।
 थापउ जु पोलि जिम दरबान ।
 सइंवरइ संग भरु जगु काज ।
 विहु जन बोलि दिन घरहु आज ।...

(प्रस्तुत संस्करण, सर्ग २. छन्द ३)

- (२) संवादेव विनोदेव देव देवेन रक्षते ।
 अन्य प्राणेष्वपि प्राणे प्राणेश दिक्लीश्वरः ॥

(वही, २. २५)

- (३) तब झुक्ति राइ गंगह तट त रचिपचि उच्च भवास ।
 चाहि गहउं चहुआन तहु जु मिटइ बालाभास ॥

(वही, २. २७)

- (४) चलउं भट्ट सेवग होइ सथ्यहं ।
 जउ बोलउं त हथ्यु तुह मथ्यहं ।
 जवह राइ जानइ संमुह हुअ ।
 तव अंगमउं समर तुह भुअ ॥

(वही, ३. ३९)

- (५) कनवज्जिय जयचन्द चलउ ठिल्लियसुर पेषन ।
 चन्द विरदिआ सांथि बहुत सामंत सूर वन ।
 चहुआन राठवर जांति पुंढीर गुहिल्ला ।
 बडगूजर राठवर कुरुंभ जांगरा रोहिल्ला ।
 इत्ते सहित्त भुअपति चलउ उडी रेन किन्नउ भुअउ ।
 एकु एकु लष वर लषवइ चले सथ्य रजपुत्त सउ ॥

(वही, ४. १)

- (६) उभय सहस हय गय परित निसि निग्रह गत भान ।
 सात सहस भसि मीर हणि थळ विटउ चहुआन ॥

(वही, ७. १९)

(७) परउ गजि गहिलुत्त नाम गोविंदराज वर ।
दाहिम्भउ नरसिंघ परउ नागवर जास धर ।
परउ चंद पुंडीर चंद पेक्खो मारंतउ ।
सोलकी सारंग परउ असिवर झारंतउ ।
कूरंभराय पालन्नदेउ बंधव तीन निवट्टिया ।
कनवज्ज राद्धि पहिलइ दिधसि सउ मइ सत्त निवट्टिया ॥

(वही, ७. २०)

(८) मिले सव्व सामंत बोलु मग्गहि त नरेसर ।
अण्ण मग्ग लग्गिअइ मग्ग रण्णिइ ति इक्क भर ।
एक एक झूझंति दत्ति दत्ती ठंडोरइ ।
जिके पग राय भिच्च मारि मरिक्कइ मोरइ ।
हम बोल रहइ कलि अंतरि देहि स्वामि पारथिअइ ।
अरि असीइ लण्ण को अगमइ परणि राय सारथिअइ ॥

(वही, ८. १)

(९) इह विधि विलसि विलास असार सुसार किअ ।
दइ सुष जोगि संजोगि सोइ प्रथिराज जिय ।
अह निसि सुध्धि न जानहि माननि प्रौढ रति ।
गुरु बंधव भृत लोइ भई विपरीत गति ॥

(वही, ९. ८)

(१०) कग्गरु अप्पिअ राजकर सुष जपइ आ वत्त ।
गोरी रत्तउ तुव धरा तुं गोरी अनुरत्त ॥

(वही, १०. २०)

(११) इह कहि दासी अप्पि कर लिषि जु दिअउ कविचंदु ।
पहली आवलि वंचि करि हिरि धर जाय नरिंदु ॥

(वही, १०. २२)

(१२) भयउ एक फुरमान एक वानइ गुन संधउ ।
सोइ सबइ अरु बांन अग्ग अग्गइ षल बंधउ ।
भयउ बीअ फुरमान पंचि रण्णिअउ श्रवन पर ।
तीअउ सबइ सुनंत सुनउ सुरतान परउ धर ।
लगि दसन रसन दस रुंधिअउ विहु कपाट बंधे सवन ।
धरि परउ साहि षां पुक्करउ भयउ चंद राजहि मरन ॥

(वही, १२. ४८)

यदि 'आईन-ए-अकबरी' के विवरण और 'रासो' की उपर्युक्त पक्तियों को मिलावे तो देखेंगे कि साम्य प्रायः छोटे-से-छोटे विस्तारों तक में है :—

(१) जयचन्द के राजसूय के साथ हो उसकी कन्या के स्वयंवर का आयोजन जिस प्रकार 'आईन-ए-अकबरी' में हुआ है उसी प्रकार वह 'रासो' में भी हुआ है ।

(२) 'आईन-ए-अकबरी' में कहा गया है कि एक सम्य के आकस्मिक कथन के कारण पृथ्वीराज उस राजसूय में सहयोग देने से रुक जाता है : 'रासो' में इस सम्य का नाम भी दिया हुआ है—गोविंदराज ।

(३) 'आईन-ए-अकबरी' में कहा गया है कि जयचन्द पृथ्वीराज के विरुद्ध सेना भेजने की बात सोच रहा था, किन्तु उसके मंत्रियों ने पृथ्वीराज के साथ युद्ध में समय अधिक लगाने की सभावना तथा [राजसूय] सभा की तिथि की सन्निकटता के ध्यान के उसे इस विचार से विरत किया, ठीक यही बात 'रासो' में कही भी गई है।

(४) दरबान के रूप में पृथ्वीराज की स्वर्ण-प्रतिमा की स्थापना की बात दोनों में कही गई है।

(५) जयचन्द की कन्या ने पृथ्वीराज पर अनुरक्त होकर दोनों में किसी अन्य से विवाह करना अस्वीकार किया है और इसलिए दोनों में उसे राजभवन से निकाल कर एक अन्य भवन में रख दिया गया है।

(६) चन्द के साथ पृथ्वीराज के उसके अनुचर के वेष में कन्नौज जाने की योजना दोनों में हुई है।

(७) कन्नौज से पृथ्वीराज के प्रत्यावर्तन की योजना दोनों में एक ही है।

(८) प्रथम दिन के युद्ध में गिरे हुए सामंतों की सूची दोनों में सर्वथा एक है, और समस्त नाम एक ही क्रम से भी दोनों में आते हैं ['आईन अकबरी' के अनुवाद में 'चाँदा' और 'पुंड़ीर' दो नाम भ्रम से कर दिए गए हैं, वास्तव में दोनों मिला कर एक नाम है] 'सारंग' का 'सार्दुल' अरबी-फ़ारसी लिपि के 'गाफ़' और 'लाम' के साम्य के कारण हुआ प्रतीत होता है।

(९) पृथ्वीराज का जयचन्द-पुत्री (सयोगिता) के प्रेम में लिप्त होकर राजकीय कार्यों की उपेक्षा करना और चन्द का उसको उद्बुद्ध करना भी दोनों में लगभग समान हैं।

(१०) चन्द का गजनी जाना और युक्ति से पृथ्वीराज के द्वारा शहाबुद्दीन का वध कराना भी दोनों में एक ही सा है।

(११) 'आईन-ए-अकबरी' के अनुसार शहाबुद्दीन के वध के अनंतर राजा तथा चन्द दोनों को मार डाला गया है; 'रासो' में शब्दावली है :—

भयउ चद राजहि मरन ।

जिसका अर्थ यह है कि 'चन्द कहता है कि राजा का मरण हुआ,' जो अधिक समीचीन है, किन्तु कदाचित् दूसरा अर्थ यह भी लिया जा सकता है कि 'चन्द और राजा का मरण हुआ', जैसा कि 'आईन-ए-अकबरी' में लिखा गया है।

अन्तर दोनों में बहुत साधारण है और मुख्यतः इतना ही है कि :—

(१) 'आईन-ए-अकबरी' के अनुसार जयचन्द की कन्या पृथ्वीराज पर अनुरक्ता होने के पूर्व किसी अन्य को वाग्दत्ता होती है, जो 'रासो' में नहीं है।

(२) 'आईन-ए-अकबरी' के अनुसार पृथ्वीराज कन्नौज दो बार जाता है : एक बार तो वह अपने ५०० चुने योद्धाओं के साथ जाकर अपनी स्वर्ण-प्रतिमा उठा लाता है, और दूसरी बार जाकर जयचन्द की कन्या का अपहरण करता है, 'रासो' में वह एक ही बार कन्नौज जाता है और केवल जयचन्द पुत्री का अपहरण करता है।

(३) 'आईन-ए-अकबरी' के अनुसार शहाबुद्दीन पृथ्वीराज पर किए गए अन्तिम आक्रमण के पूर्व जयचन्द से मैत्री स्थापित करता है। 'रासो' में यह नहीं है।

उपर्युक्त सन्निकट साम्य की पृष्ठभूमि में जब इस अन्तर पर हम विचार करते हैं तो लगता है कि ये अतिरिक्त विस्तार या तो कल्पित हैं अथवा जनश्रुति के आधार पर 'आईन-ए-अकबरी' में रख लिए गए हैं। किसी प्राप्त प्राचीन रचना में इनमें से कोई भी नहीं मिलता है, यह भी इस अनुमान की पुष्टि करता है।

फलतः यह प्रकट है कि 'आईन-ए-अकबरी' के विवरण का आधार 'पृथ्वीराज रासो' है। अब दूसरा प्रश्न यह उपस्थित होता है कि 'आईन-ए-अकबरी' के उपर्युक्त विवरणों का आधार 'रासो' का कौन-सा पाठ है। 'रासो' के जो चार मुख्य पाठ प्राप्त हैं, उनमें से कौन-सा पाठ 'आईन-ए-अकबरी' के उपर्युक्त विवरण का आधार हो सकता है ?

इस प्रसंग में द्रष्टव्य यह है कि—

(१) ऊपर 'रासो' के जो छन्द उद्धृत किए गए हैं, वे 'रासो' के लघुतम से लेकर के बृहत् पाठ तक समस्त पाठों में समान रूप से पाए जाते हैं।

(२) 'आईन-ए-अकबरी' का एक भी विस्तार उपर्युक्त तीन को छोड़ कर ऐसा नहीं है जो 'रासो' के समस्त पाठों में न पाया जाता हो, और ये तीन विस्तार 'रासो' के किसी भी पाठ में नहीं मिलते हैं।

(३) ऐसे कोई भी प्रसंग या विस्तार जो लघुतम के अतिरिक्त रचना के शेष किसी भी पाठ में मिलते हैं 'आईन-ए-अकबरी' में नहीं हैं।

अन्तिम विवेचन के उदाहरण में निम्नलिखित प्रसंगों और विस्तारों को लिया जा सकता है जो कि लघुतम को छोड़ कर 'रासो' के शेष समस्त पाठों में पाए जाते हैं :—

(१) गूर्जराधिपति भीम चौलुक्य और पृथ्वीराज का युद्ध;

(२) जयचन्द के युद्ध से पूर्व हुआ पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन का एक युद्ध;

(३) शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध के पूर्व पृथ्वीराज के एक सामन्त घोर पुंडीर और शहाबुद्दीन के बीच हुआ युद्ध;

(४) शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में पृथ्वीराज की ओर से चित्तौड़ के रावल समरसी का भाग लेना;

(५) शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में पृथ्वीराज के एक सामन्त जम्बूपति हाहुलीराय हम्मीर का शहाबुद्दीन पक्ष में जा मिलना; और

(६) चंद का उस हाहुलीराय हम्मीर के पास जाकर उसे पृथ्वीराज के पक्ष में लाने का प्रयत्न करना।

ये प्रायः ऐसे प्रसंग या विस्तार हैं जो यदि 'आईन-ए-अकबरी' के लेखक के सामने होते तो उसके द्वारा कदाचित् छोड़े न गए होते। अतः यह स्पष्ट है कि 'आईन-ए-अकबरी' के विवरणों का आधारभूत 'रासो' का पाठ उसका लघुतम या उससे मिलता-जुलता ही कोई पाठ था।

अब विचारणीय यह है कि 'आईन-ए-अकबरी' के विवरण का आधारभूत यह पाठ 'रासो' के वर्तमान लघुतम पाठ से भी किन्हीं बातों में तो लघुतर नहीं था।

'आईन-ए-अकबरी' के विवरणों से 'रासो' के लघुतम पाठ की विवरणों की तुलना करने पर निम्नलिखित बातें द्रष्टव्य शत होती हैं:—

(१) 'आईन-ए-अकबरी' में कथा जयचन्द के राजसूय से प्रारम्भ होती है, पृथ्वीराज का कोई वृत्त इसके पूर्व नहीं आता है। उसमें पृथ्वीराज के पूर्वपुरुषों के विषय में कोई उल्लेख तक नहीं होता है, और उसमें अन्यत्र चहुवान कुल के शासकों की जो नामावली आती है, वह उस नामावली से बहुत भिन्न है जो 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ तक में मिलती है।^१

(२) अनंगपाल से पृथ्वीराज को दिल्ली प्राप्त होने की जो बात 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ तक में आती है, वह भी 'आईन-ए-अकबरी' में नहीं आती है।

(३) पृथ्वीराज के प्रधान अमात्य कैवास अथवा उसके वध का कोई उल्लेख 'आईन-ए-अकबरी' में नहीं होता है, जो कि 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ तक में पाया जाता है।

(४) 'आईन-ए-अकबरी' में वे तिथियाँ भी नहीं आती हैं जो 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ तक में पाई जाती हैं।

असम्भव नहीं है कि इनमें से कुछ प्रसंग या विस्तार संक्षेप की दृष्टि से 'आईन-ए-अकबरी' में छोड़ दिए गए हों, किन्तु यह भी असम्भव नहीं है कि उसके विवरण के आधारभूत 'रासो' के पाठ में उपर्युक्त में से कुछ न भी रहे हो। इस लिए यह विषय गम्भीरता पूर्वक विचारणीय है। इस सम्बन्ध में यह जान लेना उपयोगी होगा कि 'आईन-ए-अकबरी' की रचना अकबर के राज्य के बयालीसवें वर्ष (सं० १६५४-५५) में समाप्त हुई थी और 'रासो' के विभिन्न पाठों की प्राप्त प्रतियाँ सभी उसके बाद की हैं। लघुतम की सबसे प्राचीन प्रति धारणाज (गुजरात) की है जो सं० १६६४ की है; लघु की सब से प्राचीन प्रति बीकानेर की है, जो जहाँगीर के समकालीन किन्हीं भागचन्द के लिए लिखी गई थी, मध्यम की सब से प्राचीन प्रति रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन की है, जो सं० १६९२ की है; और बृहत् की सब से प्राचीन प्रति नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की है जो सं० १७४७ की है।

प्रस्तुत संस्करण 'आईन-ए-अकबरी' के आधारभूत 'रासो' के पाठ के सर्वथा निकट पहुँचता है, क्योंकि 'आईन' में 'रासो' के विशिष्ट प्रसंगों और विवरणों की जो स्थिति ऊपर बताई गई है उनकी लगभग वही स्थिति प्रस्तुत संस्करण में भी मिलती है :—

(१) प्रस्तुत संस्करण में भी कथा जयचन्द के राजसूय यज्ञ से प्रारम्भ होती है और इसके पूर्व पृथ्वीराज का कोई वृत्त नहीं आता है, इसके अतिरिक्त इसमें भी पृथ्वीराज के पूर्वपुरुषों के विषय में कोई उल्लेख नहीं होता है।

(२) प्रस्तुत संस्करण में भी अनंगपाल से पृथ्वीराज को दिल्ली प्राप्त होने की बात नहीं आती है।

(३) प्रस्तुत संस्करण में भी कोई तिथियाँ नहीं आती हैं।

कैवास-वध की कथा अवश्य प्रस्तुत संस्करण में ऐसी है जो 'आईन-ए-अकबरी' में नहीं आती है, किन्तु इस कथा का मुख्य कथा से कोई अनिवार्य संबंध न होने के कारण ही यदि इसे 'आईन' में छोड़ दिया गया हो तो आश्चर्य न होगा।

—:~:—

१३. 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा

डॉ० नामवर सिंह ने 'पृथ्वीराज रासो की भाषा' नामक अपने डॉक्टरेट के निबन्ध में धा० पाठ के कन्नौज प्रकरण—प्रस्तुत संस्करण के सर्ग ४-८ तथा ९ के पूर्वार्ध—के छन्दों को लेकर रचना की भाषा पर विस्तृत विचार किया है और उसकी भूमिका में तत्संबंधी परिणामों का सारांश दिया है।^१ भाषाशास्त्रीय विश्लेषण के अनंतर निकाले गए ये परिणाम महत्व के हैं, इसलिए नीचे इन्हें उन्हीं के शब्दों में दिया जा रहा है।

अ. ध्वनि-विचार

(१) छन्द के अनुरोध से प्रायः लघु अक्षर को गुरु और गुरु अक्षर को लघु बना दिया गया है। लघु को गुरु बनाने के लिए शब्दान्तर्गत (क) ह्रस्व स्वर का दीर्घीकरण, (ख) व्यजन-द्वित्व, (ग) स्वर का अनुस्वार-रजन, तथा (घ) समास में द्वितीय शब्द के प्रथम व्यजन का द्वित्व करने की प्रवृत्ति है। इसके विपरीत गुरु को लघु बनाने के लिए (क) दीर्घ का ह्रस्वीकरण, (ख) व्यजन-द्वित्व वा क्षतिपूर्ति-रहित सरलीकरण, तथा (ग) अनुस्वार के अनुनासिकीकरण की विधि प्रयोग में लाई गई है।

(२) छन्दोनुरोध के अतिरिक्त भी स्वर-व्यजन में परिवर्तन हुए हैं। उत्तराधिकार में प्राप्त प्राकृत के अर्ध-तत्सम शब्दों का प्रयोग करने के साथ ही आधुनिक आर्य भाषाओं की प्रवृत्ति के अनुसार नये तद्भव रूपों की ओर भी झुकाव लक्षित होता है। अन्य स्वर के ह्रस्वीकरण की जो प्रवृत्ति प्राकृत-अपभ्रंश काल से ही शुरू हो गई थी, वह 'रासो' में पर्याप्त प्रबल दिखाई पड़ती है; जैसे जोध (= योद्धा), सेन (= सेना) इत्यादि।

(३) शब्द के अन्तर्गत आद्य अक्षर में प्रायः स्वर की मात्रा में परिवर्तन हो गया है और मात्रा-संबंधी यह परिवर्तन प्रायः दीर्घ से ह्रस्व की ओर दिखाई पड़ता है, जैसे अनद (= आनद) अहार (= आहार), जियण (= जीवन) इत्यादि।

(४) शब्द के अन्तर्गत अनादि अक्षर में स्वर के गुण-संबंधी परिवर्तन की प्रवृत्ति है, जैसे—अ > इ : तुरङ्ग > तुरिय; अ > उ : अञ्जलि > अंजुलिय; ई > अ : निरीक्ष्य > निरख, उ > अ : मुकुट > मुकट; उ > इ : कौतुक > कोतिग; ऊ > ओ : ताम्बूल > तंबोल; ए > इ : नरेन्द्र > नरिन्द, इत्यादि।

(५) प्राकृत-अपभ्रंश में जहां स्वरान्तर्गत अथवा मध्यग क, ग, च, ज, त, द, प, य, व के लोप से उद्भूत स्वर अवशिष्ट रह जाता था, उसके स्थान पर धीरे-धीरे य, व श्रुति के आगम अथवा पूर्ववर्ती स्वर के साथ उन्हें संयुक्त करने की प्रवृत्ति अवहट्ट अवस्था से प्रारम्भ हो गई थी, जिसकी प्रबलता 'रासो' में भी दिखाई पड़ती है। 'रासो' में उद्भूत स्वर की (क) स्वतन्त्र रूप से सुरक्षित, (ख) य, व श्रुति के रूप में उच्चरित और (ग) पूर्ववर्ती स्वरों के साथ संयुक्त, तीनों स्थितियाँ मिलती हैं, किन्तु प्रधानता द्वितीय स्थिति की है और तृतीय स्थिति विकास की अवस्था में दिखाई पड़ती है। तीनों स्थितियों के उदाहरण निम्नलिखित हैं :—

(क) चउसष्टि < चतुष्षष्टि; (ख) नयर < नम्भर; (ग) रावत < राधुत < रावउत < *राअवुत < राजपुत < राजपुत्र।

(६) उद्भूत स्वर को पूर्ववर्ती स्वर के साथ संयुक्त करने की प्रवृत्ति पदान्त में विशेष दिखाई पड़ती है, जिसका व्याकरण की दृष्टि से अत्यधिक महत्व है। इस प्रवृत्ति के कारण 'रासो' के क्रियापद अपभ्रंश से विशिष्ट हो गए हैं और संज्ञा तथा सर्वनाम पदों में विकारी रूपों के निर्माण की अवस्था दिखाई पड़ती है। है, कहै, जानिहै, आयो, सो आदि क्रियापद तथा हथै, तैं आदि संज्ञा-सर्वनाम के विकारी रूप इसी प्रवृत्ति के परिणाम हैं।

(७) उद्भूत स्वर के अतिरिक्त मूल स्वरों में भी स्वर-संकोचन की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। मोर (=मयूर), समै (=समय), सोन (=श्रवण) इत्यादि शब्द इसी प्रकार के स्वर-संकोचन के परिणाम कहे जा सकते हैं।

(८) प्राचीन व्यंजन ध्वनियों में से य और व 'रासो' में अधिकांशतः केवल श्रुति के रूप में सुरक्षित प्रतीत होते हैं। इनके अतिरिक्त य ज में तथा व ब में परिवर्तित हो गया था। प्रतिलिपिकार ने यद्यपि ब के लिए भी व का ही प्रयोग किया है, तथापि उच्चारण में वह ब ही प्रतीत होता है।

(९) श, ष, स तीन ऊष्म ध्वनियों में से केवल स का अस्तित्व प्रमाणित होता है। श और ष भी प्रायः स में परिवर्तित हो गए थे। ष के अन्य परिवर्तित रूप ख और ह मिलते हैं। ख के लिए ष का प्रयोग मध्य युगीन नागरी लिपि शैली की सामान्य विशेषता है, जिससे सभी लोग परिचित हैं।

(१०) वर्गीय अनुनासिक व्यंजनों में से केवल न, म का अस्तित्व प्रमाणित होता है। क्वचित्-कदाचित् ण भी दिखाई पड़ जाता है किन्तु इसका प्रयोग या तो तत्सम शब्दों में परंपरा-निर्वाह के लिए दिखाई पड़ता है या राजस्थानी प्रभाव के अन्तर्गत हुआ है।

(११) लिपि-शैली से ङ, ढ, न्ह, ल्ह, म्ह पाँच नवीन व्यंजन ध्वनियों के प्रचलन का प्रमाण मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन ङ, ढ क्रमशः ङ, ढ में परिवर्तित हो गए थे।

(१२) असंयुक्त व्यंजनों में क > ह, ज > ग, ट > र, र > ल परिवर्तन महत्वपूर्ण हैं, जिनके उदाहरण निम्नलिखित हैं :—

क > ह : चिकुर > चिहुर; ज > ग : कनवज > कनवग; ट > र : भट > भर; र > ङ : सरिता > सलिता।

(१३) असंयुक्त महाप्राण घोष और अघोष व्यंजनों का केवल महाप्राणत्व ही अवशिष्ट रह गया था। यह परिवर्तन प्रायः स्वरान्तर्गत अथवा मध्यग स्थिति में हुआ है। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं :—

ख : दुह, सुह; घ : सुहर; थ : पहिल, पुहली; ध : कोह, विहि, भ : लहै, हुआ।

(१४) असंयुक्त अल्पप्राण व्यंजनों को आदि और अनादि दोनों ही स्थितियों में कहीं-कहीं महाप्राण कर देने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है, जैसे : कंधार > खवार; अकुर > अंखुली।

- (१५) अवोष व्यंजनो का घोषीकरण : जैसे अनेक > अनेग, कौतुक > कौतिग; चातक > चातग ।
 (१६) मूर्धन्यीकरण : जैसे ग्रन्थि > गंठि, गर्त > गड्ढा, दिल्ली > ढिल्ली ।
 (१७) संयुक्त व्यंजनों के परिवर्तन में सबसे महत्वपूर्ण अन्य व्यंजन + र तथा र + अन्य व्यंजन हैं । ऐसे स्थलों पर 'रासो' में या तो सम्प्रसारण अथवा स्वरभक्ति की प्रवृत्ति है या फिर परवर्ती-व्यंजन-द्वित्व की । कहीं-कहीं व्यंजन-द्वित्व के साथ ही रेफ-विपर्यय भी हो गया है । फलतः 'रासो' में धर्म के धरम, धरम्म, ध्रम्म तीन प्रकार के रूप मिलते हैं । इसी प्रकार गर्व > गरव, गव्व, ग्रव्व रूप भी ।

(१८) अन्य संयुक्त व्यंजनों में प्राकृत-अपभ्रंश की भाँति यथास्थान पूर्वसावर्ण्य तथा पर-सावर्ण्य की प्रवृत्ति प्रचलित दिखाई पड़ती है । फलस्वरूप इस रचना में भी प्राकृत-अपभ्रंश की तरह व्यंजन-द्वित्व की बहुलता मिलती है । 'रासो' के मुक्क, अग्ग, बच्च, वज्ज, तुट्ट, नित्त, सद्ध, अप्प, सब्ब, जम्म जैसे शब्द इसी प्रवृत्ति के परिणाम हैं ।

(१९) परन्तु आधुनिक भारतीय आर्यभाषा की व्यंजनद्वित्व को सरलीकृत करने की मुख्य प्रवृत्ति 'रासो' में भी मिलती है । व्यंजन-द्वित्व का सरलीकरण दो प्रकार से किया गया है—(क) क्षतिपूरक दीर्घीकरण-सहित और (ख) क्षतिपूरक दीर्घीकरण-रहित । दोनों के उदाहरण निम्नलिखित हैं :—

(क) भट्ट > भाठ, विज्जइ > वीजइ, लक्ख > लाख ।

(ख) अलक्ख > अलव; उच्छग > उछंग, चड्ढिड > चडिड ।

दीर्घाक्षरिक शब्द में भी क्षतिपूरक दीर्घीकरण के बिना ही व्यंजन-द्वित्व का सरलीकरण हो जाता है, जैसे . चैत्र > चैत्त > चैत ।

(२०) संयुक्त व्यंजन तथा व्यंजन-द्वित्व का सरलीकरण क्षतिपूरक अनुस्वार के साथ भी होता है; जैसे : दर्शन > दंशन, प्रजल्प्य > पयपि, पक्षी > पंखी ।

आ. रूप-विचार

(१) रूप-रचना की दृष्टि से 'रासो' की भाषा अपभ्रंशोत्तर और उदयकालीन नव्य भारतीय आर्य भाषा की विशेषताओं से युक्त दिखाई पड़ती है । इनमें से पहली विशेषता है निर्विभक्तिक सज्ञा शब्दों का सभी कारको में प्रयोग । अपभ्रंश में इस प्रवृत्ति का प्रारम्भ ही हुआ था और नव्य भारतीय आर्यभाषा में प्रत्येक कारक के लिए परसर्ग का विकास होने से पूर्व बहुत दिनों तक ऐसे निर्विभक्तिक सज्ञा शब्दों के प्रयोग की बहुलता थी ।

(२) उकार बहुला अपभ्रंश में कर्त्ता-कर्म एक वचन में जिस -उ विभक्ति का प्रचलन था, वह 'रासो' की प्राचीन प्रतियों में प्रचुर मात्रा में मिलती है । सभा के मुद्रित संस्करण में इसका अभाव दिखाई पड़ता है ।

(३) अपभ्रंश की-ह परक विभक्तियों के अवशेष 'रासो' में काफी मिलते हैं । कनवज्जह, कनवजहे, कनवज्जहि जैसे रूप विरल नहीं हैं । परवर्ती हिंदी में धीरे-धीरे यह विभक्ति घिस कर विकारी रूप बन गई ।

(४) करण-कारण एक वचन की-इ, -ए, -ऐ अपभ्रंश विभक्तियाँ भी 'रासो' में प्रचुर मात्रा में मिलती हैं; जैसे कारणइ, कवज्जइ, हत्थे, हत्थै इत्यादि ।

(५) कर्त्ता-करण तथा कर्म-सम्प्रदान के बहुवचन में -न, -नि, -नु विभक्ति का प्रयोग 'रासो' की ऐसी विशेषता है जो अपभ्रंश में नहीं मिलती लेकिन 'वर्ण रत्नाकर', 'कीर्तिलता' इत्यादि अवहट्ट रचनाओं से -इ से युक्त अर्थात् -न्ह, -न्हि रूप मिलने लगते हैं । यही -न आगे चलकर विकारी रूप ओ तथा ओ में विकसित हुआ । रासो में-ओ, -ओ वाले विकारी रूप नहीं मिलते ।

(६) परसर्गों की दृष्टि से 'रासो' अपभ्रंश तथा अवहट्ट दोनों की अपेक्षा समृद्ध है। कर्तृ-करण परसर्ग नैं अथवा ने को छोड़कर प्रायः शेष सभी परसर्ग किसी न किसी रूप में यहाँ मिलते हैं। कर्म-परसर्ग कहुँ, कहुँ, कू रूप में; करण-अपादान-परसर्ग तैं, ते तथा सहु, सो, सैं; अपादान-परसर्ग हुति, सम्बन्ध-परसर्ग को, का, की, के तथा कउ, कै, अधिकरण-परसर्ग मज्झहि, मज्झे, मज्झि, मंझ, मधि, महि, मह आदि विविध रूपों में प्राप्त होता है, किंतु लघुतम रूपान्तर के कनवज्ज समय में अधिकरण-परसर्ग में अथवा मे कही नहीं मिलता।

(७) सर्वनामों के विषय में 'रासो' की भाषा अपेक्षाकृत अधिक आधुनिक है। उत्तम पुरुष सर्वनाम के मैं, हूँ, हम तथा विकारी रूप मो, मोहि मिलते हैं। मध्यम पुरुष के तुम, तुम्ह, तुम्ह, तथा तैं, तुज्झ, तोहि रूप; अन्य पुरुष के सो तथा तासु जैसे प्राचीन रूपों के अतिरिक्त वह, उह, तथा उस रूपों का भी प्रयोग मिलता है।

(८) प्रश्नवाचक सर्वनाम के को, कौन, तथा किस, किन रूप; निज वाचक अप्पु, अप्प, अपन, सर्वनाम-मूलक विशेषण अस, इसो, तस, तेसे आदि प्रकार-वाचक और इत्तनहि, इत्तनउ, इत्तने तथा कितकु आदि परिमाणवाचक रूप 'रासो' को अपभ्रंश अवस्था से बाद की रचना प्रमाणित करते हैं।

(९) सख्यावाचक विशेषण— १ से १० की सख्याएँ एक, दुइ, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ, दस नाम से मिलती हैं। १०० के लिए सै, सौ दोनों रूप आते हैं। १००० के लिए सहस के अतिरिक्त हजार (फारसी) का भी प्रयोग है। क्रमवाचक पहिलइ, बीय, तिअ, अपूर्ण सख्यावाचक अड्ड, आवृत्तिवाचक दुहु इत्यादि।

(१०) क्रियापदों में यदि √भू के सभी काल के रूपों पर दृष्टिपात किया जाय तो अपभ्रंश से विकसित अवस्था के स्पष्ट लक्षण मिलते हैं। वर्तमान काल में है, भविष्यत् में होइहै तथा भूतकाल में कृदन्त रूप भो, भयो, भयी, भये तथा हुअ, हुवो इत्यादि।

(११) कही-कहीं पूर्वी हिंदी का आहि वाला क्रिया रूप भी 'रासो' में मिलता है, परन्तु इसका प्रयोग अधिक नहीं है।

(१२) भविष्यत् काल में अपभ्रंश का-स्स मूलक रूप, जो पाछे राजस्थानी में विशेष प्रचलित हुआ तथा पश्चिमी और पूर्वी हिंदी में नहीं आया, 'रासो' में कहीं-कहीं दृष्टिगोचर होता है।

(१३) सामान्य वर्तमान काल के लिए 'रासो' में अपभ्रंश के तिङन्त तद्भव-अइ वाले रूप के साथ ही स्वरसंकोच युक्त -ऐ वाले रूप भी मिलते हैं और गणना करने पर पता चलता है कि अनुपात की दृष्टि से दोनों का प्रयोग लगभग समान है।

(१४) -इग अन्तवाला भूतकालिक क्रियापद जैसे चलिग, कहिग, करिग इत्यादि 'रासो' की अपनी विशेषता है। इस प्रकार के क्रियापद अपभ्रंश में नहीं थे और पश्चिमी हिंदी में भी इस प्रकार के जो क्रियारूप मिलते हैं, उनका प्रयोग भूतकाल में न होकर केवल भविष्यत् काल तक ही सीमित है।

(१५) -अन कृदन्तयुक्त क्रियापदों से वर्तमान काल-रचना का सूत्रपात 'रासो' में हो चुका था किंतु इसके साथ अस्तिवाचक सहायक क्रिया के रूप जोड़कर आधुनिक हिन्दी की भौति संयुक्त काल-रचना की प्रवृत्ति उसमें नहीं मिलती। यह अवस्था स्पष्टतः अपभ्रंश के पश्चात् और व्रजभाषा के उदय के आस-पास की है।

(१६) संयुक्त क्रियाएँ 'रासो' में अपभ्रंश से अधिक किंतु व्रजभाषा से बहुत कम मिलती हैं : साथ ही अर्थ की दृष्टि से भी वे काफी सरल हैं। धरि राखो, लेहि बइठो, उड़ चलिहि, हुइ जाइ जैसी सरल संयुक्त क्रियाएँ ही 'रासो' में प्रयुक्त हुई हैं।

इ. शब्द-समूह

(१) कनवज समय (लघुतम रूपान्तर) में कुल मिलाकर लगभग साढ़े तीन हजार शब्द हैं और यदि रूप-विविधता को ध्यान में रखते हुए किसी शब्द के विविध रूपों में से केवल एक रूप की गणना की जाय तो शब्द-संख्या लगभग ३००० होती है। इनमें से लगभग ५०० शब्द संस्कृत तत्सम हैं और २० शब्द फारसी के हैं, शेष शब्द मुख्यतः तद्भव हैं। केवल थोड़े से शब्द अर्धतत्सम अर्थात् प्राकृत अपभ्रंश के अवशेष हैं और उनसे भी कम देशी अथवा स्थानीय हैं। इस प्रकार 'रासो' में तत्सम शब्दों का अनुपात १६ प्रतिशत से अधिक नहीं है। अपभ्रंश को देखते हुए तत्सम शब्दों का यह अनुपात बहुत अधिक कहा जायगा, किन्तु नव्य आर्य भाषा की प्राचीन रचनाओं को देखते हुये 'रासो' में तत्सम शब्दों का यह अनुपात कम कहा जायगा। इससे साबित होता है कि भक्ति कालीन रचनाओं की अपेक्षा 'पृथ्वीराज रासो' कुछ प्राचीन रचना है और सोलहवीं शताब्दी के व्यापक सांस्कृतिक पुनर्जागरण का प्रभाव उस पर कम पड़ा है। इसी तरह मुसलमान बादशाहों के प्रभाव से इस रचना में जिन फारसी शब्दों की बहुलता की बात कही जाती है, वह केवल वृहत् रूपान्तर के लिए सही हो सकती है। लघुतम रूपान्तर में फारसी शब्द बहुत कम हैं।

यह कहना अनावश्यक होगा कि धा० पाठ के आधार पर ऊपर 'रासो' की भाषा के सम्बन्ध में जो परिणाम डॉ० सिंह ने निकाले हैं वे सर्वथा तथ्यपूर्ण हैं। किन्तु प्रस्तुत संस्करण में निर्धारित पाठ अनेक विषयों में धा० पाठ की तुलना में प्राचीनतर—अर्थात् अपेक्षा कृत अपभ्रंश के निकटतर प्रमाणित होता है। नीचे इस विशेषता के कुछ प्रमाण दिए जा रहे हैं।

अ. ध्वनि-विचार

डॉ० सिंह ने ध्वनि-विचार की प्रथम प्रवृत्ति जो बताई है, उसका सम्बन्ध मूलतः रचना के कवि को शैली से है, उसकी भाषा से नहीं, छठी प्रवृत्ति के रूप में उद्धृत स्वर को पूर्ववर्ती स्वर के साथ संयुक्त करने की जो प्रवृत्ति उन्होंने बताई है, वह प्रस्तुत संस्करण में अपवाद स्वरूप ही कहीं-कहीं मिलेगी, सामान्य प्रवृत्ति उद्धृत स्वरों को स्वतन्त्र रूप से सुरक्षित रखने की है, यथा धा० के 'है' 'कहै', 'जानिहै' के स्थान पर प्रस्तुत संस्करण में प्रायः 'हइ', 'कहइ', 'जानिहइ' रूप मिलेंगे और इसी प्रकार 'आयो' तथा 'भो' के स्थान पर प्रायः 'आयउ' तथा 'भउ' मिलेंगे।

ध्वनि-विचार की आठवीं प्रवृत्ति के रूप में 'य' के 'ज' तथा 'व' के 'ब' में परिवर्तित होने की जो बात उन्होंने कही है, वह भी अंशतः ही प्रस्तुत संस्करण में मिलेगी : 'य' अवश्य ही अधिकतर 'ज' हो गया है किन्तु वह अपने 'य' रूप में भी अनेक स्थलों पर सुरक्षित है, और सामान्य रूप से 'व' के 'ब' हुए होने के कोई प्रमाण नहीं मिलते हैं, केवल 'व' और 'ब' के एक-से लिखे जाने के कारण यह अनुमान करना बहुत उचित न होगा; प्रस्तुत संस्करण में 'ब' अधिकतर सुरक्षित मिलेगा, केवल कहीं-कहीं पर 'व' का 'ब' हुआ दिखाई पड़ेगा।

ध्वनि-विचार की ग्यारहवीं प्रवृत्ति के रूप में 'ड', 'ढ', 'न्ह', 'ल्ह', 'म्ह' की पाँच नवीन व्यंजन-ध्वनियों के प्रचलन की बात कही गई है। प्रस्तुत संस्करण में 'ड' 'ढ' एक स्थान पर भी नहीं आते हैं—वे धा० की मूल प्रति में भी होंगे इस विषय में सुझे पूरा सदेह है और असंभव नहीं कि वे उसमें आधुनिक प्रतिलिपि-क्रिया द्वारा आए हों; 'न्ह', 'ल्ह' और 'म्ह' भी प्रस्तुत संस्करण में नवीन व्यंजन-ध्वनियों के रूप में नहीं मिलते हैं, वे अपनी संयुक्त व्यंजन ध्वनियों के रूप में ही इसमें मिलते हैं।

ध्वनि-विचार की चौदहवीं प्रवृत्ति के रूप में अल्पप्राण व्यंजनों को महाप्राण करने की जो बात कही गई है, वह भी प्रस्तुत संस्करण में प्रायः नहीं मिलती है : दिए हुए उदाहरणों में से 'खंधार' 'कंधार' से कदाचित् नहीं व्युत्पन्न होता है, वह 'स्कंधार' से व्युत्पन्न है और इसलिए 'खंधार' के 'ख'

का महाप्राणत्व 'स्फंधार' के स् > ह् के क के साथ मिल जाने के कारण हुआ लगता है : 'अंखुली' भी 'अंकुर' से व्युत्पन्न नहीं है, वह कदाचित् 'उक्खलिय' है जो 'उत्खण्डित' से व्युत्पन्न है।

ध्वनि-विचार की सत्रहवीं प्रवृत्ति के अन्तर्गत व्यंजन-द्वित्व के साथ रेफ-विपर्यय की जो बात कही गई है, वह भी प्रस्तुत संस्करण में न मिलेगी : 'धम्म' और 'गव्व' के स्थान पर 'धर्म' और 'गर्व' के दिए हुए अन्य रूप तथा 'धम्म', 'गव्व' ही मिलेंगे।

आ. रूप-विचार •

रूप-विचार के अन्तर्गत सातवीं प्रवृत्ति के रूप में सर्वनामों के जिन रूपों का उल्लेख किया गया है, उनमें से अनेक नहीं हैं; 'उस' के प्रयोग की जो बात कही गई है, वह तो धा० पाठ के संबंध में भी ठीक नहीं है। डॉ० सिंह द्वारा दी हुई शब्दानुक्रमणिका में—जो उनके ग्रन्थ के अन्त में दी हुई है—'उस' उनके संस्करण के छन्द ५४ मात्र में आया हुआ बताया गया है, किन्तु यह 'उस' नहीं है 'उसनेह' का एक खंड मात्र है, पूरी पंक्ति है :—

सीत उसनेह रितु दोख रंभं ।

'उसनेह' < 'उष्ण' से व्युत्पन्न है, अर्थ से यह भली भाँति प्रमाणित है।

रूप-विचार के अन्तर्गत नवीं प्रवृत्ति के रूप में चार, पाँच, छह, सात तथा आठ के मिलने का जो उल्लेख किया गया है, वह भी अशतः ही ठीक है : चार, पाँच, छ, सात, तथा आठ प्रस्तुत संस्करण में 'च्यारि', 'पंच', 'सत्त' तथा 'अठ' के रूप में ही सामान्यतः मिलते हैं, अन्य रूपों में अपवाद स्वरूप ही मिलेंगे।

रूप-विचार के अन्तर्गत तेरहवीं प्रवृत्ति के रूप में '—अइ' के साथ '-ए' वाले रूपों का लगभग बराबर-बराबर पाया जाना बताया गया है। प्रस्तुत संस्करण में '-ए' वाले रूप बहुत ही कम हैं, अधिकता '—अइ' वाले रूपों की ही मिलेगी।

इ. शब्द-समूह

तत्सम और अर्धतत्सम शब्दों की जो संख्या डॉ० सिंह द्वारा ऊपर शब्द-समूह के अन्तर्गत बताई गई है, प्रस्तुत संस्करण में उसमें कदाचित् कमी दिखाई पड़ेगी, और तद्भव शब्दों की संख्या में कदाचित् कुछ आधिक्य दिखाई पड़ेगा। फ़ारसी शब्दों का अनुपात लगभग वही होगा जो डॉ० सिंह के परिणामों में दिया हुआ है।

डॉ० सिंह ने कहा है कि 'रासो' की भाषा पर सोलहवीं शताब्दी के व्यापक पुनर्जागरण का प्रभाव कम पड़ा है, किन्तु प्रस्तुत संस्करण के पाठ में वह कदाचित् बिल्कुल नहीं पड़ा दिखाई देगा। फ़ारसी शब्दों की बहुत-कुछ बहुलता मुसलमानी शासन के प्रभाव के कारण अवश्य है, किन्तु कुछ न कुछ शहाबुद्दीन के प्रसंगों के वर्णन की अनिवार्य आवश्यकता के कारण भी है, जैसा हम अन्यत्र देखेंगे। इस प्रकार प्रस्तुत संस्करण में रचना की भाषा का स्वरूप धा० पाठ के भाषा-रूप की तुलना में प्राचीनतर प्रमाणित होगा।

दोनों में कितना और किस प्रकार का अंतर है, यह स्पष्ट करने के लिए एक छोटे प्रसंग की पंक्तियाँ नीचे पहले धा० तथा फिर संपादित पाठ से दी जा रही हैं।^२

धा० पाठ: दूहा—उदय अगस्त ... उज्जल जल ससि कास ।

मोहि चंद हइ विजय मनु कहहु कहाँ कइमाय ॥

नागपुर नरपुर सयल कथिसु देवपुर साज ।

दाहिमो दुललह भयो कहि न जाय प्रियिराज ॥

दे० इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो में प्रयुक्त विदेशी शब्द' शीर्षक।

धा० छंद ८४-९० ; संपादित पाठ ३.२१—२७ ।

का भुजंग का देवनर निकमु कव्व कवि खंडि ।
कै वताउ कैवास मोहि हर सिद्धि वर छंडि ॥
जो छंडइ
... .. तप ताप करि वर छंडै कवि चन्द ॥
हठ लग्यो चहुवान निप अंगुली मुखहि फनिद ।
जिह पुरि तुअ मति सचरई सु कहि विनइ कवि चन्द ॥
सेस सिरप्परि सूरतर जइ पुच्छइ निप ऐसु ।
दहु बोलां मंडन मरनु कहहु त कव्व कहेसु ॥

कवितु—इक्कु वान पुहमी नरेस कैवासह मुक्क कयो ।
उर उप्परि खरहरयउ वीर कक्खतर चुक्कयो ।
बीउ वान सधानि हन्यो सोमेसुर नंदन ।
गाढो कै निग्गहयो खन्यो गड्ढो संभरि धन ।
धर छंडि न जाइ न भग्गलो गारे गड्ढो गुन खले ।
इम जंपइ चन्द वरदिया तह न वटे इह प्रज्जले ॥

संपादिता पठः दोहरा—उदय अगस्त नयन दिठि उज्जल जल समि कास ।
मोहि चंद हइ विजय मन कहहुं कहां कयमास ॥ (३.२१)
नागपुर सुरपुर सयल कथित कहउं सब साज ।
दाहिम्मउ दुल्लह भयउ कहउ न जाइ प्रथीराज ॥ (३.२२)
कहा भुजंग कहा उदे सुर निकमु कव्व कवि खंडि ।
कइ कयमास वताहि मो कइ हर सिद्धी वर छंडि ॥ (३.२३)
जउ छंडइ सेसह धरणि हर छंडइ विष कंदु ।
रवि छंडइ तप ताप कर तउ वर छंडइ कवि चंदु ॥ (३.२४)
हठि लगउ चहुवान नृप अंगुलि मुखह फणिदु ।
तिहु पुरि तुव मति संचरइ सु कहे बनइ कवि चंदु । (३.२५)
सेस सिरप्परि सूरतर जइ पुच्छइ नृप एस ।
दोहुं बोलि मंडन मरनु कहइ तउ कव्वु कहेस ॥ (३.२६)

कवित—एक्कु वान पुहवी नरेस कयमासह मुक्कउ ।
उर उप्परि खरहरिउ वीर कक्ख तर चुक्कउ ।
बीउ वान सधानि हनउ सोमेसुर नंदन ।
गाडउ करि निग्गहउ धनिव षोदउ संभरिधनि ।
थर छंडि न जाइ अभागरउ गारइ गहउ जु गुन परउ ।
इम जंपइ चंद विरदिया सु कहा निमट्टिहि इह प्रलउ ॥ (३.२७)

इसी प्रसंग में 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह' में आए हुए 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में उद्धृत निम्नलिखित छंद^१ को भी लिया जा सकता है, जो कि ऊपर धा० तथा संपादित पाठों का उद्धृत अंतिम छंद है :—

इक्कु बाणु पडुवीसु जु पइं कइंवासह मुक्कभो ।
उर भितरि खडहडिउ धीर कक्खतरि चुक्कउ ।

बीअं करि सधीउं भमइ सुमेसर नंदण ।
 एहु सु गडि दाहिमओ खणइ खुइइ सईभरिवणु ।
 फुड छडि न जाइ इहु लुभिउ वारइ पलकउ खलगुलह ।
 न जाणउ चंद बलहिउ कि न विछुटइ इह फलह ॥

‘पृथ्वीराज-प्रबन्ध’ का यह पाठ जिन दो प्रतियों पर आधारित है, उनमें से एक सं० १५२८ की है,^१ और संग्रह के योग्य संपादक ने कोई पाठभेद इस छंद के नहीं दिए हैं, इसलिए समझना चाहिए कि दोनों प्रतियों में छंद का पाठ एक ही या प्रायः एक ही है। ‘रासो’ की भाषा के प्राचीन रूप के परिज्ञान के लिए सं० १५२८ के इस पाठ का महत्व प्रकट है, और यह दिखाने की आवश्यकता नहीं है कि पाठ-विषयक अन्य प्रकार का अंतर होते हुए भी प्रस्तुत संस्करण के संपादित पाठ और सं० १५२८ के ‘पृथ्वीराज-प्रबन्ध’ के उपर्युक्त पाठ में भाषा-विषयक कोई अंतर नहीं है, जब कि घा० के पाठ तथा पृथ्वीराज-प्रबन्ध के इस पाठ में भाषा-विषयक अंतर है। यह अंतर किस प्रकार का है, यह भी स्पष्ट ज्ञात होता है : घा० का पाठ सं० १५२८ के उपर्युक्त पाठ तथा प्रस्तुत संस्करण के संपादित पाठ के कुछ बाद की भाषा-स्थिति को हमारे सामने रखता है। फलतः डॉ० नामवर सिंह ने रचना की भाषा के विषय में जो परिणाम निकाले हैं, वे अधिकांश में ग्राह्य होते हुए भी प्रायः उपर्युक्त प्रकार से संशोधन की अपेक्षा रखते हैं।

अब रही रचना की भाषा के देश-काल की बात। डॉ० नामवरसिंह ने अपने उपर्युक्त शोध-निबन्ध में ‘रासो’ की भाषा के इस पहलू पर भी विस्तार से विचार किया है, और युक्तिपूर्वक यह दिखाया है कि न वह अपभ्रंश है, न डिंगल या पुरानी पश्चिमी राजस्थानी, और वह पुरानी व्रज-भाषा भी नहीं है, वह पुरानी पूर्वीय राजस्थानी है जिसे पिंगल कहा जाता रहा है, और इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि ग्रन्थ की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी की एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति पर ‘तारीख प्रिथ्वीराज बजवान पिंगल तसनीफ़ कर्दा कबि चन्द बख्दाई’ लेख मिलता है।^२ इसके अनन्तर उन्होंने दिखाया है कि ‘रासो’ की यह भाषा परम्परा के अनुसार पिंगल होते हुए भी ‘प्राकृत पिंगल’ (रचना १४वीं शती ईस्वी) से अधिक विकसित है; इसमें प्राकृत-अपभ्रंश के रूढ़ रूपों के अवशेष अपेक्षाकृत कम हैं और नव्य भारतीय आर्यभाषा के रूप अधिक हैं।^३

जहाँ तक रचना की भाषा के देश-पक्ष की बात है, मैं डॉ० सिंह से प्रायः सहमत हूँ, यद्यपि हो सकता है कि पिंगल किसी क्षेत्र-विशेष की बोल-चाल की भाषा के सामान्य रूप का नहीं वरन् उसके साहित्यिक रूप का नाम रहा हो और वहाँ की बोल-चाल की सामान्य भाषा और पिंगल में लगभग उतना ही अंतर रहा हो जितना आज की मेरठ की खड़ी बोली और साहित्यिक हिन्दी में है। वह शौस्तेनी अपभ्रंश से निकली हुई उस युग की काव्य-भाषा थी जिस युग में ‘रासो’ की रचना हुई।^४ किन्तु जहाँ तक रचना की भाषा के काल-पक्ष की बात है, मैं डॉ० सिंह से आशिक रूप में ही सहमत हूँ। उसमें प्राकृत-अपभ्रंश के रूढ़ रूपों के अवशेष अधिक हैं और नव्य भारतीय आर्य-भाषा के रूप कम हैं, और यह बात ऊपर दी हुई मेरी युक्तियों तथा रचना के उदाहरणों से भली भाँति देखी जा सकती है। प्रस्तुत लेखक का अपना विचार है कि ‘रासो’ में पिंगल भाषा का वह

^१ ‘पुरातन प्रबन्ध संग्रह’, उपर्युक्त, प्रास्ताविक वक्तव्य, पृ० ३।

^२ ‘पृथ्वीराजरासो की भाषा’, सस्कृती प्रेस, बनारस, पृ० ४१-४३।

^३ वही, पृ० ४३-५३।

^४ पिंगल भाषा के सम्बन्ध में प्रस्तुत लेखक के विचारों के लिए दे० ‘हिंदी साहित्य कोश’ (ज्ञान मंडल, वाराणसी) में ‘पिंगल काव्य’ शीर्षक।

रूप हमें मिलता है जो 'प्राकृत पैगल' के कुछ ही पीछे विकसित हुआ था, और उसकी भाषा और 'प्राकृत पैगल' के सबसे पीछे रचे हुए छंदों की भाषा में अन्तर बहुत कम है। नीचे इस बात को दिखलाने के लिए 'प्राकृत पैगल' से वे छन्द दिए जा रहे हैं जो हमीर (सं० १२९५-१३५८) के विषय के हैं^१ :—

गाहिणी—मुंचहि सुन्दरि पाअं अप्पहि हसिऊण सुमुहि खगं मे ।

कप्पिअ मेच्छ सरीरं पेच्छइ • बभणइ तुमह धुअ हमीरो ॥ (पृ० १२७)

रोला— पभभरु दरमरु धरणि तरणि रह धुल्लिअ झपिअ ।

कमठ पिठु टरपरिअ मेरु मदर सिर कपिअ ।

कोह चलिअ हमीर बीर गभजूइ संजुत्ते ।

किअउ कट्ट हाकंद मुच्छि मेच्छह के पुत्ते ॥ (पृ० १५७)

छप्पअ— पिंधउ दिठ सण्णाह बाह उप्पर पक्खर दइ ।

बन्धु समदि रण धसउ समि हमीर बभण लइ ।

उड्डुल णहपह भमउ खग रिउ सीसह डारउ ।

पक्खर पक्खर ठेविल पेविल पठवअ अप्फालउ ।

हममीर कज्जु जज्जल भणह कोहाणल मुहमह जलउ ।

सुलताण सीस करवाल दइ तेज्जि कलेवर दिअ चळउ ॥ (पृ० १८०)

कुंडलिआ— ठोवला मारिअ ठिठिल मह मुच्छिअ मेच्छ सरीर ।

पुर जज्जला मतिवर चलिअ बीर हमीर ।

चलिअ बीर हमीर पाअ भर मेइणि कंणइ ।

दिगमग णह अंधार धूलि सूरइ रह झपइ ।

दिगमग णह अंधार आणु खुरसाणक ओवला ।

दरमरि दमसि बिपक्ख मारअ ठिठिल मह ठोवला ॥ (पृ० २४९)

गगणांग— भंजिअ मलअ चोलवइ णिबलिअ गंजिअ गुज्जरा ।

मालव राअ मलअगिरि लुक्किअ परिहरि कुंजरा ।

खुरासाण खुहिअ रण मह मुहिअ लंघिअ साअरा ।

हममीर चलिअ हा रव पलिअ रिउ गणह काअरा ॥ (पृ० २५५)

लीलावती— बर लगगइ अग्गि जलइ धह धह

कइ दिग मग णह पह अणल भरे ।

सब दीस पसरि पाइक्क लुलइ

धणि थण हर जहण दिआव करे ।

भअ लुक्किअ थक्किअ बइरि तरुणि जण

भइरव भेरिअ सद्द पळे ।

महि लोटइ पिटइ रिउ सिर डुटइ

जक्खण बीर हमीर चळे ॥ (पृ० ३०४)

जलहरण— खुरि खुरि खुदि खुदि महि घवर रव कलइ

ण ण ण ण गिदि करि तुरअ चळे ।

ट ट ट गिदि पलइ टपु धसइ धरणि धर

^१ 'प्राकृत पैगलम्', संपा० चन्द्रमोहन घोष, बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, १९०२ ।

चकमक करि बहु दिसि चमले ।
चलु दमकि दमकि बलु चलइ पइक बलु
घुलकि घुलकि करि करि चलिआ ।
बर मणु सभल कमल विपख हिअसल
हमिर बीर जब रण चलिआ ॥ (पृ० ३२७)

क्रीडाचक्र—जहा भूत बेताल णचंचंत गावंत खाए कबंधा ।
सिआ फार फेक्कार हक्का रवंता फुले कण्ण रंधा ।
कआ दुट्ट फुट्टेइ मंथा कबंधा णचंचता हसंता ।
तहा बीर हम्मीर संगाम मज्जे तुलंता जुअंता ॥ (पृ० ५२०)

इन छन्दों की भाषा पर विचार करते समय गाहिणी के—जो कि गाथा का एक प्रकार है—
उदाहरण को छोड़ देना चाहिए, क्योंकि गाथाओं की प्राकृत या प्राकृताभास में ही लिखने की
उस युग में परम्परा रही है, और 'पृथ्वीराज रासो' में भी इस परम्परा का सम्यक् निर्वाह हुआ है।
शेष छन्दों की भाषा और 'पृथ्वीराज रासो' के छन्दों की भाषा में अन्तर साधारण है।

उल्लेखनीय अन्तर एक तो यह है कि हम्मीर-विषयक इन छन्दों में ड तथा र के स्थान पर
कही-कहीं ल का प्रयोग हुआ है :—

ड > ल : पडिअ > पलिअ (पृ० २५५), पडे > पले (पृ० ३०४), पडइ > पलइ
(पृ० ३२७), फुडे ? > फुले (पृ० ५२०) ।

र > ल : लुरइ > लुलइ (पृ० ३०४), करइ > कलइ (पृ० ३२७), चमरे > चमले
(पृ० ३२७), तुरंता > तुलंता (पृ० ५२०) ।

'पृथ्वीराजरासो' में भी इस वृत्ति के उदाहरण मिलते हैं, यथा : सरिता > सलिता (७.४.१)
(९.११.३), आरुद्ध > आलुद्ध (४.२०.२२), (१२.३६.२), (८.१४.५); प्रसरण >
प्रसलन्न (७.१२.२०), रट > रल (८.२२.२); सरिग > रलिग (८.३२.३); मुकुर > मुकल
(९.४.२); आद्र > आल (९.११.१); ददुर > दादुल (९.११.२); सारिका > सालि
(१०.११.२६); मुहडा > मुहुल (१२.१३.११) । किन्तु यह मानना पड़ेगा कि 'रासो' में यह
प्रवृत्ति कम है।

उल्लेखनीय दूसरा अन्तर यह है कि हम्मीर-विषयक छन्दों में सर्वत्र 'व' के स्थान पर 'ब'
मिलता है। डॉ० सिंह ने 'रासो' के ध्वनि-विचार के सम्बन्ध की आठवीं प्रवृत्ति में, जो ऊपर दी
जा चुकी है, लिखा है कि श्रुति रूप में प्रयोग के अतिरिक्त 'व' 'रासो' 'ब' में परिवर्तित हो गया
था। किन्तु हम्मीर-विषयक इन छन्दों में तो 'व' रह ही नहीं गया है, जिन शब्दों में हिन्दी में 'ब'
कभी सुना भी न गया होगा, उनमें भी 'व' के स्थान पर 'ब' कर दिया गया है, यथा : करबाल
(पृ० १८०), कलेबर (पृ० १८०), चोलबइ (पृ० २५५), मालब (पृ० २५५), रब
(पृ० २५५), भइरब (पृ० ३०४), रब (पृ० ३२७), गावत (पृ० ५२०), रवंता (पृ० ५२०) ।
हिन्दी की किसी बोली में इन शब्दों में 'ब' नहीं आता है, 'व' ही आता है, ऐसी दशा में इस
'ब' का क्या कारण है ? स्पष्ट ही कारण यह है कि 'प्राकृत पैगल' के सम्पादक को जहाँ भी 'व'
मिला, उसने कदाचित् अपनी भाषा की प्रवृत्ति से प्रभावित होकर सर्वत्र उसे 'ब' कर दिया, यहाँ
तक कि 'व' इन छन्दों में देखने को भी नहीं रह गया ! असम्भव नहीं कि इसी प्रकार के प्रयासों के फल-
स्वरूप यह धारणा बन गई हो कि हमारी बोलियों में श्रुति के रूप में प्रयोग के अतिरिक्त 'ब' का अस्तित्व
ही किसी समय समाप्त हो गया था, और 'रासो' में भाषा की यह बाढ़ में आई हुई स्थिति व्यापक
रूप से पाई जाती है। 'व' और 'ब' अधिकतर एक प्रकार से लिखे जाने लगे थे, यह अवश्य हुआ था।

किंतु समस्त 'व' 'ब' में बदल गए, अथवा यह भी कि श्रुति के रूप में उसके प्रयोग के अतिरिक्त 'व' रह ही नहीं गया था, मेरी समझ में ठीक मत नहीं है। उदाहरण के लिए 'रासो' के लघुतम पाठ की शेष अन्य प्रति मो० (स० १६९७) में ही अनेक स्थलों पर 'ब' स्पष्ट बना हुआ है और 'व' भी।

इन दोनों के बाद हमीर-सम्बन्धी छन्दावली तथा 'पृथ्वीराज रासो' के छन्दों में भाषा-विषयक उल्लेखनीय अन्तर उद्धृत स्वर तथा श्रुति-प्रयोग मात्र का रह जाता है। यद्यपि उद्धृत स्वर का सर्वथा अभाव 'रासो' में नहीं है, यह सुगमता से देखा जा सकता है, शेष प्रवृत्तियाँ दोनों में लगभग समान हैं। इसलिए मेरी राय में 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा हमीर विषयक ऊपर उद्धृत छन्दों की भाषा से थोड़े ही बाद की है, यही मानना अधिक युक्ति-संगत होगा।

इस प्रसंग में जिस प्रकार हमने ऊपर हमीर-विषयक छन्दों को देखा है, जिनकी रचना संभवतः हमीर के जीवन-काल में सं० १२९५ तथा १३५८ के बीच हुई होगी, उसी प्रकार श्रीधर कृत 'रण मल्ल छन्द'^१ के छन्दों को भी देख सकते हैं, जिनकी रचना सं० १४५४ में मानी गई है^२ :—

चुपई—हल ऐयार हकारवि बुल्लइ ।

भुजबलि सबल मुट्टि दल घल्लइ ।

गयु खान खुद नगतलि चहिलभ ।

शक्दल दहु दिसि दिख डहल्लिअ ॥ २६ ॥

मलिक मंत्र मज्झिम निशि किङ्कड ।

तब हेजव फुरमाण स दिङ्कड ।

ईडर गढि अस्सइय जडि चहिलड ।

जइ रणमल्ल पासि इम बुल्लिड ॥ २७ ॥

सिरि फुरमाण धरवि सुरताणी ।

धर दय हाल माल दीवाणी ।

भगर गरास दास सवि छोडिअ ।

करि चाकरी खान कर जोडिअ ॥ २८ ॥

रा असि सरिसु बाहु उठभारिअ ।

बुल्लइ हठि हेजव हक्कारिअ ।

मुझ सिर कमल मेच्छ पय लगगइ ।

तु गयणङ्गणि भाण न उगगइ ॥ २९ ॥

सिंह विलोकि—जां अम्बर पुडतलि तरणि रमइ ।

तां कमधज कंध न धगड नमइ ।

वरि वडवानल तण झाल शमइ ।

पुण मेच्छ न आपूं चाच किमइ ॥ ३० ॥

पुण रण रस जाण जरइ जडी ।

गुण सीगणि खञ्जी खन्ति चडी ।

छत्तीस कुलह बल करिसु धणूं ।

पय मगिसु रा हमीर तणूं ॥ ३१ ॥

^१ 'आचीन गुर्जर काव्य', संपा० केशवलाल हर्षादराय ध्रुव, गुजरात वर्नाकुलर सोसाइटी, अहमदाबाद, सं० १९६३, पृ० ५-७ ।

^२ वही, प्रस्तावना, पृ० ११ ।

दल दारुण दुष्करखान जयरी ।
 मिह भगउ अगाइ खगारयि ।
 हिव पट्टण पद्धरि धरिसु पय ।
 नइ विनडिसु सत्तिरि सहस सयं ॥ ३२ ॥
 मिह सङ्गरि समसुदीन नडी ।
 पडि भगउ अङ्गो • अङ्गि भिडी ।
 जव मण्डिसि मुझ रणमल्ल समं ।
 तव देखिसि लसकरि सत्रिसु जमं ॥ ३३ ॥
 मम मोडि म मण्डि मलिकक घणूं ।
 हूं समरि विडारण मेच्छ तणु ।
 जव ऊठिसि हठि हक्कन्त रणि ।
 तव न गणू त्रण सुरताण तणि ॥ ३४ ॥
 बल बुद्धि म वरिल मलिकक कहि ।
 म मवरणि सिमुणसिम दूत मुहि ।
 जव चम्पिसि इंडर सिहर तलं ।
 तव पेक्खिसि मुह रणमल्ल बल ॥ ३५ ॥

इन पंक्तियों में यह सुगमता से देखा जा सकता है कि:—

- (१) उद्धृत स्वर के स्थान पर सर्वत्र य, व, श्रुति आ गई है ।
- (२) व्यंजन-द्वित्वों की बहुलता है, जिनमें से कुछ तो प्राकृत-अपभ्रंश की परंपरा में हैं, और कुछ छंदोनुरोध-अथवा ओजपूर्ण शैली की आवश्यकताओं के कारण आए हुए हैं । किंतु कहीं-कहीं पूर्ववर्ती स्वर को दीर्घ करके व्यंजन द्वित्व को सरलीकृत करने की भी प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है ।
- (३) प्रायः सभी कारकों में निर्विभक्तक सश शब्द प्रयुक्त हुए हैं, और परसर्गों का विकास पूर्ण रूप से नहीं हुआ है ।
- (४) शब्द-समूह की दृष्टि से यह रचना काफी विकसित है, फारसी के शब्द बहुतायत से आ गए हैं ।

फलतः 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा 'प्राकृत पैंगल' के हम्मीर-सबन्धी छंदों तथा 'रणमल्ल छंद' की भाषाओं के बीच की लगती है ।

१४. 'प्रथ्वीराज रासो'

में

प्रयुक्त विदेशी शब्द

नीचे 'रासो' के प्रस्तुत पाठ में व्यवहृत विदेशी शब्दों की सूची दी जा रही है। इस सूची में व्यक्तिगत नाम नहीं रखे गए हैं, फिर भी देखा जा सकता है कि विदेशी शब्दों को यह सूची छोटी नहीं है। पुनः ये विदेशी शब्द शहाबुद्दीन के प्रसंगों में ही नहीं, प्रायः सभी प्रसंगों में आते हैं, यद्यपि शहाबुद्दीन के प्रसंगों में इनका व्यवहार अन्यत्र हुए इनके व्यवहार की तुलना में लगभग ६-७ गुना अधिक हुआ है, जो कि कदाचित् स्वाभाविक भी है। एक बात और इस प्रसंग में ध्यान देने योग्य है : शहाबुद्दीन के प्रसंगों के बाहर प्रयुक्त विदेशी शब्द अधिकतर ऐसे हैं जिनके भारतीय पर्याय प्रचलित रहे हैं और इस ग्रंथ में भी प्रयुक्त हैं। अतः ऐसा लगता है कि जिस समय इस ग्रन्थ की रचना हुई, शहाबुद्दीन के प्रसंगों के बाहर प्रयुक्त विदेशी शब्द उत्तर भारत की बोलचाल की भाषा में आ चुके थे, और वे उसके अंग बन गए थे।

शहाबुद्दीन के प्रसंगों के बाहर प्रयुक्त शब्द इस प्रकार हैं:—

रिंद (१.३.२०), दरब्बान (२. ३.५२), बग्ग (< बाग २. ५.२५), दरबार (४.२५.३६), दरबार (५.१.१), दरबार (५.३.७), सुरतान (५.१३.८), दरिआइ (५.१३.२२), बंदा (५.१३.२३), मीर (५.१३.२३), दरबार (५.४२.२), जोर (५.४८.२), तेग (६.२३.१०), तषत (६.२३.१२), रुष (७.१.१), निसान (७.३.१), दरिआइ (७.४.८), सहनाइ (७.४.९), नफेरिय (७.४.९), समसेर (७.४.१५), फवज (७.४.२३), फोज (७.६.१६), फोज (७.६.१७), जिरह (७.६.३१), जंगी (७.६.३१), तबल (७.६.४१), तंदूर (७.६.४१), जगी (७.६.४१), सहनाइ (७.६.४७), नफेरी (७.६.४९), नवरंग (७.६.४९), मगूल (= मगोल ७.१०.९), वाजू (७.१०.१५), सोर (७.१०.१७), निसान (७.१२.३), दुम्मी (= दुमवाले ७.१४.२), फोज (७.१४.४), हजार (७.१५.१७), हजार (७.१६.३), मनार (< मीनार ७.१६.४), जग (७.१७.१२), मीर (७.१७.२१), कम्मान (७.१७.२३), मीर (७.१९.२), गाजी (७.३१.११), हीदू (८.२.५), तुरक (८.२.५), कमान (८.९.२१), कसीस (< कशिश ८.९.२२), मीर (८.१०.१), महिल (९.२.२), महिल (९.३.१), हरम्य (९.४.१), सोर (९.६.१), सोर (९.११.२), दर (१०.१५.१), गूदरना (= गुजारना १०.१६.२), कगार (< कागज १०.२०.१), महिल (१०.२१.१), रुष (१०.२१.२), कगार (< कागज १०.२४.१)।

शहाबुद्दीन के प्रसंगों में प्रयुक्त शब्द इस प्रकार हैं:—

हजार (११.१.२), हजार (११.२.२), हजार (११.३.१), देवान (< दीवान ११.५.२), दीन (११.६.१), सुलतान (११.७.६), आलम आलम (११.७.३), मरदान (११.८.२),

हमीर (< अमीर ११.८.३), हिन्दू (११.८.३), दीन (११.८.३), रमजान (११.८.३), निवाज (< नमाज ११.८.४), बिकाज (< बेकाज ११.८.४), गुम्मान (११.८.४), दुरोग (११.८.६), दोजक (११.८.६), मसूति (< मशवत ११.९.१), कुरान (११.९.१), साहि आलम (११.१०.१), तेग (११.१०.६), कमान (११.१०.६), पातिसाहि (११.११.२), निसान (११.११.१), सुरतान (११.१२.१), जग (११.१२.७), तेग (११.१२.७), बाज (११.१२.१०), हमीर (< अमीर ११.१२.१७), कुफार (< कुफ्फार ११.१४.१), फरजंद (११.१४.१), साहि (१२.१.१) रह (< राह १२.१.६), रह (राह १२.२.१), पीर (१२.४.२), दरबार (१२.६.२), दरवान (१२.७.१), परदार (पहरादार १२.८.१), दर (१२.९.२), दर (१२.१०.२), लगभग ढाई दर्जन विदेशी मुसलमान जातियों के नाम (१२ : ११.१-८), सेषजादा (१२.११.९), पठाण (१२.११.९), साहि (१२.११.१०), हदफ (१२.१२.२), सलाम (१२.१३.१), मीर (१२.१३.१), फोज (१२.१३.८), मसंद (१२.१३.३), नजरिमंद (नजरमदी ? १२.१३.४), जीन (१२.१३.१०), अदब्ब (१२.१३.११), ताज (१२.१३.१३), साहि (१२.१३.१३), फरमान (१२.१४.१), सुरतान (१२.१४.२), बे (१२.१४.२), साहि (१२.१५.५), सुरतान (१२.१५.८), अदब्ब (१२.१५.११), हदप्प (१२.१५.१३), फुरमान (१२.१५.१५), महिमान (१२.१५.१६), महिमान (१२.१६.१), हदफ (१२.१७.१), सुरतान (१२.१७.१), सुरतान (१२.१८.१), दर (१२.१८.१), निसान (१२.१८.१), दुनिआ (१२.१९.४), अरदास (< अर्जदास्त १२.२०.१), आदमी (१२.२०.१), सुरतान (१२.२०.२), फकीर (१२.२१.१), करामाति (१२.२१.१), मियाँ (१२.२२.१) मलिक (१२.२२.१), षान (१२.२२.१), हज्जूर (१२.२३.१), पातसाहि (१२.२३.२), दुरोग (१२.२८.२), पातिसाहि (१२.२९.१), सुरतान (१२.२९.४), मुहाल (१२.३४.२), बकस (< बख्श १२.३९.४), साहि (१२.४०.२), फुरमान (१२.४०.६), पातसाहि (१२.४१.२), मरद (१२.४१.४), फुरमान (१२.४१.५), पातिसाहि (१२.४२.२), फुरमान (१२.४२.६), फुरमान (१२.४३.२), साहि (१२.४४.२), कमान (१२.४६.१), फुरमान (१२.४८.१), फुरमान (१२.४८.१), फुरमान (१२.४८.३), साहि (१२.४८.६), षा (१२.४८.६), साह (१२.४९.१), असमान (< आसमान १२.४९.२) ।

यहाँ पर यह जान लेना उपयोगी होगा मुसलमान शासकों से हुए युद्ध-विषयक प्राचीन हिंदी ग्रंथों में विदेशी शब्दों के प्रयोग की स्थिति पूर्ण रूप से वही है जो 'रासो' के उन अंशों में है जो शहाबुद्दीन से संबंधित हैं । श्रीधर रचित 'रणमल्ल छन्द', जिसकी रचना स० १४५४ में मानी गई है^१, तथा पद्मनाभ रचित 'कान्हड दे प्रबन्ध' में, जिसकी रचना स० १५१२ में हुई थी^२, 'रासो' के प्रायः उपर्युक्त सभी शब्द और लगभग इसी अनुपात में आते हैं ।

—:—

^१ दे० 'प्राचीन गुर्जर काव्य,' संपा० केशवलाल हर्षदराय ध्रुव, गुजरात वर्नाकुलर सोसाइटी, अहमदाबाद, प्रस्तावना, पृ० ११ । रचना का पाठ भी इस काव्य संग्रह में पृ० १ से १४ तक दिया हुआ है ।

^२ 'कान्हड दे प्रबन्ध', संपा० कान्ति लाल बलदेवराम व्यास, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर, खंड ४, छन्द ३४३ ।

१५. 'पृथ्वीराज रासो'

का

रचना-काल

मुनि जिनविजय द्वारा संपादित 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में दो प्रबन्ध ऐसे हैं जो पृथ्वीराज तथा जयचन्द से सम्बन्धित हैं। इन दो प्रबन्धों में चार ऐसे छन्द उद्धृत हुए हैं जिनमें से तीन नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासो' में भी पाए जाते हैं। इसलिए इन प्रबन्धों से चन्द तथा 'पृथ्वीराज रासो' के समय पर एक नया और महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ा है।

मुनि जी ने 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के प्रास्ताविक वक्तव्य में 'संग्रह के कुछ महत्व के प्रबन्ध' शीर्षक देते हुए इन दो प्रबन्धों के सम्बन्ध में विस्तृत रूप से विचार भी किया है। उनका कथन है कि "इस संग्रह के उक्त प्रकरणों में जो ३-४ प्राकृतभाषा-पद्य उद्धृत किए हुए मिलते हैं, उनका पता हमने उक्त 'रासो' में लगाया है, और इन चार पद्यों में तीन पद्य, यद्यपि विकृत रूप में लेकिन शब्दशः, उसमें हमें मिल गए हैं। (इससे यह प्रमाणित होता है कि चन्द कवि निश्चिततया एक ऐतिहासिक पुरुष था और वह दिल्लीश्वर हिंदू सम्राट् पृथ्वीराज का समकालीन और उसका सम्मानित एवं राजकवि था।) उसीने पृथ्वीराज के कीर्तिकलाप का वर्णन करने के लिये देश्य प्रावृत्त भाषा में एक काव्य की रचना की थी जो 'पृथ्वीराज रासो' के नाम से प्रसिद्ध हुई।" ^१ मुनि जी के इस निष्कर्ष के आधार पर है, यह उन्होंने स्पष्ट रूप से नहीं कहा है, किंतु इतना कहने के बाद ही उन्होंने उक्त तीन छन्दों के पाठ प्राप्त संग्रहों तथा नागरीप्रचारिणी सभा के 'पृथ्वीराज रासो' के संस्करण से तुलना के लिए देते हुए प्रबन्धों के पाठ की भाषा-विषयक प्राचीनता पर जो बल दिया है ^२, उससे अनुमान यही होता है कि उनके कथन का मुख्य आधार कदाचित् वही है।

यहाँ पर प्रश्न यह हो सकता है कि भाषा के स्वरूप का साक्ष्य क्या इतना निश्चयात्मक है? भाषा का जो स्वरूप प्रबन्धों के इस पाठ में मिलता है, वह विद्यापति की 'कीर्तिलता' तक अनेक-नेक अन्य रचनाओं में भी मिलता है, इसलिए यदि उसी के आधार पर निष्कर्ष निकालना हो तो कदाचित् हम इतना ही कह सकते हैं कि भाषा की दृष्टि से इन छन्दों की रचना १४०० ई० के पूर्व की होनी चाहिए। केवल इतने साक्ष्य के आधार पर यह परिणाम निकालना कि चन्द "दिल्ली-श्वर हिंदू सम्राट् पृथ्वीराज का समकालीन और उसका सम्मानित एवं राजकवि था" तर्क-सम्मत नहीं लगता है। इन प्रबन्धों में यदि रचना का कम से कम इतना अंश उद्धरण के रूप में उपलब्ध होता कि हम ऐतिहासिक दृष्टि से भी उसकी परीक्षा कर सकते, तो हम भाषा की सहायता लेते हुए

^१ पुरातन प्रबंध-संग्रह, सिंधी जैन ग्रंथ माला, भातीय विद्याभवन, बंबई, प्रास्ताविक वक्तव्य, पृ० ८, ९।

^२ वही।

इस सम्बन्ध में किसी अंग तक निश्चयात्मक रूप से कुछ कह सकते थे। केवल उद्धृत तीन-चार छन्दों के बल पर इस प्रकार का परिणाम हम नहीं निकाल सकते।

यदि ध्यान से देखा जावे तो ज्ञात होगा कि जो चार छन्द उक्त प्रबन्धों में चन्द के कहकर उद्धृत किए गए हैं, उनमें से दो, जो जयचन्द प्रबन्ध में आते हैं, चन्द के नहीं जल्ह के हैं। ये दो छन्द निम्नांकित हैं:—

(१) त्रिणिह लक्ष तुषार सबल पाखरीअई जसुहय ।
चऊदसई मयमत दति गज्जति महामय ॥
वीस लक्ख पायकक सफर फारकक षणुद्धर ।
लहूमहु भरु बलुयान मंख कु जाणइ तांह पर ॥
छत्तीस लक्ष नराहिवइ विहि विनडिओ हो किम भयउ ।
जइचद न जाणउ जरहु कह गयउ कि मुउ कि वरि गयउ ॥

(२) जइतचदु चक्कवइ देव तुह दुमह पयाणउ ।
धरणि धमवि उद्धमइ पडइ रायह भंगाणओ ॥
सेसु मणिहि सकियउ सुक्कु हयलरि मिरि खडियो ।
तुट्टओ सो हरधवलु धूलि जसु चिय तणि मडिओ ॥
उच्छलीड रेणु जसगि गय सुक्कि ब (ज) ल्ह सच्चउ चवई ।
वग्ग इंदु बिंदु भुय जुअलि सहस नयण किण परि मिलइ ॥

इनमें से ऊपर उद्धृत प्रथम छन्द नागरीप्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासो' में अवश्य मिलता है,^१ किंतु यह दर्शनीय है कि इस छन्द को 'रासो' में स्थान देने के लिए प्रक्षेपकर्ता को छन्द की अन्तिम पंक्ति से 'जल्हु' का नाम निकाल कर उसमें 'चन्द' का नाम रखना पड़ा और तभी यह सम्भव हो सका। वहाँ 'रासो' में उसका पाठ है:—

जैचंद राइ कवि चंद कहि उदधि बुडि कै घर लियौ ।

इस प्रसंग में इतना और जान लेने योग्य है कि सभाद्वारा प्रकाशित रचना के वृहत् पाठ के अतिरिक्त उसके अन्य किसी पाठ की प्रतियों में ऊपर उद्धृत प्रथम छन्द नहीं मिलता है, और ऊपर उद्धृत द्वितीय छन्द तो उसके किसी भी पाठ की प्रतियों में नहीं मिलता है। फलतः ये दो छन्द निश्चित रूप से जल्ह के हैं, चन्द के नहीं हैं, और चन्द की रचना का स्वरूप अथवा उसका समय निर्धारित करते समय इनका आधार नहीं ग्रहण करना चाहिए।

किंतु प्रबन्ध लेखक इन दो छन्दों को 'जयचन्द प्रबन्ध' में उद्धृत करके ही सतोष नहीं करता है। वह ऊपर उद्धृत प्रथम छन्द के पूर्व कहता है, 'तदनु चन्द बलिह भट्टेन श्री जैचन्द्र प्रत्युक्तम्'; और इसी प्रकार वह ऊपर उद्धृत द्वितीय छन्द के पूर्व करता है, 'पतनागत वर्षद्वयेनोक्तम्। तेनैव पूर्वमुक्तम्।' इससे यह ज्ञात होगा कि प्रबन्ध-लेखक विश्वसनीय नहीं है, और ऐसे प्रबन्धों के अंतर्साक्ष्य के आधार पर पृथ्वीराज और चन्द के सम्बन्ध में उपर्युक्त प्रकार के परिणाम निकालना किसी प्रकार भी युक्ति-संगत न होगा।

फिर भी इन प्रबन्धों का बहिर्साक्ष्य महत्वपूर्ण है, और उसके आधार पर चन्द तथा जल्ह के समय पर कुछ विचार किया जा सकता है। नीचे हम उसी के आधार पर चन्द तथा जल्ह के समय के सम्बन्ध में विचार करेंगे।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' तथा 'जयचन्द प्रबन्ध' नाम के ऐसे दो प्रबन्ध हैं जिनमें उल्लिखित छन्द मिलते हैं। इनमें से 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' तो दो प्रबन्ध संग्रहों में

^१ 'पृथ्वीराज रासो', नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ० २५०२।

मिलता है, जिन्हे मुनि जी ने 'पी' तथा 'बी' कहा है, और 'जयचन्द प्रबन्ध' केवल 'पी' में मिलता है। और इन दोनों प्रबन्ध-संग्रहों की एक-एक प्रतियाँ ही मिली हैं, अतः उन्हीं को लेकर हमें आगे बढ़ना होगा। नीचे दी हुई सूचनाएँ 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के प्रास्ताविक वक्तव्य से हैं।

'पी' संग्रह में ४० प्रबन्ध हैं और 'बी' संग्रह में ७१। किंतु 'बी' प्रारम्भ में तथा बीच-बीच में भी खण्डित है, इसलिए उसके १७ प्रबन्ध अनुपलब्ध हैं, केवल ५४ प्रबन्ध प्राप्त हैं। 'पी' इस प्रकार खण्डित नहीं है, इसलिए उसके समस्त प्रबन्ध प्राप्त हैं। 'पी' के उपर्युक्त ४० तथा 'बी' के उपर्युक्त ५४ प्राप्त प्रबन्धों में से, जिनकी सूची विद्वान् संपादक ने ग्रंथ के प्रास्ताविक वक्तव्य में दी है, अनेक प्रबन्धों के शीर्षक ऐसे हैं जो समान हैं। उन समस्त प्रबन्धों का पाठ भी दोनों में समान है, यह कहना उपर्युक्त प्रतियों को देखे बिना सम्भव नहीं है। 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में केवल निम्नलिखित आठ प्रबन्ध ऐसे हैं जो दोनों से समान रूप से संकलित किए गए हैं, कारण यह है कि 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में केवल वे ही प्रबन्ध संकलित हुए हैं जिनका सम्बन्ध मेरुतुङ्ग के 'प्रबन्ध चिन्तामणि' के प्रबन्धों से है:—

१. विक्रम सम्बन्धे रामराज्य कथा प्रबन्ध
२. वसाह आभड प्रबन्ध
३. कुमारपाल कारिताभारि प्रबन्ध
४. वस्तुपाल तेजःपाल प्रबन्ध
५. पृथ्वीराज प्रबन्ध
६. लाखण राउल प्रबन्ध
७. न्याये यशोवर्म प्रबन्ध
८. अम्बुचीच नृप प्रबन्ध

और यह संख्या 'पी' और 'बी' के पाठों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए पर्याप्त है।

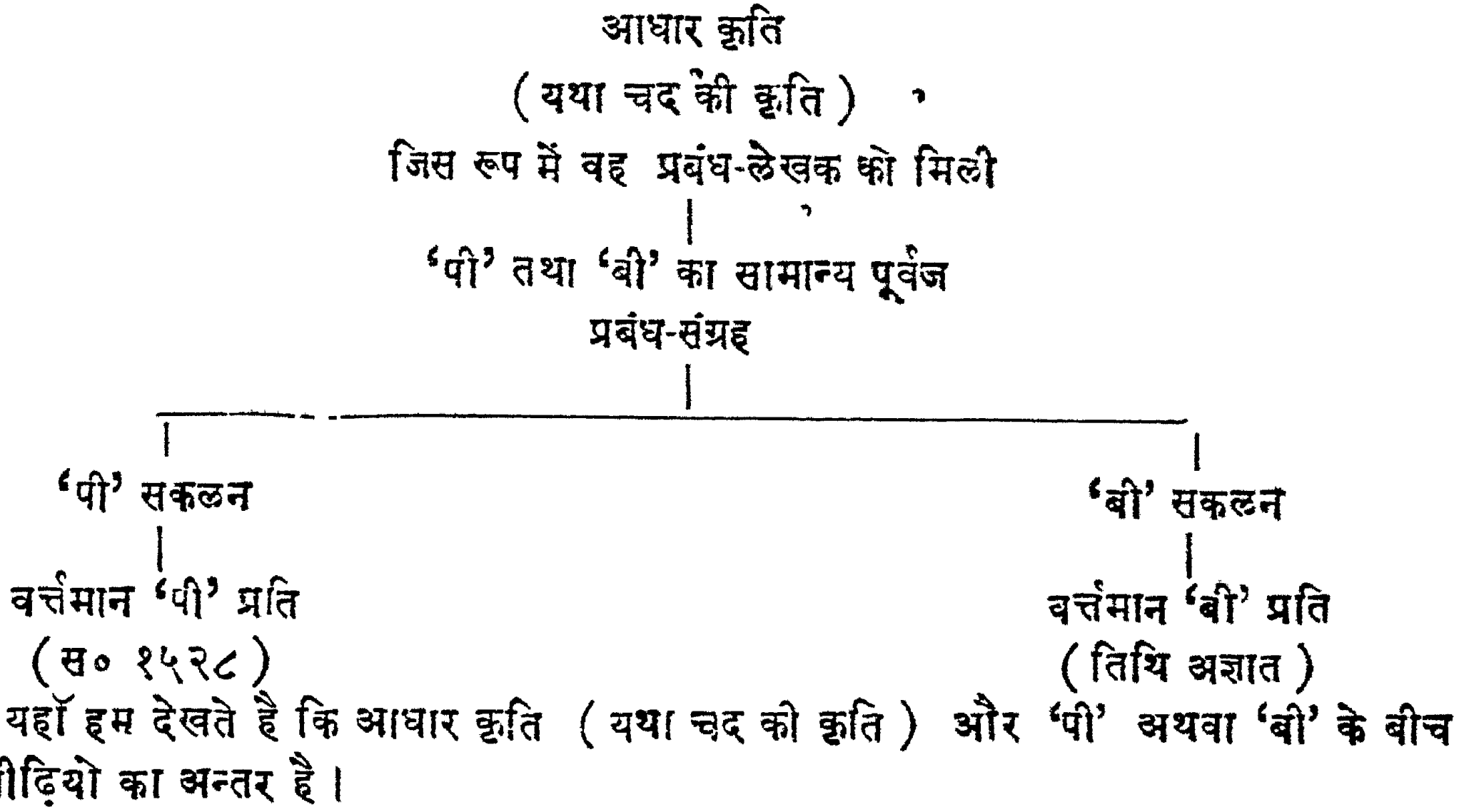
इन आठ प्रबन्धों का जो पाठ 'पी' तथा 'बी' में मिलता है, उससे निम्नलिखित बातें नितांत स्पष्ट रूप से ज्ञात होती हैं:—

१. दोनों संग्रहों में इन आठ प्रबन्धों का जो पाठ मिलता है, उसका पूर्वज एक ही है, कारण यह है कि दोनों संग्रहों में इनका पाठ समान है।

२. दोनों संग्रहों में इन आठ प्रबन्धों के पाठ उस सामान्य पूर्वज की दो स्वतन्त्र शाखाओं की प्रतियों से लिए गए हैं, अर्थात् दोनों संग्रहों के आदर्श भिन्न-भिन्न और स्वतन्त्र शाखाओं के हैं, क्योंकि दोनों में समान पाठ-प्रमाद, समान-पाठभ्रंश अथवा समान-प्रतिलिपि-प्रमाद एक ही स्थल पर नहीं पाए जाते हैं।

३. 'बी' में पाठ-वृद्धि के रूप में प्रक्षेप-क्रिया दर्शित होती है। कुछ स्थानों पर उसमें अतिरिक्त छन्द और अतिरिक्त वाक्य मिलते हैं (यथा : वसाह आभड प्रबन्ध, कुमारपाल कारिताभारि प्रबन्ध, वस्तुपाल तेजःपाल प्रबन्ध, तथा न्याये यशोवर्म नृप प्रबन्ध में); कहीं-कहीं पर पूरा अनुच्छेद या प्रसंग ही बढ़ा हुआ है (यथा : वस्तुपाल तेजःपाल प्रबन्ध में), और कहीं-कहीं पर जो बात 'पी' में संक्षेप में कही गई है, 'बी' में कुछ बढ़ाकर कही गई है (यथा : वसाह आभड प्रबन्ध तथा वस्तुपाल तेजःपाल प्रबन्ध में)। 'पी' में भी उपर्युक्त तीनों प्रकार की प्रक्षेप-क्रिया दिखाई पड़ती है, यद्यपि मात्रा में 'बी' से कुछ कम (यथा : वस्तुपाल तेजःपाल प्रबन्ध में)। हो सकता है कि इनमें से दो-एक उदाहरण प्रक्षेप के न हो, सामान्य लेखन-प्रमाद के कारण उत्पन्न हो, किंतु इससे निष्कर्ष में कोई अन्तर नहीं पड़ता है।

४. यह पाठ वृद्धि वर्तमान 'पी' तथा 'बी' की किसी पूर्ववर्ती पीढ़ी में हुई, क्योंकि वर्तमान 'पी' तथा 'बी' की प्रतियों में पाठ-वृद्धि के रूप में लिखे हुए कोई वाक्य या छन्द नहीं मिलते हैं। इन तथ्यों को हम निम्नलिखित रूप में व्यक्त कर सकते हैं—



यहाँ तक तो आधार कृति के उस रूप की बात रही जो प्रबंध-लेखक को प्राप्त था। किंतु अन्यत्र हम देखते हैं कि वह रूप प्रक्षिप्त था और हमें ऐसे रूप प्राप्त हैं जिनमें वह प्रक्षेप नहीं आता है: 'रासो' के लघुतम पाठ की दो प्रतियाँ, जैसा हम देख चुके हैं, प्राप्त हैं किंतु दोनों में से किसी में भी 'पृथ्वीराज-प्रबंध' का 'अगह मगह दाहिमउ' वाला छन्द नहीं मिलता है, 'रासो' लघुपाठ की भी किसी प्रति में वह छन्द नहीं मिलता है; केवल उसके मध्यम तथा बृहत् पाठों की प्रतियों में वह छन्द मिलता है और वह भी एक-दूसरे से बहुत भिन्न-भिन्न स्थानों पर।^१ और प्रस्तुत संस्करण 'रासो' के लघुतम पाठ से भी लघुतर है—जिसमें लघुतम पाठ के भी कुछ अंश प्रक्षिप्त प्रमाणित होने के कारण नहीं रक्खे गए हैं।^२ इसलिए अप्रक्षिप्त 'रासो' का पाठ प्रबंध-लेखक की उपर्युक्त आधार-कृति के पाठ से कम से कम एक पीढ़ी ऊपर अवश्य पड़ता है और इस प्रकार मूल 'रासो' के पाठ और वर्तमान 'पी' प्रति में कम से कम चार पीढ़ियों का अन्तर होता है। यदि 'रासो' के मूल पाठ और प्रबंध-लेखक के आधारभूत पाठ के बीच ५० वर्षों का समय तथा शेष प्रत्येक पीढ़ी के लिए पच्चीस वर्षों का^३ समय रक्खे तो प्रस्तुत संस्करण का पाठ सं० १४०० के लगभग जा पहुँचता है।

रचना कथा-नायक की समकालीन नहीं हो सकती है, क्योंकि जैसा हमने अन्यत्र देखा है उसके प्रस्तुत संस्करण के पाठ में भी कुछ न कुछ इतिहास-असम्मत विवरण है,^४ उस में भी अनेक ऐसे शब्द

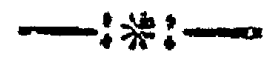
^१ दे० इसी भूमिका में अन्यत्र 'पुरातन प्रबंध संग्रह और पृथ्वीराज रासो' शीर्षक।

^२ दे० इसी भूमिका में अन्यत्र 'रचना का मूल रूप' शीर्षक।

^३ पहले (नागरीप्रचारिणी पत्रिका वर्ष ६०, अंक ३-४, पृष्ठ २३९) मैंने प्रत्येक पीढ़ी के लिए पचास वर्षों का समय मानकर रचना-काल का अनुमान किया था, किंतु जैन महात्माओं में ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ करना एक पवित्र कार्य माना जाता रहा है, इसलिए प्रति पीढ़ी के लिए पच्चीस वर्षों का समय पर्याप्त होना चाहिए।

^४ दे० इसी भूमिका में अन्यत्र 'पृथ्वीराजरासो की ऐतिहासिकता' शीर्षक।

आते हैं जो लगता है कि उत्तरी भारत की बोलचाल की भाषा में सम्मिलित हो गए थे^१ और उसकी भाषा भी 'प्राकृत पैगल' में संकलित हम्मोर के सम्बन्ध के छन्दों (रचना-काल सं० १३५८—अर्थात् हम्मीर की देहाततिथि) और 'रणमल्ल छन्द' (रचना-काल सं० १४५४) के बीच की प्रतीत होती है ।^२ इसलिए सभी दृष्टियों से 'पृथ्वीराज रासो' की रचना सं० १४०० के लगभग हुई हो मानी जा सकती है, इससे पूर्व नहीं ।



^१ दे० इसी भूमिका में अन्यत्र 'पृथ्वीराजरासो में प्रयुक्त विदेशी शब्द' शीर्षक ।

^२ दे० इसी भूमिका में अन्यत्र 'पृथ्वीराजरासो की भाषा' शीर्षक ।

१६. 'पृथ्वीराज रासो'

का रचयिता

कवि चंद रचना में दो रूपों में आता है, एक तो कथा-नायक के कवि-मित्र के रूप में और दूसरे रचना के कवि रूप में। केवल रचना के कवि के रूप में वह प्रस्तुत संस्करण में इने-गिने स्थलों पर ही दिखाई पड़ता है, और इन स्थलों पर 'चंद' या 'चंद विरहिआ' नाम से वह आता है :—

चंद या कवि चंद : १४.१६, ७.५.५, ८.३४.५, ९.१.४, १२.४८.१ तथा १२.४९.६।

चंद विरहिआ : ८.११.६ तथा ८.१४.६।

कथा-नायक के कवि-मित्र के रूप में ही वह रचना में प्रयुक्त दिखाई पड़ता है, और इन स्थलों पर वह प्रस्तुत संस्करण में निम्नलिखित भिन्न भिन्न नामों से आता है :—

चंद या कविचंद : २.१३.२, २.१४.२, २.१६.४, २.२१.१, २.२४.२, २.२५.२, २.३५.२, २.४२.१, ४.४.१, ४.१४.१२, ४.१६.१, ५.२५.३३, ५.१.१, ५.२.१, ५.३.७, ५.१५.१, ५.१६.२, ५.३१.१, ५.४८.१, ६.५.२७, ७.१.२, ७.५.५, ७.२०.३, ७.३१.२१, ८.७.१, १०.१.४, १०.२.१, १०.४.१, १०.५.१, १०.१४.१, १०.१५.१, १०.१९.२, १०.२२.१, १२.१३.२२, १२.१.६, १२.२.१, १२.६.१, १२.१.९, १२.१५.१३, १२.१५.१६, १२.१६.१, १२.१७.२, १२.१७.३, १२.२२.२, १२.२२.१, १२.२३.३, १२.२४.१, १२.२५.१, १२.३२.३, १२.३३.१, १२.३३.१९, १२.३४.२, १२.४२.१, १२.४४.१, १२.४७.२।

केवल 'कवि' या 'राजकवि' शब्द का भी प्रयोग स्थान-स्थान पर हुआ है, जिसका स्थल-निर्देश करना अनावश्यक होगा।

चंद विरहिआ : ३.२७.६, ३.२९.३, ४.१.२, ५.१९.६, ५.४५.१, १२.४०.१, १२.४९.१।

चंद वरदाइ या वरदाइ : ३.३०.४, ५.९.१, १०.३.२, १२.४२.३।

भट्ट चंद या भट्ट : २.२८.१, २.३९, ४.८.२, ५.२१.२, १०.२४.१, १२.७.७, १२.१४.२, १२.१५.२, १२.१९.२, १२.३०.१, १२.४१.१।

चंडेय : २.१९.४।

चंड चंद : ५.१३.१९।

कवियन : ४.१३.१, १२.१०.१।

उपर्युक्त प्रयोगों से निम्नलिखित बातें ज्ञात होती हैं :—

(१) 'रासो' का कवि तथा कथा-नायक का कवि-मित्र रचना में एक ही व्यक्ति के रूप में आते हैं।

(२) 'रासो' के कवि के लिए 'चंद', 'कवि चंद' या 'चंद विरहिया' नाम आते हैं और कथा-नायक के कवि-मित्र के लिए भी उसी प्रकार 'चंद', 'कवि चंद' या 'चंद विरहिया' नाम आते हैं ।

(३) कथा-नायक के कवि-मित्र के कुछ और नाम भी आते हैं जो 'रासो' के कवि के नामों में नहीं मिलते हैं, ये हैं 'चंद वरदाइ' या 'वरदाइ' मात्र, 'भट्ट चंद' या 'भट्ट' मात्र, 'चंडिय', 'चंड चंद' और 'कवियन' ।

अतः 'विरहिया', 'वरदाइ', 'भट्ट', 'चंडिय', 'चंड', तथा 'कवियन' उपाधियाँ विचारणीय हो जाती हैं ।

'विरहिया', या 'विरहिया', जैसी वह प्रायः ना० प्रति में पाया जाता है, विरुद (प्रशस्ति) गान करने वाले के अर्थ में आता है ।

'वरदाइ' या 'वरदाइ' शब्द का अर्थ भाषा के सामान्य नियमों के अनुसार 'वर देने वाला' होना चाहिए किन्तु चंद के संबन्ध में इस उपाधि का प्रयोग 'वर प्राप्त' के अर्थ में हुआ लगता है । एक स्थान पर कथा-नायक और उसके कवि-मित्र की कहा-सुनी में कवि का 'हर' से 'सिद्धि' का 'वर' प्राप्त हुए होने का उल्लेख भी आता है :—

कहा भुजग कहा उदे सुर निकमु कव्व कवि चंडि ।
कइ कयमास बताहि मो कइ हर सिद्धीवर छंडि ॥ (३.२३)
जउ छंडइ सेसह धरणि हर छंडइ विष कंदु ।
रवि छंडइ तप ताप कर तउ वर छंडइ कवि चंडु ॥ (३.२४)

किन्तु निम्नलिखित कथन से वनित होता है उसे सरस्वती का वर प्राप्त था :—

अहो चंद वरदाइ कहावहु ।
कनवज्जह दिषन नृप आवहु ।
जउ सरसइ वरु जानहु रंचउ ।
तउ अदिठ वरनउ नृप संचउ ॥ (५.९.१)

यह असम्भव नहीं है कि अन्तिम उद्धरण के तृतीय चरण का 'वरु' 'बल' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ हो, इसलिए उपर्युक्त अन्तर अथवा वैषम्य निश्चित अन्तर या वैषम्य नहीं कहा जा सकता है ।

'भट्ट' शब्द का प्रयोग प्रसिद्ध स्तुति-पाठक जाति 'भाट' के अर्थ में हुआ है ।

'चंडिय' नाम का प्रयोग केवल एक स्थल पर निम्नलिखित प्रकार से हुआ है :—

सकल सूर बोलिव सभ मंडिय ।
आसिष जाइ दीध कवि चंडिय । (३.१९.३-४)

'चंडिय' का अर्थ 'कृत्त', 'छिन्न' अथवा 'काटा हुआ' होता है, जो यहाँ असंगत लगता है । प्रसंग के अनुसार यहाँ पर 'चंडिय' से आशय 'चंद' का होना चाहिए क्योंकि आगे ही चंद से पृथ्वीराज ने प्रश्न किया है (३.२१) और 'चंड' 'चन्द्र' से भी व्युत्पन्न माना गया है^१, अतः असम्भव नहीं है कि इससे चंद्र < चंद का आशय सिद्ध होता हो ।

इसी प्रकार 'चंड' उपाधि का प्रयोग भी केवल एक स्थल पर निम्नलिखित प्रकार से हुआ है :—

जंप्पिअ सच्च सो चंद चंड ।
थप्पियं जाइ तिरहूति पिंड । (५.१३.८-९)

'चंड' का अर्थ 'उग्र' होता है, और वही कदाचित् यहाँ भी अभिप्रेत है । 'कवियन' =

^१ दे० 'षाइन सद महण्णवो' पृ० ३९२ ।

‘कविजन’, सत्कवि के लिए प्रयुक्त होता रहा है—यथा नारायणदास रचित छिताई वार्त्ता^२ में—
और उसी अर्थ में यहाँ भी प्रयुक्त लगता है :—

रतनरंग कवियन बुधिलई ।

समौ विचारि कथा वर्नई ॥५०४॥

कवियन कहे नरायनदास ॥१२८, १४३, ५४२, ६६०, ७४६॥

कविअण तुच्छ कहइ समझाई ॥७३२॥

फलतः कथा-नायक का कवि-मित्र चन्द ‘विरदिआ’ या ‘भाट’ था, और उसे हर से सिद्धि का वर प्राप्त हुए होने के कारण ‘वरदाई’ भी कहा जाता था, स्वभाव से वह कदाचित् किंचित् उग्र था, इसी कारण ‘चंड चंद’ भी वह कहा गया है ।

यह हम अन्यत्र देख चुके हैं कि ‘रासो’ पृथ्वीराज के समकालीन किसी कवि की रचना नहीं हो सकती है ।^३ इसलिए यह प्रकट है कि यह रचना चन्द के नाम पर किसी अन्य व्यक्ति द्वारा की हुई है । वह अन्य व्यक्ति कौन था, यह जानने के लिए हमारे पास कोई साधन इस समय नहीं है ।

—:~:—

^२ ‘छिताई वार्त्ता’ संपादक प्रस्तुत लेखक, नागरीप्रचारिणी सभा, बनारस, सं० २०१५ ।

^३ दे० इसी भूमिका में अन्यत्र ‘पृथ्वीराजरासो का रचना-काल’ शीर्षक ।

१७. रासो काव्य-परंपरा

और

‘पृथ्वीराज रासो’

‘रास’ और ‘रासो’ नाम किस वस्तु के परिचायक हैं, वे एक ही काव्यरूप का निर्देश करते हैं अथवा दो काव्यरूपों का, इनके आधार विषय, रस, शैली छन्द आदि क्या होने चाहिए और इनका सूत्रपात किस प्रकार हुआ—आदि बातों के सम्बन्ध में अनेक भ्रान्तियों का सर्व-प्रमुख कारण यह है कि प्रायः आलोचक-गण रास और रासो नामों से अभिहित काव्य-समूह पर बिना किसी पूर्वग्रह के दृष्टि नहीं डाल पाते हैं। (प्रस्तुत लेखक के विचार से नाम-साम्य होते हुए भी दो भिन्न-भिन्न काव्यरूप इन नामों से अभिहित हुए हैं जिनमें से एक गीत-नृत्य-परक है और दूसरा छन्द-वैविध्य-परक।)

(ये दोनों काव्यरूप अपभ्रंश-काल से इसी प्रकार अलग-अलग मिलने लगते हैं। इन दोनों का साहित्य भी अलग-अलग अत्यन्त समृद्ध रहा है।) सामान्यतः यह कहा जाता है कि गीत-नृत्य-परकरूप ही रास-रासो का प्रारम्भ में एक मात्र या कम से कम प्रमुख रूप रहा है, किन्तु यह एक भ्रामक कथन है। इसी प्रकार यह भी कहा जाता है कि इसका सूत्रगत जैन महात्माओं और कवियों द्वारा हुआ, यह कथन भी उतना ही भ्रामक है, जितना प्रथम। पुनः इसी प्रकार, यह कहा जाता है कि इस काव्य-रूप का प्रारम्भ पश्चिमी राजस्थान और गुजरात में हुआ और इसका विकास भी बहुत समय तक उसी भूभाग तक सीमित रहा; किन्तु यह कथन भी उसी प्रकार भ्रामक है जिस प्रकार प्रथम तथा द्वितीय हैं। आगे आने वाले परिचयात्मक विवेचन से इन कथनों का निराकरण हो जावेगा।

प्रथम अर्थात् गीत-नृत्य-परक रास परंपरा में सेकड़ों रचनाएँ बताई जाती हैं। अभी तक उनके जो नाम मिले हैं, उनकी संख्या भी सौ से ऊपर ही होगी। और ये समस्त रचनाएँ प्रायः एक ही ढंग की हैं। ऐसी दशा में संक्षेप में और परंपरा की आरम्भिक दो शतियों—सं० १२०० से १४०० वि० तक—की ही प्रमुख रचनाओं का उल्लेख करना यथेष्ट होगा, उसी से उसका पर्याप्त परिचय मिल जावेगा। शुद्ध साहित्यिक परंपरा वास्तव में दूसरी है। उसका विवरण अपेक्षाकृत अधिक पूर्णता के साथ दिया जावेगा और सं० ११०० से १९०० वि० तक की उसकी प्रायः सभी महत्वपूर्ण कृतियों को उस विवरण में सम्मिलित किया जावेगा।

✓ गीत-नृत्य-परक रास-परम्परा

(१) उपदेश रसायन—इस परंपरा की सबसे प्राचीन प्रातः रचना ‘उपदेश रसायन’ है, जिसके रचयिता श्री जिनदत्त सूरि हैं। इसमें रचना-काल नहीं दिया हुआ है। किन्तु ग्रन्थकार की एक अन्य रचना ‘कालस्वरूप कुलक’ है, जिसकी रचना-तिथि सं० १२०० वि० के कुछ ही ब द

होगी, जैसा कि उसके एक छन्द से प्रकट है^१, इसलिए इस रचना का भी समय सं० १२०० के लगभग माना जा सकता है। यह रचना अपभ्रंश में है। इसका विषय धर्मोपदेश है। प्रयुक्त छन्द चउपई है। रचना ३२ छन्दों में समाप्त हुई है। यद्यपि इसमें रास या रासो नाम नहीं आया है, किन्तु इसके टीकाकार जिनपाल उपाध्याय ने टीका के प्रारम्भ में ही इसे रासक माना है और लिखा है कि यह पद्धटिका-बव काव्य सभी रागों में गाया जाता है।^२ रचना में इसे रसायन कहा गया है। सम्भवतः इसे प्रस्तुत करने के लिए ही इसके अन्त में ताला और लउड़ा (लकुटा) रासों का उल्लेख हुआ है, ताला रास से रात्रि में और लउड़ा रास से दिन में।^३

(२) भरतेश्वर बाहुबलीरास—इसके रचयिता शालिभद्र सूरि हैं, जिन्होंने इसकी रचना सं० १२४१ में की।^४ इसमें भगवान् ऋषभदेव के दो पुत्रों भरतेश्वर और बाहुबली के बीच राज्य के लिए हुए संघर्ष की कथा है। यह रचना २०३ छन्दों में समाप्त हुई है। इसमें कुछ छन्द-वैविध्य है किन्तु फिर भी यह रचना गेय परंपरा की प्रतीत होती है। वीर रास का परिपाक इसमें अच्छा हुआ है।

(३) बुद्धिरास—यह रचना भी उन्होंने शालिभद्र सूरि की है जिनकी उपर्युक्त भरतेश्वर बाहुबली रास है। इसमें रचना-सम्भवत नहीं दिया हुआ है। किन्तु यह अनुमान सुगमता से किया जा सकता है कि रचना 'भरतेश्वर बाहुबली रास' के रचना-काल सं० १२४१ के लगभग होगी। इसका विषय 'उपदेश रसायन' की भाँति धर्मोपदेश है। यह रचना ६३ छन्दों में समाप्त हुई है। यह रचना भी 'उपदेश रसायन' की भाँति गाई जाती रही होगी, ऐसा प्रतीत होता है।

(४) जीवदया रास—इसकी रचना आसगु ने सं० १२५७ में की थी^५। इसका विषय नाम से ही स्पष्ट है : वह है दया-धर्मोपदेश। इसकी भाषा मैथिली में काव्यात्मक दृष्टिकोण का अभाव प्रतीत होता है।

(५) चंदन बाला रास—इसके रचयिता भी वही आसगु है।^६ रचना-काल इस कृति में नहीं दिया हुआ है, किन्तु यह सुगमता से अनुमान किया जा सकता है कि यह रचना भी ग्रंथकार की उक्त अन्य रचना 'जीवदया रास' के आसपास अर्थात् सं० १२५० के लगभग रची गई होगी। यह जालौर में रची गई थी। इसमें लेखक उद्देश्य चंदनबाला की धार्मिक कथा कहना है^७ इसमें प्रयुक्त छंद चउपई तथा दोहा हैं। यह रचना ३५ छंदों में समाप्त हुई है।

(६) जंबूस्वामी रास—यह रचना श्री धर्म सूरि ने सं० १२६६ में की थी।^८ इसका विषय है जंबू स्वामी का चरित्र तथा गुण-वर्णन।^९

(७) रेंवत गिरि रास—यह कृति भी विजय सेन सूरि की है। रचना-काल सं० १२८८

^१ छन्द ३, अपभ्रंश काव्य त्रयी सस्करण, गायकवाड, ओरिएण्टल सीरीज, बड़ौदा।

^२ वही, टीका, छन्द २-४।

^३ वही, छन्द ३६।

^४ भरतेश्वर बाहुबली रास, छन्द २०३, अपभ्रंश काव्यत्रयी, गायकवाड ओरिएण्टल सीरीज, बड़ौदा।

^५ 'गुजराती साहित्यना स्वरूपो' : प्रो० मंजूलाल मजमुदार लिखित, पृ० ८१९।

^६ 'राजस्थान भारती' भाग ३, अंक ३-४, पृ० १०६-११२, श्री अमरचंद नाइटा द्वारा संपादित पाठ।

^७ 'सम्मेलन-पत्रिका', भाग ३५, संख्या ७-९, पृ० २३१।

^८ देखिए 'हिन्दी जैन साहित्य-नाथूराम प्रेमी, पृ० २५।

^९ वही।

के लगभग माना गया है।^१ इसकी रचना सौराष्ट्र में हुई।^२ इसमें गरनार के जैन मन्दिरों के जीर्णोद्धार की कथा है। यह रचना ७२ छंदों में समाप्त हुई है।

(८) नेमि जिणंद रासो (भाबू रास)—यह पाल्हण द्वारा सं० १२८९ में रची गई थी।^३ इसका उद्देश्य भी धार्मिक है। यह ५४ छंदों में समाप्त हुई है।

(९) गय सुकुमाल रास—यह कृति देल्हण की है। इसका रचना-काल सं० १३०० के लगभग अनुमान किया गया है।^४ इसका उद्देश्य गयसुकुमाल का धार्मिक चरित्र-वर्णन है। यह कुल ३४ छंदों की है।

(१०) सप्त क्षेत्रासु—इसके लेखक का नाम अज्ञात है। यह रचना सं० १३२७ वि० में हुई थी।^५ इसमें सप्त क्षेत्रों—जिन मंदिर, जिन प्रतिमा, साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका की उपासना का वर्णन है। यह रचना ११९ छंदों में समाप्त हुई है।

(११) पेथड रास—इसके लेखक मडलिक हैं। इसका रचना-काल सं० १३६० के लगभग माना गया है।^६ इसमें संधपति पेथड का चरित्र वर्णित हुआ है। नृत्य के साथ गाए जाने के लिए इसकी रचना की गई है :—

रास रमेउजिण भुवणि ताल मेलि ठवि पाउ ॥३॥^७

यह रचना ६५ छंदों में समाप्त हुई है।

(१२) कच्छूलि रास—लेखक का नाम अज्ञात है। इसका समय सं० १३६३ वि० है।^८ इसका उद्देश्य भी धार्मिक है। इसमें एक जैन तीर्थ कच्छूलि ग्राम का वर्णन है। इस रचना में कुल ३५ छंद हैं।

(१३) समरा रासु—इसके रचयिता श्री अंबदेव सूरि हैं, जिन्होंने इसकी रचना सं० १३७१ के बाद की होगी, क्योंकि इसमें वर्णित घटना की तिथि इस प्रकार दी हुई है :

संबच्छरि इक्कहस्तरए थापिड रिसह जिणिदो ॥६॥

इसमें संधपति समरा का धार्मिक चरित्र वर्णित हुआ है। यह रचना कुल ११० छंदों में समाप्त हुई है।

२ (१४) बीसलदेव रास—इसकी रचना नरपति नल्हने की थी। इसका रचना-काल विवाद का विषय रहा है। राजस्थान के कुछ विद्वानों का मत है कि 'बीसलदेव रास' की भाषा सोलहवीं शताब्दी की है, और उन्होंने यह भी सुझाव दिया है कि इसका रचयिता नरपति नाम का गुजरात

१ 'जैन साहित्य का इतिहास'—नाथूराम प्रेमी, पृ० २६।

२ 'रेवंत गिरि रासु' प्राचीन गुर्जर-काव्य संग्रह भाग १ (गायकवाड़ टॉल सीरीज) में संपादित संस्करण, पृ० १।

३ राजस्थानी, भाग ३, अंक १ पृ० ८३-८८।

४ श्री अगर चंद नाहटा, राजस्थान भारती, भाग ३, अंक २, पृ० ८७।

५ 'सप्त क्षेत्रासु', छंद ११८, प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह, भाग १, गायकवाड़ ओरिएंटल सीरीज।

६ 'इतिहास नी केडी', श्री भोगीलाल साडेसरा, पृ० १९९।

७ 'पेथडरास', छंद ३, प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह भाग १, गायकवाड़ ओरिएंटल सीरीज, बड़ौदा।

८ वही, पृ० ६२।

९ 'समरासु', प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह, भाग १, उपर्युक्त, पृ० ३७।

का एक कवि है, जिसने सं० १५४५ तथा १५६० में दो अन्य ग्रंथों की रचना की है।^१ इस प्रसंग में श्री मोतीलाल मनोरिया ने नरपति की एक रचना से सात स्थलों पर की कुछ पंक्तियाँ देते हुए उनकी समानांतर पंक्तियाँ 'बीसलदेव रास' से उद्धृत की है।^२

जहाँ तक भाषा के स्वरूप का प्रश्न है, इन विद्वानों ने रचना के नागरीप्रचारिणी सभा, काशी के संस्करण वाले पाठ को लेकर ऐसा कहा है। सभा का पाठ सबसे अधिक प्रशंसित है—उसमें मूल के निर्धारित १२८ छन्दों के स्थान पर ३१४ छन्द हैं, और मूल के १२८ छन्दों का पाठ भी उसमें बहुत बदला हुआ है। उसका जो पाठ अब निर्धारित हुआ है^३, उसको ध्यान में रखते हुए यदि देखा जावे, तो भाषा इतनी आधुनिक नहीं लगती है। सं० १४०० के लगभग की प्रमाणित राजस्थानी की अन्य रचनाओं से यदि इस संस्करण की भाषा का मिलान किया जावे, तो यह स्पष्ट ज्ञात होगा कि 'बीसलदेव रास' की भाषा सं० १४०० के आस-पास की ही है।

जहाँ तक गुजरात के नरपति और 'बीसलदेव रास' के रचयिता नरपति नाह के एक होने का प्रश्न है, यह नहीं कहा गया है कि गुजरात के नरपति ने भी अपने को कही नाह कहा है, 'बीसलदेव रास' के रचयिता ने तो अपने को अनेक स्थलों पर नाह कहा है। जो पंक्तियाँ तुलना के लिए दोनों कवियों से दी गई हैं, उनमें से चार तो निश्चित रूप से 'बीसलदेव रास' के प्रशंसित छन्दों की हैं।^४ शेष तीन में जो साम्य है वह साधारण है, उस प्रकार और उतना साम्य देखा जावे तो मध्य युग के किन्हीं भी दो कवियों में मिल सकता है। इसके अतिरिक्त रचना काल के ७५ या १०० वर्षों के भीतर ही किसी भी रचना की इतनी विभिन्न पाठों की प्रतियाँ नहीं मिलती जितनी कि सं० १६३३ और सं० १६६९ की रचना की दो तिथियुक्त प्रतियाँ तथा प्रायः उसी समय की अन्य तिथि-हीन प्रतियाँ हैं।^५ अतः सं० १६०० के लगभग की रचना-तिथि 'बीसलदेव रास' के लिए मान्य नहीं हो सकती है।

इस रचना का विषय बीसलदेव की प्रवास-कथा है। अजमेर के चहुवान बीसलदेव का विवाह भोज परमार की कन्या राजमती से होता है। इस विवाह में उसे अनेक प्रान्त दायज में तथा अतुल संपत्ति विदाई में मिलती है। इस नव प्राप्त वैभव के पृष्ठभूमि में जब वह अपनी संपदा पर विचार करता है, तो उसे अभिमान होता है, और वह गर्वपूर्वक अपनी नवविवाहिता राजमती से कहता है कि उसके समान दूसरा राजा नहीं है। राजमती कहती है कि उसे गर्व नहीं करना चाहिए, क्योंकि उसके समान अनेक राजा हैं : एक तो उड़ीसा का ही राजा है, जिसके राज्य में खानों से उसी प्रकार हीरा निकलता है जिस प्रकार बीसलदेव के राज्य में सोमर की झील में से नमक निकलता है। यह बात बीसलदेव को लग जाती है, और बीसलदेव उड़ीसा चला जाता है और वहाँ के राजा की सेना में लग जाता है। बारह वर्ष व्यतीत हो जाते हैं, राजमती अपने पुरोहित को उसे लौटा लाने के लिए उड़ीसा भेजती है। उड़ीसा पहुँच कर पुरोहित बीसलदेव से मिलता है, और

^१ श्री अगरचन्द नाइटा, राजस्थानी, जनवरी १९४०, पृ० २१ तथा श्री मोतीलाल मेनारिया 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' पृ० ८७-८८।

^२ श्री मोतीलाल मेनारिया, 'राजस्थानी भाषा और साहित्य,' पृ० ८८-८९।

^३ दे० प्रस्तुत लेखक द्वारा संपादित और हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित पाठ।

^४ दे० 'पुरानी राजस्थानी' एल० ए० टेसिटरी द्वारा लिखित और श्री नामवरसिंह द्वारा अनूदित ना० प्र० सभा, काशी द्वारा प्रकाशित।

^५ दे० प्रस्तुत लेखक द्वारा संपादित और हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित पाठ।

^६ दे० वही, भूमिका।

उसे राजमती का संदेश देता है। उड़ीसा के राजा को जब यह ज्ञात होता है कि वह अजमेर का चौहान शासक है, उसको प्रचुर रत्न-राशि देकर विदा करता है। बोलदेव अजमेर लौट कर राजमती से मिलता है। इस रचना में शृंगार के अतिरिक्त कोई अन्य रस नहीं है। इसमें विप्रलम्भ और संयोग दोनों प्रकारों के शृंगार का अच्छा परिपाक हुआ है। नायिका ने अनेक स्थलों पर पति को 'मूरख नाह' और 'निगुणा नाह' कहा है। इसे देखकर कुछ लोगों को इस रचना में अशिष्टता का आभास मिला है। किन्तु इन सम्बोधनों के पीछे जो आत्मीयता की प्रेरणा है, जो सहज प्रेम का आग्रह है, वह तो इस काव्य की विशेषता है। ठीक इसी प्रकार के सम्बोधन 'संदेश रासक' में उसकी प्रोषित पतिका ने भी किए हैं।

इस रचना में आदि से अन्त तक एक ही छन्द का निर्वाह हुआ है। सम्पूर्ण रचना गेय है, यह स्वतः प्रकट है। रचना के प्रारम्भ में ही केदारा राम के अन्तर्गत इसके गीतिबद्ध होने का निर्देश किया गया है। यह रचना नृत्य-गीत के साथ प्रस्तुत भी की जाती रही है, इसका प्रमाण हमें इसके एक प्रक्षिप्त छन्द में मिलता है।^१

✓ यद्यपि इसमें एक राजा की कथा है, वह रचना किसी राजा के आश्रय में रची गई नहीं हो सकती है। राजाओं के आश्रय में रची गई रचनाओं में उनकी तथा उनके पूर्व-पुरुषों की विजय-गाथायें अनिवार्य रूप से होती हैं, जो इसमें एकदम नहीं हैं।

✓ यह कहना अनावश्यक होगा कि गीत-नृत्य-परक रासो-परम्परा का यह जैनेतर अपवाद अत्यन्त मूल्यवान् है, इसीलिए इसका परिचय कुछ विस्तार से दिया गया है। इस परम्परा में हमें अभी अन्य जैनेतर रचनाएँ नहीं मिली हैं, किन्तु यह रचना उनके निश्चित अस्तित्व की सूचना देती है। ऐसा लगता है कि जैन कृतियों की भाँति वे सुरक्षित नहीं रह पाईं, इसलिए वे धीरे-धीरे काल-कवलित हो गईं।

छन्द-वैविध्य-परक रासो-परम्परा

३ (१) मुंज रास—आचार्य हेमचन्द्र ने अपने प्राकृत व्याकरण 'सिद्ध हैम' (रचना सं० ११९० वि०) में मुंज-विषयक दो दोहे उदाहरण में उद्धृत किए हैं। मेस्तुंग ने अपने 'प्रबन्ध-चिन्तामणि' (रचना सं० १३६१ वि०) में 'मुंजराजप्रबन्ध' शीर्षक देते हुए मुंज की कथा दी है, और उसके विभिन्न प्रसंगों में दोहे, सोरठे, गाथाएँ, तथा अन्य प्रकार के अनेक छन्द उद्धृत किए हैं^२। 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह' में एक प्राचीन जैन-प्रबन्ध-संग्रह में संकलित 'मुंजराज-प्रबन्ध' दिया गया है जिसका वृत्त प्रायः 'प्रबन्ध-चिन्तामणि' वाले वृत्त जैसा ही है। इसके उद्धृत छन्द भी दो एक को छोड़कर उन्हीं में से हैं जो 'प्रबन्ध-चिन्तामणि' में उद्धृत हैं।^३ इससे यह प्रमाणित होता है कि सं० ११९०—'सिद्ध हैम' के रचना-काल—के पूर्व ही मुंजराज के चरित्र को लेकर अपभ्रंश में लिखा गया कोई काव्य था। असम्भव नहीं कि यह छन्द-वैविध्य-परक रासक-परम्परा की रचना रही हो और इसका नाम 'मुंजरास' या 'मुंजरासक' रहा हो। इसके रचयिता के सम्बन्ध में हमें कोई ज्ञान नहीं है; न इसका निश्चित रचना-काल ही हमें ज्ञात है। वाक्पति मुंजराज का समय सं० १०३१-१०५२ वि० माना गया है।^४ और 'सिद्ध हैम' की तिथि सं० ११९० वि० है। 'मुंजरास' का समय दोनों के बीच में कहीं होना चाहिए।

मुंजराज विषयक उपर्युक्त जैन प्रबंधों में आई हुई कथा संक्षेप में इस प्रकार है। मुंज का कर्ना-

✓ ^१ नागरी प्रचारिणी सभा, काशी संस्करण, छन्द ११।

^२ देखिए 'प्रबन्ध चिन्तामणि', सिंधी जैन ग्रन्थ माला, पृ० २१-२५।

^३ देखिए 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह', सिंधी जैन ग्रन्थमाला, पृ० १३-१५।

^४ हेमचन्द्रः : 'डाइनैस्टिक हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया,' पृ० ९२७।

टक के राजा तैलप से घोर वैमनस्य था। यद्यपि मुंज का महामात्य रुद्रादित्य उसे रोकता रहा, फिर भी मुंज ने तैलप के बल की पूरी जानकारी किए बिना ही उस पर आक्रमण कर दिया। मुंज हार गया और बंदी हुआ। बंदीगृह में तैलप की विधवा बहिन मृणालवती से उसका प्रेम हो गया। मुंज के शुभेच्छुओं ने उसे बंदीगृह से निकाल भगाने की एक योजना बनाई। मुंज ने उस योजना की बात बताते हुए मृणालवती से भी भाग निकलने के लिए कहा। मृणालवती उसके साथ नहीं जाना चाहती थी, और यह भी नहीं चाहती थी कि मुंज से उसको अलग होना पड़े। इसलिए उसने इस षड्यन्त्र की सूचना अपने भाई तैलप को दे दी। तैलप ने षड्यन्त्र समाप्त कर मुंज का बड़ा अपमान किया—उससे घर घर भीख मँगवाई—और तदनंतर उसे हाथी से कुचलवा कर मरवा डाला।

यह स्पष्ट है कि यह रचना मुंज ही नहीं मुंज के किसी वंशज की प्रेरणा से भी न की गई होगी, क्योंकि अपने एक अत्यन्त सम्मान्य पूर्वज का इस प्रकार पराजय और अपमान पूर्वक विनाश कोई भी वंशज प्रबन्धबद्ध नहीं करा सकता था। यह सम्पूर्ण रचना लोकरंजन तथा लोकशिक्षण के लिए निर्मित की गई प्रतीत होती है।

(२) संदेश रासक—इसका रचयिता अब्दुल रहमान है, जिसने अपना परिचय ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही देते हुए बताया है कि पश्चिम के पूर्व-प्रसिद्ध मलेच्छ देश में तंतवायु मीरसेन हुआ; यह उसी का तनय था जो प्राकृत काव्य तथा गीत विषय में प्रसिद्ध था।^१ 'संदेश रासक' ऐसे ही सुकवि की रचना है।

इसकी रचना तिथि-ज्ञात नहीं है। किन्तु इसके सम्पादक मुनि जिनविजय जी के अनुसार इसका रचना काल शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी के आक्रमण के कुछ ही पूर्व होना चाहिए, कारण यह है कि मूलस्थान-मुलतान-का इस रचना में एक समृद्ध हिन्दू तीर्थ रूप में उल्लेख हुआ है। शहाबुद्दीन गोरी के आक्रमण के अनंतर मुल्तान की वह समृद्धि सदैव के लिए मिट गई होगी। भाषा की दृष्टि से भी वह उनके अनुसार उसी समय की प्रतीत होती है।^२

इसका विषय विप्रलम्भ शृंगार है जिसका अन्त मिलन में होता है। विजय नगर (जैसलमेर) की एक विरहिणी अपने पति के पास सन्देश भेजना चाहती है। उसे एक पथिक आता हुआ दिखाई पड़ता है। उस पथिक को रोककर वह अपने पति के लिए सन्देश देती है। ज्योंही पथिक चलने को होता है वह कुछ और भी कहने लगती है। इसी प्रकार कई बार होता है, यहाँ तक कि अन्त में जब पथिक चलने को उद्यत होता है, और पूछता है कि उसे और तो कुछ नहीं कहना है, वह रो पड़ती है। पथिक सान्त्वना देते हुए उसे पूछता है कि उसका पति किस ऋतु में प्रवास के लिए गया था; वह कहती है, ग्रीष्म ऋतु में, और तदनंतर वह छः ऋतुओं के अपने विरह-जनित कष्टों का वर्णन करती है। यह सब समाप्त होने पर जब पथिक चल पड़ता है, विरहिणी का पति लौटता हुआ दिखाई पड़ता है, और दोनों मिल जाते हैं।

रचना केवल २२३ छन्दों में समाप्त हुई है, किन्तु इतने में ही २२ प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। इसी बहुरूप-निबद्ध रासकत्व के बारे में कवि ने रचना में एक स्थान पर संकेत किया है :—

कहव ठाह चउवेइहि वेउ पयासियइ ।

कह बहुरुवि णिबद्धउ रासउ भासियइ ॥ ४३ ॥

^१ 'संदेश रासक', सम्पादक मुनि जिनविजय, भारतीय विद्या भवन, बंबई, छद् ३-४ ।

^२ 'संदेश रासक', उपर्युक्त, प्रस्तावना, पृष्ठ ११-१५ ।

(३) हम्मीर रासो—इस नाम की कोई रचना अभी तक नहीं मिली है, किन्तु 'प्राकृत पैगल' के आठ छन्दों में हम्मीर का स्पष्ट नामालेख होता है।^१ असम्भव नहीं कि उसमें और भी कुछ छन्द ऐसे हो जो हम्मीर के चरित्र से सम्बन्धित हों यद्यपि उनमें हम्मीर का नाम न आया हो। छन्द भी कम से कम आठ विभिन्न वृत्तों (छन्दों) के उदाहरण में आते हैं। अतः यह प्रकट है कि विविध छन्दों से विभूषित हम्मीर के जीवन से सम्बन्धित कोई समादृत कृति उस समय थी। 'प्राकृत पैगल' की रचना हुई, और असम्भव नहीं कि यह कृति छन्द-वैविध्य-परक रासो-परंपरा ही रही हो।

इस कृति का रचना-काल क्या होगा, यह विचारणीय है। हम्मीर का समय सं० १२९५ सं० १३५८ है, और 'प्राकृत पैगल' के ये छन्द प्रायः हम्मीर की प्रशस्तियुक्त हैं, इसलिए ये उस जीवन-काल में ही रचे गए होंगे ऐसा सामान्यतः समझा जाता है, किन्तु यह असंभव नहीं है कि इनका रचना हम्मीर के कुछ बाद हुई हो।

इन छन्दों का अथवा इनके स्रोत 'हम्मीर रासो' का रचयिता कौन रहा होगा, यह छन्दों से शत नहीं होता है। हमारे साहित्य के इतिहासों में शाङ्गधर द्वारा रचित एक 'हम्मीर रासो' माना जा रहा है। शाङ्गधर के पितामह राघव, जो पीछे 'छिताई वार्त्ता' तथा 'पद्मावत' आदि अनेक अलाउद्दीन से सम्बन्धित काव्यों में विविध प्रकार से आए हैं, हम्मीर देव के आश्रय में रहते थे, और उनका एक पद्य 'शाङ्गधर पद्धति' में संकलित है। इसलिए यद्यपि यह असंभव नहीं कि शाङ्गधर ने 'हम्मीर रासो' नामक किसी कृति की रचना की हो किन्तु इसके कोई निश्चित प्रमाण नहीं है।

इसके दो छन्दों में एक जज्जल आता है।^२ उसी के आधार पर श्री राहुल साकृत्यायन ने जज्जल को इन छन्दों का रचयिता माना है।^३ किन्तु इन छन्दों के अर्थ पर विचार किया जावे तो स्पष्ट हो जावेगा कि जज्जल इनमें हम्मीर-पक्ष के वीर योद्धा के रूप में आया है, कवि के रूप में नहीं। अन्य ऐतिहासिक साक्ष्यों से भी जज्जल के हम्मीर के एक सामंत होने का समर्थन होता है। अतः जज्जल इन छन्दों का रचयिता नहीं है।

हम्मीर सम्बन्धी ये समस्त छन्द वीर रस के हैं, और काव्य की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट हैं।

(४) बुद्धि रासो—इसका रचयिता जल्ह नामक कवि है। रचना अप्रकाशित है। श्री मोतीलाल मेनारिया ने लिखा है कि रचना-शैली से कवि जैन प्रतीत होता है, और उन्होंने रचना से कुछ पंक्तियाँ भी उद्धृत की हैं। किन्तु इन पंक्तियों में कोई बात भाषा-शैली की दृष्टि से ऐसी नहीं मिलती जिससे रचयिता को जैन कवि माना जा सके। एक जल्ह के दो छन्द 'पुरातन प्रबंध-संग्रह' में 'जयचन्द-प्रबन्ध' में उद्धृत हुए हैं। इस 'प्रबंध-संग्रह' के प्रबन्धों का समय १५ वीं शती वि० माना जाता है, इसलिए यदि दोनों जल्ह एक ही हो तो असंभव नहीं कि यह जल्ह १५ वीं शती वि० प्रारम्भ में हुआ हो। मेनारिया जी ने अपने 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' में लिखा है कि जल्ह का आविर्भाव-काल सं० १६२५ है।^४ पता नहीं किस आधार पर उन्होंने ऐसा लिखा है।

इसका विषय एक प्रेम-कथा है, जो इस प्रकार है :—चंपावती नगरी का राजकुमार अपना

^१ श्री चन्द्रमोहन घोष द्वारा संपादित तथा एशियाटिक सोसायटी बंगाल द्वारा १९०२ ई० में प्रकाशित संस्करण, मात्रा वृत्त के छन्द ७१, ९२, १०६, १४७, १५१, १९०, २०४, तथा वर्ण वृत्त का छन्द १८३।

^२ वही, मात्रा वृत्त, छन्द १०६, १४७।

^३ दे० 'हिन्दी काव्य धारा', पृ० ४५२।

^४ डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल : जाज या जज्जल, हिन्दी अनुशीलन, पौष-चैत्र, सं० २०११, पृ० १४।

^५ 'राजस्थानी भाषा और साहित्य', पृ० १२१।

राजधानी से आकर कुछ दिनों के लिए जलधितरंगिनी के साथ समुद्र के किसी स्थान में रहता है और तदनंतर एक मास में लौटने का वचन देकर कहीं चला जाता है। अवधि के बाद भी कई मास बीत जाते हैं, किन्तु वह लौटता नहीं, तब विरहिणी जलधितरंगिनी जीवन से विरक्त हो जाती है, और अपने आभूषणादि उतार फेंकती है। इस पर उसकी माँ उसके समक्ष संसार के विलास-वैभव तथा शारीरिक सुखों की महत्ता प्रतिपादन करने लगती है। इतने ही में राजकुमार वापस आ पहुँचता है, और दोनों का पुनर्मिलन हो जाता है, जिसके अनंतर दोनों आनन्द और उत्साह के साथ जीवन व्यतीत करने लगते हैं।

इस कथा को पढ़कर एक ओर 'सन्देश रासक' तथा दूसरी ओर हिंदी की प्रेम-कथाओं का स्मरण आप से आप हो जाता है। यदि यह रचना १५वीं शती वि० के प्रारम्भ की प्रमाणित हो, तो निस्संदेह इसका स्थान हमारे साहित्य के इतिहास में अत्यन्त महत्व का होगा।

इसमें दोहा, छप्पय, गाहा, पाधड़ी, मोतीदाम, मुडिल्ल आदि छन्द हैं, और रचना कुल १४० छन्दों में समाप्त हुई है।^१

५ (५) परमाल रासो—सं० १९७६ में नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से यह रचना प्रकाशित हुई है। इसके संपादक डॉ० श्याम सुन्दरदास ने भूमिका में लिखा है कि “जिन प्रतियों के आधार पर यह संस्करण संपादित हुआ है, उनमें यह नाम नहीं है, उनमें इसको चंद कृत ‘पृथ्वीराज रासो’ का महोबा खण्ड लिखा हुआ है, किंतु वास्तव में यह ‘पृथ्वीराज रासो’ का महोबा खण्ड नहीं है, वरन् उसमें वर्णित घटनाओं को लेकर मुख्यतः ‘पृथ्वीराज रासो’ में दिए हुए एक वर्णन के आधार पर लिखा हुआ एक स्वतन्त्र ग्रंथ है। यद्यपि इस ग्रंथ का नाम मूल प्रतियों में ‘पृथ्वीराज रासो’ दिया हुआ है, पर इस नाम से इसे प्रकाशित करना लोगों को भ्रम में डालना होता, अतएव मैंने इसे ‘परमाल रासो’ यह नाम देने का साहस किया है।”^२

किन्तु वास्तविकता यह है कि ‘पृथ्वीराज रासो’ के नागरी प्रचारिणी सभा के संस्करण में दिए हुए महोबा खण्ड का यह एक परिवर्धित रूपान्तर मात्र है, स्वतन्त्र रचना नहीं। ‘पृथ्वीराज रासो’ में सम्मिलित महोबा खण्ड भी प्रामाणिक रचना नहीं है, क्योंकि वह अलग से ही मिलता है, और ‘पृथ्वीराज रासो’ की किसी पूर्ण प्रति में नहीं मिलता है। यह सिद्ध करने के लिए कि ‘रासो’ के अन्त में प्रकाशित महोबा खण्ड का यह परिवर्धित रूपान्तर मात्र है, यही देखना पर्याप्त है होगा कि पूर्ववर्त्तों की लगभग समस्त पंक्तियाँ कुछ मिलाई हुई पंक्तियों के बीच इसमें भी मिल जाती हैं। इसका रचना-काल क्या होगा, यह कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। इसकी जो प्रतियाँ मिली हैं, वे १९वीं शताब्दी वि० की हैं। आश्चर्य नहीं कि महोबा खण्ड का प्रस्तुत रूप १६वीं १७वीं शताब्दी विक्रमीय का हो। इससे अधिक इस प्रक्षेप के प्रक्षेप पर विचार करना अनावश्यक होगा।

६ (६) राज जैतसी रासो—यह रचना कुछ ही दिन हुए प्रकाशित हुई है। इसका स्वयंता अज्ञात है।^३ रचना में रचना-काल भी नहीं दिया हुआ है। वर्णित घटना सं० १६०० के लगभग की है, और वर्णन सर्जित है, इसलिए अनुमान किया जाता है कि रचना बहुत कुछ समसामयिक होगी। इसमें बीकानेर के महाराजा राव जैतसी (सं० १५८३-१५९८ वि०) तथा हुमायूँ के भाई कामराँ के उस युद्ध का वर्णन हुआ है जिसमें कामराँ को पराजित होकर लौटना पड़ा था।

^१ ‘राजस्थान में हिंदी हस्तलिखित पुस्तकों की खोज’, भाग १, पृ० ७६।

^२ ‘परमाल रासो’, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, भूमिका, पृ० ३-४।

^३ ‘राजस्थान भारती’, सं० नरोत्तमदास स्वामी, भाग २, अंक २, पृ० ७०।

संपूर्ण रचना में वीर रस का परिपाक हुआ है। छन्द दोहा, मोतीदाम तथा छप्पय हैं। कुल ९० छन्दों में ही रचना समाप्त हुई है। भाषा डिगल है।

(७) विजय पाल रासो—इसका रचयिता नल्हसिंह भाट है। लेखक का प्रामाणिक इतिवृत्त प्राप्त नहीं है। रचना में कहा गया है कि लेखक विजयगढ़ (करौली राज्य) के यदुवंशी शासक विजयपाल का आश्रित था,^१ इसलिए वह सं० ११०० के आसपास की होनी चाहिए। किन्तु यह रचना सं० १६०० के बाद की ही हो सकती है क्योंकि इसमें तोपो तक का उल्लेख हुआ है। इसका विषय विजयपाल की दिग्विजय की कथा है। इसका मुख्य रस वीर है। रचना पूरी प्राप्त नहीं हुई है। इसके केवल ४२ छन्द प्राप्त हुए हैं।^२

(८) राम रासो—इसके रचयिता माधवदास चारण हैं। इसका रचना-काल सं० १६७५ है।^३ इसका विषय राम का चरित्र तथा गुण वर्णन है। इसमें विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है। बीच-बीच में गीत भी हैं। ग्रंथ में कुल लगभग १६०० छन्द हैं।

८ ✓(९) राणा रासो—यह दयाल कवि की रचना है, जिनका पूरा नाम दयाराम कहा जाता है। रचना में समय नहीं दिया हुआ है। किन्तु उसकी एक प्रति सं० १९४४ की मिली है, जो कवि की सं० १६७५ की हस्तलिखित प्रति की प्रतिलिपि बताई गई है।^४ इसलिए इस ग्रंथ की रचना सं० १६७५ में या उसके कुछ ही पूर्व हुई होगी। सं० १९४४ की प्रति में महाराजा जयसिंह (सं० १७३७-१७५५) तक का वर्णन है। संभव है कि ये वर्णन बाद में सं० १६७५ की प्रति में हाशिए में लिखकर किसी के द्वारा बढ़ाए गए हो और प्रतिलिपि में उतार लिए गए हो। इसमें अन्त में एक छन्द है जो इस प्रकार है :—

सेवे सबे करन को रान मान के पाइ।

चिता उर उपजे नहीं दरसन ही दुख जाय ॥^५

जिससे यह प्रमाणित है कि कवि कर्णसिंह का आश्रित था।

इस रासो में सीसौदिया वंश का इतिहास दिया गया है और उस वंश के मुख्य राजाओं तथा कुंभा, उदय सिंह, प्रतापसिंह तथा अमर सिंह के युद्धादि का वर्णन विस्तार से किया गया है। इसमें रसावला, विराज, साटक-शार्दूल विक्रीडित-आदि विविध छन्दों का प्रयोग किया गया है। इसकी कुल छन्द-संख्या ८७५ है।

९ ✓(१०) रतन रासो—इसके रचयिता कुंभकर्ण हैं। इसका रचना-काल सं० १६७५ तथा १६८१ के बीच अनुमान किया जाता है।^६ इसमें रतलाम के महाराजा रतनसिंह का चरित्र वर्णित है। रचना साधारण प्रतीत होती है। इसमें विविध प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है।

१० ✓(११) कायम रासो—इसके रचयिता न्यामत खाँ जान कवि हैं,^७ जो स्वरचित कथा साहित्य के लिए हमारे साहित्य के इतिहास में प्रसिद्ध हैं। यह रचना उन्होंने सं० १६९१ में की थी :—

^१ 'राजस्थानी भाषा और साहित्य', मोती लाल मेनारिया, पृ० ८३।

^२ दे० मुंशी देवीप्रसाद द्वारा सुसिद्ध संपादित : 'कविरत्न माला' भाग १।

^३ 'हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का खोज विवरण', नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १९०१, संख्या ८०।

^४ 'राजस्थान में हिन्दी हस्तलिखित पुस्तकों की खोज', भाग १, पृ० ११९।

^५ वही, पृ० ११९।

^६ दे० 'राजस्थान भारती'; भाग ३, अंक ३-४, पृ० ८३ तथा 'राजस्थान में हिंदी हस्तलिखित ग्रंथों की खोज', भाग ४, पृ० २२३।

^७ 'कायम रासो', राजस्थान पुरातत्व मंदिर, जयपुर।

सोरह से एक्यानवे ग्रंथ कियो इहु जान।

किन्तु इस तिथि के बाद की सं० १७१० तक की कुछ घटनाओं का उल्लेख इसमें हुआ है। इसके बाद भी वे बहुत दिनों तक जीवित रहे थे। ऐसा लगता है कि अपने जीवन-काल में ही बाद की घटनाओं का भी उन्होंने इसमें समावेश कर दिया।

इसका विषय कायम खानी वंश का इतिहास है, जिसमें अल्फ खॉ का चरित्र विस्तृत रूप से दिया हुआ है। कायम खॉ उनके वह पूर्वपुरुष जिनके नाम पर उनका वंश कायम खानी कहाने लगा। ऐतिहासिक दृष्टि से यह रचना महत्व की है। इसमें इतिवृत्त की प्रधानता है।

(१२) शत्रुसाल रासो—इसके रचयिता बूंदी के राव डूंगरसी हैं, जिन्होंने इसे सं० १७१० के लगभग रचा होगा, ऐसा अनुमान किया जाता है। इसमें बूंदी के राव शत्रुसाल का इतिवृत्त है जो वीर रस प्रधान है। इसकी कुल छन्द-संख्या ५०० के लगभग है। कहा गया है कि इसकी भाषा-शैली 'पृथ्वीराज रासो' का अनुकरण करती है।^१

(१३) मांकण रासो—यह रचना कान्हू कीर्तिसुन्दर की है और सं० १७५७ की रची हुई है।^२ यह विनोदात्मक है, और अपने विषय-वैशिष्ट्य के कारण उल्लेखनीय है। कुल केवल ३९ छंद इस रचना में हैं, किन्तु यह पौंच विविध छन्दों में रची गई है।

(१४) सगत सिंह रासो—इसके रचयिता गिरधर चारण हैं। इसका रचना-काल अज्ञात है। श्री मोतीलाल मेनारिया के अनुसार इसका रचना-काल सं० १७२० के लगभग है।^३ किन्तु श्री अगर चन्द नाहटा के अनुसार यह सं० १७५५ के बाद की रचना है।^४ इसमें राणा प्रताप सिंह के भाई शक्तसिंह तथा उनके वंशजों का चरित्र है। इसका मुख्य रस वीर है। यह रचना भी विविध छन्दों में की गई है। इसकी कुल छंद-संख्या ९४३ है।

✓ (१५) हम्मीर रासो—यह रचना जोधराज की है, और सं० १७९५ की है।^५ इसमें हम्मीर का वीर चरित्र विशदता के साथ वर्णित हुआ है। हम्मीर पर एक संस्कृत रचना सं० १४६० के लगभग रचित नयचन्द्र सूरि कृत 'हम्मीर महाकाव्य' है, जो प्रायः ऐतिहासिक मानी गई है। प्रस्तुत रचना में अधिकतर उसका आधार ग्रहण किया गया है, किन्तु अनैतिहासिक बातें भी मिला दी गई हैं। इसमें हम्मीर का जन्म सं० ११४१ में होना बताया है, और हम्मीर के आत्मघात करने के अनन्तर अल्लाउद्दीन के द्वारा समुद्र में कूद कर प्राण देने का उल्लेख है, जो इतिहास-सम्मत नहीं है। इसका मुख्य रस वीर है, और यह विविध छन्दों में प्रस्तुत किया गया है। इसकी छन्द-संख्या लगभग १००० है।

(१६) खुमाण रासो—इसके रचयिता दलपत विजय है, जो दौलत विजय भी कहे जाते हैं। यह एक प्राचीन रचना मानी जाती रही है। अनुमान किया जाता रहा है कि यह खुमाण (सं० ८००-८९० वि०) के समकालीन उनके किसी आश्रित कवि की रचना रही होगी।^६ किन्तु इधर इसकी जो प्रतियाँ मिली हैं, उनमें राणा संग्रामसिंह द्वितीय (सं० १७६७-९०) तक का उल्लेख है, इसलिए यह

^१ श्री मोतीलाल मेनारिया: 'राजस्थानी भाषा और साहित्य', पृ० १५८।

^२ 'राजस्थान भारती', भाग ३, अंक ३-४, पृ० १००।

^३ श्री मोतीलाल मेनारिया: 'राजस्थानी भाषा और साहित्य', पृ० १६०।

^४ 'राजस्थान में हिन्दी हस्तलिखित ग्रंथों की खोज', भाग ३, पृ० १०७।

^५ 'हम्मीर रासो', नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, छन्द ९६८।

^६ डॉ० श्याम सुन्दर दाम: 'हिन्दी भाषा का इतिहास', पृष्ठ २२३।

रचना अपने इस समय के रूप में अठारहवीं शताब्दी वि० के अन्त को प्रतीत होती है।^१ अन्य साक्ष्यों की सहायता से भी दलपति विजय का समय अठारहवीं शताब्दी निश्चित किया गया है।^२

इसका विषय मेवाड़ के सूर्य वंश का इतिवृत्त है :—

कवि दीजे कमला कला जो डण कवित जुगति ।

सूरजि वंस तणो सुजस वरणन करुं बिगति^३ ॥४॥

इस प्रकार वंश के नाम से लिखे गए रासो के उदाहरण हमें ऊपर भी मिल चुके हैं—यथा: 'कायमरासो', इसलिए कुछ आश्चर्य नहीं कि 'खुमाण रासो' केवल खुमाण के चरित को लेकर नहीं, बल्कि उनके वंश के इतिहास को लेकर लिखा गया हो।

यह ग्रन्थ विविध छन्दों में प्रस्तुत किया गया है, और कविता की दृष्टि से भी सरस है।

॥ (१७) रासा भगवंत सिंह का—इसके लेखक सदानन्द हैं।^४ कृति में रचना-काल नहीं दिया हुआ है, किंतु इसमें सं० १७९७ के एक युद्ध का वर्णन है :—

सबत सत्रह सत्तानवे कार्तिक मंगलवारा ।

सित नौमी संग्राम भी विदित सकल संसारा ॥

इसलिए इसकी रचना इस तिथि के कुछ बाद की होनी चाहिए। इसमें भगवत सिंह खीची का चरित्र वर्णित हुआ है। इसका मुख्य रस वीर है। यद्यपि रचना केवल १०४ छन्दों की है, किंतु इसमें छन्द-वैविध्य है।

॥ (१८) करहिया को रायसो—इसके रचयिता गुलाब कवि हैं, जिन्होंने इसकी रचना सं० १८३४ वि० में की थी।^५ इसमें करहिया के परमारों तथा भरतपुर के जवाहरसिंह के बीच सं० १८३४ में हुए युद्ध का वर्णन है। इसका रस वीर है। यह रचना भी विविध छन्दों में प्रस्तुत की गई है।

(१९) रासा भैया बहादुर सिंह का—इसके रचयिता शिवनाथ हैं। इसका रचना-काल सं० १८५३ के कुछ ही बाद ज्ञात होता है, क्योंकि इसमें सं० १८५३ की एक घटना का उल्लेख है।^६ इसमें बलरामपुर के शासक भैया बहादुर सिंह का चरित्र वर्णित हुआ है। मुख्य रस वीर है। इसमें भी विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है।

(२०) रायसो—यह उपर्युक्त शिवनाथ की एक अन्य रचना है।^७ इसमें रचना काल नहीं दिया हुआ है। किन्तु उपर्युक्त रचना सं० १८५३ के कुछ ही बाद की है, इसलिए यह भी उसी समय के लगभग की होगी। इसमें धारा के महाराजा जसवत सिंह तथा रीवा के महाराजा अजीतसिंह का युद्ध वर्णित है। इसका मुख्य रस वीर है। इसमें भी विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है।

(२१) हमीर रासो—इसके रचयिता महेश कवि हैं।^८ रचना-काल अज्ञात है। इसकी प्राप्त प्रतिलिपि सं० १८६१ की है। इसका विषय भी वही है जो जोधराज की इसी नाम की रचना का है। प्रधान रस वीर है। यह रचना विविध प्रकार के लगभग ९०० छन्दों में समाप्त हुई है।

^१ श्री मोतीलाल मेनारिया : 'खुमाण रासो', नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सं० २००९, पृ० ३५४।

^२ वही।

^३ 'राजस्थान में हिन्दी हस्तलिखित पुस्तकों की खोज', भाग ३, पृ० ८२।

^४ दे० नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग ५, पृ० ११४-१३१।

^५ दे० वही, भाग, १०, पृ० २०८।

^६ 'हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का खोज विवरण', वाशी नागरी प्रचारिणी सभा, १९२०-२२, संख्या १८२।

^७ वही।

^८ वही, १९०१, संख्या ६२।

(२२) कलियुग रासो—यह रचना अलि रसिक गोविन्द की है।^१ इसका रचना-काल सं० १८६५ है। इसमें कलियुग का प्रभाव वर्णित है। यह रचना लगभग ७० छन्दों में समाप्त हुई है। उद्धृत अंशों में केवल मनहरण कवित्त छन्द मिलता है। असम्भव नहीं कि पूरी रचना मनहरण कवित्त छन्द में हो। यदि ऐसा ही हो तो यह रासो की छन्द-वैविध्य परक परम्परा की एक अन्तिम रचना प्रतीत होती है, क्योंकि इसमें छन्द-वैविध्य का आग्रह नहीं है। हो सकता है कि इस समय रासो-परम्परा की छन्द-वैविध्य सम्बन्धी आवश्यकता विस्मृत हो चुकी हो, और 'रासो' शब्द एक उत्कृष्ट काव्य मात्र का पर्याय समझा जाने लगा हो।

परिणाम

अब हम रासो काव्यधारा के विषय में कुछ परिणाम सुगमता से निकाल सकते हैं :—

(१) रास तथा रासो नामों में प्रायः कोई भेद नहीं है, दोनों नाम एक ही अर्थ में और कभी-कभी साथ-साथ एक ही रचना में प्रयुक्त हुए हैं। यह धारणा निराधार है कि रास कोमल भाव-नाओं का परिचायक रहा है और रासो युद्धादि सम्बन्धी कठोर भावों का। यदि देखा जाय तो अनेक प्रकार के विषय रास और रासो द्वारा अभिहित काव्यों के वर्ण्य बने हैं।

(२) रासो के अन्तर्गत प्रबन्ध की दो विभिन्न परंपराएँ आती हैं: एक तो गीत-नृत्य-परक है और दूसरी छन्द-वैविध्य-परक। दोनों परंपराओं को मिलाया नहीं जा सकता है।

(३) गीत-नृत्य-परक परंपरा की रचनाएँ प्रायः आकार में छोटी हैं, क्योंकि उन्हें गाकर सुनाने के लिए स्मरण रखना पड़ता था, जबकि छन्द-वैविध्य-परक परंपरा में रचनाएँ छोटे-बड़े सभी आकारों की हैं।

(४) गीत-नृत्य-परक परंपरा का प्रचार जैन धर्मावलंबियों में अधिक रहा है। उनके रचे हुए प्रायः समस्त रासो इसी परंपरा में हैं। दूसरी परंपरा का प्रचार जैनेतर समाज में अधिक रहा है।

(५) गीत-नृत्य-परक रासो रचनाएँ प्रायः पश्चिमी राजस्थान और गुजरात में लिखी गईं, जबकि छन्द-वैविध्य-परक रासों की रचना प्रायः पूर्वीय राजस्थान तथा शेष हिंदी प्रदेश में हुई।

✓(६) काव्य का दृष्टिकोण दूसरी ही परंपरा में प्रधान रहा, प्रथम में नहीं और इसीलिए शुद्ध साहित्य की दृष्टि से दूसरी परंपरा प्रथम की अपेक्षा अधिक महत्व की है।

उद्भव

इन दोनों परंपराओं का उद्भव किस प्रकार हुआ होगा, इस पर भी हमें संक्षेप में विचार कर लेना चाहिए।

रासिक एक अति प्राचीन भारतीय नृत्य रहा है। इसको लास्य का एक भेद मानते रहे हैं। शारदा-तनय (सं० १२२५-१३०० वि० के लगभग) ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भाव प्रकाशन' में लिखा है कि लास्य के चार भेद होते हैं : (१) शृंगला, (२) लता, (३) पिंडी तथा (४) भेद्यक, और इनमें से लता के पुनः तीन भेद होते हैं: (१) दण्ड रासक, (२) मण्डल रासक तथा (३) नाट्य रासक।^२ संभवतः इसी 'नाट्य रासक' से उस नाम के उप रूपक की उत्पत्ति हुई होगी, क्योंकि शारदा-तनय ने 'नाट्य रासक' उप रूपक में रागों के साथ उपर्युक्त शृंगला, लता, पिंडी तथा भेद्यक नृत्यों का प्रयोग भी बतलाया है।^३

^१ 'हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का खोज विवरण', १९०९-११, संख्या २६३।

^२ भावप्रकाशन, गायकवाड़ औरिएटल सीरीज, बड़ौदा, पृ० २९०।

^३ वही।

ऐसा प्रतीत होता है कि यही नाट्य-रासक उप रूपक नाटकीय संकेतो और उसके कुछ अन्य तत्वों से विरहित होकर गीत-नृत्य-परक रास काव्यरूप में ढल गया। इस परंपरा की रचनाओं में उनके गाए जाने और कभी कभी नृत्य-समन्वित होने का जो उल्लेख मिलता है, यथा 'उपदेश रसायन' में ऊपर हमने देखा है, वह इस उद्भव की ओर स्पष्ट संकेत करता है।

दूसरी परंपरा का उद्भव किंचित् भिन्न है। उसकी कल्पना छन्द मूलक प्रतीत होती है। अपभ्रंश के प्रायः सभी छन्द-निरूपको ने रासा नाम के छन्द के लक्षण बताए हैं और दो ने रासक तथा रासाबन्ध नाम से एक काव्यरूप का भी लक्षण बताया है। ये दो छन्द निरूपक हैं विरहाक तथा स्वयंभू।

विरहाक ने लिखा है^१ :—

अडिलाहिं डुवहएहि ष मत्तारड्डहि तहअ दोसाहिं ।

बहुएहिं जो रइजइ सो भणइ रासओ णाम ॥

अर्थात् जिसमें बहुत से अडिला, दोहा, मात्रारड्डा और दोसा छन्द पाये जाते हैं, ऐसी रचना रासक कहलाती है।

स्वयंभू ने लिखा है^२ —

घत्ता छडडणिभाहिं पद्धडिआ सु भण रुपहि ।

रासा बधो कवे जणमण अहिरामो होइ ॥

अर्थात् काव्य में रासाबन्ध अपने घना, छप्पय, पद्धडी तथा अन्य रूपकों के कारण जनमन-अभिराम होता है।

छन्द-वैविध्य-परक रास-परंपरा अन्य काव्योचित गुणों के साथ अपने इसी छन्द-वैविध्य को लेकर आई और उपर्युक्त गीत-नृत्य-परक परंपरा से अलग विकसित हुई। अपनी इसी रासकता का उल्लेख 'संदेश रासक' करता है जब वह कहता है^३ :—

कह बहु रुवि णिबद्धउ रासउ भासियउ

और 'पृथ्वीराज रासो' इसी छन्द-वैविध्य वाली परंपरा का काव्य है।

—:~:—

^१ 'वृत्त जाति सङ्केत', ४.३८ ।

^२ 'स्वयंभूच्छंदस्', ८.४९ ।

^३ 'संदेश रासक', छन्द ४३, भारतीय विद्या भवन, बम्बई ।

१८. 'पृथ्वीराज रासो'

की

वस्तु-कल्पना

'रासो' का कवि पृथ्वीराज के संपूर्ण जीवन की कथा को नहीं कहना चाहता है, वह एक प्रकार से कथा-नायक के जीवन के अन्तिम वर्षों की कथा को ही अपनी रचना का विषय बनाना चाहता है। उसके शेष जीवन का परिचय वह रचना के प्रारम्भ में केवल एक छन्द में देता है, जिसका आशय है कि पृथ्वीराज की कपिल (धूल-धूसरित) केलि अजमेर में हुई थी, उसके रक्त (अनुरागपूर्ण) जीवन के वृत्त सोंभर में हुए थे, वह सोमेश्वर का पुत्र बहिलावन (१) का निवासी था और दिल्लीपुर में भासित होने के लिए ही मानो विधाता द्वारा निर्मित हुआ था (१.६)। प्रश्न होता है कि ऐसा उसने क्यों किया। क्या कथा-नायक के पूर्ववर्ती जीवन में कवि को ऐसी कोई घटनाएँ नहीं मिली जो महाकाव्य के उपयुक्त होती, या कथा-नायक के चरित्र में ऐसे कोई विशेष तत्व नहीं विकसित हुए थे जो महाकाव्य के नायक के लिए आवश्यक होते अथवा नायक के जीवन के उस अंश में रस के वे विशेष तत्व कवि को नहीं मिले जो एक महाकाव्य के लिए आवश्यक होते ?

वस्तुतः ऐसी कोई बात नहीं दिखाई पड़ती है। नायक के पूर्ववर्ती जीवन का चित्रण न करते हुए भी कवि ने उसके सम्बन्ध में स्थान-स्थान पर संकेत किए हैं। एक स्थान पर कथा-नायक के द्वारा कवि ने कालिंजर के जलमग्न किए जाने की बात वही है (२.१७)। कालिंजर के पराक्रमी चंदेल शासक परमर्दि पर उसकी विजय उस युग की एक असाधारण घटना थी—सं० १२३९ के मदनपुर के शिलालेख में उसकी वह विजय-गाथा अंकित हुई है^१, और जगनिक के नाम से प्रसिद्ध आल्ह खण्ड उसी घटना को अपना वर्ण्य बनाता है। उस युग के अति पराक्रमी शासक गुर्जर-नरेक्ष भीम चौलुक्य पर भी उसने विजय प्राप्त की थी^२ 'रासो' में यह बार-बार कहा गया है (२.३, ८.४, १२.३३)। इतना ही नहीं, यहाँ तक कहा गया है कि उसने स्वयं भीम के साथ युद्ध करना आवश्यक नहीं समझा था, उस समय वह दूर विश्वास में था जब उसके मंत्री (कैवास) ने भीमसेन को परास्त करके बन्दी बनाया था (३.६)। इतिहास से यह घटना कहाँ तक अनुमोदित है, यह एक भिन्न प्रश्न है।^२ किंतु यह तो निश्चित ही है कि कवि के मानस पर पृथ्वीराज की ये असाधारण विजयें भी अंकित थीं। शहाबुद्दीन पर भी उसे जीवन के उस अंश में एक महान् विजय प्राप्त हुई थी, यह कवि ने बार बार कहा है, और इतिहास से भी यह भली भाँति अनुमोदित है। और ये घटनाएँ ऐसी हैं जो अलग-अलग महाकाव्यों का विषय बन सकती थीं—कदाचित् इसी बात

^१ दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता' शीर्षक।

^२ दे० वही।

को देखकर पीछे महोबा खंड, भीम-युद्ध खंड तथा शहाबुद्दीन खंड की कल्पना की गई, जो रचना के कुछ पाठों में पाए भी जाते हैं। किंतु पाठ-निर्धारण के प्रसंग में ऊपर हम देख चुके हैं रचना के मूल रूप में ये खंड नहीं हो सकते हैं। इसलिए ऊपर जो प्रश्न उठाया गया है वह बना रहता है।

प्रस्तुत लेखक के विचार से इस प्रश्न का समाधान इस तथ्य में निहित है कि कवि उन घटनाओं को अपने काव्य का वर्णन नहीं बनाना चाहता था जो जयानक (१) के 'पृथ्वीराज विजय' महाकाव्य में वर्णित हो चुकी थीं। परमर्दि पर पृथ्वीराज के विजय की कथा उसमें आती थी, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है; भीम के साथ पृथ्वीराज के संवर्ष की कथा उसमें आती थी यह निश्चित तो नहीं है किन्तु दोनों में वेमनस्य था, इस विषय के संकेत उसमें मिलते हैं।^१ शहाबुद्दीन पर पृथ्वीराज को जो विजय प्राप्त हुई थी, वह तो उस काव्य का लक्षित विषय ही था, यह 'रासो' के कवि के तत्सम्बन्धी कथन से प्रमाणित है। उसने कहा है कि पण्डित [जयानक] को पृथ्वीराज का यह आदेश हुआ कि वह शाह शहाबुद्दीन पर उसको प्राप्त हुई विजय का काव्य लिखे।^२ और यह उल्लेख उसने रचना के एक प्रारम्भिक प्रसंग में किया है, जिसके पूर्व काव्य की कोई प्रमुख घटना नहीं आती है। इससे यह प्रकट है कि 'रासो' का कवि उन घटनाओं को अपने काव्य का विषय नहीं बनाना चाहता था जो 'पृथ्वीराज विजय' का विषय बन चुकी थी, और परिणामतः यह भी प्रकट है कि वह एक सर्वथा मौलिक काव्य की रचना करना चाहता था। वह अपनी प्रतिभा का चमत्कार कथा-नायक के जीवन की उन्हीं घटनाओं को अपने महाकाव्य का विषय बनाकर प्रदर्शित करना चाहता था जो पृथ्वीराज के जीवन में शहाबुद्दीन पर प्राप्त विजय के अनन्तर घटित हुई थी, और यही कारण है कि पूर्ववर्ती घटनाओं का उल्लेख करते हुए भी उसने अपने काव्य को कथा-नायक के जीवन के अन्तिम वर्षों की घटनाओं तक सीमित रखा।

इस रचना में चार ही घटनाएँ आती हैं : (१) कैवास-वध, (२) पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध, (३) शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज युद्ध तथा (४) शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज अंत। तीसरी और चौथी घटनाएँ सन्निकट रूप से परस्पर सम्बद्ध हैं। कवि कथा-नायक को पराजित नहीं छोड़ना चाहता था, इसलिए उसने अन्तिम घटना की कल्पना की, यह बहुत सम्भव है; उक्त घटना इतिहास अनुमोदित नहीं है, यह तथ्य इसी ओर संकेत करता है। शेष तीन घटनाओं में ऊपर से देखने पर परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं सात होता है। एक सामान्य धारणा प्रचलित रही है कि जयचन्द ने पृथ्वीराज के वैर के कारण शहाबुद्दीन को पृथ्वीराज पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया था, या कम से कम उस युद्ध में जिसमें पृथ्वीराज पराजित हुआ था उसने शहाबुद्दीन की सहायता की थी, किंतु 'रासो' में इस प्रकार का एक भी उल्लेख नहीं हुआ है। ऐसा उसका कवि बड़ी सुगमता से कर सकता था, किंतु फिर भी उसने नहीं किया है और कदाचित् इसलिए नहीं किया है कि वह प्राप्त इतिहास की उपेक्षा नहीं करना चाहता था। कैवास-वध की घटना को भी किसी प्रकार उसने पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध अथवा शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज युद्ध से सम्बन्धित नहीं किया है, यद्यपि यह भी असम्भव नहीं था : 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह' में संकलित पृथ्वीराज-प्रबन्ध में दिखाया गया है कि कैवास के वध का जो प्रयत्न पृथ्वीराज ने किया था उसमें वह अकृतकार्य रहा : तदनन्तर वध के इसी प्रयत्न से रुष्ट होकर कैवास ने शहाबुद्दीन से वह आक्रमण कराया, और प्रच्छन्न रूप से उस युद्ध में उसकी सहायता की जिसमें पृथ्वीराज का पराभव हुआ, और अन्त तक उसने विश्वासघात करके

^१ दें० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रामो की ऐतिहासिकता' शीर्षक।

^२ दें० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज विजय और पृथ्वीराज रासो' शीर्षक।

पृथ्वीराज का वध भी कराया ।^१ किंतु 'रासो' के कवि ने इस प्रकार की कोई कल्पना नहीं की है। कदाचित् प्रातः इतिहास में इस प्रकार की कोई बात न पाकर ही उसने उपर्युक्त प्रकार की कोई कल्पना नहीं की। फिर भी यह न समझना चाहिए कि 'रासो' के कवि का ध्यान इस विषय पर नहीं था, अथवा वह केवल एक चरित लिख रहा था, जिसमें एक दूसरे से सर्वथा स्वतन्त्र घटनाओं को भी स्थान मिल सकता था। उसने इन तीनों घटनाओं को अपनी सरस कल्पना से जिस प्रकार सूत्रित करने का प्रयत्न किया है, वह दर्शनोप है।

कैवास-वध और पृथ्वीराज जयचन्द युद्ध में जो सम्बन्ध-हीनता रहती है, वह उसका परिहार एक कथा-सूत्र का विकास कर करता है। कवि कहता है कि कैवास-वध की घटना का समाचार जब उसकी विधवा स्त्री को मिलता है, वह चन्द से मृग पते का शव दिलाने का अनुरोध करती है, और चन्द जब पृथ्वीराज से इस विषय का अनुरोध करता है, वह बड़े आग्रह के अनंतर इस शर्त पर शव के दिए जाने की स्वीकृति देता है कि चन्द उस छद्म वेश में कन्नौज ले जावेगा (३.३७-३९)। इस प्रकार कवि कैवास-वध को प्रासंगिक कथा की भी मुख्य या आविष्कारिक कथा का एक उपयोगी अंग बना देता है।

पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध और शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अंतिम युद्ध में जो सम्बन्ध-हीनता रहती है, उसका परिहार भी वह एक कथा-सूत्र का विकास कर करता है। किन्तु यह विस्तार अत्यन्त स्वामा-विक और सरस है। प्रस्तुत संस्करण के सर्ग ९ में कवि कहता है कि जयचन्द से युद्ध के अनंतर पृथ्वीराज सयोगिता का दिल्ली लाकर केलि-विलास में पड़ गया और अपनी शक्ति को उसने नष्ट कर दिया; उसे इस प्रौढ़ रति के समक्ष दिन और रात की सुषे नहीं रहती थी, परिणाम स्वरूप उसके गुरुजन, बाधव, भृत्य और प्रजा में असन्तोष फैल गया। सयोगिता ने पृथ्वीराज को इस प्रकार वश में कर रक्खा था कि उसके लिए सयोगिता को छोड़ कर कहीं भी जाना असम्भव हो गया था : ऋतुएं आती थीं और चली जाती थी और सयोगिता के प्रणयानुरोधों के कारण पृथ्वीराज उसे छोड़ कर राजभवन से निकल तक नहीं पाता था। प्रस्तुत संस्करण के सर्ग १० में वह इस अवस्था से चन्द तथा गुरुराज के उद्बोधनों से मुक्त होता है, किन्तु उसकी मोह-निद्रा जब खुलती है, शहाबुद्दीन उसके सिर पर पहुँचा हुआ होता है (१०.२०—२४)। सयोगिता अंतिम बार विलास-मग्न जीवन की रमणीयता की ओर उसका ध्यान आकृष्ट कर उसे रोकना चाहती है, किन्तु पृथ्वीराज फिर नहीं रुकता है (१०.२५-२६)। फिर भी, इस मोह-निद्रा का जो अनिष्टकारी परिणाम हो सकता था, वह हुए बिना नहीं रहता है, और शहाबुद्दीन के साथ अंतिम युद्ध में पृथ्वीराज पराजित होता है (सर्ग ११)।

उपर्युक्त के अतिरिक्त भी कथा के अन्त में कथा-नायक के अन्त के साथ कवि कैवास-वध तथा सयोगिता के केलि-विलास का एक ऐसा सामञ्जस्य प्रस्तुत करता है जो अत्यन्त सार-गर्भित है। यह चन्द के मुख से कहलाए गए एक कथन के रूप में है—

प्रथमि राज कमान वान द्रिढ सुटि गहहि कर ।
जिन बिसमउ मर करहि करहि भुभपत्ति अप्पु वर ॥
जि कछु किअउ कयमास किअउ अप्पनउ सु पायउ ।
सोइ संभरी नरेसु तुहि ज अम्मर पुर आयउ ।
विधिना विधान भेटइ कवन दीन मान दिन पाइयइ ।
सर एक फोरि सभरि घनी सत्तहि सबुद गमाइयइ ॥ (१२.४६)

^१ दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पुरातन प्रबन्ध सग्रह और पृथ्वीराज रासो' शीर्षक ।

चंद यह कहना चाहता है “जिस विलासिता के गर्त में गिरने के कारण कैवास की दुर्गति हुई—और तुम्हारे द्वारा हुई—उसी विलासिता-गर्त में तुम स्वयं जानते-बूझते गिरे, तो अब उसके परिणाम से कैसे बच सकते हो ? वह गति तो तुम्हारी होनी ही है जो कैवास की हुई; इस अवस्था में तुम शत्रु के भी प्राण ले सको यही बहुत है।” जैसा हम आगे देखेंगे यह चंद ही जैसा पात्र था जिसके द्वारा इस प्रकार की उक्ति कवि प्रस्तुत करा सकता था। सम्पूर्ण कथा चन्द की उपर्युक्त उक्ति की पृष्ठभूमि में कितनी सगतिपूर्ण और सुसबद्ध लगने लगती है, यहाँ दर्शनीय इतना ही है। एक अकुशल कवि जिस प्रभाव को प्रचुर प्रयासों के बाद भी कदाचित् ही संपादित कर सकता था, ‘रासो’ का कुशल कवि एक सहज उक्ति मात्र से संपादित कर देता है, यह उसके सच्चे कलाकार होने का एक ज्वलंत प्रमाण है।

विभिन्न कथाओं के विकास में भी उसकी यह प्रबन्ध-कुशलता देखी जा सकती है। समस्त रचना में एक भी प्रसंग ऐसा नहीं मिलता है जो विषयान्तर उपस्थित करता हो, न कोई अनावश्यक वर्णन-विस्तार मिलता है, यहाँ तक कि एक-एक छंद और एक-एक उक्ति अपने-अपने स्थान पर अनिवार्य लगते हैं। ऐसा लगता है जैसे सम्पूर्ण रचना एक सुनिश्चित योजना के सहारे खड़ी की गई हो, जिसमें उसके हर एक अंग और हर एक अंश का स्थान और कार्य निर्धारित हो। इतना सुगठित प्रबन्ध, कहना नहीं होगा, समूचे प्राचीन और मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में दुर्लभ है।

‘रासो’ की सम्पूर्ण कथा इस प्रकार सम्यक् रूप से सर्गों में विभाजित है कि वह भी उसके कवि का प्रबन्ध-कौशल सूचित करती है, लघुतम पाठ में सर्ग-विभाजन नहीं है, किन्तु उसमें छंदों की क्रम-संख्या तक नहीं है, इसलिए ‘रासो’ के मूल रूप में भी स्थिति यही रही होगी यह कल्पना करना उचित न होगा। प्रस्तुत संस्करण का सर्ग-विभाजन ‘रासो’ के समस्त शेष पाठों के अनुसार किया गया है—केवल कथा की भूमिका का छंद मंगलाचरण के साथ रखा गया है, जो शेष पाठों में किसी स्वतन्त्र सर्ग में है, और पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध उसकी प्रबन्ध-कल्पना के अनुसार पूर्वाद्ध तथा उत्तराद्ध में विभक्त किया जाकर दो सर्गों में रखा गया है, जो लघु में तीन सर्गों में तथा शेष पाठों में प्रायः एक ही सर्ग में आता है। इन सर्गों की कथाएँ परस्पर इतनी अलग-अलग हो जाती हैं, कि यह मानना असम्भव हो जाता है कि ‘रासो’ के कवि के मन में कोई सर्ग-कल्पना नहीं थी। सर्गों के नामों के सम्बन्ध में अवश्य लघु, मध्यम तथा बृहत् पाठों में प्रायः कोई साम्य नहीं है, और सर्गों के बीच-बीच में प्रक्षिप्त कथाओं के आने के कारण नाम-परिवर्तन होता रहा होगा, यह आसानी से समझा जा सकता है। अतः प्रस्तुत संस्करण के लिए सर्गों के नामों या शीर्षकों की कल्पना वर्णित कथा को ध्यान में रखते हुए एक प्रकार से नए सिरे से करनी पड़ी है।

१९. 'पृथ्वीराज रासो'

की

चरित्र कल्पना

'रासो' की चरित्र-कल्पना ही उसकी सबसे बड़ी विशेषता है—जैसा कि वह प्रत्येक महाकाव्य की हुआ करती है। एक प्रकार से उसके सभी पात्र असामान्य वीर हैं, किन्तु प्रायः उनके अपने-अपने व्यक्तित्व हैं, जिन्हे नीचे स्पष्ट करने का यत्न किया जा रहा है।

पृथ्वीराज

पृथ्वीराज इस महाकाव्य का नायक है। उसके समस्त कार्य धर्म-बुद्धि से होते हैं। कथा के आरम्भ में ही हम देखते हैं कि वह धीर और विनयशील है और गुरुजनों के समक्ष सकोच करता है। जब जयचन्द के दूत उसकी सभा में राजसूय में सम्मिलित होने का जयचन्द का निमन्त्रण लेकर आते हैं, गुरुजनों को देख कर वह वीर सकुच जाता है और उत्तर नहीं देता है; उत्तर उसका एक गुरुजन गोविंद राज देता है :—

बोलउ न वयण प्रथिराज तांहि ।

संकरिउ सिंघ गुरुजनन चाहि ॥

(२. ३. ११. २२)

इसी प्रकार कन्ह जब उसे 'अयान' कहते हुए एक स्थान पर संबोधित करता है, वह इससे तनिक भी बुरा नहीं मानता है :—

बोलउ कन्ह अयान त्रिप मति मंडन समरथ्य ।

जउ मुक्कइ सथ सथिअनु तउ कत लिन्ने सथ्य ॥

(६.२)

चन्द को तो जैसे उसने पूरी स्वतन्त्रता दे रखी है कि वह जब चाहे जो कुछ वहे, यह हम चंद के चरित्र का निरीक्षण करते हुए देखेंगे।

जयचन्द से उसका संघर्ष उसकी सौन्दर्य-लिप्सा के कारण नहीं हुआ है, जैसा सामान्यतः समझा जाता है। ऐसा नहीं है कि उसने संयोगिता के रूप-लावण्य की प्रशंसा सुनी हो और वह कन्नौज पर चढ़ दौड़ा हो; एक दीर्घ मानसिक संघर्ष के बाद अपना कर्त्तव्य समझकर ही उसने यह किया है। और यह समझ लेना उसके संपूर्ण चरित्र को समझने के लिए नितान्त आवश्यक है : कर्त्तव्य के सामने प्राणों की चिन्ता उसने कभी नहीं की है।

'रासो' का कवि कहता है कि जयचन्द की पुत्री संयोगिता ने पृथ्वीराज को वरण करने के लिए व्रत लिया था, यह उससे किसी ने, संभवतः उसके चर ने, कन्नौज के समाचार देते हुए कहा :—

संयोगि जोग वर तुम्ह आज ।

व्रत लिखउ वरण प्रथिराज राज ॥

(२.१०)

तिहि पुत्तिय सुनि गन इतउ तात वचन तजि काज ।

कइ बहि गगाह संचरउ कइ पानि गहउं प्रथीराज ॥ (२.११)

चर की बातें सुनकर उसे आश्चर्य होता है, किन्तु उसे विश्वास हो जाता है कि संयोगिता हृदय से उसपर अनुरक्त है और राजा (जयचन्द) उसे अन्य से ब्याहना चाहता है, यद्यपि दैव को कुछ और ही मजूर है :—

सुनत राइ अचरिज भयउ हियइ मन्यउ अनुराउ ।

नृप वर अनि उर अंगमइ दैवहि अवर स भाउ ॥ (२.१२)

जब से उसने यह सुना है, और फिर यह सुना है कि उसकी स्वर्ण-प्रतिमा दरबान के स्थान पर जयचन्द ने स्थापित की है, उसका चित्त अशान्त रहने लगता है। कैवास-कर्नाटो प्रणय और उनके वध की घटना उसकी इसी मानसिक अशांति के बीच पड़ती है। कवि ने कहा है कि इस मानसिक ताप से जी को बड़लाने के लिए वह आखेट में रहने लगा था, राज-काज उसने अपने प्रधान 'अमात्य' कैवास को सौंप रक्खा था :—

तिहि तप आखेटक भमइ थिर न रहइ चहुवान ।

वर प्रधान जुगिनिपुरह धर रषइ परवान ॥ (३.१)

जब कैवास उसकी इस मानसिक स्थिति में राजभवन के नियमों का उल्लंघन कर उसकी दासी के कक्ष में प्रवेश करता है, तो उसका प्राण गँवाना अवश्यभावी हो जाता है। असंभव नहीं कि भिन्न मानसिक स्थिति में वह अपने प्रधान 'अमात्य' को, जिसने किसी समय भीम चौलुक्य जैसे उसके प्रचंड शत्रु को पराजित किया था (३.६), इतना कठोर दण्ड न देता ।

किन्तु तब तक उसके मानसिक संघर्ष की स्थिति समाप्त हो जाती है, कैवास-वध के अनन्तर अपने बाल-सहचर चन्द से गले मिलकर वह रोता है, क्योंकि अपने उपहासपूर्ण जीवन का अन्त करने के लिए उसने प्राणोत्सर्ग का संकल्प कर लिया है :—

दोइ कउ लगिय गहन नयनह जल गल न्हांनु ।

अब जीवन बलिहि अधिक कहि कवि कोन सयानु ॥ (३.४०)

इस संकल्प पर उसके वीर सहचर चन्द का आनन्दित होना स्वाभाविक ही है, जब वह जान लेता है कि पृथ्वीराज का संकल्प उसके सिर से गुस्तर तथा उसका जीवन हल्का और सिर [कंधों पर] भारी हो रहा है :—

आनन्दउ कवि चन्दु जिय त्रिय क्रिय संच विचार ।

मन गरुअर सिर हरुअ इइ जीवन हरउ सिर भार ॥

और इस संकल्प का समर्थन करते हुए वह कहता है :—

धरि वरु पंगु प्रगटु अरु थटु विहडिहइ ।

इत उपहास विलास न प्रान पमूकिहइ ॥ (३.४३.३-४)

उसकी वीरता के सम्बन्ध में तो अधिक कुछ करना ही व्यर्थ होगा : उसकी सारी जीवन-गाथा वीरता की अनुपम कथा है। संयोगिता का वरण करके वह चुपचाप कन्नौज से चल नहीं देता है, अपने सहचर चन्द के द्वारा वह घोषित करा देता है कि जयचन्द-पुत्री का परिणय करके जयचन्द से दायज के रूप में वह उससे युद्ध चाहता है :—

सज रिपु ढिलियनाथ सो ध्वसनं जगियं आये ।

परणेवं तव पुत्ती युध्दं मंगति भूषनं सोइ ॥ (७.२)

उसके सामंत जब देखते हैं कि युद्ध विषम है और यह संभव नहीं है कि कन्नौज में रुक कर युद्ध किया जावे, वे पृथ्वीराज से अनुरोध करते हैं कि वह दिल्ली की दिशा में प्रस्थान करे और

वे सब एक-एक करके जयचन्द की विनाल वाहिनी को रोकें और जिस प्रकार भी सम्भव हो उसे दिल्ली तक सुरक्षित पहुँचा दें। किन्तु पृथ्वीराज इस प्रस्ताव से सहमत नहीं होता है, और कहता है :—

मति घटी सामंत मरण हउ मोहि दिषावहु ।
जम चींठी विणु कदन होइ जउ तुमउ बतावहु ।
तुम गंजउ भर भीम तासे गव्वह मयमत्ता ।
मइ गोरी साहव्वदीन सरवर साहंता ।
सुह सरणहि हींदू तुरक तिह सरणागत तुम करहु ।
बूझिअइ न सूर सामंत होइतउ बोझ अपन धरहु ॥ (८.२)

उनके अनेक प्रकार से समझाने पर भी वह उनके प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करता है, जब तक कि उसका बाल-सहचर चन्द इस प्रस्ताव का समर्थन नहीं करता है (८.५-६)। चन्द के कथन को सुनकर पृथ्वीराज कहता है कि उसका कथन उसके लिए अमिट है :—

मिट्यउ ण जाइ कहणो वय कवि चंद सार सा मत ।

और तब वह इस प्रस्ताव को स्वीकार करता है।

उसके इस वीर और कर्त्तव्य-सजग जीवन में केवल एक बार शिथिलता आती है—और यह शिथिलता उसकी समस्त जीवन-साधना पर पानी फेर देती है। 'रासो' की यह शृंगार-कथा वास्तव में उसकी सबसे करुण गाथा है। सकुशल दिल्ली पहुँचकर पृथ्वीराज संयोगिता के साथ केलि-विलास में इस प्रकार लिप्त हो जाता है कि अपनी शक्ति को वह नष्ट कर देता है, और उसके मन में केवल एक बात रहती है—वह किस प्रकार संयोगिता को सुख प्रदान करे। परिणाम यह होता है कि उस मानिनी की प्रौढ रति में उसे दिनों और रातों का होना-जाना नहीं शान्त होता है, और उसके गुरुजन, बाधव, भृत्य तथा प्रजागण उससे खिन्न हो जाते हैं :—

इह विधि विलसि विलास असार सुसार किअ ।
दइ सुष जोग संजोगि सोइ पृथ्वीराज जिय ।
अहनिसि सुधिय न जानहि माननि पौढ रति ।
गुरु बंधव भृत लोइ भई विपरीत गति ॥ (९.८)

उसकी यह मोह-निद्रा तब भंग होती है जब उसका बाल-सहचर चन्द राजगुरु के साथ उसे शहाबुद्दीन के होने वाले आक्रमण की सूचना देता है (१०.२२)। और फिर कर्त्तव्य की पुकार के सामने उसे सुन्दरी का मोह रोक नहीं सकता। वह उसी प्रकार अपने कर्त्तव्य में पुनः स्थित हो जाता है जिस प्रकार कोई नट वेष बदल कर आ जाता हो :—

सुणि कगरु पिट्टउ सुकर धर रष्यइ गुरु भट्ट ।
तरकि तोन सजियउ सकिरि जिम वेष छंडि सू नट्ट ॥ (१०.२४)

इसके बाद संयोगिता काम-सुख में उसे पुनः प्रवृत्त होने को आमन्त्रित करती है, किन्तु पृथ्वीराज उसके सम्मोहन में नहीं पड़ता और कहता है कि जिस वीर-पत्नी ने उसके बाहुओं की पूजा की थी वह सुग्धा काम की बातें किस प्रकार कर रही है ?

सुनि प्रिय प्रिय दिष्यौ वदन किय जिय निर्भय पाथ ।
बाहू पुज्जउ वरइ तुह कहि स सुध्व रतिनाथ ॥ (१०.२६)

यह संयोगिता से उसकी अन्तिम भेट है।

शहाबुद्दीन की सेना उसकी सेना से कई गुना बड़ी है, उसके सामंत -जयचन्द से हुए उसके

टुट में प्रायः कट चुके हैं—इसलिए पराजय तो निश्चित है, फिर भी वह वश्यता स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होता, और अन्त तक लड़ता है, जब तक कि वह बन्दी नहीं कर लिया जाता है।

बन्दी ही नहीं, अन्धा किए जाने के बाद भी उसकी वीरवृत्ति में कोई अन्तर नहीं पड़ता है : चन्द जब शहाबुद्दीन से मिलता है, तो शहाबुद्दीन कहता है कि अन्धा होने पर भी अपनी वक्रदृष्टि नहीं छोड़ रहा था, इसलिए उसे थाने में रख दिया गया था:—

• वै चंद अन्ध* मइ रिस ज कीन ।

वर वंक दीठ छंडइ न भीन ॥

विहान थान रषिज अदब्बु ।

किरतारि हथ्य करिअ न गब्बु ॥

(१२.१५.९-१२)

किन्तु जीवन के अन्त में वह निराश हो चलता है। चन्द के संजीवन-मंत्र को सुनकर एक बार उसकी नसों में नवजीवन का संचार अवश्य होता है, किन्तु फिर वह निराशा से सिर झुका लेता है:—

विग्र देह नव तनह सुभग ।

अषि पांनि मनु चितह लग ।

पहिचानि चन्दु वर धुनिग सीस ।

सिर नयो नहीं मन भई रीस ॥

(१२. ३३. १७-२०)

यह चन्द ही है कि उसने उसको शत्रु से प्रतिशोध लेने के लिए तैयार कर लिया है।

पृथ्वीराज की अंतिम शॉकी वाण-सन्धान के पूर्व मिरती है; 'रासो' का कवि कहता है कि इस समय चन्द का मुख चन्द्र का सा हो रहा था और राजा के मन की सधि (शका) मलिन हो चुकी थी:—

इलि वसि पांनि पविस्ट किय सिगिनि सर गुन बंधि ।

चरचि चंद मुख चंद भयु मलिय राज मन सधि ॥

(१२. ४७)

इसके बाद तो 'रासो' का कवि इतना ही कहता है शहाबुद्दीन के घरती पर गिरते ही राजा का भी मरण हुआ। किन्तु यही पर 'रासो' का अन्त करते हुए वह कहता है कि "देवताओं ने उसके सिर पर पुष्पाजलि छोड़ी, जो धरणी ग्लेच्छों से आवद्ध हो गई थी वह अब नव स्त्री के समान हँस पड़ी, तृण (शरीर के भौतिक तत्व) तृणो (भौतिक तत्वों) को तथा ज्योति (जीव) ज्योति (परमात्मा) को संप्राप्त हुए":—

मरन चन्द वरदिआ राज धुनि साह हन्यउ सुनि ।

पुह पंजलि असमान सीस छोडी त देवतनि ।

मेछ अवधित धरणि धरणि नवत्रीय सुहस्सिग ।

तिनहि तिनहि संजोति ज्योति ज्योतिहि संपत्तिग ।

कहना नहीं होगा कि पृथ्वीराज के इस अमर-चरित्र की कल्पना समूचे हिन्दी साहित्य में अनुपम है, और इसके लिए हमें 'रासो' के कवि का चिरकृतज्ञ होना चाहिए।

संयोगिता

संयोगिता की पहली शॉकी काव्य में एक मनोरम रूप में प्राप्त होती है: वह यवाङ्कुरों को हाथ में लिए मृग-वत्सों को चरा रही है, और ऐसी लग रही है मानो उस मानिनो के मिस इंदु ही [मृग-शावको को] नेत्रों से देख कर आनंदित हो रहा हो; उसकी सखियाँ और सहचरियाँ परस्पर बातें कर रही हैं कि शुभा संयोगिता के संयोग (विवाह) के लिए विधाता ने मानो मन्मथ को ही निर्मित किया होगा:—

जब अंकुर करि पानि चरावते वच्छ मृगु ।
मसु मानिनि मिस इटु भानंदइ देषि इगु ।
सहि सहचरि ति चरत्त परमपर वत्तु किअ ।
सुभ संजोगि सजोग जानुइ मनमथ किअ ॥

✓संयोगिता के इस प्रथम दर्शन में कवि उसे जो 'मानिनी' कहता है, वह प्रसंग-सापेक्ष नहीं है, बल्कि चरित्र-सापेक्ष है—प्रारम्भ में कवि ने संयोगिता का चरित्र ही एक मानिनी के रूप में चित्रित किया है। उसने एक बार पृथ्वीराज को वागण करने का निश्चय कर लिया है (२-१०) तो फिर उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हो सकता है। जयचन्द उसको इस निश्चय से विरत करने के लिए दासियाँ नियुक्त करता है (२-१३)। अनेक प्रकार के तर्कों से दासियाँ उसे इस निश्चय से डिगाना चाहती हैं, किन्तु संयोगिता स्पष्ट कहती है कि वह उनकी बातों में नहीं आ सकती है, और उसने संकल्प कर लिया है कि चाहे उसे सौ जन्म ग्रहण करने पड़े, वह पृथ्वीराज को ही वरण करेगी :—

न मो राजन संबादे न मो गुरुजनागरे ।
वरमेकं सवं देह अन्यथा पृथ्वीराज ॥ (२.१९)

जयचन्द ने उसके इस हठ पर रुष्ट होकर उसे गंगा तट के एक अन्य आवास में भेज दिया है। वह इसी आवास में रहती है। जब कन्नौज की प्रदक्षिणा के प्रसङ्ग में गंगा-तट पर मछलियों को मोती चुगाते हुए पृथ्वीराज का दूर से उसे प्रथम दशन प्राप्त होता है, तत्काल उसे इस नवागतुक के सम्बन्ध में निश्चित रूप से शक नहीं होता है; किन्तु किसी के मुँह से पृथ्वीराज का इस समय नाम सुनते ही उसके शरीर में प्रेम के सात्विक अनुभाव प्रकट हो जाते हैं :—

सुनि रव सुंदरि उभम तन स्वेद कंप सुर भंग ।
मनु कमलिनि कल संभरी अञ्जित किरन तन रंग ॥ (६.११)

यह उसका प्रेमिका का रूप है। उसको इस प्रकार प्रेम कानर देख कर उसकी एक सखी जब उसे सतर्क करती है कि वह इस सम्बन्ध में भागे कदम नहीं बढ़ाए जब उसे निश्चय हो जावे कि यह पृथ्वीराज है (६.१२), तब वह रुकती है। पृथ्वीराज का निश्चय कर इसके अनंतर संयोगिता की भेजी हुई एक सखी उसे संयोगिता से मिलाती है, और दोनों का पाणिग्रहण होता है। उसका वरण कर पृथ्वीराज जब जाने लगता है, उसको विदाई का पान देने हुए वह कह उठती है, "संयोगिता की रक्षा करो ! हे योगिनीपुरेश, तुम्हारी जय हो, जय हो ! सभी प्रकार से [तुम्हारे जाने के] निषेध का जो तांबूल है, उसे ग्रहण करो ।"

पामातु पंग पुत्तीय जयति जयति योगिनि पुरेश ।
सर्व विधि निषेधस्य यः तंबूलस्य समादाय ॥ (६.१७)

किन्तु वही प्रेमिका, जिसकी कामाग्नि प्रेमी के पाणि-स्पर्श तथा दर्शन से संदीप्त हो चुकी थी, जिसने प्रेमी के चले जाने पर मन छोटा कर लिया था, जिस प्रकार जल के न रहने पर मछली का हो जाता है (६.२५), बार-बार जिसकी आँखें जाते हुए प्रेमी को देखने के लिए गवाक्षों में जा लगती थीं, जो सखियों के समझाने पर भी चुपचाप उसी प्रकार व्यथित हो रही थी जैसे चातकी पत्तस को बिताती है, (६.२६) जो अपने विरह-दाह को शीतल करने के लिए शरीर में चन्दन का छेप कर रही थी, जो लजापूर्वक अपने नेत्रों को बार-बार अंचल से ढँक रही थी, कि उसकी प्रेमा-तुरता प्रकट न हो (६.२७), जिसके विरह ताप का निवारण करने में सोम, अमृत और कमल भी व्यर्थ हो रहे थे (६.२८), जब पृथ्वीराज को पुनः आते देखकर वह समझती है कि वह बुद्ध से

विमुख होकर अपनी प्रेमिका के पास आ रहा है, सिर पीट लेती है और कह उठती है, “जिस प्रिय जन की ओर लोक की उँगलियों उठे, उस प्रियजन से क्या काम ?”

जिहि प्रिय तन अंगलि फिरइ तिहि प्रियजन कहा कज । (६.३०)

यह संयोगिता का वीराङ्गना का रूप है। सामन्तगण उसे बहुतेरा समझा रहे हैं, और उस मदन-शर से विनष्टा के प्राण एक क्षण के लिए दयित (प्रिय पति) के प्राणों से अभिन्न भी हो रहे हैं, किन्तु उस के नेत्र-प्रवाह उस दिवस की कथा कहते ही रहते हैं :—

मदन सरालति विवहा निमिषि इद्वत प्रांन प्रांनेन ।

नयन प्रवाहति -विवहा दिवा कथय कथा ॥ (६.३२)

और जब उसे यह विश्वास हो जाता है कि पृथ्वीराज युद्ध में जा रहा है, केवल उसे लेने के लिए आया हुआ है, हर्ष से पूरित होने के कारण उसका गला भर जाता है और वह पृथ्वीराज के साथ घोड़े की पीठ पर जा बैठती है :—

सुन्दरि सोचि समच्छिम गह गह कंठ भरि ।

तबहि प्राण प्रथिराज त वचिय बाहु करि ।

दिय हय पुट्टिय भार सुसज्ज सुलब्धिनड ।

करति तुरंग सुरंग स पुच्छित वच्छनड ॥ (६.३४)

युद्ध के अन्तर्गत हमें उसका पत्नी का स्निग्ध मधुर रूप दिखाई पड़ता है जब प्रथम दिन के युद्ध के अनन्तर रात्रि के आगमन पर तारिकाओं के [हर्ष के] लिए इन्दु का उदय होता है, और नील कमल खिलता है, और नव विरही मिलकर नव स्नेह के नव जल (अश्रु) का रुदन करते दिखाई पड़ते हैं। वे आभूषणों को समीप ही पड़ा रहने देते हैं, उन्हें धारण नहीं करते हैं; फिर भी वे परस्पर मिलकर मृदु मंगल मनाते हुए मन से सभी प्रकार के मनोरथ करते हैं :—

षेचरह कड उयड इदु इंदीवर डइयड ।

नव विरही नव नेह नव जल नय रदइयड ।

भूषन सोभ समीपनि मंडित मंडितन ।

मिलि मृदु मंगल कीन मनोरथ सज्ज मन ॥ (६.३६)

किन्तु दिल्ली पहुँच कर यही संयोगिता एकदम परिवर्तित हो जाती है और उसका विलासिनी का वह रूप हमारे सामने आता है (९.१-८), जो पृथ्वीराज के सर्वनाश का कारण होता है : वह संयोगिता जो किसी समय पृथ्वीराज का वरण करने के लिए सौ जन्म ग्रहण करने को उद्यत थी (२.१९), जीवन की सार्थकता काम-कैलि में मानने लगती है, और उस मानिनी की प्रौढ़ रति में पृथ्वीराज भी इस प्रकार दीन और दुनिया को भुला देता है कि उसे दिन-रात की सुधि नहीं रहती है, जिसके परिणाम-स्वरूप उसके गुरु, बाधव, भृत्यादि की गति विपरीत हो जाती है :—

इह बिधि विलसि विलास भसार सुसार किभ ।

इह सुष जोग संजोगि सोइ प्रथिराज जिब ।

अह निसि सुब्धि न जानहि माननि प्रौढ रति ।

गुरु बंधव भृत्य लोइ भई विपरीत गति ॥ (९.८)

ऋतुएँ आती हैं और चली जाती हैं, संयोगिता उनमें पृथ्वीराज द्वारा भोगावित होती रहती है (९.९), उसका प्रिय (पति) कहीं जाने को होता है तो वह ऋतु की रमणीयता का प्रतिपादन करते हुए उसे रोक लेती है (९.१३), वह कह उठती है कि जो तरुणी बाका है, वह निवृत्तपत्र नलिनी के सदृश ऐसी दीन हो रही है कि क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकती है; कान्त के जाते ही वह विरह-वारण से अपनी शरीर-बाढिका को ध्वस्त होने देना नहीं गवारा कर सकती है :—

रोमाली वन नीर निध्व वरये गिरि ढंग नारायते ।

पवय पीन कुचानि जानि लयला फुंकार झुंकारये ।

शिशिरे सर्वरि वारणे च विरहा मम हृदय विदारये ।

भाकांत मृगवध सिध गमने किं देव उच्चारये ॥

(९.१४)

इसी समय पृथ्वीराज परशहाबुद्धीन आक्रमण कर देता है । चन्द तथा गुरुराज पृथ्वीराज को उस विलास-निद्रा से जगाते हैं, तब इस संयोगिता का कामिनी रूप प्रकट होता है । जो संयोगिता पृथ्वीराज को कन्नौज के युद्ध में अपनी ओर वापस आता देखकर क्षुब्ध हुई थी, और जिसने कहा था:—

जिहि प्रिय तन अगलि फिरइ तिहिं प्रियजन कहा कउन ।

(६.३०)

वही इस भयानक स्थिति में जीवन की सार्थकता काम को तुष्ट करने में बताती है । पृथ्वीराज से वह कहती है कि वही धन धन है जिसका भोग किया जा सके, वही सुख सुख है जिसमें काम का आरोह हो, काम-विहीन जीवन में संसार मरण-तुल्य है; प्रतिदिन दिनकर आता है, चन्द्र आता है, दिन होता है, रात होती है, किन्तु मनुष्य का जीवन तो एक दिन समाप्त हो जाता है, घरा यदि पृथ्वीराज को अर्द्धाङ्गिनी है, तो संयोगिता भी तो है, उसका अर्द्धाङ्ग होना भी उसे सार्थक करना चाहिए; हंस और हंसिनी अन्त तक साथ रहते हैं, इतना ही नहीं, सर और पंकज जैसे जड़ पदार्थ भी अन्त तक साथ निभाते हैं :—

कहु सु प्रियह पडमिनिय कंत धनु धरउ तउ न धनु ।

सुष सुषमार आरोहु असर संसार मरन मन ।

दिन दिनियर दिन चन्दु रयनि दिन दिन ही भावहि ।

जंतु जंतु इह रमनि स्रवन लगवि समझावहि ।

अरधंग धरा अरधंग हम अरधंगी अरधंग भरि ।

जस हंस हंस तह हंसिनी [सर सुकइ] पंकज न परि ॥

(१०.२५)

पृथ्वीराज इस पर जी कड़ाकर ठीक ही कहता है कि उसे आश्चर्य है कि जिसने उसके बाहुओं की पूजा की थी, वह मुग्धा आज रतिनाथ की बातें कर रही है :—

सुनि प्रिय प्रिय दिख्यौ वदन किय जिय निर्भय पाथ ।

वाहु पुजउ वरह तुह कहिस मुग्ध रतिनाथ ॥

(१०.२६)

और 'रासो' का कवि उचित ही इस प्रसंग के बाद एक बार भी इस नारी का स्मरण नहीं करता है । ✓ *रासो* का कवि उचित ही इस प्रसंग के बाद एक बार भी इस नारी का स्मरण नहीं करता है ।

चन्द

चन्द का प्रथम आगमन कथा में कैवास-वध के अनन्तर होता है । आखेट से लौटकर जब पृथ्वीराज सभा बुलाता है, चन्द उसमें उपस्थित होकर राजा को आशीर्वाद देता है (३.१९) । इसके पूर्व केवल यह कथन आता है कि कैवास-वध की सारी घटना सरस्वती ने उसकी स्वप्न में सुना दी थी (३.१४) । इस प्रथम दर्शन में ही चन्द एक निर्भीक व्यक्ति शत होता है, कवि कहता कि कैवास-वध के बारे में चन्द से पृथ्वीराज का प्रश्न करना और उससे उत्तर के लिए हठ करना कपीन्द्र के मुख में उँगली देने के सदृश था :—

हठि लगाउ चहुआन त्रिअ अंगुलि मुषह फण्डि ।

तिहु पुरि तुभ मति संचरइ सु कहे बनइ कवि चंदु ॥

(३.२५)

और चन्द अपने प्राणों की बाजी लगा कर उसी प्रकार उत्तर भी देता है :—

सेस सिरपपरि सूर तर जइ पुच्छइ त्रिअ एस ।

बोहु बोलि मंदन मरनु कहइ तउ कसु कहस ॥

(३.२६)

इस दृष्टि से देखने पर ज्ञान होगा कि उसे काव्य में जो 'चन्द चन्द' (५.१३) या 'कविचंडिय' (३.१९) कहा गया है, वह सर्वथा तथ्यपूर्ण है। यह उसी का साहस था और पृथ्वीराज ने उसको जैसे इसका अधिकार भी दे रखा था कि पृथ्वीराज जैसे उग्र स्वभाव के शासक को जिस प्रकार वह चाहे मार्ग पर ला सकता था और कथा भर में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं; यथा :

पृथ्वीराज को दिल्ली की ओर मोड़ने में सामन्तों के अशुक्तकार्य होने पर इस कार्य में वह कुतकार्य होता है, और पृथ्वीराज ठीक ही कहता है :—

मिटयउ ण जाइ कहणो वय कवि चन्द सार सामंत । (८.७)

विलास-मग्न पृथ्वीराज को वहीं कहला भेजता है :—

गोरी रत्तउ तुष धरा तुं गोरी अनुरत्त । (१०.२०)

और उसको लिख भेजता है कि वाण तो अपने अधीन है, यदि और कुछ उससे नहीं हो सकता तो उसके द्वारा ही उद्योग करके वह प्राणों की रक्षा करे और सामन्तों से वह मन्त्र करे कि दिल्ली की धरा उसके कारण न डूब जावे :—

अप्यज वान चहुआन सुनि ग्रान रविक प्रारंभ करि ।

सामंत नही सामंत करि जिनि बोलइ ढिल्लिय जु धरि ॥ (१०.२३)

गजनी पहुँच कर पृथ्वीराज को प्रतिशोध लेने के लिए प्रेरित करने पर उसको जब आगा-पीछा करते देखता है, वह कह उठता है :—

भरे नरिंद बा बंध पिंड कचउ सुर सचउ ।

अपु तेज संमीर धरा आयास ज पंचउ ।

जरा जाल बंधियउ काल भानन महि घिल्लइ ।

हंतुइ हंतुइ भजय जणि सरु वरु कर मिललइ ।

जिम चलइ हंस हंसी सरिस छंडि मोह तन पंजरहि ।

प्रथीराज आज तिहि मत्ति करि करि नरिंद जिनि उम्बरहि ॥ (१२.३८)

और राजा के मन में अन्त तक दुविधा शेष देखकर कह उठता है कि कैवास के साथ उसने जो कुछ किया था, वही तो उसके साथ भी हो रहा था, जिस विलासिता के कारण कैवास के प्राण उसने लिए थे, उसी विलासिता का परिणाम अब उसे स्वयं भोगना पड़ रहा था, फिर क्यों यह आगा-पीछा वह कर रहा था :—

प्रथमिराज कंमान बांन द्रिढ सुट्टि गइहि कर ।

जिन विसमठ मन करहि करहि भुभपत्ति अपु बर ।

जि कछु दिअउ कयमास किअउ अपनउ सु पायउ ।

सोइ संभरी नरेसु तुहि ज अम्मरपुर आयउ ।

विधना विधान सेटइ कवन दीनमान दिन पाइयइ ।

सर एक फोरि संभरि धनो सत्तहि सबुद गमाइयइ ॥ (१२.४६)

ऐसे निर्भीक किन्तु प्रबुद्ध सहचर दुर्लभ होते हैं, यह पृथ्वीराज का सौभाग्य था कि उसे ऐसे कवि-मित्र प्राप्त हुआ था। इसमें सन्देह नहीं कि पृथ्वीराज इस रचना में जो कुछ है, उसका अधिकांश वह चन्द के कारण है।

सुख में, दुःख में, हर्ष में और विषाद में वह हर जगह पृथ्वीराज के साथ है, यथा :

जयचन्द के किए अपमान का प्रतीकार करने के लिए जब पृथ्वीराज प्राणोत्सर्ग का संकल्प करता है, तो दोनों गले मिलकर खूब रोते हैं और चन्द हर्षपूर्वक उसका समर्थन करता है :—

दोइ कठ लगिय गहन नयनह जल गल न्हांबु ।

अब जीवन बंझिहि अधिक कहि कवि कोन सबाबु ॥

आनंदउ कवि चंदु जिय निप किय संच विचार ।
मन गरुअर सिर हरुअ हइ जीवन हरुअ सिर भार ॥

(३.४२)

और कह उठता है :—

धरि बरु पंगु प्रगट अरु थट विहडिहइ ।
इत उपहास विहास न प्रान पमूकिहइ ॥

(३.४३)

वस्तुतः चन्द से अलग करके पृथ्वीराज को देखा नहीं जा सकता है ।

अन्य पात्र

कथा के शेष पात्र विकसित नहीं किए गए हैं । जयचन्द और शहाबुद्दीन पृथ्वीराज के अच्छे और समथ प्रतिद्वन्दी हैं, किन्तु उनमें उस प्रकार की जान-तोड़ वीरता का विकास कवि नहीं करता है जैसी कथा-नायक में करता है, किन्तु वे कापुरुष भी नहीं हैं ।

जयचन्द और पृथ्वीराज की तुलना करते हुए कवि ने एक स्थान पर ठीक ही कहा है कि पृथ्वीराज वास्तविक शूर है, जब कि जयचन्द अपनी पारसीक सेना से शूर बना हुआ है :—

सत भट किरण समूरउ सुरंगो अरेन जां न आयेस ।

जोगिनिपुर पति सूरु पारय मिसि पंगु रायेस ॥

(८.८)

शहाबुद्दीन में कवि ने वीरता का वैसा विकास नहीं किया है जैसा नृशंसता का । वह पृथ्वीराज को पराजित करने के बाद न केवल उसे बंदी करता है, उसकी आँखें तक निकलवा लेता है—उस पृथ्वीराज की जिसने उसे बन्दी करके भी अनेक बार छोड़ दिया था (११.७) । और काव्य में जब पाठक देखता है कि इस कुतघ्न और नृशंस शत्रु का चन्द युक्तियों से कथा-नायक द्वारा वध कराता है, यद्यपि वह स्वयं भी मारा जाता है, उसे वह सन्तोषपूर्ण आनन्द प्राप्त होता है जो भारतीय साहित्य में काव्य का लक्ष्य माना गया है ।

पृथ्वीराज के समस्त सामंत उसी के अनुरूप वीर हैं । उनके वीर कृत्यों के वर्णन में अतिशयोक्ति देखी जा सकती है, किन्तु वह अतिशयोक्ति भी औचित्यपूर्ण लगती है : हरसिंह, कनकबड गूजर, निडर राठौर, कन्ह, अल्हन, अचलेस, विज्ञ, सन्ध, लपन और पाहार तोमर के प्राणोत्सर्ग, जो अपने राजा की रक्षा में उन्होंने जयचन्द की विशाल सेना को रोकने हुए किए हैं (८.११-३५), अद्भुत हैं ।

इस वीर काव्य में एकमात्र कैवास ऐसा अभागा पात्र है, जिसका केवल कालिमापूर्ण चरित्र विकसित किया गया है (सर्ग ३) ।

२०. 'पृथ्वीराज रासो'

की

रस-कल्पना

सम्पूर्ण काव्य का अंगी रस वीर है, ऊपर आये हुए 'पृथ्वीराज रासो की प्रबन्ध-कल्पना' तथा 'पृथ्वीराज रासो की चरित्र-कल्पना' शीर्षको से यह बात स्वतः प्रकट हुई होगी। किन्तु अन्य रस भी इसमें यथास्थान अंग बन कर आते हैं। सारी रचना में पृथ्वीराज, उसके सामन्तों और चन्द के कथन पाठक के मन को उत्साह की उमड़ती हुई नदी में डाल देते हैं, जिसमें वह डूबता-उतराता आगे बढ़ता जाता है, उनके अतिमानवीय वृत्त उसे आश्चर्य-चकित करते रहते हैं, संयोगिता के चरित्र में उसे पूर्वानुराग, मिलन, विरह और समोगरति के अति मनोरम चित्र मिलते हैं, आदर्श के लिए जीवन की उपेक्षा पूर्वक बलिदान की भावना रचना भर में स्थान-स्थान पर निर्वेद की सृष्टि करती है, रचना के अंतिम अंशों में शत्रु से प्रतिशोध लेने के लिए कथा-नायक से की गई चन्द की सारी प्रेरणा निर्वेद का सहारा लिए चलती है, कैवास के शव के लिए उसकी विधवा पत्नी की याचना और उसके साथ उसका चिताराहेण करुणा जागृत करते हैं, युद्ध की विभीषिका का कहीं-कहीं पर जो वर्णन होता है, वह भयानक की अच्छी सृष्टि करता है, युद्ध में सहार के वर्णन कहीं-कहीं वीमत्स की झलक दिखाते हैं, कैवास-वध में पृथ्वीराज की क्रोध युक्त मुद्रा किंचित् रौद्र का दृश्य उपस्थित करती है। केवल हास्य चंड (उग्र) चन्द द्वारा कदाचित् स्वभावतः उपेक्षित हुआ है, अन्यथा काव्य के नव रस इस रचना में अपने प्रकृत रूप में अनायास आए हुए मिलते हैं।

रचना की धुर अन्तिम पंक्तियों में उसके कवि का किया हुआ यह कथन कि यह अपूर्व रासो नवरसों से सरस है, इसके छन्दों को चन्द ने अमृत के समान किया है, और यह शृंगार, वीर, करुणा, वीमत्स, भय, अद्भुत और शांत रसों से संयुक्त है —

रासः असंभु नवरस सरस छंदु चंदु क्रिभ भमिभ सम ।

शृंगार वीर करुणा विभल भय अद्भुतह संत सम ॥

अश्वरशः सत्य है। अनेक उतार-चढ़ाव के साथ, जो कवि का अन्य रसों का समावेश करने का कवि को पर्याप्त अवसर देते हैं, वीर का इतना अद्भुत परिपाक समूचे हिन्दी साहित्य में अन्यत्र नहीं मिलता है।

२१. 'पृथ्वीराज रासो'

के वर्णन

'रासो' एक वर्णन-सम्पन्न काव्य है, और ये वर्णन प्रायः सुन्दर हैं। कवि के वर्णन-कौशल और तत्सम्बन्धी उसकी मुख्य प्रवृत्तियों से परिचय प्राप्त करने के लिए इन्हें निम्नलिखित वर्गों में रक्खा जा सकता है:—

- (१) युद्ध-सजा तथा युद्ध-वर्णन
- (२) नख-शिख-वर्णन
- (३) सामान्य प्रकृति-वर्णन
- (४) षड् ऋतु-वर्णन
- (५) अन्य वर्णन

नीचे यथाक्रम इन पर विचार किया जाएगा।

(१) युद्ध-वर्णन

रचना में दो युद्ध आते हैं, प्रथम है पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध, और द्वितीय है शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज युद्ध।

जयचन्द की युद्ध-सजा का वर्णन करते हुए प्रथम के प्रसंग में सबसे पहले हमें अश्व-सेना का वर्णन मिलता है (६. ५)। इसमें कई जातियों के अश्वों का वर्णन किया गया है, जिनमें प्रमुख हैं लाहोर के लोहित वर्ण के तुर्कों, सिन्धु के पश्चिम के देशों के सिंधी, अरबी, कच्छी, ताज़ी और पड़ुवे। कहीं-कहीं पर इस वर्णन में अच्छी उक्तियाँ मिलती हैं: यथा उनकी बला का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि वह ऐसी लगती है मानो आउझ (ढोल की जाति के एक प्रकार के बाद्य) पर [दोनों] हाथों से ताल बजाए जा रहे हों:—

साहिबं वरग कहुइ जि लारा।

मनउ आवझइ हथ्य वज्जंति तारा ॥

(६. ५. ५-६)

सुसजित होकर उनके बढ़ने का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि वे ऐसे लगते हैं मानों उच्च (भेष्ट) उपमा हो जो [कवि के मानस में] आगे बढ़ती चली आ रही हो:—

राग वागे नही सुधि उरक्की।

मनउ उप्पमा उच्च आवइ धुरक्की ॥

(६. ५. १९-२०)

शेष वर्णन सामान्य है।

इसी प्रकार अन्यत्र हाथियों की सेना का वर्णन किया गया है (७. १०)। वर्णित जातियाँ हैं: सिंहली तथा सिंधी। वर्णन सामान्य है।

रचना के सर्ग ७ का पूर्वार्द्ध युद्ध की तैयारी के वर्णन से भरा है। इस वर्णन में कवि-प्रथा के अनुरूप प्रायः अतिशयोक्ति का आश्रय लिया गया है, यथा निम्नलिखित छन्द में :—

य दिन रोज रटिवर चरि चहुवांन गहन कह ।
सउ छप्परि सउ सहस वीह अगनित लष्य दह ।
तुटि गिर जस थल भरिग भजिग जल गंग प्रवाहह ।
सह अछरि अछरि विमान सुरलोक नाग तह ।
कहि चंद दंद दुहु दलि भयड घन जिमि सिर सारह झरिग ।
भर सेस हरी हर ब्रह्म तत तिहि समाधि तिहि दिन टरिग ॥

(७. ५)

इसी प्रकार की कल्पना निम्नलिखित पक्तियों में भी मिलती है:—

सज्जत धूम धूमे सुनतं ।
कषियं तीनपुर वेलि पत्तं ।
डमरु डह डह किय गवरि कतं ।
जानिय जोग जोगादि अत ।
जिम मिमे सेस सिर भार रहियं ।
किमे उच्चासु रवि रथ्य नहियं ।
कमल सुत कमल नहि अंबु लहियं ।
संकियं ब्रह्म ब्रह्मांड गहियं ।
राम रावन्न कवि किन कहिना ।
सकति सुर महिष बलिदान लहिता ।
कस सिसुफल पुरजवन प्रभुता ।
भामिया जेन भय लषि सुरता ।

(७. ६. १-१२)

किन्तु इसी वर्णन में सादृश्य-प्रधान उक्तियाँ सुन्दर हैं, यथा :-

सेन सन्नाह नव रूप रगा ।
मनउ झिल्लवइ ति त्रिनेत्र गंगा ।
टोप टंकार दीसे उतंगा ।
मनउ वहले पंति बंधी विहंगा ।
जिरह जंगीन गहि अंगि लाई ।
मनउ कंठ कंथीन गोरष्य पाई ।
हथ्यरे हथ्य कगो सुहाई ।
घाय लगगइ न थक्कइ थकाई ।
राग जरजीन बानइत अछूछे ।
देपिअइ जाडु जोगिद कछूछे ।

(७. ६. २७-३६)

इस प्रसंग में युद्ध-वाद्यों का जो वर्णन है, वह भी सुन्दर है; 'रासो'-काव्यीन वाद्य-समूह पर प्रकाश डालने के कारण वह उपयोगी भी है :—

नीसान सादं ति बाजे सुचंगा ।
दिसा देम दक्खिन्न लघ्वी रुपंगा ।
तबल तदूर जंगी मृदंगा ।
मनउ नृत्य नारद कहे प्रसंगा ।
बजहि बंस विसतार बहु रंग रगा ।

जिने मोहि कर सथि लगगे कुरंगा ।
वीर हुंड़ीर सा सोभ शृंगा ।
नचइ ईस सीसं धरो जासु गंगा ।
सिंधु सहनाइ श्रवने उतंगा ।
सुने अछरिअ अछ मज्जइ सुअंगा ।
नफेरी नवरग सारंग भेरी ।
मनउ नृत्य नइ इंद्र आरंभ बेरी ।
सिंधु सावइअनं गेन भेरी ।
कल्ले आवइअ हथ्य करेरी ।
उछरहि घाउ घन घंट बेरी ।
चित्तिता अधिक वधे कुवेरी ।
उष्पमा षड नव नैन झगगी ।
मनउ राम रात्रज हथ्येव लगगी । (७. ६. ३९-५६)

इसी प्रकार निम्नलिखित पंक्तियों में युद्धारंभ से उठी हुई धूल का जो अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन है, वह मनोरम है :—

हयगाय नरभरं ।
उनविय जलधरं ।
दिसा निसान वज्जये ।
समुह सह लज्जये ।
रजोद मह उषली ।
व्योम पंक संकुली ।
तटाक वाल रगिनी ।
चकी चक वियोगिनी ।
पयाल पाल परलये ।
दिगंत मंत हल्लये ।
अनंद ते निसाचरे ।
कृ कपि तुह साचरे ।
भगंत गंग कुल्लये ।
समुह सून फुल्लये ।
प्रवत्ति छत्त छत्तये ।
सरोज मोज हल्लये ।
अषंड रेन मंडने ।
हरप्पि इंदु छंडने ॥ (७. १२. १-१८)

यद्यपि इसी प्रसंग में सरोवर के रूपक का आश्रय लेते हुए युद्ध-स्थल का जो वर्णन किया गया है, वह प्रायः रुढ़ि-भुक्त है :—

सरं श्रोणि रंग पलं पारि पंक ।
वजइ मंस वचि गधि वासि करंकं ।
दुमं ढाल लोलति हालं ति देसं ।
गये ईस नंसीअ गोहे सुवेसं ।

परे पानि जंघं धरंगं निनारे ।
मनड मछ्छ कछ्छं तरे तीर मारे ।
सिर सा सरोजं कचे सा सिवाली ।
गहे अत ग्रध्धी सु सौहै मराली ।
तटं रभ रत्तं भरंतं विचीर ।

वत्त स्याम स्वेत्तं वत्त नीर पीरं । (७.१७.२७-३६)

द्वितीय युद्ध अपेक्षाकृत बहुत कम विस्तृत है, और इसी प्रकार उसका वर्णन भी संक्षिप्त है।

सेना के प्रयाण से उठी रेणु के आडम्बर का वर्णन इसमें बहुत सुन्दर वर्णन हुआ है : दिन में रात्रि का आगमन समझकर चकवी-चकवे और सारस-युग्म को जो भ्रम होता बताया गया है, वह प्रभावपूर्ण है, और सरोवर के जल में तारागण के प्रतिबिम्ब का जो वर्णन किया गया है, वह संश्लिष्ट चित्रण प्रणाली के कारण अत्यन्त सरस हुआ है :—

चक्कीय चक्क मुक्कवि चलंति ।
रस सरस दरस सारस मिलति ।
प्रतिबिंब अंभ अवरन तार ।
भुगतइ न मुगति मंजरि सिवार ।
चक्कित सुचित्त मन मित्त मित्त ।
सर उभय भभिय आनंद चित्त ।
दप्प आदप्प आलोल नयन ।
विसरीय कोक सुरमराग वयन ।
हसि चक्क चक्किय सम कहिग छुटु ।
माननिय मान यामिनिय चट्ट ।

(११.१०.११-२०)

शेष युद्ध-वर्णन साधारण है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'रासो' के युद्ध-वर्णन अतिशयोक्तियों और परंपरा-भुक्त कल्पनाओं से युक्त होते हुए भी सुंदर हैं और कहीं-कहीं पर उनमें कवि ने कल्पना का आश्रय लेते हुए संश्लिष्ट चित्रण का भी यत्न किया है। तथ्य-प्रधानता की नहीं, उक्ति-प्रधानता की प्रवृत्ति प्रमुख है।

(२) नख-शिख वर्णन

'रासो' के वर्णनों में नख-शिख-वर्णन अपनी विशेषता रखते हैं : वे परंपरा-भुक्त कम हैं, कल्पना की सरसता के साथ-साथ वर्ण्य पात्र के व्यक्तित्व का ध्यान उनमें कवि को सदैव रहा है।

नायिका संयोगिता का नख-शिख कथा के पूर्वार्द्ध में नहीं आता है, कारण यह है कि 'रासो' के कवि ने कथा-नायक पृथ्वीराज को उसके रूप अथवा गुणों के कारण उस पर अनुरक्त नहीं किया है, वह तो केवल संयोगिता के प्रेमानुष्ठान के कारण उससे परिणय करता है। किंतु बाद में पृथ्वीराज के केलि विलास के प्रसंग में वह उसका वर्णन करता है। इस वर्णन में कुछ कल्पनाएँ सरस हैं, यथा:

नितंब पर पड़ी हुए शृंखला को कवि कामदेव के धनुष की प्रत्यंचा कहता है :—

रसनेव रंज नितविनी ।

कुसुमेष एष विलंविनी ।

(१०.११.११-१२)

उसके हृदय को वह मदन का अयन कहता है, जहाँ वह निरस्त होकर (निकाला जाकर) छिपने के लिए आगया है :—

हिय अयन मयन ति संथयड ।

भज गहन गहन निरंथयड ।

(१०.११.१७-१८)

उसके अधरों को वह पक्ष बिब कहता है, जिनके शुक-सारिकादि से खंडित होने का भय बना रहता है :—

अधर पक्ष सु बिबन ।

शुक सालि आलिन पंडन ।

(१०.११.२५-२६)

उसके नेत्रों के अपागों को वह सित-असित उररि (बकरे) अथवा उड़ने का अभ्यास करते हुए खंजन-वत्स कहता है :—

सित असित उररि अपंगयो ।

अभिभसहि पंजन बछ्छयो ।

उसके देदीप्यमान ललाट पर लगे हुए मृदमद के तिलक की उपमा वह सिधु से निकले हुए नवीन चंद्रमा की गोद में बैठे हुए इन्दुपुत्र (मृग) से करता है :—

तस मध्य मृगमद विंदु जा ।

जस इंदु नंद ति सिधुजा ।

(१०.११.४१-४२)

‘रासो’ के कवि ने कथा के प्रारम्भ में ही संयोगिता की वयस्का सहचरियों का जो वर्णन किया है, वह भी सुन्दर है, और उनकी जो कल्पना वसंत-प्रियाओं के रूप में की है, वह दर्शनीय है :—

अधरस्त पस्त पल्लव सुवास ।

मजरिय तिलक पंजरिअ पास ।

अलि अलक कठ कलयंठ मंत ।

संजोगि भोग वरु भयु वसत ।

(२.५.१-२०)

आगे चलकर उसने कन्नौज-वर्णन के प्रसंग में जल भरती हुई सुन्दरियों का वर्णन किया है । इस वर्णन में कुछ कल्पनाएँ चमत्कारपूर्ण हैं, यथा :

कवि कहता है कि उनकी कटि में जो शृंखला पड़ी हुई है, उसके कारण ऐसा लगता है मानो वे वनिताएँ सिहिनियों हों :—

कटिस्त सोभ सेडरी ।

वनिस्त जानि केसरी ।

(४.१४.९-१०)

उनकी नासिका की वह बंधे हुए क्रीडा-कीर से तुलना करते हुए वह कहता है कि वे उनके [बिब-तुल्य] रक्त अधरों को खण्डित नहीं कर रहे हैं—इसलिए वे क्रीडा-कीर और वह भी बंधे हुए क्रीडा-कीर उचित ही कहे गए हैं :—

अधर आरस्त रस्तये ।

सुकील कीर बंधये ।

(४.१४.२१-२२)

पृथ्वीराज के इस कथन पर कि ये सुन्दरियाँ तो दासियाँ थीं, चन्द ने उन नागरियों के रूप का वर्णन नहीं किया है जो असूर्यम्पदा हैं, वह स्वकीयाओं के रूप में कन्नौज की अन्य नागरी नारियों का वर्णन करता है । इस वर्णन में तुलनात्मक तथ्यपूर्णता दर्शनीय है, यथा :

जहाँ उसने जल भरने वाली सुन्दरियों के कटाक्षों का वर्णन किया है, उसने कहा :—

दुराय कोय सोचने ।

प्रतप्प काम मोचने ।

अवधि ओट भौहये ।

चछंति सोह सौहये ।

(४.१४.२९-३२)

किंतु इन स्वकीयाओं के नेत्रों को उसने निर्वात दीप के समान अचंचक कहा है :—

पंगुरे अयन ने नयन दीसं ।

विचि जोत सारंग निर्वीर रीसं ।

(४.२०.९-१०)

कवि ने कहा है कि ये दिव्य-दर्शना है और धीमे स्वर में बोलती हैं:—

दिव्य दरसी तिहां दिव्य बोलं ।

उनके चरण-नखों की निर्मलता का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है कि उनमें उनके स्वकीय पतियों का जो प्रतिबिम्ब पड़ रहा है, वह ऐसा लंगता है मानो उन्होंने मानकर रक्खा हो और उनके पति उनके चरणों में पड़े हों:—

नख निर्मलं दर्पनं भाव दीस ।

समीपं सुकीयं किय मानरीसं ।

(४.२०.३५-३६)

यहाँ तक मानवीय नख-शिख वर्णन की बात रही; सरस्वती के नख-शिख-वर्णन में 'रासो' के कवि के देव-विषयक नख-शिख वर्णन का भी एक उदाहरण मिल जाता है। यह नख-शिख नहीं, शिख-नख है, अर्थात् वर्णन शिखा से नख की ओर बढ़ता है। यह वर्णन भी सुन्दर है, यथा

कपोलों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वे प्रातःकाल में उदित उस चन्द्रमा के समान हैं जो राहु के कलंक से बचने के लिए [अपने मृगरथ के] जूए को बहुत खींच रहा हो—सश्लिष्ट कल्पना दर्शनीय है:—

कपोल रेख गातयो ।

उवत इंदु प्रातयो ।

वभूव जूव षचये ।

कलंक राह वंचये ।

(३.१७.७-१०)

नेत्रों की उपमा दो छोटे वारि-खजनो से दी गई है, जो रूप जल में तैर रहे हों:—

उछमि वारि खजयो ।

तिरति रूप रंजयो ।

(३.१७.१३-१४)

ग्रीवा पर पड़ी हुई मुक्ता माल की तुलना सुमेरु पर गिरती हुई गङ्गा की धारा से की गई है:—

सुग्रीव कठ मुत्तया ।

सुमेरु गंग पत्तयो ।

(७.१४.१९-२०)

उसके नखों को आर्द्र और रक्षित कहा गया है—वीणा-वादन के लिए रक्षित नखों की आवश्यकता को कवि ने ध्यान में रखा है:—

नखादि अह रक्षिणं ।

धरंति सच्छ कण्ठं ।

(७.१४.२३-२४)

इन नख-शिख-वर्णनों से शायद होता है कि 'रासो' के कवि ने सर्वत्र सुबुद्धि और कल्पना से काम लिया है; उसके नख-शिख केवल परंपरा-भुक्त और निर्जीव नहीं हैं, उनमें सजीवता है और वे वर्ण्य पात्र को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत किए गए हैं ।

(३) सामान्य प्रकृति-वर्णन

सामान्य प्रकृति वर्णन 'रासो' में अधिक नहीं है, किन्तु जितना है, सुन्दर है। नीचे कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं ।

एक स्थान पर प्रातः काल की मद गज से तुलना करते हुए 'रासो' के कवि ने सुन्दर कल्पना की है—वह कहता है कि यह मद विन्दु चुवाता हुआ मद गज का गण्डस्थल नहीं है वरन् [पुष्प चुवाती हुए] तरु शाखा है, यह नीचा जाने वाला शशि है न कि हाथी का निर्घाटित कुंभ है, उसी

प्रकार यह [पुष्पो पर गुञ्जार करने वाला] मधुकर-वृद्ध है न कि गज के मद से आकृष्ट अलिकुल है, [ऐसी उन्मत्तता कारिणी प्रातः काल की बेला में] तरुण प्राणों वाला राजा जयचन्द [रात्रि में जागने के कारण] लटपट पैर रखता हुआ आ पहुँचा :—

काँती भार पुरा पुनर्मद गजं शाखा न गंडस्थलं ।

उच्छं तुच्छ तुरा स शशि कमनं करि कुंभ निद्धादलं ।

मधुरे साह सकाहता अलिकुलं गुंजार गुंजा तहा ।

तरुणे प्राण लटापटा पगपग जयराज संप्रापता ॥

(५.४१)

प्रभात और मद गज की तुलना की इस पृष्ठभूमि में रात्रि में किसी कामिनी के सुख-रति-समर में नींद को विस्मृत कर जगे हुए होने (५.३९-४०) के कारण लटपट पैर रखते हुए जयचन्द का जो चित्र कवि ने उपस्थित किया है, वह अपनी स-स व्यजना के कारण अवश्य ही रमणीय बन गया है।

संध्या का वर्णन, इसी प्रकार, एक अन्य स्थान पर भावपूर्ण हुआ है; उसमें कवि ने संयोगिता की मनोस्थिति की जो व्यंजना संध्या के उपादानों को लेकर की है, वह कोमल हुई है। वह कहता है, 'मित्र (सूर्य) महोदधि में जा चुके थे, दिशाओं को तम ने ग्रस लिया था, पथिक-वधू की दृष्टि [उसके प्रियतम के] पथ में उसी प्रकार अधिस्थित हो चुकी थी जैसी [खिंची हुई] चंग होती है, युवाओं और युवतियों की सुमति उसी प्रकार नष्ट हो चुकी थी जिस प्रकार रस-लुब्ध सारस अथवा [मधु-] मुग्ध मधुप की होती है :—

मित्त महोदधि मइश दिसंत ग्रसंत तम ।

पथिक वधू पथि दिष्ट अहुद्विय चंग जिम ।

जुव जन जुवती गंजि सुमत्ति अनंगमय ।

जिमि सारसरसलुब्ध त मुग्ध मधुप लय ॥

(७.२२)

बाद में रणक्षेत्र में गए पृथ्वीराज के आगमन की संध्या काल में प्रतीक्षा करती हुई संयोगिता के भावों की (७.२३) जो व्यंजना इस पृष्ठभूमि के योग से हुई, है वह अवश्य ही ललित हो उठी है।

जो ऋतु-वर्णन षड्ऋतु-वर्णन के रूप में मिलता है, उसके अतिरिक्त उल्लेखनीय ऋतु-वर्णन केवल एक स्थान पर आता है और वह वसन्त-वर्णन का है। कल्पना शिशिर पर वसन्त के आक्रमण के रूप में की गई है, जिसमें शिशिर पराजित होता है और वसन्त विजयी :—

वनि वरग मग्ग हलि अंब मडर ।

सिर डरहि मनहुं मनमथ्य चडर ।

चलि सीत मंद सुगंध वात ।

पावक मनहुं विरहिनि निपात ।

कुहु कुहु करंति कलयंठि जोटि ।

दल मिलइ मनहु अतअग कोटि ।

करि पल्लव पत्त ति रत्त नील ।

हलि चलिहि मनहु मनपथ्य पील ।

कुसुमेष कुसुम तेन धनुष साजि ।

भुंगी सुपंति गुन गरुव गाजि ।

संजर सुवान सुमनाह नेह ।

विदारये बीर पुबजननि देह ।

उष्णलिभ कलिभ चपक सरीप ।
 प्रजलिभ प्रगट कंदर्प दीप ।
 करवत्त केत केतकि सुकृति ।
 विहरंति ररा वितरंति छत्ति ।
 परिरंभ अनिल कदली कपान ।
 सिरंधुनहि सरस सुनि जातु तान ।
 झंकुलिय झाम अभिराम रम्य ।
 नहु करइ पीय परदेस गम्य ।
 फुल्लिग पलास तजि पत्त रत्त ।
 रण रंग सिसिर जित्तउ वसंत ।

(२.५.२५-४६)

इस वर्णन में कवि ने प्रस्तुत विषय के साथ अप्रस्तुत का निर्वाह किस प्रकार सफलता पूर्वक किया है, यह स्वतः देखा जा सकता है ।

फलतः सामान्य प्रकृति-वर्णन में भी 'रासो' का कवि सफल रहा है; उसने पृष्ठभूमि के रूप में जो प्रकृति-वर्णन किया है, वह अपनी अनुकूल व्यजना के द्वारा रमणीय बन गया है, और इस वर्णन में उसने अप्रस्तुत की जो योजना की है वह भी सरस हुई है ।

(४) षड्ऋतु-वर्णन

'रासो' का षड्ऋतु-वर्णन कथा-नायक और उसकी नव विवाहिता पत्नी के सम्भोग शृंगार का है । कथा-नायक उस नव विवाहिता को भोगायित कर रहा है, किंतु उसका जीवन युद्धो में बीता है, इसलिए वह उसके प्रेम-पाश से बार-बार निकल कर जाने का प्रयत्न करता है । नायिका ऋतुओं की रमणीयता का प्रतिपादन करते हुए अपने प्रणयानुरोधों से उसे रोकती है, यही इस षड्ऋतु-वर्णन का वर्ण्य है । ऋतुओं का क्रम वसंत से प्रारम्भ होता है :—

सामगं कलधूत नूत शिखरा मधुलेहि मधुवेष्टिता ।
 वाता सीत सुगंध मंद सरसा आलोल साचेष्टिता ।
 कंठी कंठ कुलाहले मुकलया कामस्य उद्दीपनी ।
 रत्ते रत्त वसंत पत्त सरसा संजोगि भोगाइते ॥

(९.९)

[जिस वसंत में तरु-] शिखरों पर [रंग-विरगे पुष्पों के कारण मानो] नूतन कलधूत (चॉदी-सोने) की समग्रता हो गई है और मधुकर मधु से आवेष्टित [हो रहे] हैं, वात शीतल, मंद, सुगंधित और सरस होकर चेष्टाओं में विशेष लोल हो रही है, कंठी (कोयलों) के कंठ के कोलाहल से मुकुलों (कलियों) में कामोद्दीपन हो रहा है और जो वसंत सरस [नवीन] पत्तों के कारण लाल हो रही है, ऐसे वसंत में संयोगिता [पृथ्वीराज के द्वारा] भोगायित हो रही है ।

दीहा दिव्य सङ्ग कोप अनिला आवर्त्त मिस्ताकर ।
 रेने सेन दिसान थान मल्लिना गोमगा भाडंबहं ।
 नीरे नीर अपीन छीन छपया तपया तरुण्या तनं ।

मलबा चंदन चंद मंद किरणा सु ग्रीष्म भासेचनं ॥

(९.१०)

“[जिस ग्रीष्म में] दिन दिव्य (तप्त लौहादि) [के समान] हो रहे हैं, अनिल (वायु) कुपित हो रही है, मित्र (सूर्य) के कर्णों से उत्पन्न आवर्त्त (बवंडर) उठने लगे हैं, रेणु की सेनाओं से दिशाएँ और स्थान मलिन हो रहे हैं, [यथा] गोमार्ग [की धूल] के आडंबर से हों, जहाँ जो भी नीर था, वह अपीन (क्षीण) हो गया है, रात्रि क्षीण हो गई है और तप (गर्मी) का तनु तरुण

हो गया है, मलय [समीर], चंदन और चन्द्रमा की मंद किरणें ही [ऐसे] ग्रीष्म में [मुरझाते हुए प्राणों का] सिंचन करने वाले हो रहे हैं।”

आले बहल मस्त मस्त विषया दामिनि दामायते ।
दादुल्ले दल सोर सोर सरसा पपीहान् चीहायते ।
शृंगाराय वसुन्धरा ललितया सलिता समुद्रायते ।
यामिन्या सम वासरे त्रिसरता प्रावृष्ट पश्यन्मते ॥ (९.११)

“[जल से] आर्द्र बादल विषय में मस्त हो रहे हैं, और [उनकी प्रिया] दामिनी दमक रही है, दादुरदल मोरों के साथ शोर कर रहा है, और पपीहा चीत्कार कर रहा है; वसुन्धरा ने लालित्यपूर्वक शृंगार कर लिया है, और सरिता [उमड़ कर] समुद्र बन रही है; वासर (दिन) भी [अपर्याप्त प्रकाश के कारण] यामिनी के समान [अन्धकार पूर्ण] हो रहे हैं, वर्षा में ऐसा दिखाई पड़ रहा है।”

पितृ पुत्र स्नेह गेह भुगता युक्तानि दिव्या दिने ।
राजा छत्रनि साजि राजि छितया नन्दाननम्भासने ।
कुसुमे कार्तिग चंद निर्मल कला दीपानि बर दायते ।
मां मुक्के पिय बाल नाल समया सरदाय दर दायते ॥ (९.१२)

“जो पिता-पुत्रादि के स्नेह और गृह का भोग कर रही हैं, अथवा जो सयोगिनी है, उनके लिए [शरद के] दिन दिव्य हैं, राजा-गण छत्रों को साज कर और क्षिति पर शोभित होकर आनन्द-युक्त आननों से भासित हो रहे हैं। कार्तिक में कुसुमों की और चन्द्रमा की कलाएँ निर्मल हो रही हैं, और दीपक वरदायी हो रहे हैं (दीपदान करके लोग मनोरथ की प्राप्ति कर रहे हैं), हे प्रिय, बालाको इस नाल (कमल-नाल के निकलने) के समय न छोड़ो, [क्योंकि] शरद का दल दिखाई पड़ रहा है।”

धीनं वासर स्वास दीध निसया शीत जनेतं वने ।
सज्जं संजरवान यौवन सया भानग आनगने ।
यउ बाला तरुणी निवृत्त पस्त नलिनी दीना न जीवा धिणे ।
मा कांत हिमवत मस्त गमने प्रमदा ने आलेंवने ॥ (९.१३)

“वासर (दिन) क्षीण होकर स्वास [मात्र] हो गए हैं, और निशाएँ दीर्घ हो गई हैं, जनेत (बस्तियों) और वन में [सर्वत्र] शीत व्याप्त हो रहा है; यौवन के कारण शय्या संज्वर-कारिणी हो गई है और अनग ही अनग का अधिकार हो गया है; जो बाला तरुणी है वह निवृत्त-पत्र नलिनी के समान हो रही है, वह दीना क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकेगी; [इसलिए] हे कान्त इस मत्त हेमंत में गमन न करो, अन्यथा प्रमदा निरबलंब हो जायगी।”

रोमाळी घन नीर निष्प वरये गिरि डंग नारायते ।
पवय पीन कुचानि जानि सयला फुंकार झुंकारये ।
शिशिरे सवर्णि वारुणे च विरहा मम हृदय विद्वारये ।
मा कांत मृग बद्ध सिंघ गमने किं देव उठवारये ॥ (९.१४)

“[स्त्री की] रोमावली ही घन (वन) है, श्रेष्ठ स्नेह-नीर ही गिरि और डंग [के पास बहती हुई] जल की धारा है; उसके पीन कुच ही मानो समस्त पवत हैं; वह जो फुकार (सीत्कार) छोड़ती है, वही मानो [पवन का] झकोर है, शिशिर की रात्रि में विरह ही वह बारण (हाथी) है जो उसकी हृदय रूपी बाटिका को विदारता (तहस-नहस करता) है; उस विरह रूपी मृग (वन-

चारी वारण) का वध करने वाले सिंह, हे कान्त, तुम मत गमन करो, हे देव ! क्या तुम नारी के हृदय को विरह-वारण से उबारोगे ?”

इस षड्भुज-वर्णन की सरसता स्वतः प्रकट है। शिशिर-सम्बन्धी छन्द में जो रूपक का चमत्कार है, वह भी दर्शनीय है।

(५) अन्य वर्णन

‘रासो’ में कुछ अन्य वर्णन भी है, किन्तु वे काव्य की दृष्टि से प्रायः इतने सरस नहीं हैं जितने उपर्युक्त हैं, यद्यपि वे अन्य दृष्टियों से कभी-कभी बहुत उपयोगी हैं। उदाहरणार्थ, कन्नौज का जो नगर-वर्णन कवि ने चौथे सर्ग के प्रारम्भ में किया है, और पीछे जयचन्द के नृत्य-गीत समारोह का जो वर्णन पाँचवें सर्ग में किया है, ‘रासो’ काळीन नागरिक जीवन तथा नृत्य-संगीत की परम्पराओं पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। फिर भी कल्पना से चमत्कृत सरस वर्णनों का सर्वथा अभाव नहीं है। नीचे दिया हुआ गङ्गा का वर्णन देखिए, किस प्रकार कवि ने गङ्गा को एक कामिनी का रूप दे दिया है:—

उभय कनक सिंभ त्रिगं कठीव लीला ।

पुनरपि पुष्प पूजा वहति रति विप्रराज ।

उरसि मुक्तिहारं मध्व घटीव सबद ।

मुगति सुकल वल्ली नांग रंग त्रिवल्ली ॥ (४.१२)

“[इसके दोनो तटों पर जो दो कनक शंभु हैं [वे ही इसके दोनों कुच हैं], भृगो की कठध्वनि [ही इसकी कठध्वनि] है, पुनः इसे पुष्प-पूजा, [अपित] करके विप्रराज (श्रेष्ठ विप्र) इससे अपनी रति (भक्ति) निवेदित करते हैं, इसके उर में [जल-कणों का] मुक्तिहार है, और मध्य में [पूजकों द्वारा किया जाने वाला] घटी [कटिकी घंटी] का शब्द है, इस प्रकार यह सुन्दर मुक्ति की वल्ली अनंग-रंग (काम-क्रीड़ा) की त्रिवल्ली है।”

दूसरी ओर काम-कला को कवि ने संगीत कला और कामिनी-पूजा को देव-पूजा में किस प्रकार ढाल दिया है, यह दर्शनीय है:—

सुखं सुख मृदंग तार जघनो रागं कला कोकनं ।

कंठी कंठ सुभाषणं सम इतं कामं कला पोषणं ।

उर भी रंभकिता गुणं हरि हरो सुरभीव पवनापिता ।

एवं सुष स काम कुंभ गहिता जयराज रात्रिगता ॥ (५.४०)

अर्थात् [रति-]सुख में [संगीत-]सुख का, [कामिनी के] जघनों में मृदंग के ताल का, कोक-कला में राग-कला का, [कामिनी के] कंठ में [गायिकाओं के] कंठ का, यहाँ (कामिनी के) सुभाषण में उनके सुभाषण का, इस प्रकार [काम-कला] में [संगीत-कला] का [जयचन्द ने] पोषण किया; उसने [कामिनी के] उरसे [परि-] रंभण करते हुए [रात्रि के अंतिम प्रहर में मानो] हरि और हर के गुणों से [रंभण] किया; इस प्रकार सुख-पूर्वक काम-कुंभों (कुचों) को ग्रहण किए हुए राजा जयचन्द की रात्रि व्यतीत हुई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ‘रासो’ में वर्णन विविध है, और विविध प्रकार से वे कवि के द्वारा सरस बनाए गए हैं। रचना की वर्णन-संपत्ति अतः असाधारण है, यह भली भाँति प्रकट है।

२२. 'पृथ्वीराज रासो'

के

छंद

जैसा ऊपर कहा जा चुका है ^१ 'पृथ्वीराज रासो' रासो-परंपरा की छंद-वैविध्य-परक शाखा की रचना है। इसलिए इसके छंदों के संबंध में कुछ जान लेना आवश्यक होगा। इसमें कुल दो दर्जन से अधिक प्रकार के छंदों का प्रयोग किया गया है, जिनमें से आधे से कम प्रकार के छंद मात्रिक और शेष आधे से अधिक प्रकार के वर्णिक हैं। किंतु इससे यह समझना उचित न होगा कि रचना भी इसी अनुपात से इन छंदों में हुई है। स्थिति यह है कि वर्णिक छंद केवल रचना का लग-भग $\frac{1}{2}$ निर्मित करते हैं और उसका शेष $\frac{1}{2}$ मात्रिक छंद निर्मित करते हैं।

इन छंदों का अध्ययन एक और दृष्टि से भी करने की आवश्यकता है : वह यह कि इनका कोई विशेष संबंध वर्ण्य विषय से भी है या नहीं।

वर्णिक छंदों में सबसे अधिक प्रयुक्त साटिका तथा भुजंग प्रयात (भुजंगी) हैं। भुजंग प्रयात (भुजंगी) तो प्रायः सभी प्रकार के प्रकरणों में आए हैं, किंतु साटिका केवल कोमल प्रसंगों में प्रयुक्त हुआ है, पुरुष प्रसंगों में नहीं हुआ है। शेष वर्णिक छंद इतने कम बार प्रयुक्त हुए हैं कि उस के आधार पर उनके प्रयोगों की प्रवृत्तियों का कोई अनुमान लगाना उचित न होगा।

मात्रिक छंदों में से सब से अधिक प्रयुक्त छंद दोहरा (दूहा) है, जो रचना का भी सर्वाधिक प्रयुक्त छंद है। यह रचना के सभी प्रकरणों में समान रूप से आया है। किंतु पुरुष प्रसंगों में यह उतना अधिक नहीं प्रयुक्त हुआ है जितना शेष प्रकार के प्रसंगों में हुआ है। इसके बाद सर्वाधिक प्रयुक्त छंद कवित्त (छप्पय) है : वह कोमल प्रसंगों में रचना में कहीं भी नहीं प्रयुक्त हुआ है, पुरुष प्रकार के प्रसंगों में ही प्रयुक्त हुआ। इनके बाद सर्वाधिक प्रयुक्त मात्रिक छंद रासा, पद्धड़ी, गाथा, मुडिल्ल तथा अडिल्ल हैं। रासा तथा पद्धड़ी क्रमशः कोमल और पुरुष प्रसंगों में प्रयुक्त हुए हैं; मुडिल्ल तथा अडिल्ल पुरुष प्रसंगों को छोड़ कर प्रायः सभी प्रकार के प्रसंगों में प्रयुक्त हुए हैं। गाथा विविध प्रसंगों में प्रयुक्त हुआ है, फिर भी पुरुष प्रसंगों में कम आया है। शेष मात्रिक छंद इतनी कम बार आए हैं कि उसके आधार या उनकी प्रयोग संबंधी प्रवृत्तियों के विषय में कोई अनुमान करना उचित न होगा। विभिन्न मात्रिक और वर्णिक छंद रचना में जहाँ-जहाँ पर आते हैं, नीचे उसकी तालिका दी जा रही है।

^१ दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'रासो काव्य-परंपरा और पृथ्वीराजरासो' शीर्षक।

मात्रिक छंद

(१) दोहरा (दूहा) : १.५; २.८, २.९, २.२१, २.२२, २.२३, २.२६, २.२७, २.२८; ३.१, ३.३, ३.९, ३.१०, ३.१३, ३.१४, ३.१५, ३.२१, ३.२२, ३.२३, ३.२४, ३.२५, ३.२६, ३.३५, ३.३७, ३.३८, ३.४०, ३.४२, ४.२, ४.३, ४.४, ४.५, ४.६, ४.८, ४.१५, ४.१६, ४.१७, ४.१८, ४.१९, ४.२१, ५.२, ५.११, ५.१२, ५.१४, ५.१५, ५.१६, ५.१७, ५.१८, ५.२०, ५.२१, ५.२२, ५.२३, ५.२६, ५.२७, ५.२८, ५.२९, ५.३०, ५.३१, ५.३२, ५.३३, ५.३४, ५.३५, ५.३७, ५.३९, ५.४२, ५.४३, ५.४४, ५.४६, ५.४७; ६.१, ६.२, ६.३, ६.४, ६.६, ६.८, ६.९, ६.१०, ६.११, ६.१६, ६.१८, ६.१९, ६.२०, ६.२१, ६.२२, ६.२४, ६.३०, ६.३१; ७.१, ७.३, ७.७, ७.८, ७.९, ७.११, ७.१३, ७.१९, ७.२९; ८.१२, ८.१३, ८.१५, ८.१७, ८.१८, ८.२०, ८.२१, ८.२२, ८.२३, ८.२५, ८.२७, ८.२९, ८.३१, ८.३३, ८.३६; ९.२, ९.३, ९.४, ९.५; १०.२, १०.४, १०.८, १०.९, १०.१२, १०.१३, १०.१४, १०.१६, १०.१८, १०.१९, १०.२०, १०.२१, १०.२२, १०.२४, १०.२६, १०.२७; ११.१, ११.२, ११.३, ११.४, ११.५, ११.६, ११.९, १२.२, १२.३, १२.४, १२.५, १२.६, १२.९, १२.१०, १२.१२, १२.१४, १२.१६, १२.१७, १२.१८, १२.२०, १२.२१, १२.२२, १२.२४, १२.२५, १२.२६, १२.२७, १२.२८, १२.३०, १२.३१, १२.३४, १२.३६, १२.३७, १२.४३, १२.४४, १२.४७ = १६५

(२) कवित्त (छप्पय) : ३.४, ३.११, ३.२७, ३.२९, ३.३१, ३.३२, ३.३३, ३.३६; ४.१; ५.१९, ५.४५, ५.४८; ६.३३; ७.५, ७.२०, ७.२१, ७.२५, ७.२७, ७.२८, ७.३०; ८.१, ८.२, ८.३, ८.४, ८.५, ८.६, ८.११, ८.१४, ८.१६, ८.१९, ८.२४, ८.२६, ८.२८, ८.३०, ८.३२, ८.३४, ८.३५; १०.२३, १०.२५, १०.२८, १०.२९; ११.७, ११.८, ११.११, ११.१३, ११.१४, ११.१५, ११.१६, ११.१८, १२.१, १२.३५, १२.३८, १२.४०, १२.४१, १२.४२, १२.४५, १२.४६, १२.४८, १२.४९ = ५९

(३) रासा : २.४, २.१४; ३.७, ३.८, ३.४३; ४.१३; ६.७, ६.१३, ६.१४, ६.३४; ७.२२, ७.२३; ९.६, ९.७, ९.८; १०.१५, १०.१७ = १७

(४) मुडिल्ल : ३.२०, ३.३९; ५.१, ५.४, ५.५, ५.६, ५.८, ५.९; ६.१२, ६.२३, ६.२७, ६.२८; १०.१, १०.३, १०.६, १०.७ = १६

(५) पड्डडी : २.१, २.३, २.५, २.६, २.१०, २.११, २.१२; ४.७; ११.१०; १२.१३, १२.१५, १२.२३, १२.३२, १२.३३ = १४

(६) गाथा : २.२, २.१६; ३.५, ३.१२, ३.३४; ६.१७, ६.३२; ७.२, ७.१८, ७.२६; ८.७, ८.८; १०.१० = १३

(७) अडिल्ल : ३.१६, ३.१८, ३.१९, ३.२८, ३.४१; ५.२५; ६.२६; ९.१; १०.५ = ९

(८) वस्तु : ५.३; १२.७, १२.८ = ३

(९) चउपई : १२.१९, १२.३९ = २

(१०) गाथा मुडिल्ल : ६.२५ = १

(११) त्रिभंगी ४.११ = १

वर्णिक छंद

(१) साटिका : १.१, १.२, १.६, २.१७, २.१८, २.२०, २.२४, ३.२, ३.६, ५.७, ५.१०, ५.४०, ५.४१, ९.९, ९.१०, ९.११, ९.१२, ९.१३, ९.१४ = २०

(२) भुजग (भुजंगी) १.४; २.७, ४.१०, ४.२०, ४.२२, ४.२३, ५.१३, ६.५, ७.६, ७.१०, ७.१६, ७.१७, ७.३१, ८.१०; ११.१२, १२.११ = १६ •

(३) श्लोक : २.१९, २.२५; ६.२९; ७.२४, ११.१७ = ५

(४) अर्धनाराच : ३.१७, ४.१४; ५.२४, ७.१२ = ४

(५) नाराच : २.१३, ५.३८, ६.१५ = ३

(६) त्रोटक : ८.९; १२.२९ = २

(७) साटक : ५.३६ = १

(८) डंडमाल : १०.११ = १

(९) आर्या : ३.३० = १

(१०) मोतीदाम : ४.२५ = १

(११) रूपया : ७.१४ = १

(१२) वसंत तिलक : ४.१८ = १

(१३) भमरावलि : ७.४ = १

(१४) रसावला : ७.१५ = १

(१५) विराज : १.३ = १

२३. 'पृथ्वीराज रासो' की शैली

किसी भी प्राचीन रचना की शैली पर विचार करते समय यह आवश्यक होता है कि उसकी भाषा के प्रकृत तत्वों को अलग कर लिया जावे, और इनको सुलझा लेने के अनन्तर^१ उसकी शैली के तत्वों को समझना सुगम हो जाता है। शैली के भी दो रूप होते हैं, एक तो उसका सामान्य रूप होता है, जो रचना में व्यापक रूप से मिलता है, और दूसरा उसका विशिष्ट रूप होता है, जो वर्ण्य विषय अथवा छन्द सापेक्ष होता है। प्रस्तुत रचना की शैली पर विचार करते समय दोनों रूपों पर अलग-अलग विचार करना सुविधाजनक होगा।

सामान्य शैली

रचना की सामान्य शैली पर विचार करने के लिए उदाहरण के लिए संपादित पाठ का कैवास-वध का वह उद्धरण (३.२१-२७) लिया जा सकता है जो ऊपर रचना की भाषा के सम्बन्ध में विचार करते हुए दिया गया है। डॉ० नामवर सिंह ने रचना की ध्वनि-विषयक प्रवृत्तियों का निर्देश करते हुए कहा है, “छन्द के अनुरोध से प्रायः लघु अक्षर को गुरु और गुरु अक्षर को लघु बना दिया गया है। लघु को गुरु बनाने के लिए शब्दान्तगत—

- (क) ह्रस्व स्वर का दीर्घाकरण,
- (ख) व्यंजन-द्वित्व,
- (ग) स्वर का अनुस्वार-रंजन, तथा
- (घ) समास में द्वितीय शब्द के प्रथम व्यंजन का द्वित्व करने की प्रवृत्ति है। इसके विपरीत गुरु को लघु बनाने के लिए—

- (क) दीर्घ का ह्रस्वीकरण,
- (ख) व्यंजन-द्वित्व का क्षतिपूर्ति रहित सरलीकरण, तथा
- (ग) अनुस्वार के अनुनासिकीकरण

की विधि प्रयोग में लाई गई है।”^२ उन्होंने इस प्रवृत्ति के उदाहरण भी दिए हैं,^३ जो कि प्रायः ठीक हैं और इस संस्करण में भी मिलेंगे। केवल यह कहना आवश्यक होगा कि यह प्रवृत्ति उतनी

^१ दे० अन्यत्र इसी भूमिका में ‘पृथ्वीराजरासो की भाषा’ शीर्षक।

^२ डॉ० नामवर सिंह : ‘पृथ्वीराजरासो की भाषा’, सरस्वती प्रेस, बनारस, पृ० ३३।

^३ वही, पृ० ५९-६३।

व्यापक नहीं है जितनी सामान्यतः समझी जाती या समझी जा सकती है। इसके प्रमाण में संपादित पाठ के ऊपर उल्लिखित उद्धरण को लिया जा सकता है। उसमें छन्दोनुरोध के कारण हुए (क) ह्रस्व स्वर के दीर्घीकरण का कदाचित् एक ही प्रयोग मिलता है, वह है सिद्धि > सिद्धी (३.२३.२); (ख) व्यंजन द्वित्व के कदाचित् केवल चार प्रयोग मिलते हैं : नागपुर > नागण्पुर (३.२२.१), दाहिमउ > दाहिम्मउ (३.२२.२), विरदिया > विरदिया (३.२७.६) तथा निमटिहि > निमट्टिहि (३.२७.६)। स्वर के अनुस्वार-रजन का कोई प्रयोग नहीं मिलता है, और न समास के द्वितीय शब्द के प्रथम व्यंजन के द्वित्व करने का कोई प्रयोग मिलता है। इसी प्रकार संपादित पाठ के उपर्युक्त उद्धरण में (क) दीर्घ के ह्रस्वीकरण का कोई प्रयोग नहीं मिलता है, (ख) व्यंजन-द्वित्व के क्षतिपूर्ति रहित सरलीकरण का कदाचित् एक ही प्रयोग मिलना है : दिट्ठि > दिठि (३.२१); और (ग) अनुस्वार के अनुनासिकीकरण का भी कदाचित् एक ही प्रयोग मिलता है : भुजग > भुजग (=भुजंग)।^१

विशिष्ट रूप

इस प्रसंग में यह बताना आवश्यक होगा कि शैली में अन्तर छन्द-भेद के आधार पर बहुत अधिक हो जाता है। कुछ छन्द ऐसे हैं जिनमें संस्कृताभास लाना 'रासो' के कवि को आवश्यक प्रतीत हुआ है, यथा श्लोक, साटिका या वसंत तिलक में; कुछ छन्द ऐसे हैं जिनमें प्राकृताभास लाना उसे आवश्यक प्रतीत हुआ है, यथा गाथा में; शेष में सामान्यतः भाषा का प्रकृत रूप रखना उसके लिए स्वाभाविक था, केवल जैसा हम नीचे देखेंगे, वर्ण्य विषय-भेद से शैली में भी यत्किंचित अन्तर उसने अवश्य ही प्रस्तुत किया है। छन्द भेद के आधार पर रचना की शैली का अध्ययन कवि की भाषा के प्रकृत रूप को समझने के लिए आवश्यक है, यह बात कुछ प्रस्तुत रचना के ही सम्बन्ध में नहीं, छन्द-विविध-प्रधान हिन्दी की समस्त प्राचीन रचनाओं के सम्बन्ध में लागू होती है : अन्तर केवल परिणाम का हो सकता है। और यदि रचना के मात्रिक और वर्णिक छन्दों पर हम ध्यान दें^२, तो डॉ० नामवर सिंह द्वारा उल्लिखित प्रवृत्ति पर ही नहीं, शब्द-योजना और शैली पर भी एक निश्चयात्मक प्रकाश पड़ेगा। हम देखेंगे कि—

(१) जहाँ तक मात्रिक छंदों का प्रयोग हुआ है, प्रायः सर्वत्र भाषा का प्रकृत रूप मिलेगा, अनुस्वार-रजन न मिलेगा, समास और तत्सम के प्रयोग कम ही मिलेंगे, सामान्य व्यंजन-द्वित्व अधिक मिलेंगे; इस प्रकार के छंद हैं : दोहरा (दृहा), कवित्त (छप्पय), रासा, पद्धडी, मुडिल्ल, अडिल्ल, वस्तु, चउपई तथा गाथा मुडिल्ल। त्रिभंगी ही इस परम्परा का एक मात्र अपवाद है, जिसमें निम्नलिखित (२) के वर्णवृत्तों की प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं; गाथा में भी एकाध उदाहरण (यथा ६.१७) इस प्रकार के मिलते हैं, किन्तु वे अपवाद-स्वरूप ही हैं।

(२) जहाँ तक वर्णिक छंदों का प्रश्न है, कुछ प्रकार के वृत्तों में संस्कृताभास लाने का प्रयत्न मिलेगा, और इसलिए अनुस्वार-रजन बहुत होगा, समास और तत्सम शब्दों का प्रयोग भी अपेक्षाकृत अधिक होगा, सामान्य व्यंजन-द्वित्व कम मिलेगा। इस प्रकार के छन्द हैं : श्लोक (अनुष्टुप), साटिका, वसंततिलक तथा डंडमाल।

(३) वर्णिक छंदों में ही कुछ ऐसे मिलेंगे जिनमें संस्कृताभास लाने का प्रयत्न अधिक नहीं मिलेगा, केवल अनुस्वार-रजन लाने का प्रयत्न विशेष मिलेगा, शेष बातें यथा उपर्युक्त (१) में

^१ ये विशेषताएँ प्रायः इसी प्रकार अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो की भाषा' शीर्षक में उद्धृत 'प्राकृत पैगल' के इम्मीर-विषयक छन्दों तथा श्रीधर के 'रणमाल छन्द' के छन्दों में भी मिलेंगी।

^२ दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो के छन्द' शीर्षक।

होंगी। ऐसे छन्द हैं : विराज, आर्या, रूपया, ममरावली और रसावला। यह अवश्य है कि इन छन्दों का प्रयोग रचना में बहुत ही कम हुआ है।

(४) वर्णवृत्तो में ही कुछ ऐसे भी मिलेंगे जो कभी तो उपर्युक्त (३) की भाँति प्रयुक्त होंगे^१ और कभी (१) की भाँति प्रयुक्त होंगे—अर्थात् उनकी शैली सर्वथा मात्रिक छन्दों के समान होगी।^२ ऐसा भी देखा जाता है कि कभी-कभी इन छन्दों में कुछ अंश (३) के समान और कुछ अंश (१) के समान होंगे।^३ ऐसे छन्द हैं : भुजुगी (भुजंग अर्थात्), नाराच (वृद्ध नाराच), अर्द्धनाराच, और चोटक।

और हम अन्यत्र देख चुके हैं^४ कि संपूर्ण रचना का लगभग $\frac{1}{2}$ मात्रिक छन्दों द्वारा निर्मित है, केवल $\frac{1}{2}$ वर्णिक वृत्तो द्वारा बना है, अतः प्रकट है कि संस्कृताभास, अनुस्वार-रंजन, तत्सम-बाहुल्य और समास की ओर झुकाव रचना में बहुत सीमित अंश में मिलेगा। फिर, ऊपर बताया जा चुका है कि ये तत्त्व वर्णिक वृत्तो में ही प्रायः मिलते हैं, जिनका प्रयोग संस्कृत साहित्य से अपभ्रंश तथा भाषा-साहित्य में आया है। इनके सम्बन्ध में 'रासो' की रचना के पूर्व भी कवियों की सामान्य धारणा रही है कि इनमें रचना तभी सरस हो सकती है जब कि संस्कृताभास अथवा उसका कोई न कोई उपकरण, यथा अनुस्वार-रंजन, इनमें लाया जा सके।^५ अतः यह प्रकट है कि 'रासो' के कवि की सामान्य शैली पर विचार करते समय ऐसे वृत्तो को छोड़ देना चाहिए जिनकी ऐसी विशिष्ट शैली रही है जो आयासपूर्वक एक परम्परा का पालन करने के लिए प्रयोग में लाई जाती रही है। 'रासो' के कवि की प्रकृत शैली वह है जो रचना के शेष वृत्तो में मिलती है, अतः संपादित पाठ से ऊपर कैवास-बध की जो पंक्तियाँ (३.२१-२७) उद्धृत की गई हैं, वे उसकी प्रकृत शैली का वास्तविक उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

वर्ण्य विषय के अनुसार रचना में शैली-भेद बहुत कम मिलता है। ऊपर रचना के विविध प्रकार के वर्णनों की समीक्षा करते हुए^६ प्रायः समस्त प्रकार के उदाहरण दिए गए हैं। उनका विश्लेषण करने पर शत होगा कि पक्ष, विशेष रूप से युद्ध-वर्णन सम्बन्धी, प्रसंगों में ही शैली-भेद कुछ दिखाई पड़ता है, शेष प्रसंगों के छन्दों में वह प्रायः नहीं है। युद्ध-वर्णन के प्रसंगों में भी कृत्रिम रूप से ध्वनि-प्रभाव उत्पन्न करने का यत्न, जैसा कि परवर्ती रचनाओं में प्रायः मिलता है, 'रासो' में बहुत ही कम मिलता है। यहाँ भी शैली-भेद छन्द-भेद से बहुत कुछ संबद्ध मिलेगा। गहाबुद्दीन सम्बन्धी प्रसंगों में स्वभावतः विदेशी शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है, यह बताया ही जा चुका है।^७

कवि की सामान्य शैली की विशेषताएँ स्वतः प्रकट हैं। वह एक सुकवि की अत्यन्त समर्थ शैली है, भावों की अभिव्यक्ति करने में वह सर्वत्र भली भाँति सफल हुई है, उसकी शब्द-योजना

^१ यथा : १.४, ४.२०, ४.२१, ७.१७, ८.१०, ११.१२, ५.३८, ६.१५, ३.१७, ५.२४, ७.१२, ८.९।

^२ यथा : ४.२३, ७.१३, १२.२९, ४.१४।

यथा : २.७, ४.१०, ५.१३, ६.५, ७.१०, ७.३१, २.१३।

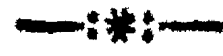
^४ दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो के छन्द' शीर्षक।

^५ दे० 'प्राकृत पैगल' (संपादक चन्द्रमोहन घोष) में सादूलसद्व, वसंततिलका, इंदवज्जा, रूपमाला तथा अन्य अनेक वर्णवृत्तों के उदाहरण।

^६ दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो के वर्णन' शीर्षक।

^७ दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो में प्रयुक्त विदेशी शब्द' शीर्षक।

रमणीय है, कहीं भरती के शब्द रखने की आवश्यकता कवि को नहीं पड़ी है, न व्यर्थ के अलंकारों से वह दबी हुई है, और न रीति और गुणों से संगन्धित रुढ़ियों का वह अनावश्यक अनुसरण करती है। यह शैली कभी-कभी रुक्ष-प्रवण अवश्य प्रतीत होती है, ऐसे स्थलों पर संगति लगाने में पाठक को अपनी ओर से प्रायः कुछ न कुछ शब्दावली लानी पड़ती है। वस्तुतः जैसा उसे होना चाहिए था, अपने विषय-प्रधान महाकाव्य के लिए वह संपूर्ण रूप से उपयुक्त एक गरिमा पूर्ण, सज्जित और सुव्यवस्थित साधन बन सकी है।



२४. 'पृथ्वीराज रासो'

का

महाकाव्यत्व

महाकाव्य के लक्षणों के सम्बन्ध में भामह (५वीं शती ईस्वी) से विश्वनाथ कविराज (१६वीं शती ईस्वी) तक प्रायः समस्त काव्य-शास्त्रियों ने विचार किया है, जिसे देखने पर महाकाव्य के रूप के विकास के साथ साथ उनके द्वारा निरूपित लक्षणों में भी विकास दिखाई पड़ता है। 'रासो' की रचना तक संस्कृत और प्राकृत में ही नहीं अपभ्रंश में भी अनेकानेक महाकाव्य रचे जा चुके थे। असंभव नहीं है कि नव्य भारतीय भाषाओं में भी कोई महाकाव्य रचे गए हो, किन्तु वे प्राप्त नहीं हैं। महाकाव्य विषयक मान्यताओं में भी परिणामतः परिवर्तन होता रहा होगा। इसलिए 'रासो' के पूर्ववर्ती काव्य-शास्त्रियों द्वारा निरूपित लक्षणों की अपेक्षा उसके परवर्ती काव्याचार्यों के मतों पर विचार करना अधिक उचित और उपयोगी होगा।

'रासो' की रचना के बाद के आचार्यों में सर्वप्रमुख विश्वनाथ कविराज हैं, जिन्होंने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों का समाहार करते हुए और उनके परवर्ती महाकाव्यों पर भी दृष्टि रखते हुए महाकाव्य की सबसे व्यापक परिभाषा दी है, इसलिए केवल उन्हीं के मत को दृष्टि में रखते हुए 'रासो' के महाकाव्य पर विचार करना पर्याप्त होगा। उनके मत^१ का विश्लेषण करने पर महाकाव्य की आवश्यकताएँ निम्नलिखित ज्ञात होती हैं :—

(१) प्रबन्ध की दृष्टि से उसको सर्गवद्ध होना चाहिए। सर्गों की संख्या [सामान्यतः] आठ से अधिक होनी चाहिए। उनका आकार न अति स्वल्प और न अति दीर्घ होना चाहिए। महाकाव्य का आरम्भ नमस्कार, आशीर्वाद तथा वस्तु-निर्देश के साथ होना चाहिए और प्रत्येक सर्ग की समाप्ति पर आने वाले सर्ग की कथा की सूचना होनी चाहिए।

(२) छन्द की दृष्टि से उसका प्रत्येक सर्ग एक एक वृत्त का होना चाहिए, किन्तु सर्ग के अन्त में उससे भिन्न वृत्त आना चाहिए। उसका कोई सर्ग ऐसा भी होना चाहिए जो नाना वृत्त युक्त हो।

(३) वस्तु की दृष्टि से उसका निर्माण किसी इतिहास-प्रसिद्ध अन्यथा सुजन-समाज में प्रचलित कथानक को लेकर होना चाहिए और उसका विकास विभिन्न सधियों की सहायता से प्रायः उसी प्रकार किया जाना चाहिए जिस प्रकार नाटक में किया जाता है।

(४) उसका नायक या तो कोई देवता, या धीरोदात्त गुणान्वित कोई क्षत्रिय होना चाहिए।

^१ 'साहित्य-दर्पण', श्लोक ६१३-६२२।

(५) उसमें शृङ्गार, वीर और शान्त रसों में किसी एक को अंगी तथा अन्य रसों को अंग के रूप में आना चाहिए ।

(६) उसका लक्ष्य अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष में से किसी एक की प्राप्ति होना चाहिए ।

(७) उसमें, जहाँ पर अवसर हो, विविध वर्णनीय विषयों का सांगोपाग वर्णन होना चाहिए: यथा संध्या, सूर्य, इन्दु आदि का । कहीं-कहीं पर खलों की निन्दा और सज्जनों का गुण-वर्णन भी होना चाहिए ।

(८) उसका नामकरण कथानक, नायक के नाम अथवा अन्य किसी आधार पर किया जाना चाहिए ।

इन आवश्यकताओं की दृष्टि से विचार करने पर पृथ्वीराज 'रासो' पूर्णरूप से एक महाकाव्य ठहरता है । उसमें उपर्युक्त समस्त तत्व पाए जाते हैं :—

वह सर्ग बद्ध है : न केवल प्रबन्ध की आवश्यकताओं का उसमें सम्यक् निर्वाह हुआ है, सर्गों में रचना सम्यक् विभाजन भी हुआ है । जैसा ऊपर बताया जा चुका है, यद्यपि उसके लघुतम पाठ की प्रतियों में सर्ग-विभाजन नहीं मिलता है, शेष समस्त पाठों में वह मिलता है, और एक मिलता है, इसके अतिरिक्त संपूर्ण रचना में कथाएँ इस प्रकार बँटी हैं कि सर्ग-विभाजन 'रासो' के कवि की दृष्टि में था, यह प्रस्तुत संस्करण के सर्गों को देखकर सुगमता से समझा जा सकता है; अतः 'रासो' का सर्गबद्ध होना भली भाँति प्रमाणित है ।^१ ये सर्ग संख्या और आकार में भी 'साहित्य-दर्पण' में प्रतिपादित मत का अनुसरण करते हैं : ये आठ से अधिक हैं और प्रायः न अति स्वल्प हैं और न अति दीर्घ हैं । रचना का आरम्भ नमस्कार और संक्षिप्त वस्तु-निर्देश के साथ हुआ ही है ।^२ विभिन्न सर्गों के अन्त में आने वाले सर्ग के कथानक की सूचना अवश्य नहीं है, किन्तु यह प्रबन्ध-विषयक कोई अनिवार्य आवश्यकता भी नहीं है ।

छन्द की दृष्टि से 'रासो' 'साहित्य-दर्पण' के लक्षणों के अनुरूप अवश्य नहीं पड़ता है और उसका कारण यह है कि महाकाव्य होने के साथ-साथ यह छन्द-वैविध्य-परक रासो-परंपरा की रचना है । यह रासो-परंपरा संस्कृत और प्राकृत में नहीं थी, अपभ्रंश में प्रारम्भ हुई और वह भी कदाचित् बहुत पीछे ।^३ इसमें महाकाव्यों की रचना 'पृथ्वीराज रासो' के पूर्व भी हुई थी, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है । इसलिए 'साहित्य-दर्पण' का रासो महाकाव्य की छन्द-योजना विषयक मान्यता यदि बदली न हो तो आश्चर्य न होगा । और छन्द का एक रूपता एक सर्ग के अन्तर्गत सामान्यतः उपयोगी भी होती है, क्योंकि उसके द्वारा कथा-प्रवाह और वर्णन-प्रवाह अधिक सुरक्षित रह सकते हैं । किन्तु विश्वनाथ कविराज ने ही महाकाव्य के अन्तर्गत कोई सर्ग ऐसा भी रखने की अर्थात् आवश्यकता मानी है जिसमें विविध वृत्त हों । इसलिए विविध छन्दों में यदि समूचे महाकाव्य की अर्थात् उसके समस्त सर्गों की रचना की जावे, तो उसमें कोई मौलिक आपत्ति नहीं होनी चाहिए ।

वस्तु की दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' का कथानक इतिहास-प्रसिद्ध तो रहा ही है, सुजन-समाज में प्रचलित भी रहा है : देश के विदेशी जातियों के हाथों में जाने की यह दुःखपूर्ण कथा सदियों तक कही-सुनी जाती रही होगी और 'हम्मीर महाकाव्य' और जैन प्रबन्धों में इस कथा के दो अन्य रूप

^१ दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो की प्रबन्ध-कल्पना' शीर्षक ।

^२ वही ।

^३ दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'रासो काव्य-परंपरा और पृथ्वीराजरासो' शीर्षक ।

भी मिलते हैं,^१ यह इस अनुमान का समर्थन करते हैं।

इसका नायक धीरोदात्त क्षत्रिय है, यह भी सुगमता से देखा जा सकता है। किसी महान आदर्श के लिए जीवन के सुखों का त्याग ही चरित्र में उदात्तता लाता है। पृथ्वीराज के चरित्र में यह बात प्रचुर परिमाण में पाई जाती है : जयचन्द के आमन्त्रण पर उसकी वश्यता स्वीकार कर वह उसके राजसूय में सम्मिलित हो सकता था, और असम्भव नहीं कि ऐसी दशा में उसकी प्रेमिका संयोगिता भी उसको अनायास मिल जाती, किन्तु राजसूय में उसके सम्मिलित न होने पर दरबान के रूप में उसकी स्वर्ण-प्रतिमा के प्रतिष्ठापित किए जाने को वह कैसे सहन कर सकता था ? इसीलिए तो उसने चन्द के गले लग कर रोते हुए कहा, 'इस जीवन की और अधिक वाञ्छा करे—ऐसा कौन सयाना होगा (३.४९) ?' और उसके अभिन्न हृदय चन्द ने भी इसका समर्थन करते हुए कहा, 'उपहास-विलासों में यहीं पड़े रह कर हम प्राण न छोड़ेंगे, हम तो जयचन्द की धरा पर उसकी सेना से टकरा लेंगे (३.४३)।' अपने शत्रु शहाबुद्दीन को परास्त कर उसने एक से अधिक बार अपनी उदारतावश मुक्त कर दिया था (२.३)। शहाबुद्दीन के अन्तिम आक्रमण के पूर्व ही उसके प्रायः सभी वीर सामन्त जयचन्द के साथ हुए उसके युद्ध में कट चुके थे, और शहाबुद्दीन एक विशाल सेना लेकर इस बार आया था, पृथ्वीराज चाहता तो संधि असंभव नहीं थी, किन्तु जैसा चन्द ने कहा, 'और कुछ नहीं है तो सिंगिनी और बाण तो अपने हैं; सामन्त नहीं हैं तो भी क्रम से कम वह मंत्र कर कि दिल्ली की धरा को डुबो न दे (१०.२३)।' इस भावना से प्रेरित होकर वह अपने पवित्र उत्तरदायित्व को कैसे छोड़ सकता था ? स्वभावतः उसने फिर भी शहाबुद्दीन का सामना किया, यद्यपि वह पराजित और बन्दी हुआ। अतः महाकाव्य के उपयुक्त ही उसका यह धीरोदात्त नायक है, यह भी प्रकट है।^२

'पृथ्वीराज रासो' का अंगी रस वीर है, जो कि अन्य रसों से परिपुष्ट हुआ है—विशेष रूप से शृंगार से, और उत्साह का जैसा पूर्ण और परिष्कृत चित्र इस रचना में उपस्थित किया गया है वह स्वतः एक महान् कल्पना है।^३ इसलिए महाकाव्य का रस-संबंधी लक्षण भी पूर्ण रूप से इस काव्य में मिलता है।

इसका लक्ष्य धर्म की प्राप्ति है : धर्म के लिए ही जीवनोत्सर्ग के लिए नायक युद्धों में कूद पड़ता है। इस काव्य में वर्णित पहला युद्ध, जैसा अन्यत्र बताया जा चुका, सौन्दर्य-लिप्सा के कारण नहीं वरन् संयोगिता के प्रेमानुष्ठान की पूर्ति तथा अपने मान की रक्षा के लिए नायक ने किया है, दूसरा युद्ध उसने देश की रक्षा के लिए किया ही है।^४ बीच में संयोगिता के साथ उसका केलि-विलास काव्य में अवश्य वर्णित हुआ है, किन्तु स्वतः वह रचना का वर्ण्य नहीं है, वह तो काव्य में यह दिखाता है कि काम-लिप्सा नायक के लिए कितनी घातक सिद्ध हुई; वह पाठक के मन पर यह प्रभाव डालता है कि असंभव नहीं कि यदि नायक काम-लिप्सा में इस प्रकार न पड़कर अपने गुरु-बाधव-भृत्य-लोक को अपने से उदासीन न कर देता, और अपनी सैनिक शक्ति का हास न होने देता, तो शहाबुद्दीन को कदाचित् वह फिर पराजय देता। अन्त में चन्द की युक्तियों से अधर्मी शत्रु का संहार कर वह 'घरती को नव-वधू के समान उत्फुल्ल' करने में भी सफल होता है (१२.४९)। इसलिए स्पष्ट है कि रचना उद्देश्य धर्म की प्राप्ति है, और 'रासो' का कवि उसको भली भाँति प्रतिपन्न करता है।

^१ दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'इम्मीर महाकाव्य और पृथ्वीराज रासो' तथा 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह और पृथ्वीराज रासो' शीर्षक।

^२ दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो की चरित्र-कल्पना' शीर्षक।

^३ वही।

^४ वही।

विविध वर्णनीय विषयों का सांगोपाग वर्णन भी यथावसर रचना में मिलता है और यह वर्णन संपूर्ण रचना में केवल आवश्यक मात्रा में आता है, यह रचना की एक बड़ी विशेषता है; केवल वर्णन के लिए वर्णन एक स्थान पर भी नहीं हुआ है।^१ इसलिए महाकाव्य का यह लक्षण भी रचना में पूर्ण रूप से मिलता है।

रचना का नामकरण नायक के नाम पर हुआ ही है।

अतः विश्वनाथ कविराज की बताई हुई महाकाव्य की सारी आवश्यकताये इस रचना में यथेष्ट रूप में मिलती हैं और यह निस्संदेह एक महाकाव्य है।

आधुनिक पाश्चात्य आलोचको ने महाकाव्य के लक्षण किंचित् भिन्न बताए हैं। एक प्रसिद्ध आलोचक का कहना है, “महाकाव्य एक ऐसे नायक का चित्रण करता है जो किसी देश अथवा किसी आदर्श का प्रतिनिधित्व करता है, और जो उसकी विजय के साथ विजयी होता है। वह कोई महान् अथवा महत्वपूर्ण व्यापार हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है और उसी प्रकार उसके पात्र भी महान् अथवा महत्वपूर्ण होते हैं। सारी रचना में एक गरिमा होती है। नाटक की तुलना में महाकाव्य के व्यापार की गति मंद होती है : उसमें घटना-बाहुल्य होता है और उसका वस्तु-संकलन शिथिल होता है। मानव जीवन की जितनी ही विस्तृत भूमिका उसमें ग्रहण की जाती है, उतनी ही अधिक सफलता महाकाव्य को मिलती है। वह कल्पना को अतीत के उस देश में ले जाता है जो स्वप्नों और आदर्शों का होता है, जिसमें दुःखान्त नाटकों का प्रवेश निषिद्ध है।”^२

महाकाव्य ये लक्षण भी ‘पृथ्वीराज रासो’ में पूर्ण रूप से मिलते हैं, बल्कि यदि देखा जावे तो इन लक्षणों के अनुसार वह और भी अधिक महाकाव्य है : सारी रचना एक महान् आदर्श को लेकर नायक के जीवन के एक विस्तृत क्षेत्र में प्रस्तुत की गई है, और अन्त में पराजय के बाद भी रचना में नायक के उस आदर्श की-अधर्मा से मातृभूमि को मुक्त कर उसको पुन हँसने का एक अवसर देने की-प्राप्ति दिखाई गई है, अतः इस दृष्टि से यह रचना अवश्य ही एक अमर महाकाव्य कृति के रूप में बनी रहेगी।

—:—

^१ दे० अन्यत्र इसी भूमिका में ‘पृथ्वीराज रासो के वर्णन’ शीर्षक।

^२ इन्स्यू० एम० डिकसन : ‘इंग्लिश इपिक पेंड हीरोइक पोइट्री’, १९१२, पृ० २१।

पृथ्वीराज रासउ

१. मङ्गलाचरण और भूमिका

[१]

साटिका — १ छत्त या^२ मद गंध घ्राण-लुब्धा^३ अलि भूरि^४ आच्छादिता^५ । (१)
 गुजाहार आधार^१ सार गुन या^२ रुजा पया^३ भामिता । (२)
 अग्रे या^१ सुति कुंडला^२ करि नवं^३ तुंडीर^४ उद्दारया^५ । (३)
 सोय पातु गणेश मेस सफल^१ प्रियिराज काव्ये हित^२ । (४)

अर्थ—(१) जिनका छत्र मद-गंध के घ्राण-लुब्ध भूरि अलियों से आच्छादित है, (२) जो गुजा का हार धारण करने वाले, सार गुणों के आधार हैं, और जिनके पदों (चरणों) में रुझा (रुनझुन करने वाला पैरो का आभूषण—बुबुखू) भासित होता है, (३) जिनके कानों के अग्र [भाग] में कुंडल हैं, जो नव हाथी की तुंड वाले हैं और उदार हैं, (४) ऐसे वे गणेश रक्षा करें और 'पृथ्वीराज काव्य' के हित में जो शेष हो उसको सफल करें ।

पाठान्तर— X चिह्नित शब्द धा. में नहीं हैं ।

— चिह्नित शब्द ना. में नहीं हैं ।

(१) १. मो. में यहाँ 'पुन' है, जो अन्य किसी प्रति में नहीं है । २. धा. या, मो. जा, शेष में 'जा' । ३. मो. रागुरु वार्श, धा. गंधरसिका, स. राग रुचयं, म. अ. घ्राण (घ्राण-म.) लुब्धा, ना.—लुब्धा । ४. मो. भार, ना. अ. भोर, स. भूर, म. भौर । ५. म. आच्छादितं ।

(२) १. मो. आधार, स. आधार, ना. म. अ. विहार । (तुल० अगले छन्द का चरण १) । २. मो. गुनजा, धा. गुनिजा, म. गुनया, ना. अ. गुणजा । ३. मो. झा पया, धा. रुजा पिया, अ. रुजा पया, ना. रंजा पया, स. झझा पया ।

(३) १. धा. म. या, शेष में 'जा' । २. मो. सुत कुंडल । ३. मो. नवु, धा. नवं, ना. णव., अ. फ.करा, म. करि, स. कर । ४. मो. थुंडीर, अ. तुंडीर, म. जुंडीर, ना. थुदीर । ५. मो. उदारवं ।

(४) १. मो. स. सेस सफलं (शेष सफल—मो. । धा. सतत फल, अ. ना. सेवित फल । २. मो. काव्यहितं, म. स. काव्यं कृत ।

टिप्पणी— (१) छत्त < छत्र । (२) पय < पद ।

[२]

साटिका— मुक्ता^१ हार विहार मार^२ सबुधा^३ अबुधा^४ बुधा गोपिनी^५ । (१)
 सेतं^१ चीर^२ सरीर नीर गहिरा^३ गौरी^४ गिर^५ योगिनी । (२)
 वीना^१ पानि सुवानि^२ जानि^३ दधिजा^४ हंसा रसा आसनी^५ । (३)
 लंबी^१ या^२ चिहुरार^३ भार जघना^४ विघना घना^५ नासिनी ॥ (४)

अर्थ—(१) जो मुक्ता का हार धारण करने वाली है, जो बुद्धिमानों के [कटपना] विहार का सार है, और जो बुद्धिमानों की अजता का गोपन करने वाली है, (२) जो श्वेत चीर धारण करने वाली है, जो गहरी काति वाले शरीर की है, जो गौरा-गौर वर्ण वाली है, जो गिरा (वाणी) का योग करने वाली है, (३) जो वीणा पाणि (हाथों में वीणा धारण करने वाली) है, जो सुवर्णी (अच्छे वर्ण वाली) है, मानों उदधि-पुत्री (लक्ष्मी) हो, जो हसिनी रूपी रसा (पृथ्वी) पर बैठने वाली है, (४) जिसकी चिकुरावली लयी है, और जो भारी जघनो की है, वह [सरस्वती] घने विघ्नो का नाश करने वाली है—या होवे ।

पाठान्तर—X वा में चिह्नित शब्द नहीं हैं ।

(१) १. वा ना, म. मुक्ता । २. ना हार हार । ३. मो. मक्का, म स. सुवर्णा, ना. विबुधा, अ. वसुधा । ४. मो. अकूधा (< अलूधा), स. अब्या । ५. वा गोपनी ।

(२) १. अ श्वेत । २. मो. ना. वीर, स. चौर । ३. मो. गिहिरा, म. गहिरी, ना. अ. गहरी । ४. म. गवरी । ५. धा. गुन, ना. अ. फ. गुण, स. गिरा ।

(३) १. मो. वाना (< वीना), वा. अ. वीणा । २. वा. अ. सुवाणि । ३. म. दक्षिणी । ४. ना. आसिनी ।

(४) १. मो. लवा, धा. लवी, ना. लंव, अ. लवं, म. लवो, म. लवि । २. धा. मो. 'या', शेष में 'जा' । ३. ना. विहुरार । ४. मो. जघनी । ५. मो. विवना वना, वा. विना घन । ६. वा. नामनी, मो. सनी ।

टिप्पणी—(२) सेत < श्वेत । (४) विहुरार < चिकुरावली ।

[३]

विराज— जटा जूट^१ बध^१ । (१)
 ललाटीय^१ चंद । (२)
 विराजादि छंद^१ । (३)
 भुजंगी गतिदं^१ । (४)
 सिरोमाल^१ लद^२ ।^३ (५)
 गिरिजा अनदं^१ । (६)
 सुरे^१ सिग^२ नद । (७)
 उगो^१ गंग हदं । (८)
 रणे^१ वीर^२ महं ।[×] (९)
 करी चम्प^१ छदं^२ ।[×] (१०)
 करे^१ काल षदं^२ ।[×] (११)
 चष्मे अग्नि ददं^१ । (१२)
 पुलै^{१*} यदि^२ जद । (१३)
 जयो जोग^१ सद । (१४)
 घटा^१ जाणि भदं । (१५)
 जुरे^१ काम तदं ।[×] (१६)
 हरे त्राहि वदं^१ । (१७)

१. मङ्गलाचरण और भूमिका

रचे मोह^१ कदं १+(१८)
 वचे^१ दूरि^२ दंद^३ । (१९)
 नटे मेप रिद^३ । (२०)
 नमो ईस इद^३ । २(२१)

अर्थ—(१) जो जटा-जट बाँधे हुए है, (२) और जिनके ललाट पर चन्द्रमा है (३) आदि के विराज [छन्द] में उनको वन्दन करता हूँ । (४) मुजगा (सर्पिणी) जिनके गले में है, (५) और सिरो की माला [जिनके गले में] लगी हुई है, (६) जो गिरिजा के आनन्द देने वाले है, (७) जो शृंग (सींग) को निनादत करते हैं, (८) जो गंगा के हृदय के पवित्र करने वाले है, (९) जो रण में वीरता के मद वाले है, (१०) जो गज-चर्म के आच्छादन वाले है, (११) जो काल को खाद्य करने (खाते) है, (१२) जिनके नेत्रों में अग्नि की उष्णता (ज्वाला) होती है (१३) जय जय प्रलय होता है, (१४) योग के शब्द (अनाहत नाद) के जो विजेता है, (१५) जो [शब्द] मानों भाद्रपद की घटा का होता है, (१६) जिन्होंने काम को तत्काल जलाया था, (१७) ऐसे तुम्हें हे हर, मैं 'त्राहि' कहता हूँ । (१८) जो मोह का कदन (नाश) करने वालों पर अनुराग करते है, (१९) द्वन्द्व जिनसे दूर बचता है (२०) और जो नट के वेप में रिद (मस्तमौला) है, (२१) उन ईशेन्द्र (महेश) को नमस्कार करता हूँ ।

पाठान्तर— फ में पूरे छन्द के स्थान पर केवल 'जटा जटयो' लिखा हुआ है ।

*चिह्नित शब्द सञ्ज्ञित पाठके हैं ।

× म में चिह्नित चरण नहीं है ।

+ अ. में चिह्नित चरण नहीं है ।

- (१) मो धा. वध, इनके अतिरिक्त सभी में 'वद' (वद—म.) है ।
 (२) १. मो ललाटीय, धा. अ ललाटेय, ना. लिलाटीय, स लिलाटन ।
 (३) १. धा. ना. अ. सिरोजाइ (सिरोजाय—धा) छंद, म उ स विराजत ।
 (४) १ धा. गलद, मो. गलिद, ना गलदं, म उ. स गलिद, अ गलेदं ।
 (५) १. मो. सिरोमल, म. सिरोसाल । २. धा. लडं, उ म इदं । ३. ना. स में यहाँ और भी है :

धर्यौ डौर नद । हस्यौ (हन्या—ना.) पुत्र वदं ।
 खिजी मात भारो । साराप विचारी ।
 करी जाकु ईमं । धर्यौ पुत्र सीस ।
 सवे किन्न अगो । तुही नाम लगो ।
 कलानत छप । गनेस सरप ।
 इक दत दत्ता । विराजत कती ।
 सु दीपति असे । कोविदा प्रससे ।
 मनु भूमिधारी । बराह उपारी ।
 इमौ दत्ति तेजं । कला सोम केजं ।
 नमो देव कद । प्रता ईस मद ।
 भवं भूत प्रेत । तिजारी न हेन ।
 इक दाह पक । दुनी देह मेक ।
 भगत्त सुचक्री । दीउ लछि बक्री ।
 इक चोष अछं । करे नाम नछं ।
 सुरं जकि मुत्ती । जलं माहि पत्ती (मात्ती—ना.) ।
 धरै आक सीसं । त्रिलोकी स ईस ।

रत रत्त भारी । कसन्ना विचारो ।
लीउ माल वष्य । बीउ साव्य नष्य ।
मिले एक्क दाह । रम काम सीह ।
इके जाख्य आयौ । दायौ काम घायौ ।
[बिर्जी रिषि भारी—केवल स. में] । कीयौ काम डारी ।
भयौ पुत्र तब्ब । धुजा मोर सव्व ।
सिरो माल धारी । गनेम विचारी ।
[बिजे तब्ब ईस । भयौ रोम बीस ।
अवह्ता इकली । बियौ पुर्ष मिह्ठी—केवल स. में]

(६) १. अ. गिरीजाय नदं ।

(७) १. अ. उरो, म. सुरे, उ. अरे, स. सिरं । २. मो. सिध, धा. सिध, म. सिंगि, उ. स. सिधि ।

(८) १. धा. उरे, अ. शिरो, मो. उणे, म. स. उनें ।

(९) १. उ. रिनौ । २. धा. धीर ।

(१०) १. धा. चम्म, मो. अ. चर्म । २. मो. सद् ।

(११) १. मो. कले, अ. जरे । २. अ. कद् ।

(१२) १. मो. चप्पि (=चप्पे) अग ददं, धा. चखे अग्गि तद्, म. चवे अग्गि तद्, अ. चले अग्गि छद्, स. चषो अग्गि दद् ।

(१३) १. मो. पुलि (=पुलै), अ. प्रले, धा. म. स. प्रलै । २. म. जादि ।

(१४) १. धा. जये योगि, अ. जय योगि ।

(१५) १. धा. घरा ।

(१६) १. मो. जुरे, शेष में 'जरे' ।

(१७) १. अ. तद् भद्, धा. ताहि भद् ।

(१८) १. मो. धा. मोहि ।

(१९) १. मो. बचि (=बचे), म. चवे, शेष में 'बचे' । २. म. रारि । ३. मो. दद ।

(२०) १. मो. रड ।

(२१) १. धा. सिद्ध । २. म. में यह चरण इसी स्थान पर दुहराया हुआ है ।

टिप्पणी—(३) छन्द < वन्द=वदन करना, प्रणाम करना । (७) सिंग < शृङ्ग=सींग । (८) उण < पुण < पू=पवित्र करना । (१०) छद् < छद=आच्छादन, आवरण । (११) षद् < खाद्य=भोजन । (१२) ददं < दवन्द्व=शीत उष्ण, किंतु यहाँ पर ताप । (१३) पुलै < प्रलय=सृष्टि का अन्त । (१५) भद् < भाद्र=भादौ । (१७) वद् < वद्=रुहना । (१८) रच < रब्ज=रचना, अनुराग करना । (२१) रिद् (फा०)=मस्तमौला ।

[४]

भुजंगी—

प्रथमं भुजंगी सुधारी^१ ग्रहन्^२ । (१)

जिनै^१ नाम^२ एकं^३ अनेकं कहन्^४ ॥ (२)

दुती लम्भय^१ देवता^२ जीवतेसं । (३)

जिनै विस्व राष्यौ^१ बल^२ मत^३ सेस^४ ॥^५ (४)

त्रिती^१ भारथी व्याम भारथ्य भाष्यौ^२ । (५)

जिनै उत्त^१ पारथ्य सारथ्य साध्यौ^२ ॥ (६)

चवं सुक्क देव^१ परिषत्त^२ पायं^३ । (७)

जिनै^१ उद्धरे^२ सव्व^३ कुरु वंस^४ रायं ॥ (८)

१. मङ्गलाचरण और भूमिका

नलै रूव^१ पंचम्म^२ श्रीहर्ष सारं^३ ।^४ (६)
 नलै राय कंठं दिय नैषध हारं^५ ॥ (१०)
 छठं कालिदास^१ छ भासा समुद्र^२ । (११)
 नियं^३ सेतु वधं^४ सु भोज^५ प्रबध ॥^६ (१२)
 सत^१ दंड माली सु लालिय^२ कवित्तं । (१३)
 जिनै बुद्धि तारग^३ सु गंगा सरित्त^४ ॥^५ (१४)
 गिरा सेप^१ बानी कवी कव्व^२ वंध^३ ।^४ (१५)
 जिनै सेस^१ उच्छिष्ट^२ कवि चंद^३ छंद^४ ॥^५ (१६)

अर्थ— (१) [अपने वंदनीय कवियों के रूप में] मैं पहले उन भुजंगिनी को धारण करने वाले (शिव) को ग्रहण करता हूँ (२) जिनका नाम एक है [किन्तु] अनेक कहा जाता है । (३) दूसरे मैं उन जीवितेश (जीवन के स्वामी—यम) को पाता हूँ, (४) जिन्होंने विश्व को मन्त्र-बल से शेष (बचा) रक्खा है—अथवा जिन्होंने विश्व में मन्त्र-बल को शेष (बचा) रक्खा है । (५) तीसरे मैं महाभारत के [कवि] व्यास का पाता हूँ जिन्होंने महाभारत कहा, (६) जिन्होंने [उसमें] पारथ सारथी द्वारा उक्त गीता की साक्षी दी । (७) चौथे मैं शुकदेव और परीक्षित को पाता हूँ, (८) जिन्होंने कुरुवंश के समस्त राजाओं का उद्धार किया । (९) पाँचवे नल के रूप (अवतार) श्रीहर्ष को मैं प्रसिद्ध करता हूँ, (१०) जिन्होंने नैषध (नल) के कंठ में 'नैषधीय' का हार दिया (डाला) । (११) छठे मैं कालिदास को पाता हूँ, जिन्होंने षट्भाषा समुद्र पर (१२) भोज के प्रबन्ध (आयोजन) से ['सेतु वध' काव्य के रूप में] निज (अपना) सेतु बंध दिया । (१३) सातवें मैं कविता का लालन करने वाले दंडमाली (दंडी) को पाता हूँ, (१४) जिनकी बुद्धि की तरंगें सरिता गंगा [की तरंगों के समान] थीं । (१५) गिरा (सरस्वती) की शेष वाणी को लेकर अन्य कवियों ने काव्य-प्रबन्ध किए, (१६) जिनके भी [अनन्तर] शेष उच्छिष्ट को कवि चंद छंद-निबद्ध कर रहा है ।

पाठान्तर— — फ. में यह पूरा छन्द दो बार आता है : एक तो प्रथम खंड की समाप्ति पर और दूसरे दूसरे खंड के प्रारम्भ में, अ. में चरण १३ का उत्तरार्द्ध, १४ तथा १५ पहले एक बार आ लेते हैं तब पूरा छन्द भी इसीके बाद आता है । नीचे अ. फ. का पाठान्तर परवर्ती स्थान पर आप हुए पाठ के अनुसार दिया गया है जो अ. फ. दोनों में पूरा मिलता है ।

* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

+ चिह्नित शब्द ना. में नहीं हैं ।

× चिह्नित चरण अ. में नहीं हैं ।

(१) १. ना. सधारी । २. धा. ग्रहणं, अ. गृहणं, फ. म. गहन (=गहनं) ।

(२) १. अ. भिनै, ना. जि— ।

(३) १. अ. फ. लभ्यतं, म. लभ्यते । २. अ. फ. देता, ना. उ. स. देवत ।

(४) १. म. जनै जस्व सच्यौ । २. अ. म. उ. स. ना. बली, फ. बले । ३. धा. मित्र, अ. ना. मत्त

(< मत्त), फ. मत्ति । ४. म. जेसं । ५. उ. स. में यहाँ ओर है (म. पाठ) :—

चव वेद बभं हरि कित्ति भारी । जिनै ग्रम्म सा ग्रम्म संसार साषी ।

(५) १. ना. विनी । २. म. भय्या ।

(६) १. अ. उत्ति, फ. उत्ते (< उत्ति) । २. म. पारथ सारथ सिथ्यौ ।

(७) १. अ. चवै सुकदेव, फ. परी सुक देउ, म. चवे सुषदेवं । २. धा. परिष्वत्थ, ना. अ. म. परीछत्त, फ. ,

परीक्षित, स. परीषत्त । ३. अ. फ. राय ।

(८) १. म. जिन । २. उ. स. उद्धर्यौ । ३. धा. सव्य । ४. धा. कुरुपस, ना. श्रव्व कुक (कुरु) वस, म. सव कुरु वस, उ. श्रव्व कुरु वस, स. श्रव्व कुर्वस ।

(९) १. फ. नले रूप, उ. स. नर रूप (रूप-स.), म. नले रूप । २. धा. पचमा । ३. फ. पचम नैषधि हारं । ४. ना. में अगला चरण ह. इस चरण के स्थान पर भी है ।

(१०) १. म. उ. नले राइ कठे दिने पद्ध हार, स. नले राइ कठ दिने पद्ध हार, अ. नले राय कठ नैषध हारं, फ. श्री हर्ष सिंगार अनिसार नार ।

(११) १. ना. म. अ. फ. छठे कालिशम (कालीशम—म. ना.) । २. म. सभा सुष षट्, ना. सुभाषा सभुदं, उ. स. सुभाषा सुवद्ध । ३. उ. स. में यहाँ और है :—

जिने बाग वानो सुवानी सवद्ध । द्वियो कालिका सुवख वाम सुसुद्ध ।

(१२) १. फ. निरे, म. उ. स. ना. जिन । २. म. वध्या । ३. ना. ज. भोज प्रवध, फ. रु. भोजस्य वद्ध, म. सुभो य प्रवद्ध, उ. स. ति. भोज प्रवध ।

(१३) १. म. सुत । २. धा. दडमा माल लालिय, फ. दंडाय लालमाली, म. अ. डड (दंड—अ.) माली सुलाली, ना. उ. स. दड (डड—ना.) मालो उगली ।

(१४) १. धा. म. अ. जिने बुद्ध (बुद्ध—म.) तारग, फ. जिने उद्धरी पुव्व (तुल० चरण८) । २. अ. फ. ना. गगा पवित्त, ना. गुण सरित्त, म. गगा सुरीतं । ३. ना. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :—जयदेव अट्ट कवी कविराय । जिने केवल कित्ति गोविंद गायं । उ. स. में यहाँ पुन. और है :—
गुरं सब्ब कब्बी लइ चद कब्बी । जिने दसिय देवि सा अग अब्बी ।

(१५) १. ना. गिरी सेव, म. गिरो शेष । २. ना. काव, म. कवि । ३. अ. फ. ना. म. वदे । ४. उ. स. में पूरे चरण का पाठ है : कवी कित्ति कित्ति उकत्ती सुदिव्खी । फ. में परवती स्थान पर के पाठ में चरण छूटा हुआ है, किंतु पूर्ववर्ती स्थान पर के पाठ में यह चरण भी है ।

(१६) १. धा. जिने सेस, अ. फ. तिनहि पुच्छि, ना. तिन शेष, म. नवूतास । २. अ. में शब्द छूटा हुआ है फ. उच्छिष्ट । ३. धा. कवि छन्द, फ. कवि कवि । ४. ना. म. अ. फ. छदे । ५. उ. स. में चरण का पाठ है : तिन की चिष्टी कवि चद भष्पी ।

टिप्पणी—(२) यम ऋग्वेद का कुछ रिवाजों, एक विष्णु-स्तोत्र तथा एक स्मृति के रचयिता माने जाते हैं । (४) मत < मत्र । सेस < शेष । (९) रूप < रूप । सार < साय् = प्रख्यातकरना, प्रसिद्ध करना । (११) षटभाषा : प्राकृत, संस्कृत, मागधी, शौरसेनी, पञ्चाविका और अपभ्रंश (१२) नय = जिन । (१५) कव्व < काव्य ।

[५]

दोहा— छंद^१ प्रबध कवित्त जति^२ साटक^३ गाह दुहथ्य^४ । (१)

लहु गुरु मडि त छडिहउ^५* पिगल^६ भरह^७ भरथ्य^८ ॥ (२)

अर्थ—(१) कविता के जितने [प्रकार के] छंद-प्रबध होते हैं, साटक [-बध], गाहा [बंध], दूहा [-बंध] [आदि], (२) उनमें लहु-गुरु का मडन करके पिगल [के छंद-सूत्र], भरत [के नाट्य शास्त्र] और महाभारत को [पीछे ?] छोड़ दूंगा—उनसे बढ़ कर रचना करूँगा ।

पाठान्तर—* चिह्नित सशोधित पाठ वा है । (१) १. ध. बध । २. धा. अ. फ. रस, ना. स. जुति, म. चित । ३. म. साटक । ४. मो. अ. दूहय, अ. फ. दुहथ्य, ना. दुअर्थ, म. दुरथ्य ।

(२) १. मो. पडित छडिहु (=छडिहउ), वा. मंडित पडियहु, अ. मंडित षडिया, ना. मडित षडइहि । फ. मंडित षया, म. भजिमडी इहै, उ. स. मडित खडयहि । २. म. प्यगल । ३. ना. म. उ. स. अमर । ४. मो. भरथ ।

टिप्पणी—(१) जति < जत्तिय < याक्त्=जितने । (२) भरह < भरत ।

[६]

साटिका— राज जा अजमेरि^१ केलि कविर^२ वृत्ता* रता^३ सभरि^४ । (१)
 दुद्धारा भर^५ भार^६ नीर^७ वहनो दहनो दुरंगो^८ अरि । (२)
 सोमेश्वर नर^९ नंद दंग^{१०} गहिला^{११} वहिला वन वासिन^{१२} । (३)
 निर्मान^{१३} विधिना त* जान^{१४} कविना दिल्ली^{१५} पुरं भासिन^{१६} ॥ (४)

अर्थ—(१) जिस राजा की कपिल (धूलि-धूसरित) केलि अजमेर में हुई, जिसके अनुराग-पूर्ण वृत्त मोंगर में हुए, (२) जिसका दुधारा (दा धारा का खड्ग) उस भारी भट के नीर (उसकी काति) को वहन करता था, और शत्रुओं के दुर्गों को ज्वर करने वाला था, (३) वह नर (पौरुष युक्त) सोमेश्वर का पुत्र, जो दंग गहिल (युद्ध के लिए पागल) रहा करता था, जो वहिलावन का निवासी था, (४) वह विधाता के द्वारा, मानो कवि के द्वारा, दिल्लीपुर में भासित (प्रोत्थित) होने के लिए बनाया गया था ।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

× चिह्नित शब्द म में नहीं हैं ।

(१) १. धा. मो. स ना अजमेर, फ अजमेर । २. धा कविल, म कवीला, ना अ फ. कलय । ३. धा. व्रिता (=व्रित्ता) रता, मो. वृत्ता नता, अ. फ ना वृंद नृत, म. वृत्तानिता, स व्रदं व्रत । ४. अ. फ. ना. सुदरी ।

(२) १. ना. दुधारा धर, अ. दुद्धारा धर, फ. दुद्धारध् धरि, म दुदार भार । २. ना. धीर, अ. म. स. भीर, फ. भीर । ३. मो. ना. स. मीर । ४. धा दहनो दुरंग, ना. दहनोपि दुर्ग, मो. म. स. दहनो दुरंगो (दहनो दुरंगो—म. स.), अ. फ दहनोपि दुर्ग ।

(३) १. धा. सोमेशो सुर, अ. सोमेश्वर वर, फ. सोमेश्वर वह, ना स. सो सोमेश्वर, म सोमेश्वर । २. धा. नंद वद, अ. द—, फ. में दूसरा शब्द नहीं है, ना. म नंद नद, म. नंद दद । ३. म गवहला । ४. मो. म. स. वासनं, फ. वासनी ।

(४) १. म निवर्ण । २. धा विधानान जानि, मो विधिना न जान, अ फ. विधिना सुजानि, म. वि ना निजानि, ना. चहुवान जान । ३. धा. अ फ दिल्ली । ४. मो म. वासन, धा. भासिन, अ वासिन, वासनी ।

टिप्पणी—(१) कविर < कपिल=भूरा, मलमैला । रत्त < रक्त=अनुरागपूर्ण । (२) दुरंग < दुर्ग । () गहिल < ग्रहिल [दे०]=भूतग्रस्त, पागल, उद्भ्रान्त । (४) भासिन्=प्रतिमान् ।

२. जयचंद राजसूय यज्ञ

और

संयोगिता का प्रेमानुष्ठान

[१]

पढ़ाई—^१कल^२ अथ^३ पथ^४ कनवज्ज राज^५ । (१)
 सत पित्त सेव^{*१} धरि^{*} धम्म चाउ^२ ॥^३ (२)
 वारण^{*४} भूमि[×] हय गय^२ अनगु^३ । (३)
 परठिआ पूनि^२ राजसू जगु^२ ॥ (४)
 सुद्धिग^{*१} पुराण बलि^२ वस वीर । (५)
 भुवगोल^१ लिपित^२ दिषित^३ सहीर ॥ (६)
 द्विति^१ छत्रबंध राजनि^२ समान । (७)
 जित्तिआ^१ सयल^२ हय बल^३ प्रमान ॥ (८)
 पुच्छइ^१ सुमत^२ परधान तव्व^३ । (९)
 अब^१ करहि^२ जगु जे^३ लेहि^{*४} कव्व^{*५} ॥ (१०)
 ऊतरु त दीअ^१ मंत्रिय^२ सुजान^३ । (११)
 कल्लिजुग नही^१ अर^{*} जुग^२ प्रमान^३ ॥ (१२)
 करि धम्म^१ देव देवर^२ अनेय^३ । (१३)
 षोडसा^१ दान दिनु^२ देहु देव^३ ॥ (१४)
 मुंहु सिष्य मानि^१ नृप पग^२ नीव^३ । (१५)
 कलि अथि^१ नही अर्जुन सु भीव^२ ॥ (१६)
 मुकि पंगु राय^१ मंत्रिय^२ समान । (१७)
 लहु लोह^१ अब्ब जो लहु^{*} अयान^२ ॥ (१८)

अर्थ—(१) कल (मनोहर) अर्थ के पथ मे कन्नौजराज था, (२) जो सत क्षेत्र (जैन धर्म के अनुसार जिन मन्दिर, जिन प्रतिमा, ज्ञान, साधु, साध्वी, श्रावक, और श्राविका) का सेवन करता था और धरा पर धर्म मे रुचि रखता था । (३) [उसके] भूमि के वारण (शत्रुओं से बचाव या सुरक्षा के साधन) अनग (झूलो से परिवेष्ठित) हय और गज थे । (४) [ऐसे कन्नौजराज ने] पवित्र राजसूय यज्ञ की परिस्थापना की । (५) उसने पुराणों के बलशाली और वीरवशों का शोध किया (६) और जो कुछ लिखित भूगोल (भू-वृत्त) था, उसको हेला-पूर्वक देखा । (७) क्षिति के छत्रबन्ध [छत्र धारण करने वाले] राजाओं से (८) [उसने] सब कुछ अपने हय-बल (अश्व-सेना) के द्वारा जीता । (९) [तदनंतर] अपने प्रधान (अमात्य) से वह यह मन्त्र (विचार) पूछने लगा—इस मन्त्र (विचार) के सम्बन्ध मे परामर्श करने लगा ।

(१०) वह अब यज्ञ करे [जिससे] कि काव्य (यज्ञ) का लाभ करे । (११) जानी मन्त्री ने तो उत्तर दिया, (१२) “कलियुग इतर युगो का सा नहीं है—अथवा कलियुग में इतर युग प्रमाण (प्रामाण्य) नहीं है । (१३) हे देव, अनेक देवान्य [निमित्त करा] कर (१४) षोडस [प्रकार के] दान [प्रति] दिन दे । (१५) हे नृप पग जीव, नेरी सीख माने, (१६) यह कलियुग है, [इस युग में] अर्जुन और भीम नहीं है [जिनके पराक्रम के बल पर युधिष्ठिर ने राजसूय किया था] ।” (१७) [इस उत्तर को सुनकर] पगराज मन्त्री से झुका (क्रुद्ध हुआ) (१८) और उड़ने कहा, ‘यदि मैं अब लघु लोभ-लाभ करता हूँ [और उसके लिए यज्ञ नहीं करता हूँ] तो यह [मेरा] अज्ञान होगा ।”

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

× चिह्नित शब्द धा में नहीं हैं ।

(१) १. धा. में इसके पूर्व है : वारता—हिव कनवज का राजा की बात कहइ छइ । ना. में इसके पूर्व है . वचनिका । कनवज्ज को राजा जैचंद दल पागुरो ताकौ स्थान कौन है तहा की बात प्रबध अब राजसूजग्य की बात मडो है । २ उ स में इसके पूर्व और है :—

थप्पै सुभट्ट राजसू पग। पर हरै पाप कर वत्त गग ।
धुनि धुनि सु विप्र बोले तिवेद । तन करै त्रिमल अब करे छेद ।
ग्रह ग्रहन हेम कसि कसि सुनारि । मानो कि सूर ससि किन्न तार ।
जगमगे हेम विवि विधि बनाइ । जिम निगम अत वमि बरुन आइ ।
ग्रह ग्रहन कलस तोरन समान । कैलास सिषर प्रतपै सु भान ।
ग्रह ग्रहन गौण रउजत बनाइ । कैलास डरह ससि अद्ध पाइ ।
ग्रह ग्रह किपाट जगमग जराइ । कैलास लगि नवग्रह रिमाइ ।

(तुल० स. ४८. ७२-७४ जो सभी प्रतियों में हैं ।)

३. धा. कल अव्य, मो. कल यथ, फ कलि अथ, ना कल हत, द. उ. स कलि अत । ४ धा पव । ५. मो. राज, अ. फ. राव, उ. स राइ ।

(२) १. मो. उं सत पित सिव (= औ सतपित सेव), धा० सत पेत सीव, अ सत सील रत, फ. सब सील रत, ना. द. सत पत्ति (सतिपत्त-ना) सील, उ म सतपती सील । २ धा धुरि धम्म चाड, मो. ना धर धर्म वाड (चाड-ना.), अ धर धर्म चाव, फ धर धर्म पाड, उ. म. धर धम्म चाव । ३. उ. स. में यहाँ और है :—

सुनि रोम कियो पहु पग राव । मागधहु सूत बदनि बुलाव ।
पुच्छयौ सुवंम कमधज्ज ग्रब्ब । हम बस जग्य किहि कियो पुब्ब ।
जिहि बस जग्य नन होइ राज । सुगतौ न भूप सुष सर समाज ।
तुम बंस भए कमधुज्ज सूर । दीनौ सुराज राज रस भूर ।
तव बस भयौ बाहन नरिंद । अतरिष रथ्य चलि स्रग कद ।
तुम बस भयौ पूरुर रुर । रथ च्यारि चक्र जिहि जोति सूर ।
सत सिंधु सूर जिह रथ्य चीलइ । तुम बस भयौ नृप राज नील ।
तुम बस भयौ नलराइ अंद । नैषद्ध हार ही धर्यौ वध ।
षट् चक्र भए कमधज्ज आदि । किन्नौ नरिंद जिह बरुन बाद ।
जीमूत धर्यौ जिहि चक्र सीस । मनार किति कीनी जगीस ।
को करे पंग सों दुष्ट आय । मड सुजग्य निहच त राय ।

(३) १. मो. वर निसाण, धा. वृटित है, अ. फ. वर अथ, ना. वारुणीय, द. वारुनि, उ स. वारुन्न ।

२. मो. भूमिह उधम । ३. मो. अंनगु, धा. अनग्गू ।

(४) १. धा. परठिया पुन्य, मो. परठिउ (=परठिजउ) पूनि, ना. परठीय पुन्य, अ. पठया पंग, फ. परठय्या पंग, उ. स. परठय्यपुन्न । २. मो. राजसूज जगु, धा. राजसु जगु, अ. राजमूजग, फ. राज भुयग अगग ।

- (५) १. वा. सुद्धिय, मो. सोधी, अ. फ. उ. स. सोधिग (< सुधिग) । २. फ. बल ।
- (६) १. मो. ना द. उ. स. भूगोल, अ. फ. सुवबोल । २. फ. लिषति । ३. मो. दिषित, ना दिषित, उ. स. दिषित ।
- (७) १. मो. छति । २. मो. राजा, अ. फ. ना उ. स. राजन ।
- (८) १. मो. जितीआ, धा. ना जितिया, उ. स. जितेति । २. मो. उ. स. ना. सकल, फ. सबल । ३. ना. द. उ. स. गग ।
- (९) १. मो. पुच्छि (=पुच्छइ), वा. पुच्छई अ. पुच्छया, उ. स. पुच्छ, ना. पुच्छे । २. अ. समति, फ. समत । ३. धा. परित तत्थ, अ. फ. परवान तच्छ (< तत्थ) ।
- (१०) १. वा. हम । २. मो. कर (=करउ) यग, ना उ. स. करहु जग्य । ३. धा. इह, मो. जे, अ. फ. जिहि, ना. द. उ. स. जिम । ४. वा. लही (< लहि=लहइ), मो. लिहि (< लेहि), ना. चले, द. उ. स. चलहि । ५. धा. कत्य ।
- (११) १. धा. उत्तर सु देइ, मो. ऊतर त दीअ, फ. उत्तर तौ दीय, उ. स. उत्तर सु दीन । २. मो. मत्री । ३. उ. स. सुजानि ।
- (१२) १. उ. स. नाहि । २. वा. अरजनु, मो. अर्जुन, अ. अरजुन, फ. अरजन, ना. द. उ. स. बिय जुग । ३. अ. फ. समान ।
- (१३) १. मो. ना अ. फ. वर्म, वा. वम्म, द. उ. स. धम्म । २. मो. द. ना उ. स. देवल, फ. देवर । ३. अ. फ. ना उ. स. अनेव ।
- (१४) १. धा. षोडस (=षोडस्स) २. मो. दितु (< दिनु), धा. नित । ३. धा. देव देय, मो. देहु देय ।
- (१५) १. धा. मो. सिक्ख सुणवि, मो. सुहु सीष मान, अ. फ. ना द. उ. स. मो. सीख मानि । २. धा. त्रप पग, मो. नृपग, अ. फ. प्रभु पग । ३. ना. नेय ।
- (१६) १. मो. अजू, फ. अच्छि, ना. द. उ. स. जुग । २. वा. राजा सुप्रीव, मो. अर्जुन सुसीव, ना. अर्जुन सयेव ।
- (१७) १. ना. द. उ. स. राव । २. मो. मत्रीअ, ना. मत्रिनि ।
- (१८) १. धा. मो. ना. लोभ । २. धा. बुल्यो नयान [पाठा० लहिन आन], अ. बुल्यौ नयान, फ. बुड्यो लही आन, मो. जो लुहु (=लुहउ) अयान, ना. द. उ. स. बोलहु अयान ।
- टिप्पणा—(१) अथ्य < अर्थ । (२) षित < क्षेत्र । धम्म < धर्म । (३) वारण > वारण = वचाव या सुरक्षा के साधन । अनग्ग < अनग्ग=अल्लादि से परिवेष्टित । (४) परिठ्वण < परिस्थापना । (५) हीर > हेला=अनादर, तिरस्कार । (६) समान=साथ (दे० बाद का धरण १७) । (८) मयल < सकल । (९) मत < मंत्र । (१०) जेम=यथा, जैसे, जिस तरह से । कव्व < काव्य=यश । (११) त < तु=तो । (१२) अउर < अपर=अन्य । (१३) धम्म < धर्म । देवर < देवालय । अनेय < अनेक । (१४) षोडसा < षोडस । [षोडस दानों की सूची के लिए दे० मोनियर विलियम्स की 'संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी'] । (१५) अथ्य < अस्ति=है । भोव < भीम । (१७) समान=से [दे० ऊपर का चरण ७] । (१८) लेह < लोभा अयान < अज्ञान ।

[२]

गाथा—के के^१न गया महि मंडलंमि^२ धर दिह्लाय^३ दीह दीहाइ^४ । (१)
विस्फुरइ^५ जासु^६ किती ते गया^७ नहु^८ गया^९ हुंति^६ ॥ (२)

अर्थ—(१) [जयचन्द ने कहा,] “इस महि मण्डल से धरा को दीर्घ (बहुत) दिवसों तक ढीला करके (भोग करके ?) [भी] कौन कौन नहीं गए ? (२) जिसकी कीर्ति विस्फुरित होती है, वही गत गत नहीं होता है ।

पाठान्तर—(१) १. ना को के । २ वा न गया मह मडलानि, मो. ना न गया महि मडलानि, अ फ न गए महि मह ड ना उ. स न गया महि मडलाड (मडलाय-ना उ म) । ३ वा वर द्वित्य, मो धर धवलजग, अ फ डिजी डिहार, ना वनए, ड उ म. वन्ना । ४ वा. दीह दोहाइ, मो दह हाहा, अ दीह होहाय, फ. दीह हाहौ, ना द दाह दिवहाइ, उ म दह डम्हाइ ।

(२) १. वा द उ स विष्णुरे, अ विहुरनि, फ विहुरन । २ वा. तानु, ना जाम । ३ अ त गय, फ त गया । ४ वा नहि, अ फ नही, ना नह, द म नवि । ५ अ फ गये । ६ उ म हती ।

टिप्पणी—(१) गय < गता . । दीह < डंघ । दाहा < दिवस । (२) विष्णुर- < विष्णुर्- । गया < गताः ।

[३]

पद्धती— पहु^१ पंगु राउ^२ राजसू^३ जंगु^४ । (१)
 आरंभ रभ^५ कीनउ*^६ सुरग^७ ॥ (२)
 जित्तिआ^८ राउ^९ सब मिधु आर^{१०} । (३)
 मेलिया^{११} कंठ^{१२} जिम^{१३} मुत्ति हार^{१४} ॥ (४)
 जोगिनी पुरेस^{१५} सुनि भयउ*^{१६} पेद । (५)
 आवइ^{१७} न माल मझ इह^{१८} अभेद ॥ (६)
 मोकले^{१९} दूत तब ही^{२०} रिसाइ । (७)
 असमथ्य सेव^{२१} × किम^{२२} × भूमि × खाइ × ॥ (८)
 बंधू^{२३} × समेत^{२४} × सामत सथ्य^{२५} × । (९)
 उत्तरे^{२६} आनि^{२७} दरबार तथ्य^{२८} ॥ (१०)
 बोलउ*^{२९} न वयण^{३०} प्रथिराज तांहि^{३१} । (११)
 सकुरिउ*^{३२} सिघ^{३३} गुरजनन चाहि^{३४} ॥ (१२)
 उच्चरउ*^{३५} गुरुअ^{३६} गौयंद^{३७} राज । (१३)
 कलि मभिम्भ^{३८} जंगु^{३९} को करइ^{४०} आज ॥ (१४)
 सत जुग^{४१} कहइ^{४२} बलिराइ^{४३} विन^{४४} । (१५)
 तिनि^{४५} कित्ति काज त्रैलोक^{४६} दिन^{४७} ॥ (१६)
 त्रेता^{४८} ज*^{४९} कीन्ह^{५०} रघुनंद साइ^{५१} । (१७)
 कुव्वेर कोट^{५२} वरिषउ*^{५३} सुभाइ^{५४} ॥ (१८)
 धनि^{५५} धम्म पुत्त^{५६} द्वापर^{५७} सुणाइ^{५८} । (१९)
 तिहि पथ्य^{५९} वीर अरु^{६०} हरि सहाइ^{६१} ॥ (२०)
 कलि मभिम्भ^{६२} जंगु^{६३} को करण^{६४} जोग । (२१)
 विगरइ*^{६५} तु बहु विधि^{६६} हसइ*^{६७} लोग ॥ (२२)
 दल दव्व^{६८} गव्व^{६९} तुम^{७०} अप्रमान^{७१} । (२३)
 बोलहु^{७२} त बोल देवन^{७३} समान ॥ (२४)
 तुम जानउ*^{७४} पित्री हइ न^{७५} कोइ । (२५)

निव्वीर^१ पुहवि^२ कवहू न होइ ॥ (२६)
 हम जगलि^१ वास कालिदि^२ कूल^३ । (२७)
 जानहि^१ न राइ^२ जयचद मूल ॥ (२८)
 जानहि^१ त देसु^२ जोगिनि^३ पुरेसु । (२९)
 जरासिध वंसि^१ पुहुमी^२ नरेसु ॥ (३०)
 तिहु वारि^१ साहि वधिआ^२ जेनि^३ । (३१)
 भंजिआ^१ भूप भडि^२ भीममेन^३ ॥ (३२)
 सइंभरि*^१ सकोप^२ सोमेस पुत्त^३ । (३३)
 दानव ति^१ रूव^२ अवतार धुत्त^३ ॥ (३४)
 तिह कंधि^१ सीस किम^२ जग्ग^३ होइ । (३५)
 जु प्रिथिमी^१ नही^२ चहुआन कोइ ॥ (३६)
 देपई^१ सभ्भ तेहि^२ सिघ^३ रूप । (३७)
 मानहि न जग्गु^१ मनि अन्न^२ भूप ॥ (३८)
 आदरह मद उठि गयु*^१ वसिठ^२ । (३९)
 जिम गामिनी सभा^१ बुध जन^२ उविठ^३ ॥ (४०)
 फिरि चलिग तव्व^१ कनवज्ज मभ^२ । (४१)
 भयु मलिन^१ मुख^२ जांनु कमल^३ सभ^४ ॥ (४२)
 तिनि दूर दूत^१ जइ*^२ कहिग^३ वयन । (४३)
 अति रोस किए^१ रत्ते^२ नयन ॥ (४४)
 बोल्यउ^१ सुमंत परधान तव्व । (४५)
 कनवज्ज नाथ^१ करि जग्गु^२ अव्व ॥^३ (४६)
 जव^१ लग्गि^२ गहिहि^३ चहुआन चाहि । (४७)
 तव लग्गि ताह^१ टलि^२ काल जाहि^३ ॥ (४८)
 ये*^१ आसमुद्द^२ नृप करहि^३ सेव । (४९)
 उच्चरहु^१ कामु सो करहु^२ देव ॥ (५०)
 सोवन्न^१ प्रतिमा^२ प्रथीराज वांन^३ । (५१)
 थापउ*^१ जु^२ पोलि जिम दरव्वान^३ ॥ (५२)
 सइंवरह*^१ सग^२ अरु जग्गु^३ काज । (५३)
 विहु जन^१ बोलि*^२ दिन धरहु^३ आज ॥ (५४)
 मत्रीनु राउ^१ परबोधिआ^२ जांम । (५५)
 घुम्मिआ^१ वार^२ नीसान ताम ॥ (५६)
 सुनि सइनि^१ वधिअ^२ बदनवार^३ । (५७)

कटहि त^१ हेम ग्रहि ग्रहि^२ सोनार^३ ॥ (५८)
 भूपन सुदान^१ सुग समि आचार । (५९)
 आनंद इद^१ सम कियु^{*२} विचार ॥ (६०)
 धवलेह^१ धाम^२ देवर^३ सुचीय^४ । (६१)
 तमु^१ हरहि^{*२} कलस कल विब^३ लीय^४ ॥ (६२)
 धज बंधन^{*१} सोम^२ जनु^३ मधु वल्लीय^४ । (६३)
 मनु सज्जिआ^१ वंभ केलास वीय ॥^३ (६४)

अर्थ—(१) प्रभु पंगराज (कन्नौजराज) ने राजसूय यज्ञ का (२) समारम्भ राग (अनुराग) पूर्वक किया । (३) सिंधु (समुद्र) के आस-पास [तक] सब राजाओं को उसने जीता (४) [और] उन्हें इस प्रकार अपने अधीन कर लिया [जैसे उसने कठ में मोतियों का हार डाल लिया हो । (५) [किन्तु] यागिनीपुर (दिल्ली) के राजा (पृथ्वीराज) के सम्बन्ध में यह सुन कर उसको खेद हुआ (६) कि वह इस माला में अभिन्न रूप से नहीं आ रहा था । (७) तब [उसने] हृदय में रुष्ट हो कर दूत भेजे, (८) [यह सोचते हुए कि] यदि वह (पृथ्वीराज) उसकी सेवा करने में असमर्थ था तो वह किस प्रकार भूमि का खा (भोग ?) रहा था । (९) तब [वे दूत कन्नौजराज के] बन्धुओं के समेत और सामन्तों के साथ (१०) [पृथ्वीराज के] दरबार में आ उतरे । (११) उनसे पृथ्वीराज वचन नहीं बोला, (१२) वह सिंह गुरुजनों को देख कर सिकुड़ गया (सकोच में पड़ गया) । (१३) [यह देखकर] उसके एक गुरु (पूज्य) गोविन्द राज ने कहा, (१४) “कलियुग में आज कौन यज्ञ कर रहा है ? (१५) कहते हैं कि सतयुग में राजा बलि ने [यज्ञ] किया था (१६) और उन्होंने कीर्त्ति के लिए [वामन को] तीनों लोक दे दिए थे; (१७) त्रेता [युग] में धृष्टकेतु (राम) ने जो विशेषता पूर्वक किया था (१८) [उसका कारण यह था कि उनके] कोट (नगर) पर कुवेर ने भावपूर्वक [कोष को] वर्षा की थी; (१९) सुना जाता है कि द्वापर युग में धर्मपुत्र (युधिष्ठिर) [यज्ञ करके] धन्य हुए, (२०) [किन्तु] उनके सहायक वीर पार्थ (अर्जुन) तथा हरि (कृष्ण) थे । (२१) कलि में [राजसूय] यज्ञ करने के योग्य कौन है ? (२२) [यदि वह] बिगड़ गया (विधिपूर्वक समाप्त न हो सका) तो लोग बहुत प्रकार से हँसेंगे । (२३) तुम्हें दल (सेना) और द्रव्य का झूठा गर्व है, (२४) तभी तुम देवताओं के समान बोल बोल रहे हो । (२५) तुम जानते (समझते) हो कि क्षत्रिय कोई नहीं [रह गया] है, (२६) [किन्तु] पृथ्वी निर्वीर कभी नहीं होती है । (२७) कालिन्दी कूल पर [कुरु] जागल में हमारा निवास है, (२८) जयचन्द राज को हम मूल (प्रमुख) नहीं मानते हैं, (२९) हम तो आदेश योगिनीपुरेश्वर (दिल्ली नरेश) का जानते (मानते) हैं—(३०) उस पृथ्वी, नरेश (पृथ्वीराज) का जो जरासंध के [पुराण-प्रसिद्ध] वश का है, (३१) जिसने तीन बार शाह [शहाबुद्दीन] को बन्दी किया और (३२) जिसने राजा (गूर्जराधिपति) भीमसेन [चौलुक्य] को गिरा कर [उसकी शक्ति को] नष्ट किया, (३३) जो शाकभरी (सोंभर) के कोप युक्त सोमेश्वर का पुत्र है (३४) और जो रूप में दानव है और धूर्तावतार है । (३५) [जब तक] उसके कंधे पर सिर है, [राजसूय] यज्ञ किस प्रकार हो सकता है ? (३६) क्या पृथ्वी पर कोई चहुआन [शेष] नहीं रहा ? (३७) सब उसको सिंह के रूप में देखते हैं, (३८) और मन में अन्य [किसी को] जगत् का भूप नहीं मानते हैं । (३९) मन्द आदर (निरादर) के कारण बसीठ उठ कर चले गए, (४०) जैसे ग्रामीण (ग्राम-प्रमुख की) सभा से बुधजन उद्वेष्टित (बंधन-मुक्त) हुए हो । (४१) [दूत] तब लौटकर कन्नौज में गए । (४२) उनका मुख इस प्रकार मलिन हो गया था मानो सन्ध्या-काल में कमल हो ।

(४३) उससे (जयचन्द से) दूर (अरुग) जब उन दूतों ने [वे] वचन (वाक्य) कहे, (४४) तो [जयचन्द ने] अत्यन्त रोपयुक्त होकर नेत्र लाल कर लिए। (४५) तब उसके प्रधान (अमान्य) ने यह मन्त्र कहा, (४६) “हे कन्नौजनाथ, अब आप यज्ञ करे, (४७) [क्यों कि] जब तक आप चहु आन को पकड़ने की प्रतीक्षा करते रहेंगे, (४८) तब तक उसका (यज्ञ का) समय टल जायगा। (४९) समुद्रपर्यन्त के ये राजा आपकी सेवा कर रहे हैं, जो काम आप वह कहे, हे देव, ये करे। (५१) पृथ्वीराज के वर्ण (आकार-प्रकार) की सुवर्ण की प्रतिमा (५२) प्रतौली द्वार पर स्थापित कर दे— जैसे वह दरवान (द्वारपाल) हो। (५३) साथ-साथ स्वध्वर भी हो और यज्ञ-कार्य भी, (५४) [इसके लिए] विद्वानों को बुला कर आज दिन निर्धारित करे।” (५५) जब मंत्रियों ने राजा (कन्नौजराज) को [इस प्रकार] समझाया, (५६) तब राजद्वार पर निशान (धौसा) घूमा (बजा)। (५७) [इस निशान के शब्द को] सुनकर बन्दनवार बंधे गए, (५८) और घर घर सुनार हेम (सुवर्ण) काटने [और आभूषणादि बनाने] लगे। (५९) राजा आभूषणों का दान और देव-तुल्य आचरण करने लगा, (६०) और आनन्दित होकर उसने इन्द्र के समान विचार किया (अपने को इन्द्र के समान सम्झा)।

(६१) धाम (गृह) धवले (सफेदी से पोते) गए, और देवालयों की सफाई की गई, (६२) उनके सुंदर कलश [सूर्य तथा चन्द्र का] बिम्ब धारण करके अन्धकार का हरण करने लगे। (६३) नगरी खजाओं [और बन्दनवारादि] के बन्धनों से ऐसी लगने लगी मानो मधु वसित (मधु दैत्य का निवास—मधुपुरी) हो, (६४) अथवा मानो ब्रह्मा ने दूसरे कैलास का साज किया हो।

पाठांतर— * चिह्नित शब्द सशोधित पाकठ हैं।

X चिह्नित शब्द धा में नहीं हैं।

X चिह्नित शब्द अ में नहीं हैं।

— चिह्नित चरण उ. स में नहीं हैं।

(१) १. फ. पौहु। २. धा. द. राय, ना. स. राव, ना. अ. फ. राइ। ३. धा. मो. राजसुअ। ४. मो. जगु (=जग्गु), अ. जग्गि, फ. जग्ग, ना. जग्ग्य।

(२) १. अ. अग्ग, धा. मो. द. फ. रग। २. मो. मूकउ, अ. फ. कीनौ (<कीनउ)। ३. मो. तुरगु, धा. सुरंग (=सुरग्ग), फ. सुरगु, ना. सुजग्ग, द. सुचग, उ. स. अचग्ग।

(३) १. धा. अ. फ. ना. जित्तिया, मो. जीतीआ, उ. स. जित्तिए। २. धा. राय, अ. फ. राइ, स. राज।

(३) मो. आर, अ. फ. शरु।

(४) १. धा. मल्लिया, उ. स. मल्लए, द. मेल्हिया। २. धा. कच। ३. उ. स. जनु। ४. धा. मो. प्रोत्तिहार, फ. मुत्तियहार।

(५) १. फ. युगिन पुरस, अ. जुग्गिनि पुरैस, ना. द. उ. स. जुग्गिनिय (जुग्गिनी, -ना.) पुरस—२. मो. मयु—धा. उ. स. भयौ।

(६) १. मो. आवि (=आवइ), अ. ना. आवै, द. उ. स. आवहि। २. मो. मानल मोह मुशि, फ. माल माझहि, द. माल मझहि, ना. माल मुझइ, उ. स. माल मझ झह।

(७) १. मो. मोकले, शेष में ‘मुकले’। २. मो. ही, ना. तह, उ. स. तिन।

(८) १. उ. स. सेस। २. मो. किमि।

(९) १. ना. बंधौ, उ. स. बधो। २. ना. सुमत। ३. मो. तथ्य।

(१०) १. मो. किउत्तगरि, ना. उत्तइ, धा. उ. स. द. उत्तरहि। २. मो. आइ, फ. अग्र। ३. मो. तिथ्य, उ. स. अथ्य। ४. ना. द. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :—

सुनि दूत चलीय दिछीय थान। आजानु बाहु जह चाहुवान।

पहुच्यौ स जाइ दिछीय ताम। गुदरीय वत्त जैचइ नाम।

हुजूर बोलि पट्टाइ राज। किहि आए इत सो जपि कान।

तव दूत कही दिछी नरेस। आइस्स जंपि जैचइ एसु।

राजसू जग्य आरभ कीन । दग दिगिन भूष फुरमान दीन ।

छिति छत्र बध आप सु सन्ब । तुमचलदुर्बेगिनहो विरसुअब्ब ।

फुरमान दीन चहुवान तोहि । कर छर्वाव दन्वि दरवान हाहि ।

(११) १. धा. बोल्यो, मो. बोलु (=बोलउ), अ. फ. बुल्यौ, ना. द. बुल्यौ, उ. स. बुल। २. ना. बन। ३. धा. अ. फ. ना. प्रथिराज ताहि, उ. स. प्रथिराज ताह ।

(१२) १. मो. सकुरि, धा. सकरिउ, अ. फ. सकल्यो, ना. द. सकरयौ, उ. स. मकरै । २. धा. सिध । ३. धा. गुरजन विचाहि, मो. अ. फ. ना. गुरजननि वाहि (<चाहि) । अ. पुरन्ननि च्याहि, फ. पुरजनन वाहि ।

(१३) १. मो. उचरौ (<उचरउ), धा. उच्चरइ, अ. फ. उच्चरिय, द. उच्चैर, ना. उच्चरयौ, उ. स. उच्चरे । २. मो. गुरुअ, धा. गुरु । ना. गरुव धा. ३. । अ. फ. ना. गोविंद, मो. गौयद ।

(१४) १. धा. माहि, अ. फ. मध्य, ना. मद्धि । २. फ. जाय, ना. जाय । ३. अ. फ. ना. उ. स. करै, द. करहि ।

(१५) १. धा. अ. फ. सति जुग, मो. शत (=सत) जगु । २. धा. कहइ, मो. काहा, ना. अ. कहिहि, फ. उ. स. कहहि । ३. अ. फ. राज, ना. उ. स. राय । ४. धा. अ. ना. द. उ. स. कीन, फ. कीनु ।

(१६) १. मो. तिनि, धा. अ. फ. ना. द. उ. स. तिहि । २. धा. त्रलोक्य ना. अ. फ. त्रयलोक, उ. स. चिहुंलोक । ३. धा. अ. फ. ना. द. दीन ।

(१७) १. मो. त्रता । २. मो. य (=ज), धा. द. उ. स. सु, अ. फ. तु, ना. जु । ३. मो. कीहन, अ. फ. किन्ह । ४. मो. रघुमद साइ, धा. अ. फ. रघुनद राइ, उ. स. रघु वस राइ ।

(१८) १. धा. कोप, अ. फ. कोपि, ना. द. उ. स. कनक । २. मो. वरिष [=वरिषउ], धा. अ. वरष्यो, ना. उ. स. वरष्यौ, फ. वरष्यौ । ३. अ. सभाइ, ना. उ. स. सुआइ ।

(१९) १. मो. धन, ना. उ. स. धर, फ. धन्य । २. मो. धर्म पुत्र, ना. धर्म पुत्त, अ. फ. धम्म पूत, द. उ. स. धर्म पुत्र । ३. फ. द्वापरि, ना. द्वापुर । ४. मो. सुणाय, धा. सुभाइ, ना. द. अ. फ. उ. स. सुनाइ ।

(२०) १. फ. पुब्ब । २. धा. अरि । ३. ना. इति, अ. अरि, फ. इर । ४. मो. सहाय, फ. मराइ ।

(२१) १. धा. माहि, मो. मक्षि, ना. मध्य । २. फ. जग्यौ, ना. जग्य । ३. फ. करनु ।

(२२) १. धा. विग्गरे जग्गु बहु, मो. विगरि (=विगरइ) तु बहु विधि, अ. विग्गरइ बहुत विधि, फ. विग्गरइ बौह विधि, ना. विग्गरहि बहुत विधि । ३. धा. ना. हसहि, मो. हमि (=हसइ) ।

(२३) १. मो. मद, उ. स. दर्ब, द. ना. द्रव्व । २. ना. ग्रव्व, उ. स. गर्ब । ३. मो. तुन्ह, धा. अ. फ. उ. स. द. तुम । ४. मो. वय प्रमान ।

(२४) १. मो. बोलइ, फ. बोलहि, ना. बुल्लइ । २. मो. त बोल देव, धा. त बोल देवन, फ. ति बोल देउन, ना. त बुल्ल देउन ।

(२५) १. धा. तुम जाणहु, मो. तुम्ह जानु (=जानउ), अ. तुम जानुं (=जानउ), फ. तुम जानुह, उ. स. जानौब तुम्ह, द. ना. तुम्ह (तुम-ना.) जानहु । २. धा. छत्रिय है न, अ. तही क्षत्रिय है न, फ. क्षत्रिय है न, ना. छित छत्री न, उ. स. षत्री न ।

(२६) १. अ. फ. निब्बीर, ना. नृब्बीर, शेष में 'निरबीर' । २. धा. पुहवि, मो. पुहुमि, फ. पुहुवि, अ. ना. उ. स. पुहमि । ३. फ. कब हौ ।

(२७) १. मो. हम जंगली, धा. हम जंगलिह, ना. उ. स. अ. फ. जंगलह, द. जंगलहि । २. द. कालिद्रि, ना. उ. स. कालिद । ३. मो. कुल ।

(२८) १. ना. उ. स. जानै । २. धा. अ. फ. ना. उ. स. राज, द. राय ।

(२९) १. मो. जानइ, धा. ना. उ. स. जानहि । २. मो. ना. उ. स. त देस, अ. त एक, फ. तु एक । ३. धा. योगिन, अ. फ. जुगिनि, ना. जुगनि, उ. स. जोगिन ।

(३०) १. मो. जुरि इंदु वशि, धा. सुर इंदु वसु, अ. फ. जरासिध वस, द. जुरा इंद वंस, ना. सब मुकट रा, उ. स. आनछ वंस । २. धा. प्रियिबी, अ. प्रिथी, फ. प्रथी, ना. पित्था, उ. स. प्रस्थिय ।

(३१) १. मो. तिहु वारि, धा. तिहु वारि, अ. फ. तिहुं वार (वार-फ.), ना. त्रय वार, द. उ. स. कै वार । २. धा. ना. बंधियो, उ. स. बंधयौ । ३. मो. जेन, अ. फ. जेनि ।

(३२) १. धा भजियो, उ. स भजिय सु ॥ २ मा झडि, वा भडि, द ना उ स. भिरि, अ. ति, फ तिहा । ३. वा मो. भीमसेन, अ फ. भीमसेनि ।

(३३) १. वा अ फ द ना उ स सभरि, मो सिभरि (=सइभरि) । २ अ फ सुदेस, ना नरेस । ३ मो द उ. स. पूत ।

(३४) १ म दामीति, धा दानवत, अ. रु दानवति, ना उ स दामित्त, द दामत । २ धा. मो. अ फ. द. उ स रूप । ३ मो. धूत, उ स भूत ।

(३५) १ मो तिह कध, धा तिहि कधु, अ. तिहि कधि, फ. ना स. द तिहि कध । २. अ. फ. किमि, ना. क्युं । ३. मो. जग्य, धा जग्ग, ना. जपे ।

(३६) १ मो. जु प्रथमी, धा पिरथी, अ. प्रियमी, फ. प्रथा, उ स जो प्रथिय, द जौ प्रथी, ना ज्यु प्रथिमीव । २. ना नहि ।

(३७) १ मो. देखइ सभा तेह, धा. दिष्यति सब्व नर, अ दिष्यहि सब्व तह, ना. दिष्यीय सभा तिहि, द. दिष्य सु सभ्भ तिहि, उ स देखी सु सभा तिन, फ. दिष्यहि सभ्भ भर । २. मो. मधि ।

(३८) १ धा. मो जग्ग, अ फ जग्गि, ना उ म. जग्य । २. धा. ते आन, द. मन अन्य, अ मनि आन, ना. फ मन आन, उ म मन अन्य ।

(३९) १ मो उठि गुयु [=गुड्य], धा ना उठिग, अ फ उठि गयौ, उ स उठि चलि । २ मो वशिठि (=वसिठि) ।

(४०) १. धा गामिनीय भरि, मो जिमि गमिनि सभा, ना. जिमि ग्रामीन सभा, अ. फ. गामेनी सभा, उ. म. ग्रामिनी सभा, द ग्रामिन सभा । २ मो वूजीन, अ फ. बुधिजन । ३ मो. उठि, धा कविठ, मा. वसीठ, द. उ. स बईठ ।

(४१) १. धा. दूत, अ. फ सब्व, उ. स. तवे । २ धा. मांझ ।

(४२) १. धा भयो मिलिन, ना भौ मिलिन, अ. ए मिलिन, फ भय मिलिन, द. उ स भय मिलिन । २. वा अ. फ. कमल । ३. धा जिमि सुकल, अ फ. जिमि सकिलि, ना उ स जनु कमल । ४ वा सांझ ।

(४३) १. धा. द. तिन दूत जाहि, मो. तिनि दूर दूत जि (=जइ), अ. फ तिहि दुरित दूत, उ. स. तिन दूत पग, ना दिखि दूत दूरि । २. धा. ऐ कहिय, अ. फ एकहि, द. तह कहिय, ना कहि गय, उ. स. अग कहिय ।

(४४) १. धा कियो, अ फ कियै, उ. स. कीन, ना. रत । २ धा. रक्तांत, अ फ. रक्ते, ना. रंगति, उ. स. रग तेत ।

(४५) १. धा. बोलइ, अ. फ. बुल्यो, ना. द. उ स. बुल्यौ ।

(४६) १ धा माथ । २ ना. द. उ स. जग्य । ३ ना द उ स. में यहाँ और है (स. पाठ) :—

बोल सुमत्र मंत्री प्रधान । उठरन जग्य कलिजुग पान ।

बालुका राइ बोल्यो हकारि । साधन सुजग्य बहु जुद्ध सार ।

पुरसान पान बदेति मीर । सो भाग दसम अप्पे सरीर ।

पेस जु सज्जि चौसठि हजार । अप्पे ति मेछ पहु पग बार ।

नीशान बार बज्जेति अग । बद्धी अवाज दिसि दिसि अनग ।

षोड बाद बालुका राज । रषिय जग्य को रहै साज ॥

(४७) १. मो नवि । २. फ लग्ग, अ. जग्गि । ३. मो. गिहहि, वा अ फ. गहहि, ना. गहै, द. उ स गहौ ।

(४८) १. धा अ. फ तहा, ना. उ स. द. ताहि । २. धा अ. फ ना उ. स द टरि । ३. मा. जाय ।

(४९) १ मो जे वा. न. उ स द ए । २ धा. आसमुह, मो द उ. स आसमद (आसमद—मो) फ आसुमह, ना. आसमुह । ३ धा. करति ।

(५०) १ धा उच्चरहि, मो अ. फ उच्चरहु, उ उचरेहि । २ मो करहु, ना द उ. स. होइ ।

(५१) १. धा. ना सोवन्न, मो. सोवृन, अ. फ. सोवनी, द. सोवर्ण । २ मो. अ फ. प्रमिमा, धा ना. उ. स प्रतिम । ३ धा. फ ना. बानि, उ. स. जान ।

- (५२) १. धा. थार्णहित, अ. थप्पहुति, फ. थप्पहति, ना. रष्पहित । २. धा. पौर जिम दारवानि, अ. फ. पौरि करि दारवान, ना. पौरि जनु दारवान, द. डरवान वान, उ. म. दरवार वानि ।
- (५३) १. मो. सवरह < सिवरह=मडवरह) मंग, वा. मयवर मंग, अ. फ. स्वयवर मंग (ससु-फ.), ना. सवरह मंग, उ. म. मवर मजोग, द. सवर मजोगि । २. मो. आ जग्य, वा. अरु जग्यु ।
- (५४) १. धा. अ. फ. विदवज्जन, द. उ. स. बुव जनन, ना. बुध जननि । २. मो. बोल (< बोलि), धा. बुलि । ३. फ. धरौह ।
- (५५) मो. ना. उ. स. मत्रीन राउ, वा. मत्रीनु राय, अ. फ. मत्रीनि राज, उ. म. मत्रान राव । २. ना. पर मोधि ।
- (५६) १. धा. धूनिआ, मो. धूमिआ, अ. धुम्मिया, उ. स. धुम्मेस । २. ना. अ. वीर, फ. वारु ।
- (५७) १. मो. सुनिसह, अ. फ. सुनि सहन । २. मो. बदोअ, गौ. बरी । ३. धा. बदवार, ना. द. बदन तिवार, उ. स. बदरनिवार ।
- (५८) १. मो. कटिहित, अ. फ. कट्टिहिंसु, द. कट्टिहि, ना. कट्टिने, उ. स. काटन । २. ना. गृहि गृहि, अ. फ. गृह गृह, उ. म. ग्रह ग्रह । ३. धा. अ. फ. उ. सुनार, स. सुतार ।
- (५९) १. धा. भूषम सुदाम, अ. भूषनह दान, फ. भूषनहि दान ।
- (६०) १. धा. अ. ना. इद्र, मो. इद, फ. यद । २. धा. सम किउ, मो. ना. सम कीय, अ. फ. सम किय, उ. स. सुर सम ।
- (६१) १. धा. ववलेहि । २. वा. अ. वम्म । ३. ना. उ. म. देवल । ४. मो. सवाय [सवीय], छा. सुचाय, अ. फ. सुबीय [सुचीय], ना. द. सुचीव ।
- (६२) १. वा. तुम्ह, मो. तामु, ना. तुम । २. उ. स. हरन । ३. मो. कलव्यब लीयं, धा. अ. फ. कलबिव लीय, ना. रविव वीव, द. रवि बिव वीय, उ. स. रवि ब्यब वीय ।
- (६३) १. धा. गमतु, अ. मगनि फ. मगनु, मो. वधन [< बधन] । २. धा. रापि, ना. द. रोर, फ. सोभित, मो. जनु, । ३. धा. अ. क. मनु, फ. तम । ४. धा. अ. मध वल्लीय, फ. मवल्लीय, मो. मधु, वछाय [वल्लीय], ना. द. उ. स. मधु वल्लीय, फ. ववल्लीय ।
- (६४) धा. अ. फ. सज्जिया, ना. जनु रच्यौ, उ. स. जनु रचिय । २. ना. ब्रह्म । ३. ना. द. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :

एक बार संजोगीय सजिन पत्ति । मुसकाइ मंद पर कहीय बत्ति ।

आचिज्ज एक सधि उरह अत्ति । बइलीय विवधि मुहि मन कि गत्ति ।

टिप्पणी—(१) पडु < प्रभु । (२) रग < राग । (३) आर < आरओ < आरतस=समीप में, पास में । (४) मझ < मध्य । (५) मोक्कल [दे०]=भोजना, प्रेषित करना । (६) तथ्य < तत्र=वहाँ, तब । (७) वयण < वचन । (८) संकुर < सकुड < संकुट=सिकुड़ना । (९) कित्ति < कीर्ति । (१०) साइ < स+अति=विशेषता के साथ । (११) पथ्य < पार्थ । (१२) दव्व < द्रव्य । गव्व < गर्व । (१३) वित्री < क्षत्रिय । (१४) निव्वीर < निर्वीर । पुहवि < पृथ्वी । (१५) पुहुमी < पृथ्वी । (१६) झड < शब्द=गिराना । (१७) सइभरि < शाकंभरी । (१८) धुत्त < धूर्त । (१९) अन्न < अन्य । (२०) वसिष्ठ < वशिष्ठ=दूत । (२१) गामिनी < ग्रामणी=गाँव का मुखिया । उविठु < उद्वेष्टित=बंधन में मुक्त । (२२) जइ < यदा=जब । (२३) रत्ते < रक्त=लाल । (२४) चाह < वाञ्छ ?=अपेक्षा करना । (२५) सोन्न < स्वर्ण । वान < वर्ण । (२६) पोलि < प्रतोली=मुख्य द्वार । (२७) सैवर < स्वयवर । (२८) विहुजन < विद्वज्जन । (२९) वार < द्वार । (३०) मड < शब्द । (३१) देवर < देवालय । (३२) ब्यंब < बिंब । (३३) घज < ध्वजा । मगन < मग्न । मधुवल्लीय < मधुवसित=मधु दैत्य की बस्ती (मधुपुरी) । (३४) बंभ < ब्रह्मन् । बीय < द्वितीय ।

[४]

रासा—जव^१ अंकुर^२ करि^३ पानि^४ चरावति^५ वच्छ मृगु ।^६ (१)

मनु मानिनि^१ मिस^२ इंदु^३ ध्यानंदइ^४ देषि दृगु^५ । (२)

सहि * सहचरिति^१* चरत्त*^२ परसपर* वत्तु, किञ्च । (३)
 सुभ^१ संजोगि^२ संजोग+^३ जानुह^४ मनमथ्य किञ्च^५ ॥^६ (४)

अर्थ—(१) [संयोगिता] यवाङ्करो को हाथ में [ले] कर मृग-वत्सो (शावको) को चरा रही थी । (२) [वह ऐसी लग रही थी] मानो उस मानिनी के मिस इदु ही [मृगो को] नेत्रों से देखकर आनन्दित हो रहा हो । (३) उसकी सखियाँ और सहचरियाँ [उसके साथ] चलते हुए परस्पर बातें कर रहीं थी कि (४) शुभा संयोगिता के संयोग [विवाह] के लिए [विधाता ने] मानो मनमथ (कामदेव) को ही [निर्मित] किया है ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

X चिह्नित शब्द द. में नहीं है ।

+ चिह्नित शब्द मो. में नहीं है ।

(१) फ. खोट जव । २ मो. अगुलीय, ना. अकुरि । ३. मो. कर । ४ मो. ना. द. फ. पान । ५. मो. चरावत, धा. चरावति, अ चराव, फ. चरावैइ ।

(२) १. मो. फ. ना. स. माननि । २. फ. ना. मिसि । ३. ना. इद । ४. मो. आनदी (<आनदि=आनदइ), धा. आनदइ, ना. अनदिय, द. अनुद, अ अनदे, फ. अनदै । ५. धा. खगु, मो. द्रग ।

(३) १. मो. सिहसिह वरती (<चरती), धा. अ फ. द. उ. सहचरी चरित, ना. सहचरि चरिय । २. मो. वरतु (<चरतु), धा. ना. अ. फ. द. उ. चरित्त ।

(४) १. धा. मो. मनु, द. मनुइ । २ धा. मो. सजोग, द. सजोइ । ३. ना. फ. संजोगि । ४ मो. जानुह । धा. द. मनहु, अ. मनौ, फ. मुनौ, ना. मनु । ५. मो. मनुमथ कीअ, ना. मनमथ कीय, द. मनमथ लिय,

६. स. में इस छंद का पाठ है :

अरिह—अंकुर पान चरावत वच्छं । मनो माननि मिस दिग्धि अनुच्छं ।

सहचरि चरित परसपर बत्तय । मनो सजोइ संजोग मनमथ्य ॥

टिप्पणी—(१) वच्छ < वत्स । (२) सही < सखी । चरत्त=चलते (गमन करते) हुए ।

[५]

पद्धड़ी—राजनि अनेअ^१ पुत्तिय ति^२ संगि^३ । (१)

षट वीअ^१ बरिस^२ नव सत्त अंगि^३ ॥ (२)

केवि*^१ जुवती जुवजन संगह^२ सुरंग । (३)

मिलि पिलहि^१ भूप भामिनि^२ अनंग ॥ (४)

संजोगि^१ संग जुवती प्रवीन । (५)

आनंद गान तिन^१ कंठ कीन ॥ (६)

भुव बंक^१ संकु*^२ अति सम^३ सषीन^४ । X (७)

अध चषन^१ लिषन छिति नषन^२ कीन ॥ X (८)

कोमल कुरंगि^१ किचित^२ किसोर^३ । (९)

अधरनु^१ अदिठ अच्छइ^२ तमोर^३ ॥ (१०)

सुभ सरल बाल^१ बलिध^२ स^३ थोर^४ । (११)
 अकुरहि^१ मनहु^२ मनमथ्य जोर^३ ॥ (१२)
 जुवजन^१ जुवत्ति^२ रचि कहइ^{३*} बात^४ । (१३)
 सवननु^१ सिराति^{२*} नयननु अघात^३ ॥ (१४)
 मुक्कइ^{१*} न लीह^२ लज्जा सु रत्त । (१५)
 निधनिय^१ धनु हु जानु गहइ^{२*} हथ^३ ॥ (१६)
 अधरत्त पत्त^१ पल्लव सुवास । (१७)
 मजरिय तिलक पजरिअ^१ पास ॥ (१८)
 अलि अलक^१ कंठ कलयट मत्त^२ । (१९)
 सजोगि^१ भोग^२ वरु भयु^३ वसत ॥^४ (२०)
 मधुलेहिहि^{१*} मत्त^२ रिदुगजवत्त^३ ।^४ (२१)
 परसप्पर पीवत पियनि^१ कंत^२ ॥ (२२)
 लुट्टहि त भमर^१ सुग्गध^२ वास । (२३)
 मिलि चंद कुंद फुल्लिय^१ अयास^२ ॥ (२४)
 वनि बग्ग^१ मग्ग हलि^२ अब मउर^३ । (२५)
 सिर ढरहि मनहुं^१ मनमथ्य चउंर^२ ॥ (२६)
 चलि सीत^१ मद सुग्गंध^२ वात ।^३ (२७)
 पावक्क मनहुं^१ विरहिनि निपात^२ ॥^३ (२८)
 कुहु कुहु करंति^१ कलयंठि^२ जोटि^३ । (२९)
 दल मिलइ^{१*} मनहु^२ अन अंग^३ कोटि^४ ॥ (३०)
 करि पल्लव^१ पत्त ति रत्त नील^२ । (३१)
 हलि चलहि मनहु^१ मनमथ्य पील ॥ (३२)
 कुसुमेष^१ कुसुम^२ तेन^३ धनुष साजि^४ । (३३)
 भृंगी^१ सुपंति^२ गुन गरुय^३ गाजि^४ ॥ (३४)
 संजर^{१*} सुवान सुमनाह^२ नेह^३ । (३५)
 बिहारये^१ वीर^२ जुवजननि देह^३ ॥ (३६)
 उप्पलिअ^१ कलिअ^२ चंपक सराप^३ । (३७)
 प्रज्जलिय^१ प्रगट^२ कदर्प दीप^३ ॥ (३८)
 करवत्त केत^१ केतकि सुकत्ति^२ । (३९)
 विहरंति^१ रत्त^२ वितरंति^३ छत्ति ॥ (४०)
 परिरंभ^१ अनिल कदली^२ क पान^३ । (४१)
 सिर धुनहि सरस^१ सुनि^२ जानु^३ तान ॥ (४२)

मंकुलिय काम^१ अभिराम रम्म^३ । (४३)
 नहु^१ करइ^२ * पीय^३ परदेस गम्म^४ ॥ (४४)
 फुल्लिग^१ पलास तजि पत्त रत्त^२ । (४५)
 रण रंग सिसिर^१ जित्तउ^२ वसत ॥ (४६)
 देषहि त^१ पंथ जिन कंत^२ दूरि । (४७)
 तिन^१ शक्ति^२ बोल लोल^३ जल रहिय^४ पूरि ॥ (४८)
 सजोगि^१ भोग^२ जुवती प्रवीन ।⁺ (४९)
 प्रिय^१ कंठ नट्टि^२ दुहु^३ भइ ति^४ लीन ॥⁺ (५०)

अर्थ—(१) अनेक राजाओं की पुत्रियाँ उसके संग में थीं । (२) वे बारह वर्ष की थीं, और अङ्ग (शरीर) में षोडश शृंगार किए हुए थीं । (३) सुरंग, सुन्दर) युवतियाँ तो कितनी ही थी । (४) वे भूप-भामिनियों अनंग (काम) [के खेल] [परस्पर] मिल कर खेल रही थीं । (५) सयोगिता के साथ प्रवीण युवतियाँ [भी] थीं । (६) वे कंठ से आनन्द पूर्वक गान कर रही थीं । (७) [उनकी] भौंहें वक्र शंकु (कील) [के समान] अत्यंत सम (वैषम्य रहित) और क्षीण (पतली) थीं । (८) अर्ध [निमीलित] नेत्रों से [देखती हुई] वे नखों से क्षिति (भूमि) पर लिख रही थीं । (९) कोमल कुरगियों के समान [वे युवतियाँ] किंचित् किशोर थीं । (१०) उनके अघरो पर अदृष्ट (न दिखाई पड़ने वाला) ताबूल विराजमान (रजित) था । (११) वे शुभा (कल्याण मयी), सरल बालाएँ [यौवनागमन कारण] थोड़ी पीन [लगने लगी] थीं, (१२) मानो [उनके शरीर में] मन्मथ जोर से अंकुरित हो रहा था । (१३) वे युवतियाँ [परस्पर ऐसी] बातें रच-रच कर कहती थीं (१४) कि [उनको श्रवण कर] कान शीतल होते और [उन्हे देखकर] नेत्र अघाते थे । (१५) वे लज्जा की रक्त (लाल) लेखा इस प्रकार नहीं छोड़ती थीं (१६) मानो निर्धना ने हाथ से धन पकड़ रक्खा हो । (१७) उनके अवर-पत्र सुवासित पल्लव थे, (१८) उनके तिलक [आम की] मंजरी थे, और [उनके नेत्र] उनके पास ही खंजरीट थे, (१९) उनकी अलके अलि (भ्रमर) थे, और उनका [कल] कंठ मत्त कलकंठ (कोकिल) था, (२०) [इस प्रकार] संयोगिता के गुरु स्थान की उन युवतियों का वर वसन्त हो रहा था ।

(२१) मधुलेही (भ्रमर) रितुराजवत होकर-वसन्ता गम से प्रमुदित होकर-मत्त हो रहे हैं, (२२) प्रियाएँ और कान्त परस्पर [मधु-] पान कर रहे हैं । (२३) भ्रमर सुगन्ध की सुवास लूट रहे हैं । (२४) आकाश में फूले (उदित) चन्द्रमा के साथ कुन्द भी फूल रहा है । (२५) वनों, बागों, और मार्गों में आम के बौर हिल रहे हैं, (२६) मानो मन्मथ के ऊपर चामर ढल रहे हो । (२७) शीतल, मंद और सुगंध वातचल रही है, (२८) वह बिरहियों को इस प्रकार दुःख दे रही है मानो अग्नि उनको नष्ट कर रही हो । (२९) कलकंठ (कोयल) का जोड़ा कुहू, कुहू कर रहा है, (३०) [जो ऐसा लगता है] मानो अनंग (कामदेव) के कोट में सेना मिल रही हो । (३१) [उसमें वृक्षों के रक्त और नील पत्रों के मिस] रक्त और नील (गहरे हरित) वर्ण के पत्र (पत्रावली) की रचना करके (३२) मानो मन्मथ का हाथी हिलता (झूमता) हुआ चल रहा है । (३३) मन्मथ ने कुसुमों का जो धनुष [-सा] सजा रक्खा है वही मानो उसका का कुसुमेषु (धनुष) है । (३४) भृगियों की पंक्ति ही उस धनुष का गुण (प्रत्यंचा) है जो गुरु (गम्भीर) गर्जना कर रही है । (३५) सुमनों के (से बने हुए) स्नेह संज्वर के वाणों के द्वारा (३६) वह वीर (मन्मथ) युवाजनों के देह को विदीर्ण कर रहा है । (३७) चंपक और सरीफे (?) की कलिकाएँ खिल गई हैं (३८) [जो ऐसी]

लगती है मानो] कंदर्प का दीपक प्रकट होकर प्रज्वलित हुआ हो । (३९) सुकेत करपत्र (आरा) और केतको काती हैं (४०) जा [विरहिणियों की] छाती को विदीर्ण कर रहे हैं, इस लिए रक्त विहर (निकलकर फैल) रहा है । (४१) कंदर्ग का पर्ण (पत्ता) अनिल (वायु) से परिरमन करता [हुआ ऐसा लग रहा] है (४२) मानो वह सरस तान सुन कर सिर धुन (पीट) रहा हो । (४३) दग्ध झंझाड़ भी अभिराम और रम्य हो गए हैं और (४४) प्रिय (पति) परदेश गमन नही कर रहे हैं । (४५) पलाश पत्तों का त्याग करके रक्त वर्ण का फूल उठा है, (४६) [जो ऐसा लगता है] मानो उस रण [में प्रवाहित रुधिर] का रंग हो जिसमें शिशिर पर वसन्त को विजय प्राप्त हुई है । (४७) जिनके कात दूर देशों में हैं, वे उनके आने का मार्ग देख रही हैं, (४८) उनके बोल थकित (शिथिल) हैं और उनके चंचल नेत्र जल (अश्रु) से पूरित हो रहे हैं । (४९) संयोगिता की गुरु स्थानीय प्रवीण युवतियों (५०) अपने दुःखों को नष्ट करके [अपने] पतियों के कंठ लग रही हैं ।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(÷) चिह्नित शब्द मो में नहीं है ।

× चिह्नित चरण उ. स. में नहीं है ।

+ चिह्नित चरण अ. फ. में नहीं है ।

(१) १. मो. राजनियनेअ, धा. ना राजन अनेय, अ. फ. स. राजन अनेक । २. मो. पूतीय ति, अ. फ. पुत्तिय सु, ना. द. उ. स. पुत्रीति । ३. मो. सगि, धा. अ. द. ना उ. स. संग, फ. सगु ।

(२) १. धा. खर बीय, ना. षटबीय । २. धा. बरिस, मो. ना. द. उ. स. अ. फ. बरस । ३. मो. नसतस ज्यगि, धा. नवमास अग, ना. नव मसिति, उ. स. नन लसति अग, अ. नवसत्त अग, फ. बसत्त अंगु ।

(३) १. धा. किवि (=केवि), मो अ. फ. कवि, ना. किक (=केक) द. उ. स. कै । २. धा. जुवति जुवनि संगह, मो. युवति युवजन संगह, ना. जुवति द्वादश सगह, द. उ. स. जुवति द्वादस (द्वासद-स.) संग, अ. फ. जन जुवति सगह (सगहि-फ.)

(४) १. मो. षिलिह, फ. षिलह, स. लिषहि । २. धा. हसहि भामिनि, फ. भूप भामिन, मो. ल्य (<भूप) भामिनि, ना. भूप भामिन, उ. स. भामन वनव ।

(५) १. धा. सजोग, मो. संयोग, फ. सजोगु ।

(६) १. अ. फ. तिनि ।

(७) १. अ. फ. नंक, ना. द लक । २. ना. सुम । ३. अ. सुधीन ।

(८) १. फ. चषनि । २. मो. तिषनख मछति, ना. नषन लिषि छित्त, अ. फ. लिषन (लिषिन-फ.)

छित्तिनषह (नषहि-फ.) ।

(९) १. धा. कुरगि, मो. अ. फ. ना. उ. कुरग । २. फ. किंचिति । ३. पूरे चरण का स में पाठ है : कोमल किं सोर किंचित सुरंग ।

(१०) १. मो. अधरनु, धा. अधरन, ना. अधरणि, अ. अधरनि, फ. अधरानु । २. धा. अद्रिष्ट, ना. अच्छिष्ट । ३. मो. अच्छि (=अच्छि), ना. अच्छित । ४. फ. तुमोर ।

(११) १. ना. सुरभ सारल बाल, फ. सुत सरल बार । २. धा. बलिया, मो. उ. स. बली, ना. बलीअ, द. बुलीय, अ. फ. बलया । ३. द. अ सु । ४. ना. घोर ।

(१२) १. मो. अंकुरिहि, अ. अकुरे, फ. अकुरेह । २. ना. जानु, फ. मनौ । ३. धा. कोर ।

(१३) १. ना. जुवनि, स. जुब्बन, उ. जुवनन । २. मो. जुवती । ३. मा किहि (=किह), ना. कहै, धा अ. फ. कहहि । ४. धा. वत्त ।

(१४) १. धा. सुवनननु, अ. सवनन्नि, फ. सवनन्न, मो. श्रवननु, ना. श्रवनह । २. धा. अ. फरी, स. मो. सिरवि, ना. सार । ३. धा. निकु नयन रत्त, मो. नयननु आघात, अ. फ. ना निकु नैन (नयन-ना.) रत्त ।

(१५) १. मो. मुंकि (=मुक्कि), धा मुक्कै, अ. फ. मुक्के, ना. मुक्काहि । २. धा लवसु, अ. फ. लीव, स. लोह ।

- (१६) १. धा. निरधनी, मो. निरधनीय, द. अ. फ. निधनीय । २. धा. मनो धनु गहहि, मो. धनुहु जानु गहि (नगहइ), अ. फ. मनहु धनु गहयौ, ना. मनहु धनु गहै, द. उ. स. मनहु धन गहिय । ३. धा. हत्त ।
- (१७) १. फ. धरत्त रत्त, अ. उरधर रत्त ।
- (१८) १. अ. फ. पंजरिय ।
- (१९) १. ना. अलि अलिक । २. धा. कलमत्ति मंतु, मो. कलयठ मत्त, ना. कलयठि मंत ।
- (२०) १. मो. द. ना. सजोग, फ. सजोगु । २. धा. जोग, अ. फ. सग । ३. धा. अ. भो, ना. भुव, उ. स. भुज, फ. भौ । ४. मो. ना. में इसके बाद 'बसत वर्णन' लिखा हुआ है ।
- (२१) १. मा. ना. मधुलिहिहि (मधुलेहिहि), धा. मधुलिहिहि, उ. स. मधुरेहि । २. मो. मवत्त, धा. मत्त । ३. धा. अत्त, उ. स. मत्त ।
- (२२) १. धा. पिम्म ति पियत्ति, मो. पिवत्त पिन्निहि, अ. पीवत्ति पियनि, धा. पीथात्ति पिय, उ. स. प्रेम से पियन, ना. पम्मु सोइ प्रीयणि । २. मो. कन् ।
- (२३) १. धा. लुट्टात्ति भमर, अ. लुट्टिहि तिमवर, फ. लुट्टिहि तौ भमर, ना. लुट्टिहि तिममर, उ. स. लुट्टिहि तमार । २. धा. सुम गव, मो० श्रगत, ना. सोगव ।
- (२४) १. मो. फूलीय, धा. फुलन्यउ, उ. स. फूले, अ. ना. फुल्यो, फ. फुल्यौ । २. धा. अगास, ना. अ. फ. अकास ।
- (२५) १. धा. वणि वग्ग, उ. स. वन वाग, ना. वन मग्ग । २. धा. बहु, अ. फ. अलि । ३. मो. सुर (मउर), उ. स. मोर ।
- (२६) १. धा. दरइ मनुइ, ना. दुरहि जानु, उ. स. दरत जानि, दरहि मानौ । २. मो. चुंर (रचउं=), अ. फ. उ. स. चोर, ना. चौर ।
- (२७) १. ना. सीतल, मो. ना. सो (<सु) । २. मो. ना. सोगध (<सुगंध) ।
- (२८) १. ना. मनुं (मनउ), उ. स. मनो । २. मो. विरहंनि निपात, ना. विरहनि निपात ।
- (२९) १. अ. फ. करंत । २. धा. कलयत्ति, अ. कलअठ, फ. कलअट्ट, ना. कुलयत्ति । ३. द. उ. स. जो ।
- (३०) १. मो. मिल्य, धा. अ. फ. ना. स. मिलहि । २. ना. स. जानु, उ. द. जानि, फ. मानौहु । ३. धा. अ. ना. जानंग, फ. अनगु । ४. फ. स. कोट ।
- (३१) १. धा. तरुपल्लिष, ना. तरु पत्त, उ. स. तरु पल्लव, अ. फ. तर पल्लहि । २. धा. फुल्लहि रत्त नील, ना. पल्लहि रत्तनील, स. पीत अरु रत्त नील, अ. रत्तहि रत्त नील, फ. रत्त तह रत्त तह रत्त नील ।
- (३२) १. फ. हल चलिहि मनो, ना. हलि चलिहि जानु, उ. हलि चलिहि जानि, स. हरि चलिहि जानि ।
- (३३) १. धा. कुसुमेनि, मो. कुसुमेष, फ. कुसुमेषु मो. कुसमन, फ. कुसमु । ३. मो. तेन, धा. धरि, ना. उ. स. अ. फ. नव । ४. धा. धनकि सज्जि, ना. धनक साजि, उ. स. धनुक साज, फ. धनित्त सज्ज ।
- (३४) १. मो. धा. भंगी, ना. भृंगीन, स. भंगी । २. धा. सुषत्ति, फ. सर्पत्ति । ३. धा. अ. ना. गरुव, स. गरुल, फ. गनव । ४. धा. अ. फ. गज्जि, उ. स. गाज ।
- (३५) १. मो. सर, धा. अ. फ. सज्जर (<संजर), ना. साजर । २. मो. सुअनंग, ना. द. उ. स. सोमनहु, अ. फ. सुवनाह । ३. मो. तेह ।
- (३६) १. धा. विद्रवइ, ना. बिहरे, अ. फ. बिहरे, उ. बिहारि, स. बिद्धारि । २. ना. उ. स. जानि, द. जानु । ३. मो. लुवतीनु नेह ।
- (३७) १. मो. उषलीअ, अ. फ. उषलीय, ना. उलषीय, धा. उषिलीय । २. उ. स. चलिय । ३. धा. स. द. उ. सरुप, अ. फ. ना. समीप ।
- (३८) १. मो. प्रजलीय, ना. प्रगटहि । २. अ. मनहु, फ. मनौह । ३. अ. फ. दूप, उ. रूप, स. कूप ।
- (३९) १. मो. कंत, ना. कत्त (<कंत), उ. स. द. पत्त, फ. वत्त । २. धा. केतकिय सत्त, मो. केतकी सुकत्ति (<सुकत्ति), फ. किससु सुगात, स. केतुकि सुकत्ति (<सुकत्ति), ३. केतुकि सुकत्ति, ना. केतकि सुकत्ति, अ. फ. केतुकि सुकत्ति ।
- (४०) १. मो. विहरंते, धा. उ. स. द. विहरंत, फ. बहुरंत, ना. विरहंत । २. मो. रंति (<रत्ति), द. रत्ति । ३. धा. विचुरत, अ. फ. विचुरंत, ना. विचुरंति । ४. धा. पत्त, मो. छत्ति (<छत्ति), अ. फ. छत्ति ।

(४१) १. धा. पररंभ, अ. परिभंत, फ. धरिभत । २. मो. कलि, उ. स. कदलि । ३. अ. फ. सपान, द. उ. स. क्रिपान ।

(४३) १. ना. सर, अ. सरिस । २. स. धुनि । ३. मो. ना उ. म जान, धा. अ. जानि ।

(४३) १. धा. झकगिय ज्ञाम, ना द झकलि झमूरि, स. अकुरि झमूर, अ. फ. हुकुलिय झलि । २. मो. अ. फ. रम्य, ना. रझि (< रम्य) ।

(४४) १. मो. नह, ना. मन, द. स. नन । २. मो. करि (=करइ), धा. करिहि, अ. ना. करहि, फ. करै, स. करहि । ३. ना. पाय । मो. अ. फ. गम्य, ना. गम्मि ।

(४५) १. धा. फूलिग, मो. हूलिग, अ. फ. ना. फुलिग । २. फ. पत्त पंत (< पत्त पत्त) ।

(४६) ना. ससिर । २. मो. जीवतु, धा. जित्तउ, उ. स. जीतौ, अ. फ. जीत्यो ।

(४७) १. मो. दिषेत, धा. देषहिहि, अ. फ. दिषियहि, ना. दिस्मियहित । २. अ. जिनि, ना. उ. स. जिहि । ३. मो. कथ ।

(४८) १. मो० के अतिरिक्त यह शब्द किसी में नहीं है । २. मो. थकित, धा. ना. द. उ. स. अ. फ. थकि । ३. ना. उ. स. बोलि बोलि । ४. अ. फ. रहे ।

(४९) १. धा. मो. ना. संजोग । २. धा. सगि ।

(५०) १. धा. पिय ना. पय । २. मो. लाय; धा. जठि ना. नट्ट । ३. धा. दुहना, दुइ । ४. मो. मयी, ना. उ. स. मगिअ ।

टिप्पणी—(१) अनेअ < अनेक । (२) बीय < द्वितीय । सत्त < सप्त । (३) केवि < कतिपय । (४) षिळ < षेल् । (१०) अदिठ < अदृष्ट । अच्छ < आसू=बैठना । तमोर < ताम्बूल । (११) बलिय [दे०]=पीन, मासल, स्थूल, मोटा (पाइअ सह महणवो) (१३) वत्त < वार्ता=वात । (१४) सोर < शीतल (पाइअ सह महणवो) । (१५) मुक्क < मुक्क=छोड़ना । लीह < लेखा । (१८) षंजरिअ < खंजरीट । (१९) कल्यंठ < कलकंठ=कोकिल । (२१) मधुलिहि < मधुलेहिन्=भ्रमर । (२२) पिव < प्रिय । (२३) लुट्ट < लुण्टू=लुटना । (२४) अयास < आकाश । (२५) मउर < मुकुल=वौर । मग < मार्ग । (२९) कलयठि < कलकठ=कोकिल । (३२) पीळ < पीलु=हाथी (तुल० फारसी 'फील') । (३४) गरुय < गुरु । (३५) सजर < सज्वर । (३७) उषिलिय < उत्खण्डित=खिली । (३९) करवत्त < करपत्र=आरा । (४१) पान < पर्ण । (४३) झंकुलिय=झंखाड । ज्ञाम [दे०]=दग्ध । (५०) नट्ट < नष्ट । दुइ=दुःख ।

[६]

पद्धडी—रवि जोग पुष्य^१ ससि^२ तीय थान^३ । (१)

दिन^१ धरिगु^२ देउ^३ पंचमि^४ प्रमान⁺ ॥ (२)

पर उच्छह^१ देषन^२ भयु^३ मिलान^४ । (३)

विग्रहन देस चढि चहुआन^१ ॥^x (४)

अर्थ—(१) रवि (सूर्य) जब पुष्य [नक्षत्र] के योग में हो, और शशि (चन्द्रमा) तीसरे स्थान पर हो, (२) ऐसी देव पंचमी का दिन [राजसूय के लिए] प्रमाण (प्रामाणिक रूप) कैसे निर्धारित हुआ । (३) [इधर] पर (शत्रु) का उत्साह (उत्सव) देखने के लिए [पृथ्वीराज सामन्तों का] मिलान (सम्मिलन) हुआ [जिसमें निश्चय हुआ कि] (४) विग्रह करने के लिए चहुआन (पृथ्वीराज) [शत्रु के] देश पर चढ़ाई करे ।

पाठान्तर—+ चिह्नित शब्द धा. में नहीं है ।

x उ. स. में यह छंद दो स्थानों पर आया है: स. ४८.९९-१००, तथा स. ४८.१२७ । नीचे का पाठान्तर देवतीय स्थान का है, प्रथम स्थान पर प्रकियाँ इस प्रकार हैं :

रवि जोग भोग ससि नीय धान । दिन धरधौ देव पचमि प्रमान ।
सोय जग्य ऊदीपन बाल काज । बिलसन विलास मढ्यौ ज साज ।
पर उछव दधिन दीनौ मिलान । विग्रहन देस चट्टि चाहुवान ।

सामान्य रूप से एक पाठ था. तथा दूसरा मो. के निकट प्रतीत होता है ।

(१) १. मो. भोग, फ. पुष्प । २. मो. सस्य ससि (इनमें से एक मो. का अपना पाठ तथा दूसरा पाठान्तर व्यता है), फ. सिस । २. धा. वाम ।

(२) १. ना दिनु । २. मो. धरगु, ना. उ. स. धरधौ । ३. ना. देवि । ४. ना. पचम । ५. मो. प्रयान ।

(३) १. फ. उच्छह । २. धा. देषित, अ. दिषन, फदक्षन, ना. दिष, उ. स. दिषन । ३. धा. भ, मो. मयु (मयउ), अ. फ. कौ मय, ना. मृतयो, स. कौनौ । ४. धा. मलान ।

(४) १. मो. अतिरिक्त सभी में 'चाहुवान' है ।

टिप्पणी—(१) तीय < तृतीय । धान < स्नान । (३) उच्छह < उत्साह । मिलान < मिलन ।

[७]

भुजंग—चपि रिपु सीस बिठुउ*^१ नरिदं^२ ।^३ (१)
प्रथम अरिराज^१ षंडे पुवंद^२ ॥^३ (२)
बालिकाराय^१ राजन^२ समानं^३ । (३)
गंबिया^१ एक घटि^२ चहुवान^३ ॥^४ (४)
गज्जने देसि^१ बिच्छोहि जोरी^२ । (५)
तजहि पिय^१ कंठ जिम पत्त^२ गोरी ॥ (६)
नीर नीच्चालि^१ उच्चालि मंपइ*^२ । (७)
करहि मनि मुत्ति^१ गच्छति लषइ*^२ ॥ (८)
चीर^१ सम्मीर उड्डति^२ तुटइ*^३ । (९)
मनहु^१ रितुराज द्रुमपत्त^२ छुटइ*^३ ॥ (१०)
ग्रीव^१ नग जोति रहि फूट पगइ*^२ । (११)
त चाहि^१ गिरि* सिधिर^२ द्रुम दाह लगइ*^३ ॥^४ (१२)
धूम परजालि^१ मिटि मग गजनी*^२ । (१३)
वल्हि मुष^१ तेज जनु^२ चंद रयनी^३ ॥ (१४)
बिब^१ फल जानि घन कीर धावइ^२ । (१५)
दसन मय^१ बाल वसननि छपावइ^२ ॥ (१६)
सबद सहरोस^१ साहीय* सकी^२ । (१७)
थरहरित थकि रही^१ मीन^२ लंकी ॥ (१८)
केवि^१ रटि रटि ति*^२ प्रिय प्रिय ति^३ जंपइ*^४ । (१९)
ऐम^१ रिपु रवनि प्रथीराज^२ कंपइ^३ ॥ (२०)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज के चरों (१) ने उससे कहा,] 'हे नरेन्द्र, [अब] तुम शत्रुओं के
सिर दबा उनका गर्व मिटा बैठे हो; (२) पहले [तुमने] खोखंद के शत्रु राजा को खंडित किया ।

(३) बलख का राजा (शासक) तो [तुम्हारे] समान ही [बल शाली] था, (४) [किन्तु] उसे, हे चहुवान (पृथ्वीराज), [तुमने] एक आघात में नष्ट कर दिया। (५) तुमने गजनी के देश में इस प्रकार विधोभ जुटा (कर) दिया कि (६) गौराङ्गनाएँ अपने प्रियों (पतियों) के कठ छोड़ रही हैं, जैसे [वृक्ष के] पत्तों को छोड़ देते हैं। (७) नीर (आँसू) टपका (गिरा) कर वे तीव्र चाल (गति) में घूम (चल-फिर) रही हैं। (८) उनके जाते समय मणि-मुक्ता शड़ते हुए दिखाई पड़ते हैं। (९) उनके चीर समीर (हवा) से टूट (फट) कर इस प्रकार उड़ रहे हैं, (१०) मानो ऋतुराज (वसन्त) में द्रुमों के पत्ते गिर रहे हों। (११) उनकी ग्रीवा के नगों की ज्योति प्रकृत रूप से इस प्रकार फूट रही है, (१२) जैसे गिरि-शिखरों पर द्रुमदाह (दावानल) लगी दिखाई पड़ रही हो (१३) और उसकी प्रज्वाला के घूम से गजनी के मार्ग मिट गए हों। (१४) और वे अपने मुख के तेज [की सहायता] से चल रही हैं, जैसे चन्द्र रजनी में चलता है। (१५) [उनके ओष्ठों को] बिबफल जान कर घने (बहुत से) शुक दौड़ पड़ते हैं (१६) जिनके दंशन के भय से बालाएँ उन्हें वस्त्रों से छिपा लेती हैं। (१७) वे रोषपूर्ण शब्द करती हुई साधिक—सविशेष—शक्ति हैं, (१८) वे क्षीण कटि वाली स्त्रियाँ [भय से] थरती हुई थक गई हैं। (१९) कोई-कोई तो रटती-रटती 'प्रिय' 'प्रिय' कह रही है। (२०) इस प्रकार रिपु-रमणियों, हे पृथ्वीराज, [तुम्हारे भय से] काँप रही हैं।”

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

× चिह्नित शब्द मो. में नहीं हैं।

(१) १. मो. बिठु (=बिठुड), धा. बैठो, अ. फ. बैठ्यो। ना. बैठौ। २. धा. ना. द. अ. फ. नरिंद मो. नरिंद। (<नरिंद) ३. उ. स. में चरण का पाठ है : जिनें साजते घूम घूमें नरिंद।

(२) १. धा. ना. उ. स. द. अ. फ. जूह। २. धा. अ. फ. पिषंद, ना. द. पुषद। ३. उ. स. में चरण का पाठ है : लगी घूम आयास सोभं जिचंदं। और अतिरिक्त है :

तुरी वारज राय षोषंद वहं। तहाँ बालु का राय सग्राम सह।

(३) १. धा. बालुकाराज, ना. चालुकाराज, उ. स. तहाँ बालुकाय, फ. चालुकाराज, द. अ. बालुकाराज। २. धा. दाने, द. उ. स. दानै, ना. दानव, अ. फ. दानौ। ३. धा. प्रमान, फ. समानु, उ. स. सुमानै।

(४) १. धा. गजिया (<गंजिया), फ. गजया; उ. स. तिने भजिया, ना. भजिया। २. धा. एक घर, ना. केक घट, उ. स. भूप घटि, फ. इक घटि, अ. इक घट। ३. धा. द. ना. अ. चाहुवानु, फ. चाहुवान, उ. स. चहुवाने। ४. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :—

षगं षग्ग षट्टे सुवक्का हलाई। तहाँ पारसाराव सूरंगु राई।
छतेरी छनेरी भडैरी बरारी। तिनं चद चदेरि नैरी निहारी।
जिने तारिया कालपी कन्हाराय। जिने मडिया जुद्ध प्रथिराज सायं।
जिने आल पिंडाह रा चक्क चक्के। बरं रोरिया दाइ सग्राम सक्के।
जिने जग्ग जारे धरे गग पारे। जिने संभरी थाट तडे निवारे।
जिने भंजियं भीमपुर भीम भजे। जिने भजिया जाय गोधग हजे।
जिने भंजिय जाय प्रथम सुकासी। भए सूर सामत उत्त उदासी।
जिने भंजियं जाय मेवात ग्रम। जिने बर सों सेन सज्जे समान।
जिने भंजियं भीम सोमेसभारी। जिने राजधानी सबे पाय पारी।
जिने आलगी जोग बंडे षषेली। जिने माथुरी मोह मोहत लेली।
जिसोरी पुरं रोरियारा जगाय।

किर्यं दीन बवारि प्रथिराज सेरी। षष षीत्र षंगार बल्लेच मोरी।

तहाँ ग्रीव। बंवारि अग्रोव फूटी। तहाँ गोधनं धेन चौनान लूटी।

(५) १. मो. याज्जे देसि, धा. गज्जे देस, ना. जिनें गज्जनै देस, उ. स. जिने देस षट्टेर, द. संजमो देस,

अ. फ. गज्जन देसरि । २. धा अ फ. द. विच्छोह जोरी, ना. विच्छोहि जोरी, उ. स. जोरी विछोरी ।

(६) १. धा. तिसह पिय, ना. जिने पाय, द. वज्जि पिय, स. ते तजे पो । २. धा. कठ फत्तहित, ना. कंठ पत्तेनि, द. कंठ पत्तेति, उ. स. पीय कठ सु, अ. फ. कठ एकत ।

(७) १. धा. नीर उच्चाछ, उ. स. तिन तीर नह चाल, फ. नारखी चाल, अ. नोरवा चाल । २. मो. उचालि जपि (= जंपइ), धा. उच्चाळु जंखे, ना. उच्चाळ झंषे, अ. फ. उच्चाळ हुषे, उ. स. इचाल झखे, द. उच्चाळ झंष ।

(८) १. धा. हरहि जन मुत्ति, मो. हरहि मनि भूति, उ. स. तहा झपरहि जेम, ना. हरहि मनु मुत्ति, अ. हरहि मनि मुत्ति, फ. रहसि मनु मुत्ति । २. मा. गछति लषि (= लषइ), धा. ना. द. अ. फ. गच्छति लख्खे (लख्खे—अ. फ. ना.), उ. म. गज झप लख्खे ।

(९) मो. वीर (< चीर), उ. स. तिन् चीर । २. उ. स. झारत । ३. मो. तुटे (< तुटि = तुटइ), धा. तुट, अ. फ. ना. डुट्टे ।

(१०) १. धा. मनुह, उ. स. मनो । २. धा. रितुराज द्रम पाट, फ. रतिराज द्रम पत्र, ना. रतिराज दुम पत्त, उ. स. रति रज (राज-उ.) तर पत्त । ३. मो. छुटे (< छुटि = छुटइ ?) धा. अ. फ. ना. छुट्टे ।

(११) १. उ. स. तिन ग्रीव, द. ग्रीव नव । २. मो. फूट फो (< पगि=पगइ) धा. फूट फुब्बइ, ना. छुट्टि जम्बो, द. फुटि नगे, फ. फूट पछै ।

(१२) १. धा. तिचहि, फ. मनह, ना. तव, द. तचि, उ. स. तमचे । २. धा. सिर सिषर, ना. सिर सिषरा, फ. गिरि सिषरि । ३. मो. द्रम दाह लो (< ल ग=लगइ), धा. दव दाव गव्वइ, उ. स. जम दाह लम्बो, अ. फ. दव दाह लग्गै, द. द्रम दाह । ४. ना. में यहाँ और है :

ढरी कैशानि सेसानि बेनी । सिषर धावंत ग्रासे सुछिन्नी ।

(१३) १. धा. धूम पर जार, उ. स. तिन प्रम्म प्रजारि, अ. फ. पजार, ना. धूम परिजारि, द. धुंम पर जाल । २. धा. मृग नयनी, मो. मग गयने, स. उ. मृग पनी, अ. फ. मग गवनी (—गउनी फ.), ना. मग नयनी (< गजनी) ।

(१४) १. धा. चलहि तज, अ. फ. चलहि तिह, ना. चलहि तिहि, उ. स. तहां चलहि तिन । २. अ. फ. मुष । मो. वंद (< चंद) रमनी, अ. फ. चंद रवनी (रउनी—फ.), ना. चंद वयनी, उ. स. चंद रेनी ।

(१५) १. धा. ना. द. अ. फ. बिब, मो. ब्यंब, उ. तहा बीब, स. तहाँ बीज । २. मो. धावि (=धावइ), धा. धावइ, ना. धावहि, अ. फ. धावै, उ. स. धाप ।

(१६) १. मो. दसन भूप भय, (' भूष' कदाचित् 'भय' का पाठान्तर है, जो यहाँ आ गया है) उ. स. तहाँ दसन बाल मे (बाल मै-उ.) २. मो. वासन छपावि (=छपावइ), धा. द. वसननि छिपावइ, ना. दसननि छिपावहि, स. दसन छिपाए, उ. वसनं छिपाए, अ. वसनमि छिपावै, फ. वसनुमि तपाव ।

(१७) १. धा. सर्व सहिरोस, ना. सबद सहरो, उ. स. तिनं सह (< सबद उ.) सह रोस, द. सबद सह रोस, अ. फ. सबद सौरोस । २. धा. सहिये ससकी, मो. साहाय (< साहोव) सकी, द. माइस ससकी, ना. सारस्स सकी, अ. उ. स. सहि रोस सकी, फ. सहै रोस संका ।

(१८) १. धा. थरहरति थकि हरि, फ. थरहरै छकि ररि, ना. थरहरहि थकि रहि, उ. स. तहाँ थरहरे (—थरहरत उ.) थकि रही । २. धा. छीन, मो. हीन (< झीन) ।

(१९) १. मो. केच (< केव), धा. ना. अ. फ. के वि, उ. स. कवि । २. धा. अ. फ. ना. रटि रटित, मो. रति, ना. द. रट रटति । ३. धा. प्रिय प्रीय, अ. फ. ना. द. ऊ. स. पिय पियहि । ४. धा. जंपइ, मो. जंपि (=जंपइ), अ. फ. जंपै ।

(२०) १. मो. प्रेम, अ. फ. पमि, ना. द. नाम । २. धा. रिपुरमनि प्रिथिराज, ना. द. प्रिथिराज रिपुखनि । ३. मो. कपि (< कंषइ), धा. दंपद, अ. फ. ना. द. कपै ।

टिप्पणी—(४) षट < षट्=आषाढ । (५) विच्छोहि < विक्षोम । (६) पत्त < पत्र=पत्ता । (७) झंष < अम्=धूमना—झिरना, चळना । (८) नोवाळ < पिच्चाळ=बिराना, टपकाना । (९) तुट्टे < त्रुट्=टूटना । (१०) उच्चाळ=ऊँची, धा. तीव्र बाळ । (११) पगइ < प्रकुत=स्वामाधिक । (१२) परजाल < प्रज्वाल । (१४) वल < वल्=बलाना, य मव करना । (रवनी=रजनी ।) (१५) ब्यंब < बिब । (१६) दसन < दशन । (१७) साहिअ

< साधिक=सविशेष । (१९) केवि > कतिपय । जंप < जल्प=बोलना, कहना । (२०) एम < एव=इस प्रकार । रवनि < रमणी ।

[८]

दोहरा— गयमदा चपि^१ चचला गुर^२ जंघा^३ कटि रंचि^४ । (१)
पिय^१ प्रथीराज रिपू किञ्च^२ तउ^{*३} विपरित कीन^४ विरंचि^५ ॥ (२)

अर्थ—(१) “गज की भौंति मन्द [गति], चंचल आँखों, गुरु जंघाओं, तथा क्षीण कटि वाली [शत्रु रमणियों अपने पतियों से कहती हैं,] (२) ‘हे प्रिय, पृथ्वीराज को जो तुमने शत्रु किया तो विधाता ने [सब कुछ] उल्टा कर दिया’ ।”

पाठांतर—* चिह्नित शब्द धा. में नहीं है ।

(१) १. धा. अ. ना. उ. स. चष., द. भषि । २. धा. ना. गुरु, द. गय ३. द. जं । ४. उ. स. अ. फ. रच ।

(२) १. धा. प्रिय, मा. जु, ना. उ. स. अ. फ. पिय । २. धा. उ. रिपु कियउ, उ. स. सुरिपु कियौ, न. अ. फ. जु रिपु कियौ, द. जु रिपु कियौ । ३. मो. तु (=तउ), अन्य प्रतियों में यह शब्द नहीं है । ४. मो. कीउन धा. ना. अ. फ. कीन, ना. द. उ. स. करण (ना. उ. स. करन) । ५. ना. उ. स. फ. विरच ।

टिप्पणी—(१) गय < गज । चष < चक्षु ।

[९]

दोहरा— निनिञ्च* जगत^१ जय पत्त लिय^२ दिसि^३ मुरधर उपदेस । (१)
षिति रष्वन^१ निति वर सबल^२ रिपु पंगुरह^३ नरेस^४ ॥ (२)

अर्थ—(१) “[पंगराज जयचन्द की स्त्रियाँ उससे कहती हैं,] “[पृथ्वीराज ने] जग को जीता और जय-पत्र प्राप्त किया है और मुर (मरु) धरा की दिशा को उपदेश किया—दंडित किया है । (२) तुम्हारा शत्रु, हे पंगराज, धरती की रक्षा कबने वाला और नित्य ही विशेष बल शाली होता जा रहा हूँ ।”

पाठांतर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ का है ।

(१) १. धा. जीत जगत, मो. जीताअ (< जीतीअ) जगंत, म. राजिति ?, उ. स. जिति जगत, ना. अ. फ. जीति जगत । २. मो. जय पथलीय, फ. जय पत्ति लिय, अ. जय पत्त लिय, फ. ययपत्ति लिय, म. जयपत्त लै । ३. धा. दिस फ. दिशा ।

(२) १. मो. षिती रष्वन, धा. छिति रच्छन, उ. स. छिति रष्वन, फ. छिति रक्षा, अ. छिति रष्वन, ना. छिति रक्षन । २. मे. नितिवर श्वन, धा. छितिपर सबल, ना. म. उ. स. छितिपर सबर, अ. फ. छिति परसपर । ३. धा. रिपु पंगुले, ना. अ. फ. म. उ. स. सुनि पंगुरे (पंगुरै-म.) । ४. मो. नुरेस ।

टिप्पणी—(२) षिति < क्षिति । निति < नित्य ।

[१०]

पढ़डी— कर^१ पग मग अगइ^{*२} सुवार^३ । (१)
 सुर सुक्कि सुक्कि^२ सुइ मनहु^२ प्रहार^३ ॥ (२)
 सुनियइ^{*१} न सद नीसान भार^२ । (३)
 दरबार भयी^१ इत्ती जउ^{*२} पुकार ॥^३ (४)
 थकि वेद विप्प^१ माननी सु^२ गान । (५)
 आनंद सकल सुविसइ^१ न कानि^२ ॥ (६)
 कर अपि राय मुक्कउ^{*१} उसासि^२ । (७)
 विगड्यउ^{*१} जगु^२ मत्री विसासि^३ ॥^४ (८)
 सुनियइ^{*१} न पुन्य^२ सभ^३ मभ्रक राज^४ । (९)
 युवजन युवति अनु^२ करिग साज^३ ॥^३ (१०)
 सजोगि^१ जोग वर तुम्ह^२ आज । (११)
 व्रत^१ लिअउ^{*२} वरण^{*३} प्रथिराज राज^४ ॥^५ (१२)

अर्थ—“(१) [तुम्हारे आक्रमण के भय से पंगराज के] मार्ग में [उसके] हाथ पैर आगे रुक गए हैं, (२) स्वर शुष्क हो गया है, सुख समाप्त हो गया है, मानो [तुम्हारा] आक्रमण हुआ हो । (३) घौंसो के भारी गब्द नही सुनाई पड़ रहे हैं, (४) [जयचन्द के] दरबार में जो इतनी पुकार हुई है । (५) वेद [पाठ] में विप्र और गान में मानिनिर्वाय थक (शिथिल हो) गई हैं, (६) समस्त आनन्द अब कानों में प्रवेश नहीं कर रहे हैं । (७) राजा (जयचन्द) हाथ मल कर उच्छ्वास छोड़ रहा है कि (८) मत्री के विश्वास में मेरा यज्ञ बिगड़ गया । (९) सभी राज्य में पुण्य नही सुनाई पड़ रहे हैं, (१०) और युवतिओ ने आसक्ति की है । (११) संयोगिता के योग्य वर आज तुम्हीं हो । (१२) हे राजा पृथ्वीराज, उसने तुम्हे वरणा करने का व्रत लिया है ।”

पाठांतर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. द उ. स में यहाँ ओर है (स. पाठ) :—

तितन समय ताम कनवज नरैस । क्रत काम पुन्य सज्जे असेस ।
 सबर मजोग सम जग्यकाज । विभुरिय रिद्धि गति विविध राज ।
 शृंगारि सहर विविधं विनान । आनंद रूप रज्जे उत्तान ।
 तोरन अनूप राज सुभाइ । जगमगत धंम हिम जरित ताइ ।
 वासन विचित्र उत्तान ताम । मंडप्प उच्च सज्जे सुधाम ।
 वास नह श्रेन विधि बंधिबान । सोमंत धज्ज बधे सुयान ।
 क्षोनी पवित्र सद्धी सवारि । द्रावै सुमंढि सुर सम अपार ।
 गावंत थान थानइ सु गेव । मंगल अनेक साजै सु भैव ।
 जल जात माल तोरन कुसुम्म । बहु रंग विद्धि सोभा सुरम्म ।
 आए सु प्रपत्ति अनेक थान । उहार मत्ति पित्ति आसमान ।
 संभर संजोग लब्धे सुभूष । संपत्त लाज हय भय अनूष ।
 देवंत अत्ति उत्तान थान । प्रमटंत अप्प गुन आसमान ।
 चित्त सुचित्त कमधज्जराइ । केहरि कंठेर वर सुत्ति काय ।

संजोग सज्जि नयरी पकार । सम करइ साज हय गय सुभार ।
बाजे अनंत बज्जे विवान । बहु जल्य करत रंजंत तान ।
कौत्तिग सुराज राजै अनूप । क्रतयंत कंठ सादिष्ट रूप ।
झलंत नेन देषत विवान । मझंम चित्त साकुल्य जान ।
जातस चरित्त साजे अनेव । नाटिक कोटि नाचंत भेव ।
देषहि विवान साजहि सु देव । वानिय प्रसाद कछु कहिय गेव ।
इहि विद्धि सत्त अइ वित्ति जाम । अहा आइ कुकि पर दार ताम ,

२. धा. अगह, मो. आगि (=आगइ); ना. अगह, उ. स. आगें, अ. फ. अंगह । ३. मो. सुभार, ना. सुवार, स. सुबीर ।

(२) १. ना. सर सुकिमुं, मो. सह मनहु, धा. सुह मन, ना. सुमन, द. उ. स. सुमन, अ. फ. सहमन ।
२. अ. फ. पहार, द. पसार, स. प्रसीर ।

(३) १. मो. सुभिइ (सुभियइ), धा. सुनियइ, ना. सुणीयै, द. उ. स. अ. फ. सुनिय (सुनिये-अ.) । २. धा. चार ।

(४) १. मो. भयु (=भयउ), द. भई । २. मो. इतयु, द. इतंती, धा. उ. स. अ. फ. पत्तो, ना. इत्ती । ३. द. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :—

तम पुच्छि ताम जैचंद राज । अवगुन अग्रम्म किन करिय काज ।
उच्चंत ताम धाह सउत्त । चहुआन राव सोमेस पुत्त ।
सब देस भंजि षोषंद थान । बालुकाराय हनि देषि प्रान ।

(५) १. धा. द. वेद वेद, ना. वेद वेदोत्ति, म. वेद विप्र, उ. स. वेन, अ. फ. वेद भेद । २. धा. विष्पनि सु, म. वयनं सु, उ. स. विप्रान, ना. विप्रन सु, अ. फ. विप्रनि सु ।

(६) १. मो. सुवीसि (< सुविसइ) । २. धा. ना. म. उ. स. द. अ. फ. कान, केवल मो. में 'कानि' ।

(७) १. धा. सुकिय, ना. म. उ. स. द. सुवयौ, अ. फ. सुवकै । २. मो. उसारि, धा. ना. अ. फ. उसांस (उसास-म.), म. उ. स. निसास ।

(८) १. धा. ना. उ. स. म. द. अ. फ. बिगर्ग्यौ (बिगर्ग्यौ-म० बिगर्ग्यौ-ना०) मां. बिगर्ग्यु (=बिगर्ग्यु) । २. अ. जग्गि, फ. म. ना. जग्य । ३. धा. विमास, म. उ. स. द. ना. अ. फ. विसास । ४. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :

बंधौ सु चंपि अब चाहुआन । बिगर्ग्यौ जग्य निहचै प्रमान ।
जोगिनी राज चित्रंग जोइ । बंधौ समेत प्रधिराज दोइ ।
सन्नाह राज बंधौ सबीर । निर्वार करौ चहु आन श्रीर ।
आहुठ राज प्रधिराज साहि । पीलौ जु तेल जिय तिल प्रवाहि ।
संभरि जुन्हाइ बुछाइ राइ । इक वत्त कहा पिय सुनहु आइ ।

(९) १. मो. सुनीइ (=सुनियइ), धा. सुनई, ना. उ. स. द. म. सुनिये । २. मो. ना. पुन्य, धा. पुकार, फ. अ. फ. न पुत्ति । ३. धा. सब, अ. सुभ । ४. धा. महाराज, द. मझि राइ, स. मध्य राज, अ. फ. मंडराइ ।

(१०) १. मो. युवजन युवती अन, धा. युवतीय जनन युव, ना. जुड जनु जुवत्ति अनु, म. जुव जनु सुवत्ति अनु, उ. जुवजनि जुवत्ति, स. जुवजसि जुवत्ति अत्ति, अ. फ. युवतीजन युवजन । २. अ. फ. साइ । ३. ना. द. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :

पुच्छी स ताम संजोगि बत्त । कहि धाह कोन मो पित विरत्त ।
उच्चरी ताम सहचरी एक । बंधी सुराज प्रधिराज तेक ।
दिछो नरेस सोमेस पुत्त । चहुआन पान देषे स उत्त ।
बालुका राव सन्धौ सुतेन । षोषंद भजि पुर लुटि रेन ।
सुनि खवन वत्त संजोगि तथ्य । चिता सुचित्त गंधर्व कथ्य ।

(११) १. म. संजोग । २. धा. ना. अ. व्रत सु, फ. वृतम ।

(१२) १. उ. स. व्रित, फ. व्रत । २. धा. लियो, मो. लीउ (=लिउउ) म. ल्य, अ. फ. ना. लियौ । ३. मो.

चरण (< वरण), म. वरज, फ. वरुन । ४. धा. उ स म प्रथिराज साज, अ. फ. प्रथिराज (प्रथिराज-अ.) काज । ५. द. म. उ स. में यहाँ और है (स. पाठ) ।:

द्रिद्र करिय मत्र सम चित्त अत्ति । पितु विरत बुद्धि छडौ विमत्ति ।
सजोगि ताम जप्यौ सु प्रम । मानों सु मुझ इह द्रु नेम ।
चहुवान सुबर मो सत्ति मत्ति । छडौ सु अवर लालिच अत्ति ।
इस जपि मत्र सा निज्ज धाम । छडे व अन्व विधि व्याह काम ।

टिप्पणी—(१) मग < मार्ग । (२) सुक < शुष् । सुक < मुच् । सुह < सुख । (३) सह < शब्द । इत्ती < इत्तिय < इयत्=इतनी । (४) जठ < जत । (५) विस < विश=प्रवेश करना । (६) सुक < मुच्=छोड़ना । उसासि < ऊच्छवास । (७) विसाम < विश्वाम । (८) अनु=और । साज < सज्ज < सज्ज=आसक्ति करना ।

[११]

दोहरा— तिह^१ पुत्तिय^२ सुनि गन इतउ*^३ तात वचन तजि काज । (१)
कइ^४ वहि^५ गगहि सचरउं*^६ कइ^७ पानि गहउं*^८ प्रथीराज^९ ॥ (२)

अर्थ—(१) “उस (जयचन्द्र) की पुत्री (सयोगिता) के सम्बन्ध में [मैंने] सुना है कि वह यहाँ तक गुनने लगी है कि ‘पिता के वचन और [स्वयंवर के] कार्य का त्याग कर (२) या तो मैं गंगा में बह चलेँगी, और या तो पृथ्वीराज का पाणिग्रहण करूँगी’ ।”

पाठान्तर—* चिहित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. धा. अ. फ. तिह । २. अ. फ. म. ना. पुत्ती । ३. मो. गन इतु (=इतउ), धा. गणइ इत, अ. फ. गुनय इत, द. ना. स. उ. म. गुन इतौ, फ. गुनि इता ।

(२) १. मो. काइ, म. अ. फ. कै । २. मो. बिहि, धा. वय । ३. मो. ना. गगहि सचरु (=संचरउं), धा. वहि गंगहि परौ, अ. गगहि सचरौ, म. गंगइ सिंचरौ । ४. मो. काइ, म. कै । ५. मो. गुहु (=गुहउं), धा. ग्रहै, ना. ग्रहु (=ग्रहउं), द. ग्रहु, फ. हू गहं, अ. गहुं (=गहउं), म. उ. स. ग्रहन । ६. धा. म. ना. प्रथिराज ।

टिप्पणी—(१) गण < गणय् । इतउ < इयत्=इतना ।

[१२]

दोहरा— सुनत राइ^१ अचरिज*^२ भयउ^३* हियइ*^४ मन्यउ*^५ अनुराउ^६ । (१)
नृप वर अनि उर^७ अंगमइ^८ दैवहि अवर^९ स भाउ^{१०} ॥ (२)

अर्थ—(१) राजा (पृथ्वीराज) को [सयोगिता के इस संकल्प की बात] सुनते ही आश्चर्य हुआ, और उसने हृदय में सयोगिता के अनुराग को मान लिया । [और उसने कहा] (२) “नृप (जयचन्द्र) अपने हृदय में उसके लिए अन्य वर (भले ही) निश्चित कर चुका है, किन्तु दैव को तो दूसरा ही [वर] माता है ।”

पाठान्तर—(१) १. धा. द. फ. सुनित राइ, ना. सुनत तावत, अ. सुनत्ति राइ, म. सुनत राय । २. धा. म. अचरिज किय, अ. फ. अचरज किय, ना. अचिरिज कीयौ । ३. मो. हीई मन्यु (=मन्यउ), उ. स.

म त्रियं मन्त्रि, धा हिय मज्जर, द. हिय मानु (=मानौ), अ फ ना. हिय मान्यौ । ४ धा अनुराह, म अनिराव, उ स अनराव ।

(२) १ धा त्रिपवर अवरह, अ फ ना नृपवर और (अउरहि-फ, और-ना), म उ स. हौ बरि अवरहि (औरहि-म.) । २ ना निन्मवह, अ फ निर्मव, फ नृमये, ना सभ, म. देउ अब, उ. स देउ बर । ३ अ. फ. दवहि आर, धा. अवर अचित्यो, उ. म दवे और, म. देव अवर, ना. दश्य ४ धा. थाइ, अ. म. उ. स. सुभाव, ना द फ सुभाउ ।

टिप्पणी—(१) मन्य < मन् । (२) अनि < अन्य । अवूर < अपर ।

[१३]

नाराच—परठि^१ पगराइ दुत्ति^२ सुतीय^३ आल^४ मुक्कने^५ । (१)

साम दान दंड भेद^१ सारस^२ वियषने^३ ॥^४ (२)

जे ग्रीव ग्रीव तार तार नेन सेन^२ मडिहो^२ । (३)

जे^२ वचन विधि निधि धीर^२ ही सत्रांन षंडिही^२ ॥^४ (४)

अनेक बुधि सुधि^२ सब्ब मुच्छि^२ काम जगवइ^३ ।^४ (५)

ते^२ प्रचारि काम च्यारि जाम^२ अगन^३ समुम्भवइ^४ ॥^५ (६)

अर्थ—(१) [उधर] स्त्री (संयोगिता) की अड़ (हठ) को छुड़ाने के लिए पगराज (जयचन्द) ने दूतियों प्रस्थापित की (नियुक्त की), (२) जो साम, दान, दंड तथा भेद में समान रूप से विचक्षणा थी, (३) जो ग्रीवा, ताली (हथोड़ी) तथा नेत्रों से संकेत मंडित किया करती थी, और (४) अपनी वचन-रचना की निधि से सज्जानों (ज्ञानियों) के भी धैर्य को खंडित करती थी । (५) वे सब अनेक युक्तियाँ शोध-शोध कर मूर्च्छित काम को जगाती थीं और चार प्रहर काम की उत्तेजना करके वे उस अगना (संयोगिता) को समझाती थी ।

पाठान्तर—(१) १. मो. परठी म. परति, ना. पति । २. धा. अ म. ना. उ. स. दुत्ति, मो. दूति, फ. दुत्त । ३. धा. अ. म. पुत्ति, फ. पुत्त, ना. गुत्ति । ४. ना. सुत्ति आलस । ५. धा. म ना मुक्कनै (मुक्कन-ना.) मो. मूकने ।

(२) १. धा. द. ति साम डंड वीर भेद, ना. जि साम दान भेद वीर, अ. फ. ति (ते-फ.) साम दान भेद दंड, म. ति साम दान भेद दंड । २. मो. सरस वीर (पाठान्तर का समावेश), धा. म. उ. स. सारसी (सासी-उ.), अ. फ. सारसै । ३. धा. विचछने, अ. फ. विचछछने, म. उ. स. विचषने (विचषने-म.) । ४. म. उ. स. में यहाँ और है (स. का पाठ) :

वचन्न चित्त चातुरी न ताहि कोइ पुअई ।

हरंत मान मेनका मनोहरं न सुश्रई ॥

(३) १. धा. सुग्रीव ग्रीव कठ तार नयन सयन, मो. जा ग्रीव ग्रीव तार तार नेन सेन, अ. फ. सु ग्रीव ग्रीव कठ ताल नेन सेन, ना. जि (=जे) ग्रीवता ग्रीव तार तार नन सेन, उ स. अरवन्न नेन नेन सेन तार तार, म. अरवन्न नेन सेन सेन तार तार । २. धा. मडिही, मो. मडिही, म उ स मडई ।

(४) १. मा. के अतिरिक्त यह शब्द किसी में नहीं है । २. धा. वचन्न विद्धि निद्धि रग, अ. फ. वचन्न निद्धि सब्ब, ना. वचन्न विद्धि निद्धि रग, उ. स. अनेक विद्धि निद्धि सब्ब, म. अनेक विध सिध साध । ३. धा उ. स. म. ना. ईसज्ञान षण्डही, (षण्ड-म.) अ. फ. ईस ध्यान षण्डही, द. ध्यान ग्यान षण्डही । ४. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :

अनेक भाँति चातुरीनि चित्त चत्त चोरई ।
छिनेक में प्रमन्नव जु जेम मेन डोरई ।
कलक कल मलाप जाप ताप धू- ससई ।
श्रिषड ज्यों पिठाम बास मामा ता प्रमन्नई ।

(५) १. म. लुध । २. धा. अ. फ. मूच्छि, म. मुठि (< मुछि), ना मुछ्यौ । ३. मो. जगवि (=जगवइ) ।
अ. ना. जगवै. फ. जगाउही । ४. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :—

सुपाठई चतुर बत्त प्रथम मन्न लगवै ।
रईत मोन मोनही इसत ते हमावही ।
विषम जोग भोष तेज जोर सौ नसावही ।
अगोन कळ पोत रूप उत्तर दिसावही ।
कपटु ज्ञान बत्त मडि हट्ट सो छँडावही ।

(६) १. धा. ति (=ते), मो. त, फ. न, ना. द. म. उ. स. में यह शब्द नहीं है । २. धा. अ. प्रचारि
च्यारि जाइ, फ. प्रचार चार जाइ, म. उ. स. प्रचारि कासु (कासु—म.) चारि (च्यारि—म.) जाइ (जाय—म.) ।
ना. द. प्रचारि चारि (च्यारि—द.) जाइ अग । ३. मो. अगन, धा. अनन, उ. स. आप मन्न, अ. फ. ना.
अंगना । ४. मा. समूझविर=समूझवइ, धा. समुझवइ, अ. समझवै, फ. समुझाउही, म. ना. च. स. समुझवै ।
अनेक भाँति चित्त चातुरीनि सु आप मन्न सुझवै ।

५. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :

टिप्पणी—(१) परिद्रव < प्रति+स्थापय् । आलि < अलु [देशज] । मुक्क < मुच् । (२) सारस < सरिस
< सदस । वियर्ष न < विचक्षण । (३) तार < ताल=ताली । सेन < सकेत । (४) सजान < सज्ञान । (५)
मुच्छ < मूच्छ ।

[१४]

रासा —अलस^१ नयन अलमाय ति^२ अदरु^३ × अण्य^४ किय । (१)
[पुत्री वाक्यः] किम बुधी^१ मय^२ तात सकिलिअ^३ इक्क जिय^४ । (२)
[दूती वाक्य] तव बाले वर तात^१ सकिलिअ एक जिय^२ । (३)
विहि^१ वर वर उत्कंठ^२ त पुच्छइ अण्छगिय^३ ॥ (४)

अर्थ—(१) उस (संयोगिता) ने अलस नेत्रों से अलसाते हुए आप ही [उस दूती का]
आदर किया [और पूछा,] (२) “मेरे पिता ने जी मे कैसी (कौन सी) एक बुद्धि संकीलित कर
रक्खी है ?” (३) [दूती ने उत्तर दिया,] “हे बाले तेरे श्रेष्ठ पिता ने एक [बुद्धि] यह संकीलित
की है कि (४) तुम्हें किस श्रेष्ठ वर की उत्कंठा है वह, हे असप्रा, तुमसे पूछे ।”

पाठान्तर—X चिह्नित शब्द फ. में नहीं है ।

(१) १. म. स. ना. द. तव अलस । २. म. अलसायत, ना. अलसाइ चित्त । ३. धा. उ. स. आदर
(आदरु—स.), म. ना. आदर । ४. स. प्रण्य ।

(२) १. म. बुधीय, फ. बुद्धिय । २. धा. अम, मो. ना. द. मय, अ. फ. अय, म. उ. स. मो । ३. धा. ना.
उ. स. किलि ति, म. सकिलिय, अ. फ. सकिलिव, फ. सकल्व । ४. म. एक हिय, ना. इक्क दिय ।

(३) १. धा. अ. फ. हे बाले तव तात, ना. तव बोले वर तात, द. तव बाले बळ तात, २. धा. ना. सकिलित
सव (राइ—ना.) लिय, द. सकिलित रावलि, अ. फ. सकिलिय राइ लिय, म. उ. स. सयवर मडइय
(—मंडईय म.) ।

(४) १. धा. म. उ. स. कहि । २. धा. उत्कंठ, फ. उत्तिकंठ म. उ. स. उत्कंठाइ । ३. मो. त पूच्छहि

अच्छरीय, धा. अ. फ. द. ना. सु पुच्छइ (पुछं-अ. फ.-पुच्छहि-ना. द.) अच्छरिय, म. उ. म. माल डर छडइय (छडइय-म.) ।

टिपणी—(२) मय < मत्=मेरा । मकिउत < सकील । मत् लित=हाल लगा कर जोड़ा हुआ, दृढ़ता-पूर्वक गाढ़ा हुआ । (४) अच्छरिय < अप्परसि=अप्परा ।

[१५]

[पुत्री वाक्यः] रासा—मय मन मभूम ज* गुभूम^१ गुरुजन छंडि* स तुम कहउं^२ । (१)

जंपत लज्जइ^३ जीह न अक्पर* लहु लहउं^४ ॥ (२)

पट दह^१ जिहि मामत^२ सोइ प्रथीराज कोइ^३ । (३)

दान वरग भय मानि न^१ सुकउ तात सोइ^२ ॥^३(४)

अर्थ—[सयोगिता ने कहा,] “(१) मेरे मन में जो गुह्य है, वह गुरुजनो से भी न कहकर तुमसे कह रही हूँ । (२) उसे कहते हुए मेरी जिह्वा लज्जा का अनुभव करती है, और [उसे कहने के लिए] मैं एक लघु अक्षर भी नहीं पाती हूँ । (३) जिसके सोलह [या साठ ?] सामंत हैं, वही कोई पृथ्वीराज [मेरा वर] है, (४) जिसने [मेरे पिता के] षड्ग-दान (छड्ग-युद्ध) से भय मान कर मेरे पिता का छोड़ा नहा है [और उससे युद्ध करना चाहता है] ।”

पाठांतर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. मय मन मभूम गूत, २. धा. मुहि मनमह मुझ जानि, द. उ. स. म. मो मन मझ गुरुजन, ना. मव मनन मझ, अ. क. मो मन मझ गुजन । २. मो. गुरुजन छडसु तम कहु (=कहउं), धा. गुज्ज त तुम्ह कहु (=कहउं), ना. उ. स. म. गुज्ज सु (सु-म.) तुम कहौ, (कहौ-म., कहु=कहउं-ना.), अ. फ. गुज्ज जु तुम कहै ।

(२) १. मो. जंपत लजि (=लजइ), धा. अपत लज्जे, ना. जंपत लज्जु (=लज्जउं), उ. स. जंपति लाजौ, अ. फ. जंपत (जंपति-फ.) लज्ज, म. जंपति लाजौ । २. मो. न अक्षर (=अक्षर), धा. न अप्पर, अ. फ. न अच्छर, म. सुअतर, ना. र अच्छर, उ. स. सु उत्तर । ३. मो. धा. ना. लहुं (=लहउं), अ. फ. लहै, उ. स. लहौ, म. लहौ ।

(३) मो. धा. षटदह, अ. पट (षट) दह, फ. पटु (षटु) दह, ना. द. म. उ. स. सत्त (सित्त-द.) सेन (सयन-ना.) । (२) धा. अ. फ. सावत । ३. धा. प्रिथी प्रिथीराज रुइ, अ. फ. पृथो (पृथ्वी-अ.) पृथिराज होइ, ना. द. म. उ. स. सँर छह (छद-ना.) मडलिय ।

(४) १. धा. मो. फ. दान सग्ग भय मान, अ. दान वरग भय मानि, ना. द. म. उ. स. वरन (वरण-मो.) इच्छ वर मो दिअ (दिय-म., दिअ-ना.) । २. धा. न सुकउ तात सइ, मो. नमयुक्कु (=नमयुक्त) तात सोइ, अ. फ. न (नि-फ.) सुकइ तात सुइ (सोइ-फ.), ना. द. म. उ. स. इति अखंडलिय ।

टिपणी—(१) मय < मत्=मेरा । गुभूम < गुह्य । (२) जप < जल्प । जीह < जिह्वा । (४) सुक < मुक् ।

[१६]

[दूती वाक्यः] गाथा—अबुधा^१ अलीह^२ बाला कयउं^३ उच्चरिय भिन्न^४ रस एनम्^५ । (१)

लहु आ^१ लुहार पुचा^२ तं पुत्तीय राइसं धीय^३ ॥ (२)

अर्थ—[दूती ने कहा,] “(१) हे बुद्धिहीना और अलीक (लीक त्याग कर चलने वाली) वाला, तू क्यों भिन्न रस के इन [वचनों] को बोल रही है ? (२) वह लघु लघु [पिता] का पुत्र है, जब कि तू, हे पुत्री राजेश्वर को दुहिता है ।”

पाठांतर— * चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. अबुधे, ना. द. सुगया म. उ स सुगधे, अ. फ. मुद्धे । २. मो. अलि वाला, ना. सुगधर रसया, द. म. उ. स सुगधा रसया, अ. फ. अमुद्ध रसाइ । ३. मो. क्यु (=क्युट), धा. अ. फ. में यह शब्द नहीं है । ४. ना. उवरजे भूयन, उ. स. अवरज भिन, म. अवरज भिन, अ. फ. उच्चरिय वयण भिन्न । ५. मो. एन् (<एनन्), धा. एण, ना. द. एव (एव-ना.), म. उ. स. एवि, अ. फ. नाय ।

(२) १. धा. ना. द. अ. फ. लुवा । २. धा. लुआर पुत्ती, अ. फ. लहुवाय पुत्त, द. उ. स. लुहान पुत्त, म. लहुआन पुत्त, ना. नहान पुत्ती । ३. धा. त पुत्ती राजघर आयी, ना. द. तु (तु-द) पुत्ती राज (राजा-द.) ग्रहेवि (ग्रेहेवि-द.), उ. स. तू पुत्ती राजग्रेहाय, म. तूं पुत्ती राजग्रेहाई, अ. फ. तं पुत्ती राज घर आयं ।

टिप्पणी—(२) लहु < लघु । आ=ग्रह । लुहअ < लघुक । राइस < राएस < राजेश । धीय < दुहित ।

[१७]

[पुत्री वाक्यः] साटिका—आ रत्री अजमेरि^१ धुम्मि धमनी^२ कति मंडि मडोवर^३ । (१)
मोरी रा मुरमड^{*१} दंड दमनो^२ अगिनी उत्तिष्ठा^३ कर^४ । (२)
रण थभ^१ थिर^२ थंभं सीस अहिरणि^३ जलजिष्टि^४ कालिजर^५ । (३)
कृपान^१ चहुआन जानु घनयो^२ षरनोपि^३ गोरी घर^४ ॥ (४)

अर्थ—[सयोगिता ने कहा,] “(१) उसीने अजमेर मे धूम धाम मचाई और मडोवर को काटकर मंडित किया, (२) [उसीने] मरु मड के मोरी राज को दंडित करके उसका दमन किया, और उत्थित करो (लटो) वाला अग्नि बन कर (३) उसने स्थिर स्तम्भ वाले रणस्तम्भपुर (रथभौर) के के सिर पर अभिरमण किया और कालिंजर को जलमग्न किया, और (५) चहुआन की वही कृपाण तो गोरी घरा पर घन की भौंति घहराई !”

पाठांतर— * चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

+ चिह्नित चरण फ. में नहीं है ।

(१) १. अ. फ. आरत्ता (नारत्री-अ.) अजमेरि, मो. आरत्ता अजमेर । २. मो. धूमि धमनी, धा. धुप्पि धवनी, द. म. उ. स. धुम्मि धमनी, अ. फ. ना. धुम्मि (धूम-फ.) धवनी (धवनी-फ.) । ३. मो. कति मंडि (< मंडि), धा. म. ना. करमडि, अ. कर्मडि, फ. कुमंडि । ४. मा. मडोवर (< मडोवरं ।)

(२) १. मो. मोरीरा मरमड, धा. अ. फ. मोरीरा मुरमुंड, ना. मारारा मुरमुंड, द. उ. स. मोरीरा मरमुंड, म. मोरीरा मसुड । २. धा. दंड दमनी, अ. फ. ना. दंड दमनो, म. डड दमनो । ३. धा. अग्नी उत्तिष्ठ, अ. फ. अग्नी उत्तिष्ठ, म. अग्नी उत्तिष्ठा, ना. अग्नी उत्तिष्ठा । ४. म. ना. करी ।

(३) १. धा. रनथमिर, अ. फ. रथम । २. फ. गिर । ३. धा. सास हजिरो, अ. फ. सीस अहरनि, ना. सीस हरणा, म. सीस अहित, उ. स. सीस अहिनं । ४. धा. अ. जल जुस्, फ. जलजुष्टि, ना. जरजिष्ट, म. उ. स. ज्वलदिष्ट । ५. मो. कालिजर, म. कालज्वर, ना. काल्यजर (=कालिजर) ।

(४) १. धा. कृष्पान, अ. कृष्पान, फ. कृपान, म. कृपानं, ना. कर पानिं । २. धा. जोनि घनयो, मो. जान घनयो, अ. जानि घनयो, द. जानु रहियं, म. जान रहियं, ना. जान हियण । ३. धा. षरणोपि, द. षरणोपि, म. षडनोपि, ना. षटनोपि । ४. म. घडा, ना. अ. फ. घरा ।

टिप्पणी—(१) रत्न < रणय=शब्दायमान करना, गुँजाना । कत्त < कृत् । (२) रा < राज । रत्तिष्ठ < रत्तिष्ठ=उठी हुई । (३) अहिरम < अभि+रन् ।

[१८]

[दूती वाक्यः] साटिका—तो जा^१ पुर्त्ताय^२ मरहट्ट थट्ट^३ सबले निम्मचि^{*४} वइरागर^५ । (१)
 करणाटी^१ करवीर^२ नीर^३ गहनो^४ गुंडी गुर^५ गूर्जर^६ । (२)
 निर्माली हथमेव^१ मालव धर^२ मेवाड मंडोवर^३ । (३)
 जत्तउ^{*} तात इति सेव देव^१ नृपयो^२ तत्तानि किं तू वर^३ । (४)

अर्थ—[दूती ने कहा,] “(१) तू जिसकी पुत्री है, [हे संयोगिता,] उसने महाराष्ट्र, थट्टा, नीमच और वैरागर को शवल (भ्रष्ट) किया; (२) कर्णाट, करवीर, गुड और गुरु गुजर की काति के लिए ग्रहण हुआ, (३) निर्माल्य जिस प्रकार हाथ में हो, उसी प्रकार उसने मालव भूमि, मेवाड़ और मंडोवर को हस्तगत किया । (४) जब कि ऐसा तुम्हारा पिता है, और ऐसे देव जैसे नृप उसकी सेवा करते हैं, तब तू उन्हें क्यों नहीं वरण करती ?”

पाठांतर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

(१) १ ना द. म उ स. तो [मात्र], धा अ. फ जा [मात्र], मो तो जा । २. म. ना. पुत्री । ३. द. मरहट्ट वट्ट, ना. मरहट्ट । ४. मो. निमनि, म. उ. स. न.मच, ना. द नीमीच, धा. अ. निम्बीय, फ. नद्वीय । ५. म. अ. फ. ना. वरा गरे ।

(२) १. द. कर्णाट, म. कर्नाटी । २. धा करनीर, म. उ. स. करवीर, अ. फ. करनीर । ३. मो. नीर गिहिनो, ना. म. नीर गहना, धा अ फ. चीर गहना, द. नीर गहिना । ४ मो गुंडी गुर, धा. गुंडी गुरे, ना. द. म. उ. स. गौरी गिरा । ५. म. उ. स. गुज्जरी, ध. अ फ ना गुज्जर, द. गुज ।

(३) १. धा. निम्माले हथमाल, अ. फ निर्मालो हथमेलि, म. निमालो हथलेव, उ निर्मा हथलेव, ना. निर्माली हथमेव मेलि, स निर्मावे हथलेव । २. म. ना. धरा । ३ उ. स. मेवार मंडो धरा, म. मेवार मंडोवरा, फ. मेवार मंडोउर ।

(४) १. मो. जतु (=जतउ) तात हूं प्रत सेव देव, धा. जातस्तात देव, ना. जिन तातं इति सेवदेव, उ. स. म. जिता तातय सेव देव अ. फ. जाता तस्य सदैव सेव (सेउ-फ.) । २. अ फ. नृपय, म. त्रिपति । ३. मो. तत्वनकी तू वरं, धा. तात सुत किंवा वरं, अ. फ. आनं न तंकि वरं, ना. तत्वान तु कयं वरे, द. तत्ताननु किं वरं, म. तलात्पन किंवरे, उ स. तत्वान्यन किं वरे ।

टिप्पणी—(१) जा < या । सबल < शवल । (२) निर्माली < निर्माल्य । हथमेव < हस्तन+एव । (४) जत्तउ < यत्+तव । तत्तानि < तत्+तानि ।

[१९]

[पुत्री वाक्यः] श्लोक—न मो^१ राजान^{*२} संवादे^३ न मो^४ गुरुजनागरे^५ । (१)
 वर मेकं सय^१ देह अन्यथा^२ पृथिराज ए^३ ॥ (२)

अर्थ—[संयोगिता ने कहा,] “(१) न मैं राजाओं के संवादों (संदेशों) का और न गुरुजनों [के आदेशों] का आकलन करती हूँ । (२) एक सौ देह (जन्म) ग्रहण करना पड़े तो भी अच्छा होगा, अन्यथा [नहीं तो] पृथ्वीराज [मुझको प्राप्त हों] ।”

* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं।

पाठान्तर—(१) १. अ. फ. म. नमे (नमे-फ.) । २. मो. रामान (< रायान), ना. रयन, ना. द. म. उ. स. अ. फ. राजन । ३. अ. फ. मवादो । ४. मो. नमोत्व, अ. फ. म. नमे (न मे-म.) । ५. मो. गुरुजनयोग गुरे, धा. गुरु रयन जागरे, म. उ. स. गुरु (गुर-म.) जन जाग्रहे, अ. गुरज नागरे, फ. गुरुनी गरे ।

(२) १. मो. शय, ना. सुय, अ. फ. उ. स. रचय, म. प्रिय । २. मा. अन्यसा, धा. आनिस्वामि, म. व. स. नान्यथा, अ. फ. सर्वथा । ३. मो. प्रथोराज, धा. प्रथिराज यो, म. प्रथोराज य, ना. पृथिराजयो ।

टिप्पणी—(१) आगर < आगल < आ+कल्य=आकलन करना । (२) सय < शत ।

[२०]

[दूती वाक्यः] सारिका—इदो किं^१ अंदोलिया^२ अमीष^३ चक्रीव गंगा सिरे^४ । (१)
वच्छी छीर^५ विचार चारु^६ भमरे^७ चिचीन बंका करे^८ । (२)
तत्स्थाने^९ कर पाद पल्लव वसा^{१०} वल्ली^{११} वसंतो^{१२} हरे । (३)
चतुरे तु^{१३} चतुराय^{१४} आनन रसे^{१५} सा जीव मदनावरे^{१६} ॥ (४)

अर्थ—[दूती ने कहा,] (१) “इदु कयो [इ दु] हे? इन्दुलेखा (ज्योत्स्ना) के अमृत के कारण। चक्री (शिव) भी [चक्री कयो ह?] गंगा के सिर पर हाने के कारण। (२) वत्सिन् (बछड़े वाली गौ) [वत्सिन् क्यों है?] क्षीर [के कारण]। भ्रमर भ्रमर कयो है? चारु विचरण के कारण। चिची [चिची कयो है?] अपने बोंके (टेढ़े) करो (फलो) के कारण। (३) वशा (हस्तिनी) कयो अपने स्थान पर है—कयो वशा (हस्तिनी) है? अपनी [सुन्दर] कर (सूँड), तथा पल्लव सदृश [कोमल] पाद (पैरों) के कारण। वल्ली [कयो वल्ली है?] कयो कि वह वसंत को ग्रहण करती है। (४) [उसी प्रकार] हे चतुरे, तुम्हागे मुग और जिह्वा की जो चतुरता है, वह [तुम्हारे] जीव के मदन द्वारा आवृत्त होने से है।

पाठान्तर—(१) मो. इंदो कयं, म. उ. स. इंदो कि, धा. ना. द. अ. फ. इंदो (इंदो-द.) । २. धा. अ. फ. इंदोलिपन, मो. अंदोलिया, म. अलि अन्य ईस, ना. इंदोलिआनि, उ. स. अन्य ईस (ई-उ.) । ३. म. उ. स. अनयो । ४. मो. चक्रीव गंगा सिरे, धा. अ. चक्री भुजगा सिरे, फ. वल्ली भुजगा सिरे, म. उ. स. चक्री भुजंगा सुर (सुरे-म.), ना. चिक्कं भुजंगा सिरे ।

(२) १. मो. वच्छर, धा. चिच्छी छीर, उ. स. चच्छी चारु, म. दछी चारु, द. वल्ली चारु, ना. चच्छी वीर, अ. पच्छी छीर । २. मो. विचार चारु, धा. अ. विचार चामि, फ. विचार वामि, ना. विकार चारु, म. उ. स. विचार चारु । ३. धा. म. स. अ. भंवेरे, फ. भउरे । ४. धा. चिचीन चका करे, मो. चंचीन वका करे, अ. फ. बिवा न (नु-फ.) बंका करे, ना. न बिका करे, म. विचिति वंका करे, उ. स. चिचीनि बंका करे ।

(३) १. मो. द. अ. फ. तस्थाने, म. उ. स. तस्थानं, ना. स्तथाने । २. मो. कर पाद पल्लव वसा धा. ना. कर पाद चूव पल्लव रसा, अ. फ. करपाद लूव (भूव-फ.) पल्लव रसा, म. उ. स. कर पाद पल्लव, वसा । ३. मो. वला (< वली) । ४. धा. वसंतो ।

(४) १. धा. अ. फ. कि, उ. म. तं, स. तव । २. धा. चतुराह । ३. मो. आनन रसे, धा. अ. फ. जान तुरसा, ना. द. उ. स. म. आनन (आनन-म.) रसा । ४. स. महनावरे ।

टिप्पणी—(१) अंदोलिया < इंदुलेखा । अमीष < अमृत । चक्री < चक्री=शिव । (२) वच्छी < वत्सिन्=बछड़े वाली गौ । छीर < क्षीर । चिचीणी [देशज]=हमली । वका < वक्र । (३) वसा < वशा=हस्तिनी । हर < ग्रह=ग्रहण करना । (४) रसा=जिह्वा । आवर < आ+वृ=आच्छादन करना ।

[२१]

[पुत्री वाक्यः] दोहरा—सा जीवन^१ जत्तह^२ वयनु वयन^३ गए^४ मृत^५ होइ । (१)
जो थिर^६ रहइ सु कहहु किन^७ हउ^८ पुच्छउ^९ तुम^{१०} सोइ ॥ (२)

अर्थ—(१) “[मनुष्य का] जीवन वहीं तक है जहाँ तक बचन [की पूर्ति] हो; वचन के जाने पर मनुष्य मृत हो जाता है । (२) जो स्थिर रहता है, वह तुम क्यों नहीं बताती ? मैं तुमसे वहीं पूछ रही हूँ ।”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

× चिह्नित शब्द धा में नहीं हैं ।

(१) १. धा. सज्जीवा, म. उ. स. जा जीवन । २. मा. राष, अ. फ. रषै, ना. जतह, म. उ. स. वतह (वतह-फ.) । ३. धा. मैं यह शब्द नहीं है, ना. वयतु । ४. म. गरप, म. गये अ. फ. ना. गये । ५. धा. म्रित, फ. मृति, द. मृत ।

(२) १. मो. जिउ थिर, धा. ना. म. म. जो थिर (थिर-धा.स.), द. उ. जा थिर, फ. जोवन, अ. जो यितु । २. मो. सु कहहु किमि, धा. द. अ. फ. सु कहउ (कहहु-अ. फ.) किन, म. उ. स. सोई कहौ, ना. सो कहु (=कहउ) किनि । ३. मो. हुं (=इउ) पूछु (=पुच्छउ), मा. इ. इ. पूछ, अ. फ. हौ पुछौ, ना. इ. पुच्छु (=पुच्छउ), उ. स. हो पूछ, म. हुं पुछौ । ४. मो. तम, धा. द. तुम्ह ।

टिप्पणी—(१) जत्तह < यत्र । वयनु < वचन ।

[२२]

[दूती वाक्यः] दोहरा—थिरु^१ बाले^२ वल्लभ^३ मिलन जउ^४ जोवन दिन^५ होइ । (१)
अये^६ जोवन^७ कुब्बन तन सु^८ को मंडइ रति सोइ^९ ॥ (२)

अर्थ—[दूती ने कहा,] “(१) हे बाला, [इस ससार में] स्थिर केवल वल्लभ (प्रिय) से मिलन है, [किन्तु] यदि यौवन के दिन हों । (२) यौवन के चले जाने पर जब तन कुब्बन (विकृत) हो जाता है, वही (यौवन के दिनों के) रति कौन मँडता (करता) है ?”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का हैं ।

(१) अ. फ. थितु । २. अ. फ. बालं । ३. धा. अ. वल्लभ, फ. बलन (< वल्लभ) । ४. मो. जु (=जउ), धा. जा, ना. जो, अ. फ. म. उ. स. जौ । ५. धा. जुब्बन तन, मो. जो अनिनद, उ. ना. द. अ. फ. जुवन दिन, स. जुब्बनु दिन ।

(२) १. धा. गउ, अ. फ. गै, ना. द. गय, स. गयो । २. धा. अ. फ. ना. जुब्बन, उ. स. द. जुवन । ३. धा. कुब्बन तनहु, ना. कोवन तुहिसु, उ. कवन तनहि, स. कछु वनत नहि, द. कुलन तनहि, अ. फ. कुब्बन (कुब्बन-फ.) तनह । ४. मो. को मंडि (=मंडइ) रति सोइ, धा. रति न मंडइ कोइ, उ. स. रति मंड (मंडे-स.) घट लोइ, ना. को मंड रति सोइ, अ. फ. को मंडइ (मंड-फ.) रति सोइ ।

टिप्पणी—(१) थिरु < स्थिर । वल्लभ < वल्लभ । (२) अय < अय=जाना ।

[२३]

[पुत्री वाक्यः] दोहरा—तुव सम^१ मात न तात^२ तनु गात सुरत्तरियाह^३ । (१)
जुब्बनु घन^४ अस्थिर^५ रहे अमु कि अंजुरियाहं ॥ (२)

अर्थ—[संयोगिता ने कहा,] (१) “तुम्हारे समान न [तुम्हारी] माता और न [तुम्हारे] पिता के गात्र सुन्दर हैं। (२) यौवन-धन तो अस्थिर रहता है; [तुम्हो बताओ,] क्या अंजलि में पानी स्थिर रहता है ?”

पाठान्तर—(१) १. ना. द तो सुव, म उ स तोसौ २ अ तात तन, फ. मात तनु । ३. अ सुरतरियाह (=सुरत्तरियाह) फ. सुरभरि याहं, ना. द. म. उ. म सुरगरियाह ।

(२) १. द जु जुव्वन, ना. जीवन जुव्वन । २. अ. फ अच्छिन । ३. ना अबु, म. उ. स. अंब ।

टिप्पणी—(१) रक्त < रक्त । (२) अस्थिर < अस्थिर ।

[२४]

[दृती वाक्यः] साटिका—जाने मंदिर दार चीर*^१ चिहुरा+^२वाढंति+^३चित्तानला+^४जाता+^५फुल्लित+^६चंपकस्य+^७कलया^८मनु कंदर्प दीपा प्रहा^९ । (१)
फकारे^१ ममरे^२ उढंति^३ बहुला फुल्लानि फुल्लंटिया^४ । (२)
सोय तोय^५ सजोगि^६ भोग समया^७ प्राप्ते^८ वसतोत्सवे^९ ॥ (४)

अर्थ—[दृती ने कहा,] “(१) जिससे मंदिर (घर) फाड़ खाने लगता है, चीर तथा चिकुर (केश) चित्त के अनल (अग्नि) को बढ़ाते हैं, (२) जिससे फुल्लित (फूली हुई) चंपक की कली कंदर्प-दीप की प्रभा-सी हो जाती है, (३) जिससे झंकार करते हुए भ्रमर बड़ी संख्या में उड़ पड़ते हैं और फूल विल उठते हैं, (४) वही तो, हे संयोगिता, भोग का समय वसतोत्सव प्राप्त हुआ है ।”

पाठान्तर—* चिह्वित शब्द संशोधित पाठ का है ।

+ चिह्वित शब्द या शब्दांश अ. में नहीं है ।

× चिह्वित शब्द या शब्दांश फ. में नहीं है ।

(१) १. मो. जाने मंदिर दार चीर (<चीर), धा जेने मजर दार चार, ना द. म. उ. स. जाने (जाने-म.) मंदिर हार चार (चार-म. उ. स.), अ. फ. जेने मजरि दातु चातु (वातु-फ.) । २. धा. बाजति, म. बाढत । ३. मो. चाल्यानिला (<चाँल्यानिला), धा. चित्तानला, म. चित्तानला, ना द. चित्तानिला, उ. स. चित्तानलं ।

(२) १. मो. जादा फुल्लित, धा. जावा फुल्लिय, द. जाती फुल्लिय, ना. जदि तीय फुल्लीय, म. जाती फूलय । २. ना. उ. स. पंकजस्य । ३. उ. कुलया । ४. यह शब्द मो. के अतिरिक्त किसी प्रति में नहीं है । ५. धा. दीप प्रहा, ना. द. अ. फ. दीप प्रभा, उ. स. दीप प्रभा, म. दीप प्रभा ।

(३) १. ना. झंकारो । २. धा. भवरे, मो. झमरे, अ. फ. भवरा (भट्टरा-फ.), म. उ. स. भमरे, ना. भमर । ३. उढंत । ४. धा. अ. फ. फुल्लानि फुल्लंटिया, मो. फूलानि फूलंटिया, द. म. उ. स. फुल्लानि फुल्लतया, ना. फुल्लानि फुल्लट्या ।

(४) १. म. सोयं जोय, अ. फ. सायं तोय, ना. सायं तोय । २. मो. संयोग, म. उ. स. सजोय, फ. सजोयु । ३. धा. अ. फ. ताहि सुमरे, मो. भोग शमया (समया), म. भोग समया, द. भोग समया । ४. धा. अ. फ. पतो, ना. प्राप्तो । ५. मो. वसतोत्सवो, धा. वसतोच्छवइ, ना. वसंतोच्छव, म. उ. स. वसते छवि (छवी-स.) ।

टिप्पणी—(१) दार =फाड़ना । चिहुर < चिकुर=केश । (२) प्रहा < प्रभा । (३) फुल्ल=विला हुआ ।

[२५]

[पुरी वाक्यः] श्लोक—संवादेव विनोदेव^१ देव देवेन रक्षते^२ । (१)

अन्य प्राणेश्चवा प्राणेश^३ प्राणेश^४ दिल्लीश्वरः^५ ॥ (२)

अर्थ—[संयोगिता ने कहा,] “(१) सवाद मे ओर विनोद मे भी उसी प्रकार, देव देव (महादेव) द्वारा मैं रक्षित होऊँ। (२) वे अन्य प्राण मे या इसी प्राण से [प्राप्त] हैं, मेरे प्राणेश्वर दिल्लीश्वर हैं।

पाठान्तर—(१) १. मो. सवाद्वे विनोदेन, धा. सवाद च विनोदे च, ना सवाद्वे विनादेव, द. संवाद्वे विनादेव, म. सवादे विनोदेव, अ फ. सवाद्वे च (ज-फ.) विनादेव। २. मा. देवे देवन रच्छित, ना. देव देवान रस्थितः, म. उ. स. देव देवान रच्छित. (रच्छित-म.), अ. दवदवते रच्छित, फ. दवदेव न रच्छती।

(२) १. मो. अन्न प्राणेऽयवा प्राणे, वा अ. अन्य प्राणव प्राणैव, ना अनुप्राणेन पानेवा, द. उ. स. अनुप्राणे प्रयाने (प्रवाने-द.) व, म. अनुप्राप्ते प्रयानेव, फ. अन्त प्राणैव प्राणैव। २. मो. ना द. अ. फ. प्राणेवा, धा. प्राणैव, अ. उ. स. म. प्राणैस, म. प्राणैस। ३. अ. फ. मो. ढिङ्गीस्वर, ना. ढिङ्गीस्वर, म. ढिला वारि।

[२६]

दोहरा— तव दूतिन उत्तर करिय^१ पंग पुत्ति परवान^२ । (१)

नृप अगइ^३ वइइ^४ न कछु आन न मुकइ मान^५ ॥ (२)

अर्थ—(१) तव दूतियो को पंगपुत्री (संयोगिता) ने प्रामाणिक उत्तर दिया। (२) वह न राजा के आगे कुछ कहती थी, न [अपनी] आन छोड़ती थी, और न [अपना] मान।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) १. धा. दूती उत्तर आनिदिय, ना. द. दुत्तिनि (दुत्तिनि-ना) उत्तर करिय तिहि, उ. स. दुत्तिज उत्तर उत्तरिय, म. दूतिन उत्तर उत्तरी, अ. फ. दुत्तिनि (दुत्तिनि-फ.) उत्तर आनि दिय। २. मो. पंगपूती परवान, म. उ. स. बुद्धि बध परमान (परमानि-म.), द. अ. बुद्धि समान।

(२) १. धा. आगइ, मो. आगे, ना. अगै, म. उ. स. आग, अ. अगार, फ. अगा। २. मो. बदि (=बइइ), द. बंदी, धा. अ. फ. बदिय, म. वदीय, स. बदिदय, ना. वदिआ। ३. धा. मुकइ मान न आन, मा. आनन मूकि (=मूकइ) मान, म. उ. स. उत्तर दियौ न आनि, ना. द. आनन मुकिय (मुकै-द.) मान, अ. फ. मान न मुकै आन।

टिप्पणी—(१) परवान < प्रमाण। (२) वइइ < वइ। मुक < मुच=छोड़ना।

[२७]

दोहरा— तव मुकित राइ गगह तट त^१ रचिपचि उच्च आवास^२ । (१)

चाहि गहउ^३ चहुआन तकु^४ जु मिटइ^५ बाला आस^६ ॥ (२)

अर्थ—(१) राजा (जयचंद) ने तब क्रुद्ध होकर गंगा-तट पर एक ऊँचा आवास रच-पच कर [उसमें मैं संयोगिता को रक्खा और] (२) यह देखने लगा, “चहुआन (पृथ्वीराज) को पकड़ू जिससे बाला (संयोगिता) की [उसके सबध की] आशा मिट जावे।”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) धा. अ. फ. तव मुकिय (=मुक क्रिय) गंगा तटहि (तट-अ), ना. द. म. उ. स. मुकिन किए (कीय-ना. द.) गंगा तटह। २. धा. ऊच अवास, ना. म. उ. स. उच अवास, ना. द. उच्च अवास।

(२) १. मो. चाहि गहु (=गहउ), धा. अ. चाहि गहहु, फ. चाहि गहहि, म. चाय गहौ, स. चहति गहौ, ना. वाहि गहौ। २. धा. इह, ना. फ. कौ, म. कौ, स. कौ, उ. कौ, अ. कह, द. कु। ३. धा. अ. फ. मिटै, मा. जु मिटै (=मिटइ), ना. ज्यु (=जयत्रं) मिटै, द. म. उ. ज्यौ मिटै (मिटय-म.)। ४. धा. अ. फ. ना. द. उ. स. म. बाल वर (कर-धा.) आस।

[२८]

अडिल्ल — सुनि मुनि^१ वचन राय^२ जवि^३ जपिउ^४ । (१)
 थरहर^१ धर^२ ढिल्लीपुर कपिउ^३ ॥ (२)
 जिउ^{*१} सूर^२ तेज तुच्छत^३ जल^४ मीनह^५ । (३)
 तिउ^{*१} पगह भय^२ दुज्जन भय+ षीनह^३ ॥ (४)

अर्थ—(१) [सयोगिता की] बात सुन-सुन कर राजा (जयचंद) जब जल्पना करने लगा ,
 (२) तब धरा धरा गई और दिल्लीपुर कापि उठा । (३) [जिस प्रकार] सूर्य के तेज से घटते हुए
 जल में मीन [क्षीण] होने हैं, (४) उसी प्रकार पंगराज (जयचंद) के भय से दुर्जन (उसके
 शत्रु) क्षीण हो गए ।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

+चिह्नित शब्द ना. में नहीं है ।

(१) १. म. उ. स. सुनि फुनि, ना. सुनि जो, द. सुन । २. म. राज, ना. अ. फ. राइ । ३.
 धा. अ. फ. द. जब, ना. जो, म. उ. स. इम । ४. मो. जप्यो, धा. जपिउ, म. उ. स. अ. फ. जपे, ना. जप्यौ ।

(२) १. धा. मनहर, ना. धरहर, अ. थरहरि । २. धा. धरि । ३. धा. कपिउ, मो. कप्प, म. उ. स. अ.
 फ. कंप्प, ना. कप्यौ ।

(३) १. मो. द. उ. स. ज्यौ द. ज्यौ, ना. म. ज्यु (=ज्यउ), धा. अ. फ. में यह शब्द नहीं है । २. म. उ.
 स. रवि । ३. ना. तुच्छि, म. उ. स. तुच्छ । ४. म. स । ५. मो. मिनह ।

(४) १. मो. तिउ (< तिउ) द. त्युं, म. उ. ल्यौ, ना. इम, धा. अ. फ. में यह शब्द नहीं है । २. मो.
 पगह, धा. द. अ. फ. पग भयह, ना. पग भय, म. उ. स. पग भय । ३. मो. दूजन भय षीनह (=षीनह), धा.
 अ. फ. द. दुर्जन भय (भये-अ.) षी नह (षीनहि-फ.), म. उ. स. दुज्जन भय छीनह (छीह-म.) ।

टिप्पणी—(१) जंप < जरप् । (४) षीन < क्षीण ।

३. कथमास-वध

[१]

दोहरा—तिहि तप^१ आपेटक भमइ^{*२} थिर^३ न रहइ^४ चहुवान^५ । (१)

वर प्रधान जुगिनि पुरह^१ धर रषइ^२ परवान^३ ॥ २)

अर्थ—(१) उस [विरह] ताप में चहुवान (पृथ्वीराज) आखेट में फिर रहा था, और [राजवानी में] स्थिर नहीं रहता था, (२) न गिनीपुर (दिल्ली) की वरा की रक्षा उसका श्रेष्ठ प्रधान (अमात्य) प्रमाण रूप से कर रहा था ।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

(१) फ. तिह तब । २. मो भमि (=भमइ), वा भमहि, ना भमे, म उ. स. फ. भमै, द. फिरें अ. भय । ३. धा. रहइ (< रहइ), मो ना. द. म उ. स. अ. फ. रहै । ४. फ. चौहुवान ।

(२) १. मो. युगिनि पूरण, धा. युगिनि पुरह, फ. युगिनु पुरहि, ना. जुगनि पुरह, उ. योगिनिपुर, स. योगीनिपुर । २. मो. वर रष्यौ परवान, धा. धर रषइ परधान, ना. सुधर रवन परवान, द. धर रजन फुरवान, म. धर रषै बरवान, उ. गय सामत प्रधान, स. दस सामत प्रधान, अ. फ. धर रषै परवान (परमानु-फ.) ।

टिप्पणी—(१) भम < भन । (२) धर < धरा । परवान < प्रमाण ।

[२]

साटिका—राज जा प्रतिमा स चीन^१ धर्मा^२ रामा^३ रमे^४ सा मतीन्^५ । (१)

नितीरे कर^१ काम वांस^२ वसना संगेन मेज्या^३ गतिः^४ । (२)

अंधारेन जलेन^१ छिन्न^२ चितया^३ तारानि^४ धारा रत^५ । (३)

सा मंत्री^१ कथमास^२ काम अंधा^३ देवी विचित्रा गति^४ ॥ (४)

अर्थ—(१) जो राजा की प्रतिमा (प्रतिनिधि) था, वह लघु कर्मा हो गया, और उसकी मति रामा (कामिनी) में रमण करने लगी । (२) वह जिसके हाथ में तीर नहीं है, ऐसे [धनुर्धर] कामदेव की वामा (कामिनी) के वश में होकर वह उसके साथ शय्या-गत हुआ । (३) अंधेरे में [बरसने वाले] जल से जब क्षिति छिन्न हो रही थी, और तारागण भी [वर्षा के जल की] धारा में रत (लीन) हो रहे थे, (४) वह मंत्री कथमास कामाध हो गया, दैव की भी गति विचित्र है ।

पाठान्तर—(१) म. जजा प्रतिम कन्ह, ना. राजजा प्रतिमा सुवान । २. म. धर्म धर्म, म. धरम, द. उ. स. प्रतिमा । ३. धा. रोमा, मो. रामा, म. राम । ४. धा. अ. फ. रमा, म. रामे । ५. मो. सा मतीन, म. समता, शेष में सामती ।

(२) धा. नितीरे तर, ना. द. नीती रंकर, उ. स. निती रंकरि स. ना तीरे कर, अ. नितीरे (नीतीरे-फ.) कर (करि-फ.) । २. धा. तास, अ. फ. वास । ३. मो. संगेन, शेषा (=सेशया),

धा. सजेन सेज्या, ना. उ म. द. सज्जान सग्या, म. सजन सिज्या । ४ धा गती, म. गता ।

(३) १. म अरधरेन जलेन, उ. अवारन जलिन, म. आधारेन जलिन । २. म ना. स. छीन, फ. क्षत्र । ३. मो. के अतिरिक्त समी में तडिता (जडिता-म., तडिता-फ.) । ४. धा. धाराणि, ना. म. उ. स. तारान । ५. मो. दामन्य । ६. मो. दामायते, धा. ना धारा रता, अ. धारा रती, फ. साधारती ।

(४) १. द. न. उ. स. मो मत्री । २. अ. फ. कैवाम । ३. धा. कामलुवधा, ना. द उ नास विषया, म. नास विषया, स. मास विषया, अ. फ. बुधि हरनो । ४. धा. अ फ. दको विचित्रा गता (गी-अ) मा. देवी बिहदा गति, ना. देवी विचित्रा गता, उ स. देवी विचित्रा गती, म. देवी बिहगा गता ।

टिप्पणी—(१) चीन=छोटा, लघु । (२) नितीरे कर=जिसके करों में तीर न हो । (४) बिहदा < विचित्रा ।

• [३]

दोहरा—करनाटी^१ दासी^२ सुवन^{*३} रजनी अथि अवाम^३ । (१)

काम मुच्छ^१ कयमास तनु^२ दिष्टि विलग्गी तास^३ ॥+ (२)

अथ—(१) करनाट की एक सुवर्ण (सुरूपा) दासी थी जो रात्रि में [राजकीय] आस्थान-आवास में थी । (२) काम-मूर्छित कयमास की ओर उसका दृष्टि लग गई ।

पाठान्तर—X चिह्नित शब्द सशोधित पाठ का है ।

+ चिह्नित ध्वरण मो. में नहीं है ।

(१) १. धा. करणाटिय, म. करनाटीय । २. धा. म. दामिय (दासीय-म.) । ३. मो. कुवन < कुवन), धा. अ. फ. म. सुवन, ना. सगुन, उ. स. सुवर । ३. धा. रजन हि अथि अवास, अ. फ. राजन अधि अवास, फ. राजन अथि अवास, ना. द. उ म. चिन चचर नेय वास, म. रजनी अरध अवास ।

(२) १. मो. मुच्छ, शेष में 'रत्त' । २. म. तहा । ३. अ. फ. दिष्टिय तुठि अवास, द. उ. स. दिष्टि (दिष्ट-स.), उरझिझय तास, म. दिष्टीय पिठ अवास, ना. दृष्टि उलम्भीय तास ।

टिप्पणी—(१) अथि अवास < आस्थान (१) आवास=समा गृह या गोष्ठी गृह । (२) मुच्छ < मूर्च्छ । दिष्टि < दृष्टि ।

[४]

कवित्त—चलउ^{*} सुहिलि^१ कयमास^{*} रयणि^२ नट्टी^३ जाम इकत^४ । (१)

तंबोलय^१ सधि साधि^२ पट्ट रगिनीअ^३ निधि सकित^४ । (२)

दीपक जरइ^{*} सकूरि^१ भमिअ^२ रत्तिअ पति अतह^३ । (३)

अति स रोस^१ भरि भूज^२ लिहि^{*} दीय दामा करि^३ कंतह^४ । (४)

पल्लाणि अस्व तंघिन परीय^१ अवधि दीइअ^२ दुहु घरिय^३ कह^४ । (५)

पल गयण^१ प्रयण वनि^२ म चरिअ^३ नयन^४ नयनप्रथिराज जह^५ ॥ (६)

अथ—(१) एक पहर रात्रि के नष्ट (व्यतीत) होते-होते कयमास उस महल को चला । (२) ताबुल-वाहिका सखी ने [दोनों के] उस निधि (स्नेह) से शंकित होकर पट्टराजी से साक्षी [दी], (३) कि दीपक सकुटित (पतला किया जाकर) जल रहा है, और वह रात्रि पति (चन्द्र) मुख्य कयमास अन्तःपुर में फिर रहा है । (४) [यह सुनते ही] अत्यन्त रोष में भर कर

(रुष्ट होकर) भूर्ज पत्र लिख कर उसने दासी के हाथों में अपने कात (पृथ्वीराज) के लिए दिया। (५) तत्क्षण अश्व पलान (कम) कर उसे [रानी ने] खरी दो बडियों की अवधि [पृथ्वीराज का लाने के लिए] दी। (६) पल भर में वह गजों से प्रकोर्ण वन में संचरण करने लगी और नेत्रों के सकेत मात्र [के समय] में [वह वहाँ जा पहुँची] जहाँ पृथ्वीराज थे।

पाठान्तर—X चिह्नित शब्द संधागत पाठ के हैं।

X विहित चरण धा में नहीं है।

(१) १. मा. चुल मुहिलि, धा. अ. फ. चल्नो महल, ना चल्न्यो महल, म. गयौ महल, द उ म. गयौ मध्य (मवि-द.)। २. मा. किमास (=कयमास) रथणि, धा. कइवासु रयन, अ. फ. कैवासु रेनि, म. कैमास रंन, उ. स. कयमास रयनि। ३. धा. नठियति, ना सपत्ति, द उ स' सपत्ति, अ. फ. नठियति म नठीयत। ४ धा म. ना. अ. फ. जाम (याम-धा.) इक।

(२) १. धा तबाली, अ. फ. तबोल, म तबाले, ना तब बुली, द उ स. तबुलिय। २ वा. अ. फ. साध, ना सीध, म. सवि, अ. फ. उ. स. साध। ३ मो. पट्टरागिना, अ. धा. पाटरागिनि, अ. फ. पट्टरागिनि, म. पट्टरागनी, ना. द. उ. स. पट्टरागिनिय। ४. धा. अनग सिख, अ. फ. उलधि सिक, ना उ. स. निकट सिक, म कसिक सिक।

(३) १. धा. अ. फ. दिय दीपक सपूरि (सपूनि-धा), मो. दापक जरि (=जरइ) सकूलि, ना. द. उ. स. बाय (बास-ना. द.) घात दिय पूर, म. बास ह्यातु कीय पूर। २ वा. नयर, म. भमोय, अ. फ. . स. ना. भ्रमिय। ३. मो. रतिअ पति अतह, धा. ति पति अत कह, अ. फ. भय रत्ति पत्ति तह, म. पाइक जग अतह, ना. पिय किय पति अतह, द उ स. पिय किय अति अतह।

(४) १. मो. अति सरेस, म. अत सरोष। २ धा अ. फ. लिषि भोज, ना. द. उ. स. पिक पानि (पान-ना.), म. रोसष्ट। ३. मो. लह दीय दासी करि, धा. दाउ (<दी) दासी कर, अ. फ. दियो दासी कर, ना. द. उ. स. सुनष (सुन-ना., नष्-उ.) लिषि (लषिषि-ना.) सवि (सकि-ना) कर, म. पत्रि पिकनष लिषि। ४ मो. कलह।

(५) १. अ. फ. पल अस्व हंकि तषिन खवरि, म दासी असि पलनि गमन किय, ना. द. उ. स. असि (पति-द.) असनवारि (असि निवारि-ना.) मग्गह षरिय। २. अ. फ. ना. द. उ. स. अवधि दीन (दिन्न-ना.) म. विधि दिन्ही। ३. मो. ठुडु घरीअ, अ. फ. दुइ घरिय, म घरी दोइ, उ. स. दो घरिय, ना. दुयघरीय।

(६) १. धा वयनि, अ. फ. गयनि। २. धा अ. फ. वयन वन, स. सुराइह, द. सराइह, ना. राइह, म. वयन तहा। ३. मो. सचरीय, धा में 'स' मात्र है। ४. ना. सुष्प, द. उ. स. अयन। ५. धा. जहि, मो. जाहा, म. जहा।

टिप्पणी—(१) रयणि < रजनी। नठु < नष्ट। जाम < याम। (२) पट्टरागिनीअ < पट्टराज्ञी। निधि < स्नेह्य। (३) सकूरि < सकुटित=सिकुडा या सिकोडा हुआ, कम किया हुआ। मम < भन्। रत्तिअ < रात्रि। (४) भूज < भूर्ज लिह < लिख। कत < कान्त। (५) तषिन < तत्क्षण। (६) गय < गज। प्रयण < प्रकोर्ण। सयन < सकेत।

[५]

गाथा—भू मृत^१ सचित सुनिद्रा^{*२} सग⁺X सा^३+X रयणि^X जग्गइ^{X*} अविध्वा^{6X}। (१)

दीपकु^X जरइ^X सुमुद्धा^{१X} नूपुर^२ सहानि^३ भानि अच्छानि^४ ॥ (२)

अर्थ—(१) भूमर्तु (भूमि का भरण करने वाले—भूपति) सुचित होकर सुनिद्रा में है, और [उन के] साथ वह रजनी भी अवैध रूप से जाग रही थी। (२) दीपक जल रहा था, [उसी समय] उस मुग्धा [दासी] ने नूपुर के अच्छ (स्वच्छ) शब्दों से [उस निद्रा को] भग किया।

पाठान्तर—X चिह्नित शब्द सङ्गोष्ठित पाठ के हैं।

X चिह्नित शब्द फ. में नहीं है।

+ चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

(१) १. धा. भ्रमित, अ. फ. ना भ्रुत ' २. मो. सचित, सुनिदा, भा. चक्रित नन्दा, असुचित सुनदा, ना चित्त सुनिदा, म. सुचित नदा, द. सुचित नुनिदा, उ. म. सुचित निदा। ३. अ. संगी मा, ना. संगी मा, द. संगी स, उ. स. सिंगीसार, म. संगेगा। ४. मे. जगि (=जगइ) अविध्या, धा. जानि निय बद्धा, द. मग्गियं बिद्धा, स. जग्गियं बिद्ध, म. जगोय विध्या, ना. जग्गियं बद्धा, अ. फ. जग्गि जिय बद्धा।

(२) १. धा. जरइ समुद्धा, ना. द. अ. जर सुमदा, ना. म. जोर मुमदा, उ. जरत मुद, स. अरत मंड। २. मो. नपर। ३. अ. मह, फ. मदाय ' ४. धा. अच्छामि म. आच्छमि, द. आथानि, अ. फ. यंजने।

टिप्पणी—(१) भूभ्रत < भूमर्त=भूपति। निहा < निद्रा। रवणि < रजनी। (२) सुदधा < मुग्धा। मह < शब्द। मान < भञ्ज।

[६]

साटिका— भूकप^१ जयचंद राय^२ कटके^३ शकापि न ग्यायत^४। (१)
म^५ साहिस्म महावनाहि^६ + सकल^७ इच्छामि^८ युद्धाइने^९। (२)
सिद्ध^{१०} चालुक चाइ मत्र^{११} गहने^{१२} दूरे स विस्वासरे^{१३}। (३)
अग्यान^{१४} चहुआन जान रहिय^{१५} देयोऽपि रक्षा करे^{१६}॥ (४)

अर्थ—(१) जयचंद राज के कटक से भूकप होता था, किन्तु [पृथ्वीराज को] उससे शंका भी नहीं जात होती थी; (२) शाह शहाबुद्दीन से उसने समस्त युद्ध साहस के साथ और इच्छा पूर्वक किए थे; (३) सिद्ध (जैन) चालुक [भीम] को जब मंत्री (कयमास) ने चाव (उत्साह) से पकड़ा था, यह विश्वास में दूर था [उस युद्ध में इसने भाग भी नहीं लिया था]। (४) ऐसे भी चहुआन (पृथ्वीराज) को अज्ञ [कयमास] जान न पाया, [अतः] दैव ही उसकी रक्षा करे।

पाठान्तर—X चिह्नित शब्द द. में नहीं है।

+ चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

(१) धा. भू कपइ, मो. म. द. भूप (भूप-म.) उ. स. भूपान, ना. भू कप, अ. फ. भूकप (भूकपे-फ.)। २. मो. धा. ना. म. उ. स. द. निकट (निकट-म.)। ३. मो. निहा (=नेहा) पि वयु क्यंगनो, धा. नेही पित ग्यायते, ना. द. उ. स. नेहाय (नेहाइ-ना. द.) जग्गाइने (जग्गायने-ना.), म. नाहा पाव्यजागने, फ. शकापि न गायते।

(२) १. मो. ससाहिब साहि सुकल, धा. साहिब साहि जपयो, अ. फ. ताटुक साहि महाव दीन सकल, म. त साहि नाहि सकल, द. ससाहिब बसाइ सकल, ना. संसाहिस्म बसाहि बद्ध सकले, उ. स. संसाहिस्म बसाइ साइ सकल। २. मो. अष्टापि, धा. युष्वापि, म. अछिमि। ३. मो. यूधायनं, धा. न ग्यायते, म. जुद्धाइने, ना. जुद्धाइने।

(३) १. मो. सिधि, धा. सिध, ना. सिद्धी, द. सिधी, उ. स. मिद्धं। २. धा. चित्त, म. मंति। ३. मो. गाहनो, धा. दहनो, ना. म. उ. स. द. गहनो। ४. मो. ना. दूरे स विस्वासरे, धा. दूरेऽपि जानाम्यहं, अ. फ. दूरे सुजाना इते, म. परेस विस्वस रो, द. उ. स. दूरे स विस्वारने।

(४) १. मो. अग्यानां, अ. फ. आग्यान। २. धा. जान रहितं, मो. जामि रहायं अ. जानिरहियं, ना. म. जानि रहोयं। ३. धा. देवोऽपि रक्षा करं, मो. अ. फ. देयोपि रक्षा करो (रछूँछाक र-अ., रक्षा, कर-फ.), ना. द. उ. स. देवं (देव-उ.) तु (च-ना.) रध्या (रिक्षा-द., रच्छा-ना.) करे, म. देवो तूव रिध्या करो।

टिप्पणी—(४) जान रहिय < जान रहित।

[७]

रामा— छत्तिय^१ हत्थु धरंत^२ नयन्ननु चाहियउ^३ । (१)
तब हि दामि करि* हत्थ^२ सु बचि^३ सुनावियउ^३ । (२)
बानावरि दुहु बाह^१ रोस गिस^२ दाहियउ^३ । (३)
मनहु^१ नागपति पतिनि*^२ अप्प^३ जगावियउ^४ ॥ (४)

अर्थ—(१) [जगाने के लिए दासी के] छाता पर हाथ रखते ही [पृथ्वीराज ने] आँखों से [उसे] देखा । (२) दासी ने तभी (तत्काल) [पत्र को] हाथ में [ले] कर उसे बचि सुनाया । (३) [पत्र को सुनते ही] उसके दोनों बाहुओं में बाणावली [शक्ति होने लगी] और वह रोष-रिस से उग्र हो गया । (४) [दासी का पृथ्वीराज को उस समय जगाना ऐसा लगा] मानो नागपति को [उसकी] पत्नी ने आप ही जगाया हो ।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द मशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. धा. छत्तिका, म. छात्रा । २. द. धरनन, ना. धरति । ३. मो. नयन्ननु वादिय, धा. नयन्ननि चाहियउ, अ. फ. नयन्ननि वाहियउ (वाहयौ—फ.), ना. नयन्न विवाहयो, द. उ. म. नयन्नन चाहयौ (चाहयो—द.), म. नयन्ननु चाहयो ।

(२) १. मो. तबही दास कर हथ, धा. उ. स. दासिय दक्षिण हत्थ, ना. द. अ. फ. दासिय दक्षिण हत्थ (हत्थि—ना. , हत्थन—अ. फ.), म. दामी दिष्ण हसति । २. मो. सुबय, धा. लु बचि, फ. बंच, अ. बचि, ना. ति बचि । ३. मो. सुनाययउ, अ. सुनाइयउ, फ. सुनावयौ, म. सुनाइयो, धा. दिषावियउ., स. दिखाययौ, द. ना. उ. दिखाययौ (दिषावयो—ना.) ।

(३) १. मो. बानावलि विदहु (पाठान्तर भी सम्मिलित है) बान, धा. बानावरि बिहुबान, ना. बा नावरि विय बान, म. बानावरी चहुवान, द. बानावल बोय बान, उ. स. जिनबाला बलवान, अ. फ. बानावरि दुहु (बानावर दिहु—फ.) बाह । २. धा. रसि, उ. स. रस, फ. विस । ४. मो. दाहयु (=दाहयउ), धा. ना. म. दाहयो, उ. स. फ. दाहयौ, अ. दाहयउ ।

(४) १. ना. अ. फ. मनौ, उ. स. मानहु, म. परिहा मानुहु । २. मो. नागपति पतिन, धा. नागपति सुत्त, अ. फ. नागपति नारि, स. नागपतित्त, ना. उ. नागपति पति त (त—ना.), म. नागपति पति । ३. धा. अन्नु, अ. फ. सुअप्प, ना. अप्पु, म. सुआप । ४. ना. द. फ. उ. स. जगावयौ, मो. जगाइयु (=जगाइयउ), म. जगावयो ।

टिप्पणी—(१) चाहना=देखना । (२) बंच < वाच < वाच् ।

[८]

रामा— संग सयव न सथिय^१ नृपति न जानयउ^२ । (१)
दुहुं^१ विचि इक दासिय^२ संग समानयउ^३ ।^४ (२)
इदु फणोदु^१ नर्यद न^२ अथिय^३ स भानयउ^४ । (३)
घरह घरिय^१ दुहुं^२ मभिम्भ^३ ततषिन्^४ आनयउ ॥ (४)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज के जाने की बात] न संग की सेना ने जानी और नृप के सथियों ने । (२) दोनों के (पट्टराजी और अपने) बीच में एक रासा को संग में रखकर [पृथ्वीराज ने] उसको सम्मानित किया । (३) उसने इद्र, फणीन्द्र और नरेन्द्रों की अथियों (गोष्ठियों) [के गर्व] को भी भग (समाप्त) कर दिया । (४) [पृथ्वीराज को] वह घर दो घड़ियों में तत्क्षण ले आई ।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

Xचिह्नित चरण म. नहीं है ।

(१) १ म. अरे मग न न मथ्य, अ फ सग सपन्नन सत्य, धा मग सपसयन्न निमत्य, द. मग सयननिसथ्य, ना सपन्नन मत्य । २ धा आनयो (तुल० चरण ४), म फ जानयौ, अ जानयउ, ना. जानयी ।

(२) १. अ दहु, फ दहौ । २. धा. विच्चइ इक दासिज, अ. फ. विच ह इक दासिसु, द. विच हय इक दासिय, ना वोचह इक दासिय । ३ ना. समानया, अ. समानयउ, फ. समानयौ ।

(३) १. धा. इंदफनिद, ना. इंदफुनिद, द इंद मुनिद, उ स. इंद नरिंद । २ मो धा अ फ नचइ (<नरयइ) न, ना. मुनिदइ, उ म फुनिदइ । ३ ना अछि । ४. वा सुभानयो, अ. सुभानयउ, फ सुभानयौ, ना. उ स समानयौ (समानया-ना) ।

(४) अ. फ घरा इक, धा. घरहि घरो, ना. घरह घरो, म. घरा घरा । २. धा. द. दुइ, फ. दुहौ, ना दूवय, उ. स दुअ, म. दोइ । ३. म. मझ, ना मझि । ४. धा. अ. फ ना. ततच्छिन । ५ म. आनयौ, धा. ना. आनयो ।

टिप्पणी—(१) मयत्र < सेना । (३) अस्थि < आस्थान (?) < अधाई । मान < भब्ज् । (४) ततच्छिन < तत्क्षण ।

[८]

दोहरा—नवति नवपल* निसि गलित^१ धनु^२ घुम्मइ*^३ चिहु पासि^४ । (१)

पानि न^१ अषि न^२ संचरइ*^३ महल^४ कहल^५ कयमास*^६ ॥ (२)

अर्थ—(१) [कयमास के महल में आने के अततर] नवनवति (निन्यानवे) पल निशा [और ?] गल (बीत) पाई थी, जब [पृथ्वीराज का], धनुष [कयमास को लक्ष्य बनाने के लिए] उसके पास चारों ओर घूमने लगा । (२) उस समय [अंधकार के कारण] आँखें और हाथ नहीं संचरण कर पा रहे थे, जब कयमास महल में केलि में था ।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

(१) मो. नवति नव पल निसि गलीत, धा. नवति नव पल निसि गलित, अ. फ. नव तन नव पल निमि गलित, ना द. नवति नवपल (नचपल-ना.) निसि गलित, म. नव नवति निस प्रति मिलति, उ. स. रति पति मुच्छि अलुब्ध तन (तुल० अगला दोहरा) । २ धा. म. घन ३ मो. घुमि (<घुम्मइ), न. घूमे, द. घुम्म, धा अ फ म. उ म. घूमा (घुम्यौ-म. अ. फ.) । ४. मो चहुपास, धा. ना चिहु पासि, अ. चहु पास, फ चौह पास, द. उ स चिहु पास, म बुहु पास ।

(२) १. म जानन फ पान नि । २. उ. स अष न । ३ मो संचरि (=संचरइ), अ फ. म उ स. संचर, ना. संचरहि । ४. मो. के अनिरिक्त सभी में 'महल' । ५ मो. फ कलह, भ. केल । ६. मो. 'कमास' (=कयमास), धा. कइमासि, अ. फ. ना. कैमास, म. कैवास ।

टिप्पणी—(२) कहल < केलि ।

[१०]

दोहरा—रतिपति मुच्छि अलुब्ध तन^१ धन डुलइ*^२ बिय*^३ काज^४ । (१)

तडित^१ किअउ*^२ अगुलि अधम^३ सु भरिग^४ बान प्रथीराज^५ ॥ (२)

अर्थ—(१) जिनके तनु रतिपति (काम) से मुच्छित और अलक्ष्य हो रहे थे, ऐसे दोनों के लिए [पृथ्वीराज का] धनुष डोल रहा था । (२) अधम अंगुली ने तडित [के समान कार्य] किया और पृथ्वीराज का बाण भर गया (धनुष पर आ लगा) ।

पाठान् —(१) १ मो. रतिपति मुछी अरुपा तन, धा ना. द अ फ रतिपति मुच्छि लच्छि (अलच्छि—अ. ना) तनु, म रतिपति तुछय अउउ तन, उ स. निसि अद्धी सुद्ध नहा । न. मो वन डु न (=डुनइ) वय, धा. तरनी रवन वय, अ फ. तरनी पान वय, ना द विरम (विरमि—ना.) काम विद, म घन तर पानव, उ स. वर कैमासय । ३ अ. फ काजि ।

(२) १ इस चरण के पूर्व मो. में अतिरिक्त है, 'पुनरु नयन काय' जो कदाचित् इस छंद के किसी अंश का पाठान्तर मात्र है । २. वा. अ. फ. ना. द उ. स करिग, म कीयौ । ३. धा धरह, ना. द म उ स धरम, अ करह, फ करहि । ४ वा करिग, ना धरिग, अ फ म उ. स. भरिग । ५ धा. म अ ना. प्रियिराज । टिप्पणा—(१) मुच्छि < मूच्छे । अलुषि < अलक्ष्य । निय < द्वय ।

[११]

कवित्त—भरिग^१ बान चहुआन जानि^२ दुरि^३ देव नाग^४ नर । (१)
मुट्टि दिट्टि^१ रिसि^२ डुलिग^३ चुकि^४ निकरिग^५ एक^६ सर । (२)
उभय बान दिअ^१ हथि^२ पुट्टि परमारि^३ पचारिय^४ । (३)
वानावरि^५ तटकति^६ घुटित धर धरनि^७ आधारिय^८ । (४)
किय कब्बु सब्बु सरसइ^१ गनित फुणिव^२ कहउ^{३*} कवि चद तत^४ । (५)
इम^१ परउ^{२*} अयास अवास तइ^३ जिम निसि नसित^४ नपत्रपति^५ ॥ (६)

अर्थ—(१) चहुआन (पृथ्वीराज) का वाण भर (चढ) गया, यह जानकर देव, नाग तथा नर छिप गए । (२) [किन्तु] क्रोध के कारण [पृथ्वीराज की] मुट्ठी तथा दृष्टि डोल गई, और एक वाण चूक कर निकल गया । (३) [तदनन्तर] परमारी (पट्टराजी ?) ने उसके हाथों में दो वाण और दिए और पीठ पर (पीछे से) उसे प्रचारा (ललकार कर उत्तेजित किया) । (४) वाणावली के तटकत ही [कयमास का] आहत धड़ आकर धरणी पर आधारित हुआ । (५) [यह] सारा काव्य सरस्वती ने विचार कर कै किया, और तदनन्तर उसने कवि चन्द्र से इसे कहा । (६) कयमास आकाश [-बुम्बी] आवास (प्रासाद) से इस प्रकार गिरा जैसे निशा में नक्षत्रपति (चन्द्रमा) विनष्ट होकर गिरा हो ।

पाठान्तर—० चिह्नित शब्द धा में नहीं हैं ।

+ चिह्नित शब्द ना. में नहीं है ।

(१) १. ना. भरिग । २. म. जान । ३. धा उ. स दुर, मो. दूर, म. दु, अ. फ. दुरि ।

(२) १. ना. घुट्टि (< छुट्टि ?) मुट्टि (< मुट्टि), फ. मुट्ट दिट्ट । २. धा. उ. स. रस, अ. फ. रिस, ना. सर, फ. सिर, म. सिरि । ३. म. रुलिग । ४. मो. चुकि । ५. ना. नन करिग । ६. धा. ना. म. इक्क ।

(३) १. धा. उभय आनि दिय, मो. भय बान दिअ, उ दुतिय बान, स. दुत्ति बान, ना बीयौ बान, म. उभय आन दीयौ, अ. फ. उभय आनि दिय । २. मो. म. उ स अ. हथ्य । ३. म. पूठि, म. मुठि । ४. धा. पावारि, मो. परमार, उ स. पामार, द म पमारि, धा. अ. फ. पावारि, ना. पामारि । ५. उ स. अ. पचार्यो, धा. ना. म. फ. पचार्यौ ।

(४) १. मो. वानीवर तटकति, वा वानीवर तरकत, ना. स. वानि वृत्त (वृत्ति—ना.) तुट्टिकति, द. उ. वान वृत्ति तुट्टिकत, अ. फ. वानि वरत्तरकत, म वानावर तरकति । २. मो. घुटित धर, धा. छुट्टि धर धर, अ. फ. छुट्टि धर धर, म छुट्टि धर धरनि, ना. द. उ स. सुनत (सुनति—ना.) धर (सिर—ना. , सुर—द.) धरनि । ३. धा. उपारथ, ना. द म. उ स आधार्यौ, अ. फ. आधार्यो ।

(५) मो. कीय कव सव शरसि (=सरसइ), धा. अ. फ. इय कब्बु सब्बु (सब्बु—फ.) सरसइ (सरम—फ., सरसै अ), म. हुइ इक्क चित्त वससर, ना. ईय कव सरसै । २. मो. गनीत (=गनित), धा. मुनित, अ. फ.

गुनित, ना गुननि, म. गुणित, स गुनति । ३. धा. फुगित, म उ स ज पुनित, फ पुन्यत्, ना. पुनिन, म फुनि तादा । ४. मा. कहु (= कइउ), शेष में 'कह्यौ' । ५. धा. तन, द तनु, अ ना तति, म दतु ।

(६) १ स मो । २. मो पुर (< पर=परउ), वा इ अ फ पर्यो, उ. स म ना पर्यौ । ३ मो. आयाज त्रुवास ति (=तइ), वा. अवास अयास ते, अ आयास अवास (आवास-फ) ते, फ अइ आवास ते, म. कैवास आवाम त, ना कैमाम अवास त, द. उ. स कैमास अयाम त । ४ मा. जाम निसि भिसित नषत्रपति, धा. जिमनिमि नउत्रपति, म जिम सुनिस नछित्रपतु, अ जिम निसि नमित नक्षत्रपति, फ. जिम निसि निसित नछत्रपति, ना. जानु निसानह छत्रपति, उ जानि निसा नछितपति, द. स जानि निसा न छित्रपति ।

टिप्पणी—(२) चुक=चूका हुआ, भ्रष्ट । (३) पूठि < पृष्ठ । (४) बु- < वृ=आहत होना, भ्रष्ट होना । (५) कव्व < काव्य । सरसइ < सरस्वती । गन < गणय । फुणि < पुनर । (६) अयास < आकाश । अवास < आवास । नसित < नष्ट ।

[१२]

गाथा—सुदरि गहि^१ सारगो दुज्जन^२ दमनोइ^३ पिपि^४ साइक्^५ । (१)

कि कि^१ विलास गहियं^२ कि कि^३ दुषाय दुषाय^४ ॥ (२)

अर्थ—[पृथ्वीराज ने परमारो (पट्टराजी ?) से कहा,] “हे सुन्दरी, तू इस धनुष को थाम, और दुष्ट [कयमास] का दमन करने वाले वाणो को दे। (२) उसने क्या-क्या विलास किए, [किन्तु] किन-किन दुःखों के लिए । ”

पाठान्तर—(१) १ मो गिह । २. मो. दूजन, धा. अ फ म. ना उ स. दुज्जन (दुज्जग-धा म.) । ३ मो. दमनेहि, धा. दमनोइ, अ फ दवनोपि, म. दमनोपि, स सन्नोपि, ना उ दमनोपि । ४ धा पवि । ५ मो. शायिक (=साइक), म. सायकं ।

(२) १. मो. कार्कि, शेष में 'किंकि' । २. अ. फ ना. करिय । ३ मो कथु कथ, ना. द. किंकि न, उ. स. किंकिनो । ४ म दुषाइ दुषीय दुष ।

टिप्पणी—(१) सारग < शार्ङ्ग = सींगों का बना धनुष । पिक्ख < प्र+ईक्ष् ।

[१३]

दोहरा—खनि^१ गडुउ^{*२} नृप^३ अर्ध निसि^४ सम दासी सुरया ति^{+५} । (१)

देव धरह जल घन अनिल^{+६} कहिग चंद कवि प्राति^{+७} ॥ (२)

अर्थ—(१) नृप (पृथ्वीराज) ने उस सुरूपा दासी के साथ [कयमास को] अर्ध रात्रि के समय खन कर गाड (गडवा) दिया । (२) देवताओं, धरा, जल, वन और वायु से भी चंद्र कवि ने ही प्रातःकाल कहा ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

+ द में चिह्नित चरणार्द्ध नहीं है ।

x ना में चिह्नित चरणार्द्ध नहीं है ।

(१) १. मो. षिनि । २ मो. गडु (=गडुउ), शेष में 'गड्यो' (गड्यौ-म. ना) । ३ मो नृपि । ४ मो. अर्ध निशा (< निसी) धा. अर धनह, अ फ अनु धरह, म. अर धुनिस, उ स सम धनह । ५ मो समदासी सुरियाते, धा फ समदासी सुरजात (जाति-फ.), उ. स सा दासी सुरपात (सुरयात-उ), म. श्रमदासी सुरपति ।

(२) १ मो देवि धरह जल घन अनिल, धा देव धरनि जल थल अनिल, उ स देवधारन जलद्धि तें, म देव धरह जलहर अनिल, अ फ देवधरनि जल घन अनिल । २ धा कहिग चन्द्रपति प्रात, उ स. लीला कहिग सुप्रात, म कहिय चन्द्र प्रत वृत्ति, अ फ कहिग चन्द्र कवि प्रात ।

टिप्पणी—(१) सुरया < सुरुया < सुरुपा ।

[१४]

दोहरा—अपु^१ राय वलि वनि गयु+^x सुंदरि संउपि* सदाय^२ । (१)

सुपनतरि^३ कवि चद सउ*^२ सरसइ^३ वडि सु आय^४ ॥ (२)

अर्थ—(१) स्वयं राजा (पृथ्वीराज) उस दाय (सपत्ति या भेद) को सुदरी (परमारी) को सौंप कर वन लौट गया । (२) स्वप्न में कवि चंद से [यह सारी घटना] सरस्वती ने आकर बताया ।

पाठांतर—+चिह्नित चरणार्द्ध में नहीं है ।

xचिह्नित चरणार्द्ध ना में नहीं है ।

(१) मो आवि राय चलि वनि गयु, धा अपु राउ वलि वनह गउ, अ फ. अपु राउ चलि वनह (वनहि-फ) गौ, म० आवि राउ चलि वनह गौ, उ. स. गयौ अपु वन अद्धनिसि । २ मो. सुंदरि सु पि (=सउपि) स दाय, धा. अ फ सुंदरिसु पि (सौपि-अ फ) सुहाइ, म. ना उ. स सुंदरिसौपि (सौपि-म ना.) । सहाय (सहाइ-ना) ।

(२) १ म. सुपनतरि, ना. अ सुपनतर । २ मो. धा. म सु (=सउ), अ. फ. सौ, उ स. सो, ना. सु (=सउ) । ३ धा सरसइ, मो सरसि (=सरसइ), ना उ. स. अ फ सरसै, म परसे । ४. मो वडिसु आय, शेष में 'वडा आइ' (बढिय आय- उ. स., बढीय आय-म) ।

टिप्पणी—(१) वल < वल्=लौटना, वापिस आना ।

[१५]

दोहरा—सु^१ जोतिष तप गति उपाय बिनु^२ नहि देख्यउ* सुनि अषि^{३*} । (१)

तउ मानउ स्यामिनि सयल^१ जउ* सु होइ परतषि^२ ॥ (२)

अर्थ—[चन्द्र ने स्वप्न की सरस्वती से कहा,] “ज्योतिष, तपोबल, तथा उपाय के बिना मैंने कहा हुआ [सब कुछ] सुन कर भी [आँखों से] नहीं देखा, (२) मैं यह सब तब मान सकता हूँ यदि [तू] प्रत्यक्ष हो ।”

पाठांतर—*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. के अतिरिक्त यह शब्द किसी में नहीं है । २ धा जोतिग तियगति उपय विनु, ना. अ. फ. जोतिक (जोनिग-फ. ना.) तपगति उपय (ठपय-अ.) विनु, द. जोतिक तप उपाय वन, म. सच तौ मानू सामनी, उ. स. जो तिक पगति उप्पज्यै । ३ मो. नहि देख्यु (=देख्यउ) सुनि अखि (=अषि), धा नहि दिक्खिय...न अक्खि, अ. फ. सुनिय न दिषि अषि (दिषी अष-फ), ना नहि दिष्यौ सुनि अषि, द. नहि देखौ सुख अषि, म सकल सुम षति दषि, उ स बैनन दिषि कविचद ।

(२) १. मो. तु (=तउ) मानु (=मानउ) स्यामिनि सयल, धा द. अ. फ. तउ (तौ-अ फ) मानउ (मानौ-अ. फ.) स्वामिनि (स्वामिन-फ) सकल, ना तौ मानौ स्वामिनि सब, म. चद कहै बदी बयन, उ स. साम प्रगट बर कष नह (बरधनह-उ) । २. मो. जु (=जउ) सु (=सु) होइ परतषि (=परतषि), धा.

जइ तुसी होइ परतविष, ना. जो होवै परतिष, अ. फ. जो सु होइ परतिषि (परतषि-फ.), म जो स होइ परतषि, उ. स बर प्रमाद (प्रसाद-उ) मुख इद ।

टिप्पणी—(१) अष < आ + ख्या = कहना । (२) परतषि < प्रत्यक्ष ।

[१६]

अडिल्ल— भइ परतषि^१ कवि^२ मनि आई^३ । (१)
उगति उकठ कंठ^१ समुहाई^२ ॥ (२)
बाहन हंस अंस^१ सुखदाई^२ । (३)
तब तिहि^१ रूप चंद कवि घाई^२ ॥ (४)

अर्थ—(१) [सरस्वती] प्रत्यक्ष हुई और चन्द कवि के मन में आई । (२) [परिणामस्वरूप] उक्तियों की उत्कण्ठा कवि के कंठ में समुहाने (आगे आने) लगी । (३) [सरस्वती का] वाहन सुखदायक हंस का अस (कथा) था । (४) तब उस (सरस्वती) के रूप का चन्द ने [इस प्रकार] ध्यान किया ।

पाठान्तर—(१) १ मो. पइ परवि, अ. फ. भई परतषि (परतिषि-फ.), ना. म. भईय परतषि (परतषि-ना.) । २ मो. कविचन्द, धा. कवी, ना. द. उ. स. सुकवि, अ. फ. म. कवि । ३ अ. फ. मन आई, ना. द. उ. स. मनाई, म. मनह आई ।

(२) १. धा. अ. फ. उकति कठ कंठह, म उकति कंठ कंठ, उ. स. उगति जुगति कहि कहि । ना. द. उकति उकंठ (उकंठ) कठ (कठ) । २ मो. धा. स. समुहाई (समझाइय—धा.), म. समझाइ ।

(३) १. धा. इस, म. अस । २. म सुखदाइ ।

(४) १. मो. तिठ तिहि, म. तब कवि । २. मा. चकवि घाई, धा. चन्द कवि घाईय, ना. द. उ. स. ध्यान कवि (धरि-ना०) पाई (ध्याई-ना. द.), म. ध्यान न भ्याइ, अ. फ. चन्द कवि गाई ।

टिप्पणी—(१) परतषि < प्रत्यक्ष । (२) उकठ < उक् + कण्ठा । (४) धा < ध्ये = ध्यान करना, चिन्तन करना ।

[१७]

अर्ध नाराच— मराल^१ बाल आसनं^१ । (१)
अलित्त^१ छाये^२ सासनं^३ । (२)
सोहंति^१ जासु तुंबरं^२ । (३)
सुराग राज^१ धुंमरं^२ । (४)
कयंद केस^१ मुकरे^२ । (५)
उरग^१ बास विठ्ठरे^२ । (६)
कपोल^१ रेख गातयो^२ । (७)
उवंत^१ इंदु प्रातयो^२ । (८)
बभूव^१ बूव वंचये^२ । (९)
कलंक^१ राह^२ वंचये^३ । (१०)

श्रवन्न ^१	ताट ^२	पिष्यो ^३	। (११)
अनग	रथ	चकयो ^२	। (१२)
उछंमि	बारि	षंजयो ^२	। ⁺ (१३)
तिरंति	रूव	रंजयो ^२	। ⁺ (१४)
सुबाल ^१	कीर	सुद्धयो ^१	। ^{×००} (१५)
तकंत	रत्त	बिंजयो ^२	। ^{×००} (१६)
दिपंत ^१	तुच्छ	दिठ्ठयो ^२	। (१७)
विची ^१	अनार	फुट्टयो ^२	। (१८)
सुग्रीव	कंठ	सुत्तयो ^२	। (१९)
सुमेर	गंग	पत्तयो ^२	। (२०)
भुजा स	जासु	तुड्डरं ^{*१}	। (२१)
सुरत्ति ^१	लग्गि ^२	अंमरं ^३	। (२२)
नषादि	अद् [*]	रषिण ^१	। (२३)
घरंति ^१	सच्छ ^{*२}	लषण ^३	। ⁻ (२४)
कनक्क	सा	विपच्चया ^{*१}	। [÷] (२५)
सुराग	सीस	दिठ्ठया ^२	। (२६)
विविच्च ^१	रोम	रिथये ^२	। (२७)
मनु ^१	पपील	रिंगये ^२	। (२८)
हरंति ^१	छ्वि ^२	जामिनी ^३	। (२९)
कटित्त ^१	हीनि ^२	कामिनी ^३	। ^४ (३०)
अभाष	दोष	बंचही ^१	। [×] (३१)
सुहं त ^१	देव	संचही ^१	। [×] (३२)
अपुठ ^१	रंभ	नारुहे ^२	। ^{३×} (३३)
अदेव ^१	बंभु	मानुए ^२	। ^३ (३४)
सुरंग	चग	पिडुरी ^१	(३५)
कली सु	चंप	अंगुरी ^१	। (३६)
सबद्द ^१	बद्द	नुप्पुरे ^२	। [×] (३७)
चलंति	हंस	अंकुरे ^२	। [×] (३८)
सुभाय ^१	पाय ^२	रंगु जा ^१	। [×] (३९)
सु अध्व ^१	रत्त	अंबुजा ^२	। ^{३×} (४०)

अर्थ—(१) बाल मराल (हंस) जितका [सरस्वती] आसन था, (२) अलि (भ्रमर) शासन (नियंत्रण) पूर्वक जिस पर छाए हुए थे, (३) जिधकी बीणा का तूँबा शोभा दे रहा था, (४)

[जिससे निकलते हुए] अच्छे रागो का ध्रुम शोभित हो रहा था, (५) कलिङ्ग [के समान जिसके श्याम] केश मुक्त थे, (६) जैसे सुवास के लिए उरग (सर्प) बैठे हुए हो (७) जिसके गात्र में कपोलो की रेखा [ऐसी लगती थी] (८) मानो इंदु प्रातः काल में उदित हुआ हो (९-१०) और जो राहु के कलंक से बचने के लिए [अपने मृगरथों के] जूए को बहुत खींच रहा हो, (११) कानों में ताटक दिखाई पड़ रहे थे, (१२) [जो ऐसे लगते थे] मानो अनग-रथ के चक्र हो, (१३) [जिसके नेत्र ऐसे थे जैसे दो] छोटे वारि-ध्वजन (१४) रूप के रजित जल में तेर रहे हो, (१५) [जिसकी नासिका ऐसी थी मानो] सीधा (सरल स्वभाव का) बाल कीर (१६) लाल विंबाफल [सदृश ओंठो] को ताक रहा हो, (१७) [जिसके दाँत ऐसे] तुच्छ (छोटे) और दीप्त दिखाई पड़ रहे थे (१८) मानो अनार का फल बीच से फट गया हो, (१९) जिसकी ग्रीवा में मुक्ता-माल थी (२०) [जो ऐसी लगती थी मानो] सुमेरु ने गंगा को प्राप्त किया हो । (२१) जिसकी भुजाओं में टोडर थे, (२२) जिसके अंबर (चीर) में रक्तिका (धुंधली) लगी हुई थी, (२३) जिसके नख आद्र (कामल) और रक्षित (२४) और स्वच्छ लक्षणों को धारण करते थे, (२५) कनक का विपचित (जड़ाव-युक्त) (२६) जिसका सुंदर शीश (शीशफूल) दिखाई पड़ रहा था, (२७) जिसको विविक्त (दृग्भूत, प्रकट) रोमावली थी, (२८) जो ऐसी लगती थी मानो पिपीलिकाएँ रग रही हो, (२९) जो यामिनी को छवि का अपहरण करती हो (३०) ऐसी क्षीण जिस कामिनी की कटि थी, (३१) [जिसके गुह्य प्रदेश का वर्णन न करके] अपभाषण दोष से बचते हैं (३२) और देवता शुभ का सचय करते हैं, (३३) [जिसकी जँघे] अपुष्ट (कोमल) कदली-नाल [के सदृश] थी, (३४) मानो वे अदेव (अनीश्वर विश्वासी) के [स्थूल] ब्रह्म हो, (३५) जिसकी पिंडलियाँ सुंदर और अच्छी थी, (३६) जिसकी उंगलियाँ चण की कलियों के समान थी, (३७) जिसके नूपुर शब्द कर रहे थे, (३८) [मानो] मराल चल रहे हों (३९) और जिसके पैर स्वाभाविक रीति से ऐसे रजित थे (४०) मानो उनके नीचे रक्त (लाल) कमल हो ।

पाठान्तर—० चिह्नित चरण मो. में नहीं है ।

(० ०) चिह्नित चरण धा. में नहीं है ।

+ चिह्नित चरण द ना. में नहीं है ।

X चिह्नित चरण म में नहीं है ।

— चिह्नित चरण फ. में नहीं है ।

* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. म. सुराल ।

(२) १ द अलित्ति । २ फ बाइ, अ ना. छाइ, स साय । ३ अ फ. तासन ।

(३) १ म सोहत, ना साहता (सोहती), अ. फ सुहत, द. सुहति । २. मो. जासि तमर, उ. स. जास तामरं, म जास तबर ।

(४) १. मो सुराग राय (=राज), ना. म. जु राग राग, द. स. सुराग राज । २. मो धूमरं, उ स धामरं ।

(५) १ ना कश्यप केस, म. उ. स. कलिङ्ग केस, म कलिङ्ग केजि, अ. फ. कइद केस । २. धा. अ. फ. ना म उ स. मुकरे, म. मोकरे ।

(६) १. धा म उरग (=उरग) । २ धा वास विद्धरे, फ वास विच्छरे, ना. वास विठुरे, द बाल विडरे, म. वाम विडरे, उ स. बाल विथुरे । ३ उ. स में यहाँ और है :—

लिलाट रेष चदन । प्रभात इंद बदनं ।

(७) १ गा कपिल । २. धा गत्तयो, अ. फ. गातए (गातुए-फ) ।

(८) १. धा उठनु, फ. उवति, म. उवत्त । २. मो. म इंद प्रातयो, अ. फ. इद (इदु-फ.) प्रातए, ना इंद प्रातयो, उ. इद्र प्रातयो, स इन्द्र पातयो, म अंदु प्रतयो । ३. उ स में यहाँ और है (स पाठ) :—

त्राटक शक झकई । तिलक पान सकई ।
सुरत तेज भासई । रलत मुत्ति पासई ।
उपम चइ जपयौ । ननत कीर सीपयौ ।
निभग मार आतुर । त्रिवृक चारु चातुर ।

(९) १ धा म इ. ना विभूज, म विभूज, अ फ त्रिवूज । २ वा. ना. द. म. षनयौ (षजयो-ना.),
अ फ. षजण ।

(१०) १. म किलक । २. वा म. राहु । ३ वा ना. द. म. वचयौ, स चपयौ, म. चपयो, अ फ.
वचण (चवण-फ) ।

(११) १ म श्रयन । २ धा टाट, अ फ. तट्ट, उ. स त्राट । ३. अ. फ पिष्वण ।

(१२) १. अ फ चक्कण ।

(१३) १ धा. उछाइ वारि षजयो, अ फ उछाहि वारि षजण, उ स उछाइ कीर षजन ।

(१४) १. मो. तिरति रूप रजयो, वा तिरत रूप रजयो, अ फ. तिरत तवरजण, उ. स तरन्न रूप
रंजन ।

(१५) १. द ना जु । २. द सवयो, म. सुभयो, अ. फ. सुद्धण ।

(१६) १. अ. फ. तर्कित त्रिव रत्तण, ना तर्कत् रत्त त्रिवयो ।

(१७) १ धा दिपति । २ अ फ दिट्टण, म. द्विष्टयो ।

(१८) १ धा. अ फ. विवी (< त्रिवी), मा. विवा, म विचि, ना. विचि, द स. विच । २.
अ फ. फट्टण (फुट्टण-फ.), म फट्टना ।

(१९) १ मा मोतयो, अ फ सुत्तण ।

(२०) १. अ. फ. पत्तण ।

(२१) १. मो. भुजा म (< स) जासु तंमर (< तडर = तडुर), धा भुजाय नास तूवर, म. फ. भुजास
जास (भुजासु जासु-फ.) तुवर, अ सुगाइ जासु तुवर, ना. द. सुभत तास (जासु-ना.) तुमर, उ. स. सुभत
कुच्च तुमर ।

(२२) १. मो सुवत्त, स सुरच्छि । २. मा लग्न । ३. अ. फ अतर, ना. म. अवर ।

(२३) १ मा निखध अध रखिण, वा. अ फ. निषाध आध र छिन (रच्छिन-अ, रक्षिन-फ), ना नषादि
आदि रष्वन, म निषीय अर रषन, उ स. नषादि ईस अच्छन ।

(२४) १. ना. म. धर त । २. उ सच्छि (साछ < साच्छ), शेष में 'सीस' । ३ मो. रक्षण, धा उ. स.
म. अ. फ. लच्छिन, ना. लष्वन । ४ उ. स में यहाँ और है :—

सुरग हथ्य सुदरी । सो पानि सोय सुदरी ।

सुजीव भ्रम्म वालग । सुगध तिष्व तालय ।

(२५) १. म साव प्रोचया, शेष में 'सा विष्वया' (< विष्वया) ।

(२६) १ मो सुराग शिसि दिठया, धा. जुराग सीस रडढया, अ फ. सुराग सीसरडढया, ना. म. सुराग
सीस दडढया (डढया-म), स. सुराग निभ दिव्वया, उ सुराग सिभ दिव्वया ।

(२७) १ धा. ना. विविचि, अ फ. विवाच, द. विवव, म. विवित्त, फ. विचाच । २. मो. रथयो, धा.
रगण, ना. द उ. रगयो, म. रिंघयो, स. रगय ।

(२८) मो. मनु पिपील रथयो, धा. मनो पिपिल रेंगण, अ फ मनौ पिपील रिंगण (रगण-फ.)
म. मानो प्रपील रिगयो, द ना प्रपालिका (पिपीलिका-ना) सुरगयो, उ. स पपील सुत्तरगय । २. अ. फ.
में यहाँ और है :

सु सोभिना निरूपण । अनग जानि कूपण ।

(२९) १ हरत, ना. हरत्ति । २. मो. छत्रि, धा छत्ति, म. पाप, अ. फ. छिन्न । ३. मो. जामिनी, म
याजनी ।

(३०) १. उ. स. कटिसु, म. कटत्त, ना. कटत्ति । २. मो हानि (< हीनि),- अ फ. ना. हीन । ३. म.
कामनी, ना स्वामिनी, उ म. सामिनी, द. सामनी ।

(३१) मो. मोदति, अ. फ. सुभ त ।

(३३) १. मो अपू० रभ, वा. अपुठ रग, अ. फ अपुब्ब रग, द ना उ स अपुठ । २. ना नारणी, स उ द. नारिनी, अ. फ जानुण ।

(३४) १. द. सदेवि, म. सख ना सुदेव । २. धा. अ. फ बभ मानुण, मो. ब्रह्म चारु रे, ना. म स उ. द. ब्रह्मचारिणी (ब्रह्म वारनी-म) । ३. उ. स में यहाँ और है : सजुत ओपकारिनी । ४. उ स. में यहाँ और है :—

अबुद्ध बुद्धि कारिनी ।

नयन्न नास कोसई । बरट्टि कट्टि भेसई ।

झलक्क तेज कबुजं । चरन्न चारु अबुज ।

(३५) १. धा. चग पुडरी, म. चग उमरी, ना. द. रग उम्भरी, उ. स. रंग ईडुरी, म. चग स्वभरी ।

(३६) १. मो. कलिन (=कलीन) चप पिडुरी, धा. कलिंद चंद अगुरी, अ. फ कली सु चंप (सचपि-फ) अगुरी, ना. स. उ. द. कलति चपि (चपू-ना.) पिडुरी (पुडरी-ना), म. कलीन चप तुडरी (पुडरी) । (पिडुरी चरण ३५ में आ चुकी है ।)

(३७) १. उ. स. सह, फ. दब्ब । २. धा. अ. फ. नूपुरा, ना. स. द. नूपुरे, उ. नूपुर (< नूपुरे) ।

(३८) १. मो. चलत्त । २. धा. अ. फ. अकुरा ।

(३९) १. धा. अ. फ. सुभाइ, द. उ. स. सुपाइ ना सभाय । २. धा. पाइ ।

(४०) १. ना. द. अध रत्त, धा. अ. फ. जुअद्ध । २. धा. अमुजा । ३. उ. स. में यहाँ और है :—

दरस्स देवि पाइय । सुकब्बि कित्ति गाइय ।

टिप्पणी—(४) धूमरं < धूम्र । (५) कयद < कलिंद । मोकरे < मुक्त । (६) विठ्ठ < विष्ट-बटे । (७) वभूव < प्रभूत । जूव < यूष । (१३) उच्छ < तुच्छ । (१४) रुव < रूप । (२०) पत्त < प्राप्त । (२३) अद्द < आर्द्र=कोमल । (२५) विपच्चया < विपचित्त । (२७) विविच्च < विविक्त=पृथग्भूत, प्रकट । (३२) सुह < शुभ । (३३) अपूठ < अपुष्ट । (४०) अध्व < अधस् ।

[१८]

अडिल्ल—अबुज बिकस^१ बास^२ अलि आयौ^३ १।४ (१)

सांमि^१ वयनि^२ सुंदरि^३ समझायौ^४ । (२)

निस^१ पल पंच घटिय दोइ^२ धायौ^३ । (३)

आषेटक नषे^१ नृप आयौ^२ ॥ (४)

अर्थ—[सबेरा होने पर] कमलिनी विकसित होने लगी और उसकी सुवास के लिए अलि (भ्रमर) आ गया । (२) स्वामी (अलि) ने वचना में सुंदरी (कमलिनी) को समझाया । (३) रात्रि में दो घड़ी तथा पाँच पल नृप (पृथ्वीराज) दौड़े थे, (४) अब वे आषेटक को समाप्त कर आ गए ।

पाठांतर—(१) अ. फ. बिकसि, ना. बिकसि । २. अ. बासु, फ. ना. बासि । ३. मो. आयु (=आयौ), म. ना. आयौ, शेष में 'आयो' । ४. म. में यह चरण नहीं है और इसके स्थान पर यथा द्वितीय है : वन गहयौ धर माहि छिपायौ ।

(२) १. धा. अ. फ. ना. द. उ. स. स्वामि, म. स्वामन । २. मो. वयनि, शेष में 'वचन' । ३. ना. सुंदर, म. चंद । ४. मो. समझायु (=समझायौ) धा. सब जायो, शेष में 'समुझायौ' या 'समुझायौ (समझायौ-ना. म.) ।

(३) १. मो. निश (निस), म. नस, अ. फ. निसि । २. धा. अ. घडिय दुइ, ना. घटी दुइ, उ. स. घटी दू, द. घटादुय, म. घटी दो, अ. घडिय दुइ, फ. घरीय दो । ३. मो. धायु (=धायौ), धा. ना. धायो, अ. धाए, उ. स. आयौ, इ. म. फ. धायौ ।

(४) १. धा. अ. फ. शंषे, मो. जंषे, उ. स. जंषि, ना. अकिह, द. शषि, म. शषे । २. मो. आयु

(=आयउ), धा. अ. फ ना. म द. उ. स. आयौ (आयौ-धा. अ.) ।

टिप्पणी—(२) वयन < वचन । (४) नष < नश = फेंकना, समाप्त करना ।

[१९]

अडिल्ल—मभूम^१ पहर^२ पुच्छइ^{*३} तिहि^४ पडिय^५ । (१)

कहि कवि^१ विजय^२ साह^३ जिह डंडिय^४ ॥ (२)

सकल सूर^१ बोलिव^२ सभ^३ मंडिय । (३)

आसिष^१ जाइ दीध^२ कवि नडिय^३ ॥ (४)

अर्थ—(१) [प्रथम या मध्य के] प्रहर के मध्य (समय) वह (पृथ्वीराज) पडित (जयानक ?) से पूछने (कहने) लगा, (२) “हे कवि, मेरी विजय [का काव्य—पृथ्वीराज विजय] कहो, जिस प्रकार मैंने शाह शहाबुद्दीन को दंडित किया है ।” (३) तदनंतर समस्त शूरों को बुला कर उसने सभा की, (४) जिसमें चंड (उग्र) कवि [चट] ने आशीर्वाद दिया ।

पाठांतर—*चिद्धित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो म मधि, अ. ना. मध्य । २. मो. पहर, ना. पिम्म, फ. पहरि, द. प्रहर । ३. मो. पुच्छि (=पुच्छइ), म पुछीय, ना. पूच्छे, अ. फ. पूछै । ४. धा. तिहि, ना. द. म प्रभु, उ. स. नृप । ५. म. चडीय ।

(२) १. म. विप्र । २. धा. कहि । ३. धा. ना. साहि । ४. मो. तिह षडीय, अ. फ. ना. जिहि डडिय, म तिहै डडीय, उ. स. जिन मडिय ।

(३) १. ना. सु । २. धा. अ. बोलिव, मा. बोलइ, फ. बोलिउ, उ. स. बठे । ३. म. सभा ।

(४) १. म. आसिक । २. धा. जाइ दियो, अ. फ. दीयो जाइ, ना. जाइ दियो, उ. स. आनि दीय, म. दियो आइ । ३. मो. तब चडीय, धा. म. ना. अ. फ. कवि चंडीय, उ. स. तब चदिय ।

टिप्पणी—(१) पडिय < पडित । (२) विजय = पृथ्वीराज विजय ।

[२०]

मुडिल्ल—प्रथम^१ सूर पुच्छइ^{*२} चहुआनहु^३ । (१)

हइ^{*१} कयमासु कहूं कोइ^२ जानहु^३ । (२)

तरणि^१ छिपंत संझि^२ सिर नायउ^{*३} । (३)

प्रात^१ देव^२ मुहुल न^३ पायउ^{*४} ॥ (४)

अर्थ—(१) पहले चहुवान (पृथ्वीराज) शूरों से पूछने लगा, (२) “कयमास कहीं है ? कोई जानते हो ?” (३) [उन्होंने उत्तर दिया,] “सूर्य के छिपते समय संध्या काल में [हमने उसे] सिर झुकाया था, (४) किन्तु हे देव, प्रातःकाल हमने उसे महल में नहीं पाया ।”

पाठांतर—*चिद्धित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. अ. फ. पृथिमि । २. धा. पूछइ, मो. पुछि (=पुच्छइ), अ. ना. द. म. उ. स. पुछै, फ. पूछै । ३. धा. अ. फ. ना. चहुवानइ, उ. स. चहुवानइ, म. चहुवानहु ।

(२) १ मो. हि (=हइ), शेष समस्त में 'है' । २ धा. कहहु किहु, अ कहहु कहु, द. उ. स. कहौ कहु, फ कहा कहौ, ना. कहौ कहाँ, म कहा कोउ । ३. धा द जानहु, उ. स जानय, म जानहु ।

(३) १ धा अ फ तरनि, म. तरतु । २. धा. छिपत सझि, द उ स. अ. फ छिपत सझ, मो छपत मझ (< मझ), द छपत सकि, ना छिपति साझ, म छिपतह सीस । ३ मो नायु (= नायउ), धा. अ फ नायो, ना उ स नायौ, म नवायौ ।

(४) १ धा प्रातु, ना प्रातह । २ धा. अ फ उ स. देव हम, म. देव है । ३. धा. अ फ उ स महल न, ना. महल नहु, म मोहल न, द महल नहि । ४ मो पायु (= पायउ), धा अ फ पायो, म ना पायौ ।

[२१]

दोहरा—उदय अगस्ति नयन⁺ दिठि⁺ उज्जल जल ससि कास^२ । (१)

मोहि चंद हइ^१ विजय मन^२ कहहु कहाँ^३ कयमास^४ ॥ (२)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज ने कहा,] “अगस्त्य का उदय हो गया, और नेत्रों से जल, चन्द्रमा तथा कास उज्ज्वल दिखाई पड़ने लगे । (२) हे चंद मुझे मन में [कन्नौजराज पर] विजय की [लगी हुई] है, बताओ कयमास कहाँ है ?”

पाठान्तर—+ चिह्नित शब्द धा में नहीं है ।

× म में इस छन्द का पाठ है :—

मुडिल—उव अगास रिती अभिदात । मोहि चंद हे विजया मातं ।

उज्जल लेन सोसि आकास । कहि हौ मोहि कहा कैवास ।

(१) १. मो उदय अगस्ति न चंद ति, अ. फ उद अगस्ति रितु नव नदिन (—निदितु फ.), ना द उदय अगस्त रितु नयन दिन (दिठ — द), उ स उदय अमन तौ नयन दिठि । २ मो. नव ससि कास, ना. द. सिसि आकास ।

(२) १. धा. हइ, मो. हि (=हइ) । २ धा म. मनु । ३ मो कहहु काहा, ना कहिहि कहौ । ४ धा कइमास, मो. किमास (=कयमास), अ फ कैवास ।

[२२]

दोहरा— नागपुर सुरपुर^१ सयल^२ कथित कहउ^{*} सब^३ साज । (१)

दाहिम्मउ^{*} दुल्लह भयउ^{*१} कहउ^{*२} न जाइ प्रथीराज^३ ॥ (२)

अर्थ—(१) [चन्द ने कहा,] “नागपुर (नाग लोक), सुरपुर (देव लोक) [आदि] सब के सब साज यदि तू कहे तो मैं कहूँ । (२) [किन्तु] दाहिमा कयमास [इन लोको में भी] दुर्लभ हो गया है, [अतः] हे पृथ्वीराज, मुझ से कहा नहीं जा रहा है [कि वह कहाँ है] ।”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

(१) १ धा अ फ नागपुर नरपुर, ना नागपुर नरसुर, उ स. नागपुरह नर सुर, म. नागपुर सुरपुर । २. अ फ सकल, उ स. पुरह । ३ मो कथित कहू (< कहूँ=कहउ), वा. अ. कथि सुदेव पुर, फ. कथिग देउ पुर, ना उ. स कथत (कथित—ना.) सुनत सब, म द ना. कथित सुनहि सब ।

(२) १. मा. दाहिमु (= दाहिम्मउ) दुल्लभ भयु (= भयउ), शेष में ‘दाहिम्मो’ (दाहिमौ—ना. म) दुल्लह भयो (भयौ—म), २. मो. कहूँ (< कहूँ=कहउ), धा अ. फ. उ स कहि, ना म. कहयौ । ३. धा. ना प्रिथिराज, म. प्रिथिराज, द. प्रतिराज ।

टिप्पणी—(१) सयल < सकल । (२) दुल्लभ < दुर्लभ ।

[२३]

दोहरा— कहा^१ भुजग कहा उदे सुर^२ निकसु कव्व कवि^३ षंडि^४ । (१)
कइ^{*} कयमास^{*} बताहि मो^१ कइ[×] हर^२ सिद्धी^३ वर छंडि^४ ॥ (२)

अर्थ—(१) ‘[पृथ्वीराज ने कहा,] “[कयमास] क्या भुजग (नाग) अथवा क्या सुर (देव) [यानि मे] उदय हुआ है—जन्मा है ? तू अपने निकम्मे काव्य को, हे कवि, नष्ट कर दे । (२) या तो तू मुझे कयमास को बता, और या तो हर-सिद्धि को वर छोड़ दे ।”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द धा अ फ स में नहीं है ।

* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. धा. उ. स का, म. काहा, द कहा, अ ना. कहि । २ धा का देव नर, अ. फ कह (कहा-फ.) देव नर, द कहा देव सौ, ना. कहि देव सु, म. का देव सुनि, उ. स. काह देव मसि । ३. मो. निकमक कवि, धा. ना द म निकम काव (कव्व-धा, कबु-म) कवि (कबु-ना), अ फ करन कछु (कच्छि-ना) कवि, द. उ. स निकम कवित्त (कवि-द) जु । ४ फ षड ।

(२) १ मो. कि (=कइ) किमास (=कयमास) बताहि मो, धा ना द म. उ. स कै बताउ (=बताइ म) कैवास मोहि (सुहि-म.), अ फ बतावति कैवास मुहि (वरि-फ) । २. मो कि (=कइ) हिर, अ हरि, फ हर, धा स. हर, ना कै हरि, म उ कै हर । ३ फ द. सिद्धिय । ४ फ छड ।

टिप्पणी—(१) कव्व < काव्य ।

[२४]

दोहरा—जउ^{*१} छडइ^{*२} सेसह^{३×} धरणि^{४×} हर^{५×} छडइ^{×*४} विष^{६×} कद^{७×} । (१)
रवि^{८×} छंडइ^{×*१} तप ताप कर^{*२} तउ^{*३}— वर^४ छंडइ^{*४} कवि चद ॥ (२)

अर्थ—[चंद ने कहा,] (१) “यदि शेष धरणी को छोड़ दे, शिव विष-कंद [का खाना] छोड़ दे, (२) सूर्य अपनी गर्मी और तापपूर्ण किरणें छोड़ दे, तो कविचंद [सिद्धि का] वर छोड़ सकता है ।”

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

× चिह्नित शब्द धा में नहीं है ।

—चिह्नित शब्द अ फ उ. स. में नहीं है ।

(१) १. धा. जो, मो जु (=जउ), ना. द. फ. जै (<जइ), उ स अ. प जौ । २ मो छडि (=छडइ), उ स. छडे, म. अ. फ ना. छडे । ३ अ फ. ना सेसु तु, म सेसु त । ४ मो छडि (=उडइ), उ. म. अ फ. ना. म छंडै । ५ म. कदु ।

(२) १. मो. छडि (=छंडइ), ना म. उ. स. अ फ. छड । २ मो धा फ तप ताप कर, अ (कर-मो), अ तप ताप कौ, म. जौ तपि किरनि । ३. मो. तु (=तउ) वर, म. तौ वर, धा अ. फ. उ स वर (वर-उ स), ना. नौ (<तौ) वर । ४ मो. छ, धा अ. फ म ना उ. स. छड ।

टिप्पणी—(१) जइ < यदि । (२) तउ < तदा ।

[२५]

दोहरा—हठि^१ लगउ^{*} चहुआन^२ निप अगुलि^३ मुषह^४ फणिदु^५ । (१)
तिहुपुरि^६ तुअ मति^७ संचरइइ^{*८} कवन^९ सुहे^{१०} कवि चंडु ॥ (२)

अर्थ—चहुआन राजा (पृथ्वीराज) हठ मे पड़ गया, ओर उसका हठ करना [मानो] फणीन्द्र के मुल मे उँगली देना था। (२) [उसने चद से कहा,] “तेरी बुद्धि तीनों लोको मे सचरण करती है, इसलिए हे कवि चद, यह बताने से ही बनेगा [कि कयमास कहो गया है]।”

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. हठि लगु (= लगउ), वा. हठ लग्यो, अ. फ. हठि लग्यो, ना. हठ लग्यौ, उ. स. हठ लग्यौ। २. फ. चौहुवान। ३. मो. अगुली, म. अंगुरा। ४. धा. सुषहि, उ. स. सुष, म. सुष। ५. मो. फणिंद, धा. फनिंद, म. उ. स. फ. फुणिंद (फुनिंद-म.)।

(२) १. मो. तिह पूर, वा. जिह पुरि, म. तिहै पुरि, ना. तिहि पुर, उ. स. अ. फ. तिहु पुर। २. मो. तिहम, धा. तुअमति, स. तुव अति, म. तुव मृत्। ३. धा. सचरइ, मा. सचरि (=सचरइ), अ. फ. सचर, ना. म. सचरै। ४. मो. धा. सुकहि (=सुकहे), ना. सुकह्यै, द. सुकह्यौ, म. कह्यो, उ. सुकहै, स. अ. फ. कहै। ५. मो. वयन, धा. बिनइ (< बनइ), म. उ. स. अ. फ. ना. बनै।

[२६]

दोहरा— से स सिरुप्परि^१ सूर तर^२ जइ^३ पुच्छइ^४ निप एस^५। (१)
दोहुं बोलि^१ मडन^२ मरनु कहइ^३ तउ^४ कवु^५ कहेस^५ ॥ (२)

अर्थ—(१) “हे राजा,” [चद ने कहा,] “शेष के सिर पर और सूर्य के नीचे (तीनों लोकों) [के विषय में] यदि तुम ऐसा पूछते हो, (२) तो दोनों बातों मे—बताने पर भी और न बताने पर भी—मरण का मडन (आयोजन) होता है, इसलिए यदि तू बहे तो मैं काव्य कहूँ।”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. धा. सिरुप्परि, मो. सिरप्पर। २. अ. फ. सूरवर, ना. सूरतरुण, उ. स. सूरतन, म. सुरसुतर। ३. मो. जु (=जउ), धा. जइ, म. जै, अ. फ. उ. स. ना. जौ। ४. मो. पुछि (=पुच्छइ) धा. पुच्छइ, अ. पुच्छहि, फ. द. ना. म. उ. स. पुच्छै। ५. धा. नृप एसु म. कवि जासु।

(२) १. धा. दहु बोलां, अ. फ. दहु (अ = दुहु) बोलह, म. हः (< दहु) बोल। २. मो. जीवन, फ. नंदन। ३. मो. कहि तु (=कहइ तउ), धा. अ. फ. कहहु त, म. कहै न, द. ना. कहै त, उ. स. कहौ तौ। ४. मो. उ. स. कवि, म. कव। ५. धा. कहेसु, म. कहासु।

टिप्पणी—(१) एस < ईदुग। (२) कवु < काव्य।

[२७]

कवित्त—एकु^१ वान पुहवी^२ नरेस कयमासह^३ सुक्कउ^४। (१)
उर उप्परि^१ षरहरिउ^२ वीर^३ कषहतर^४ चुक्कउ^५। (२)
बीउ^१ वान संधानि^२ हनउ^३ सोमैसुर नंदन^४। (३)
गाडउ^५ करि^१ निगहउ^२ षनिव षोदउ^३ संमरि धनि^४। (४)
थर^५ छंडि^१ न जाइ अभागरउ^२ गारइ^३ गहउ^४ जु गुन षरउ^५। (५)
इम जंपइ^१ चंद विरदिया^२ सु कहा निमट्टिहि^३ इह^४ प्रलउ^५ ॥ (६)

अर्थ—(१) हे पृथ्वीनरेश, एक वाण तुमने कयमास का [लक्ष्य करके] छोड़ा। (२) वह वाण उस के हृदय पर खरभराता हुआ उस वीर की कॉल के नाच से होकर चूक (निकल) गया (३) तुमने, हे सोमेश्वर नन्, दूसरा वाण सवान करके [कयमास को] मार डाला (४) और, हे सौमरपति, तुमने खन-खोर कर गड्ढा करके उसका उसमें जकड़ दिया। (५) उस अभाग (कयमास) से अब स्थल छोड़ा नहीं जा रहा है, क्यों कि पाषाण (भूमि) ने उसे दूरे गुणों से (मली भोंति) पकड़ रखा है। (६) चन्द्र विरहिया इस प्रकार कहता (पूछता) है, इस प्रलय [जैसे भयानक कार्य] से क्या निम्टेगा (बनेगा) ?”

पाठांतर—Xचिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं।

(१) मो. अ फ. एकु, म. एक, 'शेष' में 'इकु'। २ मो. पुहुमा, वा अ. पुहमा, फ. ना. पुहवी, म. पौहमि, उ. स. पुहुमी। ३ मो. किमासह (=कयमासह), धा. कैमासह, अ. फ. म. कैमासहि, ना. उ. स. कैमासह। ४. मो. सुकु (=सुक्यउ), धा. सुक्क्यो, अ. फ. सुक्कउ, म. द. ना. उ. म. सुक्क्यो।

(२) १. अ. फ. उरप्पर, म. उ. स. उप्पर। २. मो. परहरो, वा. परहराउ (< परहराउ), अ. फ. म. ना. द. उ. (परहम्यौ—फ. परहर्यौ—म. ना.), स. परहरयो। ३. मो. बीरी, फ. बीत। ४. मो. कष्वह वर, धा. कष्वतर, ना. बाहू वर, म. बाहुबल, स. कष्वतर। ५. मो. चुक्यु (=चुक्यउ), धा. चुक्क्यो, अ. फ. चुक्कउ, म. द. ना. उ. स. चुक्क्यो।

(३) १. मो. एह, ना. वीयो, द. म. उ. स. अ. फ. वियौ। २. ना. द. उ. स. अ. फ. सधान, म. सधति। ३. मो. हनु (=हनउ), धा. ना. हन्यो, अ. फ. द. म. उ. स. हन्यौ। ४. मो. नदनी, म. नदनि।

(४) १. मो. गाडु (=गाडउ) करि, वा. गाढो कै, ना. गाढौ कै, अ. फ. गढउ (गढौ—अ.) करि, म. गड्यो करि। २. मो. निग्रहु (=निग्रहउ), धा. निगह्यौ, म. उ. स. अ. फ. निग्रह्यो। ३. मो. षिन (< षिनु=षिनउ) षोदु (=षोदउ), धा. खन्यौ गड्ढौ, अ. फ. षन्यौ रह्यो, ना. षन्यौ षोद्यौ, म. षन्यौ षुध्यौ, द. उ. स. षनिव (षनिय—द.) गड्यौ। ४. धा. अ. ना. उ. स. सभरि धन, फ. सभर धनि।

(५) मो. द. थिर (< थर ?), धा. फ. धर, ना. धह, उ. स. थल, म. धर (< थर)। २. मो. ना. द. छोडि, अ. फ. छाडि, उ. स. छोरि, म. छड। ३. मो. अभागरु (=अभागरउ), धा. न. भगलो, अ. फ. न. जाई वप्पुरो, ना. न. जाइ अभागरौ, द. उ. स. न. जाइ अभागरौ, म. जाइ भगरि गगरि। ४. मो. पु (< यु) गारि (=गारइ), धा. गारै, अ. फ. गार, उ. स. गाड्यौ, म. कह्यौ न, ना. द. गू गै। ५. मो. गहुयु (=जु) गुन घर (=घरउ), धा. गह्यो गुनषले, अ. फ. गहै गुनन घरौ (घर—अ.), ना. द. षद्यौ गुल (गुद—द.) षलौ, उ. स. गाड्यौ गुनगहि अगारौ, म. न. जाइ ही गुन षलै।

(६) १. मो. जपि (< जंपइ), शेष में 'जपे'। २. मो. विरदीयु (=विरहियउ), धा. ना. विरदीया, अ. फ. म. उ. स. वरदिया। ३. धा. तह नवटे, मो. सुकाहा नीमटिहि, द. अ. फ. कहा निबट्टे (निबट्टे—द.), ना. उ. स. कहा (कहा—ना.) निघट्टै, म. कह्यौ न मिटे। ४. धा. इह, मो. अ. फ. यह, उ. स. इय, म. जैहै, द. इयु। ५. मो. प्रलु (=प्रलउ), धा. प्रजले, उ. स. ना. अ. फ. प्रलौ, परौ, म. प्रलै।

टिप्पणी—(१) पुहुमी < पृथ्वी। सुक्क < सुच्। (२) कष्व < कक्ष। (३) वीय < द्वितीय। (४) गाड < गडु < गर्त्त=गड्ढा। निगह < निग्रह=निरोध, अवरोध। (५) < थर स्थल। गार < ग्रावन्=पत्थर, पाषाण। (६) निमट्ट < निवृत्त। प्रलउ < प्रलय।

[२८]

अडिल्ल—^१भट्ट वयन^२ सुनि सुनि^३ सोइ^४ कानहु^५। (१)

अप्पु अप्पु^१ गए ग्रेह परानहु^२॥ ()

जोगिनिपु^१ जागउ* चहुवानहु^२। (३)

भयि^१ निसि च्यारि जाम^२ जुगु जानहु^३॥ (४)

अर्थ—(१) भट्ट चद के उस वचन के सुनकर (२) [सभासद-गण] प्लावित होकर अपने अपने घर गए। (३) योगिनीपुर (दिल्ली) में चहुआन (पृथ्वीराज) जग रहा था, (४) चार प्रहर रात्रि उसके लिए चार युगों के समान व्यतीत हुई।

पाठांतर— * चिह्नित गब्द सशोधित पाठ का है।

(१) १. द उ स में इसके पहले और है (स पाठ) :—

सुनि सुनि श्रवन चद चहुआन । कलि मलि चित्त सुभट सब्बान ।
के अवलोइ सुमुष चद । निरषे नयन के विभूत द द ।
के भय मूढ़ ऊढ़ वर अप्पं । के भव चित्र विरत्त सुदप्प ।
समुझि न परे सूर सामत । गठन गुननन आव अत ।
निरषे द्रग मुष रत्त करूर । असही तेज अगेज सनूर ।
निरषे अन्यो अन्य मऊग । भय भय चित्त सुभ सपूर ।
गढ़के वहर गज्जि गुहीर । भय त्रिधात तरित तन भीर ।
भय गभीर सुहूर समीर । उड्ड कर सररेन सनोर ।
घट्टी मद्ध पच्च पल सैष । बिन भद्रवै भयानक भेष ।
दिसि नेरत्त किर्गाहि गोमाय । दिसि घूमत सिवा सुर ताय ।
बद्धी देविचकोरन भास । गज्जे छोनि ओनि आयास ।
मन्ने सह आरिष्ट अपार । उपल्यो किन कारन क्रतयार ।
सुव अवलोक कन्ह नरनाह । उठ्ठे आसन हुत अराह ।
चले अप्प निज मग्ग सुग्गेह । फुनि गोयंद राज उठि तेह ।
उनमन मन्न उठ्ठि सामत । कलि मलि बिकल उकल सार्चित ।
कहै चद बरदाइ सकोह । हनि कैमासि दास रिस दोह ।

ये पक्तियाँ ना में भी हैं, किन्तु स्वतंत्र छंद के रूप में एक रूपक बाद आती हैं।

२ मो. वयन । शेष सभी में 'वचन' । ३. म जु सुन । ४ मा. सोइ, शेष में 'नृप (त्रप-उ स.) ।
५. उ स. कान ।

(२) १. मो ना आप आप, म. आपु ही आप । २. धा ना अ. गय (गये-धा.) गेह परानहु, उ. स. गए ग्रेह परान, फ. गहिम गहि परवानह, म गये ग्रह रानहु ।

(३) १ धा. जोगिनिपुर, उ स. ना. द. अ जुगिनिपुर । २ म जुगनिपुर, मो. जागु (=जागउ) चहु-वानहु, धा. अ. फ जगयो चहुवानहु, ना. म. जग्यौ चहुवानह, उ. स. जगगत चहुवान ।

(४) १. मो. भयी, ना. म. भई । २ धा निचि च्यारि जाम, म. निवार जाम, फ निसि चारु जाम ।
३. मो गूनह, ना. म. जुग मानह, उ स जुग मान, अ. फ. जम (यम-फ.) बानह ।

[२६]

कवित्त— राज मभिम्भ^१ संभयउ^{*२} पट्ट^३ दरबान परठिय^४ । (१)
बहुर^१ सव्व^२ सामंत^३ मनउ^{*} लग्गिय^४ सिर लठिय । (२)
रहयउ^{*१} चद बिरदिआ^२ बिमुष मुष पग न सरवयउ^{*३} । (३)
गिम्ह^१ तेज वर भट्ट रोस जल षिनि षिनि^२ सुवयउ^{*३} । (४)
रत्तिरी^१ कंत जगतरइ^{*२} चल्ली^३ घरिघरि^{*४} बत्तरी । (५)
दाहिमउ^{*१} दोस लगउ^{*} परउ^२ मिटइ^{*३} न कलि सु^{*} उत्तरी^४ ॥ (६)

अर्थ—(१) राज [=सभा] में होकर पट्ट दरबान [द्वार पर] परिस्थित हुआ । (२) सब सामंत लौट पड़े थे, मानो उनके सिर पर लाठी लगी थी । (३) चन्द बिरदिया मात्र वहाँ रह गया था,

उसने मुख फेर कर पैर [तक] नहीं सरकाया था । (४) भट्ट चंद्र ग्रीष्म के [उग्र] तेज से, सखते हुए जल के समान पृथ्वीराज के रोष से क्षण प्रतिक्षण सख रहा था । (५) रात्रि-कान्त (चंद्रमा) के जागते रहते (आकाश में स्थित रहते) ही घर घर यह वार्ता चली कि (६) “दाहिमा (कयमास) को [कोई] बड़ा दोष लगा है—उससे [कोई] घाव अपराध हुआ है—और वह कलि (कस्मप) [उसके सिर से] उतर कर मिट नहीं रहा है”

पाठान्तर— *चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो राज मझ, धा राज मझि, म राजमझि, अ फ रज मझल, स राजन मझ । २ भां. सभया (< सभयु), धा समझो, स. सपरिय, फ सप्रत, अ सप्रत्य, म सपति, उ सभरिय, ना सभयौ (< सभयउ) । ३. धा उपर, अ. फ उट्ट । ४. मो परटीय ।

(२) धा. बाडुरि (=बाडुरइ), अ बडुरि, फ. बाडुरि, ना द उ. स म उडुरे । २ वा सवि, फ राज । ३ अ फ मावत । ४ मा मनु (=मनउ) लगि, धा अ फ मनहु (मनौइ-रु) उगिय, ना. म मत लगिय, द. उ. स मत भगिय ।

(३) १. धा रह्यो, मो रह्यु (=रह्यउ), शेष में ‘रह्यौ’ या ‘रह्यो’ । २ वा अ फ ना द म उ स. वरदाइ । ३. धा पगु न सरक्यो, मो पग न सगक्यु (< सरक्यउ), म पग न खक्यौ, द म उ स. पग न सरक्यौ, ना. पग न सरक्यौ ।

(४) १. मो. अ फ. गिभ, म ग्यमु, उ. स. ग्रभ, ना डिभ । २ वा रोस जल विनि विनि, म राम जल पविनि । ३. धा. सुक्यो, मो उ. सुक्यु (=सुक्यउ), म. सुक्यौ, ना. सुक्यो, शेष में ‘सुक्यो’ ।

(५) १. मो. रतिरि, म. रातरी, इनके अतिरिक्त सभी में ‘रत्तरी’ । २. वा जागतरी, मो जगतरी (< जगत रइ), अ. फ. जागत रइ, फ जागतर, म जगतरी, ना जगत्तर, द उ स जागतरी । ३ ना. होइ, उ. स. भई । ३ मो. म घर घर, अ फ ना घरघर, धा घरे घरि (=घरि घरि), उ स. घर घर (=घरघर) ।

(६) १. मो दाहिमु (=दाहिमउ), धा. उ स दाहिम्म, ना दाहिमौ, म अ. फ. दाहिमै । २ मो. लुगु (=लुगउ) षरयु (=षरउ), धा दासी सिरिस, अ. फ. लगो (लग्यौ-अ) षरउ, (षरा-फ), म. लगौ षरौ, ना. उ. स लग्यौ षरौ । ३. मो. सु मिटि (=सु मिटइ) द मिट, शेष सब में ‘मिट’ । ४ धा. कलिसुत उत्तरी, मो कलिसू (=सु) उत्तरी, अ. फ. कलि सौ उत्तरी, द कलिसू उत्तरी, म. कल सम उत्तरी, ना कलि सो उत्तरी ।

टिप्पणी—(१) परिठु < परि+स्थ । (४) गिम्ह < ग्रीष्म । सुक्क < शुष् । (५) रत्तिरी < रात्रि । वत्तरी < वार्त्ता ।

[३०]

आर्या— उगिय^१ भान^२ पायान^३ पूर^४ । (१)
 बजिय^५ देव दरि^६ संष तूर^७ ॥ (२)
 कलत^८ कयमास^९ चडि^{१०} वरणसाला^{११} । (३)
 देव वरदाइ^{१२} वर मंगि बाला^{१३} ॥ (४)

अर्थ—(१) पादो (किरणो) से पूर्ण भानु उदित हुआ, (२) देव द्वार पर शख और तूर्य बजने लगे । (३) कयमास की कलत्र (स्त्री) वर्ण शाला पर चढ़ी । (४) [और] देव (महादेव) के वरदायी (चन्द्र), से वर (मृत पति) माँगने लगी ।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द सशोधित पाठ का है ।

× चिह्नित शब्द फ. में नहीं हैं ।

(१) धा. उगिय भानु, अ. उगिय पालान, स. उगिय मान, शेष में ‘उगिय भान’ । २ धा पायाल । ३. स. पूर ।

- (२) १. मा बाजिय, शेष में 'बजिय' । २. म वदामि, ना दवदारे, शेष में 'देव दर' । ३ स तूर ।
 (३) १. अ फ. कलत्र, द. उ स. कलत्र, म कलि । २. धा. अ. फ. कौवास, मो किमाम=कयमाम ।
 ३. मो. च्चडि, शेष में 'चडि' । ४ स. साल ।
 (४) १. मो. अ ना. द देवि वरदाइ, धा देवि वरदायि, म. फ. देव वरदाइ, स वरदाइ देवि, [अन्यत्र
 हर से 'वर' प्राप्त होने का उल्लेख मिलता है—यथा ३ २३, ३. २४] । २. स. बाल ।
 टिप्पणी—(१) पाय < पाद=किरण । (२) तूर < तूर्य=तुरही । (३) कलत्र < कलत्र=खो ।

[३१]

कवित्त— जा जीवन^१ कारणइ^२ धर्म^३ पालहि^४ मृत^५ जालहि । (१)
 जा जीवन^१ कारणइ^२ अथ स^३ चित्त^४ उबारहि । (२)
 जा जीवन^१ कारणइ^२ दुरग रषहि सब^३ अप्पहि^{४*} । (३)
 जा जीवन^१ कारणइ^२ भूम नव ग्रह करि^३ कप्पहि^{४*} । (४)
 जउ^{*१} जीवन^२ साई अप्पनउ^{*३} नृपति बहुत वचनह भउ^{*४} । (५)
 सुक्कि^१ सरोवर हस गउ^२ सुकिलि उडउ^{*३} अंधार भउ^{*३} ॥ (६)

अर्थ—(१) [उसने कहा,] “जिस जीवन के कारण ही [मनुष्य] धर्म का पालन करता और [उसके द्वारा] मृत्यु को जलाता है, (२) जिस जीवन के कारण ही [मनुष्य] अर्थ—धनो-पार्जन [के साधनादि]—से चित्त को उबारता है, (३) जिस जीवन के कारण ही मनुष्य सब कुछ [शत्रु को] अर्पित करके भी दुर्ग की रक्षा करता है; (४) जिस जीवन के कारण ही वह भूमि नव ग्रह [को शांति] के लिए संकल्पता (देता) है, (५) यदि वह मूल्यवान् जीवन है, तो नृपति के बहुतेरे वचनों का भी मरना होता है, (६) [किन्तु] सरोवर सूख गया, तो हंस (प्राण-मूर्त्य) भा चला गया और हंस (प्राण-सूर्य) के सिमट कर (पंख बटोर कर) उड़ जाने पर अंधेरा हो जाता है ।”

पाठान्तर—(१) १. फ. जीउन । २. मो. कारिण (=कारणइ), ना कारणइ, धा. फ. म. कारनै, द कारणइ, उ. स. कारनह, अ. कारणै । ३ उ. स. द प्रम्म । ४. मो. पालहि, ना. पार । ५ म. पालै, अ. मृतु, म. त्रितु, स. फ. चित्त । ६. मो. जालहि, धा. जालहि, ना. रहि, शेष में 'दरहि' (टालहि-फ.) ।

(२) १. फ. जीउन । २. मो. कारनिहि, ना कारणहि, धा फ. म. कारनै, द कारणइ, उ. स. कारनह, अ. कारणै, म. फ. कारनै । ३ अ. फ. अथ सौ, ना. म. अथि धन, द. अथि दान, उ स. अथि दै । ४. ना द. म. मूल ।

(३) १. फ. जीउन । २. मो. कारनिहि, द. कारणइ, उ. स. कारनह, अ. कारणै, म. फ. कारन, ना. में 'जा जीवन०' लिख कर छोड़ दिया गया है । ३. मो. दुरग रषहि सब, अ. फ. दुर्ग रषे सबु (अव-फ.), ना द. म. उ. स. दुरग (द्रग-ना.) हय देसति । ४ अ. फ. अप्प, म. दिजहि ।

(४) १. फ. जीउन । २. मा कारनिहि, द. कारणइ, उ. स. कारनह, अ. कारणै, म. फ. कारनै, ना में 'जा जीवन०' लिख कर छोड़ दिया गया है । ३. उ. स. ना द अ. फ. होम करि नवग्रह म., होम नव ग्रह । ४. मो. कप्पहि (=कप्पिहि,) ना. उ स. जप्पहि, अ. फ. जप्प, म. कप्पिजहि ।

(५) १. मो. जु (=जउ), धा जे, म जो, ना. उ. स. अ. फ. जा । २. फ. जीउन । ३. धा. साई अप्पनो, मो. साइ अप्पनु (=अपनउ), ना. साई अप्पनौ, अ. फ. सौ अप्पनौ, म. सोइ अप्पने, स. साई सुपन, उ. साई सुप्पनौ । ३. मो. बहुत वचनह सु (=भउ), धा. अ. फ. बहुत जच्चहि (जववै-फ.) सभो (=सभौ अ. फ.), ना. उ. स. बहुत जाचिय (जच्चिय-ना.) अभौ (आयौ=ना.), म. वौदति विव जीयै ।

(६) १. मो. सुकि (=सुक्कि), धा सुकयो, उ. स. सुकोसु, ना. द. म. सुकै, अ. सुनयउ, स. फ. सुक्ये

धा. गउ, मो गु (=गउ), ना. म उ स. अ. फ. गौ । ३. मो. कलि-उड्डु (=उडउ) अधियार भु (=भउ), धा. अ. क कलि बुड (बुडडै-धा) अधियार भो, ना कलि बुड्ड अधियारौ भयौ, उ. स कलि बुड्डै अधियार भ, म कलि अधियारै भजाय ।

धा. मैं प्रथम चार चरणो का पाठ निम्नलिखित है : ऐसा लगता है कि प्रथम चरण के खडित हाने के कारण पाद-पूर्ति के लिए धा के चतुर्थ चरण की कल्पना की गई है:—

जा जीवन कारन अति धन मूल उबारहि ।

जा जीवन कारन होम कार नव ग्रह दारहि ।

जा जीवन कारन दुग्ग दत्त भूवर सज्जहि ।

जा जीवन कारन समर तजि नर भर भज्जहि ।

टिप्पणी—(१) जाल < ज्वालय् । (२) अत्थ < अर्थ । (३) अप्प < अर्पय् । (४) भूम < भूमि । (५) साई < साति= सातिशय पदार्थ, मुख्यवान पदार्थ । (६) सुकिलि < संकल् ।

[३२]

कवित्त— मातु^१ गम्भ^२ वास करिवि^३ जंम^४ वासर^५ वसि^६ लहगउ^७ । (१)

षिन^१ लग्गइ^२ षिन^३ रुदइ^४ मुदइ^५ षिन^६ हसइ^७ अमग्गउ^८ । (२)

वपु विसेस^१ वड्ढिअउ^२ अत डड्डइ^३ डर डरयउ^४ । (३)

कच तुचा दत्त न रार^१ धीर^२ किम^३ किम उव्वरयउ^४ । (४)

मान भंगु मुक्कइ^५ सयल^६ लपित निमिष नि मिट्टहि^७ । (५)

पर काज^१ आज^२ मंगउ^३ नृपति कहु^४ त^५ प्राण^६ पमुक्कहि^७ ॥ (६)

अर्थ—(१) “मनुष्य माता के गर्भ में वास करने अनंतर दिन के वश (दिन पूरा होने पर) जन्म लाभ करता है । (२) एक क्षण वह [ससार में] संलग्न होता है तो दूसरे क्षण वह [उससे विन्न होकर] रोता है, एक क्षण वह मुँद जाता है (मौन हो जाता है) तो दूसरे क्षण वह अभागा हँसने लगता है । (३) [उसका] वपु (शरीर) विगेष रूप से संवधित होता है, किन्तु अंत में वह जलाए जाने के डर से डरता है । (४) कच, त्वचा, और दंत [आदि] को रार (झटके) छोड़ कर धीर किसी न किसी प्रकार उनसे उबरता है । (५) इसलिए तू [पृथ्वीराज से याचना करने में मान-हानि होगी] इस समस्त मान-भग [को भावना] को छोड़, क्योंकि जो लक्षित (निर्धारित ?) है वह एक क्षण के लिए नहीं मिटेगा । (६) दूसरे के लिए तू आज नृपति से याचना कर; यदि तू उससे कहे तो [कयमास का शव लेकर] मैं प्राणों को मुक्त करूँ ।”

पाठांतर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

x चिह्नित शब्द धा. में नहीं हैं ।

(१) १. द. मंत । २. धा. अ. फ. ना. द. गर्भ, म. उ. स. गरभ । ३. मो. सचरीय, धा. वास करिय, अ. फ. वस (बसि-फ.) करिवि (करवि-फ.), उ. स. वस करा, ना. बसि करिय, द. बसि करी, म. संभरीय । ४. मो. जंम वासर, अ. फ. जेम मुक्कइ, ना. म. उ. स. जम्म वासर (वासर-ना) । ५. मो. विसी लहगु (=लहगउ), उ. स. वस लम्भय, ना. वस लग्गौ, म. विस लम्भै, अ. फ. सुरसालहं ।

(२) १. धा. अ. फ. षत्त, म. षितु । २. मो. लगि (=लगइ), धा. लग्गे, ना. लग्गौ, अ. फ. लग्गइ, उ. लग्गि, म. लग्गइ, स. ननग्गि । ३. धा. अ. फ. षत्त, स. षि, म. षितु । ४. मो. रुदि (=रुदइ), धा. रुद, अ. फ. रुदइ, ना. रु^१, उ. स. द. रुदाइ, म. दहै । ५. मो. मुदि (<मुदइ), ना. मुष, द. उ. स. मुदय, अ. फ.

रुदइ, म. में यह शब्द नहीं है। ६. अ. फ. पन, म. पितु। ७. मो. हसि (=हसइ) अभगु (=अभगउ), ना. अ. फ. हस बिहालह, ना. हसे अभगौ, उ. स. हस अलभभय, म. दहि सत गभ।

(३) १. मो. वपु वसेष, वा. वपु विसेस, ना. द. अ. फ. वपु विसेष, उ. स. वपु विमषु, म. विष विसेष। २. अ. बढियउ, फ. बढियौ, मो. वढियु (=वढियउ), धा. द. उ. स. वढ्यो, म. वढय। ३. मो. डढि (<डढि), धा. डढे, ना. दहइ, उ. स. रुदइ, म. दद, अ. ददइ, फ. दिदइ। ४. धा. उ. स. डरया, म. डरय, अ. डरियउ, फ. डरयौ।

(४) १. मो. चकित चाद त. रार, धा. किंचित चद जु. रारि, अ. फ. किंचित चाद जु. रार (रारि-फ.), ना. द. उ. स. कच तुच (तुच-ना.) ऋंत जु (ज-ना.), रार म. कवि चद तु. जु. रार। २. धा. अ. फ. ना. उ. स. धार (धारि-फ.)। ३. धा. म. फ. करि। ४. धा. उ. स. उच्चरयो, अ. फ. उच्चरयउ, म. उचरय, ना. उचरयौ।

(५) १. मो. मान भगु मुकि (=मुकइ) सयल, धा. मनु मगि भूमि मुक्के सयल, अ. फ. मनु सम्म गम्म इक्कइ सकल, द. ना. मन भग मग्ग मुक्कहि सयल, उ. स. मन भग मग्ग मुक्कत सयल, म. मान भग सोग मुक्कहि सयल। २. मा. लिषित निमिष निमिटहू, धा. अ. फ. लिषत नामिखु जू. हइ (<हि), अ. फ. लिषत (लिषति-फ.) निमिषु (निमुषु-फ.) ज. निषिहइ (नुषिहइ-फ.), द. ना. लिषत निमेष न नषिये (निषिये-ना.), म. लिषतु निविधइ चुकीये, उ. स. लिषत निमेष न चुक्यौ।

(६) १. धा. अ. फ. ना. उ. स. पर कज्जु (परि कज्ज-फ. ना. उ. स.)। २. धा. अ. फ. उ. स. अज्जु। ३. मो. मगू (<मगु=मगउ), धा. मगहि, अ. फ. मगउ, म. मग्यौ, ना. मंग, उ. स. मगौ। ४. मो. कह (कहु?) धा. अ. फ. सकइ, ना. उ. स. सकै, द. म. सकहि। ५. द. उ. स. न। ६. अ. फ. प्रमान। ७. मो. पमुकहि (=पमुकइ), धा. पमुकहइ (<पमुकहि), अ. फ. पमुकिहइ (<पमुकिहि), म. द. पमुकिये, ना. मुकीये, उ. पमुक्यौ, स. पमुक्यौ, ना. मुकिये।

टिप्पणी (१) गम्म<गभ। जम<जन्म। लह<लम्। (२) लग<लग्। मुद<मुद्रय्। (३) डह<दग्ध। (६) पमुक्क<प्रमुच्।

[३३]

कवित्त— राषि^१ सरणि^२ सहगवनि^३ मरन मंगल अपुव्व^४ किय। (१)
 दरण^१ पेवि^२ दरबान^३ रुक्कि सक्किय^४ न मग्गु दिय। (२)
 जागि जुलन^२ पृथीराज नयन नयनन जब दिषुउ^२। (३)
 अंतकु कर रध्धांमु^२ त्रइग्गुण^{*} त्रियतनु^२ लिषुउ^२। (४)
 बोलिअउ^{*१} वयन सु दयन हिय^२ कवन कम्मु^३ कवि अच्छयउ^{*४}। (५)
 तव देव कितिय कमलिय कमल^१ धरणि तरुणि^२ तनु मुक्कयउ^{*३} ॥ (६)

अर्थ—(१) चन्द ने उस सहगामिनी (पति के शव के साथ भस्म होने वाली कयमास की स्त्री) को शरण में लिया, जिसने अपूर्व मंगल [का श्रृंगार] किया था। (२) दरबान भय के साथ देखकर उसे रोक न सका, उसने उसे मार्ग दिया। (३) जलते हुए (क्रुद्ध) पृथ्वीराज ने जाग कर अपने नेत्रों से [जब उस सहगामिनी स्त्री के] नेत्रों को देखा, (४) तो अतक (काल) के करों द्वारा रौंधे हुए पकवान के समान उसने उस स्त्री के त्रिगुण तनु को जाना। (५) अत्यन्त दयापूर्ण हृदय से वह बोला, “हे कवि, कौन-सा कार्य है?” (६) [चन्द ने कहा,] “देव, तुम्हारी कीर्ति [रूपी मतवाले हाथी] ने कमल (कयमास) को कवलित कर लिया। इस लिए धरणी पर यह तरुणी (स्त्री) शरीर त्याग रही है।”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) धा. म उ स ना. द. अ रषि, फ. रक्षि । २. धा. म. ना द. फ सरन (सरण-ना. द.) । ३. धा. गह गमन, मो. म. सहगवन, फ. सहि गडनि । ४. मो. मंगल अपूरब, म. मगलु जु अपु ।

(२) १. मो. दरगा (< दरण), धा. डरन, अ. फ दारुण, द डरण, म. वरनि, उ स दरनि, म. धरने । २. मो. पेधि, ना. दिष्य, शेष में 'पिषि' । ३. उ. स. दरवार । ४. धा. सक्कि, मो. सुकिय, अ. फ. सक्कय, द. सक्क्यो, म ना. उ स. सक्क्यौ ।

(३) १. धा. जग्गि जुलन, अ. फ. दिषि ज्वलन, ना. जग्गि जुगनि, द. उ. स. जग्गि जलनि (जलणि-इ.), म. जागि जुलनि । २. मो. दिक्षु (दिष्यु=दिक्खउ), धा. दिष्यो, ना. द. म. उ. स दिष्यौ ।

(४) १. धा. अतुक करि वर धम्म, ना. अ. फ. द. अतक कर वर धम्म (धम-इ., धम्म-ना.), म. अतक करव धरयति, उ. स. अति कहना रस वीर । २. मो. त्रिगुण (=त्रयगुण) त्रियतनु, धा. त्रय गुण त्रिय सवि, अ. फ. कम्म त्रियगुण सम, उ स. करी सकर रस, म. काम त्रिगुण त्रिय, द. कम्म त्रिगुण त्रि, ना. कम्म त्रिगुण त्रिय । ३. मो. लिक्षु (=लिकखउ), धा. लप्पो, ना. म. द. उ. स. लिप्प्यौ ।

(५) मो. बोलिउ (=बोलिअउ), धा. बुल्लयो, अ. फ बुल्लियौ, उ. स बुल्ल्यौ न, ना. बुल्ल्यौ सु, म. बुल्ल्यो जु । २. सु (=सु) दयन हिय, धा. तव दीन हुइ, ना. म. उ. स. तव दीन हुव (हुअ-स.), द. तव दैन हुव । ३. मो. कवन काम, ना. द. कवन कंम, अ. फ. कवन काज, उ. स. कनक काम, म. वक्किनि काज । ४. मा. अछयु (=अछयउ), ना. द. उ. स. धा. अ. फ. अछ्यो, म. इच्छ्यौ ।

(६) १. धा. अ. फ. तवहि देव कित्ति कलिय, ना. द. उ. स. तुम (तव-इ. ना.) देव कित्ति कुहलिय कमल, म. तबु देवि कित्ति कहनह विमल । २. ना. धरणि तरणि, उ स. धरनि धरनि, अ. फ. धरनि तरुनि, म. धरानेत । ३. मो. तनु सुकयु (=मुक्कयउ), धा. तिन मुच्छयो, अ. उ. स. तन मुक्कयो, फ. तरु मुक्कयो, ना. जन मुक्कयो, म. रति मुक्क्यौ ।

टिप्पणी—(१) अपुव्व < अपूर्व । (२) दर=भय, डर । पेष < प्रेश् । मग्गु < मार्ग । (३) जुल < ज्वलन । (४) रद्ध=राँधा हुआ, पक्व । (५) वयन < वचन । कम्म < कर्म । अच्छ < अस् । (६) कमलिय < कवलित । मुक्क < मुच् ।

[३४]

गाथा— बाला मंगइ* वरयो^१ काउ^२ वासं ति^३ भट्ट सरनाइ* । (१)

तुव गति कछु मन संभरिवइ*^१ संभरिवइ* त* संभरु राय^२ ॥ (२)

अर्थ—(१) “कापोत (कपोत के रंग का) वस्त्र धारण करके भट्ट के शरण में आई हुई बाला, [हे पृथ्वीराज,]” चन्द ने कहा, “तुम से [अपना] वर (पति) माँग रही है । (२) उसके मन में कुछ तुम्हारी गति है, [अतः] वह, हे राजा, ‘सांभर पति’ ‘साभर पति’ स्मरण कर रही है ।”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. बाला मग्गि (=मगइ) वरयो, धा. अ. फ. बाला मग्गति (मग स-फ.) वरयो, ना. द. बालानि (=नइ ?) मग वरयो, उ. स. बालान मग वरयो, म बाला मग्गि सवरयो । २. अ. काओ, फ. कोआ, ना. कायो, म. में नहीं है । ३. म. वासत । ४. धा. सिर जाइ, द. उ. स. सिरयाइ, म. अ. फ. ना सिर जाइ ।

(२) १. मो. तुव गति कछु मन संभरिवि (=संभरिवइ), धा. द. उ. स. ना तूअ ग त संभरवइ (संभरवै-उ. स.), अ. फ. ना तुव गति संभरइ, म. नि तुव गति संभरवै, ना. ना तुव गति संभरिवै । २. मो. संभरवै न संभरराय (< संभरिवै त संभरराय), धा. संभरव राय रायेसु (राजेस-ना.), उ स. अ. फ. ना संभरिवै राय रायस, म. संभरिव राइ रायेस ।

टिप्पणी—(१) काउ < कापोत । (२) संभरिवइ < शाकभरी पति ।

[३५]

दोहरा— वछिय^१ कित्ति बोलिय^२ वयन दिल्ली^३ पुरह^४ नरिद^५ । (१)
दाहिम्मउ^{*१} दाहिर हरो^२ को कढ्ढइ^{*३} कवि^४ चंद ॥ (२)

अर्थ—(१) दिल्लीश्वर (पृथ्वीराज) ने कात्ति की वाछा की, [इस लिए] वह बोला, (२) “दाहिमा (कयमास) दाहिर (गर्त) के द्वारा अपहृत हो चुका है, उसे कौन निकाल सकता है ?”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. धा बढिय, उ. स पढिय, ना. वढिद, फ. वढ्ढी, शेष में ‘बढिय’ । २. धा अ. फ. ना. द. उ. स बुलिय, म. बुले । ३. म. दिल्लीय । ४. धा. फ. पुरहि । ५. म. नरिद ।

(२) १. मो दाहिमु (=दाहिमउ), शेष में ‘दाहिमो’ या ‘दाहिम्मौ’ । २. धा. म. उ. स दाहिर जहर, अ. फ. दाहन गहर, ना. दाहिन गहर । ३. मो को काढि (=काढइ), धा. को कढ्ढइ, उ. स. म. अ. फ. कढे (<कढि=कढइ), ना. द. को कढ्ढ (कढ्ढे—ना), द. कहै न बने । ४. म. कवि विने ।

टिप्पणी—(१) वछ < वाच्छ । कित्ति < कीत्ति ।

[३६]

कवित्त— रावन^१ किनि गड्डिअउ^{*२} क्रोध⁺ रघुराय⁺ वान⁺ दिय⁺ । (१)
बालि⁺ किनि^{*+} गड्डिअउ^{*+} सु त^४ सुग्रीव जीव^५ लिय । (२)
चंद किनि[×] गड्डिअउ^{×*} कीअ^{*} गुरुदार^२ स किल्लउ^{*३} । (३)
रवि न पंड^२ गड्डिअउ^{*२} पुच्छि^३ सह देव^४ पहिल्लउ^{*५} । (४)
गड्डउ^{*१} न इंदु^२ गोतम^३ रषि^४ बरु^५ सराप^६ छडिय जिनी^७ । (५)
इह^१ रोस दोस पृथिराज सुनि^२ मम गड्डइ^३ संभरिधनी^४ ॥ (६)

अर्थ—[चंद ने कहा] “(१) रावण को किसने गाड़ा था ? क्रोध में रघुराज (राम) ने उसे वाण ही तो दिया (मारा) था । (२) बालि को किसने गाड़ा था ? उसका सुग्रीव ने जीवन ही तो लिया था । (३) चन्द्रमा को किसने गाड़ा था ? उसने गुरु-पत्नी से केलि की थी । (४) पाण्डु ने [भी] रवि (सूर्य) को नहीं गाड़ा था; हे देव, पहले [के ऐसे प्रसंगों को] सभा से पूछे । (५) इन्द्र को गोतम रिषि ने नहीं गाड़ा था, भले ही जिन्होंने उसे शाप छोड़ा (दिया) था । (६) हे पृथ्वीराज, सुनो, [ऐसे आचरण पर] इतना रोष करना दोष है; कयमास को, हे सौभरपति, मत गाड़ो ।”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

+ चिह्नित शब्द द. में नहीं हैं ।

× चिह्नित शब्द ना. में नहीं हैं ।

(१) १. फ. राउन । २. धा. किन गड्डयो, मो. किनि गड्डिउ (=गड्डिअउ), अ. म. किनि गड्डियो, शेष में ‘किन गड्डयो’ (गड्डयो—फ. उ. ना. स. ।) ३. म. रघुनाथ ।

(२) १. फ. बलि, म. बल, ना. बाल । २. मो. किन, धा. अ. किन, फ. ना. किन, उ. स. सु किन, म. किनइ, ना. किन । ३. मो. गड्डिउ (=गड्डिअउ), फ. गड्डीयो, शेष सब में ‘गड्डयो’

(गड्ड्यौ-फ. ना. उ. स.) । ४. ध. तदिन, स. त्रिय, अ. फ. म. सुत्रिय, ना. द. त्रिय लगि । ५. उ. स. जोय, फ. जीउ ।

(३) १. मो. चंद किने गड्डिउ (=गड्डिअउ), फ. चंद न किन गडीयौ, शेष में, 'चंद (चंदु-म.) किने गड्डयो (किने गड्डयो-स.) । २. मो. अगुरुदार, धा. कियो गुरुवार, फ. गुरुव गुरुवार, शेष में 'कियो गुरुवार' । ३. मो. सकिलु (=सकिलउ), धा. सकिल्यो, ना. सहिलीय, द. सहिलय, उ. स. सहिलह, म. सकिलोय, धा. अ. फ. सकिलो ।

(४) १. धा. रवि किन, अ. म. रमिन पंडु, ना. रविन पंडु, फ. उ. स. रविन पंग । २. मो. गड्डिउ (=गड्डिअउ), शेष सब में 'गड्डयो' (फ. उ. स. ना. गड्ड्यौ) । ३. अ. फ. तुच्छ, फ. म. पुच्छ, द. उ. स. पुच्छि । ४. मो. सहदेवि, शेष सभी में 'सहदेव' (सहिदेव, उ-फ.) । ५. मो. पहिलु (=पहिलउ), धा. अ. फ. पहिलो, ना. पहिलोय, म. उ. स. पहिलह, म. पहलीय, द. पहिलय ।

(५) १. मो. गड्डु (=गड्डउ), शेष में 'गड्ड्यौ' या 'गड्ड्यो' । २. धा. इंद, म. इंदु, उ. स. अ. फ. इंद्र । ३. अ. गउतम । ४. धा. म. उ. स. रिषह, फ. रिषहि, ना. रिषीय । ५. धा. अ. फ. बहु, मो. वर, उ. स. सिव । ६. ना. सराधि । ७. धा. छंड्यौ जिनिय, उ. स. छंडन जनी, म. वंध्यौ जनीय, अ. फ. छंड्यौ जनी, ना. छंडे जनी ।

(६) १. धा. उ. स. इन, म. द. इहि, ना. रहि । २. धा. रोक्ष दोस चहुवान तुव । ३. धा. फ. मम (नन-फ.) गड्डिसि (गड्डिस-फ.), अ. नन गड्डहि, ना. मम गड्डहि, उ. स. मति गड्डय, म. मम गड्डिस । ४. धा. म. संभरे धनीय, फ. संभर धनी ।

टिप्पणी—(३) किल < केठि । (४) सह < सभा । (५) इंद < इंद्र । रिषि < ऋषि ।

[३७]

दोहरा— तउ* अप्पउं कयमास*^१ तु हि^२ मिटिहि उरह^३ अंदेसु । (१)
दिष्वावइ^१ पहु पंगुर^२ जइ^३ जयचंद नरेसु ॥ (२)

अर्थ—[पृथ्वीराज ने कहा] “(१) तुझे कयमास को तब अर्पित करूंगा और तभी [मेरे] हृदय का अंदेशा मिटेगा, (२) जब तू पंगुल-प्रभु जयचंद नरेश को मुझे दिखावेगा ।”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) मो. तु अपु किमास (= तउ अप्पउं कयमास), धा. तउ अप्पउं कैवास, उ. स. तौ अप्पो कैमास, म. तौ अप्पुं (=अप्पउं) कैमास, फ. तौ अतौ कैवास, अ. तौ अप्पौ कैवास, द. तौ अप्पौ कैमास । २. धा. अ. म. ना. तुहि, मो. फ. तोहि (<तुहि) । ३. धा. मिट्टइ उरहि, अ. फ. मिट्टहि उर, ना. जो मेटहि उर, म. उ. स. जो (जौ-म.) मेटे ।

(२) १. धा. दिखवावई, मो. दिषावि (=दिषावइ), म. देषावै, ना. उ. स. दिष्यावहि । २. ध. पहु पंगुरो, अ. ना. उ. स. पहु पंगुरौ, म. पहु पंगरौ, फ. पहु पंगुरउ । ३. द. स. तो । मो. जु (=जउ), धा. जइ, द. उ. स. जै, अ. फ. जई, ना. म. जौ ।

टिप्पणी—(१) अप्प < अर्पय । अंदेस < अंदेशा (फा०) । (२) पहु < प्रभु । जउ < यदा ।

[३८]

दोहरा— षिन त मनहि^१ धीरज धरहु^२ अरि दिष्यत^३ तिहि^४ काल । (१)
अति बरबर बोलइ* नही^१ सु किम^२ चालइ*^३ भूआल^४ ॥ (२)

अर्थ—[चंद ने कहा,] (१) “[इस] क्षण तो मन मे धैर्य रखो, इस समय तुम्हारा शत्रु देख रहा है—तुम्हारे कन्नौज-आक्रमण की बात जान गया है । (२) बहुत बर्बर [होकर] न बोल; बता कि तू, हे भूपाल, किस प्रकार [कन्नौज] चलेगा ।”

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. धा. छिनकु मनुहि, अ. छिनकु मनह, फ. छिनक मनहि, द. ना. पिनुकु (पिनक-ना.) न मन, म. पिनक तम्ह, उ. स. पिनक न मन । २. धा. रहे, द. उ. स. वरहि, अ. करहु, फ. करौहु । ३. मो० अर दोपंति, धा. ना. अरि दिषित, अ. म. स. अरि दिषित, फ. उ. स. अरि दिषित । ४. धा. फ. तिहि, स. तिन, उ. तति ।

(२) १. मो. अति बरबर बेभलि (= बोलइ) नही, धा. अति बलि स. बल ना कह्यौ, अ. फ. अति बरबर (बरबर-फ.) बुलहु नही, ना. द. अति बरबर बुलै नही, म. अति बरबर बुल्यौ नहिन, उ. स. अति बरबर बुले नहीं । २. धा० किय, अ. फ. किम, म. सो किम । ३. मो. चालि (= चालइ) धा. चलइ, फ. चलौइ, ना. चलिहै, द. चलहै, अ. म. उ. स. चलहु । ४. अ. फ. ना. भूपाल, द. भोपाल, म. भुवाल ।

टिप्पणी—(१) पिन < क्षण ।

[३६]

मुडिल— चलउ^१ मट्ट^२ सेवग होइ सथह^३ । (१)
जउ^{*} बोलउं^{*१} त हथु तुह मथह^२ ॥ (२)
जबह राइ जानइ^{*१} संमुह हुअ^२ । (३)
तब अंगमउं^{*१} समर दुहुनि भुअ^२ ॥ (४)

अर्थ—[पृथ्वीराज ने कहा,] “(१) हे भट्ट (चद), मैं तुम्हारे साथ सेवक हो (बन) कर चलूँगा । (२) यदि [उस समय मैं कुछ] बोलूँ तो मेरा हाथ तुम्हारे मस्तक पर है—मैं तुम्हारी सौगन्ध खाता हूँ । (३) जभी राजा (जयचद) मुझे सम्मुख हुआ जानेगा [और युद्ध करेगा], (४) तब मैं दोनों भुजाओ पर युद्ध ओढ़ूँगा ।”

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) धा. चलौ, मो० चलु (=चलउ), फ. चलउ, द. चलयौ, अ. चलौ, ना. चलौ, उ. स. चलौ । २. धा. अ. फ. चंद । ३. धा. अ. फ. सथह सेवग (सेवक-अ. फ.) सुअ (तुव-अ. फ.), द. सेवक हुइ सथह ।

(२) १. मो. जु (=जउ) बोल (< बोलु=बोलउ), धा. जो बुलौ, अ. फ. जौ बुलउं, द. अब जौ बोलु, उ. अह जौ बोळूं, ना. जौ बोलो, स. जौ बोळ । २. धा. तउ अथि डुले धुव, अ. फ. त अथि डुलइ धुव, द. त हथ तुम मथह, ना. तो हथ तुव मथह, उ. स. तो हथ तुम मथह ।

(३) १. मो. जबह राइ जानि (=जानइ), धा. जब उह राय जानि, अ. फ. जब वह जानि मोह, फ. जब जानूह मोह, ना. जब वासौ जानि हौ, स. जबह जानि । २. धा. समुहो हुअ, मो. संमह हुअ, अ. फ. संमुह हुइ, ना. सुमुह हुव ।

(४) १. मो. अंगमु= (अगाउ), धा. अ. अंगवउ, फ. अंगउ, द. तब अंगवुं, उ. स. तब अंग करौ । २. मो. त समरि दुह भूअ, धा. समर सम्हा हुअ, उ. स. सम्मह दोउ भुअ, अ. समर सह निशह, ना. समर दुर हरि भुव, फ. समर निशर भूव, द. समर दुहुनि भुव ।

म में यह रसाइनौ हे और पाठ यह है :—

चल्यौ चदकवि भटहू सेवक सथ तूव । जो बुलति मुष वन तु डुलति अथ धूव ।
जो वस राउ सु जानि सम सम्हौ हुवौ । परिहा तौ अग सम बल दधिह चूव भूह लयौ ।
टिप्पणी—(१) सेवग < सेवक । (२) समुह < समुख । (४) भुअ < भुजा ।

[४०]

दोहरा— दोइ^१ कंठ लगिगय गहन^२ नयनह जल गल न्हानु^३ । (१)
अब जीवन^४ वंछिहि^५ अधिक कहि^६ कवि^७ कोन^८ सयानु^९ ॥ (२)

अर्थ—(१) दोनो (चंद तथा पृथ्वीराज) कस कर गले मिले और नेत्रों के गिरते हुए जल से दोनों ने स्नान किया । (२) [पृथ्वीराज ने कहा,] “हे कवि तुम्ही कहो, अब [जयचंद के द्वारा अपमानित होने पर] कौन समझदार व्यक्ति अधिक जीवन की वाञ्छा करेगा ?”

पाठांतर—X चिह्नित शब्द मो. में नहीं है ।

(१) १. मो. दोइ, धा अ. फ. दुवे (< दुवइ ?), ना. दोऊ, द. दोउ, म. दुहुं, उ. स. दोय । २. धा. लागी गहन, अ. लभो गहन फ. लगो गहन, ना. लगिय दयन, उ. स. लगिय अगनि, म. लगा गहन । ३. मो. नयनह जल गिल नान्ह, धा. नयन जलगुलु न्हानु, अ. फ. नयन गलगल न्हानु, ना. नयन जगि गल नान, उ. स. नयन जलगि ललान, म. नयन जलजं हान ।

(२) १. स. अब जीव । २. मो. वंछिहि, धा. अ. फ. वछहि, ना. म. वछीय, उ. स. वछे । ३. मो. किहि, अ. फ. कधि, द. कहि । ४. धा. कवनु फ. म. कौनु, ना. कौन । ५. फ. म. सयान ।

टिप्पणी—(२) सयानु < सज्ञान ।

[४१]

अडिल— अब उपाउ^१ सुभफउ^२ एक^३ संचउ^४ । (१)
सुनि कबि मरनु^५ टरइ^६ नवि^७ रंचयउ^८ । (२)
समर^९ तिथ^{१०} गंगह^{११} जल षंचयउ^{१२} । (३)
अवसरि^{१३} अब स^{१४} पंग धर^{१५} नंचयउ^{१६} ॥ (४)

अर्थ—[पृथ्वीराज ने कहा,] “(१) अब एक सूचा उपाय रझ गया है । (२) हे कवि, सुन; [विधाता द्वारा रचा हुआ] मरना रच मात्र भी नहीं टलता है । (३) रण-तीर्थ तथा गंगा-जल ने खींचा है—वे हमें बुला रहे हैं । (४) [इस] अवसर पर हम पंग (कन्नौज राज) की भूमि पर नृत्य करें—रण-कौशल प्रदर्शित करें ।”

* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

पाठांतर—X चिह्नित शब्द मो. में नहीं है ।

(१) १. म. आव उपाव, फ. अब उपाउ । २. धा. सूझ्यो, अ. सुझ्यौ, फ. सुझ, ना. द. सुझ्यौ,

उ. म. सभ्यौ, म. सभ्यौ । ३. धा. अ. फ. म. इक, उ. स. इह । ४. मो. सचु (< सचु = संचउ)
धा. आ. उ. स. सचौ, ना. सच्यौ, द. फ. सच्यौ, म. सवर ।

(२) १. मो. तुसनि मरनि । २. मो. टरि (= टरइ), धा. ना. टरे, उ. स. ना. अ. फ. मिटे ।
३. धा. अ. फ. नहि, उ. स. नइ, म. नही, म. नन । ४. मो. रच्यु (= रंच्यउ), धा. अ. फ. रचौ, ना.
रच्यौ, फ. द. रच्यौ, म. नर ।

(३) १. मो. समरि, म. चौसुर, शेष में 'समर' । २. म. रति । ३. मो. गगह, शेष में 'गगा' । ४. मो.
षच्यु (= षच्यउ), धा. उ. स. षचौ, ना. म. अ. फ. षच्यौ ।

(४) १. मो. आवसरि, अ. अवसर । २. अ. उ. ना. अवसि, फ. अवसु । ३. मो. गंगधर, धा. द.
पंगु ग्रिह, ना. पंगु ग्रिह, अ. पंगु वृहि, फ. उ. स. पंगु ग्रह, म. पंगु तह । ४. मो. नच्यु (= नच्यउ)
धा. उ. स. नच्यौ, अ. फ. म. नच्यौ ।

टिप्पणी—(३) तिथि < तीर्थ ।

[४२]

दोहरा— आनदउ^१ कवि चंद निग^२ निप किय^३ संच विचार^४ । (१)

मन गरुअर^१ सिर हरुअ हइ^{*२} जीवन^३ हरुअ सिरभार^४ ॥ (२)

अर्थ—(१) कवि चंद जी में आनंदित हुआ कि राजा (पृथ्वीराज) ने यह एक सच्चा विचार
किया । (२) [उसने जान लिया कि इस समय पृथ्वीराज के लिए] मन [का सकल्प] गुरुतर
है और उसकी तुलना में सिर हलका हो रहा है, जीवन हलका—महत्वहीन—हो रहा है,
और [कंधों पर] सिर भारी हो रहा है—उसको उतार फेंकने की उत्कण्ठा हो रही है ।

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है ।

(१) १. मो. आनडु (= आनंदउ), धा. आनंदिउ, अ. फ. आनंद्यउ, द. अनदयौ, ना. उ.
स. आनदयौ, म. अनयो । २. धा. कवि कव्यनु, अ. फ. कवि सुने वयनु, म. कवि वयन त्रिपु, ना. कवि
इक वयन, उ. स. कवि के वयन । ३. म. कोयउ । ४. मो. राच विचार, म. सच विहार ।

(२) १. धा. सरन (< मरन) गरुअ, अ. उ. स. ना. द. मरन गरुअ, फ. मरन मगरु, म. मरन गिरु ।
२. धा. सिर हरुअ हे, मो. सिर हरुअ हि (= हइ), अ. ना. द. उ. स. सिर हरुअ है (हे-द.), फ.
बासर हरु, म. मिर पडुव है । ३. धा. जावन (< जीवन), उ. स. जियन, फ. जीउन, म. जीवनु । ४. धा.
हरु सिर भार, फ. तुव सिर भार, ना. ह^४ सिर भार, म. गिरु सिर भार, उ. हरुअ सि भार ।

टिप्पणी—(१) सच < सत्य । (२) गरुअर < गुरुतर । हरुअ < लघुक ।

[४३]

रासा— अप्पउ^{*१} कवि कयमास^{*२} सतीय सय ले^३ संचरिउ^४ । (१)

मरन लग^१ बिधि^२ हथु तथु कवि^३ उचरिउ^४ । (२)

घरि^१ वरु^२ पंगु प्रगट^३ अरु थह^४ विहंडिहइ^{*५} । (३)

इत उपहास^१ बिलास न^२ प्रान पमूकिहइ^{*३} ॥ (४)

अर्थ—(१) कवि ने कयमास [के शव] को उसकी स्त्री को अर्पित किया, और सती सत

लेकर [चिताग्न में] संचरित हुई। (२) तब कवि ने कहा, “मरण और लग्न (विवाह) विधाता के हाथ में हाते हैं। (३) हम भले ही पग धरा-कन्नौजराज की भूमि-पर प्रकट होंगे और अरि-यट्ट—शत्रु-सेना—को विहंडित करेंगे, (४) यहाँ रहकर उपहास सहन करते हुए और विलासों में हम अपने प्राणों को नहीं छोड़ेंगे।”

पाठांतर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. आपु (= आपउ), धा. अप्पिउ, द. ना. अ.पो, म. अप्पौ, अ.अध्वउ, फ. आधौ। २. मो. कवि किमास (= कयमास), धा. कवि कैवान, ना. म. कवि कैमान, उ. स. पडु कैमास। ३. धा. ना. द. उ. स. सतु (सत - ना. उ. स. म.), अ. फ. सरु। ४. धा. सचरिउ, मो. सचर्यु (< संचर्यउ), उ. स. अ. फ. द. सचरयौ (संचरयो-अ.), ना. सचयौ, मा. वारयो।

(२) १. धा. अ. फ. म. उ. स. ना. द. लगन। २. फ. विध। ३. मो. तथ्यु कवि, म. त कवि, ना. में पिछला शब्द नहीं है। ४. धा. उच्चरिउ, मो. उचर्यु (< उचर्यउ), अ. फ. उच्चरयो, म. उचारयो, ना. उचयो।

(३) मो. घर, धा. धरि, शेष में ‘घर’। २. म. व, उ. स. द. भर। ३. मो. पग प्रगुट, ना. द. पग प्रगटि, म. पंग रूप। ४. धा. त छट्ट, म. प्रगट, उ. स. रुठट्ट, अ. फ. तुछछक, ना. हिडड, म. तु षडि। ५. मो. विहविडु, धा. विहडियउ, अ. व. विहठिहै, फ. विहडहंहि, उ. स. विहंडिहौ, ना. द. विहडिहै, म. विहडिहै।

(४) १. धा. इति उपहास, फ. इन उपहास, अ. उ. स. इन उपहास, म. परिहा तो उपहास, ना. इतौपहास। २. फ. विलास ति, म. ना. विलासत। ३. मो. प्राण पमुकहि (= पमुकहइ), धा. प्राण न छडियउ, ना. अ. प्राण न छडिहै, फ. प्राण न छडियहि, द. प्राण पमुकिहै, उ. स. प्राणय षडिहौ, म. प्राण प्रमुकिहै।

टिप्पणी—(१) आप < अपर्प्यु। मय < सत। (२) लग्न < लग्न। तथ्य < तत्र। (३) विहड < वि+षडय। (४) पमुक < प्र+मुच्।

४. पृथ्वीराज का कन्नौज-गमन

[१]

कवित्त— कनवज्जिय^१ जयचंद^२ चलउ^{*३} ढिल्लियसुर^४ पेषन^५ । (१)
 चंद विरदिया साथि बहुत^२ सामंत^२ सूर घन । (२)
 चहूआन राठवर जांति पुंडीर गुहिल्ला^३ । (३)
 वडगुजर पांमार कुरंभ जांगरा रोहिल्ला^३ । (४)
 इत्ते^२ सहित्त^२ भुअपति^३ चलउ^{*४} उडी रेन किन्नउ नुभउ^{*५} । (५)
 एकु एकु^२ लष वर लषवइ^{*२} चले^३ सथ^४ रजपुत्त^५ सउ^{*६} ॥ (६)

अर्थ—(१) कन्नौज में जयचंद को देखने के लिए दिल्लीश्वर (पृथ्वीराज) चल पड़ा ।
 (२) विरदिया (विरुद कहने वाला) चंद साथ में था और बहुत से सामन्त तथा अनेक शूर थे ।
 (३) वे चहुआन, राठौर, पुंडीर, गुहिल, (४) वड गुजर, पवार, कुरंभ (कछवाहा), जांगरा तथा रोहिल्ल [क्षत्रिय] थे । (५) भूपति (पृथ्व राज) इतनों के साथ चल पड़ा; [उस प्रयाण से] रेणु उड़ी और उससे नभ आकीर्ण (आच्छादित) हो गया । (६) [जिनमें से] एक-एक [एक-एक] लाख का बल दिखाता था (१), ऐसे सौ राजपूत साथ चले ।

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो कनविज्जय, धा. कनवजहे (< कनवजहि), द. कनवजहां, अ. फ. म. उ. स. कनवज्जह । २. फ. जइचंद । ३. मो. चल (=चलउ), धा. द. चलयो, अ. फ. म. ना. उ. स. चलयौ । ४. मो. दिल्लियसुर, धा. दिहेसुर (< दिल्लिसुर), अ. फ. ढिल्लिय सुर, उ. स. ना. म. दिल्लीपति, द. दिल्लियपति । ५. धा. अ. दिष्यन (=दिष्यन), द. दक्षनु, द. ना. म. उ. स. पिष्यन (=पिष्यन) ।

(२) १. धा. चंद वरदिया साथ बहुत, अ. फ. सथ चंद वरदाइ बहुत, द. ना. म. उ. स. चंद वरदिय (द. विरदीयो, ना. बिहदह, म. वरदीया) तथ सथ । २. अ. फ. सावत ।

(३) १. धा. मो. ना. चाहुवान (चहूआन—मो.) राठौर (राठवर—मो. , राठौर—ना.) जाति पुंडीर (जांति पुंडीर—मो.) गुहिलय (गहिल्ला—मो. , गुहिलह—ना.), अ. फ. चाहुवान रोठाड (राठौर—फ.) जावौ (जाउ—फ.) पुंडरी गहिल्ला, द. म. उ. स. चाहुआन कुरंभ गौर (गौड—द.) गाजी वडगुजर ।

(४) १. धा. वड गुजर पांवर चलै जांगरा सुहलय, मो. वड गुजर पांमार कुसम जांगरा रोहिल्ला, अ. फ. वड गुजर पावार चले कुरंभ मुहिल्ला, द. म. उ. स. जादव (जदौ—द.) रा रघुवंस पार पुंडीर ति पषर, ना. वड गुजर खीची पमार कुरंभ मुहिलह ।

(५) १. मो. इत्ते, धा. कूरंभ, अ. फ. ना इत्तने, म इत्तनिअ। २. मो. सहत। ३. धा. ना. द. म. उ. स. भूपति। ४. धा. चलयो, मो. चलु (=चलउ), अ. फ. म. चळ्यौ, उ. स. छळ्यौ। ५. धा. उडिय रेणु किन्हो नमो, मो. उडी रेन किन (<किनु=किनउ) नुभू (=नुभउ), अ. फ. उडी रेनु किनौ (रेन कीनौ-फ.) नभौ, ना. म. उ. स. उडी रेन (रेणु-ना.) छिनौ (छीनौ-म. उ. स.) नभौ (नभौह-म.)।

(६) १. धा. म. इक इक्कू, अ. फ. ना. इक इक्क, ना. लष्यवर, द. उ. स. इक लष। २. धा. वीर आंगमइ, मो. वर लषवि (=लषवइ), अ. फ. वर लिषिये, म. उ. स. वर लषीये, द. वर लषियै। ३. धा. अ. फ. लियौ, ना. लयै, म. उ. स. चले, द. चढे। ४. धा. मो. अ. फ. साथ, द. ना. म. उ. स. सथ। ५. मो. रचपुत्त, म. रजपूत। ६. धा. मो. मो. सु (=सउ), अ. फ. ना. सौ, म. सौह।

टिप्पणी—(१) पेख < पेक्ख < प्र+ईक्ष्=देखना, अवलोकन करना। (३) जांति < ज्ञाति। (५) किन्न < किण्ण < कीर्ण।

[२]

दोहरा— राज सगुन संमुह हुअ^१ ति धुर^२ तन सिघ^३ दहार । (१)

मृग दक्खिन^४ षिन षिन^५ खुरहि^६ सु चरइ^{*} न^७ संभरिवार^८ ॥ (२)

अर्थ—[चंद ने कहा,] “(१) हे राजा, शकुन सामने ही हुआ है—कि ध्रुव [की दिशा—उत्तर] की ओर [मुख कर] सिंह दहाड़ रहा है; (२) मृग दक्षिण [दाहिनी ओर] क्षण-क्षण [भूमि] खूट रहा (खुर से खंडित कर रहा) है, किंतु हे सौंभरवाल (पृथ्वीराज), वह चर नहीं रहा है ।”

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) १. धा. राज सगुन साम्हो हुवो, मो. राज सगुन समह (<समुह) हुअ ति, अ. फ. राज सकुन सम्मुह हुवौ (<हुवउ-फ.), ना. राजा सगुन समूह हुव, म. उ. स. राज सगुन सम्मूह हुअ। २. धा. ध्रुवनर, ना. अ. फ. ध्रुवतर, द. ध्रुवतन, म. उ. स. ध्रुवतन। ३. मो. संघ (<स्यध), धा. ना. द. म. उ. स. सिंघ, अ. फ. सिंह।

(२) १. मो. दक्षन, धा. दक्खिण, अ. दक्षिन, फ. दिक्षिन, म. दषिन, द. ना. उ. स. दच्छिन। २. धा. खिणि खिणि, मो. म. षिनषिन, उ. स. छिन छिन, ना. षिनु, अ. दक्षिन, फ. दच्छिन। ३. धा. खुरति, मो. रहै, अ. षरह, फ. षरहि, ना. उ. स. पुरहि, म. पुरे। ४. धा. चरहि न, मो. सु चरि (=चरइ) न, अ. फ. चलहि न, ना. द. चलहिं (चलहि-ना.) त, म. चल व, उ. स. चलहि त। ५. धा. सभरवारै, ना. सभरवारि।

टिप्पणी—(१) धुर < ध्रुव। (२) खुर < खुट्ट < तुट्ट (१)=खंडित करना, तोड़ना (तुल० अवधी ‘खुरिहारव’)।

[३]

दोहरा— सुनत^१ सीस^२ सारस सबद उदय^३ सबइल^४ भांन^५ । (१)

परन^६ भंजि^७ प्रतिहार जिह^८ करिहि^९ त कज्ज^{१०} प्रमांन^{११} ॥ (२)

अर्थ—“(१) मिर के ऊपर सारस का शब्द सुनते हुए, बादलो के साथ सूर्य के उदय काल में, (२) अथवा यथा (जब) प्रतीहार (तीतर) परां को भोजे (उड़े—उडाता हुआ दिखाई पड़े), [कोई] कार्य करे तो वह प्रमाण (ठीक) हो ।”

पाठान्तर—(१) १ धा सुरति, अ. फ. रत्त । २. धा. साय । ३. अ. फ. म. उभय (उभ-म.) । ४. धा. सबदला, फ. ना. सबदल, म. उ. स. सुबदल । ५. धा. फ. भानु ।

(२) १ धा अ म उ स परनि, ना द परणि । २ धा. भज्ज, द. उ. म. भाजि, फ. भज । ३. धा. ज्यँ, ना सु, म उ स सौ, अ. फ. सौ । ४. धा. द ना उ. म. करहि, अ. फ. करहु, म. करे । ५. धा. अ. त कज्ज, मो. त काज, म. ति कान, फ. जु कज्ज । ६. धा. प्रवान ।

टिप्पणी—(२) पर < पट । ङिह < यथा ।

[४]

दोहरा— तब^१ कल करार^२ सद्यो^३ समुह^४ हसि^५ नृप बुभुक्षु^६ चद । (१)
एक^१ रवि मडल भेदहि^२ एक ति करिसह ददु^३ ॥ (२)

अर्थ—(१) इसके अनन्तर कल (अच्छे) और कराल [दोनों प्रकार के] शकुन सब ही सम्मुख आए, और राजा (पृथ्वीराज) ने हँस कर चंद से [उनका परिणाम] पूछा । (२) [चंद ने कहा,] “एक [प्रकार का शकुन] [योद्धाओं को रण में] वीरगति दिलाकर रवि-मडल भेदन [उपस्थित] करेगा और एक [प्रकार का शकुन] द्वन्द्व (सुख-दुःख) [उपस्थित] करेगा ।”

पाठान्तर—(१) १. यह शब्द मो के अतिरिक्त किसी में नहीं है । २. धा. कर करार, मो. कल कराद, अ. फ. सुनि कराल, ना. म. कल कराह, द. सकल रार, उ. स. कल कलार । ३. मो. समो, धा. सज्यो, अ. फ. सद्यउ, द. सद्यो, उ. स. सद्यौ । ४. मो. समूह । ५. मो. हसी । ६. मो. बडु (<बुझु=बुझु), धा. बुझ्यो, अ. फ. बुझ्यउ, उ. स. बुझ्यौ ।

(२) १. धा. अ. फ. म. ना द. उ. स. इक । २. धा. अ. भिदिहै, फ. सिद्धिहै, म. भिदिह, द. भेद है, ना उ. स. भेदिहै । ३. धा. अ. फ. इक करहि (करही-फ.) ग्रिह (ग्रह-फ.) दद, द. इक करहि ग्रह आनद, म. इक करहि आनद, ना. इक करहि गृह नद, उ. स. इक करिहै आनद ।

टिप्पणी—(१) करार < कराल । (२) ददु < द्वन्द्व ।

[५]

दोहरा— त्रयत^१ दिवस त्रय^२ जामिनी^३ त्रयत^४ याम^५ पल उन्न^६ । (१)
जोजन^१ एकइस^२ सचरिग पृथीराज संपन्न ॥ (२)

अर्थ—(१) तीन दिवस, तीन रात्रि और तीन पहर में पल भर ऊन कम था (२) जब इक्कोस योजन (चौरासी कोस) तक [कन्नौज की दिशा में] पृथ्वीराज चल कर पहुँच चुका था ।

पाठान्तर—(१) १. धा. त्रिय, अ. फ. त्रियत । २. धा. अ. फ. त्रिय । ३. म. द. जामिनीय । ४. धा. त्रयी, अ. फ. त्रियत । ५. मो. याम, शेष में ‘जाम’ । ६. धा. ना. पल तिन्न, अ. फ. पल बुन्न, म. पल ऊन, द. पल वन्न, उ. स. फल उन्न ।

(२) १. धा. योजन । २. धा. ना. इक इक, अ. उत्त इक, फ इक, म. उ. स इकत ।
टिप्पणी—(१) उन्न < ऊन=हीन ।

[६]

दोहरा— ^१त्रयत् ^२यांम वास^३ विसर^४ घटिग हस तनु^५ रात । (१)
जु कछु इच्छि चच्छनु हुति^१ सँ सव दिध्व प्रात^२ ॥ (२)

अर्थ—(१) तीन पहर दिन जाने के बाद सूर्य और [तदनन्तर] रात्रि का तनु (शरीर) घट (बीत) गया । (२) [फिर] चक्षुओ को जो कुछ (जिस वस्तु की) इच्छा थी, उस प्रात को सब ने देखा ।

पाठान्तर—(१) १. धा. में इस छंद के स्थान पर निम्नलिखित छंद है—

मइत निसा दिस मुदित तिम उड त्रिप तेज विराज ।

कथित साथ कथहे कथा सुक्ख सयन प्रिथिराज ॥

किन्तु यह छंद धा. १८० भी है, जैसा अन्य प्रतियों में भी वह है, इसलिए धा में यहाँ वह भूल से आया हुआ लगता है । २. म उ. स. त्रयति । ३ उ स वासुर । ४. उ स. विसरि । ५. उ. स. तन ।

(२) १. उ. स. चष इच्छा हुती । २. उ. स सोइ दिध्व परभात ।

टिप्पणी—(१) विसर=वि+सर (सर्=जाना) ।

[७]

पद्धडी— उत्तरिय^१ चित्त^२ चिता^३ नरेस । (१)
वत्तरहि^१ सूर सुरलोक देस । (२)
एक^१ कहइ^{*२} लिइहि वर^३ इंद^४ राज । (३)
जस जीवन^१ मरन प्रथीराज^२ काज । (४)
करि^१ करहि^२ सूर असनांन^३ दांन । (५)
बल^१ भरहि^२ सूर सुनि सुनि निसांन^३ । (६)
सरवरिअ^१ साल^२ बंछहि^३ त भांन^४ । (७)
बधु^१ बाल जिमे^२ वंछहि^३ विहांन^४ । (८)
गुरु^१ दइत^२ उदित मृग मुदित^३ इत्तु^४ । (९)
फलमलिग^१ तार तरु हलिग^२ पत्तु^३ । (१०)
दिषियतु^१ इदु^२ किरणअनु^३ मदु । (११)
उहिम्म^१ हीन जिम नृपति चंदु^३ । (१२)
पुह^१ फटिग घटिग^४ सरवरि^२ सरीर । (१३)
फलकांति^१ कनक^२ दिष्व गम नीर^३ । (१४)

नृप भ्रमिग^१ जानि^२ पहु^३ पुब्ब देस । (१५)
अरि नयर^१ नीर^२ उत्तर कहेस ॥^३(१६)

अर्थ—(१) [प्रभात होता देखकर] नरेश (पृथ्वीराज) के चित्त की चिन्ता उत्तर गई । (२) शूर-गण [युद्ध में मर कर] सुरलोक देश (स्वर्ग) [प्राप्ति] की बाते कर रहे थे । (३) एक कह रहा था कि भले ही इन्द्र का भी राज्य होगा, तो वह उसे ले (जीत) लेगा, (४) उसका यश, जीवन, और मरण पृथ्वीराज के कार्य के लिए होगा । (५) शूर गण स्नान करके दान कर रहे थे, (६) और धौसे की ध्वनि सुन सुन कर शूर-गण बल भर रहे थे—उत्साहित हो रहे थे । (७) वे शर्वरी (रात्रि) के लिए शल्य रूप भानु [के उदय] की [उसी प्रकार] वाञ्छा कर रहे थे (८) जैसे बालिका (अल्पवयस्का) वधू रात्रि के अन्त की वाञ्छा करती है । (९) दैत्य-गुरु (शुक्र) उदित हो गए थे और मृगशिरा नक्षत्र अब मुदित [दिखाई पड़ रहा] था, (१०) तारक-गण झिलमल-झलमल कर उठे और तरु के पत्ते हिल उठे । (११) इंदु की किरणें मन्द दीख पड़ने लगी थी, (१२) [वह ऐसा लगने लगा था] जैसे उद्यम-हीन नृपति हो । (१३) पौ फट गया और शर्वरी—रात—का शरीर क्षीण हो गया, (१४) [आकाश का] स्वर्ण [वर्ण] जल के मार्ग (प्रवाह) में झलकता हुआ दिखाई पड़ने लगा । (१५) नृप पृथ्वीराज [पग—] प्रभु का देश पूर्व [दिशा में] जान कर भटक गया था, (१६) [जब कि लोगों ने] बताया कि उसके अरि (शत्रु) जयचंद का नगर निकट ही उत्तर [की ओर] था ।

पाठान्तर—X चिह्नित शब्द फ. में नहीं है ।

(१) १. म. उ. स. में इसके पहले और है (स. का पाठ) :—

चपी सु भोमि कनवज्ज राइ । दस गुनौ सूर बर चढ़त भाइ ।

उच्चर्यौ भट्ट कवि चंद सथ्य । दीसई राज रवि सम समथ्य ।

जिम जिम सुनिकट कनवज्जआय । डरपहि न सूर तिम तिम दृढाय ।

ओपम चद जंपी सुराय । बल बधि पीय सगम दिढाय ।

२. मो. व्यति (=चित्ति), अ. फ. ना. उ. स. चित्त । ३. मो. च्यता (=चिता), शेष में 'चिता' ।

(२) १. मो. वितरिहि, धा. वत्तरहि, अ. ना. विस्तरहि, फ. विस्तरह, म. बेतरहि, उ. स. बेतरहि ।

(३) १. धा. ना. अ. फ. उ. स. इक, मो. एक, म. इह । २. मो. कहि (=कहइ), धा. अ. फ. कहहि, ना. कहै, म. उ. स. कहत । ३. मो. लेइहि (<लेइहइ), धा. अ. लेहि वर, फ. लेह वर, ना. म. द. उ. स. लेहि (लैहि-ना.) बल । ४. धा. इहु, द. चन्द, म. उ. स. इन्द्र ।

(४) १. धा. जस जिवन, अ. फ. म. उ. स. जस जियन (जीयन-म.), ना. सज जीय । २. धा. प्रथिराज, म. प्रथीराज ।

(५) १. धा. एक, अ. फ. ना. इक, द. म. उ. स. कर । २. मो. करिहि, शेष में 'करहि' । ३. मो. धा. असनान, फ. सनान, ना. स्नान ।

(६) १. मो. धा. बल, अ. फ. ना. म. उ. स. बर । २. मो. भरिहि, ना. भिरहि, स. भरत । ३. धा. सुणि सुणि निसान, ना. सुनि धुनि निसान, म. सुनि रुमिसान ।

(७) १. ना. श्रव्वरिय । २. अ. फ. सल्ल । ३. मो. फ. बछि (=बछइ) । ४. मो. भान, धा. नि भान, अ. फ. ति भान, ना. न भान ।

(८) १. धा. बुधु, ना. द. म. उ. स. मुध, उ. मधु । २. धा. केम, ना. फ. म. उ. स. जेम, अ. जेमि । ३. मो. वछिहि (<बछहि), धा. मगइ, अ. मंगहि, फ. मंगै, ना. मग्गहि, म. उ. स. इच्छत, द. इछहि । ४. धा. विधान ।

(९) १. मो. गरु । २. धा. दपत (=दयत), म. उ. स. दयत, ना. देत । ३. धा. उदित, फ. सुदित (<सुदित) । ४. अ. फ. अत्त ।

(१०) धा. झिलिमिलिग, ना. झलमलोग, द. झलमिलिग । २. धा. तरतिलिग, मो. अ. ना. तरहलिग, फ. तहलग्ग । ३. फ. पत्ति, द. पान ।

(११) १. धा. दिखइ, अ. दिष्षिये, फ. दिष्षाय, ना. दिष्षीये, द. दिषयहिं, उ. स. देषियत, म. देषयइ । २. अ. फ. चद, म. इद्र । ३. धा. किरणाण, द. किरणीन, अ. फ. किरनीन, उ. स. ना. किरणीनि, म. जनु किरन ।

(१२) १. धा. उद्दिमे, अ. म. उ. स. ना. उद्दिमह, फ. उद्दिमहि । २. धा. जिमि, ना. जनु । ३. धा. निपति वंदु । ४. मो. के अतिरिक्त शेष सभी में यहाँ और है (स. का पाठ) :—

धरहरिग सोत सुर मद मद । उप्पज्यो जुध आवध दद ।

[यह पक्ति स्पष्ट ही प्रक्षिप्त है क्योंकि किसी भी पाठ के अनुसार यहाँ युद्ध का प्रसंग नहीं है ।]

(१३) १. धा. यह, अ. म. उ. स. पहु, ना. फुह, फ. सुपहि । २. फ. सब्बरि, म. सरवर, ना. सर्वरि ।

(१४) १. धा. अ. म. उ. स. ना. झलकंत, २. अ. कन, फ. कति, ना. द. म. उ. स. कलस । ३. धा. दिष्षियग नीर, अ. दिष्षिय मनीर, फ. दिष्षिय ननीर, ना. दिषि मगन नीर, द. म. उ. स. दिषि गमन नीर । ४. म. उ. स. में यहाँ और है (स. का पाठ) :—

विरहीन रेनि छुट्टिमित मान । नष्वंत तोरि भूषन प्रमान ।
असुवंत असु उत्सास आइ । विरहीन कत चंदहु बुलाइ ।
पह फट्टि घट्टि भूषनन बाल । दिसिरत्त दरसि दरसी कसाल ।
त्रिप भ्रमि गग सब पुब्ब देस । आरन्न अरिन उत्तर नरेस ।

[किन्तु अंतिम चरण म. उ. स. में पुनः अपने स्थान पर भी यथा अन्य प्रतियों में आया है, इसलिए उनमें पुनरावृत्ति स्पष्ट है ।]

(१५) १. मो. भूमिग । २. म. जंमि, धा. कहिग । ३. मो. पुहु, ना. फ. पुह, उ. स. इह ।

(१६) १. धा. अरिय नीर, अ. फ. अरि नैर । २. म. जांनि । ३. मो. के अतिरिक्त सभी में यहाँ और है :—

वरसिंघ हिंदु कनवज्ज राछ । तहं चढ़यउ सुगं वरि धर्म चाछ ।

[यह पंक्ति स्पष्ट ही प्रक्षिप्त है, क्योंकि इसकी कोई संगति नहीं प्रतीत होती है और यह उक्ति शृंखला का भी अतिक्रमण करती है ।]

टिप्पणी—(१) वत्तरहिं : तुल० बतराहिं । (२) इद < इद्र । (५) साल < शल्य । (९) दइत < दैल । इत्त < अत्र । (१०) पत्त < पत्र । (१४) गम=मार्ग, रास्ता । (१५) पहु < प्रमु । (१६) नीर < नियर < निकट ।

[८]

दोहरा— रवि सम्मुह तमकउ* उवइ*^१ हे तुहि^२ मग्ग समुम्फ^३ । (१)
भुल्लि भट्ट^१ पुब्बहि^२ वलउ^३ कहि^४ उत्तर कनवज्ज ॥ (२)

अर्थ—[पृथ्वीराज ने चंद से कहा,] “(१) रवि [हमारे] सम्मुख तमतमाता हुआ उदित हो रहा है, और तेरा मार्ग समझा (जाना) हुआ है । (२) हे भट्ट, मैं भूल कर पूर्व की ओर मुड़ पड़ा, जब कि कन्नौज उत्तर में कहा जाता है ।”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. समूह तमकू (=तमकउ) उवि (=वइ), धा. तुम्ह समुह उहइ, अ. तुम्ह हे समुहि उयो, फ. तमहि समुह उयौ, उ. स. तमुह समुह उयौ, म. तमू समुह उयौ, ना. मुह समुह उदयौ। २. मो. हे तुहि, धा. इह तुम्ह, अ. फ. ना. हे तुहि, उ. स. इह है कछु। ३. मा. मग समूह, फ. मग समुज्ज, म. मग समझ, ना. मगल सुज्ज।

(२) १. मो. भूलि भट्ट, धा. भुलि भट्टि। २. मो. पूविहि, अ. फ. ना. भूव्वह। ३. मो. चल (=चलउ), धा. द. चलयो, अ. फ. बलयौ, म. उ. स. चलिय, ना. चलयौ। ४. मो. किहि, फ. कह।

टिप्पणी—(१) उवय < उदय। (२) वल < वल्=मुड़ना।

[६]

दोहरा— कचन फुल्लिग*^१ अर्क बन^२ रतन जि^३ किरन^४ प्रकार^५। (१)
इह कलस्स^१ जयचंद ग्रिह^२ सुनि सुनि^३ संभरिवार^४ ॥ (२)

अर्थ—[यह सुनकर चंद ने कहा,] “(१) जिसका कचन सूर्य वर्ण का हो कर प्रफुल्लित हो रहा है, जिसके रत्न किरणों को भौंति हो रहे हैं, (२) ऐसा वह कलश जयचंद के गृह का है, हे साँभरवाल (साँभर पति), सुनो।”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है

(१) १. धा. फूल्या, मो. उ फूले (=फुलि), अ. रु फुल्लिग, म. फूलिग, स. फूलिअ। २. अ. फ. सम। ३. धा. रतने, अ. रतननि, फ. तरनन, ध. तरन, उ. स. रतन। ४. धा. किरण, ना. किन्न, म. किरन। ५. धा. प्रहार, उ. स. प्रसार, म. प्रसारि।

(२) १. धा. उये कलस, अ. फ. उदय कलस, ना. द. उ. स. सुवे कलस, म. सुवे कलस। २. मो. ग्रह, द. म. उ. स. घर। ३. धा. अ. फ. ना. म. उ. स. सभरि। ४. धा. सिभरि बार।

टिप्पणी—(१) ज < यः।

[१०]

भुजंग प्रयात— कहों^१ संभरेनाथ ठाढ़े^२ गयंदा। (१)
सुत दिषिहीं^{१*} रूव^२ अयरावइंदा^३। (२)
कहों फेरवै^१ भूप+ आछे^२ तुरंगा। (३)
मनु^१ दिषियत वाय लग्गे^२ कुरंगा।^४ (४)
कहों माल भूअदंड^१ ते सरोह^२ साधइ^{३*}।^४ (५)
कहों पिषि पायक^१ बानेत^२ बांधइ^{३*}।^४ (६)
कहों बिप्र ते उठि ते^१ प्रात चले। (७)
मनु^१ देवता सेव ता मर्ग^२ भुले। (८)
कहों यग्य याज्यंति ते राज राजा^१। (९)
कहों देवदेवा त^१ नित्यान साबा^२। (१०)

कहों तापसा^१ तप्प^२ ते^३ ध्यान लगे^४ । (११)
जिने^१ देषित^२ रूप ससार भगे^३ । (१२)
कहों षोडसा राय^१ अप्पति^२ दान । (१३)
कहों हेम सामान^१ प्रथमी^२ प्रमानं^३ । (१४)
एतने चरित्र ते गंग^१ तीरे । (१५)
सोयं^१ देषते^२ पाप नठे^३ सरीरे ॥ (१६)

अर्थ—[चंद ने कहा,] (१) “हे सौभरपति (पृथ्वीराज),” कही पर [जो] गजेन्द्र खड़े हैं, (२) वे तो ऐरावतेन्द्र के रूप (समान) दिखाई पड़ रहे हैं। (३) कही राजागण अच्छे घोड़ों को घुमा रहे हैं, (४) जो ऐसे लगते हैं मानो कुरंग (मृग) [भागते हुए] वायु से लग (मिल) रहे हों। (५) कही पर मल्ल भुज-दंडों से सरो साध रहे हैं, (६) कही पर पदातिक बाने बाँधे—या बाँधते—हुए दिखाई पड़ रहे हैं। (७) कही पर विप्रगण उठकर प्रातः काल ही चल पड़े हैं, (८) मानो देव गण सेवा से आकृष्ट होकर [स्वर्ग का] मार्ग भूल रहे हों। (९) कही पर राजा गण द्रव्य यजन कर रहे हैं, (१०) कही पर देव देव (महादेव) [के मंदिर में] नृत्य सजे हुए हैं। (११) कही पर तपस्वी तप के ध्यान में लगे हुए हैं, (१२) जिनको देखते ही रूप का संसार भाग जाता है। (१३) कही पर राजा गण षोडस दान अपित कर रहे हैं, (१४) कही पर स्वर्ण से [वे विप्रादि का] सम्मान कर रहे हैं, और कही पर वे पृथ्वी (भूमि) का दान प्रमाणित कर रहे हैं। (१५) गंगा के तट पर इतने चरित्र दिखाई पड़ रहे हैं, (१६) जिन्हें स्वयं देखने पर शरीर के पाप नष्ट हो जाते हैं।”

पाठांतर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

+चिह्नित शब्द ना. में नहीं है।

Xचिह्नित चरण म. में नहीं है।

(१) १. इस छंद में आए हुए ‘कहों’ के स्थान पर मो. में सर्वत्र ‘कांहां’, धा. अ. में ‘कहू’, ना. में ‘कहु’, फ. में ‘कहौ’, म. में एक स्थान पर ‘कहौ’ अन्यथा ‘कहुं’ तथा द. उ. स. में एकाध स्थान पर ‘कहों’ अन्यथा ‘कहुं’ है। २. धा. थड्डे, अ. फ. उठे, म. थटे, ना. उठ्ठे।

(२) १. मो. सुतं दिषिह, धा. अ. फ. मनो दिखिये, ना. मनु (=मनउ) दिषीयै, म. उ. स. मन, (मनौ-म.) पिषियै। २. मो. ना. म. उ. स. रूप। ३. मो. अयरायरंदा, वा परावइदा, ना. औरापयंदा, म. उ. स. अरापइदा, फ. उठे गजदा।

(३) १. धा. अ. फ. म. फेरही (फेरही-म.), ना. फेरहि ति, उ. स. फेरिहित। २. धा. अ. फ. ना. म. उ. स. अच्छे (अच्छ-म.)

(४) १. मनो दिषिये, अ. फ. मनो पिषिय, ना. मनु (=मनउ) पर्वते, म. उ. स. मनो प्रब्वतं। २. धा. द. उ. स. बड्डे, अ. फ. चडे, ना. चडि (=चडइ)।

(५) १. अ. फ. भूडड। २. धा. सजिसाह, अ. फ. ते सार, ना. द. ते सरौ, म. ते सरु, उ. ते सरौ, स. ते रोस। ३. धा. अ. फ. संधै, मो. साधि (=साधइ), ना. साधे, म. उ. स. साधै। ४. म. में अगले चरण के स्थाच पर तथा उ. स. में यहाँ अतिरिक्त (स. का पाठ) : तिकै मुष्टिकं जोर चानूर बाँधै।

(६) १. ना. दिषि पाइक, फ. पिक्खीयै। २. मो. बानि (=बाने) त, धा. बानैत, अ. फ. बानैति (त-फ.)। ३. मो. बाधि (=बांधइ), फ. बंध। ४. उ. स. में यहाँ और है : नचे इंद्र आइ सक बज्र साधै।

(७) १. धा. ता उठि ते, अ. फ. ते उठि ही, ना. म. उ. स. उठु त ते।

(८) १. धा. मनो। २. धा. मगते स्वर्ग, अ. फ. स्वर्ग ते मग, ना. सेवते सग, म. उ. स. सेव ते (ते-म) स्वर्ग।

(९) १ धा. जर्गिजै पुण्य ते राज काजं, अ. फ. जग्यते पुन्य ते राज काज, ना. द. उ. स. जग्य जापन्न (जापत-ना.) ते राज काजै (काजं-ना), म. जग जापन त राज काजे ।

(१०) १. धा. अ. ना देव देवाल, मो. देवता देव, फ. त्रिप्र प्रातै, म. देव देवात, उ. स. देवता देव । २. मो. नित्यान साजा, वा. ते भ्रत्य साज, अ. ते क्रिति साज, फ. उठै जग्य साज, द. ना नृत्यान साजं, म. स. नृत्यान साजें (साजे-म.) ।

(११) १. म. उ. स. तापसी । २. धा. अ. फ. ना. ताप । ३. म. तेज । ४. म. लागे फ. लग्गौ ।

(१२) १. धा. ना. तिन, अ. म. उ. स. तिन, फ. तऊ । २. धा. अ. फ. देखते, उ. स. दिषियै, ना. म. देषिय । ३. म. भागे, फ. भग्गौ ।

(१३) १. धा. राइ । २. धा. फ. अप्पत, म. ना. आपत ।

(१४) १. धा. अ. फ. ना. म. उ. स. सम्मान (समान-म.) । २. धा. अ. फ. प्रिथ्वी, ना. म. उ. स. प्रिथ्वी । ३. म. उ. स. मे यहाँ और है (स. का पाठ) :—

कहू बोल ही भट्ट छद प्रमान । कहू औघटं बीर सगीत गान ।

कहू दिषि सिद्ध लगी तारि भारी । मनो नर प्रात कपाट उधारी ।

कहू बाल गावे विचित्र सुग्यान । रहै चित्त मोहन्न डुल्ले नृपान ।

(१५) धा. अ. फ. ना. इते चारु चारित्त ते गग (सवेग-धा.), म. उ. स. इते चरित पेषंत ते गग ।

(१६) १. धा. अ. फ. तिने, ना. म. उ. स. स्वय । २. ना. दीष्यते । ३. धा. नट्ठे ।

टिप्पणी—(२) रूव < रूप । (५) भुअदड < भुजदड । सरो=एक प्रकार का व्यायाम का खेल ।

(६) पायक < पदातिक । (८) मर्ग < मार्ग । (१६) नट्ट < नष्ट ।

[११]

त्रिभंगी—

हरि गंगे^१ ।^२ (१)

तन^१×^० तरल तरंगे, अघ कृत^२ भंगे^३, कृत^४ चंगे । (२)

हर सिर परसंगे, जटण^१ बिलंगे^२, अरधंगे^४×^० । (३)

गिरि^०×⁺ तुग^४×^० वनंगे^२×^०, विहरति^२ दंगे, जल जंगे^३ । (४)

गन गंध्रव^१ छंदे, जय जय वंदे^२, सुष चंदे^४ । (५)

मति उछ गति मंदे^१, दरसत^२ नंदे^३, गत^४ दंदे^५ । (६)

बपु अपु विलसंदे, जम भृत^१ जंदे^२, कह गंदे^३ । (७)

षिति मित^{*१} उर मालं, मुगति विसाल^२, सद^३ साल^४×⁺ । (८)

सुर^०× गुर^४×^० टट^४×^० सालं^०×⁺ कुसमित^०×⁺ लालं^०×⁺ अलिजालं^०×⁺ । (९)

हिम रित^१ प्रतिपालं^२ हरि चरणालं^३ बिधि बालं⁺ । (१०)

दरसन^१ रसराजं^२ जय जुग काजं, भय भाज⁺ । (११)

अंमर छरि^१ करजं, चामर वरज^२, सुभ^३ साजं^४ । (१२)

अमल तन^१ मंजरि, निअ^० तन^० जजरि^{०२}, चष^० षंजरि^३×^० । (१३)

करुणा^० रस^० रंजरि^{०२}, जन पुन गंजरि^१×^३ सा संकरि । (१४)

कलिमल हर^१ मंजन^२, जन^३ हित^४ सजन^५, अरि गंजन ॥ (१५)

अर्थ—(१) [गंगा की स्तुति करते हुए चंद ने कहा,] “हे हरि गंगा—हरि-नदी, (२) तू तरल तरंगों के तन वाली हो, तुम अघो को भग करती, और कल्याण करती हो । (३) तुम हर (शिव) के सिर के प्रसंग में [आने पर] उनकी जटाओं से विलग्न (लगी) रहीं और [शिव का] अर्धाङ्ग हो गई । (४) उत्तम गिरि (हिमालय) के वनों में उल्लास पूर्वक विहार करते हुए तुम्हारा जल चलता रहा । (५) गंधर्व गण ने छदों में, ऐ चन्द्रमुख वाली, तुम्हारा जय जय गान किया और वदना की । (६) [मेरे जैसे] ओछी मति और मद गति वाले को भी तुम अपने दर्शन से आनंदित और द्वंद से विगत करती हो । (७) जो शरीर से तुम्हारा जल बिलसते हैं, [उनके पास जब] यम के सेवक जाते हैं, वे (तुम्हारे भक्त) कहकहा लगाते (प्रसन्न होते ?) हैं । (८) तुम क्षिति मात्र की उरमाला हा, विशाल मुक्ति [रूपा] हो और सत (सतो गुण) की शैला हो । (९) तुम्हारे तट पर सरकड़े, नरकुल और साल लाल (सुन्दर) कुसुमित होते हैं और [उन पर] अलि-समूह [गुजार करता] रहता है । (१०) तुम हिम (हेमन्त) ऋतु द्वारा प्रतिपालित—हेमन्त ऋतु के हिम से जल प्राप्त करती, हरि के चरणों की आर्द्रता और विधि की बालिका हो । (११) तुम्हारा दर्शन रसो (आनन्दो) का राजा है तथा जगत् के कार्यों में विजय [प्रदान करने वाला] है और समस्त भय उससे भाग जाते हैं । (१२) तुम अमरो (देवताओं) के लिए छल कारिणी (?) हो और श्रेष्ठ चामर [तुल्य] शुभ साज वाली हो । (१३) तुम निर्मलता की मंजरी (उत्पादिका) हो, नीच तनु जन्म को जर्जरित करने वाली हो, और खंजरीट के चक्षुओं वाली हो । (१४) तुम कर्णारस का रंजन करने वाली, जनों (दासों) के पुण्यों को गँजने—पुण्यों की ढेरी लगाने—वाली, और शंकरा (कल्याण करने वाली) हो । (१५) तुम्हारा मज्जन कलियुग के पापों को हरता, जन (दासों) के हित का साज करता और शत्रुओं को नष्ट करता है ।”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ का है ।

× चिह्नित शब्द उ. स. द. में नहीं हैं ।

• चिह्नित शब्द म. में नहीं हैं ।

+ चिह्नित शब्द ना. में नहीं हैं ।

‡ चिह्नित शब्द अ. फ. में नहीं हैं ।

(१) १. धा. हर गंगे हर गगे हर गगे, अ. फ. म. हरि हरि गगे, ना. जै जै, हरि गगे । २. ना. में यह चरण अगले चरण से मिला दिया गया है, म. उ. स. में न केवल यह चरण अगले चरण से मिला दिया गया है, वरन् तदनुरूप बाद वाले चरणों में आवश्यक मात्रा वृद्धि कर दी गई है, जिससे छन्द चिभगी नहीं रह गया है ।

(२) १. धा. तमि । २. मो. अधिकृत, अ. अपकृत, फ. अवकृति । ३. ना. अंगे । ४. मो. कत, शेष में ‘कृत’ ।

(३) १. म. जटिन, २. फ. जटनि । २. फ. में यहाँ और हैः दहन अनगे ।

(४) २. धा. तरंगे, ना. अ. फ. विरंगे । २. ना. विहरत । ३. धा. गंगे ।

(५) १. मो. गन गद्रव, म. उ. स. गुन गद्रव । २. धा. जग जस चदे । ३. म. उ. स. में यहाँ और हैः कृत अव कंदे । ४. अ. सुष चन्दे, फ. सुष वदे ।

(६) १. धा. म. ना. मति उच गति (गत—म.) मदे, मो. गति उच मन्दे । २. धा. वरसत, ना. दरसन, अ. फ. दरसिन । ३. म. गत ददे, अ. फ. गति दंदे । ४. म. उ. स. में यहाँ और हैः पदि वर छन्दे । ५. धा. वंदे ।

(७) १. मो. जमभूत, ना. जयमृत । २. म. उ. स. में यहाँ और हैः सुरभुनि नंदे । ३. अ. फ. कहकदे ।

(८) म०. षिति मिन (<मित), धा. अ. फ. छिति मनि, ना. म. षिति मुति, उ. स. षिति मति। २. म. उ. म. में यहाँ और है: चिर धुत काल (विरधुत काल—उ. स.)। ३. धा. सह, अ. फ. सय। ४. म. काल।

(९) १. मो. सरण रहित साल, अ. फ. सुर नर टट बालं। २. वा. कुसुमति।

(१०) १. मो. वा. अ. फ. रिम, म. रिति। २. म. उ. स. में यहाँ और है: सुरतरु हाल (सुर तट ताल—उ. स.)। ३. म. वरनालं, उ. स. छरनालं।

(११) १. अ. फ. दरिसन। २. म. उ. स. में यहाँ और है: सुभित साज (सुभरित साज—उ. स.)।

(१२) १. मो. धा. अमरच्छरि करजं, फ. म. अमर छर करज (करिज—म.)। २. उ. स. वरिज। ३. म. उ. स. में यहाँ और है: बृह पारज (वर'बहु पाज—उ. स.)। ४. धा. स्रव साज, अ. फ. सुसमाज, द. सुगसाजं, म. सुरसाज।

(१३) धा. अनलत्तिन, ना. अमलत्तन, म. अमरु तरु। २. धा. पंजरि। ३. उ. स. में यहाँ और है: वर वर वजरि। है. धा. पंजरि, अ. फ. यजरि।

(१४) १. अ. फ. नज्जरि। २. धा. नतम पुन जरि, अ. फ. ननम पुनंकरि, ना. जनम पुन्य गिरि, म. द. जनम पुनगरि। ३. म. उ. स. में यहाँ और है: हसि हसि मंकरि।

(१५) १. धा. मो. ना. हरि। २. अ. फ. मज्जन। ३. म. उ. स. में यहाँ और है: भवभ्रित भजन। ४. ना. जिन। ५. अ. रजन, म. सभन, फ. रजनि।

टिप्पणी—(३) परसंग < प्रसंग। विलग < विलग्न। (४) जग < गम्=चलना। गघ्रव < गधर्व। (६) उछ < उच्छ < तुच्छ। (७) अपु < आप=जल। (११) जुग < जगत्। (१२) वरजं < वर्य। (१३) अमलत्तन < अमलत्व। निअ < नीअ < नीच।

[१२]

वसन्त तिलक— उभय^१ कनक^२ सिमं^३ भ्रिग^४ कंठीव^५ लीला
पुनरपि पुहप पूजा^६ वदति रति विप्रराज^७। (१)
उरसि^१ मुक्तिहार^२ मध्व घंटीय सबदं^३
सुगति सुकल^४ वल्ली^५ नंग रंग त्रिवल्ली^६ ॥ (२)

अर्थ—(१) [चन्द ने कहा,] “[इसके दोनो तटो पर जो] दो कनक शम्भु है [वे ही इसके दोनो कुच है], मृगो की कंठध्वनि है [वही इसकी कंठध्वनि है], पुनः इसे पुष्प की पूजा [अर्पित] करके विप्रराज (श्रेष्ठ विप्र) इससे अपनी रति (भक्ति) निवेदित करते है। (२) इसके उर मे [जल-कणो का] मुक्ताहार है, और मध्य (कटि) मे [पूजको द्वारा किया जाने वाला] घटी (कटि की घटी) का शब्द है, इस प्रकार यह सुन्दर मुक्ति की वल्ली अनंग-रंग (काम-क्रीड़ा) की त्रिवल्ली है।”

पाठान्तर—X चिह्नित शब्द अ. फ. में नहीं है।

(१) १. फ. उरभय। २. धा. कमल, फ. कनिक। ३. धा. मो. सोभा, ना. सिध, म. सिम्भी। ४. मो. हंभग, अ. भिग। ५. मो. कव, धा. कठाव, अ. म. कंठीय। ६. मो. पुनरपि युक् पूजा, धा. पुनर पुहप पूजा, अ. पुनर्हृदपत्रजा, फ. पुनपुहप पुज्जा, ना. पुनर पुनर पूजा। ७. मो. वदति रति विप्रराज, धा. ना. वदते विप्रराज, अ. फ. वदति रति विप्रराज, म. उ. स. विप्रवे कामराजं।

(२) १. धा. उरिल, मो. ना उरलि, अ. उरसि, फ. उरस्य, उ स. त्रिवलिय । २ मो. गंगहर, धा. मुतियहार, अ. फ. मुत्तिहार, ना. गगहारा, म उ. स. गगधारा । ३. मो. सिधि घट घटीय सरदा, धा. सब्द घटी ति बंब, अ. फ. मव्य घटीय (घटीय-फ.) शब्दे, म. उ. स. मध्य घटीव सवदा । ४. मो. सुर नर मुनि मुगति सुकल ठली भिरंदव, धा. सुकनि सुकति भारं, ना. सुकति मुत्ति सभौरे, अ. फ. सुकति भीर, म., उ. स. भुगति सुमति भीरे । ५. मो. नंग रंग त्रीषल, धा. नग रंग त्रिवल्ली, अ. फ. अनग अंग त्रिवल्ली, ना. अनग रंग त्रिवेल, म. उ. स. नग रंग (रंग-म.) त्रिवेनी ।

टिप्पणी—(१) सिभ < शमु । (२) मुत्ति < मौत्तिक ।

[१३]

रासा— दिष्पइ*^१ नयर सहाय ति^२ कवियन^३ इयुं कहइ*^४ । (१)
मोहइ*^५ अथि पुरंदर^६ इंद जु इहि रहइ*^७ ।^४ (२)
चष चंचल तनु सुध^८ ज सिधनु मनु हरइ*^९ । (३)
कंचन कलस^{१०} झकोरि ति गंगहि^{११} जल भरइ*^{१२} ॥^४ (४)

अर्थ—(१) [चंद ने कहा,] “यह नगर जैसा स्वभाव से (स्वाभाविक रूप में) दिखाई पड़ रहा है, उसके विषय में कविजन (चंद) की उक्ति इस प्रकार है कि (२) इसकी अथाइयों पुरंदर को मुग्ध करती हैं, और [इस कारण] इन्द्र यही रहता है । (३) चंचल चक्षु तथा शुद्ध तन वाली नारियाँ जो सिद्धों का भी मन हरती हैं, (४) कंचन कलशों को झकोर (हिला) कर गंगा का जल भरती हैं ।”

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द सञ्ज्ञोक्त पाठ के हैं ।

× चिह्नित चरण म. उ. स. में नहीं है ।

(१) १. धा. फ. दिष्पिय, मो. दिषि (=दिष्पइ), अ. दिष्पित, ना द. म. उ. स. दिष्प्यौ । २. धा. नयर सुभाइ न, अ. फ. नर सभावित, ना. नयर सुहायौ, द. नगर सुहावौ, म. नगर सुहायौ, उ. स. नगर सुहावो । ३. मो. कवियन, ना. कवियनु । ४. धा. यूं कहइ, मो. इयुं किहिहि, अ. फ. ना. यह कहै, म. उ. स. इह कहै ।

(२) मो. मोहि (=मोहइ) अथि रप रंद जू, धा. है मनु अचिउ पुरंदर, अ. फ. ना. है मनुं (मुनि-फ.) अथि पुरंदर । २. मो. इंद जू इहि रिहि (=रिइइ), धा. ना. इंद जइह रहइ (रहै-ना.), अ. फ. इंद जु (ज-फ.) इह रहै, द. इंद जुहां रहै ।

(३) १. मो. चषि चंचल तन सुध, धा. ना चष चंचल तन सुद्धि (सुद्ध-ना), अ. फ. म. चष चंचल (चंचलु-म) तनु (तन-फ.) सुद्ध (सुध-म.) । २. धा. ति सिद्धु मनु हरिह, मो. सु सिधां मन हरि (=हरइ), अ. फ. त सिद्धनु (सिद्धितन-फ.) मनु हहै, उ. स. जु सिद्ध ति मन रहै, म. जु सिद्धि ति मन हरे, ना. ज सिद्ध न मनु हरे, द. जु सिध मनि मनुह रहै ।

(४) १. धा. करस । २. धा. झकोलनि गगह, अ. फ. झकोरति गगा, ना. झकोरि गगा महि, म. उ. स. झकोर ति गगह । ३. धा. भरहि, मो. भरि (=भरइ), अ. फ. ना. म. उ. स. भर । ४. म. उ. स. में तो स्वीकृत द्वितीय चरण नहीं है । उसके स्थान पर यहाँ है . सुकवि चंद वरदाय सु ओपम तहं कर ।

टिप्पणी—(१) सहाय < स-हाअ. < स्व-भाव । कवियन=कविजन । (२) अथि < आस्थान=अथाई ।

[१४]

अर्ध नाराच — भरंति^१ नीर सुंदरी । (१)
सु^२ मानि^३ पत^४ अगुरी*^५ ।^४ (२)

कनक	बंक ^१	जे ^२	जुरी ^३ । [×] (३)
ति	लग्गि ^१	कटि	जेहुरी ^२ । [×] (४)
सुभाय ^१	सोम	पिडुरी ^२	। (५)
सु ^१	मैन ^२	चित्त	ही ^३ भरी । (६)
सुकोल	ल्लेल ^१	जंघया	। (७)
ति	लीन ^१	कच्छ	रंभया । (८)
कटित्त ^१	सोम	सेउरी	। (९)
वनित्त	जानि ^१	केसरी	। (१०)
अनेक ^१	छबि	छत्तियां	। (११)
कहंत ^१	चंद	रत्तियां	। (१२)
दुराय ^१	कुच	उच्छरे ^२	। (१३)
मनहु ^१	अनंग	ही	भरे । (१४)
रुलंति ^१	हार	सोहये	। (१५)
विचित्त	चित्त ^१	मोहये	। (१६)
उडत्ति ^१	हत्थ	अंचले ^२	। (१७)
रुरंति ^१	मुत्ति ^२	सा	जले ^३ । (१८)
कपोल	लोल ^१	उज्जले	। (१९)
लहुंति	मुल्ल ^१	सिंघले ^२	। (२०)
अघर	आरत्त ^१	रत्तये	। (२१)
सुकील ^१	कीर ^२	बंधये ^३	। (२२)
सोहंत ^१	दंत	आलमी ^२	। (२३)
कहंत	बीअ ^१	दालमी ^२	। (२४)
गहग ^१	कंठ ^२	नासिका	। (२५)
बिनान ^१	राग	सासिका ^२	। (२६)
सुभाय	मुत्ति	सोभये ^१	। (२७)
दुभाय ^१	गुंज	लग्गये ^३	। (२८)
दुराय	कोय ^१	लोचने	। (२९)
प्रतष ^१	काम ^२	मोचने	। (३०)
अवधि	ओट	भौंहये ^१	। (३१)
चलंति	सोह	सौंहये ^१	। (३२)
ललाट ^१	आड ^२	लग्गये ^३	। (३३)
सरह	चंदु ^१	लज्जये ^२	॥ (३४)

अर्थ—(१) [चन्द ने कहा,] “जो सुन्दरियाँ पानी भरती हैं, (२) उनकी हाथों की उंगलियाँ पत्तियों के समान [कोमल] है। (३) जो बॉके (खरे) सोने से जुड़ी (बनी) हुई हों, (४) ऐसी कटी हुई जेहुरी (?) [सदृश] वे हैं! (५) उनकी पिडलियाँ स्वाभाविक रीति से शोभित हैं, (६) जो मदन के चित्त में भरी हुई हैं। (७) गतिशील और चंचल उनकी जाँघें हैं, (८) वे रंभा (कदली) सदृश जाँघें उनके कछोटों में लीन (छिपी) हैं। (९) उनकी कटि में जो सेउरी—शैवाल जैसी—शृङ्खला शोभित हो रही है, (१०) उससे ऐसा लगता है कि बनिताएँ मानो सिद्दिनियाँ हो। (११) उनके वक्ष की छवि बॉकी है, (१२) जिसका कथन करते हुए चन्द रक्त (लुब्ध) हो रहा है। (१३) वस्त्रों में छिपाए हुए उनके कुच ऐसे उभरे हुए हैं, (१४) मानो [वस्त्रों में] अनंग (कामदेव) ही भरे हो। (१५) हिलते हुए उनके हार शोभा दे रहे हैं, (१६) और वे ऐसे विचित्र हैं कि चित्त को मुग्ध कर लेते हैं। (१७) जब हाथों से उनके अंचल उड़ते हैं, (१८) तो [उनके हाथों के] सजल (कातियुक्त) मोती हिलते [दिखाई पड़ते] हैं। (१९) उनके कपोल लोल और ऐसे उज्ज्वल हैं (२०) कि सिंहल के मोतियों [की आभा] को भी वे मोल लेते हैं। (२१) उनके अघर रक्त युक्त होने के कारण लाल हैं, (२२) [और उनकी नासिका उनके पास] बँधे हुए क्रीड़ा कीर के समान हैं। (२३) उनकी दाँतावली ऐसी शोभा दे रही है (२४) कि उसे दाडिम बीज कहा जाता है। (२५) उनके कण्ठ गहंग (आकर्षक) है और नासिका (२६) विज्ञान और राग की नासिका है। (२७) उनके [नासिका के] मांती स्वभाव से ही शोभित हैं, (२८) और [उनके साथ] अन्य भाव [का चमत्कार ले आने] के लिए बीच बीच में गुजा लगे हुए हैं। (२९) वे अपने लोचनों के कायो का दुराव करके [कटाक्ष करती हुई] (३०) प्रत्यक्ष काम [—वाण] मोचन करती हैं। (३१) उनके वे आयुध भौहों के ओट में रहते हैं, (३२) और वे सम्मुख चलते हुए शोभित होते हैं। (३३) उनका ललाट जिस पर आड (तिलक) लगा हुआ है, (३४) शरद के चन्द्रमा को भी लज्जित करता है।”

पाठांतर—X चिह्नित चरण फ. में नहीं हैं।

(१) १. म. भरंत।

(२) १. धा. अ. ति, द. जि, ना. जु. म. उ. स. सु। २. धा. पान। ३. अ. म. ना. पत्ति।

४. ना. अंजुरी, म. जेनुरी।

(३) १. धा. बक। २. धा. ज। ३. अ. जेजरी, ना. जरी।

(४) १. मो. ललग, द. तिलग। २. धा. द. कडिड जेहुरी, अ. कट्टि जेजरी, म. कडि जेहुरी, ना. कट्टि जेहुरी।

(५) १. धा. अ. फ. सदृज, उ. स. सुभाव, द. सुभाह। २. मो. पुडरी, धा. पडुरी, अ. फ. ना. म. उ. स. पिंडुरी।

(६) १. धा. म. उ. स. जु, ना. द. जि, अ. फ. ति। २. मो. धा. अ. फ. ना. मीन, उ. स. मेन। ३. धा. चित्र ही, ना. चित्र हा, म. हो चित्रे।

(७) १. धा. लोज।

(८) १. म. द. सु लीन, उ. स. सु नील, ना. कि लोन।

(९) १. धा. करिब्व। २. धा. म. ना. सेसरी, अ. फ. सेवरी, द. संसरी, उ. स. संपुरी।

(१०) १. धा. मनो जुवान, अ. फ. वन्थो ति (त-अ.) जानि (जान-फ), न. बनी ति जवान, म. उ. स. बनी जुवान।

(११) १. म. उ. स. ना. द. अनंग।

(१२) १. धा. कहूँ तु, स. कहत।

- (१३) १. वा. दुराइ । २. म. उ. स. उम्भरे, फ. छुछरे ।
 (१४) १. धा. उ. स. मना, म. मनौ, अ. फ. मनौ, ना. मनु (= मनउ) ।
 (१५) १. धा. हरत, द. उ. स. रुलत, अ. म. ररत, फ. ररति, ना. पुलत ।
 (१६) १. फ. चित्ति ।
 (१७) १. धा. उठति, म. उ. स. अ. फ. ना. उठत । २. धा. अचल ।
 (१८) १. ना. द. म. उ. स. रुलत (रुलति—म. द. ना.) । २. अ. सुत्ति, फ. सुत्त । ३. धा. सुज्जल, अ. फ. सुज्जले, ना. सजुले, म. उ. स. सजले ।
 (१९) १. धा. उच्च, अ. फ. उछ्छ, ना. द. म. उ. स. लोल ।
 (२०) १. धा. लइति मोल, अ. लइत मोइ, फ. सुइत मोइ, द. हसत मोइ, ना. लइत माल, द. म. उ. स. लइत मोल । २. म. ना. सघले ।
 (२१) १. धा. ना. म. उ. अधर (अद्धर—म.) अद्ध, अ. फ. अधर रत्त, द. अधरत्त अधर, स. अरद्ध अद्ध ।
 (२२) १. मो. सुकलि, अ. फ. सकार, म. द. सुक्रील । २. म. क्रील, अ. फ. कीड । ३. धा. अ. फ. वद्धये, ना. षद्धए ।
 (२३) १. अ. फ. म. उ. स. ना. सुइत । २. मो. अलमी, अ. फ. दाडिमी, म. ना. आलिमी ।
 (२४) १. धा. म. उ. स. बीय । २. अ. फ. दाडिमी, म. ना. दालिमी ।
 (२५) १. अ. फ. मइग, ना. गइग, म. उ. स. गइंग । २. म. कठि ।
 (२६) १. म. उ. स. विनाग । २. ना. वासिका ।
 (२७) १. मो. सुभा मोति सोभये, धा. सुभाइ मुत्ति सोइये, स. जुभाय मुत्ति सोभये, ना. सुभाय मुत्ति सोभए, म. उ. सुभाय मुत्ति सोइये ।
 (२८) १. अ. दुराइ, फ. दुताइ । २. धा. मो. अ. उ. स. गज, फ. जंग । ३. म. उ. स. लोभये, द. लम्भये ।
 (२९) १. धा. दुराइ कोइ ।
 (३०) १. मो. प्रत्यक्ष, धा. अ. फ. उ. स. प्रतख्ख, ना. प्रतिष्ख, म. प्रतषि । २. म. कान ।
 (३१) १. धा. अवद्ध ओर मोइ ही, मो. अवधि उच्च भइये, अ. फ. अवद्धि (अवद्ध—फ.) उट भौहही, द. ना. अवद्धि उट मुहही (मुंहइ—ना.), म० आवध ओट भौहए, उ. स. अवद्ध ओट भौहए ।
 (३२) १. धा. चलत । २. मो. सुह सुइये (= सउह सउंइये), धा. सोह सोहही अ. फ. औह सौहही, म. उ. स. सौह मोहए (सौहए—म.) उ. सोह सौहई, ना. षसुह सुंहई (= सउह सउंहई) ।
 (३३) १. धा. अ. फ. म. लिलाट । २. धा. लाट, मो. अट, ना. अड्ड, उ. स. राज । ३. उ. स. आडये, म. राजये ।
 (३४) १. ना. इंदु । २. धा. लगए, म. उ. स. लाजए ।
 टिप्पणी—(६) मैन < मदन । (७) सक < श्वक्=चलना, जाना । (८) कच्छ < कक्षा । (९) सेउर < शैवाल । (१०) वनित्त < वनिता । (११) अनेक < आणिक (दे०)=वक्र, बाँकी । (२०) मुल्ल < मूल्य । (२६) विमान < विज्ञान । (३१) अवधि < आयुध ।

[१५]

दोहरा— दिल्ली^१ गुहि^२ अलकइ^{*३} लता सवणि सुनहु^४ चहुधान । (१)
 जानु^१ भुजंग^२ सउंह^{*} चढउ^{*३} कंचन षंम प्रमान^४ ॥ (२)

अर्थ—(१) [चन्द ने कहा,] “ [इन सुन्दरियों की] ढीली गूथ कर लटकाई हुई अलक-लता, हे चहुआन पृथ्वीराज) सुनो, (२) ऐसी लगती है मानो कंचन के स्तभ पर सचमुच सम्मुख ही भुजग चढ़ा हुआ हो ।”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. धा. अ. ढिलिय । २. मो. गह, धा. जुहि, म. उ. स. द. सुह, ना. गुही । ३. धा. अ. फ. अलकै, मो. अलकि (=अलकइ), म. उ. म. अलकी, द. अलक । ४. मो. श्रवणि शुचढ़, धा. द. स्रवन सुने, अ. फ. स्रवन सुनहि, म. ना. श्रवन सुनहु ।

(२) १. मो. जानु, धा. मनु, शेष में ‘जनु’ । २. धा. भुवग, म. भुज । ३. मो. सहु (=सहउ < सउह < सउह) चढु (=चढ़उ), धा. सान्हो चढे, अ. फ. ना. संसुह चढे, म. उ. स. सम्मुख चढै । ४. अ. फ. प्रवान ।

[१६]

दोहरा— रहहि चंद मम कव्वु*^१ करि करहि त कव्वु*^२ विचारि^३ । (१)

जितिय नयरि सुंदरि कही^१ सु तिय दिषिय पनिहारि^२ ॥ (२)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज ने कहा,] “हे चंद, रहने दे, काव्य मत कर, और यदि काव्य करे तो विचार कर करे, (२) [क्योंकि] तूने जिन स्त्रियों को नगरी की सुन्दरियाँ कहा है, वे स्त्रियाँ तूने पनिहारिनें ही देखी हैं ।”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. रहहि चंद मम कव्वि, धा. अ. फ. रहहि चंद मम कव्वु^१ (कव्व-अ. फ.), ना. उ. रहहि चंद मम गव्व (गव्वु-ना., गर्व-उ.), म. स. रहि रहि चंद म गव्व (गरव-म.) । २. मो. करिहि त कव्वि, धा. करहि त कव्व, अ. फ. कहहि न कव्वु, ना. करहि तु कव्व विचारि, म. उ. स. करहि (करिहि-म.) त कवित । ३. मो. धा. विचार ।

(२) १. मो. जीतीय नगरि सुंदर सयल, धा. जि तुम नयरि सुंदरि कही, अ. फ. जितै नयरु सुंदरि कही, द. ना. जे तुम्ह (तुम-ना.) नयरि सुंदरि (सुंदर-ना.) कही, म. उ. स. जे तुम नयरि सुंदरि कही । २. धा. सवि दीठी पनिहार, मो. सुतिय दिषिय पनिहार, अ. फ. सब दिषिय पनिहारि (पनिहार-फ), द. सहि दिषिय पनिहारि, ना. ते सब दिषी पनिहारि, उ. स. सह दिषिय, म. तेस दिषिय पनिहारि ।

टिप्पणी—(१) कव्व < काव्य । (२) नयरि < नगरी

[१७]

दोहरा— जांहनवी तटि पिषियइ*^१ रूव^२ रासि वै^३ दासि । (१)

नगर ति^१ नागर^२ नर घरणि रहहि^३ अवासि अवासि^४ ॥ (२)

अर्थ—(१) [चंद ने कहा,] “जाह्नवी के तट पर जो रूप-राशि देख रहे हो, [अवश ही] वे दासियाँ हैं । (२) नगर के नागर नरो की गृहणियों आवासों में ही रहती हैं ।”

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ का है।

+ चिह्नित शब्द अ में नहीं है।

(१) १. मो. जाहनवी तटि पिषिइ (< पिषियि=पिषियइ), धा. जाह नदी तट पिषियइ, ना. अ. जाहन्नवि टटि पिषिये, फ. जाहन्नवि टट पिषियै, ना. द. जाहनवी (जाहवी-ना) तटि पिषिये (पिषियइ-ना), म. उ. स. जाहनवी तट दिषि दरस। २. मो. ना. म. उ. स. रूप। ३. धा. वै, मो. अरु, अ. फ. ते।

(२) १. ना. ज, म. उ. स. सु। २. ना. म. उ. स. नागरि। ३. मो. रहिहि। ४. अ. ना. अवास अवास, फ. अनूपम वास।

टिप्पणी—(१) रूप < रूप।

[१८]

दोहरा—दंसन^१ दिणिअर दुलही^२ निय^३ मंडन भरतार। (१)

सुह कारणि^४ विहि निम्मयी^५ सु^६ दुह^७ कत्तरि करतार^८ ॥ (२)

अर्थ—(१) [चन्द ने कहा,] “वे दिनकर के लिए भी दुर्लभ दर्शन वाली है—दिनकर भी उन्हें नहीं देख पाता है, और अपने भर्तार (पति) का मंडन करने वाली (पतिव्रता) हैं। (२) वे विधाता के द्वारा सुख के लिए निर्मित है, और वे कर्तार (विधाता) की [रची हुई] दुःख की कतरनी हैं।”

पाठान्तर—(१) १. मो. दरसन, अ. दरिसन, फ. दरसन, ना. तिन दरसन, म. उ. स. ते दरसन। २. मो. दणिअर दुलही, धा. दिनयर दुलही, अ. दिनयर दुलही, फ. दिनीयर दुलही, म. दिनीयर दुलहि, ना. उ. दिनयर दुलहि, स. दिनयर दुलह। ३. अ. फ. निज।

(२) १. धा. सहु कारन, अ. फ. सुष कारन, ना. म. उ. स. सुह कारन। २. मो. विधि निर्मयी, अ. फ. विधि त्रिमई, ना. विधि निर्मई, म. विह निरमई, उ. स. विह त्रिमई। ३. अ. फ. ना. म. मैं यह शब्द नहीं है। ४. मो. दह, अ. दुष, फ. दुख। ५. मो. कत्तरि कतार, धा. कत्तिन करताफ़ तरि करतार, ना. कत्तिन करतार।

टिप्पणी—(१) दसन < दर्शन। दिणिअर < दिनकर। दुलही < दुर्लभा। निय < णिअ < निज। (२) विहि < विधि। निम्म < निर्+मा। दुह < दुःख। कत्तरि < कर्तारी।

[१९]

दोहरा—कुवलय रवि लज्जा हरणि^१ रहि^२ भजि^३ भंग^४ सरणि^५। (१)

सरस सुधि^६ वरणन करउ^७ सु^८ दुलहि^९ तरणि^{१०} तरुणि^{११} ॥ (२)

अर्थ—(१) [चंद ने कहा,] “जो कुवलय—नीली कुमुदिनी—के सदृश सूर्य से लज्जा करती है, [किन्तु जिनके पद्मिनी होने के कारण] भ्रमर जिन की शरण में भाग रहते हैं, (२) सरस सुधि (कल्पना) के साथ[अब] उन सूर्य के लिए भी दुर्लभा तरुणियों का मैं वर्णन कर रहा हूँ।”

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

× चिह्नित शब्द द. में नहीं है।

(१) १. धा. लज्जा रहन, अ. लिज्जह रहन, फ. लज्ज रहन, ना. लज्जह हरणि,

उ. लज्जा विहमि, म. स लज्जा रहसि । २. मो. रिहि भंगि, ना द. उ. स. रहि भंगि । ३. अ. फ. ना. उ. स. भृग, म. भ्रग । ४. अ. फ. म. सरंग, उ. स. सरन्न ।

(२) १. धा. सरस सध, अ. फ. म. उ. स. सरस बुधि, द. सरस ब्र. बधी, ना. सरस बुधि । २. मो. चरणन (<वरणन) करु (=करउ), धा. अ. वरनन कियो, फ. वरुनन कियो, ना. वरनन कियौ, म. द. वरनन कियो, उ. स. वृनन कियौ । ३. धा. अ. फ. ना. म. उ. स. में यह शब्द नहीं है । ४. ना. मात्र । ५. धा. तरुन तरन्नि, मो. तरण्य (<तरणि) तरण (=तरण), म. तरुन तरग, अ. फ. तरुणि तरुनि, (तरुन-अ.), ना. तरुणि तरणि, उ. स. तरुन तरुन ।

टिप्पणी—(१) हर < ग्रह । भग < भिंग < भृङ्ग । सरण < शरण । (२) सुद्धि < शुद्धि=चेतना । दुल्लहि < दुर्लभा ।

[२०]

भुजंग प्रयात— पुनर जन्ममेजय*^१ ते^२ जानि जग्गे^३ । (१)
रइ संकि ते सेस ते^१ पूठि^२ लग्गे ।⁺(२)
मांग+^१ मोहनि लय सुत्ति^२ वानी । (३)
मनउ*^१ धार^२ आहार कउ*^३ दूध^४ तानी । (४)
तिलक नग^१ निरषि^२ जग जोति^३ जग्गी^४ । (५)
मनउ*^१ रोहिणी रूव उर^२ इंद लग्गी^३ । (६)
रूव^१ भुव देषि अवरेषि^२ जग्यउ*^३ । (७)
मनहु^१ काम करि चाप^२ उडि अण्ण^३ लग्गउ*^४ । (८)
पंगुरे अयन ते नयन^१ दीसं । (९)
विचि^१ जोति सारंग निर्वीत रीसं^२ । (१०)
तेज आटंक ते^१ सवन डोलं^२ । (११)
मनउ*^१ अर्क राका^२ उदइ*^३ अस्त लोल^४ ।^५(१२)
जलज जिम भाइ तह हीर लोलं^१ । (१३)
दिव्य दरसी तिहां^१ ढिल्ल^२ बोलं । (१४)
अधर आरत्तता रत्त साई^१ । (१५)
जनउ+^{१*} चंद बिबीय^२ अरुने बनाई ।^३(१६)
कपोलं कलंगी^१ कलिदीव^२ सोहं । (१७)
अलक अरोहं^१ प्रवाहे ति^२ मोहं । (१८)
सिता^१ स्वाति बिदे य ते^२ हार भारं । (१९)
उभय ईस^१ सीसं मनउ*^२ गंग धारं । (२०)
करं कोकनइं^१ ति^२ कंचू (=कच्चू) समुम्फं^३ । (२१)
मनहु^१ तिस्थ राज^२ त्रिवल्ली अलुम्फं^३ । (२२)

उप्पमा पानि अंगन^१ लम्भ^२ । (२३)
 लज्जि दुरि^१ केलि कुल^२ ममक^३ गभम्^४ । (२४)
 नितंब उत्तंगं जुरे^१ वे गयदं । (२५)
 ममक^१ रिपु छीन^२ राषउ^{*३} मयंदं । (२६)
 सक्कि^१ सोवन्न मोहन्न थंभं । (२७)
 सीत संनेह^१ रितु दोष भंग^२ । (२८)
 नारंगं^१ रंगं^२ पीडी सु छोटी^३ । (२९)
 मनउ^{*१}+ कनक कुंडीनु^२ कुंकम लोटी^३ । (३०)
 रोहि^१ आरोहि^२ मंजीर सह^३ । (३१)
 मंदु मृदु तेज^१ परकीर^२ वह^३ । (३२)
 एडिया^१ डंबर^२ श्रोण^३ वाणी^४ । (३३)
 फिरे कच्च चीनीन मइ^{*} रत्त^१ पानी । (३४)
 नषं निर्मल^१ दर्पण^२ भाव दीसं । (३५)
 समीपं सुकीय कियं मान रीसं^१ । (३६)
 अंबर^१ रत्त नीलं त^२ पीतं । (३७)
 मनउ^{*१} पावस^२ धनुष^३ सुरपत्ति कीतं । (३८)
 मुकीया यसो जीयनं स्वामि जानं^१ । (३९)
 पंग रवि साय^१ अरविद^२ मानं ॥ (४०)

अर्थ—(१) [चन्द्र ने कहा,] “[उनकी वेणियो को देखते हुए ऐसा लगता है, कि] मानो जो जन्मेजय थे, वे पुनः [नाग—] यज्ञ कर रहे हैं, (२) जिससे शक्ति होकर जो [नाग] शेष थे, वे आकर [उन सुंदरियों की] पीठ पर लग गए हैं । (३) उनकी मोहिनी माँगे मुक्ताओ का वर्ण (रंग) लिए हुए ऐसी लगती है (४) मानो उन सर्पों के आहार के लिए दूध की धारा तानी—प्रवाहित की हुई—हो । (५) [उनके मस्तक पर के] तिलक के नग को देख कर जगत् की [समस्त] ज्योति [जैसे] जाग पड़ी है, (६) [वे नग ऐसे लगते हैं] मानो रूपवती रोहिणी इन्दु के उर में लगी हो । (७) भौंहों को देख और उन [की सुन्दरता] का लेखा करके रूप इस प्रकार जाग गया है (८) मानो काम के हाथों में चाप अपने आप उड़ कर लग गया हो । (९) उनके नेत्र गति में ऐसे पगुल (अचंचल) दिखाई पड़ते हैं (१०) जैसे बीच (ओट?) में निर्वात दीप-शिखा हो । (११) उनके श्रवणों में तेज (दीप्ति) युक्त ताटक ऐसे हिलते हैं, (१२) मानो उदित सूर्य और अस्तमित राका (पूर्ण चन्द्र) [एक साथ] हिल रहे हो । (१३) [उनके शरीर की कांति से उनमें लगे हुए] चंचल हीरे का भाव (सौन्दर्य) जलज (मुक्ता) जैसा हो जाता है । (१४) वे दिव्य दिखाई पड़ती हैं, और धीमे स्वरों में बोलती हैं । (१५) [उनके सुन्दर मुख-मडल में] उनके आलक्तक के समान सार्ति (अत्यंत) रक्त अधर ऐसे लगते हैं, (१६) मानो चन्द्रमा में अरुण कुन्दरू के फल बनाए गए हो । (१७) उनको कपीलों पर कलगियाँ कालिदी के समान शोभा देती हैं, (१८) और उनके अरुद्ध (मुक्त) अलक प्रबहमान होते हुए मुग्ध करते हैं । (१९) श्वेत

स्वाति-विदु (मोतियो) के उनके भार हारी है, (२०) जो [उनके कुचो पर] ऐसे लगते हैं मानो दो ईशो (शिवो) के सिर पर गंगा की धारा हो । (२१) उनके कोकनद (कमल) सदृश करो द्वारा कच इस प्रकार सुलझाए जा रहे हैं (२२) मानो तीर्थराज मे त्रिवेणी आरुद्ध हुई हो । (२३) उनके अगो का पानी (काति) ऐसी उपमा प्राप्त करता है कि (२४) कदली-गर्म अपने कुल के मध्य मे जा छिपा है । (२५) उनके नितंब ऐसे उत्तंग हैं मानो दो गजेन्द्र आ जुटे हो (२६) और [उनके मध्य मे उनकी कटि ऐसी लगती है] मानो उनके बीच मे उनका शत्रु सिंह, जो [उनसे सघर्ष करते करते] क्षीण हो गया हो, रख दिया गया हो । (२७) उनके जंघे शक्र (इन्द्र) को मुग्ध करने वाले स्वर्ण-स्तम्भ [जैसे] हैं, (२८) जो शीत के संनिभ (सदृश) ऋतु दोषो को नष्ट करते हैं । (२९) उनकी नारंगी के रंग की छटी पिडलियाँ हैं, (३०) जो ऐसी लगती हैं मानो स्वर्ण की कुडियाँ—लुटियाँ (जल-पात्र विशेष)—कुंकुम मे लिपटी हुई हो । (३१) उनके मंजीर (नूपुर) आरोह अवरोह युक्त ऐसा शब्द करते हैं (३२) मानो मन्द, मृदु तथा तीव्र स्वरों मे प्रकीर (तोते) बोल रहे हो । (३३) उनकी एडियाँ शाणित के वर्ण की (लाल) हैं, (३४) और ऐसी लगती हैं, मानो काँच की चीनी शीशियों मे लाल रंग का पानी फिर रहा हो । (३५) उनके निर्मल नख दर्पण के भाव के (सदृश) दिखाई पड़ते हैं, (३६) [और उनमें पड़ता हुआ उनके पति का प्रतिविम्ब ऐसा लगता है] मानो स्वकीया ने समीप ही रोषपूर्ण मान किया हो [और पति उसके चरणों मे पड़ा हो] । (३७) उनके वस्त्र लाल, नीले, और पीले हैं, (३८) और वे ऐसे लगते हैं मानो पावस मे सुरपति (इन्द्र) ने धनुष [धारण] किया हो । (३९) ये स्वकीयाएँ स्वामी को इस प्रकार जोवन जैसा जानती हैं, (४०) मानो साति (सुन्दर) अरविद रवि को ग्रहण कर रहा हो ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

+ चिह्नित चरण या शब्द धा. में नहीं हैं ।

(१) १. धा. पुनरजन्मजे, मो. अ. फ. ना. पुनरजनमेज, द. पुनरजंनमे, म. उ. स. पुनरजनमजे । २. ना. द. उ. स. ते रहे । ३. धा. जानि जग्ग, फ. जाइ जग्गो ।

(२) १. अ. फ. रहे शेष (स-फ.) सेषते, द. रहे सोष से तिके, ना. सकि रहे सेसते, म. उ. स. सुये सेस (सेष-म) सेसा तिके (तिक-म., निके-उ) । २. अ. पुठ्ठि, म. उ. स. पिठ्ठ ।

(३) १. भो. माग, अ. फ. मान, द. मंग, उ. मग मग्ग, स. मनु मग्ग, म. मग । २. धा. माहन्नि ले मुत्ति, मो. अ. फ. मोहन्न लय मुत्ति, उ. मोहन्न मोतीन, म. मोहन मोह मातीन, स. मोहन्न मोतीन, ना. मोहन्न मुत्तान ।

(४) १. मो. मनु (=मनउ), धा. मनो, उ. स. मनो, अ. फ. म. मनो, ना. मनु (=मनउ) । २. द. सार, ना. दुद्ध । ३. धा. कह, अ. फ. कौ, उ. स. कै, म. के, ना. कु । ४. धा. अ. फ. उ. स. दुद्ध, ना. धार ।

(५) १. म. उ. स. तिलक्क नग । २. मो. निरिषि । ३. मो. जग ज्योति, धा. ना. जगि जोति । ४. मो. जागी, म. लगी ।

(६) १. मो. मनु (=मनउ), ना. मनु, (=मनउ) धा. अ. फ. म. मनौ, उ. स. मनो । २. मो. अरु । ३. मो. इद लागी, ना. इदु लगा, म. इद मगी ।

(७) १. मो. रूप, अ. फ. ना. रूव, म. उ. स. रुअ । २. धा. भुष देखि अवरेष, अ. फ. भुव देषि अवरेषि, ना. भुव देषि अवरोष, म. उ. स. अबरेष भुअ देखि (देष-म.) । ३. धा. दग्ग्यो, मो. जग्ग्यु (=जग्ग्यउ), अ. फ. दग्ग्यो, म. ना. जग्ग्यौ ।

(८) १. धा. उ. स. मनो, ना. मनु (=मनउ), म. अ. फ. मनौ । २. धा. काम करि चंपि, मो. अ. ना. काम कर चाप, उ. स. काम चापं, फ. काम करि वाप (<चाप) । ३. मो. उडि आप, धा. अ. फ. उडि अण्णु, ना. उ उडि, म. उडत, स. कर उडि । ४. मो. लग्यु (=लग्यउ), धा. अ. फ. उ. स. लग्यो, ना. लग्यौ, म. लग्यौ ।

(९) १ धा पंगुरे अने ते नैन, मो. पंगुरे जेन ते नयन, द. पंगुरे नयन ते अयन, अ. फ. ना पंगुरे नैन ते (तै-ना) अन, म प्रंगुरे नयन विचि (चिवि-म.) अपन, स प्रगट्टे नयन विचि अयन ।

(१०) १. मो विचि (=विचइ,) ना. विचे, द मनौ, म मनौ, अ. फ. बचे । २. मो. नृप सरीरं, धा अ. फ. ना. निर्वात दीस, द. निर्वास रीस ।

(११) मो. ते त्राटक ते, धा. अ. फ. तेज ताटकता, म तिन तेज नाटक तै, ना. तेज त्राटक ते । २ ना. जेलं, म. डोल ।

(१२) धा उ. स. मनौ, अ. फ. म. मनौ, ना. मनु (=मन) । २ मो. रा । ३. मो. उदि (=उदइ), धा अ. फ. म. ना उदै । ४. म तोले । ५ ना द म. उ स. में यहाँ और है (स पाठ) :—

कही चन्द कव्वी उपमा प्रमानं । मनु चन्द रथ भंग द्वय भानु जान ।

(१३) १. धा द. जलद जभीर भइ मध्य जोल, अ. फ. जलज जभीहीर भय मध्य जोलं, ना. जलज जभीर से मध्य जोल, म. उ. स. उरज्ज जंभीर भई मझ जोल ।

(१४) १. अ. फ. दिव्य दरसी तहाँ, उ. स. उव दिव्य दासी अरु, ना. दिव्य दरसीय अरु, म. उव दिष दरसी अरु । २ धा ना. म. उ स. ढील, फ. दिव्य ।

(१५) १. मो. साही, उ. स. साइ, म. साई ।

(१६) १. मो. जनु (=जनउ), अ. फ. उ. स. मनो, म मनौ, ना. मनु (=मनउ) । २ धा. बिय बीय, मो बीबी, ना. द. म. उ. स. बिय बिब, अ. बंबीय, फ. बदनीय । ३. ना द. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :

कहो ओपमा दत मोतीन कती । मनो बाज वाला (माला-ना. म. उ. स.) जुग सोभयती ।

(१७) १. उ. स. कलागो । २. अ. कलिदीय, फ. कलदीय, द. कलि दीख ।

(१८) १. मो. आरोह । २. म. उ. स. प्रवाहत ।

(१९) १. ना. सता । २. धा. छुट्टै जिते, अ. फ. बुद जिता, ना. बिदु यते, उ. बुद जिसे, म. स. बुद जिते ।

(२०) १. मो. इं । २. मो. मनु (=मनउ), ना. मनुं (=मनउ), धा. उ. स. मनो, म. अ. फ. मनौ ।

(२१) १. अ. फ. कर कोल कंझ । २. धा. अ. फ. न, म. जि, ना. सु । ३. ना. समुज्ज ।

(२२) १ धा. उ. स. मनो, अ. फ. म. मनौ, ना. मनु (=मनउ) । २ धा. अ. फ. म. उ. स. तिथ्यराया । ना. तिथ्यराजाधि । ३. अ. फ. उरइक्षं, ना. अरुज्ज ।

(२३) १. मो. उप्पमा पान अगन, धा. उप्पमा पानि अंगून, अ. फ. उप्पमा पानि अगूनि, म. उ. स. तिन ओपमा पानि आनन, ना. ओप्पमा पानि आनइ । २. ना. नव्व ।

(२४) १. धा. अ. फ. लज्जि दुर, ना. लज्जि कुल, उ. स. लाजि कुल, म. लजत कुल । २. म. कैलि दुरि । ३. धा. म. उ. स. मझ्झ, मो. अ. फ. मधि, द. ना. मध्य । ४. ना. गर्भ ।

(२५) १. अ. फ. जरे ।

(२६) १. धा. मध्य, मो. मध, म. तिनं मझि, उ. स. तिनं मझ्झ, ना. मनुं (=मनउ) मध्य, अ. फ. मझि । २. धा. फ. ना. पीन, म. द. छीन, अ. क्षीन । ३. मो. राषु (=राषउ), धा. रक्ख्यो, अ. फ. म. उ. स. रण्यौ, ना. रिण्या । ४. म. उ. स. ना. द. में यहाँ और है (स. पाठ) :

कटी काम मापी सुकामौ कराल । मनौ काम की जोति बढी सराल ।

(२७) १. अ. फ. साष, उ. स. जघ व्रन, म. जंघं व्रन, ना. सकु ।

(२८) १. धा. सीत उसनेह, अ. फ. ना. सीत उप्नेह, म. उ. स. मनो सीत उप्नेव । २. धा. फ. म. उ. स. ना. रितु दोष रम, अ. रति दोष रम ।

(२९) १. अ. फ. नारिंग, द. नारिंगी, उ. स. नरंगीनि, म. नारंगीनि, ना. नरंगसु । २. धा. अ.

फ. रंगीय, ना. रंगसु, म. उ. स. रंगीसु । ३. मो. छुट्टी (=छोटी), धा ना. छोरी, अ. फ. छुटी, द. म. उ. स. छोटोटी ।

(३०) १ धा. अ. फ. उ. स. मनो, म. मनौ, ना. मनु (=मनउ) । २. मो. कुडली, द. ना. म. उ. स. कुंदीर, अ. फ. लुट्टीय । ३. धा. कुकुम लोरी, मो. कुकुम लपेटी, अ. फ. कुकुम लुट्टी, ना. म. उ. स. कुकुम लोटी । ४. ना. द. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :

किथौ के सर रंग हेमैं झकोर । किथौ बहिय वाय मनमथ्य जोर ।

(३१) १. उ. स. सदरोहि, म. सदरोह । २. म. अरोह, ना. द. आरोह । ३. म. उ. स. वादे, धा. सहे, ना. सहे ।

(३२) १. म. मद मृदु तेज । २. धा. मो. प्राकार, अ. फ. प्रकार, उ. स. परकार, फ. प्रकार, म. परकर । ३. धा. वद्, द. सहे, ना. वद्, म. उ. स. वादे ।

(३३) १. मो. उडिआ, धा. फ. णडि इमआ, म. उ. स. पग णडियं । २. मो. इवर । ३. ना. बनी श्रोणि । ४. म. बांनी ।

(३४) १. मो. फिरे कच चीर मिरत (=मश्रत), धा. फिरै कच्च रचीन, मुदरत्त, अ. फ. मनौ कच्च (कव्व-फ.) रचीनि में रत्त, ना. मनु (=मनउ) कव्व जीतीनि में रत्त, द. उ. स. मनो कच्च चीनीन में (मै-द.) रत्त, म. मनौ कव चातीत मे रत्त ।

(३५) १. धा. निम्मल, म. उ. स. त्रिम्मलं । २. धा. दप्पन, म. द. स. दप्पन ।

(३६) १. मो. समीपा सुकीया मनु (=मन) समान रीसं । धा. समीपं समीव किय माननीरस, अ. फ. समीपस् सुकीय किय मानरास, ना. म. उ. स. समीपं सुपीय (सुकीय-ना.) किय मान (मानु-ना.) रीसं ।

(३७) १. म. उ. स. रग (रंगं-म.) अम्मरं, द. अंमरं । २. धा. म. सु ।

(३८) १. धा. उ. स. मनो, ना. मनु (=मनउ), म. अ. फ. मनौ । २. धा. पावसे, अ. फ. पावसै । ३. ना. द. म. उ. स. धनुक ।

(३९) १. मो. सुकीचा यसोज्जीयनं स्वामि जानं धा. सुकीयं समीपं नवे सामि, जान, अ. फ. सुगीयं सुकीयं जियं स्वामि जान, ना. द. म. उ. स. सुकीवं सुजीव जिय स्वामि (सामि-म.) जानं ।

(४०) १. धा. पग रवि दरिस, अ. फ. पंग रव हरस, ना. द. पग (पंगु-ना.) रवि दरस, म. रची पंग दरस, उ. स. रवी पंग दरसं । २. म. उ. स. अरब्बिद (अरबिद-म.) ।

टिप्पणी—(२) पूठि < पृष्ठ । (३) मुत्ति < मौक्तक । वानी < वर्ण । (७) भुव < भू < भ्रू । (१०) रीसं < सदृश । (१५) साई < साति=अतियुक्त । (१७) कलिंदी < कालिंदी । (१८) अरोह < अरुद्ध । (२२) अलुइश < आरुद्ध । (२४) गम्मं < गर्भ । (२५) गयंदं < गजेन्द्र । (२६) मयंद < मृगेन्द्र । (२७) सक्कि < शक्र । (२८) संनेह < संनिभ । (३१) सह < शब्द । (३३) वाणी < वर्णी । (३८) कीतं < कृत । (४०) पंग (दे०)=ग्रहण करना । साय < साइ < साति=अतिशय युक्त द्रव्य ।

[२१]

दोहरा— हय गइ^१ दलु सुंदरि^२ सहरु^३ जउ^{*४} बरनउ^{*५} बहु बार^६ । (१)

एह^१ चरित्त कह^२ लगि कहउं^{*३} सु चलहुं^४ संदेह^५ दुआर^६ ॥ (२)

अर्थ—[चंद ने कहा है,] (१) “हय, गज, दल (सेना), सुंदरियों और सुभटों का यदि बहुत समय तक वर्णन करूँ (२) तो यह चरित्र कहाँ तक कहूँगा ? अतः संदेह देवी के द्वार पर चलो ।”

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द शशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मा गह, शेष में 'गय' । २. धा द सुदर । ३. वा अ. फ सुहर । ४. मा जु (=उ), धा. जे, ना. उ. स. द जौ, अ. फ. जै । ५. मो वरनु (=वरन), ना. वरन, द वरणु (=वरण), धा. वरनह । ६. धा. वारि ।

(२) १. धा. फ. थह, अ. थय, द. थहु, ना. इय, उ. स. इह । २. वा. ना. अ. क. कव । ३. धा. गिन, मो. स. कहू (<कह=कहउं), अ. फ. कहै, ना. कहाँ, उ. गनों । ४. मो. चलह, धा. चलउ, अ. फ. ना. चलि । ५. उ. स. पहुपग । ६. फ. दुवारि ।

टिप्पणा—(१) गह < गज । महर < सुभट ।

[२२]

भुजंग प्रयात— दिष्पिथ^१ जाइ^२ सदेह सोह^{*३} । (१)
 अर्क^१ सा^२ कोटि संपन्न^२ देह^४ । (२)
 मडप^१ जास सोवन्न^२ गेह^३ । (३)
 मुत्तिआ छत्ति^१ दीसइ^{*} न^२ छेह^३ । (४)
 श्रोणि सम भेष^१ बहु महिष रत्ती^२ । (५)
 प्राति^१ पूजति^२ नर नेम अत्ती^३ । (६)
 पंड^१ भारथ उहि^२ बार सज्जी^३ । (७)
 दधि^१ चहुआन किलकाल^२ गज्जी^३ । (८)
 वयन^१ आयास सह^२ भउ^{*३} विराज^४ । (९)
 होय जय पक्ष^१ प्रथीराज^२ राजं । (१०)
 दक्षन^१ अंग करि नमस्कारं । (११)
 मध्य^१ ता नयर^२ किज्जइ^{*३} विचारं ॥ (१२)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज ने] जाकर सदेह देवी के सौध (मन्दिर) को देखा । (२) उसका देह कोटि सूर्य जैसा संपन्न था । (३) जिसका मडप सोने के गृह का था (४) और जिसके छत्र में लगे मोतियों का अन्त नही दिखाई पड़ता था, (५) उसका शोणित के समान [रक्त] वेष था और वह महिष पर बहुत अनुरक्त था । (६) प्रात के समय में मनुष्य अति नियम के साथ उसकी पूजा करते थे । (७) पांडवों को महाभारत में उसने उस बार सजाया था । (८) चहुवान (पृथ्वीराज) को देख कर वह [फिर] किलकारती हुई गर्जना कर उठी । (९) उसका यह वचन समस्त आकाश में विराजित हुआ, (१०) “राजा पृथ्वीराज के पक्ष में विजय हो !” (११) [यह सुनकर] दक्षिण अंगों से उसे नमस्कार कर (१२) उस नगर में उस (पृथ्वीराज) ने विचरण (?) किया ।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द शशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. देषीए, म. तहां दिष्पिय, उ. स. जहां दिष्पिये, ना. दिष्पीय । २. मो. ना. द. म. उ. स. जासु । ३. मो. संपन्न देह सुह (=सोह), म. उ. स. सदेह सेह, ना. सदेश सोह ।

(२) १. म. उ. स. उव अर्क (अरक-म.) । २. ना. सी । ३. धा. सपुन्न । ४. धा. दोह ।

(३) १. मो. मडपा, धा. मडपै, अ. फ. ना. मडप, म. उ. स. बने मंडप । ३. मो. सोधन, ना. म. उ. स. जासु सोवन्न । ३. म. गेह, अ. फ. सोह ।

(४) १ धा. मुक्तिय छित्त, मो. मोतीआ छित्त, अ. फ. मुक्तिय नछित्त, म. उ. स. तिन मुक्तिय (मुठिय-म.) छत्र, ना. मुक्तियां छत्र । २. धा. ना. अ. फ. म. दीस, मो. दिशि (=दिसइ) न, फ. सोवन्न । ३. द. सोह ।

(५) १ मो. श्रेणि शम मेष, धा. श्रोन सत एक, ना. द. श्रोन सित (सत-ना.) महिष, अ. फ. महिष सत एक, उ. स. रुधि सित्त माहीष, म. रुधि सत्त महिष । २. मो. बहु मिहिष रत्ती, धा. महि महिष रत्ती, अ. फ. बहु श्रोन रत्ती, ना. बहु मष्प रत्ता, उ. स. बहु मष्प रत्ती (रार्ता-उ.), म. बहु महिष रंती ।

(६) १ धा. अ. फ. प्रात, मो. राति, म. . स. तिन प्रात । २. धा. पूजत । ३. धा. नय अत्ता, अ. फ. नेम मत्ती, म. नेम अत्ती, ना. नेम अत्ती । ४. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :—

भुज डड दु देस देस प्रकार । अमैं देवता इद्र लभ्में न पार ।

बजै दु दभी देव देवाल निझ । बर उठि संगीत गानं पवित्त ।

बजै सह झझ सम जोग भिह । निरत्त न पाय तिनं कबि चद ।

(७) १. म. उ. स. सुष पड । २. मो. विय वार, धा. विहु वार, फ. उह वार, अ. उहि वार, ना. वीय बेर, उ. स. विय वन, म. विय बेर । ३. धा. ना. उ. स. म. सार्जी, अ. फ. रज्जी, ना. जाजी ।

(८) १. धा. दिष्प, म. उ. स. मुष देखि । २. धा. कलिकार, फ. किलकरि, ना. म. अ. किलकार । ३. धा. गार्जी ना जागी । ४. म. ना. उ. स. में यहाँ और (स. पाठ) :—

प्रमा भान तेज बिराजै अकारौ । मनो अग्नि ज्वाला जल म उजारी ।

नमो तूज तातं नमो मात भाई । तुअ सक्ति रूप जगत्तं बताई ।

तुअ थावर जंगम थान थान । तुअ सत्त पाताल सरतं सतानं ।

तुअ मारुतं पानिम अग्नि मट्टी । तुअं पंच भूतं स्वयं देह थट्टी ।

सुअं स्वस्ति चदं अनद अनदी । भई मोह माया जपैं जाप बंदी ।

(९) १. धा. तनु, द. म. उ. स. तबे बयन (बैन-म.), ना. तब बयन । २. धा. आकास सा, अ. फ. आकास सह, ना. द. म. उ. स. आकास महि । ३. मो. मु (=भउ), धा. भो, अ. फ. ना. भौ, द. भा, उ. स. भयो, म. भयौ । ४. धा. विराजै, उ. स. ताजं, म. तराज ।

(१०) १. धा. अ. फ. होइ जय पत्त, उ. स. तुम होइ जय पत्त, म. तुमं होय जैयत, ना. हूयं जयतु तुव आज । २. धा. प्रथिराज ।

(११) १. धा. दछिछने, फ. बछिन, ना. दण्णं, म. उ. स. तब दछिछनं । २. मो. नामसकरं, फ. निमसकारं ।

(१२) १. उ. मधुर मध्य, म. धुरं मध्य, स. धुव मध्य । २. अ. म. नैर, फ. नैन, ना. नगर । ३. धा. म. कीजै, मो. किजि (=किजइ), अ. ना. कीनौ, फ. मनमध्य ।

टिप्पणी—(१) सोह < सौध=प्रासाद, मंदिर । (४) छत्त < छत्र । छेह < छेज < छेद (१)=अन्त, नाश । (५) श्रेणि < शोणित । रत्त < रक्त । (९) सह < सभा (१)=सब ।

[२३]

भुजग प्रयात — लंगरी चूथ^१ तिनके^२ प्रसगा । (१)

दिषिये^१ कोटि कोटिन्न⁺ नंगा^३ । (२)

जिते^१ रूप के चूप^{x२} चुप्पे* जुआरी^३ । (३)

उचरे^१ सौह^२ आनं न^३ पारी । (४)

जिते^१ साध^२ संभारि^३ षेलंत लषे^{*४} । (५)
 तिते^१ देषिए^२ भूप दानवं विपषे^{*३} । (६)
 जिते^१ छड़ल^२ संघट्ट^३ वेसानि^४ रत्तो । (७)
 तिते दव्व षीअत्त^{*१} हीनेति^{*२} गत्ते । (८)
 जिते^१ दासि के आसि^२ लग्गे^३ सरूपा । (९)
 मनउ^{*१} मीन चाहंति^२ बग मध्य कूपा^३ । (१०)
 नायिका^१ देषि^२ नर नयन डुल्ले^३ । (११)
 रहे^१ सुरलोकि^२ सह देव भुल्ले^३ । (१२)
 उच्चरइ^{*१} वयन निसि केउ^२ जग्गे^३ । (१३)
 मनउ^{*१} कोकिला भाष संगीत लग्गे^२ । (१४)
 ऊड^१ अब्बीर मेभूया^२ समारइ^{*३} । (१५)
 मनउ^{*१} होय वासंत^२ भूपाल दुआरइ^{*३} । (१६)
 कुसुंभ सा^१ चीर सा^२ कीर सोभा । (१७)
 मध्य^१ ता काम कदली^२ सु^३ गोभा^४ । (१८)
 राग^१ छत्तीस^२ कंठे^३ करंती^४ । (१९)
 बीन^१ बाजं ति^२ हथ्ये^३ घरंती^४ । (२०)
 दिष्पि^१ अभिमान^२ मृगी ठटुकी । (२१)
 मनउ^{*१} मेनका^२ नृत्त तइ^{*३} तार^४ चुक्की । (२२)
 बरगाते^{*} भाय लग्गइ^१ ति भारे^२ । (२३)
 पट्टने^४ गेह^३ दीसे^३ संवारे^४ ॥ (२४)

अर्थ—(१) [चद ने कहा] “यहाँ हम लंगरी—वस्त्रधारी साधुओं के—यूथ देखते हैं, तो उनके प्रसंग में—साथ ही—(२) कोटि-कोटि नम्र [साधुओं] को भी देखते हैं। (३) [जहाँ] रुपये के जुए में चुप्पे (चुप चाप खेलने वाले) जुआड़ी हैं, (४) [वहाँ दूसरे ऐसे भी हैं जो] सौगंध-पूर्वक कह रहे हैं कि अन्य की पारी नहीं है [उनकी है]। (५) जहाँ एक ओर साधु (सज्जन) संभाल कर खेलते दिखाई पड़ते हैं, (६) वहाँ विपक्ष में—दूसरी ओर—दानव-भूप (दानवों के सरदार) भी दिखाई पड़ते हैं। (७) जहाँ छैलों के समूह वेदयाओं में अनुरक्त हैं, (८) वहाँ द्रव्य के क्षय होते ही उनकी गति हीन हो जाती है। (९) जहाँ सुरूपा दासियों की आशा में लोग [टकटकी लगाए हुए] हैं, (१०) [वहाँ वे ऐसे लगते हैं] मानो बगुले कूप में मछलियों को ताक रहे हो। (११) नायिकाओं को देख कर रलोगों के नेत्र चंचल हो उठते हैं, (१२) और सुरलोक में समस्त देवता भी [उनको देखकर] भूल पड़ते हैं—सुधि-बुधि भूल जाते हैं। (१३) [उनसे मिलने पर] लोग कहते हैं कि [उनके विरह में] वे कई रातों से जागते रहे हैं, (१४) [और उनसे ऐसा मधुरसभाषण करते हैं मानो] कोकिल संगीत भाषण करने लगा हो। (१५) [नायिकाओं की] शय्या सँवारने में इतनी अबीर उड़ती है, (१६) मानो भूपाल के द्वार पर वसन्त—फाग—हो रहा हो। (१७) [उन नायिकाओं के] कुसुंभी चीर कीर की शोभा के हैं, (१८) और [उन चीरों में लिपटा हुआ] उनका शरीर-काम-कदली-

गर्भ [के समान लगता] है। (१९) वे छत्तीस राग कंठ में [धारण ?] करती हैं, (२०) और वीणा वाद्य को हाथों में धारण करती हैं। (२१) उन्हें [गाते-बजाते ?] देख कर अभिमानिनी (?) मृगियाँ भी ठिठक जाती हैं, (२२) [वे ऐसी लगती हैं] मानो मेनका नृत्य करते हुए ताल चूक गई हो। (२३) उनका भाव (सौन्दर्य) बखानते हुए भारी कठिनता ज्ञात होती है, (२४) इस पट्टन (महानगर) के घर इस प्रकार सँवारे दीख पड़ते हैं।”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

+चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।

× चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

(१) १. धा. जे लगररी जूथ, मो. लगररी रूप, अ. फ. जिते लंगरी जूथ, ना. द. म. उ. जिते लंगरी जूथ, स. जिते लंगरी रूप। २. मो. म. उ. स. ना. दिन के, धा. तिनि कै, अ. फ. जिनके।

(२) १. धा. दे दिष्पिजहि, अ. ति दिष्पियहि, फ. देति दिष्पिये, म. ना. उ. स. तिते (तितौ-ना.) दिष्पिये। २. धा. म. ना. कोपीन, अ. कोटेति, फ. कोटेन। ३. ना. गंगा।

(३) १. धा. ना. जे, फ. तियै, ना. जितै। २. धा. जूप के, अ. फ. जूप कुं चोप, ना. जूप कै चोप, म. जूप को दान, उ. स. जूप को चोव। ३. मो. चूपे (=चुपे) जुवारी, धा. सू चोपवारी, द. ना. चापै (चपि-ना.) जुवारी, म. चोपै जुवारी।

(४) १. धा. तिके उच्चरे, फ. ति, द. म. ना. तितै उच्चरे, उ. स. तितै उच्चरै। २. उ. स. सो, धा. ना. सोह, म. सौह। ३. धा. अन्नोन, मो. आनन्द, ना. आनंत।

(५) १. धा. जकै, अ. फ. जिकै, ना. जिके। २. धा. सारि, अ. साथि, फ. साधि, म. साधु। ३. मो. संभार, म. द. संहारि, ना. संध्याहि। ४. धा. षोलंत लषे, मो. षेलंत लषि (=लषे), अ. फ. षेलंत लष्यौ, म. ना. षेलंत लषे।

(६) १. धा. अ. फ. तिके, ना. तितै। २. धा. दिखिये, ना. दिष्पियै। ३. धा. भूप दानिब्व पषे, द. भूप दामंति पिषे, ना. भूप दीपंत पषे, म. भूष दामंत पषे, अ. फ. भूप दानिब्व पिष्यौ।

(७) १. धा. अ. फ. जिके, ना. जितै। २. म. अ. फ. छेल। ३. मो. सथर, धा. सुघट्ट, अ. फ. ना. संघट्ट, द. उ. स. सघाट, म. साघाट। ४. मो. विसानि (=विसानि), धा. अ. फ. वेस्यासु, ना. वेस्यानि, म. विस्यान।

(८) १. धा. अ. फ. तिके दव्व (द्रव्य-अ. फ.) के हीन, मो. तिले (< तिते) दव (दव्व) धीजन (< धीजत), ना. तिते द्रव्य हीन, म. तिते द्रव्य के हीन। २. मो. हीनि ति (=हीने ति), म. हीनंत, ना. हीनैनि।

(९) १. धा. जिके, मो. यते, ना. जिते। २. धा. पासि के रासि, मो. दासि त्रासिक, द. उ. स. दासि कै त्रास, म. दास के त्रास, ना. दासि के आसि, अ. फ. दासि कै आस। ३. मो. लागे, ना. लग्रे (< लग्गे), अ. फ. लग्गौ।

(१०) १. मो. मनु (=मनउ), धा. अ. फ. उ. स. मनो, म. मनौ, ना. मनुं (=मनउ)। २. अ. चाहुंत, फ. बाहुत्त। ३. धा. दूपा।

(११) १. मो. नायका, म. उ. स. किते नाइका (नायका-म.)। २. धा. द. म. उ. स. दिष्पि, अ. दषि। ३. मो. झूले, धा. म. अ. ना. झुल्लै, फ. झूले।

(१२) १. मो. रहि (=रहे), धा. एह। २. ना. म. सुरह लोक। ३. धा. मन इंदु मुल्लै, मो. सहदेव भूले, म. द. सुर दिषि मुल्ले, ना. सुर देषि मुल्लै, अ. मनु इंद्र मुल्ल, फ. मानो इंद्र भूले।

(१३) १. मो. उचरि (=उचरइ), धा. उच्चरे, अ. उच्चरहि, फ. उचरैहि, ना. उच्चरै, म. वच उचरत,

उ. स. वच उच्चरे । २. धा. मो. केउ, ना. म. स. काँउ (< किउ=कइउ), फ. वउ । ३. फ. जग्गो ।

(१४) १. मो. मनु (=मनउ), धा. उ. स. मनो, ना. मनु (=मनउ), अ. फ. म. मनौ । २. फ. लग्गो ।

(१५) १. धा. उड्डुं (=उड्डु), म. उ. स. उडे उच, अ. फ. तहा उड्डि । २. धा. सिजा, अ. फ. ना. सज्या । ३. धा. सवारे, मो. समारि (=समारइ), अ. फ. संवारे, ना. समारे, म. समारै ।

(१६) १. धा. अ. फ. उ. स. मनो, ना. मनु (=मनउ), म. मनौ । २. मो. वसत । ३. मो. दूआरि (=दूआरइ), धा. बारे, म. उ. स. द्वारै, अ. फ. न्ना. द्वारे ।

(१७) १. धा. कुसुम सा, मो. कुसम सा, अ. फ. कुसुभ सा, द. कुसुभ से, ना. कुसुम से, म. उ. स. कुसम्म सम । २. अ. फ. ता, ना. द. म. उ. स. सं ।

(१८) १. द. म. उ. स. मनौ मध्यै, ना. मनु (=मनउ) मध्य । २. धा. दलि । ३. उ. द. फ. सु । ४. मो. सुम्भ रग, ना. सुगर्भा, म. सुग्रभा ।

(१९) १. अ. फ. सुवै राग, म. उ. स. रस राग । २. मो. छेतीस, शेष में 'छत्रीस' या 'छत्तीस' । ३. धा. कंठै । ४. धा. करंति, ना. करत्ती ।

(२०) १. द. ना. म. उ. स. वरं बीत, अ. फ. बने बीन । २. धा. वाजिन्न, अ. फ. ना. वाजत, म. उ. स. वाजित्र । ३. धा. हाथे । ४. धा. मो. धरति (< धरंती) ।

(२१) १. धा. दिक्खि, मो. तिने देषि, म. तिनं दिषि, ना. तिने दिष्षि, अ. फ. सु दिष्षि । २. अ. फ. यभिमान, म. उ. स. असमान ।

(२२) १. धा. उ. स. मनो, मो. मनु (=मनउ), ना. मनुं (=मनउ), अ. फ. म. मनौ । २. मो. मेनिका, म. बैनका । ३. धा. नृत्तते, मो. नृतति (=नृततइ), अ. फ. नृत्तिते, ना. नृत्यत, म. उ. स. नृत्यते । ४. मो. सार, अ. फ. म. उ. स. ताल ।

(२३) १. मो. चरणंति भाग्य लागि (=लागइ), धा. वर्णते भाइ लग्गो, अ. फ. वर्न तेइ भाइ लग्गइ (लग्गै-फ.), ना. वरणौत भारी लग्ग, म. वरनत भाव सु लग्गो, उ. स. वरन्नंत भाव लवे । २. धा. तिसारे, उ. स. जग्ग सारे, म. जु सारे, ना. विभारे ।

(२४) १. मो. सु पट्टने, धा. पट्टने, अ. फ. ति पट्टनै (पट्टनय-अ.), म. उ. स. इसे पट्टने । २. ना. गेइ । ३. धा. अ. फ. उ. स. दिष्षे, म. देषे, ना. दिष्षै । ४. मो. सिवारे ।

टिप्पणी—(२) नंगा < नग्न । (४) आनं < अन्य । (६) विपष < विपक्ष । (७) छइल < छइल (दे०) । (८) दब्ब < द्रव्य । षी < क्षि । (१५) सेझ्या < शय्या । (१८) गोभा < गर्भ (१) । (२०) बाज < वाद्य ।

[२४]

दोहरा—अगम^१ ति हट^२ पट्टन नयर^३ रतन मोति^४ मनि धार^५ । (१)

हाटक पट धनु धातु^१ सहि^२ तुछ तुछ^३ दिष्पियइ^{४*} संवार^{५*} ॥ (२)

अर्थ—“(१) इस पट्टन नगर की हाटो में जो [जनाकीर्ण होने के कारण] अगम्य हैं, रत्न, मुक्ता और मणियों को धारण करने वाले हैं (२) और स्वर्ण, रेशमी वस्त्र, धन (मूल्यवान् पदार्थ) और धातु—इन सब को तुच्छ जन भी संवारे (संवार कर धारण किए) हुए दिखाई पड़ते हैं ।”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. अ. सुमग्ग, फ. सुगम, म. उ. अमग, द. अगन । २. मो. द ति हट, शेष में केवल 'हट' है । ३. ना. नगर । ४. धा. मो. को छोड़कर सभी में 'मुत्ति' है । ५. धा. मनियार, मो. मन धार, म. मनिहारि, ना. मनिधारि, शेष में 'मनि (या मणि) हार' है ।

(२) १. मो. हटक पटक घन घन, ना हाटक पट धनु धरितु । २. धा. सहु, द म. ना. उ. स. सह, अ. फ. रस । ३. मो. तच्छ तुच्छ, म. तुछ्तु । ४. मो. दिषीइ (=दिषियइ), धा. म. ना. उ. स. दिषि, फ. दिक्ख, अ. हिरिक । ५. अ. फ. म. सवारि, शेष में 'सवार' है ।

टिप्पणी—(१) नयर < नगर ।

[२५]

मोतीदाम— अगम गति हट ति^१ पट्टन मंफ^२ । (१)
मनउ^{*} दिग हेदेवर^२ (इंदीवर?) फूलीय^२ संफ । (२)
जु नषइ^{*१} मोर^२ तंबोर^३ सुढार^४ । (३)
उलिच्चत कीच त^२ होइ^{*२} उगार^३ । (४)
सु मालइ पुहुप दुवे^२ दल चंपु । (५)
ति सीत^२ समीर^२ मनउ^{*३} हिम कंपु । (६)
बेलू रु^२ सेवंतीय^२ गूठिहि जाय^३ । (७)
जु दे^{*} दव दासीय^२ लेहि ढहाय^२ । (८)
बुधि^२ बजाज जु बिच्चहि^२ सार । (९)
छुवंत न^२ वासर^२ सुभम्फइ^{*३} तार^४ । (१०)
दिषिहि^२ नारि स कुंज^२ पटोर । (११)
मनउ^{*१} दुज दषिन^२ लगइ^{*३} थोर^४ । (१२)
मुत्ति^२ जराव^२ मढे बहु भाय^३ । (१३)
जु कडहि कोर^२ कहे सु न गाय^२ । (१४)
ले^२ तनसुष^२ रहे अपणाइ^३ । (१५)
जिन सेफि^२ सुगंध रही^२ लपटाइ । (१६)
लहिल्लहि^{*} तांन कतांन ति पांम । (१७)
बनी त्रिय दिषिय पूरण काम^२ । (१८)
जराउ जरंति^२ कनक कसंति^२ । (१९)
मनउ^{*१} भय वासर^२ जामिनि अंत^३ । (२०)
कसिक्कसि हेम ति^२ कडइ^२ तार । (२१)
उअंत दिनेस किरंन प्रसार^२ । (२२)
करिक्करि^२ कंकन अंकइ^{*} जोव^{*२} । (२३)
मनउ^{*१} दुज हीन सरइ^२ सोम^३ । (२४)
जरे जिवं^{*} पान^२ प्रकार ति^२ लाल । (२५)
मनउ^{*१} ससि मभम्फहि⁺ तार बिसाल ।^x(२६)

तुलंत जु तुज्ज*^१ तराजुन्ह^२ जोष^३ ।^४(२७)
 मनउ*^१ घन मभिम्ह^२ तडित्तह ओप*^२ । (२८)
 जरे जिव*^१ नग्ग^२ सुरंग सुघाट^३ । (२९)
 सुंदरि^२ सोम^२ कुहावति पाट^३ । (३०)
 दु अंगुलि नारि^२ निरष्पहि^२ हीर । (३१)
 मनउ*^१ फल बिबहि^२ चपत^३ कीर । (३२)
 नषन्नष चाह ति^२ सुत्तिअ अंस^२ । (३३)
 मनउ*^१ भष छंडि^२ रहउ*^३ गहि हंस^४ । (३४)
 दिसिदिसि^२ पूरि^२ हयग्गय भार । (३५)
 पुछूछत^२ चद^२ गयउ*^३ दरबारि^४ ॥ (३६)

अर्थ—(१) “इस पट्टन (कन्नौज) की हाटे, जो [भीड़ के कारण] अगम्य-गति हैं,
 (२) ऐसी लग रही है मानो दिशाओ में सन्ध्या समय इदीवर खिल गए हो । (३) मोर (श्वपच,
 चाडाल) जब ताबूल की ढार (पीक ?) फेकता है, (४) तो उगाल को उलीचने से कीचड़ हो
 जाता है । (५) मालती पुष्प, दूर्वादल तथा चंपा [के सस्पर्श से] (६) जो शीतल समीर बहता है
 उससे मानो हेमंत की कँपकपी होती है । (७) वेला, सेवती और जाही [मालिकाओ में] गूथे जा
 रहे हैं, (८) जिन्हे लोग [गूथने वाली] दासियों को द्रव्य देकर [अपने गले] में डलवा रहे हैं ।
 (९) चतुर बजाज जो साड़ियों बेच रहे हैं, (१०) [वे ऐसी झीनी है कि] दिन में भी छूने पर उनके
 तार-ताने बाने—सूझते नहीं हैं । (११) नारियाँ [उन बजाजो से लेकर] कंचुकी और पटोर
 (लहगे के वस्त्र) देख रही हैं । (१२) [किन्तु उन्हें देखती हुई वे इसी प्रकार नहीं अघा रही हैं]
 मानो द्विज को दक्षिणा [कितनी भी मिल रही हो] थोड़ी लगती हो । (१३) उनके जड़ाऊ
 आभरणों में मोती बड़ी सुन्दरता से मढ़े (जड़े) हुए हैं, (१४) और [रत्नादि में] जो कोर किए गए
 हैं उन्हें कवि गा कर नहीं कह रहा है । (१५) वे तनसुख (एक प्रकार का वस्त्र) लेकर उन्हें अपना
 रही हैं, (१६) जिनमें शय्या की (के लिए उपयुक्त) सुगंधि लिपटी हुई है । (१७) तान,
 कतान और पाम (विशेष प्रकार की बनावट के वस्त्र) ले लेकर (१८) स्त्रियाँ पूर्णकाम बनी दिखाई
 पड़ रही हैं । (१९) वे जो जडाव के जड़े हुई कनकाभरण कसे (धारण किए) हुए हैं, (२०) [वे
 ऐसे दीप्तियुक्त हैं कि] मानो यामिनी का अन्त कर दिन [का आगमन] हुआ हो । (२१) [स्वर्णकार
 उनके लिए] खीच खींचकर [सोने के तार] निकाल रहे हैं, (२२) जो ऐसे लगते हैं मानो दिनेश
 (सूर्य) के उदय होते समय किरणों का प्रसार हो रहा हो । (२३) उनके हाथों में जो कंकण हैं,
 उनके अंक (आकार) [इस प्रकार] दीख रहे हैं, (२४) मानो बिना शरद के भी चन्द्रमा
 शोभा दे रहा हो । (२५) [उन कंकणों में] जो लाल पत्तियों के प्रकार (आकृति) के
 जड़े हुए हैं, (२६) [वे ऐसे लगते हैं] मानो चद्रमा के मध्य में विशाल तारा हो । (२७)
 तौले जाने वाले सामान (आभरणादि) तराजुओ में जोख कर जब तौले जाते हैं (२८) तब ऐसा
 लगता है कि मानो घन में तडित् का ओप हुआ हो । (२९) जिस प्रकार [उनके आभरणों में]
 सुंदर और उभड़े हुए नग जड़े हुए हैं, (३०) [उसी प्रकार] सुन्दर पाट (रेशम के लच्छों) में वे
 सुंदरियाँ उन्हे गुहा भी रही हैं । (३१) नारियाँ दो उँगलियों [के बीच] में हीरों को [लेकर
 जब उन्हे] देखती हैं, (३२) तो [उन उँगलियों की लालिमा से लाल लगता हुआ हीरा उनके

बीच ऐसा लगता है] मानो शुक बिंब फल (कुंदरू के पके फल) को [अपनी चोंचों में] दबाए हो । (३३) वे सुशरियों नखों से [थाम कर] जब मोतियों के अंशु (पानी) को देखती हैं, (३४) तब ऐसा लगता है मानो हंस अपना भक्ष्य छोड़कर मोती पकड़े हुए हो । (३५) [नगर में] दिशा-दिशा में भारी हय-गज पूरित हो रहे हैं ।” (३६) [इस प्रकार नगर का वर्णन कर] पूछता-पूछता चंद [जयचंद के] दरबार [की दिशा] में गया ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

+ चिह्नित शब्द अ. फ. में नहीं है ।

× चिह्नित चरण म में नहीं है ।

(१) १. धा. म. उ. स. अमग्ग ति हट्टति, अ. फ. ना. अमग्ग ति हट्टन । २. ना. संज्ञ ।

(२) १. धा. मानो द्रिग हे, मो. सुनु (=मुनउ) दिग्ग हेदेवर, म. मनौ द्रुग देवल, ना. मनु (=मनउ) द्रुग देवल, अ. फ. मनौ द्रुग देषत (देषित-फ.), स. मनो द्रुग देवल । २. धा. अ. ना. फुल्लिय, फ. फुली ।

(३) १. मो. नष्पि (=नष्पइ), धा. म. जु नषहि, ना. जु नुंषहि, अ. फ. सु नष्पहि । २. धा. अ. फ. ना उ. स. मोरि । ३. धा. म. तंमोर । ४. ना. उ. स. सुठार ।

(४) १. मो. उलचन क्यचित, धा. उलिचि ज काचतु, धा. उलिचि ज कीच सु, अ. फ. उलीचनि की वसु (वसि-फ.), द. उलीचत कीच सु, ना. उलीचत पीक सु, म. उ स. उलिचत कीच कि (उलीचत कीय जु-म.) । २. मो. हुइ (=होइ), म. उ. स. द. पीक, ना. चीक । ३. धा. अगार, म. औकार ।

(५) १. धा. अ. सुमालय पुहप (पडुप-धा.) द्रवे, फ. सुमालइ पुल इवे, मो. मल पुहुपु दुवे, ना. द. मलया पडप (पडुपइ-ना.) सुवे, ना. मलया पडु पट्ट सुवे, म. मल पद पइ सुवे, उ. स. मिले पइ पइ सुवे ।

(६) १. धा. अ. फ. म. उ. स. सु सीत (सुसित-म.), ना. द. सोता । २. मो. सिमीर, ना. सुमीर । ३. मो. मनु, ना. मनुं, फ. मानौ, म. मनौ, धा. अ. उ. स. मनो ।

(७) १. मो. बेल्लक, धा. बेलि, अ. सुबेलि, फ. सुबेल, म. उ. स. जुबेलि, ना. द. बेलर । २. मो. फ. सेवंती, ना. सेवति, म. सेमतीय । ३. धा. गुछिय जाइ, अ. फ. गुथ्यहि जाइ, म. गुंथहि जाय, ना. गुंथहि जाइ, उ. स. गुथहि जाइ ।

(८) १. मो. जु देहि द गूहि दासीय, धा. दये द्रवु दासी, अ. फ. दिवे इव दासिय, द. दपे द्रव दासिसु, म. दीपै (दिये) द्रव दाससि, उ. स. दिये द्रव दासि स, ना. दवे द्रवु दासि ति । २. मो. ल तहाय, धा. अ. फ. लहि ठहाइ, ना. लहि ठहाय । ३. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :—

सुबुद्धि बजावत (बनावत-म.) बीन अलाप । अनेक कथा कथ ग्रथ कलाप ।

(९) १. धा. सुबुद्धि, म. उ. स. बिबेक, अ. फ. सुबुद्धि, ना. बुध । २. मो. बिचिह, धा. बंचहि, द. अ. फ. बिच्चहि, म. वेवहि (< वेचहि), ना. पंचहि ।

(१०) १. धा. छुवंति न, ना. छवतं नि, द. छुवे तन, फ. छवंत न । २. म. फ. वासुर । ३. धा. सुज्झहि, मो. सुझि (=सुझइ), उ. स. सुझइ, म. सुझहि, ना. सुव्यति । ४. ना. हार ।

(११) १. धा. जु दिष्पिहि, मो. दिषिहि, म. उ. स. ति देषहि, अ. फ. सु दिष्पिहि । २. फ. नारिय संज्ञ, ना. नारिं न कुंज ।

(१२) १. धा. मनो, मो. मनु (=मनउ), ना. मनु, म. मनौ, शेष में ‘मनो’ । २. मो. दुहिज दक्षिन, धा. दुज देखिन, म. उ. स. दुज दप्पन, अ. दुज इछिछन, फ. दुज इछ्छन, द. दुज दण्यन, ना. दुज दिष्पिन । ३. मो. लागि (=लागइ), धा. अ. फ. ना. लगहि, म. लेहि, उ. स. लागहि । ४. धा. चोर, फ. घोर ।

(१३) १. धा. जु मुत्ति, म. अ. फ. सुमुत्ति, उ. स. सुमोति । २. मो. जराव, व धा. जराउ, म. जराय, ना. उ. स. जराइ । ३. धा. मदे बहु भाइ, अ. फ. जरै सु सुभाइ, ना. चदे बहु भाइ, म. मदे बहु भार ।

(१४) १. धा. सु फट्टहि कीर, मो. ना. कट्टहि कोर (कोरि-ना.), अ. फ. सुकट्टहि कोर, म. उ. स.

जु कट्टहि कोरि । २ वा कहे सुन गाइ, म. कहै सुनि गार, फ. कहै सुत भाइ, उ. स. कहै सुनि गाइ, अ. ना. कहे (कहै-अ.) सुन गाइ ।

(१५) १. मो. वे, धा. अ. फ. जु लै (ले-धा.), ना. जि ले, म. उ. स. सु ले । २. धा. तनु सुष, द. न सुष । ३. मो. रहि (=रहे) अपणाइ, धा. अपुब्ब सुसाजु, म. उ. स. ना. रहै (रहे-ना.) अपनाइ (अपराय-म.), अ. फ. अपुब्ब सुभाइ ।

(१६) १. धा. सुसेजु, अ. फ. सुसेज, ना. द. सेज, म. उ. स. जु सेज । २. धा. रहै, म. ना. रहे ।

(१७) १. मो. लह लह तान कतान ति पाम, धा. लहलहक तानु कतान सिपाम, अ. फ. लहै लह (लहै लहै-फ.) तान कतान सुपाम, द. लहलह तान कतान सु वाम, ना. लहलह तान कृतान ति पाम, उ. स. लहलह तान कतान ति वाम, म. लहलह तान कतान कतान ।

(१८) १. धा. विने त्रिय दिखिय पूरन काम, म. उ. स. बनी त्रिय दीसहि काम भिराम ।

(१९) १. धा. अ. फ. म. ना. जरंत, उ. स. जरंज । २. धा. अ. फ. ना. म. उ. स. कसत ।

(२०) १. मो. मनु (=मनउ) धा. मनो ना. मनु (=मनउ), म. मनौ । २. म. भयौ वासुर । ३. अ. जामिनि जंत, फ. जामिनि जति, म. उ. स. ना. जामनि अत, द. ज्यामनि अत ।

(२१) १. धा. अ. फ. हि, ना. जि, म. उ. स. सु । २. मो. कडिइ, धा. अ. कट्टहि, द. कट्टति, म. कादत, ना. कट्टहि ।

(२२) १. धा. द. उवति दिनेसहि कर्न प्रकार (पुकार-द.), मो. उवत दिसेस किरन प्रसार, अ. फ. उवति (उवत-फ.) दिनेस किरनि (किरन-फ.) प्रकार, ना. उवत दिनेस किरन प्रसार, म. उगंतहि इस किरन प्रसार, उ. स. उगंत कि इसइ क्रन प्रकार ।

(२३) १. द. अ. फ. करि कर, उ. स. करे कर, ना. करकर, म. करकर । २. धा. अंकन लोभ, मो. अकि (=अकइ) जोभ, अ. फ. अकहि लोभ, ना. द. अंकहि जेव, उ. स. अकहि जेव, म. अकइ जोव ।

(२४) १. धा. मनो, मो. मनु (=मनउ), ना. मनु, (=मनउ), म. अ. फ. मनौ । २. मो. सिरदइ, म. सरदइ, शेष में 'सरइहि' । ३. द. उ. स. सोव, म. सोव, ना. हेव ।

(२५) १. मो. जरे जिव पान धा. जरे जुव नग, अ. फ. जरे इमि (इम-फ.) नग, ना. चरे विचि पान, द. म. उ. स. जरे निव (जव-म.) पान । २. म. फ. प्रकारित ।

(२६) १. मो. मनु (=मनउ), ना. मनु (=मनउ), शेष में 'मनो' या 'मनौ' है ।

(२७) १. मो. जु तुज, धा. ज तुंज, अ. फ. जु तत्त (तत्त-फ.), ना. द. उ. स. जुषत । २. धा. तराजन । ३. मो. जोष, शेष सभी में 'जोष' है ।

(२८) १. मो. मनु (=मनउ), ना. मनु, अ. फ. मनौ, (=मनउ), म. मनौ, शेष में 'मनो' है । २. म. मध्य, ना. मद्धि । ३. मो. उप (=ओप), म. आल ।

(२९) १. मो. जरे जिव नग (=नग), धा. जरे जुय नग, अ. जरे निवि नग, म. उ. स. जरे जि नंग (=नग), ना. जरे जुवि नग, फ. जरे विय नग । २. धा. सुघाट, अ. फ. सुघट्ट, ना. म. सुघाट, उ. स. सुघाटि ।

(३०) १. मो. सुदरि, म. विसुंदरि, ना. ते सुंदरि, शेष सभी में 'ति सुंदरि' । २. धा. सोइ । ३. धा. पुवावहि घाट, मो. कुहावति हाट, द. पुवावहि पाट, म. पुवावत पाट, ना. दुलावटि पाट अ. फ. पुहावहि पट्ट (भट्ट-फ.) ।

(३१) १. मो. दो (< दु) अंगुलि नारि, धा. द. दु अंगुलि नार, अ. फ. ना. दु अंगुलि (अंगुलि-फ. ना.) नारि, म. उ. स. दु अंगुलि (अंगुलि-म.) जोरि (नोरि-अ. फ.) । २. म. तिरषहि, म. तिरषहि ।

(३२) १. मो. मनु (=मनउ), ना. मनु, (=मनउ), म. मनौ शेष में 'मनो' । २. मो. व्यंवहि, शेष में 'विवहि' । ३. धा. चंपहि, ना. चंपतु, स. चंपति, उ. जंपहि, म. चंपहि ।

(३३) १. धा नष नष चाहिति, अ. फ. नष नष चाहिं, म. नष नष चाहत, द नष नष चाहिं ।
२. मो मोतिअ अस, धा. मुत्तिन अंसुं, अ. ना. मुत्तिय असु (अस-ना.), फ. म. उ स. मुत्तिय अंत ।

(३४) १. मो. मनु (=मनउ), ना. मनु (=मनउ), म. मनौ, अ. फ. मनौ, शेष में 'मनो' । २. फ. मषि छड, द. मष छाडि । ३. धा. गह्यो, मो. रहु (=रहउ), ना. म रह्यौ । ४. धा. रहि हसु, मो. गिहि हसु, अ. ना. गहि हंसु ।

(३५) १. धा. दह दिसि, द. दसे दिसि, ना. दश दिसि, फ. दिशि दिस, म. उ. स. दसौ (दसौ-म.) दिसि । २. धा. देखि, ना. द. म उ स. अ. पूरि फ. पूरु ।

(३६) १. धा. जु दिषत, म अ. फ. ना सुपुछत (पुच्छति-फ.) । २. मो देव, शेष में चद ।
३. मो. गयु (=गयउ), धा ना. गयो, म. गयौ । ४. मो दरवारि, शेष में दरवार' ।

टिप्पणी—(५) मालइ < मालती । दुवेदल < दूवाँदल । चप < चपक । (७) गूठ < ग्रथ । जाय < जाती । (८) दव < द्रव्य । (११) कु ज < कचुकी । (१६) सेझ < शय्या । तान=वे वख जो ताना-पाई करके बनाए जाने हैं (१) । कतान=क्षौम । पांम=रक प्रकार की छोट । (२३) जोव=बाट देखना । (२४) पान<पर्ण । (२७) तुज्ज (< तुल्य ?)—तौले जाने वाला पदार्थ । (२९) धाट < धाड=बाहर निकला हुआ, उमड़ा हुआ । कुहाव=गुथाना (तु० अवधी 'गुहाउव') (३३) अंस < अशु । (३४) मष < मक्ष्य ।

५. पृथ्वीराज का कन्नौज में प्राकट्य

[१]

मुडिल्ल— पुच्छत^१ चंद गयउ^{*२} दरबारह^३ । (१)
हेजम जहां^२ रघुवंस^२ कुमारह^३ । (२)
जिहि हर^२ सिद्धि सदा^२ वरु पायउ^{*२} । (३)
सुकवि चंद^१ दिल्ली पइ^२ आयउ^{*३} ॥ (४)

अर्थ—(१) दरबार को पूछते-पूछते चंद [वहाँ] गया, (२) जहाँ पर हेजम (कोतवाल) रघुवंश कुमार था । (३) [चन्द ने उससे कहा,] “जिसने हर (शिव) से सिद्धि का सदैव के लिए वर प्राप्त किया है, (४) वह कवि चंद दिल्ली से आया है ।”

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. धा. पुच्छन, मो. पुच्छं, अ. पुच्छत, फ. ना. पूछत, उ. पुछित । २. धा. गयो, मो. गयु (= गयउ), शेष में ‘गयौ’ या ‘गयो’ । ३. मो. दरबारि (< दरबारइ < दरबारह), फ. दरबारा ।

(२) १. मो. जाहां, धा. जह, अ. फ. जिहि । २. फ. रघुवंस । ३. म. कुमारह ।

(३) १. फ. हर, अ. उ. स. हरि । २. म. ना. पासि । ३. धा. पायो, मो. पायु (= पायउ), शेष में ‘पायो’ या ‘पायौ’ ।

(४) १. धा. सो कविराज । २. मो. दिलीपइ, धा. अ. दिल्ली हुति, द. दिल्लीय हुत, फ. दिल्ली हुतै, उ. स. दिल्लीय तै, ना. दिल्ली तै, म. दिलीसु । ३. धा. अ. आयो, मो. आयु (= आयउ), द. म. उ. स. फ. आयौ ।

टिप्पणी—(४) पइ < पाहि < पक्खे < पक्षे=से (अपादान) ।

[२]

दोहरा— सुनत^१ बोल^२ हेजमइ उठत^३ दिषित चंद हित ताहि^४ । (१)
निप अगइ^१ गुदरन^२ गयउ^{*३} जहाँ पंगु निप आहि^४ ॥ ५ (२)

अर्थ—(१) यह वचन सुनकर हेजम (कोतवाल) उठा और चंद के देखते देखते उसके [कार्य के] लिए (२) नृप जयचंद के आगे निवेदन करने [वहाँ] गया, जहाँ पर पंगराज (जयचन्द) था ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है ।

× चिह्नित शब्द उ. में नहीं है ।

(१) १. धा. सुनितं, अ. फ. सुनिन । २. धा. अ. फ. म. उ. स. हेत, ना. वचन । ३. धा. अ. फ. हेजम उठित, म. हेजम उठिग, उ. स. हेजम उठिन, ना. हेजम उठ्यौ । ४. धा. म. उ. स. दिषित चंद बर दाइ (बरदाय-म.), ना. देषि चंद बरदाय, द. अ. फ. दिषित चंद बरदाइ ।

(२) १. मो. आगि (=आगइ), धा. अगो, अ. अगइ, फ. अगै, द. अगें, म. उ. स. आगै, ना. आगै ।
२. धा. अ. म. ना. उ. स. गुदरन, फ. गुदर । ३. मो. गयु (=गयउ), शेष में 'गयौ' या 'गयो' । ४. मो. जाहां पंगु नृप आहि, धा. जिह पंगुर नृप आहि, द. म. उ. स. जहां पंग नृप (त्रप-स.) आहि (आय-म.), अ. फ. जहं पंगुरौ सु (स-फ.) राइ, ना. जहाँ पंगुरौ राय । ५ ना. में इसे निम्नलिखित दोहे का 'पाठान्तर' कहा गया है :-

सुनत हेत हेजम उछ्यौ कह्यौ चंद कवि आउ ।

बलि समान बलि करन सुत इहि भौमी पान राइ ॥

यह दोहा मो. में ही और पाया जाता है, किन्तु उसमें इसे पाठान्तर नहीं कहा गया है ।

टिप्पणी—(२) गूदर < गुजर (फा.) ।

[३]

वस्तु— तब सु हेजम युगम कर जोरि^१ । (१)
सौस नामइ^{*१} दस बार^२ । (२)
सेत छत्र^३ सु[×] निहि^{×२} दिठउ^{×३} । (३)
स कल बंध सथ्यह^४ नयन^५ । (४)
चकित चित्त दिसि दिसि^१ गरिठ उ^{*२} । (५)
तब स^१ किञ्चउ^{*} परनाम^२ तिहि सुनि ज राय विभार^३ । (६)
जिहि प्रसन्न सरसइ^२ कहहि^{*२} सु इत्त^३ चंद दरबारि^४ ॥ (७)

अर्थ—(१) तब उस हेजम (कोतवाल) ने दोनों हाथ जोड़ कर (२) दस बार सिर झुकाया ।
(३) [किन्तु] श्वेत छत्र [वाले जयचन्द] ने [हेजम को प्रणाम करते हुए] नहीं देखा । (४)
इसलिए उसने कल (मधुर ध्वनि) से सभा के लोगों के नेत्र अपनी ओर बाँधे (आकृष्ट किए), (५)
[जिससे] दिशा-दिशा में (सभी ओर) गरिष्ठ लोग (गुरुजन, सम्भजन) चकित-चित्त हुए । (६)
तब उसने उसे (जयचन्द को) प्रणाम किया, और कहा, “हे विभार (भारी) राजा सुनिए । (७)
जिस पर [लोग] सरस्वती को प्रसन्न कहते हैं, वह चन्द कवि यहाँ दरबार में [अपस्थित हुआ] है ।”

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

+चिह्नित शब्द धा. में नहीं हैं और उनके स्थान पर...बने हैं ।

× चिह्नित चरण अ. फ. में नहीं हैं ।

(१) १. मो. तब सुहेजम युगम कर जोर, धा. तब सुहेजम तब सुहेजम जति करि जोड़ि, अ. फ. तब सु हेजम सुजस जंपि कहि, द. म. उ. स. तब सुहेजम तब सुहेजम जुगम कर जोरि ।

(२) १. मो. नामि (=नामइ), धा. अ. फ. नाइ, द. ना. नायौ, म. उ. स. नयौ । २. ना. दरबार, उ. दरबार तिहि, स. दस बार तिहि ।

(३) १. धा. फ. ना. उ. स. सेत (सेन-धा.) छत्रपति, अ. सेतुछपति, म. दिषि सेत छत्र पति । २. अ. फ. ना. निहि, स. मद, म. नद । ३. म. सुदिठौ, फ. सठिउ, ना. सुदीठौ ।

(४) १. धा. संधन, द. सथ, ना. सथ (< सथ), म. उ. स. सथ्यइ ।

(५) १. ना. म. उ. स. चकित चित्त बुल, द. चकित चित्त बुलै सु । २. मो. गरठु (=गरिठउ), शेष में 'गरिठौ' या 'गरिठौ' ।

(६) १. धा अ. म. ना उ. स. सु । २. मो. कोड परनाम, (=किअउ परनाम), म. कियौ परनाम, अ. फ. ना. कियौ परिणाम, उ. कियौ परिनाम । ३. धा. बरु करि तिहि प्रतिहार, अ. फ. यह कहि ति (हि-फ.) प्रतिहार, ना. म. बरु (बर-म.) करि राय प्रहार, उ. स. बरु करि राय प्रतिहार, द. यह करि राइ प्रतिहार ।

(७) १. मो. सरस, अ. ना. सरसै, म. उ. स. सरसति । २. मो. कहिहि, अ. कहि, शेष में 'कहै' । ३. मो. इत्त, शेष में 'कवि' । ४. द. दरबारि, शेष में 'दरबार' ।

टिप्पणी—(१) युगम < युग्म । (२) सथू < साथ=प्राणि - समूह, सभा । (५) गरिठ < गरिष्ठ । (७) सरसइ < सरस्वती ।

[४]

मुडिल्ल— आयस^१ भयु^२ गुनिअन तन^३ चाहउ^४ । (१)
तिन परणाम^१ किअउ^{*२} सिर^३ नायउ^४ । (२)
किअउ^{*१} डिभ^२ कवि कवि^३ परमांनी^४ । (३)
सरसइ^{*} बरु^१ उच्चारहु^२ जानी^३ ॥ (४)

अर्थ—(१) [जयचंद का] आदेश हुआ और गुणीजन की ओर उसने देखा । (२) उन्होंने [जयचंद को] प्रणाम किया और सिर झुकाया । (३) [जयचंद ने कहा,] “देखो, [चंद] डिभ (बाल) कवि है, या प्रमाणी कवि है । (४) सरस्वती का बल उच्चार (काव्योच्चार) से ज्ञात होता है ।”

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. धा. आइस । २. धा. जो, (< भो), मो. भयु (=भयउ ?), अ. फ. भय, म. उ. स. भौ, ना. द. भयौ । ३. मो. त । ४. मो. चाहु (=चाहउ), धा. द. उ. स. चाह्यो, ना. म. चाह्यौ, अ. चाह्यउ, फ. चाहिउ ।

(२) १. मो. धा. तीन प्रनाम (प्रणाम-मो.), म. तिन परमान, अ. फ. ना. तिन परिणाम (परिनाम-फ.) । २. धा. करिउ, मो. कीअ, अ. फ. म. ना. उ. स. कियौ । ३. द. सिरि । ४. मो. नायु (=नायउ), धा. नायो, अ. नायउ, फ. ना. नायौ, म. नाह्यौ ।

(३) मो. किअु (=किअउं), धा. म. अ. फ. किअौ, उ. स. कैधौ, म. ना. कैधुं । २. मो. डिभ, शेष में 'डिभ' । ३. धा. कवि कव्व, फ. कवि कव्वि, अ. कवि कछ्छु, ना. म. उ. स. कवी । ४. धा. अ. फ. प्रमानिय, म. परिवांनी, ना. उ. स. परवानी ।

(४) १. मो. सरसि (=सरसइ) वरु, धा. सरसइ कव, अ. फ. सरसै वरु, ना. सरस वयन, उ. स. सरसे वर, म. सरवे वर । २. धा. उच्चारहि, ना. उच्चहु । ३. धा. अ. फ. जानिय, द. ना. म. उ. स. वानी ।

टिप्पणी—(१) आयस < आदेश । गुनिअन < गुणिन्+जन । (४) सरसइ < सरस्वती ।

[५]

मुडिल्ल— ति^१ कवि आवि^२ कवि पह संपत्ते^३ । (१)
गुन^१ व्याकरण कहि^२ रस वत्ते^३ । (२)

थकि प्रवाह बचन मुख मर्त्ती^१ । (३)

सुर नर श्रवण मंडि रहि वत्ती^२ ॥ (४)

अर्थ—(१) वे कवि आकर कवि चंद के पास पहुँचे । (२) उन्होंने गुण, व्याकरण और रस की वार्त्ताएँ कही (कौं) । (३) उनके मुख के वचनो से मत्त होकर [गंगा का] प्रवाह शिथिल हो रहा (४) और देवताओ तथा मनुष्यों ने उस वार्त्ता में अपने श्रवण लगा रखे ।

पाठान्तर—(१) १. ना. ते । २. मो. आवि, शेष में 'आइ' (आय-म.) । ३. धा. कवि यहि (< पहि) संपत्ते, उ. कवि सहि संपत्ते, अ. कवि पहि संपत्ते, फ. कवि हेजम पत्ते, ना. कवि पहि संपत्ते, म. कवि पै संपत्ते ।

(२) १. म. उ. स. गुर । २. मो. अ. कहि, धा. करहि, म. कहौ, द. ना. कहै, फ. कही । ३. धा. रस रत्तउ, ना. अ. फ. रस रत्ते, म. मन मत्ते ।

(३) १. धा. अ. फ. ना. गंगा मुख मर्त्ती (मुख मत्ते-अ. फ. ना.), मो. बचन मुख मर्त्ती, म. उ. स. गंगा सरसत्ती ।

(४) १. धा. रहि चती, म. द. रहै वत्ती, अ. फ. रहि वत्ते, ना. रहे वत्ते ।

टिप्पणी—(१) संपत्त < संप्राप्त । (२) वत्ता < वार्त्ता । (४) वत्ती < वार्त्ता ।

[६]

मुडिल्ल—
मुख परसपर देखत भयउ^{*१} रत्ते ।‡ (१)
गुन^१ उच्चार करउ^{*२} सरसत्ते^३ ।‡ (२)
गुन उच्चार चारु^१ तिनि^२ किन्नउ^३ । (३)
जानुं^१ भूषइ^२ साकर^३ पय^४ लिन्नउ^५ ॥ (४)

अर्थ—(१) [जयचन्द के कवियो और चन्द के] मुख परस्पर दर्शन से रक्त [वर्ण के] हो गए—उन पर लालिमा आ गई । (२) उन्होंने सरस्वती का गुणगान किया । (३) उन्होंने [इस प्रकार रुचिपूर्वक] चारु गुणगान किया कि (४) मानो भूखे ने शकर और दूध ग्रहण किया हो ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

‡ चिह्नितचरण धा. अ. फ. में नहीं हैं ।

(१) १. मो. मुख परसवर देखत भयु (=भयउ), ना. मुख परस्पर दिष भय, द. उ. स. मुख परसत परसपर, म. मुखसंपर परसंपर ।

(२) १. ना. द. उ. स. मनु (=मनउ), म. मनौ । २. मो. करु (=करउ), द. म. उ. स. कर्यौ, ना. कह्यौ । ३. म. नर सत्ते, ना. सरते ।

(३) १. मो. चार, धा. चारि, म. सार । २. धा. तव, ना. द. म. तिन, उ. स. तन । ३. धा. किन्हो, मो. किनु (=किनउ), अ. किन्नउ, ना. म. उ. स. कौनौ, द. किन्नो, फ. कीनउ ।

(४) १. धा. जउ, मो. जानुं, ना. द. अ. म. उ. स. जनु, फ. जनौ । २. धा. ना. भूष, मो. भूषे (< भूषि=भूषइ), अ. भूषइ, फ. भूष, म. भूषय, द. भूषे । ३. धा. म. उ. स. सकर । ४. मो. पकयि ।

५. मो. लौनु (=लौनउ), धा दिन्हो, अ. दिन्नउ, फ. दीनउ, ना. म. दीनौ, उ. स. दीनो, द. दिनो ।
टिप्पणी—(१) रत्त < रक्त । (२) सरसत्ते < सरस्वती । (४) साकर < शर्करा ।

[७]

साटिका—अंभोरुह^१ माणंद (मानंन ?) जोय^२ लरिसो^३ (लुरिसो^१) डाडिम्म^४ लो वीयलो^५ । (१)
लोयणो^१ चलु चालु^२ चालु^३ यारा^४ (अधरा ?) बिबाउ^५ कीयगहे^६ । (२)
केसीरी^१ के साय^२ वैनिय रसो^३ चकी मिगी^४ नागवी^५ । (३)
इंदो^१ मध्य^२ सु विद्यमान^३ विहतो^४ एरस्स^५ भाषा छवो^६ ॥ (४)

अर्थ—[जयचन्द्र के गुणियों ने कहा,] “जिसके अंभोरुह (कमल) सदृश आनन (?) पर ज्योति लोटती रहती है, [जिसके दाँत] दाडिम के बीज के सदृश है, (३) जिसके चंचल लोचन चारु हैं और तथा बिबकत्व ग्रहण किए हुए अधर भी चारु हैं, (४) जो अधिक केशो वाला हैं, और जिसके प्रस्तुत किए हुए उत्तम वैणिक (वीणा से उत्पन्न) रस से मृगियों और नागिने चकित हो जाती है, (५) [उसी सरस्वती ने] इंदु के मध्य विद्यमान [अमृत तुल्य] छः भाषाओं को विहत (अलग) करके [इस पृथीतल पर] एरित किया है (प्राप्त कराया है) ।”

पाठान्तर—X चिह्नित शब्द फ. ना. में नहीं है ।

(१) १. म. उ. स. अंभोरुह । २. धा. ना. जोइ, म. उ. स. छोइ । ३. ना. लरिसो, उ. स. लरिसी । ४. धा. अ. फ. ना. दाडिम्म, म. दारिम, उ. स. दादिम्म । ५. मो. में ‘वीयलो’ का ‘वी’ मात्र है ।

(२) १. धा. लोयंदे, अ. फ. लोयनु, ना. द. म. उ. स. लोयन्ने । २. म. फ. ना. चल । ३. धा. आरु, म. चारु । ४. धा. कलऊ, अ. फ. आरा, द. उ. स. यवरं, ना. यवरा, म. यार । ५. मो. ब्यबाउ (=बिबाउ), धा. म. बिबाय, ना. बिबापि, द. अ. फ. उ. स. बिबाइ (बिबायि—अ. फ.) । ६. धा. म. कीयो गहो, उ. स. ना. कीयौ गहौ, अ. फ. कीयो गहो, द. कीयो गहो ।

(३) १. अ. फ. कस्मीरी, द. किसरी, फ. कासीरी । २. धा. केसाइ, ना. केशाइ, फ. कोसाइ । ३. मो. वेणी सीसो, धा. वेयन रसो, द. वीनी रिसो, अ. फ. ना. वीना रसो । ४. मो. वकी मिकी, धा. विक्कि सकी, अ. फ. ना. चकी मृगी (मृगा—ना), द. चिकी मिगी, उ. स. चीकी मिकी, म. चिं । ५. फ. नागदी ।

(४) १. द. यदो । २. अ. फ. म. ना. मद्धि । ३. अ. फ. विदिमान, ना. विधिमान, उ. स. इदमान । ४. मो. विहन, धा. विहना, म. अ. फ. विहनो, ना. विहिनो, उ. स. विहितो । ५. धा. ए षष्ठ, मो. एकठ । ६. मो. भाषा सठे, धा. भासा छंदो, फ. भाषाच्छधो, द. उ. स. भासा छठौ, म. भाषा छठो ।

टिप्पणी—(१) डाडिम्म < दाडिम । लुर < लुठ । (२) व्यंब < बिब । (३) केसी < केशी । साय < साति=उत्तम । वैनिय < वैणिक=वीणा से उत्पन्न । मिगी < मृगी । (४) एर=प्राप्त करना, प्राप्त कराना ।

[८]

मुडिल्ल—कवि देषत^१ कवि कउ^{*२} मन^३ रत्तो^४ । (१)
न्याय^१ नयर^२ कनवज्जि^३ पहुत्तो^४ । (२)
कवि अगगहि^१ अंगीकित^२ हीनउ^{*३} । (३)
हेम बिना बिम^{०१} भयउ^{*०} नग^० दीनउ^{*०२} ॥ (४)

अर्थ—(१) [जयचन्द के] कवियों को देखकर कवि (चन्द) का मन रक्त (प्रसन्न या अनुरक्त) हुआ, (२) [उसने मन में कहा,] “मैं कन्नौज पहुँचा यह उचित ही हुआ। (३) कवियों के आगे [कवि] अंगीकृत होने के अभाव में [मेरी वही दशा होती] (४) जैसी स्वर्ण के अभाव में दीन हुए नग की होती है।”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

‡ चिह्नित चरण अ. फ. में नहीं हैं।

० चिह्नित शब्द धा. में नहीं हैं।

(१) १. ना. दिष्यत, म. उ. स. पिष्यत। २. मो. कु (=कुड), धा. उ. स. को, म. ना. अ. फ. कौ। ३. ना. मनु। ४. मो. रक्त (=रक्तो), फ. म. ना. उ. स. रक्तौ।

(२) १. धा. न्याइ। २. मो. नयन (< नयर), धा. नयरि, म. नगर। ३. मो. कनजि, स. कवज, शेष में ‘कनवज्ज’। ४. मो. पहुतो, धा. सपुत्तउ, अ. फ. सपत्तउ, फ. म. ना. उ. स. सपत्तौ (संपत्तौ—म.)।

(३) १. धा. अगह, म. ना. उ. स. एकह। २. मो. अगीकृत, म. अगीकृति। ३. मो. हीनु (=हीनउ), धा. हीना, म. उ. स. कीनो, ना. कीनो।

(४) १. धा. हेम विभा, म. उ. स. हेम सिंघासन, ना. हेम सिंह वानी। २. मो. भयु (=भयउ) नग दीनु (=दीनउ), म. उ. स. आसन दीनौ, ना. गुन दीनौ।

टिप्पणी—(१) रक्त < रक्त। (२) नयर < नगर।

[६]

मुडिल— अहो चंद वरदाइ^१ कहावहु^२ । (१)
कनवज्जह^३ दिष्यन नृप^{०२} आवहु^३ । (२)
जउ* सरसइ*^१ बरु जानहु^२ रंचउ*^३ । (३)
तउ*^१ अदिठ^{०२} बरनउ*^३ निप संचउ*^४ ॥ (४)

अर्थ—(१) [जयचन्द के कवियों ने कहा,] “हे चन्द, तुम वरदायी कहाते हो, (२) और कन्नौज के राजा (जयचन्द) को देखने आ रहे हो। (३) [अतः] यदि सरस्वती (वाणी) के बल से कुछ भी जानते हो, (४) तो बिना देखे नृप (जयचन्द) का सच्चा वर्णन करो।”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

० चिह्नित शब्द धा. में नहीं हैं।

(१) १. धा. वरदायि, म. ना. वरदाय। २. धा. कहूं हूँ, फ. कहाउइ।

(२) १. धा. फ. कनवज्जहि। २. मो. दिष्यन नृप, अ. त्रिप दिष्यन, फ. त्रिप दिक्षिन, म. उ. स. त्रिप देषन। ३. धा. आवहुँ। ४. धा. मैं यहाँ और है : जे सरसइ जवनहु त्रिप संचउ। (तु० चरण ३+४)

गजपति गरुव गेह किमि गंजहु।

किनि गुनि पगु राइ मन रंजहु ॥

(३) १. मो. जु सरसि (=जउ सरसइ), धा. जे सरसइ, अ. फ. जौ सरस, ना. जो सरस, उ. स. जौ सरसति, म. सरसतिहा। २. धा. जानहु वर, अ. जानहु वर, ना. बरु है कछु, द. म. उ. स. जानौ वर (वरि—म.)। ३. मो. रंचु (=रंचउ), ना. रंचौ, अ. फ. म. उ. स. चाव (चाउ—अ. फ.)।

(४) १. मो. तु (=तउ) धा. तो, अ. फ. म. उ. स. तौ। २. धा. अदिष्ट, अ. फ. ना. म. उ. स.

अदिष्ट । ३. मो. वरनु (=वरनउ), धा वरनहि, अ. फ. वर्णहु, ना. वरणौ, म. उ. स. वरनौ । ४. मो. संचु (=सचउ), ना. सचौ, अ. फ. म. उ. स. भाव (भाउ-फ.) । ५. म. में प्रस्तुत छन्द का उत्तराद्ध तीन छन्द पूर्व भी आया है, और वहाँ पाठ है : जों सरसै वर है तुम रचौ । तौ अदिष्ट वरनौ त्रिप सचौ ।

टिप्पणी—(४) अदिष्ट < अदृष्ट । सच < सत्य ।

[१०]

साटिक—साइ सीस^१ चमरेन स्वेत सतुसा^२ किकिन आंदोलिता^३ । (१)
बालइ^{*१} अर्क समान जान तेज^२ क्रीटीय अमोलिता^३ ।+(२)
सत्रू षत्त समस्त मत्त दहियं^३ सिधू प्रयाती^२ खलं । (३)
कठे हार रुलंति आनि^४ अतक सम^२ पृथीराज^३ हालाहल ॥ (४)

(१) [चंद ने कहा,] “उस (जयचंद) के सिर पर अतियुक्त (उत्कृष्ट) श्वेत चामरो से शत-शत किकिणियों आंदोलित हो रही हैं । (२) उसका तेज मानो बाल सूर्य के समान है और उसका क्रीट अमूल्य है । (३) समस्त मत्त क्षत्रिय शत्रु दग्ध हो चुके हैं, और खल गण भाग कर समुद्र [पार की दिशाओं] में चले गए हैं । (४) उसके कठ में हार हिल रहे हैं, वह अन्य अतक (यम) के समान है, और पृथ्वीराज के लिए हालाहल [तुल्य] है—अथवा उसके लिए पृथ्वीराज हालाहल [तुल्य] है ।”

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ का है ।

+ चिह्नित चरण अ. फ. में नहीं है ।

x चिह्नित शब्द धा. म. उ. स. में नहीं है ।

(१) १. मो. साई सीस, धा. किं सास, ना. द. किं सीसं, अ. फ. सीस सा, म. उ. स. जा जीस । २. धा. चुवरेण सेतु सतुसा, मो. चमरेन स्वेत ससा, अ. फ. चंवरेन सेठ (सेव-फ.) छत्र (छतु-फ.) जा, म. उ. स. चमरायते सित छत, ना. द. चमराय सेत छत्रं (छत्रकि-ना) । ३. धा. अ. फ. किकिं त (न-अ. फ.) अंदोलिता, म. उ. स. षंषिन्न (षंषील-म.) इंदोलिता ।

(२) १. मो. बालि (=बालइ), धा. ना. द. अ. फ. म. उ. स. बाला । २. धा. जाम तेज, ना. जान तिजितं, म. उ. स. तेज तपन । ३. मो. क्रीईय अंदोलिता, धा. अमोलि मोलिका, उ. स. क्रीटी तपं मौलिका, ना. शीटी (< क्रीटी) दिप मोलिका, म. क्रीटी तपं मौलिका ।

(३) १. धा. शखे शख समस्त खत्त दहियं, अ. फ. सस्त्रै (स-फ.) सख समस्त मत्त दहियं, ना. म. शखे शत्र (सखौ सत्र-म.) समस्त पित्त (पित्रि-म.) दहियं, उ. स. मखे सख समस्त पित्रि दहियं । २. धा. प्रजाती, अ. फ. प्रजाता, ना. म. द. उ. स. प्रयाते ।

(४) १. द. रुलंति आन, म. रुलंत [‘आन’ शब्द नहीं है] २. धा. आतिनि समे, अ. फ. अतक समे, द. अतक समा । ३. धा. म. द. ना. प्रथीराज, उ. स. प्रथीराज ।

टिप्पणी—(१) साइ < साति=अति युक्त, उत्कृष्ट । (२) षत्त < क्षत्रिय (४) आनि < अन्य ।

[११]

दोहरा— सत सहस्र बजन^१ बहुल^२ बहुल^३ बंस विधि नंद^४ । (१)
सत सहस्र^१ सषधुनि^{*२} सुहिल^३ जाम^४ जयचंद ॥ (२)

अर्थ—“(१) [जयचंद्र के महल में] शत सहस्र बहुतेरे वाद्य हैं, बहुत सी वंशियों [और] आनंद की विधियों हैं । (२) प्रत्येक प्रहर उसके महल में शत सहस्र शखों की ध्वनि होती है ।”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है ।

(१) मो. सत सहस्र वज्जन, धा. छत्र सरद जव जन, अ. फ. छत्र सरद वज्जन, ना. द. म. उ. स. छत्र सहस्र (सहस्र छत्र-ना.) वज्जन । २. मो. न. वहल । ३. धा. महल । ४. मो. मद ।

(२) १. ना. द. म. उ. स. एक सहस्र । २. मो. सष धुनी, धा. सषध्वनिज, अ. फ. सषह धुनिय, म. उ. स. सषह धुनी । ३. मो. मुहिल, शेष सब में ‘महल’ । ४. उ. स. जानि ।

टिप्पणी—(१) वज्जन < वाद्य ।

[१२]

दोहरा— मंगल गुरु बुध सुक्र सनि^१ सकल सूर उदे^२ दिठ । (१)
आतपत्त^३ ध्रुव तिम तपइ^{*२} सुभ^३ जयचंद्र वयिट्ठ^४ ॥ (२)

अर्थ—“(१) समस्त शूर मंगल, बृहस्पति, बुध, शुक्र, तथा शनि [आदि] के रूप में उदित दिखाई पड़ रहे हैं, (२) और उसका छत्र ध्रुव के समान तप रहा है, [इस प्रकार की सभा में अपने ‘चंद्र’ नाम को सार्थक करता हुआ] शुभ जयचंद्र बैठा हुआ है ।”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है ।

(१) १. अ. फ. सुनि, स. सवि । २. धा. ना. द. उ. स. उड़, अ. फ. उद, म. उडि ।

(२) १. धा. आठपत्त । २. धा. तमतिमइ, मो. तिमतपि (= तपइ), द. तिम तपै, अ. फ. तम तमै, ना. म. उ. स. जिम तपै । ३. धा. मो. ना. सुभ, म. उ. स. सुभि । ४. मो. वियट्ठ, धा. वहट्ठ, अ. फ. वयिट्ठ, म. उ. स. वयट्ठ ।

टिप्पणी—वयिट्ठ < उपविष्ट ।

[१३]

भुजंग— आसने^१ सूर वहे^२ समाहं^३ । (१)
जित्ति^४ जे षिति राय के सु राहं^५ । (२)
धम्म^६ दिगपाल^७ धर धरनि षंडं । (३)
धरहि^८ सिर सोभ^९ दुति कनक दंडं । (४)
जिने^{१०} साजिते^{११} सिधु^{१२} गाहे* सुपंगं । (५)
तिमिर तजि^{१३} तेज^{१४} भिय ज्यउ^{*१५} कुरंगं^{१६} । (६)
जिनि^{१७} हेम परवत्त ते^{१८} सब्ब धाहे^{१९} । (७)
एक^{२०} दिन अठ^{२१} सुरतान साहे^{२२} । (८)
जंषिअं^{२३} सच्च^{२४} सो चंद चंडं^{२५} । (९)
थप्पिये^{२६} जाय तिरहूति पिडं^{२७} । (१०)

दक्षिणी^१ देस अण्णउ^{*} विचारे^२ ।[×] (११)
 उत्तरयउ^२ सेत बंधइ पहारे^२ ।[×] (१२)
 करण^१ डाहल दु^{*२} बार बांध्यउ^{*३} । (१३)
 सिधु^१ सोलंकि^२ कइ^{*३} बार षेध्यउ^{*४} । (१४)
 तिन्न^१ दिन युध्व करि^२ रुंड मुंडा^{+३} । (१५)
 तोरि^{*१} तिल्लिग^२ गोवल कुडा^३ । (१६)
 छंडिअउ^{*१} बंधि^२ इक गुंड^३ जीरा । (१७)
 लिये^१ बइरागरे^{*२} सव्व^३ हीरा । (१८)
 गज्जिनि^{*१} सूर^२ साहाब साही । (१९)
 सेवते^१ बंधि^२ निसिरुत्ति पाही (षांही ?)^३ । (२०)
 भुल्लि^१ बिभीषन^२ पाहि^{*३} रोरे^{*४} । (२१)
 रोस^१ कइ^{*} सोस^३ दरिआइ लोरे^{*४} । (२२)
 बंधि^१ पुरासान किय^२ मीर बंदा । (२३)
 सुतउ^{*} राठ वयराठ^१ विजपाल^२ नंदा । (२४)
 बंस^१ छत्तीस आवइ^{*२} हकारे । (२५)
 एक^१ चहूआन प्रियिराज^२ टारे ॥ (२६)

अर्थ—“(१) [जयचंदकी सभा में] आसनों पर [ऐसे] शूर गण है जो बड़े हुए (समृद्ध) और सुव्यवस्थापित हैं, (२) जिन्होंने क्षिति के राजाओं को जीत कर [उन्हे जयचंद में] राधित (अनुरक्त) कर दिया है। (३) वह (जयचंद) घरणी के खंड (भरत खंड) को धारण कर दिक्पालों का धर्म वहन कर रहा है (४) और सिर पर वह [छत्र के] कनक-दंड की शोभा और द्युति को धारण कर रहा है, (५) जिस पंग (कन्नौज राज) ने [सेना] साज कर सिंधु [नदी] का अवगाहन किया (६) [जिसके आगे] तिमिर अपना तेज छोड़ कर कुरंग (मृग) [के समान] भयभीत हुआ (७) जिसने हेमकूट (मेरु के समीपस्थ एक पर्वत) [में स्थित राज्यों] को संपूर्ण रूप से ढहाया और (८) एक दिन में आठ सुल्तानों का साधा (वश) में किया। (९) चंड (उग्र) चंद सत्य कहता है कि उस (जयचंद) ने (१०) तिरहुत जाकर पिंड (सेना) स्थापित की। (११) ‘दक्षिण देश को अर्पित करूँ’ ऐसा विचार कर (१२) वह सेतुबंध के पर्वत पर जा उतारा। (१३) उसने डाहल देश के कर्ण को दो बार बंदी किया, (१४) और [गूर्जर के] सोलकी सिद्ध (जैन) राजा को कई बार खदेड़ा। (१५) उसने तीन दिनों तक रुंड मुंड युद्ध करके (१६) तिलंग (त्रिलिङ्ग) और गोवल कुंड (गोल कुंडा) को तोड़ा (वश में किया), (१७) एक मात्र गुंड के शासक जीरा को बाँध कर (बंदी कर) के छोड़ दिया, (१८) और वैरागर देश से सब हीरे ले लिए। (१९) गजनी के शूर शाह शहाबुद्दीन की (२०) जो सेवामें था, उस निसुरत खॉ (१) को बंदी किया। (२१) जो भूल कर [लंका जा कर] विभीषण पर रोर (आक्रमण) कर बैठा, (२२) अपने रोष के शोषण द्वारा समुद्र को चंचल कर डाला (२३) और जिसने खुरासन के अमीर बंदा को बंदी किया, (२४) वह तो राठ प्रदेश का पति राष्ट्र [कूट] विजयपाल का पुत्र [जयचंद] है। (२५) उसके बुलाने पर छत्तीस कुलों के क्षत्रिय आते हैं, (२६) एक मात्र चहूआन पृथ्वीराज को छोड़कर।”

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

० चिह्नित चरण वा शब्द मो. में नहीं है ।

× चिह्नित चरण उ. में नहीं है ।

+ चिह्नित शब्द धा. में नहीं है ।

(१) १. अ. फ. आसन, द. ना. आसनै, म. उ. स. जहाँ आसनं (आसन-उ. स.) । २. अ. ठट्टे, म. चट्टे, । ३. मो. समाहं, मो. के अतिरिक्त सभी में 'सनाह ।

(२) १. धा. अ. जीति, मो. जितीये, फ. जित्त, द. जिनै जित्ति, म. उ. स. जिनै जीति, ना. जित्ती । २. मो. क्षितिराय के सुराहं, धा० छितिराह किय ना सुराहं, अ. फ. छिति (छित-फ.) राह किनै सुराहं (सुनाहं-अ.), म. उ. स. छितिराय किय एक राह, ना. ये राह छिति के सुराहं ।

(३) १. अ. फ. धर्म, ना. धम्म, म. उ. स. धरा ध्रम (धूम-म.) । २. ना. ध्रिगपाल ।

(४) १. अ. फ. ढरहि, म. उ. स. धरै छत्र । २. ना. सोम ।

(५) १. मो. यते, शेष में 'जिनै' । २. धा. सज्जिगे, अ. फ. सज्जते, ना. साजतै, द. म. उ. स. साजते । ३. द. सिधि । ४. मो. गाहि (= गाहे) सुपग. धा. अ. फ. गाही (< गाहि=गाहे) सुपंग (सुपगुं-फ.), द. म. उ. स. गाहै=(गाहै-उ. स.) सुपंग (सुपंगा-म.), ना. गाही (< गाहि=गाहे) सुपंगा ।

(६) १. मो. तिमिर तज, ना. तिमर तप, म. उ. स. उन तिमिरि (तिमर-म.) नजि, द. तिम तिम । २. धा. तेजु, अ. फ. न मेज । ३. मो. भीय ज्यु (= भिय जाउ), धा० भँज्यो, ना. म. उ. स. भाजै + द. भगे । ४. ना. कुरंगा । ५. ना. में यहाँ और है : जिनै साज तै इंदु कपै सुचंदं । तिमरजा तीर तरण रंग नंदं ।

(७) १. मो. जेने (= जिनि), ना. जिनै शेष में 'जिनै' । २. फ. नै, म. से । ३. धा. सवे । ४. धा. म. ना. ढाहे (ढाहै-ना. अ. फ.) ।

(८) १. अ. फ. इक्क, म. उ. स. जिनै एक, ना. जिनै इक्क, । २. धा. मो. आठ, ना. अ. फ. अठ्ठ । ३. ना. साहै ।

(९) १. धा. ना. अ. फ. जंपियो, म. उ. स. जसं जंपियं । २. धा. संच, फ. सब, ना. सच्च । ३. मो. चंद चंदं, धा. चंड चंडं, शेष में 'चंद चंदं' ।

(१०) १. म. उ. स. जिनै (जिनै-म.) थप्पियं । २. मो. तिरहुति पिंडि, अ. तिरहुत्ति पंडं (< प्यंडं), फ. तिरहुत्त प्यंडं, म. उ. स. तिरहुत्त पिंडं ।

(११) १. धा. दच्छिनी, मो. दक्षिनी (= दक्खिनी), अ. ना. दच्छिनं, फ. दक्षिनं, म. उ. स. जिनै दक्षिनी । २. मो. आपु (= आपउ) बिचारे, धा. अप्पो बिचारं, अ. फ. अप्पे बिचारं, उ. स. अप्पै बिचारं, म. द. ना. अप्पौ (अप्पौ-म. ना.) बिचारे (बिचारै-ना.) ।

(१२) १. मो. उत्तरयु (= उत्तरयउ), धा. द. उत्तरथो, ना. उत्तरथौ, फ. उत्तरे, म. उ. स. जिनै उत्तरथौ । २. धा. सेतबंधे पहारं, द. उ. स. सेतबंधं पहारै (पहारै-ना. द.), अ. सेतु बंधे पहारं, फ. सेत बंधे यस्तारे, म. सेत पाज बंध पहारै ।

(१३) १. मो. करण ढाहल (= ढाहल), म. उ. स. जिनै करन ढाहाल, धा. अ. फ. कर्ण (कर्न-धा.) ढाहाल । २. मो. दू (= दु) धा. ना. दुहुं, म. उ. स. दुअ । ३. मो. बार बांध्यु (= बांध्यउ), धा. बान बंध्यो, अ. फ. बान बेध्यउ, ना. म. उ. स. बान बेध्यौ ।

(१४) १. मो. धा. अ. ना. सिंधु (= सिंधु), फ. सिंध, द. सिधि, म. उ. स. जिनै सिद्ध । २. मो. के अतिरिक्त सभी में 'चालुक' है । ३. मो. कि (= कह), धा. म. ना. के, उ. स. कय । ४. मो. वेध्यु (= वेध्यउ), धा. द. वेध्यो, ना. म. उ. स. वेध्यौ, अ. पेध्यउ, फ. वेध्यौ ।

(१५) १. मो. धा. तीन, म. उ. स. तिन (= तिन्र) । २. धा. अ. फ. दिव जुद्ध भरि, द. ना. दिन जुद्ध भिरि, म. उ. स. दिन्न जुद्ध भिरै (भिरै-म.) । ३. अ. फ. रुंड मुंडं, उ. स. भूमि रुडं, म. अमि रुडं, ना. भूमि मंडं ।

(१६) १. मो. उरि (<तुरि=तोरि), म. उ. स. वर तोरि, फ. भोरि। २. धा. ठिछग, मो. तिल्यग (=तिळिग), अ. फ. तिल्लिग, म. ना. उ. म. तिछग। ३. मां. गोवल गूढा, धा. द. गोवळ कुड, म. अ. फ. ना. गौवाल (गोवाल-म.) कुड, उ. स. गोआल कड।

(१७) १. मा. छडिउ (=छडिअउ), धा. अ. फ. छडियो, ना. छडियौ, म. उ. स. जिने छडियो। २. फ. बध्य (=बधि)। ३. मो. इक गूड, ना. इकु गौडु।

(१८) १. ना. ग्रहै, म. उ. स. ग्रहे लिद्ध (लोध-म.)। २. मो. विरागरे (=वहरागरे), धा. वरागिरि (=वरागिरइ), ना. वरागर, शेष में 'वरागरे'। ३. म. श्रब्ब।

(१९) १. मो. गजेने (<गजिनि), धा. गाजने, ना. द. गज्जने, म. उ. स. जिने गज्जने (गज्जने-म.)। २. अ. फ. सुत।

(२०) १. ना. मुकल्यौ, म. उ. स. तिने (तिन-म.) मोकल्यो (मोकल्यौ-म.)। २. धा. बध, अ. बंधि, फ. बधु, ना. गजनि, म. उ. स. सेव। ३. धा. निसुरत्त पाई, अ. फ. निसुरत्ति (निसुरत्त-फ.) पाही, द. म. निसुरत्ति भाई, उ. स. निसुरत्ति भाही।

(२१) १. धा. मो. अ. फ. भूलि, द. भुलि, म. उ. स. वर भुलि (भूलि-म.)। २. मो. विभीषनो, धा. भलि छने, ना. मभीषन। ३. धा. अ. फ. जाइ, द. म. उ. स. जोब। ४. मो. रोरि (=रोरे), ना. रोरै, शेष में 'रोरे'।

(२२) १. ना. तो रोस, म. उ. स. तहो रोस। २. धा. ना. उ. स. कै, म. अ. फ. के। ३. धा. सास। ४. मो. दरि आइ लोरि (=लोरे), धा. उ. स. अ. फ. दरिया हिलोरे, म. दरिया लिलोरे, ना. दरिया हिलौरै।

(२३) १. म. उ. स. जिने बंधि। २. ना. कीये।

(२४) १. धा. राव राठोर, मो. सुतु (<सुनउ) राठवय राठ, म. उ. स. इसौ रठवर राय, अ. फ. सुतौ राठोर, ना. सुतं राठौड, द. सुत रठोर। २. म. अ. विजैपाल, बिज्जैपाल।

(२५) १. म. उ. स. जहां बंस। २. धा. म. द. ना. आवै, मो. आवि (=आवइ) अ. फ. आवे।

(२६) १. म. उ. स. परं एक। २. उ. स. सुमान।

टिप्पणी—(१) समाइ < समाहित=भली भाँति व्यवस्थापित। (२) राह < राधित=प्रसन्न, अनुरक्त। (६) भिय < भीत। (८) साइ < साध्=वश में करना। (११) आप < अर्पय्। (२१) रोर < रोल [देशज]=कलह। (२२) लोर < लोल। (२४) राठवय < राष्ट्रपति [अब भी 'राठ' नाम की एक तहसील है]

[१४]

दोहरा— सुने ति नृप^१ रिपु^२ कउ^३ सवद^२ तम तम^३ नयन^४ सुरत्त^५। (१)
दल^१ दलिह^२ मंगन घरह^३ सु^४ को मेटइ^५ विधिपत्त^६ ॥ (२)

अर्थ—(१) उन्होंने (जयचंद के कवियों ने) [जब अरने] नृप (जयचंद) के रिपु (पृथ्वीराज) का शब्द (नाम) सुना, तो उनके नेत्र तमतमा कर लाल हो गए। (२) [उन्होंने चंद की इस प्रकृति को देखते हुए अपने मन में कहा,] “यदि मंगन के घर में दारिद्र्य का दल हो, तो विधाता के उस पत्र (लेख) को कोन मिटा सकता है?”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

× चिह्नित शब्द मो. में नहीं हैं।

(१) १. धा. अ. फ. सुनि नृपति (फ. में 'पति' नहीं है), ना. द. म. उ. स. सुनत नृपति।

२. मो. [रिपु] कु (=कउ) सवद, ना. रिपु कौ सवद, धा. रिपु कै सवद, अ. रिपु कौ सवद, फ. रिष कौ सवद, म. उ. स. रिपु कौ वधन । ३. मो. द. ना. म. उ. स. तनमन, धा. तामस । ४. अ. फ. ना. नैन । म. भयन । ५. द. स रत्त ।

(२) १. धा. दरि, अ. फ. दर, द. म. उ. स. दिय, ना. दी । २. धा. दरिद, मो. दिलद, म. उ. स. दरिद्र, ना. दाकिद । ३. धा. अ. फ. सुवह (सुवहि-फ) । ४. धा. अ. फ. उ. स. में यह शब्द नहीं है । ५. धा. मेट्ट, मो. [मेटि] (= [मे] ट्ट) मिटे (<मेटि=मेट्ट), द. ना. म. उ. स. मेट्टै । ६. फ. पत्ति ।

टिप्पणी—(२) दलिद < दारिद्र्य । पत्त < पत्र ।

[१५]

दोहरा— आदरु किय^१ नृप तास कउ^{*२} कहउ^{*३} चंद कवि^४ आय^५ । (१)

दिल्लिय पति जिहि विधि रहइ^{*१} सु वत्त कहहि^२ समझाय^३ ॥ (२)

अर्थ—(१) [जयचंद के समक्ष पहुँचने पर] नृप (जयचंद) ने उसका आदर किया, और कहा, “चंद कवि, आ; (२) दिल्ली पति (पृथ्वीराज) जिस प्रकार रहता है, वह वार्ता मुझे समझा कर कह ।”

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. धा. किउ, ना. करि । २. मो. कु (=कउ), धा. अ. फ. को, ना. म. उ. स. कौ । ३. मो. कहु (=कहउ), धा. कहयो, अ. कहयउ, ना. द. फ. म. उ. स. कह्यौ । ४. मो. ककि । ५. धा. अ. फ. ना. उ. स. आय ।

(२) १. मो. ना. धा. अ. फ. दिल्लिय (धा. दिल्ली, अ. फ. दिल्लिय) पति जिहि विधि रहइ (रहि=रहइ मो., रहै=अ. फ.), द. म. उ. स. मिले मोहि (न मोहि-स. न, मुहि-म.) दिल्लिय धनी । २. धा. सु वत्त कहे, अ. फ. सु तौ कहहु, ना. सुतौ मोहि, म. उ. स. सुवत्त कहिग, द. सुवत्त कहहि । ३. धा. अ. फ. समझाउ, मो. समझाइ, द. ना. उ. समझाउ ।

टिप्पणी—(२) वात < वार्ता ।

[१६]

दोहरा— कितुक^१ कंति^२ संभर^३ धनी कितुक^४ देस दल विंदु^५ । (१)

कितु इक रन^१ हथ्यगल^२ सु हसि नृप बुझउ^{*३} चंद^३ ॥ (२)

अर्थ—(१) [जयचंद ने पूछा,] “संभरपति मे कितनी काति है और कितना उसका देश और दल-वृन्द है ? (२) कितना वह रण मे हाथ [चलाने] मे आगे है ?” यह हँस कर नृप (जयचंद) ने चंद से पूछा ।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है ।

(१) १. मो. कितुक, धा. द. कितकु, अ. जितकु, फ. जिनकू, म. उ. स. कितक । २. मो. कति, शेष सभी में ‘सर’ । ३. ना. संभर । ४. मो. कितु एक, धा. द. अ. फ. कितकु, म. उ. स.

कितक । ५. मो. दल ब्यंदु (=विंदु), धा. दल बंध, अ. फ. कुलचद, ना. दल चंद, उ. स. दल (बल-उ.) बंधि (बध-उ.), म. दस बंध ।

(२) १. धा. कितोकु रन हथ अगलउ, मो. कितुइक रन हथ गर, अ. फ. कितकु (कितिकु-फ.) रन हथअगलौ, ना. कितुक रण हथ अगारौ, द. म. उ. स. कितक हथ रन (रण-द.) अगारौ । २. मो. सु हसि नृप बूझं (=बुझउ) चंद, धा. पुच्छइ राउ सु चंद, अ. फ. पूछउ राइ सुचंद, ना. द. म. उ. स. हसि नृप बूझ्यौ (बूझीय-म.) चंद ।

टिप्पणी—(१) कंति < कान्ति । विंद < वृन्द ।

[१७]

दोहरा— सूर जिसउ^{*१} गयनहि^२ उवइ^{*३} दल दव^४ मारन^५ आसि^६ । (१)

जब लगि अरि कर उचवइ^{*१} तब लगि देइ^२ पचास ॥ (२)

अर्थ—(१) [चंद ने कहा,] “जिस प्रकार गगन में सूर्य द्रव (जल) दल के मारने के लिए उदित होता है, [उसी प्रकार पृथ्वीराज भी है]; (२) जितनी देर में शत्रु हाथ उठाता है, उतनी देर में वह पचास [हाथ] दे देता है ।”

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. सूरजिसु (= जिसउ), धा. सूर जिसो, अ. म. उ. स. सूर जिसौ, ना. सूरि जसै, फ. सूरज सौ । २. धा. म. उ. स. गयनइ, अ. फ. ना. गैनइ । ३. मो. उवि (= उवइ), धा. उ. स. द. उवै, ना. म. उगें, अ. फ. उवे (< ऊवि = उवइ) । ४. धा. दल बल, मो. दल दव, फ. दल बदल, ना. अरिदल, शेष सभी में ‘दल बल’ । ५. धा. मरनां, ना. अरिन, अ. में ‘न’ मात्र है, फ. यन । ६. धा. आसि, शेष में ‘आस’ ।

(२) १. मो. धा. अरि कर उचवि (= उचवइ), धा. अरि नृप बज्जवै, ना. म. उ. स. अरि कर (करि-म.) उठवै, अ. नृप अरि ऊठवे, फ. अरि नृप ऊठवे । २. म. देय, ना. देहि ।

टिप्पणी—(१) गयन < गगन । उव < उदय् । दव < द्रव ।

[१८]

दोहरा— मुकुट बंध^१ सवि^२ भूप हइ^{*३} लषन^{*४} सर्व^५ संयुक्त^६ । (१)

बरनहि किनि उनहारि रहि^१ कहि चहुआन स उत्त^२ ॥ (२)

अर्थ—(१) [जयचंद ने कहा,] “[मेरी सभा के] सब भूप मुकुट-बंध हैं और वे सब लक्षणों से युक्त हैं । (२) तू वर्णन कर कि किमकी उनहार (अनुकृति—आकृति) [उसकी] रही; तू चहुआन (पृथ्वीराज) का उक्ति पूर्वक कथन कर ।”

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. ना. संघ । २. मो. ना. सवि, शेष सभी में ‘सव’ । ३. मो. हि (= इइ), म. उ. स. है, धा. अ. फ. ना. है । ४. धा. फ. म. उ. स. लच्छिन, मो. लक्षन (= लषन), ना. लक्ष्यन ।

(= लब्धन), द. लब्धन, अ. लब्धन । ५. धा. मो. सर्व, शेष में 'सर्व' । ६. धा. संजुक्त, अ. फ. संजुक्त ।

(२) १. धा. वरन वरुणनिहारि इह, अ. वरनि जेनि उनहारि वह, फ. वरन जेनु उनहारि उह, द. ना. उ. स. कौन वरन उनहार (वरण अनुहार—ना.) किहि, म. कौन वरन उन हीन कहि । २. धा. ज्यूं चहुवान संजुक्त, म. कटि चहुवान सजुक्त, अ. फ. कटि चहुवान सजुक्त, म. उ. स. कहु (कहि—म. उ.) चहुवान सुजुक्त, द. ना. जस चहुवान सजुक्त ।

टिप्पणी—(२) उनहारि < अनुकार । उक्त < उक्ति ।

[१६]

कवित— बत्तिस लखन* सहित^१ बरस छत्तीस मास छह । (१)
इम^२ दुजन^३ संगहइ*^३ राह^४ जिम^५ चंद सूर गह^६ । (२)
वय^१ छुटइ*^२ महिदान^३ दुवन^४ छुटइ*^५ जि^५ डड दिहि । (३)
एक गहि गहि^१ गिरिकंन^२ एक अनसरइ*^३ चरन गहि^४ । (४)
चहुवान चतुर चावदिसहि^१ बलि हिदुआन^२ सवि^३ हथि जिहि । (५)
इम जंपइ चंद विरदिआ*^२ सु प्रथीराज^३ उनहारि^३ एहि^४ ॥ (६)

अर्थ—(१) [चंद ने कहा,] “पृथ्वीराज बत्तीस [शुभ] लक्ष्मणों से युक्त है, और छत्तीस वर्ष तथा छः मास का है । (२) वह दुर्जनो को इस प्रकार बदी करता है जैसे राहु चंद्रमा तथा सूर्य को पकड़ता है । (३) वे मही-दान से छूटते हैं, तो दुर्जन दंड दे कर छूटते हैं । (४) एक (कुछ) गिरि-कंदरो को पकड़कर—उनमें आश्रय लेकर [छूटते हैं] और एक (कुछ) उसके चरण पकड़ कर उसका अनुसरण करते हैं । (५) चतुर चहुआन (पृथ्वीराज) ऐसा है कि जिसके हाथ में चारों दिशाओं के बली हिंदू [शासक] हैं ।” (६) चंद विरदिआ इस प्रकार कहता है, “पृथ्वीराज की अनुहारि (अनुकृति-आकृति) इस प्रकार की है ।”

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. वत्तिस लखन (= लखन) सहित, धा. लच्छत सहित बत्तीस, अ. फ. बत्तीस लब्धन (लब्धन—फ.) सहित, द. ना. बत्तीसह लब्धन (लब्धन—ना.) सहित, म. उ. स. बत्तीसह (बत्तीस—म.) लच्छनह ।

(२) १. धा. इन, म. इह, स. इस । २. अ. फ. दुर्जन, ना. दुरजन । ३. मो. संगहि (= संगहइ), धा. संगहे, अ. फ. संगहै, ना. संगहहि, म. उ. स. संगहत । ४. धा. राहु । ५. अ. जिमि, स. जिस । ६. मो. गहि, धा. अ. फ. गह, ना. म. उ. स. ग्रह ।

(३) १. धा. उव, मो. वय, अ. फ. वै, द. इव, ना. उव, उ. स. एक, म. एक । २. मो. छुटि (= छुटइ) धा. छुटे, द. म. उ. स. छुटहि, अ. फ. ना. छुटे । ३. मो. मिहि (< महि) दानि, शेष सब में 'महि दान' । ४. धा. दुजन, म. इक । ५. मो. छुटि (= छुटइ) जि, धा. म. छुटिति, ना. छुटति, फ. छुटितिह, उ. स. छुटिति, म. छुटितिह । ६. धा. दंडविहि, अ. फ. दंड कहि, उ. चंद भर, ना. स. दंड भर, म. दंड भर ।

(४) १. धा. इक गहहि, अ. फ. इक गहिहि, ना. इक गहैहि, द. इक गहि है, उ. स. एक गहहि, म. इक गहहि । २. मो. में 'कंन' शेष सभी में 'कंद' । ३. मो. एक अनसरि (= अनसरइ), धा. म. अ.

फ. ना. इक अनुसरहि (अनुसरहि—अ. फ. ना.), उ. स. एक अनुसरहि । ४. मो. वरन (= चरन) गहि, म. चरन पर, उ. स. चरन परि ।

(५) १. मो. चावदसहि, धा. चहु दिसहि, अ. चहु दिनहु, फ. चौहु दिसहु, म. चावौदिसहि, ना. चावदिसिहि । २. धा. अ. बलि हिंदुवान (हिंदवान—अ.), फ. बलि इंदवान, शेष सभी में 'हिंदुवान' (हिंदवान—म.) मात्र है । ३. मो. सिव (< सवि) । ४. मो. हथि शेष, में 'हथ' ।

(६) १. मो. विरदीउ (= विरदिअउ), धा. अ. फ. म. उ. स. वरदिया, ना. विरदिया, द. वरदियो । २. धा. प्रिथीराज । ३. धा. अनुहार, ना. अणुहारि, अ. उनहार, फ. उनहार, ना. द. उ. स. उनहारि, म. उनहार । ४. धा. अ. फ. इहि ।

टिप्पणी—(३) हुवन - दुर्जन । (४) कन < कद । (६) अनुहारि < अनुकार ।

[२०]

दोहरा— दिषि^१ थवायत^२ थिरु^३ नयन^४ करि^५ कनवज्ज^६ नरिंद । (१)

नयन नयन अंकुरि^१ परिय^२ मनु^३ इकु^४ थह^५ दोइ^६ मयंद^७ ॥ (२)

अर्थ—(१) [यह सुनकर] कन्नौज-नरेन्द्र ने जब [चन्द के] थवाइत (ताबूल-पात्र-वाहक—पृथ्वीराज) को स्थिर नयनों से देखा, (२) तो नेत्रों नेत्रों में अकुर (बल) पड़ गए, [और ऐसा लगा] जैसे एक ही आश्रय-स्थान में दो मृगेन्द्र [मिल गए] हो ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

० चिह्नित शब्द धा. में नहीं हैं ।

+ चिह्नित शब्द मो. में नहीं हैं ।

(१) १. द. दिषि, म. उ. स. देषि । २. धा. थवाइत, फ. थवाइति, म. थवाइत, ना. तवाइत । ३. द. थिरि । ४. म. तपन । ५. मो. कर, अ. फ. कहि । ६. फ. कनउज्ज ।

(२) १. म. नयने अरि, धा. अ. फ. नयन वकुरि । २. धा. परइ, ना. परी, अ. फ. परे । ३. मो. इकु, धा. अ. फ. मनुं, म. मनौ इक । ४. मो. दोइ, अ. फ. उमे, ना. म. दोय । ५. धा. मयंद ।

टिप्पणी—(१) थवायत < थवाइत < स्थगिकावत् = ताबूल-पात्र-वाहक । (२) थह [देशज] = निलय, आश्रय, स्थान । मयंद < मृगेन्द्र ।

[२१]

दोहरा— जे त्रिय^१ पुरुष^२ रस परस^३ बिनु उठिग राय सुरसान^४ । (१)

धवलगृह ने अनसरइ^५ भट्टहि अप्पन^६ पान ॥ (२)

अर्थ—(१) “जो स्त्रियों पुरुषों के रस और स्पर्श विहीन—कौमार्यपूर्ण—हैं”, राजा का [ऐसा] उत्तेजित स्वर उठा, (२) “वे भट्ट (चंद) को पान अर्पित करने के लिए धवलगृह से अनुसरण करे (चल पड़े) ।”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

* चिह्नित शब्द म. में नहीं हैं ।

(१) १. धा. जे त्रियन, द. अ. फ. त्रियन, ना. जे त्रियन । २. धा. पुरुष, उ. पुरिस, स. पुरिष, ना.

परसु । ३. म. परसि । ४. धा. उठिग राय सुरिसान, मो. उठि गयु (=गयउ) राय सु सान, द. ना. म. उ. स. उठिग राइ सु निसान, अ. फ. कडिग राइ सुरसान ।

(२) १. मो. धवल ग्रहि जे अनशारि (=अनसारइ), धा. धवल ग्रिह त्रिप अनुसरिग, अ. फ. धवलग्रह ते अनुसरिग, ना. द. धवल ग्रिह सपत्र करि, म. उ. स. धवल ग्रिह सपत्र कहि । २. धा. रिपु मगन सू, मो. रिपु मगन कह, ना. द. भट्टहि अप्पौ, अ. फ. भट्टहि अप्पुन ।

टिप्पणी—(१) सुर < स्वर । सान < शाणित=उत्तेजित ।

[२२]

दोहरा—तिन^१ कह^२ हथह^३ अथि^४ किय^५ जे^६ राय^७ ग्रह^८ अथि^९ । (१)

ते^१ सुंदरि सब एक समयि^२ चली^३ सुगंधन^४ कथि^५ ॥ (२)

अर्थ—(१) उनके हाथों—पाणि ग्रहण—के लिए [अपने को] अर्पित किया या ऐसे राजाओं ने जो उन्हें गृहिणी बनाने के अर्थी थे । (२) ये सुंदरियाँ सबकी सब एक समिति—मंडली—के रूप में प्रशंसनीय सुगंधियों में [सनी हुई] चल पड़ी ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

× धा. में चिह्नित शब्दावली नहीं है ।

(१) १. मो. किन । २. ना. म. उ. द. अथि सुहथ । ३. मो. किय (=किय) । ४. ना. म. उ. स. द. राजन । ५. मो. ग्रह अच्छ, धा. अथ, ना. उ. स. ग्रह (गृह-ना) अच्छ, म. ग्रह अच्छ ।

(२) १. धा. म. उ. स. छह । २. धा. एकइ समइ, मो. सब एक समय (< समयि) ना. द. उ. स. सब एक सम म. सब एक मन । ३. मो. सू (=सु) चली । ४. धा. सुगंधनि, मो. ना. म. सुगंधन । ५. मो. कच्छ, धा. कथ, म. उ. स. द. ना. कच्छ ।

टिप्पणी—(१) अथि < अथिन् । (२) समयि < समिइ < समिति । कथि < कथ्य=प्रशंसनीय ।

[२३]

दोहरा—षोडस^१ बरष स मुचि ग्रह^२ ते सब दासि^३ सुजान^४ ।^० (१)

मनहुं^{०१} सभा^० सुरलोक थइ^{०२} चली अछरी^३ समान ॥ (२)

अर्थ—(१) [इन] षोडश वर्षीया [सुंदरियों] ने समस्त सुजान (चतुर) दासियों को लेकर [धवल—] गृह इस प्रकार छोड़ा (२) मानो सुरलोक से [देवाङ्गनाओं की] सभा (मंडली) अप्सराओं के साथ चल पड़ी हो ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

० चिह्नित चरण तथा शब्द धा. में नहीं हैं ।

(१) १. यहाँ ना. द. में 'जे' भी है, जो और किसी में नहीं है । २. अ. फ. वरष सु मुचि गृह, द. वरष समुचह, ना. वर्षह जमल, म. उ. स. षोडस वरष स मुचि ग्रह । ३. ना. ग्रह सब दासि, म. ले सब दिस । ४. उ. स. सुजानि ।

(२) १. म. मनौ, ना. मनुं। २. मो. धि (=थइ), धा. बहु, द. कै, अ. फ. ते, ना. कुं, स. की, म. के, उ. कै। ३. द. म. उ. अछरीय, स. अछरिय, ना. अछरज।

टिप्पणी—(१) मुच्च < मुच्। (२) अछरी < अप्सरसि। समान=साथ (१)।

[२४]

अर्ध नाराच—

विहंग^१ अंग^२ चू पुरं^३। (१)
 चलंति^१ सोभ^२ नूपुरं^३। (२)
 अनेक भंति^१ सादुरं^२। (३)
 अषाढ मोर^१ दादुरं। (४)
 सुधा समान मुष्णी^१। (५)
 उठंति दंत^{*} दुम्मही^{१*}। (६)
 दीपंति^१ दोर^२ कंकने^३। (७)
 कटि प्रमान^१ रंकने^२। (८)
 धनुष^१ भउंह^{*२} अंकुरे। (९)
 नयन वान^१ बंकुरे। (१०)
 सवन मुत्ति^१ तारये^२। (११)
 अलक बंक^१ आरमे^{*२}। (१२)
 सबद सोभ ये पुत्ते^१। (१३)
 रहंति^१ लज्ज^२ कोकिले। (१४)
 अनेक वर्ण^१ जउ^{*} कहउं^{*२}। (१५)
 तउ^{*१} जाम^२ अंत न लहउं^{*३}। (१६)

अर्थ—(१) जिस प्रकार विहंग (पक्षी) तथा भृंग [मधुर रव करते] पूरित (व्याप्त) हो रहे हों, (२) इस प्रकार उनके चलते समय उनके नूपुर शोभित हो रहे थे। (३) [नूपुरों के शब्द इस प्रकार लगते थे मानों] अनेक प्रकार से बोलते हुए (४) आषाढ में मोर और दादुर (मेढक) हों। (५) उनके सुधा के समान [काति वाले] मुखों को (६) उनके उठते (खुलते हुए) दाँत धवलित कर रहे थे। (७) उनके डुलते हुए—हिलते हुए—कण प्रदीप्त हो रहे थे। (८) उनकी कटि प्रमाण-रंक थी—इतनी क्षीण थी कि उसके अस्तित्व में भी संदेह हो सकता था। (९) उनकी भौहे अकुरित (चढ़े हुए) धनुष के समान थीं। (१०) उनके नेत्र वाण वक्र थे। (१०) उनके भ्रवणों के मोती तारकों के समान थे, (१२) जो उनकी बाँकी अलको में उलझे हुए थे। (१३) उनके शब्द यदि खुलते—मुख से निकलते—थे, तो इस प्रकार शोभते—सुहाते—थे (१४) कि कोकिल लजा कर रह जाते थे। (१५) यदि उनके अनेक वर्णों (रूप रंगादि) का कथन करूँ, (१६) तो एक-पहर तक उस वर्णन का अन्त नहीं पा सकूँगा।

पाठान्तर—चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

× चिह्नित शब्द उ. में नहीं है।

० चिह्नित चरण धा. में नहीं है।

+ चिह्नित चरण अ. फ. में नहीं है।

(१) १. ना. विहंगि। २. धा. अ. फ. भृग (भंग-धा.) जा पुरा, द. म. उ. स भंग जो पुरं, ना. भंगि जो पुरा।

(२) १. अ. फ. चलंत। २. अ. फ. सोन, म. होस। ३. धा. अ. फ. ना. नूपुरा, म. नोपुरं।

(३) १. अ. फ. ना. भांति, म. भजि। २. ना. सींदुरं।

(४) १. द. मोर, शेष में 'सोर'।

(५) १. मो. सुषही, धा. सुकही, अ. ना. सुषही, फ. सूषही, म. उ. स. सथही।

(६) मो उठति ति दुहु मही, धा. उठति तिदु संमुही, द. उठत दंति दुंमुही, अ. फ. उठत इंदु संमुही, ना. उवंत इंद सम्मुही, म. उ. स. सुगंध हथ्य (गंध-म.) हथ्यही। २. मो. के अतिरिक्त सभी प्रतियों में यहाँ या कुछ चरणों के बाद और है (स. पाठ) :—

नितंब तुंग स्याम के। मनो सपत्र काम के।

लवण भृग गुंजही। सुगंध गंध पुंजही (हथ्यही-धा.)।

(तुल० चरण ६ का म. उ. स. का पाठ)। म. उ. स. में इन पक्तियों के पूर्व और भी है :—

चरत्र रत्त सोभई। उपम्म कब्बि लोभई।

वरत्र रत्त श्रीरजे। कसीस कासमीर जे।

चरत्र पडि रत्तए। उपम्म कब्बि पत्तए।

सुवक चंद अंकन। सुराह तेज संकनं।

सुवक चंद अंकन। सुराह तेज संकनं।

सु संक जीवन टरै। सुनें सरूप में करै।

नषादि आदि उप्पन। सुकाम केलि द्रप्पनं।

चरत्र हंस सदही। उपम्म कब्बि बहही।

सुनंत होड़ छड्यौ। चरत्र सेव मंडयौ।

सु पिंडि बाल सोभई। सुरंग रंग लोभई।

सुरग कुंकुमं भरी। षराद काम उत्तरी।

सुरंग जंघ ताल से। निकाम धंभ आल से।

(७) १. धा. वपंति, स. दिषति। २. ना. डोर। ३. ना. कंकनं।

(८) १. अ. फ. पमान। २. गा. रंकनं। ३. म. उ. स. में यहाँ और है :—

टिकै न दिट्ठ लंकयौ। बिलोकि अण्णि अंकयौ।

उत्तंग तुग तामयौ। कि घम्म लोभ कामयौ।

सु रोम राज दिट्ठयौ। रुलंत बेनि पिट्ठयौ।

सु चंनि चद गाढयौ। विपास काम चाढयौ।

जु अत्र हौय सोभई। सु सिद्ध मेन लोभई।

ग्रहत्र रग चालई। सु लज्जि लक हालई।

उठत कुच्च कचुअं। कि तबु काम रच्चय।

बजे प्रमान सज्जनं। सुमेर श्रष्व भंजनं।

जु पोत पुंज सोभयो। सुचित्त काम लोभयो।

सुजिति राह धानयौ। सु चद बंठि मानयौ।

जराह चौकि कंठयौ। उपम्म कब्बितं ठयौ।

ग्रह जुइंद आइयं । चरत्र चंद साहिय ।
 बनित्त सब जंपयौ । सुराह धान अप्पयौ ।
 चिबुक्क चारु सोमयौ । उधम्म कब्बि मोहयौ ।
 सुवास भंग पत्तयौ । सुकज मुक्कि जत्तयौ ।
 सुरत्त अद्ध रत्तऔ । लहै न ओप अत्तयौ ।
 ओसाफ कब्बि सौहयौ । प्रबाल रत्त मोहयौ ।
 सुधा समान मुष्णही । दसन्न दुत्ति रुष्णही ।
 सुसद्ध बद्ध पचर्म । कलित्त कठ तंकम ।
 सुनी सुकब्बि राजई । उपम्म कब्बि साजई ।
 ससद्ध सारगं हरी । प्रगट्ट काम मंजरी ।

- (९) १. स. अ. फ. धनुक्क, उ. धनक्क, द. धनक । २. मो. ना. भुइ (= मंडह) शेष में भौइ ।
 (१०) १. मो. नयन वान, शेष में 'मनो (मनु ना , मनौ-म.) नयन्न' है ।
 (११) १. मो. माति । २. उ. स. तालजे, तारिजे, म. मलजे ।
 (१२) धा. डंक । २. मो. लुम्भारण, धा. अ. फ. आरण, द. उ. स. आलुझे, म. अलुझे, ना. आलुजे ।
 (१३) १. धा. द. जो घुले, अ. फ. पगुले, ना. ते घुले, म. उ. स. जौ घुले ।
 (१४) १. धा. रहित्त । २. मो. लाज, ना. अ. फ. लज्जि ।
 (१५) १. उ. स. वृत्त, ना. म. व्रन । २. मो. जु कहु (=जउ कहउ), धा. म. उ. स. जो कहै
 (कहे-धा.), द. जो कहै, ना. जौ कहुं ।
 (१६) १. मो. तु (=तउ), धा. ते, द. ना. म. उ. स. तौ । २. धा. द. ना. म. उ. स. जम्म ।
 ३. धा. मो लहे, मो. न लहुं (=लहउं) द. न लहै, म. उ. स. ना लहै, ना. ना लहु ।
 टिप्पणी—(३) साद < शब्द । (६) दुम [देशज]=धवलित करना, श्वेत बनाना । (११) तारय<तारक ।

[२५]

अडिल्ल—चहुआन^१ दासिअ रसि कंषिअ^२ । (१)
 पुरि^३ रठ्ठवर रहिय^२ दिसि^३ नषिय^४ । (२)
 विगल्ल केस^२ पुरिषन कहि अषिय^२ । (३)
 प्रथीराज^१ देषत^२ सिर^३ ढंकिय ॥ (४)

अर्थ—(१) चहुआन (पृथ्वीराज) को एक दासी ने रस (सुख) क आकाक्षा की ।
 (२) वह [इसलिए] दिशाओ में लुप्त होकर राठौर (जयचन्द) के पुर (कन्नौज) में रहने लगी थी ।
 (३) वह विगलित केश (विखराए बालों) युक्त रहा करती थी, और पुरुषों को कह कर [उनके मर्म] बता दिया करती थी । (४) उसने पृथ्वीराज को देखते ही सिर ढंक लिया ।

पाठान्तर—(१) १. धा. अ. फ. ना. चहुवान, म. उ. स. चहुवानह । २. मो. रसि कपीअ, धा. रिसि कपिय, द. अ. फ. ना. रिस्सि (रिस-अ. फ. ना.) कंषीय (कंषिय-अ. ना.), म. स. सिर कषिय, उ. ना. रिस कषिय ।

(२) १. द. में पुरि, शेष सब में 'पुर' । २. मो. रठ्ठवर रहिय, धा. राठौर रहइ, द. ना. म. उ. स. राठौर रही, अ. फ. राठौर रहै । ३. म. दिस । ४. ना. छिप्पिय ।

(३) १. धा. विजर वासु, द. विगर केस, ना. विथुर केस, स. विगरत केस, म. विगरव केत, उ. विगरत केस, अ. बिगलि केस । २. मो. पुरिषन कहि अधीय, अ. फ. पुरुषत कोइ अप्पिय, द. म. उ. स. पुरुष नहि (नह-म.) अकिय (अधीय-म.), ना. पुरुषन कहि अधीय ।

(४) १. धा. प्रिथीराज । २. ना. दिषित । ३. फ. सिरु, द. सिरि ।

टिप्पणी—(१) कष < काङ्क्ष । (२) नष < नश् (१)=लुप्त होना, भागना । (३) अष < अक्खा < आ+ख्या=कहना, बोलना ।

[२६]

दोहरा— भय चकि^१ भूप अनूप सह^२ पुरुष सु^{*३} कहि प्रथिराज । (१)

सु मनु^२ भट सथिहि^२ अछइ^{*३} जाहि करत^४ त्रिय लाज ॥ (२)

अर्थ—(१) भूप नयचन्द [तथा उस] की सभा अनुपम प्रकार से भय चकित (भौचक्के) रह गए, [और कहने लगे,] “वह पुरुष पृथ्वीराज कहाँ है ? (२) वह मानो (ऐसा लगता है कि) भट चंद के साथ है, जिसे वह स्त्री लजा कर रही है ।”

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. भय चुकि, उ. स. अ. फ. भे चकि (बकि-फ.), ना. भयह चकित, म. नव भेवक । २. ना. सहि । ३. धा. म. उ. स. जु, मो. सूर (< सु) अ. जि, ना. द. फ. ज ।

(२) १. म. उ. स. सुमति । २. धा. सथिह, म. सुथह, ना. सथै । ३. मो. अछि (=अछइ), धा. अ. ना. म. उ. स. अछे, फ. अछे । ४. धा. जिह करंति, उ. स. जिहि करंत, अ. तिहि करंत, म. जिहि करितं, ना. जिहि करत, द. फ. तिह करंत ।

टिप्पणी—(१) सह < सभा । कहि < क्व, कुत्र । (२) अछ < अस् ।

[२७]

दोहरा— इक कहइ^{*१} विठिय^२ सुमट इह न^३ सथि^४ प्रथिराज^५ । (१)

इह^१ नृपति^० दुहु^० एक^० हइं^{*२} ताहि करत त्रिय^३ लाज ॥ (२)

अर्थ—(१) एक कहने लगा, “यह जो सुमट [चन्द के साथ] बैठा हुआ है, यह [उसके] साथ में पृथ्वीराज नहीं है । (२) यह (चन्द) और नृपति (पृथ्वीराज) दोनों एक—अभिन्न—हैं, [इसीसे] यह स्त्री उस (चंद) से लजा करती है ।”

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

० धा. में चिह्नित शब्द नहीं हैं ।

(१) १. मो. इक कहि (-कहइ), धा. एक कहिय, अ. फ. इक कहहि, ना. इक कहहि, म. उ. स. एक कहै । २. अ. फ. विठुहि, ना. विठौ, म. उ. स. बैठे । ३. म. उ. स. इह, ना. इन । ४. अ. फ. म. उ. स. सथि (मथि-म.), ना. सथिहि । ५. धा. म. ना. प्रिथीराज ।

(२) १. धा. इनि, अ. इहि, ना. इहै, म. उ. स. ए । २. मो. हि (=हइं), अ. फ. उहि (उह-फ.)

दुहु मन इक है, म. उ. स, नृपजीवन एक है, ना. दुहुं में एक नृप । ३. धा. जिह करति त्रिय, अ. फ. तिहि करति (करत-अ.) यह (तइ-फ.), म. उ. स. तिनह करत (तिन हरकता-म) त्रिय, ना. तिहि करत त्रिय ।

टिप्पणी—(१) बिट्ठ < उपविष्ट (१) ।

[२८]

दोहरा— अपिग^१ पान सनमान^२ करि नहि^३ रषउ^{*४} कवि गोय^५ । (१)
जु कछु इछ्छ करि मंगहिइ^१ प्रात^२ समप्पउं^{*३} सोय^५ ॥ (२)

अर्थ—(१) [चन्द को] पान अर्पित कर और उसका सम्मान करके [जयचन्द ने कहा,] “हे कवि, मैं तुझ से [कुछ भी] छिपाकर नहीं रख रहा हूँ (स्पष्ट कह रहा हूँ), (६) जो कुछ भी इच्छा कर तू माँगोगा, मैं तुझे उसे [कल] प्रातः समर्पित करूँगा ।”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) धा अ अपिग, द. अफि, ना. म. उ. स. अपि । २. धा. अ फ. पानु समानु (समान-फ.) । ३. द. नहि रहि, म. नह । ४. मो. रषु (=रषउ), धा. रक्खूँ, म. ना. उ. स. रष्यौ । ५. अ. फ. ना. तोहि ।

(२) १. धा. मंगिहइ, अ. फ. ना. मंगिहै (मंग्यहै-फ.), द. म. उ. स. मंगिहौ । २. धा. कलिह अ. फ. कलिह । ३. मो. शमपु (=समप्पउ), धा. समप्पू, ना. समप्पुं (=समप्पउं), उ. स. समप्पौ, अ. फ. म. समपौ । ४. धा. अ. फ. तोहि ।

टिप्पणी—(१) अप < अर्पय् । (२) समप्प < समर्पय् ।

[२९]

दोहरा— हकारिउ^१ रषत^२ नृपति कुंकुम कलस^३ सुवास । (१)
पच्छिम दिसि^{+१} जयचंदपुरि^२ तिहि^३ रषउ^{*४} जाय^५ अवास^५ ॥ (२)

अर्थ—(१) नृपति जयचन्द ने भृत्य को बुलाया, और उसने कुंकुम [वर्ण] के कलश वाले सुवासित (२) आवास (प्रासाद) में, जो जयचन्द पुर (कन्नौज) में पश्चिम दिशा में था, उसे (चन्द को) जाकर रक्खा—स्थान दिया ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है ।

+ चिह्नित शब्द अ. में नहीं है ।

(१) धा. हकारिउ, मो. हकारो, अ. हकार्यौउ, फ. द. म. उ. स. हकार्यौ (हकार्यो-३.), ना. हकार्यौ । २. धा. रषत, फ. राउन, शेष सब में ‘रावन’ या ‘रावन’ ३. म. उ. स. के के मुकि, फ. कुंकुम कला ।

(२) १. मो. पच्छिम दिसि, अ. पश्चिम, फ. पश्चिम बास, स. पच्छि दिसि । २. ना. में पुरि, शेष सब में ‘पुर’ । ३. म. तिह । ४. धा. रषहु तिय, मो. रषु (=रषउ) जाय, अ. फ. ना. लै (लै-ना.) रषि,

म. उ. स. रषौति, द. रषौ जाइ। ५. धा. वास, म. आवास।

टिप्पणी—(१) रषत < रक्षित=मृत्यु। (२) अवास < आवास।

[३०]

दोहरा—आयस^१ रावन^२ सथि चलि असिय सहस^३ तिहि^४ सथि^५। (१)

जि भर भूमिह ठिल्लन कहइ^{*१} त मेरु भरहि मनु वथ्य^२ ॥ (२)

अर्थ—(१) [जयचन्द के] आदेश से रावण उसके साथ चला, और अस्सी सहस्र [भट] उसके साथ चले। (२) [वे भट ऐसे थे] जो भूमि को ठेल देने के लिए कहते थे, और जो [ऐसे लगते थे] मानो व्यस्त (अलग-अलग—एक-एक) मेरु को धारण कर सकते थे।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ का है।

(१) १. धा. अ. फ. ना. आइस। २. धा. राइन, फ. राउन। ३. धा. अ. फ. म. उ. स. सथ्य। ४. म. ना. द. उ. स. अयुत (अजुत-ना.) एक। ५. धा. भर, अ. फ. म. उ. स. भट। ६. मो. में सथि, शेष सब में 'सथ्य'।

(२) १. मो. जि भर भूमिह डि गि कहि (= कहइ), धा. भिर मुम्मिहिठिल्लन कहइ, अ. फ. जि भर मुक्षि ठिल्लन कहै, ना. जे भर भूमि झिल्लन कहै, द. म. उ. स. अग (अंग-म., अगै-द.) राइ सु (सौ-म.) संचरै। २. मो. त मेरु भरहि मनुमथि, धा. मेरतरिअ मुनिवथ्य, अ. फ. मेर (फेर-फ.) भरहि उठि वथ्य, ना. म. उ. स. मेर (मेरु-ना.) उचावहि (उचावै-ना.) वथ्य (हथ्य-म.)।

टिप्पणी—(१) भर < भट। (२) भर < भृ=धारण करना। वथ्य < व्यस्त=अलग अलग।

[३१]

दोहरा—सकल सूर सामंत घन^१ मधि कविता किय^२ चंद। (१)

प्रथिराज सिंघासन ठयउ^{*१} जनु पर पुर उग्यउ^{*२} इंद^३ ॥ (२)

अर्थ—(१) समस्त सूर, और घने सामन्त थे और सबके मध्य में चन्द ने कविता की। (२) पृथ्वीराज सिंहासन पर [इस प्रकार] स्थित था मानो शत्रु (वृत्र) के पुर में इन्द्र उदित हुआ हो।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं।

(१) १. म. ना. द. उ. स. तहां (तहं-ना.) सु (स. द. में यह शब्द नहीं है) सूर सामंत मिलि। २. ना. मध्य कवित्त किय, म. स. मधि नायक कवि, द. मधि कविता किव।

(२) मो. पृथीराज सिंघासन (< स्थिघासन) ठयु (=ठयउ), धा. प्रिथिराज सिंघासनहि, अ. फ. पृथियराज सिंघासनह (सिंघासनहि-फ.), ना. म. उ. स. प्रथीराज (प्रिथीराज-म. ना.) सिंघासनह। २. धा. पुररप ऊयो, मो. जनु पर पुर उग्यु (=उग्यउ), अ. फ. जनु उयपर (पर-अ.) पर, ना. मनु पर पुर उग्यौ, द. उ. स. जनु परिपूरन (परपूरन-द.), म. मनहु प्रिथीपर। ३. धा. फ. इंदु।

टिप्पणी—(२) ठय < स्था। उय < उत्+गन्। इंद < इन्द्र।

[३२]

दोहरा— भइत^१ निसा^२ दिसि मुदित विभु^३ उड नृप^४ तेज विराज । (१)
कथिक^१ सथ^२ कथहि कथा^३ सुष सयन^४ प्रथिराज ॥ (२)

अर्थ—(१) निशा हो गई, दिशाओं में उसका वैभव मुद्रित हो गया और उडुगणों के राजा—
चंद्रमा—का तेज विराजने लगा । (२) कथकसभा में कथा कहने लगा, और पृथ्वीराज सुखपूर्वक
शयन [करने लगा] ।

पाठांतर—(१) १. धा. भयत, फ. भइतु, ना. भईति । २. अ. फ. नुसा (तुसा-फ.) । ३. धा.
दिसि मुदित वनु, अ. फ. दिन मुदि वनु, द. म. उ. स. दिन मुदित विनु (विन-म.), ना. दिशि
मुदित विनु । ४. उ. स. उडपति ।

(२) १. फ. कथकि, द. कयकि, ना. उ. स. कयक, म. कथा । २. अ. फ. कथ, म. उ. स. साथ
३. धा. कथहि त कथा, अ. फ. कथति ति सथ (सब-फ.), द. कथहि कथ, म. कथत कथा । ४. फ.
सुष सय मृग, म. सुष सुपन ।

टिप्पणी—(१) मुदित < मुद्रित । (२) सथ < सार्थ=प्राणि-समूह, समा ।

[३३]

दोहरा— मृदु^१ मृदंद धुनि संचरिय^२ अलि^३ अलाप^४ सुध^५ विंदु^{*६} । (१)
तार^१ त्रिगांम उपंग^२ सुर अवसर^{३+} पंग^४ नरिदु^५ ॥ (२)

अर्थ—(१) [इसी समय] मृदु मृदंग-ध्वनि संचरित हुई, अलि (सखियों-गायिकाओं)
के आलाप, जो सुधा-विन्दु [के समान] थे, [संचरित हुए], (२) और ताल के तीनों ग्राम
तथा उपंग [वाद्य] के स्वर [भी] पंगराज (जयचंद) के अवसर (नृत्य-संगीत-समारोह) में
[संचरित हुए] ।

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है ।

× चिह्नित शब्द अ. में नहीं हैं ।

(१) मो. मनु, म. म्रिद । २. अ. धुनि सचरिग, फ. धुनि संचरग, ना. ध्वनि सचरिग । ३. धा.
अलिय, म. अल । ४. म. अलीप । ५. ना. सुधि । ६. मो. चंदु. धा. विंद, ना. छिंद, फ. छंदु, अ. छद. म.
विंद, उ. स. व्यंद (=विंद) ।

(२) १. ना. द. म. उ. स. ताल । २. धा. त्रिगामउ पसर, अ. त्रिगम्य उपग, फ. नगम्यौ पंग, म.
त्रिगान उपंग, स. त्रिगम उपंग । ३. धा. अवसर, फ. म. उ. स. औसर । ४. फ. ना. पंगु । ५. फ. परिदु ।

टिप्पणी—(२) तार < ताल ।

[३४]

दोहरा— जलन^१ दीप दिअ^२ अगार रस स^३ फिरि घनसार तंमोर । (१)
जमनि कपट^१ उच महिल मुख^२ जनु^३ सरद अम्म ससि^४ कोर ॥ (२)

अर्थ—(१) दीपो में जलने के लिए अगुरु-रस दिया—डाला—गया, और धनसार (कर्पूर) तथा ताम्बूल [सभा में] फिरे (घुमाए—वितरित किए—गए) । (२) यवनिकाओं (आच्छादक पटों) के काड़ों में [से झॉकते हुए] महिलाओं के उत्तम मुख [ऐसे प्रतीत हाते थे] मानो शरद के अभ्र (बादलो) में [से निकलती हुई] शशि की कोरे हों ।

यह छन्द अ. फ. प्रतियों में छूटा हुआ है अतः पाठान्तर उसी शाखा की ६० संख्यक भागचन्द के लिए लिखा गई भा. प्रति से दिया जा रहा है ।

पाठान्तर—(१) १. म. उ. स. उवलन । २. ना. म. दीय । ३. यह शब्द मो. के अतिरिक्त किसी प्रति में नहीं है ।

(२) १. धा. जमिनि कपट, ना. जिमनि कपट, म. जमनि-निकटप । २. मो. उच्च महल सुख, धा. अनमहिल सुष, ना. द. म. उ. स. उच (उव-म.) महल सुष (सुष-म. ना), भा. उच महल किय । ३. मो. जानुं, धा. ना. में यह शब्द नहीं है । ४. द. म. उ. स. अम, भा. ना. अभ्र । ५. द. सिसि ।

टिप्पणी—(२) १. जमनि < यवनो । कपट < कर्पट=कपड़ा । उच < उच्च=उत्तम । अम < अभ्र ।

[३५]

दोहरा—तत्त^१ धरम्मह मंतु^२ यह^३ रत्तह काम सु वित्तु^४ । (१)
ता काम^१ विरुध्वन विधि^२ किअउ^{*३} नित्त^४ नितंबिनि^५ नृत्तु^६ ॥ (२)

अर्थ—(१) [जयचंद ने कहा,] “धर्म का तत्त्वपूर्ण मंत्र यही है कि चरित्र काम में रत हो, (२) [अतः] उस काम के अविरोध के लिए [मैंने] नित्य नितंबिनी नर्तकियों के नृत्य का विधान किया है ।”

यह छंद भी अ. फ. प्रतियों में छूटा हुआ है, अतः इस छन्द का भी पाठान्तर उसी शाखा की उपर्युक्त भा. प्रति से दिया जा रहा है ।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ का है ।

(१) १. धा. तत्तु, म. उ. स. तात, द. तत्र । २. मो. धरम्मह रुत्तु, धा. धरम्मह मत्तु, भा. धरम्मह तत्तु, ना. धरम्मह मत्त । ३. धा. जाह, ना. म. उ. स. इह । ४. मो. ना. वित्त, धा. वित्तु शेष में ‘चित’ ।

(२) १. ना. द. म. ता काम, शेष सभी में ‘काम’ मात्र । २. म. उ. स. नि विद्ध, द. निविध, ना. निवध । ३. मो. कीउ (=किअउ), धा. कियो, द. म. उ. स. कीय, भा. ना. कियौ । ४. मो. नृत्त, द. म. उ. स. त्रित्य (त्रित-म., त्रत्य-स) । ५. म. तितंबन, ना. नितंबनि । ६. धा. नित्त, मो. नृत्त, भा. ना. द. म. उ. स. नित्त ।

टिप्पणी—(१) तत्त < तत्त्व । मंतु < मंत्र । वित्त < वृत्त=चरित्र, आचरण । (२) नित्त < नित्य । नृत्त < नृत्य ।

[३६]

साटक⁺—^१दीपकांगी^२ नेत्र चंगी^३ कुरंगी । (१)
कोकाच्छी^{०१} कोकिला^{०२} रागवे^३ भागवानी^४ । (२)

अंगोले^१ लोल^२ डोलं एक बोलं अमोलं^३।^४(३)
पुष्पांजलि^१पंग सिर^२णाइ जयति बिध^३कामदेव॥^४(४)

अर्थ—(१) [उन नितंबिनी नर्तकियाँ में कोई] दीपक के [लौ जैसी] अंगवालो, और [कोई] कुरंगिनी के [से] अच्छे नेत्रों वाली थी; (२) [कोई] चक्रवाक के [से] नेत्रों वाली, और [कोई] भाग्य वाली कोकिला [सी] रागवती थी। (३) उनकी अंगूठियाँ [उनकी घूमती-फिरती उगलियों के साथ] चपलतापूर्वक डोल (फिर) रही थीं और [उनके मुखों में] एक ही अमूल्य बोल था : (४) पंग (जयचंद) के सिर पर पुष्पांजलि डाल कर [वे कह रही थीं,] “हे द्वितीय कामदेव, तुम्हारी जय हो !”

पाठान्तर—० चिह्नित शब्द मो. में नहीं हैं।

+ चिह्नित शब्द अ. फ. में नहीं है। इसके स्थान पर धा. में ‘वार्त्ता’ है।

(१) १. धा. ना. द. पात्र नाम, मो. पात्रनमा। २. धा. अ. फ. दर्पकांगी, द. ना. दीपकगी। ३. धा. नेत्रचगी, अ. फ. नेत्रवगी।

(२) धा. ना. कोकाक्षी, अ. फ. कोकाछिछ, द. कोकाषी। २. धा. कोकिला, अ. द. ना. कोकिलानी, फ. ककिलानी। ३. धा. रागमे, अ. द. ना. रागमे, फ. रंगमे। ४. ना. भोगवानी।

(३) १. धा. अगाल। २. द. लाल। ३. धा. एक बोल अमोल। ४. मो. में यहाँ और है:

पुष्पांजली कर मडीत सोही घर दूढत विअकितीय दाय।

(४) १. मो. पुष्पांजलि, द. पुहपांजली, अ. पडुपजुलि, फ. पुष्फजल, ना. पुहपांज। २. द. सुभग रागही, ना. सुभग वीना। ३. धा. जयति पिय, अ. फ. जयति तुव, ना. जैत वीय, द. जयति विय। ४. म. उ. स. में संपूर्ण छंद इस प्रकार है :—

दापांगी चन्द्रनेत्रा नलिन अलि मिली नैन रंगी कुरगी।

कोकाषी दीर्घनासा सुरसरि (सुसर—उ. स.) कलिरवा नारिगी (नारिद—म.) सारदगी।

इन्द्रानो लोल डोला चपल मति धरा एक बोली अमोली।

पूहपा (दूहपा—म.) बाना बिसाला सुभग (सुभ—म.) गिरवरा जैत रंभा सु बोली॥

टिप्पणी—(१) चग [देशज]=सुदर, मनोहर, रम्य। (२) अछि < अक्षि=आँख। रागवे < रागवइ < रागवती। (३) अंगोले < अंगुलीयक=अंगूठी। (४) पुष्पांजलि < पुष्पांजलि। विअ < द्वितीय।

प्रस्तावना में दिए हुए कारणों से इस छंद के अनंतर द. के पाठ का मिलान नहीं किया जा सका है।

[३७]

दोहरा—पुष्पांजलि^१ सिर मंडि प्रभु^२ फिरि लग्गी गुर^३ पाय^४। (१)
तरुनि^१ तार सुर^२ धरिय चित^३ अब^४ धरणि^५ निरषिय चाय^६॥ (२)

अर्थ—(१) आने प्रभु—जयचंद—के सिर को पुष्पांजलि से मंडित कर वे फिर गुरु के पैरों लगें। (२) उन तरुणियों ने लाल-स्वर चित्त में धारण किए, और अब वे [नृत्य प्रारंभ करने के लिए] चाव (उत्साह) से धरणी की ओर निरखने—देखने—लगी।

पाठान्तर—(१) १. मो. पुष्पांजलि, फ. पुष्फजल, अ. पडुपंजुलि, म. उ. स. पडुपंजलि, ना. पुहपांजलि। २. मो. अ. फ. सिर (सिर—फ.) मंडि (मंड—फ.) प्रभु, म. ना. उ. स. दिसि वाम कर

(करि—म. ना.) । ३. मो. धा गुरु लग्गी फिरि (फिर—मो.), म. फिरि लगा गुरु । ४. धा. वाइ, ना. उ. स. अ. फ. पाइ ।

(२) १. मो. तरुणी, फ. तरुन । २. मो. तार सुर, अ. रात सुर । ३. फ. धर पवित, म. धरि पवित । ४. मो. के अतिरिक्त यह शब्द किसी प्रति में नहीं है । ५. धा. धरिनि, फ. रधनु, म. धरनि, उ. धारनि । ६. मो. निरष्णो, उ. निष्णिय । ७. धा. उ. स. अ. फ. चाइ ।

टिप्पणी—(२) तार < ताल । सुर < स्वर ।

[३८]

नाराच—^१ततत्तथेइ^० ततत्तथेइ^० ततत्तथेइ^{०२} सु मंडियं । (१)
^२थथुगथेइ^२ थथुगथेइ^२ विराम काम डंडियं^२ ॥ (२)
^३सरीगमप्यधनिघा^३ धुनं^३ धुनं^३ ति रषियं^३ । (३)
^४भवंति जोति^४ अंग^४ तान^४ अंगु अंगु लषियं^४ ॥ (४)
^५कला कला^५ सु मेद मेद⁺ मेदनं^५ मनं मन^५ । (५)
^६रणांकि भंकि^६ नूपुरं^६ बुलंति जे^६ फनंफनं^६ ॥ (६)
^७घमंडि थार^७ घंटिका^७ भवंति^७ मेष लेषयो^७ । (७)
^८फुटित्त पुत्त^८ केम पास पीत साह^८ रेषयो ॥ (८)
^९जति गतिस्सु^९ तारया^९ कटिस्सु मेद^९ कट्टरी^९ । (९)
^{१०}कुसंम सार^{१०} आवधं^{१०} कुसंम सार उड्ड^{१०} नट्टरी^{१०} ॥ (१०)
^{११}उरप्परंभ^{११} मेष रेष^{११} सेषर^{११} करक्कसं^{११} । (११)
^{१२}तिरप्पि^{१२} तिष्प^{१२} सिष्पयो सुदेस^{१२} दक्खिनं^{१२} दिसं ॥ (१२)
^{१३}सुरं ति^{१३} संग गीतने^{१३} धरंति सासने धुने । (१३)
^{१४}जमाय^{१४} जोग कट्टरी^{१४} त्रिविध^{१४} नंच संचने^{१४} ॥ (१४)
^{१५}उलट्टि^{१५} पलट्टि नट्टने^{१५} फिरिक्कि^{१५} चक्कि चाहने^{१५} । (१५)
^{१६}निरत्तने^{१६} निरप्पि^{१६} जानु^{१६} बंभ पुत्ति वाहने^{१६} ॥ (१६)
^{१७}विसेष देस ध्रुप्पदं^{१७} पदं वदंन रागयो^{१७} । (१७)
^{१८}चक्रमेष^{१८} चक्रवृत्ति⁺२ वालि ता विसाजयो^{१८} ॥ (१८)
^{१९}उरध्व मुध्व^{१९} मंडली अरोह रोह^{१९} चालिन^{१९} । (१९)
^{२०}ग्रहति मुत्ति दुत्तिमा^{२०} मनुं^{२०} मराल मालिनं^{२०} ॥ (२०)
^{२१}प्रवीण वाणि^{२१} अध्वरी^{२१} मुनिद्र मुद्र^{२१} कुंडली^{२१} । (२१)
^{२२}प्रतिष्प मेष उध्वरउ^{*१} सु भोमि लो अषंडली^{२२} ॥ (२२)
^{२३}तलत्तलस्सुतालिता^{२३} मृदंग धुक्कने धुने^{२३} । (२३)
^{२४}अपा अपा^{२४} भण्ति मे अपंति^{२४} जानि^{२४} योजने^{२४} ॥ (२४)
^{२५}अलष लष[×] लषने^{०१} नयनं^० वयन्न^{२५} भूषने^{२५} । (२५)
^{२६}नरे नरे^१ नरिद मां स^{२६} मेस काम सुष्पने^{२६} ॥ (२६)

अर्थ—(१) [उन नर्तकियों ने] 'ततत्तयेइ', 'ततत्तयेइ' मॉढा (विधिपूर्वक किया), (२) [तदनन्तर] 'यथुगथेइ', 'यथुगथेइ' करके काम [के अन्तर्गत] विराम को दडित किया । (३) उन्होंने 'स रि ग म प ध नी' आदि ध्वनियों को रक्खा—प्रस्तुत किया । (४) तानों के जो अंग होते हैं, वे [उनके] भ्रमित होते समय ज्योति बन कर [उनके] अङ्ग-अङ्ग में दिखाई पड़ने लगे । (५) कला-कला (नृत्य-संगीतादि) के भेद-प्रभेद दर्शकों के मन को भेदने लगे । (६) उनके नूपुर रणंकार और झंकार करके 'झनझन' बोलने लगे । (७) [उनकी कटि में लगी हुई] थार (कोंसे) की, घंटियाँ [उनके नाचने से] घूमड़ने—शब्द करने—लगीं, और उनकी वेष-लेखा भी भ्रमित होने—चक्रावतित होने लगी । (८) उनके लहराते और खुले हुए [सुनहले?] केश पाश श्लाघ्य पीत रेखा [निर्मित करते] थे । (९) यति, गति, और ताल के भेद वे कटि से काटने (कुशलतापूर्वक इगित करने) लगीं । (१०) कुसुम-शर (कामदेव) के आयुध के सदृश कुसुंभी साड़ी पहने हुए वे ओङ् (उड़ीसा के) नृत्य करने लगीं । (११) [तदनन्तर] उर (हृदय) से मेष-लेखा को लगाकर और कल शेखर (चंद्रिका—शिरोभूषण) को कसकर (१२) तिरप की तीक्ष्ण (गति युक्त) शिक्षा (कला) प्रदर्शित करती हुई उन्होंने सुन्दर दक्षिण [का नृत्य] दिखाया । (१३) स्वरों के साथ गीत [प्रस्तुत] करने में वे ध्वनियों का शासन धारण करती (मानती) थीं, (१४) और योग की काटे (कौशलपूर्ण क्रियाएँ) प्रदर्शित कर वे त्रिविध नृत्यो का संपादन कर रही थीं । (१५) वे उलटे-पलटे नृत्य करती हुई फिरकी की भाँति धूम कर चकित दृष्टि से देखती थीं । (१६) नर्तन में निरत वे ऐसी दीखती थीं मानो ब्रह्मपुत्री (सरस्वती) का वाहन (मयूर) हों । (१७) विशेष देशों के तथा घुवपद रागो को कहती हुई (१८) वे बालाएँ चक्रवाक का वेष और चक्रवाक की वृत्ति विशेष रूप से साज (?) रही थी । (१९) वह मुग्धा मंडली ऊर्ध्व आरोह में चलकर जब [अव—] रोह में चलती थी, (२०) तो वह ऐसी लगती थी मानो मराल-माला द्युतिपूर्ण मुक्ता-माला ग्रहण कर (चुग) रही हो । (२१) वे प्रवीणा की वाणी का आधार लेती हुई जब मुनीन्द्रों की मुद्रा और कुडली का प्रदर्शन करती थीं, (२२) तो ऐसा लगता था मानो भूमि पर इन्द्र का [स्वर्गीय] वेष प्रत्यक्ष उद्धृत हुआ (उतरा) हो । (२३) मृदग जब 'तलत्तलत' की तालयुक्त सुन्दर ध्वनि कर रहा था, (२४) [उसके साथ] 'अपा अपा' कहती हुई वे ऐसी हो रही थीं मानों वे आत्म-योग में लग रही हों । (२५) अलक्ष्य और लक्ष्य लक्षणों तथा नयन, वचन और आभूषणों से (२६) वे नर-नर में और नरेन्द्र (जयचन्द) में काम-सुख का [उन्—] मेष कर रही थीं ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है ।

० चिह्नित शब्द धा. में नहीं है ।

‡ चिह्नित शब्द मो. म. उ. तथा स. में नहीं है ।

+ चिह्नित शब्द अ. फ. में नहीं है ।

× चिह्नित शब्द ना. में नहीं है ।

(१) १ म उ. स. में यहाँ और है: (स. पाठ) :—

उअ अलाप मद्धिता सुरं सुग्राम पचमं ।

षडंग तप्प मूरछं मनुं तमान संचमं ।

निसग थारत्तं अलप्य जाप ते प्रसंसई ।

दरस्सभाव नूपुरं इतन्न तान नेतई ।

सुरं सपन्न तन्न कंठ वोधि राग साभरं ।

हहा हुहु निरषितार रंभ चित्ताहरं ।

२. धा. ततंग'..... मो. ततत थेई ततत थेई तततथे, अ. तत्तथे ततत्तथे ततत्तथे, फ. तत्तथे

तत्तथे तत्तथे, ना. तत्तथेई थेई थेई, म. तत्तथेई तत्तथेई तत्तथेई, उ. स. तत्तथेई तत्तथेई तत्तथे ।

(२) मो. थथुंगथेय थथुगथेय, धा. तथुं गथु थे, ना. थथुंगथे, अ. तथु गथु गथु गथे, फ. तथु वुथुं गथु गथे, म. थथु गथुं गथु गथे, उ. थथु गथुं गथे, स. थथु गथुं गथु गथे । २. ना. म. उ. स. विराम काम मडय (मंडियं-म. ना.), अ. फ. विराग काम डडिय ।

(३) १. म. सरगमय धुंनिधी, धा. ना. सरगमपि धन्निधी (धन्निधा-धा) । २. मो. धनु धनु, धा. धनिधनी, अ. फ. धनुद्धनि, ना. धनधुन । ३. ना. अ. निरणीय ।

(४) १. मो. फ. योति (=जोति) । २. मो. अगि, शेष सब में 'अग' । ३. धा. फ. तानु, म. उ. स. मानु । ४. मो. लपिय ।

(५) १. धा. अ. फ. ना. कलकला, म. उ. स. कलकल । २. म. उ. स. सुसत्थन सुभेदन (सुभादनं-म.) । ३. धा. मतं ।

(६) १. मो. डकि । २. धा. नोपुरं । ३. धा. अ. फ. बुलति ते, मो. बोलति जे, ना. म. उ. स. बुलत झं (झे-ना. म.) । ४. अ. रनं जन, फ. रुभ जन ।

(७) १. धा. धार, अ. फ. धार, ना. धारु । २. मो. धा. अ. फ. घुटिका । ३. म. ममत, उ. स. ममंति । ४. मो. म. ना. उ. स. रेषयो ।

(८) १. धा. तुटित्त खुत्त, अ. फ. तडित्त जुत्त (युत्त-फ.), ना. म. उ. स. जुटति (जुटंत-म.) बुंठ (षट-उ, पुटि-म.) । २. धा. अ. फ. ना. उ. स. स्याह ।

(९) १. धा. जातिगतिस्सु, उ. स. लजति गत्ति, ना. जगत्ति गत्ति, म. लजति नग । २. अ. तारयो, फ. तारयौ, ना. नारया । ३. धा. अ. फ. करिस्सुभेद (करिस्सभेद-फ.), ना. कटिसु भेट, म. उ. स. कटि प्रमान । ४. म. उ. स. कटरी, अ. फ. सुंदरी ।

(१०) १. धा. कुसम्ह सार, ना. कुसंमतार । २. मो. थ । ३. मो. कुसंम सौर उड, धा. कुसम्ह उड्ड, अ. फ. कुसम्ह (कुसुभ-अ.) उड, ना. कुसम्म षोल । ४. ना. म. उ. स. नंदरी, अ. फ. नंदरी ।

(११) १. मो. उरपरिभ, धा. अरप्परंभ, अ. उरप्परंभ, फ. उरुप्परंभ, उ. स. उरपरंभ, म. उरमयात । २. म. याम तेष । ३. धा. सेषफ करकस, मो. सेषकंकरकस, ना. सेषरं करे कस, म. सेषरं कसं कस, उ. स. सेषर कर कस, अ. फ. सेष किंकिनी कस ।

(१२) १. धा. अ. फ. तिरप्प (तिरुप्प-फ.), मो. तरप्पि, ना. निरुप्प, म. निरप्पि । २. म. तीय । ३. मो. देद । ४. मो. दक्षिर्न (= दक्खिर्न), धा. अ. फ. दक्खिन, म. उ. स. दक्खिन, ना. दध्यनं ।

(१३) १. मो. म. ना. सुरत्ति (< सुरंति), धा. दिसादि । अ. फ. सुरादि, २. अ. गोवने, ना. गावने, म. गावनो । ३. धा. सासन धमं, मो. सासने धने, अ. फ. सासने धनी, ना. सासने धने ।

(१४) १. अ. फ. लजाह । २. मो. कठरि, अ. फ. कट्टनी । ३. अ. विविद्धि । ४. धा. नव संचन; ना. नत्र सचने, अ. नच सचनी, फ. नेव सेवनी, म. नंच संपने । ५. म. उ. स. में यहाँ और है—केवल कोष्ठकों के अन्तर्गत अंश म. में नहीं है—(स. पाठ) :—

तिरप्पि लेत पातुरं सुचातुरं दिषावहीं ।

कै अठ्ठ ग्रेह बीय चद भौर कै अमावहीं ।

छत्तीस राग बधि [तार बाल ता बजावहीं ।

सुक्रम तारधी मृदंग चित्त बंध] सचरं ।

विरम्म काम धूव बधि चन्द्र धूव उच्चरं ।

समीप रथ्य भेद्यौ जुचित्त चित्त चोरई ।

अनेक भांति चातुरी जु मन्न मेर डोरई ।

सिंगार ते कलेवर परस्सि उम्म रावके ।

सिंगार सोभ पातुरं कि चातुरं सिंगार के ।

(१५) १. ना. तुळट्ट । २. धा. पट्टि नट्टन, अ. फ. पट्टि नट्टिनी, ना. पट्ट नच्चने, म. पटि नाचयो ।

३. मो. करकि, म. फिरंकि, स. फिरदि । ४. धा. चाहन, अ. चाहनी, फ. बाहनी, म. उ. स. चाहनी, ना. बाहने ।

(१६) १. धा. अ. फ. निरत्ततै, म. निरत्तितै, म. उ. स. निरत्तिने (निरत्तिने-म.) । २. म. उ. स. नराषि । ३. मो. जान, अ. ना. म. उ. स. जानि । ४. मो. ना. ब्रह्मपुत्र बाहने, धा. बंभ जुत्त बाहन, अ. बंभ पुत्त बाहनी, फ. बंभ मुत्ति बाहनी, म. उ. स. बभ पुत्ति बाहनौ ।

(१७) १. धा. ध्रुप्पदं वदं वदन्न राजयो, अ. ध्रुप्पदं वदन्न चंद्र राजयो, फ. ध्रुप्पदं वदत्त चंद्र राजयो, ना. द्रूपद वदं वदन्न राजयो, म. द्रूपदे वदन्न दैन राजयो ।

(१८) १. मो. चक्रमेष, अ. फ. सुक्रमेष, शेष में 'सु चक्रमेष' । २. मो. धा. चक्रवर्त्ति, म. चक्रवर्त्ति, ना. चक्रवर्त्ति । ३. धा. वालिगा विसाजयो, मो. वालिना विसादयो, म. अ. फ. वालता विसाजयो, ना. वालना विसाजयो ।

(१९) १. मो. मुष । २. अ. फ. अरोहि रोहि । ३. ना. चालनं ।

(२०) १. धा. ग्रहंन मुत्ति वत्तिमा, ना. ग्रहंति मुत्ति दुत्तिमी, म. ग्रहति मुत्ति दुत्तिमाल, अ. फ. ग्रहंति (गृहति) मुत्ति उत्तिमा । २. मो. ना. मनु (=मनउ) फ. ग्गनौ, शेष में 'मनो' या 'मनौ' । ३. ना. फ. बालनं ।

(२१) १. मो. प्रवाण वाण, अ. फ. प्रवीण वाण, ना. म. उ. स. प्रवीण वान । २. धा. अंधरी, अ. फ. अद्धर, ना. म. उद्धरी, स. उद्धर । ३. धा. मनिद्र मडु, अ. फ. सु विद्रमति (विद्रमंति-फ.) । ४. फ. कुडला ।

(२२) १. मो. प्रतिष्वमेष उधरु (=उधरउ), धा. ना. प्रतच्छ (प्रत्यथ्य-ना.) मेषयो धस्यो (धस्यौ-ना.), फ. प्रतक्ष मेषयौ धरयौ, अ. प्रतच्छि मेषयो धरयो, म. उ. स. प्रतष्वि (प्रतष-म.) मेष उद्धरयौ । २. मो. शु भोमिलो यषंडली, धा. अ. फ. सु भूमि लो अषंडली (अषंडला-फ.), ना. उ. स. सु भुम्भि (भूमि-ना.) लोइ षंडली, म. सुभूमि लोपि षंडली ।

(२३) १. धा. तलत्तलस् सुतालिना, अ. तलत्तलस्सुतालता, फ. भलनलतल सुतालिन, उ. तलं तलं सुना, स. तल तल सुतालता, म. तल सल सुतालता । २. मो. धूकने धुने, धा. धकने धने, अ. धुकनो धुने, फ. धुकनो धने, उ. स. धुकने धने, म. धुकने धमै ।

(२४) १. मो. अपु अपु, शेष में 'अपा अपा' । २. धा. जुपति, म. जपंत, अ. फ. ना. जपति । ३. मो. यानि, धा. अ. फ. ना. जान । ४. म. ज्यों जमै, उ. स. ज्यों जने, अ. फ. योजने ।

(२५) १. म. उ. स. अलाष लाष लाषने । २. धा. अ. फ. ना. बेन, म. उ. स. बेन (बन-म.) । ३. धा. भूषने ।

(२६) १. धा. नरे जुरे नरिंद मास, मो. नरे नरेंद (< नरिंद) मास, फ. नरे नरे नरिंद सास, ना. नरे नरे नरिंद मां सुमेम, म. उ. स. नरे नरिंद मास मेस । २. धा. मो. जेव काम सुष्वने (सुष्वन-धा.), अ. फ. सेव काम सुष्वने ।

टिप्पणी—(८) झुटित [दे.] = प्रवाहित । पुत्त < क्षित (१) = निमग्न, डूबा हुआ । साह < इलाध्य । (१०) उड्ड < ओड् । (११) परंभ < प्ररंभ । (१४) यन्=प्रदर्शित करना । (२२) अखंडल < आखंडल=इंद्र । (२४) अप < आत्म । (२५) अलष < अलस्य । लष < लक्ष्य ।

[३६]

दोहरा— जाम एक वनदा घटित^१ ससिहू सत्ति^२ निवारि^३ । (१)

कहुं^४ कामिनि^५ सुख रति समर^६ नृपतिहु^७ नींद बिसारि^८ ॥ (२)

अर्थ—(१) एक प्रहर रात्रि [जब] समाप्त हो गई, और शशि ने भी अपनी शक्ति का निवारण किया, (२) कहीं पर कामिनी के सुख-रति-समर में नृपति (जयचंद) ने भी नींद भुला दी ।

पाठांतर—(१) १. मो. याम (= जाम) एक दक्कड़ घटित, धा. जाम एक छनि रास घटि, अ. फ. जाम एक छिनदाछ (छिनदय-फ.) घट, ना. जाम एक षिनदा छनिद, स. जाम एक षिन दछिन घट, म. जाम एक छिनदा निघट, उ. जाम एक छिन छिन घट । २. धा. अ. सत्तिहु सत्ति, फ. सातिहु सत्त, ना. सतमी सत्त, म. उ. स. सत्तमि सत्त । ३. धा. नवारि, म. उ. स. निवार ।

(२) १. धा. अ. फ. किहु (किहु-वा.) ना. कहौ (< कहु), स. कहु । २. ना. कामनि । ३. म. सिपर । ४. धा. अ. फ. ना. म. उ. स. त्रिप निय । ५. मो. मा. ना. उ. स. नाद निवारि (निवार-म.), अ. फ. नीय विसरि ।

टिप्पणी—(१) छनदा < क्षणदा । सत्ति < शक्ति ।

[४०]

साटिका—सुख सुख मृदंग^१ तार^२ जघनो^३ राग^४ कला कोकनं^५ । (१)
कठी^१ कंठ सुभासनं+ समझतं+^२ कामं+^३ कला+पोषनं+ । (२)
उर+ भी+ रंभ+ किता^३ गुणं हरिहरो^२ सुरभीय पवनापिता^३ । (३)
एवं^१ सुष सकाम^२ कुंभ गहिता^३ जयराज^४ रात्रि^५ गता ॥ (४)

अर्थ—(१) [रति-] सुख में [संगीत-] सुख का, [कामिनी के] जघनों (नितंबों) में मृदंग के ताल का, कोक-कला में राग-कला का, (२) [कामिनी के] कंठ में [गायिकाओं के] कंठ का, यहाँ [कामिनी के] सुभाषण में [गायिकाओं के] सुभाषण का, [इस प्रकार जयचंद ने] काम-कला में [संगीत-] कला का पोषण किया । (३) [उसने] पुनः [कामिनी के] उर से [परि-] रंभण करते हुए [रात्रि के अंतिम पहर में मानो] हरि और हर के गुणों से [रंभण] किया, और निःश्वस-सुरभि को [देवार्पित सुरभि के समान] पवनार्पित किया । (४) इस प्रकार सुख-पूर्वक काम-कुंभों (कुचों) का ग्रहण किए हुए राजा जयचंद की रात्रि व्यतीत हुई ।

पाठान्तर— + चिह्नित शब्द अ. फ. में नहीं हैं ।

(१) १. धा. अ. फ. ना. उ. स. त्रिदंग, मो. मृदंग, म. डदंग (< मृदंग) । २. म. अ. फ. ताल, उ. स. तल । ३. मो. जघनो, धा. जयने, अ. जपनो, फ. जपुतो, ना. जघना, म. उ. स. जघनं । ४. मो. राज्यं । ५. धा. ना. कोकिल, म. कहत ।

(२) १. म. कंती, अ. फ. कंठ । २. धा. सुवासिन मनयितं, मो. सुभासनं ममहतं, म. उ. स. सुभासने समजितं, ना. सुभासने ममजितं । ३. मो. कांतं ।

(३) १. धा. उभोरभ पिता । २. मो. म. उ. स. हरिहरो, धा. हरिहरी । ३. धा. सुभीय चवना पता, मो. सुरभीय पवनापतो, अ. फ. सुभीय पवनापिता, ना. म. उ. स. सुरभीय (सुरभी अ-म) पवनं पता ।

(४) १. धा. अ. फ. ए मइ । २. धा. सुख सुखाइ, ना. सुष सुकाम, म. उ. स. सुषह काम, अ. फ. सुष सुहाय । ३. मो. कुं गहिता, धा. तार सहिता, ना. कुच कुंभ गहिता, अ. फ. कुंभ महिता ।

४. धा. जै राय, ना. जैराइ, अ. फ. राजाय, म. जषराज । ५. मो. म. उ. स. रात्रं, धा. अ. फ. रात्र्यं ।
टिप्पणी—(१) मदंग < मृङ्ग । तार < ताल ।

[४१]

साटिका—कांती भार पुरा^१ पुनर्मद गज^२ शाखा न गंडस्थलं^३ । (१)
उच्छ^४ तुच्छ तुरा^५ स^६ शशि^७ कमनं^८ करि^९ कुंभ^{१०} निद्रादलं^{११} । (२)
मधुरे^{१२} साइ^{१३} सकाइता^{१४} अलि^{१५} कुलं^{१६} गुंजार गुंजा तहा^{१७} । (३)
तरुणे^{१८} प्राण लटापटा पग पग^{१९} जयराज संप्रापता^{२०} ॥ (४)

अर्थ—(१) कांति-भार से पूरित और मद गज [के समान मकरन्द चुवाती हुई] यह [पुष्प-तरु की] शाखा है न कि [मद-विन्दु गिराती हुई मद गज की] गंडस्थली है, (२) यह ओछा—नीचे जाने वाला—तुच्छ शशि है, जो त्वरा के साथ क्रमण (गमन) कर रहा है और जो हाथी के निर्घाटित (निकाले हुए) कुंभ जैसा है; (३) उसी प्रकार यह अत्यंत शंकित मधुकर-कुल है जो कि [गजों के मदगव से आकृष्ट अलि-कुल की भाँति] मधुर गुंजार कर रहा है; (४) [ऐसी उन्मत्ता-कारिणी प्रातःकाल की बेला में] तरुण प्राणो वाला, किन्तु [रात्रि में जगे रहने के कारण] लट-पट पग रखता हुआ, राजा जयचंद संप्राप्त हुआ—आ पहुँचा ।

पाठान्तर—+चिह्नित शब्द फ. में नहीं हैं ।

(१) १. धा. मो. कांता भार पुरा, अ. कांती भार पुरा, ना. कानो भारपुराण । २. मो. पुन मदि गज, धा. अ. फ. पुनर्मदगजे (पुनरमद गज—धा.), म. उ. स. नयौ (नयो—म.) विंगलिता । ३. अ. फ. गडस्थली, ना. गड्लच्छनं, मो. म. उ. स. गड्लस्थल (गड्लस्थलं—म.) ।

(२) १. धा. उच्छं, शेष सभी में 'तुच्छ', २. धा. पुष्प कानलं, मो. शसि कमल, अ. फ. पुष्प कमलं, ना. लग्गि कमलं, म. उ. स. लग्गि कमनं । ३. मो. में 'करि', शेष सभी में 'कलि' । ४. मो. निद्रादलं, उ. स. निद्रादल, ना. निद्रादलं, म. निद्रादल ।

(३) १. मो. मधुरे शक शका सकं अलिकुल, धा. मधुरे साय सकाय कुभ रसिता, म. उ. स. मधुरे (मधुरे-म.) माधुरयासि (स-म.) अलि अलिनं, अ. मधुरे सास सकाइता अलिकुल, फ.—लं, ना. मधुरे माधुरयासि दलनी अलिभरा । २. धा. गुंजार गुजारया, अ. फ. गुंजार गुंजारवं, म. अलि भौर गुजारया, उ. स. अलिभार गुजारया, ना. गुंजार गुंजातया ।

(४) १. अ. फ. तन्ये, म. तहन । २. धा. लटा पटप्पगयरा, अ. फ. लटा पट पग पगः, ना. लटा लट पग, म. उ. स. लटीय पग जजिया । ३. मो. जयराज रात्र गतं, धा. जइराय संप्राप्तिं, अ. फ. जैराइ संप्रापता, ना. जैराइ संप्रापिता, म. उ. स. रात्रंगता सांप्रतं (सप्रति—म.)

टिप्पणी—(२) उच्छ < तुच्छ=ओछा । तुरा < त्वरा । कमन < क्रमण । निद्रादलं < निद्रादियं < निर्घाटित=निष्कासित । (३) साइ < सानि=अत्यंत । तहा < तथा ।

[४२]

दोहरा—प्राति^१ राउ^२ संप्रापतिग^३ जहां^४ दर देव^५ अनूप । (१)
सयल^६ करइ^७ दरबार जिहि^८ सत्त^९ सहस अस^{१०} भूप ॥ (२)

अर्थ—(१) प्रातः राजा (जयचंद) वहाँ पर संप्राप्त हुआ—पहुँचा—जहाँ पर [उसका] अनुमप

देव [तुल्य] दल था । (२) वह ऐसा भूपति था कि समस्त सात सहस्र [सामत ?] जिसका दरबार करते थे ।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ का है ।

(१) धा. फ. म में 'प्राति' शेष में 'प्रात' । २. म. उ. स. राव । ३. धा. सपरपतिग, ना सप्रापतिन । ४. मो. जाहा, धा. जह, अ. फ. म. उ. स. जाह (जह—ना.) । ५ फ. देउ । ६. मो. अनूप (=अनूप), शेष में 'अनूप' ।

(२) १. धा. सयल, शेष सब में 'सयन' । २. मो. करि (=करइ), धा. अ. म. उ. स करहि, (करहि—धा.) फ. करे, ना. करे । ३. धा. जखि, अ. फ. जह, उ. स. तह, म. तहा, ना. तह । ४. धा. मो. अ. फ. सात, ना. म. उ. स. सत्त । ५. मो. अस, धा. फ. जिहि, अ. जह ।

टिप्पणी—(१) दर < दल । (२) सयल < सकल ।

[४३]

दोहरा— मिसि^१ बज्जहि^२ गंगह रवनि^३ दान^० कवि^० पति^० सेइ^४ । (१)

चढित^१ सुषासन समुह^{*} हुअ^२ सब^३ सामंत^४ समेव^{*५} ॥ (२)

अर्थ—(१) वाद्यों के मिष (व्याज से) रमणीय गंगा की सेवा करके दान और कवियों का पति (जयचन्द) (२) सुषासन पर चढ़ कर सब सामंतों के समेत समुहाया (सम्मुख निकल पड़ा) ।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

० धा. में चिह्नित शब्द छूटे हुए हैं ।

(१) १ धा. ना. निसु, म. अ. फ. मिस । २. धा. वाजव, फ. वज्जिह । ३. धा. अ. फ. गंगा (गंगा—अ. फ.) नदिव, मो. गगह रचनि, उ. स. गंगावरन, म. गगा रवन । ४. धा. मोह, अ. फ. कनि पति भूत (भूति—अ.) मूह (समूह—फ.), मो. दान कवि पति सोइ, म. ना. उ. स. दान कवि (कविस —म., कवी—ना. स.) पति सेव ।

(२) १. उ. स. अ. फ. चढत, म. चढ । २. मो. सुषासन समह (= समुह ?) हुअ, धा. सुषासन समुहो, अ. फ. म. उ. सुषासन समुहो, ना. सुषासन समुहे । ३. धा. जहि, अ. फ. ना. उ. स. जहं, म. जहाँ । ४. अ. फ. सावंत । ५. धा. समोह, मो. समेत, म. ना. उ. स. नृपेव, अ. फ. समूह ।

टिप्पणी—(१) रवनि < रमणीय । (२) समेव < समेअ < समेत ।

[४४]

दोहरा— दस हथिय^१ मुत्तिअ सघन^२ सत तुरंग जिति भाय^३ । (१)

दवु^१ सरस^२ बहु^३ संगि^४ लिय भट्ट समष्ण^५ जाय^६ ॥ (२)

अर्थ—दस हाथी, सघन (बहुत से) मोती, सौ घोड़े, जो जितने भी भाव (रूप-रंग) के हो सकते थे, (२) तथा बहुत-सा सरस (सुंदर) द्रव्य संग में लेकर भट्ट (चंद) की समक्षा में [जयचंद] चल पड़ा ।

पाठांतर—(१) १. म. उ. स. तीस करिय (करी-म उ.) । २. धा. सयनु, मो. सधन, फ. सधनु । ३. धा. साव तुरग पट भाइ, ना. शत तुरंग जिति भाइ, फ. सत्त तुरग बौहु भाउ, अ. सत तुरंग बहु भाइ, उ. स. दू से (स-उ.) तुरग बनाय, म. दू से चपल तुरग ।

(२) १. मो. द्रव्य, धा. द्रव्व, अ. फ. दब्ब, (दब्बु-अ.) ना. दिव्य । २. धा. दरिस, अ. फ. दरस (दरसु-अ.), उ. स. बदर, म. दरक, ना. सर्व । ३. फ. बौहु, ना. तिहि । ४. मो. सग, म. सगि, शेष में 'संग' । ५. मो. भट्टममप्पण, ना. भट्टन समप्पन, उ. स. भट्ट समप्पन, म. भट्ट सपन चलि । ६. धा. अ. फ. जाइ, मो. ताय, न. राइ, म. अग ।

टिप्पणी—(२) समप्प < समक्ष ।

[४५]

कवित्त— गयउ^१ राय मिलान^२ चंद बिरदिआ^{*३} समप्पन^४ । (१)

देवि^१ सिधासन ठयउ^{*५} इह त बिठइ^३ इंद^४ जन^५ । (२)

बहुत कियउ आलाप^१ आवु^२ कनवज्ज मुकट^३ मनि^४ । (३)

इह ढिल्लिअसुर^२ दत्त बियउ^{*२} नन कहू^३ तुम्भ गिनि^४ । (४)

थिरु रहहि^१ थवाइत वज्र कर^२ छंडि सकारह पिनुक रहि^३ । (५)

जिहि+^{०१} असी^{०२} लष्व^० पल्लागिइहि^{३०} तिहि^{*४} पान देहि दिठ हथ^४ गहि ॥ (६)

अर्थ—(१) राजा (जयचंद) [चंद के] मिलान (डेरे) को चंद बरदिया को समक्षता में गया, (२) [तो] वह सिधासन को देख कर रुक गया, [और उसने मन में कहा,] “यह तो मानो इंद बैठा है ।” (३) [चंद ने जयचंद से] बहुत आलाप (वार्तालाप) किया और कहा, “हे कन्नौज-मुकुटमणि, आओ । (४) यह दिल्लीश्वर (पृथ्वीराज) का दिया हुआ है, तुम किसी और का [दिया हुआ] कहीं न गिनो (समझो) ।” (५) [तदनंतर पृथ्वीराज से चंद ने कहा,] “हे ताम्बूल-वाहक, तू स्थिर रह (ठहर), और [अपने] वज्र कर को छोड़ कर एक क्षण [जयचंद के] सत्कार में रह । (६) जिसके असी लाख [घोड़े] पलाने (कवचादि से सुसज्जित किए) जाते हैं, उसे तू दृढ़ हाथों से ग्रहण कर पान दे ।”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

० चिह्नित शब्द धा. में नहीं हैं ।

+ चिह्नित शब्द अ. फ. में नहीं हैं ।

(१) १. मो. गयु, (=गयउ), धा. गयो, म. ना. उ. स. गयौ । २. धा. अ. फ. राय मिलान, ना. राइ मिलान, म. राव मेलान, उ. स. रावन मेल्हान । ३. धा. बरदिहइ, अ. बरदियइ, फ. बरदियहि, ना. बरदीए । रचना में अन्यत्र बिरदिया ही है, यथा: ३.२९, ४.१, ५.१९, १२.४०, ८.११, ८.१४ । ४. धा. ना. समप्पन (समप्पनु-ना.), म. समप्पन ।

(२) १. मो. म. उ. स. देवि, धा. अ. फ. दिक्खि, ना. दिव्य । २. मो. ठयु (=ठयउ), धा. ठयो, ना. म. ठयौ, स. सज्यो । ३. धा. अ. फ. इह जु (ज-फ.) वयठयउ (बैठौ-फ. ; धा. में अंतिम शब्द नहीं है), म. ना. उ. स. पास पारस्स (पारस-म.) । ४. धा. [इ] दु, ना. इडु, म. उ. स. अ. फ. इद्र । ५. म. उ. स. अ. फ. जनु (जन-म.) ।

(३) १. मो. बहुत कीउ (= कियउ) आलाप, अ. फ. बहुत कियउ (कियौ-फ.) आलापु, म. ना.

उ. स. कवि आदर बहु कियौ । २. फ. आउ, म. देषि, ना. कहै । ३. ना. मुगट । ४. फ. मण ।

(४) १. धा. ए तु दिल्लीसर । २. मो. बीयु (= बियउ), धा. दियो, शेष में 'बियौ' । ३. धा. तहि गिन्यो, अ. फ. नहि गनौ, उ. स. नहि गन, म. नहि गिनै, ना. नहि कहु । ४. धा. म. फ. गनि, अ. मनि, ना. गति ।

(५) १. धा. अ. फ. रहै, मो. रहिहि, म. रहे, ना. रहि (= रहइ) । २. धा. विजु कर, अ. फ. ना. थिरन यन । ३. धा. छंडित करिहि, मो. छंडि सीकारह धिनु परिही, अ. फ. ना. छंडि (छंड-फ.) सिकारहि (सकारहि-फ.) धिनकु रहि (रहि-ना., जिहि-अ., जिहुं-फ.), म. छंडि यकारह छिनक रहि ।

(६) १. अ. फ. में यह शब्द नहीं है । २. ना. असीउ । ३. अ. फ. म. ना. उ. स. पलानियहि । ४. मो. तिन, ना. तिहि, शेष में यह शब्द नहीं है । ५. फ. द्विथ ।

टिप्पणी—(१) समष्प < सम्क्ष । (२) ठय < स्थग् = रोकना, वद करना । (४) बिय < द्वितीय । (५) थवाइत < थइआइत < स्थगिकावत्=ताम्बूल-पात्र-वाहक । सकार < सकार < सत्कार ।

[४६]

दोहरा— सुनि तंबोल पठिय सुकर^१ बर उठि दिठिअ बंक^२ । (१)

मनु रोहनि सु यमुन^४ मिलिग^३ मनु^२ बिबि^३ उदित मयंक ॥ (२)

अर्थ—(१) [थवाइत (पृथ्वीराज) ने] 'ताम्बूल' [शब्द] सुनते ही अपना हाथ प्रस्थित (प्रकर्षपूर्वक स्थित) किया, और उठकर [जयचंद को] वक्र दृष्टि में देखा । (२) [यह ऐसा हुआ] मानो रोहिणी और यमुना मिल गई हों, अथवा [एक साथ] दो मृगाङ्ग (चंद्रमा) उदित हो गए हों ।

पाठांतर— × चिह्नित शब्द के द्वितीय तथा तृतीय अक्षर फ. में नहीं हैं ।

(१) मो. सुनत बोल पकार, धा. सुनि समूल सा पठि करि, अ. फ. सुनि तमूल सा पिठि किय, ना. सुनत बोल छडिय तुरग, म. उ. स. सुनि तमोर पठिय सुकर । २. धा. अ. फ. बर उठिय डिठि (दिठि-अ., दिठ-फ.) बक, ना. बर कर बर दिठ बंक, उ. स. बर मुष उत करि बको, म. मुष उन करि दिठ बक ।

(२) मो. मन मोहनि सु (= सउ) मन मिलिग, धा. मनो मोहनि सु मन मलिग, अ. मनु रोहिणी यमुन मिलग, फ. मनो रोहणिय मिलिग, म. मनौ रोहिन सुमहि, स. मनु रोहिनि सो मिलिगं, उ. मनु रहिनि सो मिन मिलिग, ना. मनु रोहिणि सुमन मिलिग । २. फ. नन, ना. ज्यु, उ. स. ज्यौ । ३. धा. नव, अ. फ. दुइ, म. ना. बीय ।

टिप्पणी—(१) पठिअ < प्रस्थित । दिठिअ < दृष्टि । बंक < वक्र । (२) बिबि < द्वय । मयंक < मृगाङ्ग ।

[४७]

दोहरा— भुअ बंकी^१ करि पंग^२ नृप अपिअ^३ हथि^४ तंमोर^५ । (१)

मनहु वज्रपति^१ वज्र धरि^२ सह अपिअ^३ तिहि जोर^३ ॥ (२)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज ने] भौहे बाँकी कर पंगराज (जयचंद) के हाथों में ताम्बूल अर्पित किया । (२) [उसका यह अर्पण करना ऐसा लगा] मानो वज्रपति (इंद्र) ने [हाथों में] वज्र धारण करके उसे जोर के साथ अर्पित किया हो ।

पाठांतर—(१) १. धा. अ. फ. भुव बंकीय, मो उ. स. भुव वकी, ना. भुह (= भौह) बंकीय, म. भौह वकी । २. म. ना उ. स. कीय पग (पशु-ना), अ. फ. कार वक । ३. मो अथीय, धा. अफिग । ४. धा. म. हथ, अ. फ. हथ, ना. अच्छि । ५. धा. तंबोल, म. ना. तबोर ।

(२) १. धा. वज्ज पति, शेष में, 'वज्र पति' । २. मो. वज्र धरि, अ. फ. वज्र गहि, धा. वज्ज गहि, ना. उ. स. वज्र धर म. वज्रधरि । ३. धा. सह पि यो सजोर, अ. फ. सहि अप्पियो (अफिफ्यो-अ.) सजोर, ना. सह अप्पौ तिहि जोर, म. उ. स. सब अप्पौ (अप्पौ-उ. स.) तिहि जोर ।

टिप्पणी (१) बंक < वक्र । तमोर < तांबूल । (२) जार < जार (१) ।

[४८]

कवित्त— पहिचानउ^{*१} जयचंद इह त^२ ढिल्लियसुर पिषै^३ । (१)
 नहिन^४ चंद उनहारि^५ दुसह दारुण तन दिषै^६ ॥ (२)
 करि सठउ^७ करि वार^८ कहइ^{*९} कनवज्ज मुकुट^{१०} मनि । (३)
 हय गयंद पषरउ^{११} भाजि^{१२} प्रथिराज^{१३} जाइ⁺ निनि^{*१४} । (४)
 इत्तनह^{*१५} कहत^{*१६} भुध्रपति[×] चढउ^{*१७} सुनत[×] सूर[×] किबउ^{*१८} न भउ[×] । (५)
 पारस्व मंडि प्रथिराज कउ^{*१९} कहइ^{*२०} भले^२ रजपूत सउ^३ ॥ (६)

अर्थ—(१) जयचंद ने [पृथ्वीराज को] पहचान लिया [और उसने कहा,] “यह तो दिल्लीश्वर दिखाई पड़ा रहा है यह तो । (२) चंद की [बताई हुई] उनहार का नहीं है और दुःसह दारुण तन का दीख रहा है ।” (३) “संगठन करके [इस पर] वार आघात करो,” कन्नौज मुकुट-मणि [जयचंद] ने कहा । (४) “घाड़ो और गजेद्रो को पाखरो—उनपर कवचादि डालो; पृथ्वीराज भाग न जावे !” (५) इतना कहते ही भूपति (जयचंद) ने चढाई कर दी, किन्तु [पृथ्वीराज के] शूरो ने भय नहीं माना । (६) वे पृथ्वीराज का पार्श्व मॉंड कर—उसके पार्श्व में स्थित हो कर—कहने लगे, “हम सौ रजपूत पर्याप्त हैं ।”

पाठांतर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

× चिह्नित शब्द म. में नहीं हैं ।

+ चिह्नित शब्द ना. में नहीं हैं ।

(१) १. मो. पहिचानु (= पहिचानउ), शेष में ‘पहिचान्य’ या ‘पहिचा यौ’ । २. धा. इह ति अ. ह. यह त । ३. मो. ना. ढिल्लिसुर, धा. दिल्लीसर म. उ. स. दिल्लेसुर । ४. धा. ना. फ. लक्ख्यौ, मो. पेषै (= पिषै), अ. लिषड. म. उ. स. लिष्यौ ।

(२) १. अ. फ. म. उ. स. नहीय । २. धा. चंद उनिहारि, फ. चंद उनिहार, ना. चंद अनुहारि, उ. स. चंड उनिहारि, म. चडौनहारि । ३. धा. फ. अति पिक्ख्यौ, मो. तव दिषै, ना. म. उ. स. तन दिष्यौ, अ. अति पिषड. ।

(३) १. मो. करि सुठ (= सुठउ), धा. करि संधिअ अ. करि सठहु, म. उ. करि सड्यौ, ना. कर सठौ, म. करि सड्यौ । २. फ. करवा, ना. करवार । ३. मो. कहि (= कहइ), धा. ना. म. कहै, फ. कही । ४. ना. कनवद्य । ५. म. मुकुट ।

(४) १. मो. हय गयद पषरु (= पषरउ), शेष समस्त में ‘हय गय दल पषरहु (पषरउ-धा., पषरहु < -फ.), । २. ना. भज्जि । ३. धा. प्रथिराज । ४. धा. जाइ जनि, म. उ. स. जाइ (जा-म) जिन, फ. जाइ जिनु ।

(५) १. मो. इतनि (= इत्तनइ) धा. इत्तनउ, अ. फ. इत्तनो, म. ना. उ. स. इत्तनौ । २. ना. म. उ. स. सोच । ३. मो. चडु (= चढउ), धा. उछ्यो, म. उ. स. उछ्यौ, अ. फ. ना. चळ्यौ (चर्च्यौ-फ.) । ४. मो. किनु (=किनउ) न भु (=भउ), धा. अ सुनि नरिंद किन्हों न भउ (किन्नौ न भौ-अ. कौनौ न भौ-फ.), ना. उठी रेणु अतक अछिन ।

(६) १. मो. पारस्व मंडि प्रथीराज कु (= कउ), धा. सावत सूर हसि राज स, अ. फ. सावत सूर हसि परसर (परसपरि-फ.), म. उ. स. सावत (सामंत-म.) सूर हसि (हम—म.) राज सौ (सौ-म.), ना. भर भरणि आउ पुज्जीय घरीय । २. मो. कहि (= कहइ) भले, धा. कहहि भला, अ. फ. कहहि भले, स. कहहि भलौ, म. कहै भुलौ, ना. प्रगट अगनि । ३. मो. रजपूत सु (= सउ), अ. रजपूत सौ, फ. म. उ. स. रजपूत भौ, ना. अविलह वहनि ।

टिप्पणी—(१) पिष्व < प्रेक्ष् । (२) उनहारि < अनुक्तर । (३) संठ < सगठन । (४) गयद < गजेन्द्र । पण्वर < पक्षधर (१) अश्वसनाह । (५) भुअपति < भूपति । (६) पारस्व < पार्श्व ।

—

६ . संयोगिता-परिणय

[१]

दोहरा— सुनउ^{*१} सवे सामंत हो^२ कहइ त्रिपति^३ प्रथीराज^४ । (१)
जउ अछउ^{*१} षिन पेतमइ^{*१} तउ^{*२} दक्खिन नयर^३ विराज ॥^४ (२)

अर्थ—(१) राजा पृथ्वीराज ने कहा, “अरे, सभी सामंत सुनो । (२) यदि तुम क्षण भर [रण—] क्षेत्र में रहो, तो नगर की प्रदक्षिणा विराजे (हो जाए) ।”

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

× चिह्नित चरण म. में नहीं है ।

(१) १. मो. सुनु (= सुनउ), धा. अ. फ. सुनहु, ना. म. उ. स. सकल । २. धा. सब्ब सामंत इह, अ. सब्ब सावंत हो, फ. सब्ब साउंत हो, ना. म. उ. स. सूर सामंत सम । ३. मो. किहि (= किहइ) त्रिपति, धा. कहै त्रिपति, ना. म. उ. स. वर बुल्यौ । ४. धा. ना. प्रिथिराज ।

(२) १. धा. अ. फ. जउ अछउहु खिन गित्त (षित्ति-फ.) महि, (मइ-अ. फ.) मो. जु (=जउ) अछु (= अछउ) षिन पेत मि (= मइ), उ. स. जौ रक्खौ षिन पेत में, ना. जौ अछो छिनु क्षित्त में । २. ना. तौ (< तउ); शेष में यह शब्द नहीं है । ३. मो. दक्खन (= दक्खन), धा. दक्खिन नयर, ना. दक्खन नगर, म. उ. स. देषौ नगर ।

टिप्पणी—(१) हं < अहो । (२) अछ् < अस् । दक्खन < दक्षिणा=प्रदक्षिणा ।

[२]

दोहरा— बोलउ^{*१} कन्ह^२ अयान^३ निप मति मंडन समर्थ^४ । (१)
जउ^१ मुक्कइ^{*२} सथ सथिअनु^३ तउ^{*४} कित लिजे^{*५} सथ ॥ (२)

अर्थ—(१) कन्ह बोला, “हे अज्ञानी राजा, तू मति मॉडने (बाते बनाने) में समर्थ है; (२) यदि तू [अपने] साथियों का साथ छोड़ता है, तो तूने उन्हें साथ ही क्यों लिया ?”

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. बोलु (= बोलउ), धा. अ. फ. बुलिय, ना. बुले, उ. स. बोल्हो, म. ब ल्यौ । २. मो. कन, फ. कहि, शेष में ‘कन्ह’ । ३. धा. अ. ना. आयान, फ. अजानु । ४. म. उ. रे मत मंडन समर्थ (समर्थ-उ.), स रे मत मंड समर्थ, अ. फ. मति मंडन असमर्थ ।

(२) १. मो. जु (=जउ), धा. जउ, म. अ. फ. ना. जौ, उ. स. जो । २. धा. मुक्कइ, मो. मुकि

(=मुक), अ. फ. म. उ. स. ना. मुक । ३. धा. अ. फ. ना. म. उ. स. सत सथियन (सत्थअन्-धा.), मो. सथ सथीअन् । ४. मो. तु (=तउ), धा. तो, अ. ना. म. उ. स. तौ, फ. मौ । ५. मो. किन लेनि) । धा. लिक्कतन् लने,)हसि, अ. लिन्हे कत, फ. लिहौ कत, ना. कति लिन्हे, उ. स. कित लायौ, म. किम लायौ ।

टिप्पणी—(२) मुक < मुच् ।

[३ .]

दोहरा— नउ^१ मुकउं^२ सथ^३ सथियन^४ तउ^{*५} संभरि कुल लज्ज^६ । (१)
दक्खिन करि^१ कनवज्ज कउ^{*२} फुनि^३ संमुह^४ मरणज्ज^५ ॥ (२)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज ने उत्तर दिया,] “यदि मैं [अपने] साथियों का साथ छोड़ दूंगा तो शाकभरी [का चहुआन] कुल लजित होगा । (२) [मुझे तो] कन्नौज की प्रदक्षिणा करके फिर [रण-क्षेत्र में—] सम्मुख मरना है ।”

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. जु (=जउ), धा. जउ, शेष सब में ‘जौ’ । २. मो. मुकु (= मुकउं), फ. मुकौ, म. मुंकौ, उ. स. मुकौ, ना. मुकै । ३. मो. ना. ‘सथ’, शेष सभी में ‘सत’ । ४. ना. सत्थियन । ५. मो. तु (=तउ), धा. तो, शेष में ‘तौ’ । ६. मो. धा. ‘लज्ज’, शेष सभी में ‘लज्ज’ ।

(२) १. मो. दक्खिन (= दक्खिन) करि, म. उ. स. दिष्पन करि, ना. दध्यन करि, अ. फ. दध्पिन कर । २. मो. कुं (= कउं), धा. अ. कहुं, ना. फ. कौ, म. कौ, उ. स. कौ । ३. धा. अ. फ. ना. पुनि, उ. स. फिर, म. फिरि । ४. मो. संभह, म. संमुष । ५. धा. मो. मरणज (मरनाज-धा.), ना. मरणज्ज, शेष सभी में ‘मरनज्ज’ ।

टिप्पणी—(१) मुक < मुच् = छोड़ना । (२) दक्खिन > दक्षिणा = प्रदक्षिणा ।

[४]

दोहरा— भय^१ टामंक^२ दिस्सइ^{*३} न दिसि^४ बहु पण्णर भहराउ^५ । (१)
मनुं^१ अकाल टिड्ढिअ^२ सघन सु पव्वइ^{*३} छुट्टि^४ प्रवाह^५ ॥ (२)

अर्थ—(१) [इधर] ऐसी टामंक (धुंधलाहट) हुई कि दिशाएँ नहीं दिखती थीं, [क्योंकि] पाखरों (सनाह से सुसज्जित अश्व-सेना) का बहुत भहराव (गिराव—आक्रमण के लिए एकत्रीकरण) हो गया था । (२) [ऐसा लगता था] मानो अकाल प्रस्तुत करने वाली सघन टिड्डियों का प्रवाह पर्वत से छूट पड़ा हो ।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. अ. भइ, फ. भे, म. उ. स. भौ, ना. भयौ । २. अ. समक, फ. समकि । ३. मो. दिसि (= दिसइ) न दिसि, धा. दिसि विदिस हुइ, अ. दिसि विदिसि मिलि, फ. दिस विदिस मिलि, ना. दिसि विदिमि दिसि, म. उ. स. दिसि (दिस-म.) विदिस कहु । ४. धा. लोह, ना. डुलि । ५. धा. तिहराउ अ. फ. भहराव (भहराव-फ.), म. बहुराह, उ. स. बहुराव, ना. भहराहु ।

(२) १. मो धा. अ. उ. स. ना. मनु (मनुं-ना. अ.), म मनो । २. मो अकाल टिडिअ, धा. अकाल तिडिय, फ. अकास लिटिडिअ, ना म अकास टिडी । ३. मो. सु पवि (= पवइ), धा. चल्या तु, अ. फ. पावस (पाउस-फ), ना. उ. सुपवय, म. स. पव्वय । ४. वा. मो. छुटि, अ. फ. ना. छुटि (छुटि-स.), म. च्छुटि । ५. फ. प्रहार ।

टिप्पणी—(१) पाखर < पक्षधर (?) = अश्व = सनाह । (२) पव्वइ < पर्वत ।

[५]

भुजंग —

प्रवाहे स्वेत^१ ताजी^२ न^० लजे अहारे^३ । (१)
 मनउ^{*१} रवि के रथ^२ आने पहारे^३ ॥ (२)
 सामि^१ संग्रामि^२ फिल्लइ^{*३} दुधारा^४ । (३)
 उप्पमा^२ केम^३ दीजइ^४ छिकारा^५ ॥ (४)
 साहियं^२ वरग^२ कडइ^{*३} जि लारा^३ । (५)
 मनउ^{*१} आवझइ^{*२} हथ वज्जंति^३ तारा^४ ॥ (६)
 छुटियं^२ तेज वुठे जि कारा । (७)
 ते^१ सज्जियं^२ सूर सव्वे^३ तुषारा ॥ (८)
 पषरे^१ प्रान से^२ मत्त वारा^३ ॥ (९)
 कंध नामइ^{*२} नही लोह धारा^३ ॥ (१०)
 घाट अवघाट^१ बेक[त१]^२ निनारा^३ । (११)
 कंठ भूमंति^२ गजगाह^३ भारा ॥ (१२)
 लोह^१ लाहउर^{*२} बाजइ^{*३} तुरकी । (१३)
 तिने^१ धावते दीसइ नहि धूरि^२ घुरकी^३ ॥ (१४)
 पच्छिमी सिंधु^१ जानइ^{*२} न थकी । (१५)
 ने साथि^१ सीधी^२ वले जकि^३ जकी ॥ (१६)
 पवन^१ पंषीन अषी^२ मनकी^३ । (१७)
 जे आस^१ कड्ढे नहीं चंपि नक्खी^{*२} ॥ (१८)
 राग^१ बागे^२ नही सुधि^३ उरकी^४ । (१९)
 मनउ^{*१} उप्पमा^२ उच्च आवझइ^{*३} घुरकी^४ ॥ (२०)
 आरबी देसावरी^१ लोह लछूछी । (२१)
 गनइ^{*१} को कंठ कंठीन^२ कछूछी ॥ (२२)
 घरा पित्ति^१ पुदंति^२ तुदंति^{०३} बाजी । (२३)
 दिष्पिअइ^{*१} एक^२ अंकेक (=अक्केक) ताजी ॥ (२४)
 पंडवे^१ पंगुरे राय^२ सजे^३ । (२५)
 दुवन^१ दल^२ तुछूछ^३ देषंत लजे^४ ॥ (२६)

एह^१ अप्पुब्ब^२ कवि चंद पेक्खउ^{*३} । (२७)

तरणि सम तेज दुजराज^१ देक्खउ^{*२} ॥^३ (२८)

अर्थ—(१) [संनाह से सुसज्जित अश्व-सेना के उस] प्रवाह में ऐसे श्वेत ताजी थे जो अखादे में [पिछड़ कर] लज्जित न हुए थे, (२) [वे ऐसे लगते थे] मानो वे रथ के रथ से अपहृत करके लाए गए हों। (३) वे स्वामी के युद्ध में दुधारे झेलने वाले थे; (४) उनकी उपमा ठिकारे (हिरन) से किस प्रकार दी जाए? (५) [उनके मुखों में] बाग साबी गई है, जिससे उनके मुखों से लाला (लार) कढ़ (निकल) रही है, (६) [दोनों ओर से उनके मुखों में उस बाग का लगना ऐसा लगता है] मानो आउझ (ढोल की जाति के एक वाद्य) पर [दोनों] हाथों से ताल बजाए जा रहे हों। (७) [उनके शरीर से] ऐसा तेज छूट (विकीर्ण) हो रहा है जैसे कार (काल?) उठा हो। (८) ऐसे सभी तुषारों को शूर साज रहे हैं। (९) वे मतवाले [घोड़े] प्राण से (प्राण-रक्षा की दृष्टि से?) पाखरे (संनाह से सुसज्जित किए) हुए हैं। (१०) उनका कंधा लौह (तलवार) की धार के सामने नमित नहीं होता है। (११) घाट, औघाट (बुरे घाट) उन्हें निराले रूप से व्यक्त हो जाते हैं—अर्थात् घाट-औघाट को वे स्वयं समझ कर चलते हैं। (१२) उनके कंठ में भारी गजगाह झूमते (झूलते) रहते हैं। (१३) लाहौर के लोहित वर्ण के जो घोड़े हैं, जो तुर्की बाजते (कहे जाते हैं), (१४) उनके दौड़ते समय खुरों की धूल नहीं दिखाई पड़ती है। (१५) जो सिंधु के पश्चिम के घोड़े हैं, वे थकना नहीं जानते हैं। (१६) उन्हीं के साथ जो सिंधी घोड़े हैं, वे जके (बौराए) से मुड़ते-फिरते चलते हैं। (१७) पवन, पक्षी, आँल और मन की [गति] भी, (१८) यदि वे अश्व निकलते हैं, उन्हें चाँपकर-दबाकर-पिछाड़ नहीं सकती है। (१९) जब वे रागे (ढाँगों के कवच पहनाए) जाकर बागे (बाग से सुसज्जित किए) जाते हैं तो उन्हें अपने हृदय (प्राणों) की सुवि नहीं रहती है, (२०) और वे ऐसे प्रतीत होते हैं मानो उच्च (श्रेष्ठ) उपमा हो जो [कवि के मानस में] आगे बढ़ती चली आ रही हो। (२१) अगर देशों के अश्वों में अरबी, जो लोहित वर्ण के हैं, लाखों हैं, (२२) और सुन्दर कंठ वाले कच्ची घोड़े इतने हैं कि कौन-सा कंठ उन्हें गिन सकता है; (२३) वे घोड़े [रण-] धरा की क्षिति पर दूढ़ कर (वेग से बढ़कर) खुरों से खूद रहे हैं और (२४) एक से एक बढ़कर ताजी दिखाई पड़ रहे हैं। (२५) फिर पंडुवे (पांडु के घोड़े) पंगुराज (जयचंद) ने सजाए हैं, जो शत्रु पक्ष के दल को छोटा देखकर लज्जित हो रहे हैं। (२६) कवि चंद ने यह अपूर्व बात देखी कि (२८) तरणि का तेज [आकाश के धूल-धूसरित होने के कारण] द्विजराज (चंद्रमा) के समान दीख पड़ा।

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

० चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

× चिह्नित चरण मो. में नहीं है।

+ चिह्नित चरण अ. फ. में नहीं है।

(१) १. मो. प्रवाहे स्वेत, धा. प्रवासीत, आ. ना. प्रवासे, फ. प्रवासंत, म. उ. स. प्रवाहंत ।
२. धा. तज्जी । ३. मो.—ए अहारे, धा. लज्जी अहारे, ना. जाजी अहारं, अ. फ. लाजी अहारं, म. उ. स. लज्जीअहारे ।

(२) १. मो. मनु (= मनउ), ना. मनुं (= मनउ), धा. उ. स. मनो, अ. फ. मनो, म. मनौ ।
२. धा. रत्थेजे, अ. फ. रत्थं, ना. रत्थं सु, म. उ. स. रत्थं सु । ३. धा. म. उ. स. प्रहारे, अ. फ. प्रहारं ।

(३) १. धा. तिके स्वामि, उ. स. जिके स्वामि, म. जिके सामि । २. अ. फ. न. संग्राम । ३. धा.

झेले, मो. झिलि (= झिलइ), अ. फ. ना. झिले, म. झले, उ. स. झले । ५. मो. दो धारा, धा. अ. फ. दुधारे, स. दुधारं ।

(४) १. धा. अ. फ. तिन, मो. ते, म. उ. स. तिन, ना. में यह शब्द नहीं है । २. ना. ओपमा । ३. धा. क्यूव, अ. कोव, फ. कौ वि, म. क्यौव, ना. कु (= कौ) व, उ. स. क्यौव । ४. अ. फ. दिज्जै, म. दीजै । ५. धा. विकारे, म. ठिकारा. उ. स. अ. फ. ठिकारे (छिकारे-उ. स.) ।

(५) १. धा. तिन साहिय, म. उ. स. तिन साहिय, फ. साहि । २. अ. फ. ना. बाग । ३. मो. कटि (< कढइ) निलारा, धा. अ. गड्डे जिलारा, फ. तिगडे जिलारा, उ. स. गड्डे न लारा, म. गड्डे नलराम, ना. गडे नलारा ।

(६) १. मो. मुनु (= मुनउ), ना. मनु (= मनउ), धा. म. उ. स. मनो, म. मनौ, अ. फ. मनौ । २. मो. आवहि (< आवझि = आवझइ). धा. आवधे, उ. स. आवध, म. आवध, ना. अवझं, अ. आवझे, फ. आवजे । ३. उ. स. वज्जत न बाजत, म. छज्जत । ४. धा. सारा ।

(७) १. धा. छुट्टियं तेजि, फ. मनौ छुट्टिज, म. उ. स. हय छुट्टियं । २. धा. वेठे, अ. फ. वट्टे, म. ठटे, उ. स. ठट्टे, ना. चट्टे ।

(८) १. तिते, फ. जिते, ना. म. स. सयं । २. मो. साजिय, धा. सज्जए, अ. फ. सज्जिय, म. उ. स. सज्जियं । ३. ना. म. उ. म. सब्ब, अ. सद्दे ।

(९) १. म. सरे पाषरे, उ. स. सरे पषरे, अ. फ. तहां पषरे । २. धा. उ. स. प्रानजे, म. प्रानजै, अ. फ. प्रानतै, ना. पानते । ३. धा. त्राहु चारा, अ. फ. म. मारु वारा, ना. उ. स. मारवारा ।

(१०) १. धा. जके, ना. ते, म. उ. स. तिके । २. मो. नामि (= नामइ), धा. ना. नामे, म. उ. स. नामै । ३. धा. लौह झारा, म. लोल झारा, ना. उ. स. लोह झारा । ४. धा. अ. फ. में यहाँ और है :

[बहै बाय बेगे] नहीं भूमिभारा । तिवे डुट्टियं जानि आकास तारा ।

कोष्टकों के अन्दर की शब्दावली धा. में नहीं है ।

(११) १. मो. बाट अवघाट, धा. घट्ट ऊघट्ट, अ. घट्ट औघट्ट, फ. मनौ घट्ट औघट्ट, ना. घाट औघाट, म. तहां औघटं घाट, उ. स. तहां घाट औघट्ट । २. मो. बेक, धा. 'फदे' शेष में 'फदे' या 'फदे' । ३. अ. फ. निन्यारा, ना. निरारा ।

(१२) १. ना. तने, म. उ. स. तिने यह शब्द धा. अ. फ. में नहीं है । २. धा. झुलति, ना. झूलंत, अ. फ. म. झूमंत (झूमत-म.) । ३. म. जगाह ।

(१३) १. अ. फ. किते लोह, म. दिसारोह, उ. दिसाहोर, स. दिसाराह । २. मो. लाहुर (= लाहउर), धा. लाहोर, शेष में 'लाहोर' या 'लाहार' । ३. मो. बाजि (= बाजइ), धा. वज्जइ अ. फ. ना. उ. स. बज्जे, म. वज्जे ।

(१४) १. धा. ना. तिन । २. धा. धावते दीसन धुरी, अ. फ. धावते दीसे न (नुं-फ.) धूरयो, ना. म. उ. स. धावते (धाव-ना.) धूर (धूरि-म. ना., धू-उ.) दीसै । ३. धा. फुरक्की, अ. फ. ना. म. उ. स. घुरक्की ।

(१५) १. धा. पच्छमी सिंध, अ. फ. सजै पश्चिमी (पच्छिमा-फ.) सिंध, ना. पच्छिमी सुभ, म. उ. स. दिस पच्छिम (पच्छमी-म.) भूमि । २. मो. जानि (= जानइ), धा. जाने, अ. फ. ना. म. उ. स. जान ।

(१६) १. धा. निन साथि, मो. ते साथ, अ. फ. म. उ. स. तिन साथ, ना. जिन सत्थ । २. मो. सीधी, ना. फ. संधी, शेष सभी में 'सिंधी' । ३. धा. अ. फ. चले जकि, मो. चले जक, ना. चलै जकि, उ. स. चलै नाव, चले ज ।

(१७) १. धा. पमः, म. उ. स. पवन न, फ. मनो पवन, ना. पवन्न । २. फ. पंषी । ३. धा. मनक्खी, अ. मनीषी, फ. मनुषी ।

(१८) १. अ. फ. जिके (जिकै-फ.) सान, ना ते सास, म. उ. स. तिके सास । २. धा. नहीं चपि भक्की (< नक्की), अ. फ. न चप ननष्पी, ना. न चप (चपै) तनक्की, म. स. न चपे ननक्का, उ. न चपै ननक्की ।

(१९) १. म. उ. न. तिन राग । २. धा. बरणै, ना. म. उ. स. चपै । ३. धा. नहीं सुध, अ. न सुक्की, फ. न सुक्की, ना. म. उ. स. न सुद्धो (न सुद्धी-ना.) । ४. म. उरधी, उ. स. उरक्की ।

(२०) १. मा. मनु (=मनउ), ना. मनु (=मनउ), धा. म. उ. स. मनो, अ. फ. में यह शब्द नहीं है । २. धा. उपरे, अ. उपजै, फ. उपजे, ना. म. उ. स. ओपमा । ३. मो. उच आवि (=आवइ), धा. ओस आव, अ. फ. उच आदे, म. उ. स. उच आप, ना. उच आप । ४. ना. म. उ. स. धरक्की ।

(२१) १. मो. आरबी देसावरी, शेष सब में 'अरबी (आरबी-ना.) बिदेसी लर' ।

(२२) १. मो. गनि (=गनइ), धा. अ. फ. गण, म. गन, ना. उ. स. गने । २. धा. अ. फ. को कंठ कठील, ना. म. उ. स. कान (कान-म, कोक-ना.) कठील कंठील ।

(२३) १. धा. अ. फ. धरा खित्त, म. उ. स. धर (धर-म.) पेत, ना. धरा पेत । २. धा. पुदंत, ना. फ. कुदंत, अ. म. उ. स. पुदंत । ३. म. अ. सइत, फ. सइति, ना. रुइत, उ. स. रुइत ।

(२४) १. मो. दिषिइ (=दिषिइइ) एक, धा. दिषियइ इक्कु, ना. दिषीयै इक्कु, अ. फ. किते दिषियइइ एक, म. हरैवी इ एक, उ. स. हरवी इइ एक । २. धा. इकत, अ. फ. एकत, म. ताजीन, स. तत्तार, ना. ताजीत ।

(२५) १. मो. पडवे, धा. पडुए, ना. पडरे, अ. इते पंडुवे, फ. इते पंडुरे, म. तिके पंगुरे, उ. तिके पंडुरा, स. तिके पंडुए । २. मो. म. राय, शेष सब में 'राइ' । ३. मो. साजी, धा. सज्जे, अ. सज्जी, फ. ताजी, ना. राजै, म. उ. स. साजे ।

(२६) १. धा. दुअण, ना. ध्रुवन, अ. तबहि दुवन, फ. तुबहि दुवल, म. उ. स. मनो (मनौ-म.) दुअन । २. धा. बल । ३. धा. वच्छ । ४. मो. देषत लाजी, धा. दिषत लज्जै, अ. फ. देषत लज्जे (लज्जै-फ.), म. उ. स. देषत लाजे, ना. देषत लाजै ।

(२७) १. धा. इहे, ना. इह, अ. फ. तहां, म. उ. स. इसो एह (इह-म.) । २. ना. आपु पुव्व, उ. स. आपुव्व । ३. मो. पेक्षु (=पेक्खउ), धा. अ. फ. ना. म. उ. स. पिण्यौ (पिक्ख्यौ-धा.) ।

(२८) १. धा. अ. फ. तरनि दुजराज सम (समे-अ. फ.) तेज (चद-फ.), म. उ. स. तिनं रव्वि दुजराज सम (सग-म.) तेज । २. मो. देषु (=देक्खउ) ना. म. दिण्यौ, शेष में 'दिण्यौ' (दिक्ख्यौ-धा.) । ३. ना. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :—

डरं डंबरी रेन अप्पै न पारं । अपीनं पपीनं सपीन निहारं ।

तहां कोन सामंत राजन ठहै । मनो मेर उत्तंग इस्ती न चहै ।

मुखं जोव जोबं भरं भूप भारे । तिनं काम कनवज्ज मइसै पधारे ।

टिप्पणी—(१) अहारा < अक्खाडग < अक्ष+वाटक=अखाड़ा (२) पडारे < प्रदत्त=अपदत्त । (३) झिल्ल [दे.] ऊपर से गिरती हुई वस्तु को धामना । (४) छिकारा=इरिण । (५) साह < साध्=सिद्ध करना, बनाना । (६) आउल्ल < आयुध (?) =डोल के डंग का एक वाद्य-विशेष । तार < ताल । (७) बुट्ठिय < व्युत्थित । कार < काल (?) । (११) वेकत < व्यक्त । निनार < गिण्णार < निर्नगर=नगर से निर्गत, निराला । (१२) गजगाह < गजग्राह =घोड़ों के कंठ में बाँधी जाने वाली झालर जो उनके अगले पैरों के सामने लटकती है । (१६) सीधी =सिंधी । वल < वल्=मुड़ना, लौट पड़ना । (१८) आस < अश्व । नण्ण < लण्ण । (१९) राग=ढाँकों का कवच । (२०) धुर=अग्रभाग । (२१) लल्लुछी < लल्ल । (२६) दुवन < दुर्वन =शत्रु । (२७) अपुव्व < अपूर्व । पेक्ख < प्र+इक्ष् =देखना ।

[६]

दोहरा— करिग^१ देव दक्खिन^{२*} नयर^३ गंग तरगह कुल^४ । (१)
जल छंडइ^{*१} अछ्छइ^{*२} करह^३ मीन चरित्तनु भुल^३ ॥ (२)

अर्थ—(१) देव (पृथ्वीराज) ने नगर प्रदक्षिणा की, [तदनंतर] वह गंगा की तरंगों के कुल (तट) पर (२) अपने अच्छे (या अचित) कूरो से जल छानने (उछालने) लगा और मछलियों के चरित्रों (खेलों) में [अपने की] भूल गया ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. ना करग । २. मो. दक्षन (=दक्खन), धा. दिक्खन, ना. दच्छिन, म. दषिन, उ. स. दच्छिन । ३. मो. नगर, उ. नयन । ४. मो. गंग तरगह कुल, धा. गंग तरग अकुल, अ. गग तरग अकिल, फ. गगा तरगु अकल, म. उ. स. गग तरगह कूल, ना. गग तरग कूल ।

(२) १. मो. छडिइ (< छडइ), धा. छडहि, उ. छट, म. स. छुट्ट, ना. च्छडिक । २. मा. अछि (=अछ्छइ) करह, धा. अच्छहि करइ, फ. अछे करहि, ना. म. स. तप ह्छ करि । ३. मो. चरित्रहि (=चरित्तहि) मूल, धा. चरित्तनु भुल, अ. चरित्तइ भुल, फ. चरित्तइ भूल, ना. म. उ. स. चरित्रनि (चरित्रन-ना.) भूल ।

टिप्पणी—(१) दक्खन < प्रदक्षिणा । नयर < नगर । (२) अछ्छइ < अचित ।

[७]

रासा— भूलउ^{*१} नृप तिहि रंग^२ तहि^३ जुध विरुध सह^४ । (१)
मूग^{*ति} मीननु^२ मुत्ति लहंति जु लष दह^३ ॥ (२)
होइ^{*१} तुछु तु तंमोर^{*२} सरंत तु कंठ लहु^३ । (३)
वंक^१ प्रवेस हसंत तु^२ भरंत^३ ज गंग^४ मह^५ ॥ (४)

अर्थ—(१) नृप (पृथ्वीराज) उस रंग (क्रीडा) में [अपने को] और उसी प्रकार [जयचंद से] सभी विरोध और युद्ध को भूल गया । (२) मछलियों के लिए जब वह [जल में] मोती छोड़ता था, तब वे दस लाख [की सख्या में आकर] उनको ले लेती थीं । (३) वह मोती तुच्छ (हल्के) ताबूल [के रस के समान लाल] हो जाता था जब वह उनके लघु कंठ में जाता था [और उसमें उनके लाल कंठ की झलक पड़ती] थी । (४) यदि वह मोती गंगा में झड़ (गिर) जाता था, तो वे हँसते हुए पंक में प्रविष्ट हो [कर उसे ढूँढने लग] ती थीं ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. भूलउ (=भूलउ), धा. भुल्लयो, म. उ. स. भूलौ, फ. ना. भूल्यौ । २. धा. पुहवि नरिद, फ. नृपति नरिद, म. ना उ. स. नृप इह रगहि । ३. धा. त, फ. स, म. उ. स. में यह शब्द नहीं है । ४. धा. विनुद्ध सह, मो. विरुध सह (=सहु), म. उ. स. विरुद्ध सह ।

(२) १. मा. मृग ति (=मूग ति), धा. मुक्के, म. नषह, उ. स. नषहि, ना. नषै । २. म. मीनति, ना. उ. स. मीननि । ३. मो. लहति जू लष दह, धा. लहंतु जु लच्छि दह, म. उ. स. लहै जुल लष दह, ना. लहति जे लष दह ।

(३) १. मो. होल, धा. ना. फ. हय, म. होय। २. मो. तुछतु तमोर, धा. तुछ तमोर, उ. स. तुछ तुच्छ सु सुरि, म. तुज तु सु नृति, फ. ना तुछ तुज तमोर। ३. धा. सरन जु कठ लह, स. मरत न कंठ लह, म. सरसत कठ लहि, उ. सरत न कठ लह, ना. सरतति कठ मह, फ. सरंत सुकत लह।

(४) १. मो. वक, शेष सभी में 'पक'। २. मो. के अतिरिक्त यह शब्द किसी में नहीं है। ३. ना. झुरंत। ४. धा. ना. जु गग, फ. उ गग, म. उ. स. न कठ। ५. म. महि।

टिप्पणी—(१) सह=मर्मा। (२) मूग < मुच्=छोड़ना। बह < दश। (३) तमोर=ताम्बूल। (४) वंक < पङ्क।

[८]

दोहरा— भुलउ^{*१} रंग नृपति इहि^२ पग चढो^३ हय^४ पुठि। (१)
सुनि^१ सुंदरि^२ वर वज्जने^३ चढी अवासह उठि^४ ॥ (२)

अर्थ—(१) नृपति (पृथ्वीराज) [जब] इस रंग (खिलवाड़) में भूला हुआ था, [उधर] पग (जयचंद) घोड़े की पीठ पर चढा, (२) और वह सुन्दरी (संयोगिता) वाद्यों को सुन कर उठ कर आवास (महल) [की छत] पर चढ़ गई।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ का है।

(१) १. मो. भुलु (=भूलउ), धा. भुल्यो, अ. भुलो, ना. स. फ. भूल्यौ, म. उ. भूलौ। २. धा. अ. फ. रग सु मीन (मीत-फ.) नृप, ना. म. उ. स. नृप इन (इह-ना. म.) रंग महि (मैं-ना.)। ३. धा. अ. फ. ना. म. उ. स. चढ्या (चढ्यौ-म. ना.)। ४. मो. हय।

(२) १. मो. सो, शेष सभी में 'सुनि'। २. म. ना. उ. स. सुन्दर, फ. सुन्दर। ३. ना. अ. वज्जनै। ४. धा. चढी अवासन उठि फ. चढी अवासहि उठि, ना. चढी अवासनि उठि, म. उ. स. अई अपुव्व कोइ (कौ-म.) दिठु (दुठु-उ., दुठि-म.)।

टिप्पणी—(१) पुठ < पृष्ठ। (२) वज्जने < वाद्यानि =वाजे।

[९]

दोहरा— दिषि त^१ सुन्दरि दल बलनि^२ चमकि चडंति^३ अवास^४। (१)
नर कि देव^१ किधु^२ काम हर^३ गंग हसंति निवास^४ ॥ (२)

अर्थ—(१) सुन्दरी (संयोगिता) दल (सेना) का चलना देख कर आवास (महल) [की छत पर] चढ़ जाती है, (२) [और गंगा तट पर पृथ्वीराज को देखकर सखियों से पूछने लगती है कि] “यह नर है, या देवता है, या काम या हर (शिव) है जो गंगा में हँसता हुआ (प्रसन्न) निवास कर रहा है ?”

पाठान्तर—(१) १. धा. दिषति, ना. दिष्यत, म. उ. स. देषत। २. धा. बलनि, फ. बलिनु, अ. चलनि, ना. मिळन, म. मिळत, उ. मिलिन, स. मिलनि। ३. मो. चडंति, धा. ना. फ. चडंति, अ. चडंत, म. उ. बढी मन, स. चढी मन। ४. म. आसु, उ. स. आस।

(२) १. धा. फ. देउ । २. धा. किधु, मो. ना. अ. किधु, फ. किधूँ, म. किधौँ, उ. स. किधौँ । ३. फ. काम हरि, ना. काम हर, म. उ. स. नागहर । ४-धा. गग इसत अयास, म. उ. स. गंग इसत निवास (सन निवास—म.), अ. फ. किधु (किधौ-फ.) कधु गग विगास ।

टिप्पणी—बल < वल्=चलना, जाना । चड=चढ़ना ।

[१०]

दोहरा— एक^१ कहइ^२ दानव^३ देव हइ^४ एक^१ कहइ^५ इंद^६ मुनिद^७ ।^४ (१)

एक^१ कहइ^२ ऐसे^३ कोटि नर एक कहइ^४ प्रथिराज नरिद^५ ॥ (२)

अर्थ—(१) [उत्तर में] एक कहती है, “यह दानव या देवता है,” और एक कहती है “यह इंद्र या मुनीन्द्र (बड़ा मुनि) है ।” (२) एक कहती है “ऐसे कोटि नर होते हैं,” और एक कहती है “यह नरेन्द्र पृथ्वीराज है ।”

पाठान्तर—X चिह्नित चरण म. में नहीं है ।

(१) १. मो. एक शेष सभी में ‘इक्’ । २. धा. फ. ना. उ. स. कहै, अ. कहहि । ३. धा. डुर, अ. फ. डुरि, ना. उ. स. दनु । ४. मो. हि (=इइ), धा. फ. ना. है, अ. इइ, उ. स. इइ । ५. धा. फ. ना. उ. स. कहै, अ. कहि (=कइइ) । ६. धा. इडु, फ. यडु । ७. धा. फ. फनिद, अ. ना. उ. स. फुनिद ।

(२) १. मो. एक शेष, सभी में ‘इक्’ । २. धा. कहै, अ. कहहि, फ. म. जा. उ. स. कहै । ३. मो. ऐसे, धा. म. ना. असि, उ. स. अ. फ. अस । ४. धा. इडु, अ. फ. ना. म. उ. स. इक् । ५. मो. प्रथिराज नरिद (< निरिद), शेष में ‘प्रथिराज नरिद’ ।

टिप्पणी—(१) इद < इंद्र । मुनिद < मुनीन्द्र । (२) नरिद < नरेन्द्र । एस < ईडुक् =ऐसा ।

[११]

दोहरा— सुनि रव^१ सुंदरि^२ उभम तन^३ स्वेद कंप सुर भंग । (१)

मनु कमलिनि^४ कल संभरी^५ अम्रित^६ किरन तन^७ रंग ॥^५ (२)

अर्थ—(१) [‘पृथ्वीराज’] का शब्द (नाम) सुन कर सुंदरी (संयोगिता) के शरीर में प्रस्वेद, कंप और स्वरभंग ऊर्ध्व (अंकुरित) हो गए । (२) [ऐसा प्रतीत हुआ] मानो सुंदर कमलिनी ने [सूर्य की] अमृत किरणों की क्रीड़ा का स्मरण किया हो ।

पाठान्तर—(१) १. धा. वर । २. धा. सुंदर । ३. धा. उभय हुव, अ. फ. उभम हुव, मो. उभलन ।

(२) १. मो. अ. फ. कमलनि, धा. कमलिनि । २. धा. समहरि, अ. फ. संहरिय । ३. धा. अम्रिभित, मो. अमिरत । ४. मो. किरतन, धा. करनेतन अ किरनि, तन, फ. किरन त । ५. धा. में ‘तथा अरत पाठान्तर’ लिखकर यहाँ निम्नलिखित दोहा भी है :

सुनि रव प्रिय प्रथिराज कउ उभद रोम तिन अंम ।

सेद कप सुरभग मयउ सपत भाइ तिहि अग ॥

अ. फ. में भी यह दोहा है, केवल ‘तथा अरत पाठान्तर’ नहीं लिखा हुआ है । म. उ. स. का पाठ है :

सुनि वर (रवि—म.) सुन्दरि उमे तन उभय रोम तन अंग ।

स्वेद कंप सुरभंग भौ नैन पिषत पृथु रंग ॥

प्रथम चरण के 'उभेतन' और 'उभय रोम तन' में जो पुनिरुक्ति है, उससे इनमें भी पाठ (मिश्रण प्रकट है) ।
ना. का पाठ है :

सुनि रब सुदरि उम हुव उभे रोम तन अग ।
स्वेद कंष स्वर भग भौ नयन दिषि पृथु रंग ॥
मानहुँ कमलिनि कल संभरिय तिमर किरनि तनु रग ॥

प्रकट है कि ना. में मो. तथा म. उ. स. के पाठों का मिश्रण हुआ है ।

टिप्पणी—(१) उम्भ = ऊर्ध्व । (२) समर = सस्मर् स्मरण करना ।

[१२]

सुदिल—

गुरुजन गुरु न निदरिय^१ सुंदरि । (१)
राजपुत्ति^२ पुछ्छइ न दुदरि^३ । (२)
अमु पुछ्छइ^{*} लउ^{*१} दुत्ति पठावइ^{*२} । (३)
गुन^१ अछ्छइ^{*२} पछ्छइ^{*} करि आवइ^{*३} । (४)

अर्थ—(१) [यह देखकर संयोगिता की एक सहचरी उससे कहती है,] “हे सुंदरी, गुरुजनो और गुरुओं की निदा न होने दीजिए [—इस प्रकार हर एक से चर्चा करने पर उनकी निदा होगी], (२) हे राजपुत्री, द्वंद्व के साथ—इस प्रकार कि उसका शोर हो जावे—न पूछिए । (३) उसे पूछने के लिए दूती भेजिए । (४) [यदि वह पृथ्वीराज रहने] तो अपने अच्छे गुणों से [वह दूती] उसे [आप के] पक्ष में करके आवे ।”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) मो न निदरीय, धा. बदिअ नहि, अ. फ. ददइ नहि, ना. गिंदीराये न, उ. स. निदरियं, म. निदर पग ।

(२) १. ना. राजन पुत्त । २. धा. पुच्छे कहूँ सुंदरि, अ. फ. पुछ्छइ कहूँ दुदरि, ना. म. उ. स. पुच्छियै (पुच्छि—ना., पुच्छियत—म.) न दुरि दुरि (दिदुरि—ना.) ।

(३) १. मो. अमु पुछि (=पुछ्छइ) लउ (=लउ), धा. अम्महि पुच्छन, अ. फ. अम्हइ पुछ्छन ना. हम ही पुच्छि पुच्छन, म. उ. स. अम्महि पुछि (पुच्छ—म.) तौ । २. धा. दूत पठा बहि, मो. दुत्ति पठावि (=पठावइ), ना. दुत्ति पठाबहि, अ. फ. दुछि पठावहि, म. दुत्ति पठावहि ।

(४) म. उ. स. कुन । २. मो. अछि (=अछइ), म. अच्छे, ना. अच्छै । ३. धा. पछ्छे कर आवहि, मो. पछि (=पछ्छइ) करी (करि) आवि (=आवइ), अ. फ. पछ्छे करवावहि, म. उ. स. पुछ्छवि करि आवहि, ना. पुछ्छि करि आवहि ।

टिप्पणी—(१) निद < निन्द = निंदा करना । (२) दुद < द्वन्द्व । (३) अमु = उसको । (४) पछ्छ < पक्ष ।

[१३]

रासा—

पंगुरा सा^१ पुत्तिय^२ सुत्तिय थार^३ भरि । (१)
यो त्रिय^१ जउ^{*२} प्रथीराज न^३ पुछ्छइ^४ तोहि फिरि^५ । (२)
जउ^{*१} इन लषन^२ सब सहित^३ विचार न सोइ करि^४ । (३)
हइ^{*१} व्रत^२ मोहि^३ नि जीव सु^४ खेउं सजीव वरि^५ ॥ (४)

अर्थ—(१) पंगुराज (जयचन्द) की उस पुत्री (संयोगिता) ने मोतियों का थाल भरा, [ओर दूती से कहा,] (२) 'हे स्त्री, यह यदि पृथ्वीराज हुआ, तो तुझसे फिर (घूम) कर [मोतियों के सबंध में] न पूछेगा । (३) यदि वह इन सब लक्षणों के साथ हो, तो तू उसका (मोतियों के फेंके जाने का) विचार न करे, (४) [क्योंकि] मेरा व्रत है कि इस नर जीव (शरीर) से ही उसको जीवन रहते वरण करूँ ।”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

० चिह्नित शब्द मो. में नहीं हैं ।

(१) धा. पगुराइ सा, मो. पगुराय स, अ. फ. पगराइ सा, उ. तव पसर राइसु, म. स. तव पगुराय सु, ना. पंगुराय । २. धा. पुत्तिसु । ३. धा. थाज, म. अ. फ. ना. थाल ।

(२) १. धा. जुत्तो, अ. फ. जुवती, ना. जौईय, सा. जौ हिय, म. उ. जौ तिय । २. मो. जु (=जउ), धा. जो, म. उ. स. इह, अ. फ. जौ, ना. में यह शब्द नहीं है । ३. धा. प्रथिराजन, म. प्रथीराजह, उ. स. प्रथिराजह । ४. मो. पुछि (=पुछ्छह) अ. पुछ्छह, फ. पूछै, धा. पूछहि, ना. पुच्छै, म. उ. स. अच्छहि । ५. मो. तोहि करि, धा. वीति फिरि, शेष में 'तोहि फिरि' (फिर—फ.) ।

(३) १. मो. जु (=जउ), धा. जरु, अ. फ. ना. म. उ. स. जौ । २. धा. इनि छिनि, अ. फ. ना. म. उ. स. इन लछिछन । ३. यह शब्द मो. के अतिरिक्त किसी में नहीं है । ४. मो. विचारि न सोइ [-करि मो. में नहीं है], धा. अ. फ. नि (न-अ. फ.) तव्व विचारु (विचारि-फ.) करि (कर-फ.), म. उ. ना. तौ (त-ना.) तव्व विचारि करि, स. तव्व विचारि करि ।

(४) १. मो. हि (=हइ), शेष सब में 'हे' । २. मो. म. वृत, धा. व्रतु । ३. म. सोहि । ४. मो. नृजीवसु, धा. त्रितावत, अ. फ. नृजीवत, ना. भीउत, म. उ. स. त्रप जीव तौ । ५. ना. लउ सजीव वर, म. फ. लउ सजीव (सजीउ-फ.) वरि ।

टिप्पणी—(१) धार < स्थाल=थाल । (२) तथा (३) जउ < यदि ।

[१४]

रासा— सुदरि आइसं^२ धाइ^२ विचार^३ न बोखइय^४ । (१)
जउ^{*१} जल गंगह लोल^२ प्रतीत^३ प्रसंगु जिय^४ । (२)
कमल ति^१ कोमल पांनि^२ कलिककुल^३ अंगुलिय^४ । (३)
मनहु^१ अर्घ्य^{*} दुज दान^२ सु अर्पति^३ अंजुलिय^४ ॥ (४)

अर्थ—(१) वह सुंदरी [सहचरी] आदेशानुसार दौड़ आई; उसने [पृथ्वीराज से] अपना (मंतव्य) नहीं कहा । (२) जहाँ पर गंगा का लोल जल था, वहाँ उसने प्रतीति [उत्पन्न करने] का वह प्रसंग—पृथ्वीराज को चुपचाप मोती देते रहने का उपाय—ग्रहण किया । (३) उसका हाथ कमल सा कोमल था, और उसकी उंगलियाँ कलिका-कुल—कलियों—के समान थी । (४) [उसका मोती अर्पित करना ऐसा लगता था] मानो वह (कमल) द्विज (चंद्रमा) को अंजुलि द्वारा अर्घ्य दान अर्पित कर रहा हो ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. म. आइस, ना. आइप । २. मो. धाहि, धा. अ. फ. उ. स. धाइ, म. धाय, ना. साइ । ३. धा. अ. विचारि, फ. विचार । ४. धा. त नांवुलिय, अ. फ. त (ति-फ.) नाउं लिय,

ना. णि बुलीय, म. न बुलिइय, उ. न बलइय, स. न बुलइय ।

(२) १. धा. जो, मो. जु (जुट), ना. जुय, म. उ. म. ज्यौ, अ. फ. जह । २. मो. गगह लोल, शेष सभी में 'गग हिलोर' । ३. ना. नृपति, उ. म. प्रथीति, म. प्रथिति, ना. पृथात, अ. फ. प्रतीर । ४. उ. स. तिय ।

(३) १. अ. फ. कमलिन । २. धा. अ. फ. इस्त (इस्ते-फ.), मो. पान । ३. धा. केळि कुलि, म. अ. फ. उ. स. ना. केलिकुल । ४. धा. म. उ. स. अंजुलिय ।

(४) १. धा. मनो, ना. म. मनहुं, अ. फ. मनौ । २. धा. अ. फ. दान दुज अध (< अध), म. उ. स. अध (< अध) दुज दान । ३. धा. अ. फ. समप्पति । ४. मो. अंजुरिय, धा. अ. फ. म. ना. उ. स. अंजुलिय ।

[१५]

नाराच— १अपंति^२ अजुलीय दान जान सोम लगये^३ । (१)
मनउ^{*१} अनंग रंग वस्य^२ रंभ^३ इंद^४ पुजये^५ । (२)
जु^१ पांनि बाहु बार थक्कि^२ थार मुत्ति^३ वित्तये । (३)
पुने पि^१ हथ कंठ^२ तोरि पोत्ति^३ पुंज अप्पये^४ । (४)
निरषि नयन टेरि वयन^१ ता त्रिपत्ति^२ चाहियं । (५)
तरप्पि दासि पासि पंक (पक)^१ संकियं न वाहियं^२ । (६)
अनेक (अनिक ?) संग ग रूप^१ चूप जानि^२ सुंदरी । (७)
उछंग^१ गंग^२ मम्मि^३ धुक्कि^४ सर्गपत्ति^५ अछूछरी^६ । (८)
हउ^{*१} अछूछरी^२ नरिदु^३ नाहि^४ दासि^५ गेह^६ राय^७ पुंगुरे^८ । (९)
तास^१ पुंत्ति^२ जंम छाडि^३ दिह्लिनाथ^४ आदरे^५ । (१०)
सा जंम^१ सूर चाहुवान मान^२ इम^३ जानये । (११)
करेन^१ केहरी न पीन^२ इंदु मीन^३ थानये^४ । (१२)
प्रतप्पि^१ हीर^२ जुघ घीर^३ यो सु वीर^४ संचही^५ । (१३)
वरंतु^१ प्राण मानिनी^२ चलंति^३ देत^४ गंठही । (१४)
सुनंत सूर अस्व फेरि तेनि^१ ताम हंक्रियं^२ । (१५)
मनउ^{*१} दलिह^२ रिधि पाय जाय कंठ^३ लगियं^४ । (१६)
कनक कोटि अंग^१ घात रास^२ वास^३ माल ची^४ । (१७)
रहंत भउंर^{*१} मौर मौर^२ साह छत्र^३ काम ची^४ । (१८)
सुधा सरोज मोज मंग^१ अलक (अलक) रंक^२ हल्लये^३ । (१९)
मनउ^{*१} मयज फंद^२ पासि^३ काम केलि घल्लये^४ । (२०)
करिस्य^१ काम कंकन^२ सु पानिबंध बंधये^३ । (२१)
जु भावरी^१ सषी सलज्ज^२ रंभ^{*३} तुरंगं वज्जये^४ । (२२)

आचार^२ चार^{२*} देव सव्व^३ दोइ^४ पष्य जंपही^५ । (२३)
 गंठि^१ दिठ्ठ^२ इक्कचिरा लोक लोक चंपही^{३*} । (२४)
 अनेक(अनिक?) सुष्य मुष्य सीस^१ जुध्व साध लग्गियं^२ । (२५)
 सु^१ कंत कंत अंत ता^२ तमोरि मोरि^२ अप्पियं ॥ (२६)

अर्थ—(१) मानो वह (कमल) [चंद्रमा को] अंजुलियों के द्वारा [अर्घ्य—] दान अर्पित कर रहा हो, [इस प्रकार की] शोभा लग रही थी। (२) [अथवा] मानो अनंग-रग (काम-क्रीड़ा) के वश में होकर रंभा इन्द्र की पूजा कर रही हो। (३) यद्यपि उस बाला के पाणि और बाहु थक गए, और थाल के मोती भी समाप्त हो गए, (४) फिर भी हाथ से कठ-माला तोड़ कर वह उसकी पोत-पुज (काच की गुरियों) को अर्पित करने लगी। (५) नयनों से [उस पोत-पुज को] देखकर बचन द्वारा बुला कर नृपति (पृथ्वीराज) ने उसे देखा। (६) किन्तु वह पक्की (दृढ़) दासी [पृथ्वीराज के] पास में [होते हुए भी] तड़पकर (ब्याकुल होकर) और शंकित होकर बोली नहीं। (७) [तब पृथ्वीराज ने उससे कहा,] “हे सुंदरी बॉके रग-रूप के संग (संबुक्त) तुम [अलंकृत यश-] वूप [जैसी] हो, (८) [अथवा लगती हो कि स्वर्गपति के] उछंग (क्रोड़-या बाहुपाश) से [छूटकर] गंगा में धुक (डुक-गिर) पड़ी हुई स्वर्गपति (इन्द्र) की अप्सरा हो।” (९) [उसने उत्तर दिया,] “हे नरेन्द्र, मैं अप्सरा नहीं हूँ, मैं तो पगराज के गृह की दासी हूँ, (१०) उसकी पुत्री जन्म (जीवन) [का मोह] छोड़कर दिछीपति (पृथ्वीराज) का [मन में] आदर करती है। (११) उसका जन्म (जीवन), हे शूर चहुवान, इस प्रकार जानिए, मानो वह (१२) करेणु (हथिनी), अपीन (दुर्बल) केसरी, इंदु और मीनों का स्थान बन गया है—हथिनी के समान उसकी गति क्षीण केसरी के समान उसकी कटि, इंदु के समान उसका मुख और मीनों के समान उसके नेत्र हो रहे हैं। (१३) जो प्रत्यक्ष हीरक [के समान कांतियुक्त] है, युद्ध में धीर है, और जो वीर है उस [पृथ्वीराज के अनुराग] का वह संचय करती है, (१४) उसको वह मानिनी प्राण वरण करती है, इसलिए उसने [मेरे] चलते समय गाँठ दे दी है [जिससे मैं उसका यह सदेश देना भूल न जाऊँ]। (१५) यह सुनते ही उस शूर (पृथ्वीराज) ने घोड़े को फेर (घुमा) कर उस ताजी (घोड़े) को हाँका (१६) और इस प्रकार वह संयोगिता के पास पहुँच कर उससे गले मिला मानो किसी दरिद्र ने ऋद्धि प्राप्त की हो। (१७) [संयोगिता इस प्रकार की हो रही थी मानो] कोटि कनक धातु का उसका अंग हो, अथवा सुवासित मालाओंकी राशि ही हो। (१८) भँवर झुंड के झुंड [उस पद्मिनी संयोगिता के आस-पास] काम के इलाय्य छत्र की ही भाँति [उड़ रहे] थे। (१९) सुधा और खरोज के मौज से मंडित उसकी माँग अलकावली के झूले में हिल रही थी, (२०) [जो ऐसी रुगती थी] मानो मदन [अपने] फंदों का पाश काम-केलि के लिए डाल रहा हो। (२१) उसके कर्ों में जो काम-ककण [बँधे], थे वे पाणि-बंध (पाणि-ग्रहण) के बंधन हुए। (२२) भँवरों पर उसकी सलज सलियों ने जो रव (शब्द) किया, वही [मानो] तूर्य बजे। (२३) समस्त [संस्कारोचित] चार आचार का देव-गण दोनों पक्षां से उच्चारण कर रहे थे। (२४) उनकी दृढ़ गाँठ उनकी एकचित्तता थी और लौकिक आचार उनका लोक-मर्यादा का अतिक्रमण था। (२५) [किन्तु इन] बॉके मुख्य सुखों के सिर पर युद्ध की साध [पृथ्वीराज के मन में] लगी हुई थी, (२६) इसलिए उस कान्त स्वकान्त को [संयोगिता ने] मोड़ (बीढ़े बना) कर [बिदाई के] ताबूल अर्पित किए।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

० चिह्नित शब्द धा, में नहीं हैं।

÷ चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।

‡ चिह्नित अक्षर और शब्द में नहीं है।

+ चिह्नित शब्द अ. में नहीं है।

× चिह्नित शब्द उ. में नहीं है।

(१) १. फ. ना. म. उ. स. में इसके पूर्व है (स. पाठ) :—

नराज माल छदप । कहत्त (कहंत-म.) कव्वि चदप ।

२. मो. धा. अ. अपति । ३. म. लजप ।

(२) १. मो. मनु (=मनउ), ना. मनुं (=मनउं), धा. उ. स. मनो, म. मनौ, अ. फ. मनौ । २. धा. अ. फ. रग अग, म. रत्ति सेय, उ. रत्त सेयो, स. रत्त सेय, ना. रत्ति सेउ । ३. मो. भग । ४. धा. अ. इडु, ना. इद्र । ५. मो. पूजये ।

(३) १. मो. जू, म. उ. स. सु, ना. ज । २. धा. पानि बारि बाहु थक्कि, अ. पानि हार चाहुवान, फ. पानि हारि चाहुवानु, म. पानि बाह वीर थक्कि, ना. जप। फुनि बाहु वार थाकि, स. पानि बार थक्कि, उ. पानि बार बाह थक्कि । ३. मो. थारि, म. उ. स. थाल । ४. मो. मोति, धा. अ. फ. म. उ. मुत्ति, स. मुत्ति ।

(४) १. धा. पुनप्पि, अ. फ. मुनौपि, म. पुनिपि, उ. स. पुनेपि, ना. पुनेहि । २. म. कठि । ३. मो. पाति । ४. धा. आपप ।

(५) १. धा. निरक्खि बेन देखि नैन, ना. निरवि नेन फोरि वयन, म. उ. स. छु टेरे नेन (नैन=म.) फेरि रेन (बेन=म., वन=उ.) । २. स. ता निपत्ति, ना. नृपति ।

(६) १. ना. उ. स. कपि, म. केपि । २. मो. संकियं न चाहिय, धा. संकि जानि साहियं, अ. फ. सक एन साहियं, म. से कियं न बाहिय, ना. सकियं न चाहीय । २. म. उ. स. में यहाँ और है (म. पाठ) :
नराज गात श्रम दिषयौ । कै स्वर्ग इद गग में तरग निति पिषयौ ।

(७) १. धा. सगि रगि रूप, ना. म. उ. स. सग रूप रग, अ. रंग अग रूप, फ. एक रंग रूप ।

(८) १. धा. अ. फ. जान गंग मध्य (मज्झि-धा.), ना. म. उ. स. गग मध्व धुक्कि (धुंकि-ना.) ।
२. धा. सुग पत्ति, अ. सुगि पत्ति, ना. गर्ग पत्ति, म. स्वरग पत्ति, उ. स. स्वर्ग पत्ति ।

(९) १. धा. अ. फ. ति, ना. हुं (=हउं), म. उ. स. हौं (हौं-स.) मो. नरेंडु, धा. म. नरिंद, ना. णस्यंद । ३. धा. नाह । ४. ना. म. ग्रेह । ५. मो. के अतिरिक्त यह शब्द किसी में नहीं है ।

(१०) १. अ. सुजीपु पुल्लेति, म. उ. स. जुतास पुत्ति, ना. तासु पुत्ति । २. धा. छोडि, ना. म. छंडि ४. । ना. दिल्लीनाथ । ४. धा. अ. फ. आवरे, म. उ. स. अदरे (अदरे-म.) ।

(११) १. धा. अ. फ. सवत (सावत-अ.), मो. सायम्य (=जम्म), ना. स जम्म, म. उ. स. संपन्न । २. म. उ. स. मन्न । ३. मो. इन्, शेष सभी में 'एम' ।

(१२) १. धा. करन्तु, अ. फ. करन्न, ना. करेण, म. उ. स. करीन । २. मो. कहरीन, म. उ. स. केहरी न दीप, ना. केहरी पनीन । ३. धा. मन्न, म. नाथ, उ. स. एन । ४. म. नानए ।

(१३) १. धा. म. उ. स. प्रतक्ख । २. म. छीर । ३. धा. धार । ४. धा. जे सवार, ना. जौवीर, म. जौ सवीर, स. जौ सुवीर । ५. मो. संचाह, अ. फ. संवहो, म. सठहो ।

(१४) १. धा. चरन्न, धा. अ. फ. म. वरंत । २. धा. म. माननी । ३. फा. चलंतु, स. चलौ सु, ना. चलयौ सु । ४. धा. देंतु, मो. देह, म. उ. स. देन (देंन-म.) ।

(१५) १. अ. फ. म. उ. स. तेज । २. धा. हंकया, अ. फ. हकियौ, म. उ. स. हंकयं ।

(१६) १. मो. मनु (=मनउ), धा. मनो, अ. फ. मनौ, उ. स. मनौ, म. मनौ । २. धा. म. दरिद्द, उ. स. दरिद्र । ३. धा. रिद्धि पाह जाह कठ, म. दत्त पाथ जाय कत । ४. धा. लग्गयो, अ. फ. लगियौ, म. उ. स. लगयं ।

(१७) १. धा. आस, अ. फ. अष्ट । २. धा. रासि । ३. धा. अ. फ. मालसी, ना. कामची ।

(१८) १. मो. रहत भुर (=भउर), ना. रहा भोर, धा. रुनति मोर, अ. फ. रुनति भौर । २. मो. जोर जोर, धा. सोनि सोनि, अ. फ. झौनि झौनि, ना. झौर झौर, म. झौर स्याह, उ. स. झौर स्याम । ३. मो. रात्र, धा. अ. फ. ना. स्याह छत्र, म. उ. स. छत्र तत्र । ४. धा. अ. फ. कामसी ।

(१९) १. म. मौजय, ना. मौज अँग । २. धा. अ. फ. लिक्क रंग, म. अलकि अलि, ना. चल अलिक्क । ३. अ. फ. हलिय, म. हलयं, ना. उ. स. हलियं ।

(२०) १. मो. मनु, ना. मनु' (=मनउ), धा. मनो, म. मनौ, उ. स. मनौ, अ. फ. मनौ । २. धा. मयंक फट्ट पासि, अ. फ. मयक फंद पासि, ना. म. उ. स. मयन्न रत्तिरन्न । ३. धा. काम काल बज्जए, मो. काम केलि हलये, ना. उ. स. काम पास घलियं (घलय-म.), म. काम पास घलय, अ. फ. काम काल बज्जए ।

(२१) १. धा. करिस्स, अ. फ. ना. म. उ. स. करिस्सि । २. धा. कोस ककण, म. काम ककनं, फ. केम कंकन । ३. धा. अ. फ. जु पानि (तियान-अ. फ.) पत्त बंधए, मो. सु पानि कध बधये, उ. स. ति पानि फद साजए, (माजए-स.), ना. जुपानि फंद बंधए, म. जु पानि फद साजए ।

(२२) १. अ. भावरी, फ. भाउती, ना. सु भावरी, म. नाचरी । २. अ. फ. धा. उ. स. सुलज्ज, म. सुलाज । ३. धा. जुज्ज रुज्ज बज्जए, मो. रुज्ज तुरयज्जये, अ. फ. जूज्ज रज्ज बज्जए, ना. झूज्ज सुविराजए, म. उ. स. झुज्ज (झुंड-उ. स.) सो (सौ-म.) विराजए । ४. फ. म उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ): अनेक संग ढोररं व रत्त मत्त सत्तिसयं । उसंग ही सरोज सोभ होत कत तत्तिसयं ।

(२३) १. धा. ना. अचार, मो. आचार, म. ना. अ. फ. अचार । २. धा. दारु, म. श्रव, यह शब्द उ. में नहीं है । ३. धा. अ. फ. देव सह, ना. देश सव्व । ४. धा. अ. फ. दूव, ना. म. दोउ । ५. ना. म. उ. स. जपिय ।

(२४) धा. अ. फ. म. ना. सु । २. मो. दिठ, धा. दिड्ठ, ना. म. दिठ (दिठ्ठ-ना.), अ. फ. डिठ्ठ । ३. मो. झषहि (-झंषही), ना. म. उ. स. चंपिय, धा. अ. फ. चपही । ४. ना. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ):

सु इद्रनी जु इद्र जानि गंध्रवी विवाहयं ।
मुसकि मंद हासयं समुष दिषि नाहयं ।
सु अंगुली उचंकि एक देव तानि सुंदरी ।
मिलंत होय कथ्य मोहि स्वर्ग वास मंदरी ।

उ. में पूर्ववर्ती चरण के 'एक' से लेकर इन अतिरिक्त चरणों में से तृतीय के 'एक' के पूर्व की सारी शब्दावली दुहराई हुई है ।

(२५) १. अ. फ. सार (सार—अ.), ना. म. उ. स. सास । २. धा. जघ सधि लग्गयं, म. उ. स. जुद्ध साध लग्गियं (लपिय—म.), अ. फ. जुद्ध संधि लग्गिय, ना. जुद्ध लग्गियं ।

(२६) १. धा. अ. फ. में यह शब्द नहीं है । २. धा. कंत कति अंत अंति, अ. कति कति अंतंत, फ. कंत कंत अंति चंतित, ना. कत कति अच्छता, म. उ. स. कत कति (कति—म.) अस्थिता । ३. धा. म. मोर । ४. धा. अप्पयं, अ. फ. अप्पियं ।

टिप्पणी—(१) अप < अप्प < अप् । (२) इंद < इंद्र । (३) बार < बाला । (४) पोति < पोत्ती [दे०] काँच, शीशा । (५) चाह < वाच्छ (?) (६) वाहि - व्या+ह=बोलना, कहना । (७) अनेक < आणिक्क=बाँका । (८) उछंग < उत्सङ्ग=क्रोड़, बाहुपाश । (१०) जम < जन्म । (१२) करेन < करेणु=हथिनी । (१४) गंठ < ग्रंथि । (१५) तेजि < ताजी । (१७) रास < राशि ? । (१७, १८) ची तु, एव । (१८) झौर=झुंड । साह < श्लाध्यं । (१९) रंक < रङ्ग=झूला । (२०) मयन्न < मदन । पासि < पाश । घल डालना । (२२) रुंझ < रुंज < रु=आवाज करना । तुरंय < तुर्य । (२३) जंप < जल्प=बोलना, कहना । (२४) दीढ < दूढ= (२५) अनेक < आणिक्क=बाँका । (२६) तमोरि < ताम्बूल ।

[१६]

दोहरा— वरि^१ चल्लउ^{*२} ढिल्लियनिपति^३ सुत^४ जयचंद कुमारि^५ । (१)
गठि छोड़ि^१ दक्खिन^२ फिरिग^३ प्राण करिग मनुहारि^४ ॥ (२)

अर्थ—(१) दिल्ली-नृप (पृथ्वीराज) तब उस कुमारी जयचंद-सुता (संयोगिता) को वरण कर चला । (२) गॉठ खोल कर वह प्रदक्षिणा में वापस हुआ, तो उसके प्राण [संयोगिता को साथ ले चलने के लिए] मनुहार (अनुरोध) करने लगे ।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द सशोधित पाठ का है ।

(१) १. फ. ल, ना. वर । २. मो. चल्लु (=चलउ), धा. अ. फ. चल्यो, म. उ. स. चल्थौ । ३. फ. वर इदुपति । ४. मा. सुत, १. ना. म. सुत । ५. धा. कवारि, म. कुआरि, अ. फ. कुवारि । (२) १. धा. ना. छोरि, म. उ. स. छोर । २. धा. दिच्छन, मो. दक्षिन (=दक्खिन), अ. फ. दक्षिन, ना. म. उ. स. दक्खिन । ३. मो. ना. फिरग, अ. किरिग, फ. करिग, ४. मो. मनहारि ।

टिप्पणी—(२) गंठि < ग्रन्थि । दक्खिन < प्रदक्षिणा ।

[१७]

गाथा— पायातु^१ पंग पुत्तीय^२ जयति जयति^३ योगिनि^४ पुरेस^५ । (१)
सर्व^१ विधि निषेधस्य^२ यः तंबूलस्य^३ समादाय^४ ॥ (२)

अर्थ—(१) [संयोगिता कहने लगी,] “पंगपुत्री (संयोगिता) की रक्षा करो, हे योगिनी पुरेश—दिल्लीपति—तुम्हारी जय हो, जय हो । (२) सभी प्रकार से [तुम्हारे जाने के] निषेध का जो ताम्बूल है, उसे ग्रहण करो ।”

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द धा. ना. में नहीं है ।

(१) १. धा. अ. फ. पयंपि । २. धा. पंग पुत्रीय, ना. पंगु पुत्ती । ३. धा. ना. जयति, मो. जय जयति । धा. जोगिन, ना. जुगनि । ४. धा. पुरइ ।

(२) १. धा. सरव ना. श्रब्बे । २. धा. निसेधाइ, अ. फ. निषेधये, ना. निषेधाय । ३. मो. यः तंबूलस्य, धा. तंबूलस्य, अ. फ. ना. तांबूलस्य । ४. मो. ना. समादयं, अ. समदाय, फ. समदाइ । ५. म. उ. स. में पाठ है :

श्लोक—पयाने पंग पुत्री च जैतिक जोगिनी पुर ।

विधि सर्व (सरवां-म.) निषेधाय तांबूलं ददतं नृपं ॥

[१८]

दोहरा— रेन^१ प्पर^२ सिरि^३ उप्परिहि^४ हय गय^५ गयु^{*६} उछार^७ । (१)
मनु^१ ढिल्ली ठगु ठगि गयु^२ रहि गयु सब^३ सुच्छार^४ ॥ (२)

अर्थ—(१) सिर पर [सैन्य-सचालन से उठी हुई] रेणु (धूल) पड़ रही थी, [इसलिए]

घोड़े हाथियों का उछलना चला गया था—समाप्त हो गया था। (२) ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो दिल्ली का ठग [ठगमूरी खिला कर] ठग गया था, इस लिए सब मूर्छित रह गए थे—हो रहे थे।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) १. धा. रेनु, अ. रेणु, फ. रेण, ना. रेण, उ. स. रैन। २. धा. परइ, अ. फ. परे, ना. परि, म. उ. स. परै। ३. अ. फ. म. उ. स. सिर। ४. धा. उप्परहि, अ. फ. उप्परह, म. उ. स. उप्परै। ५. धा. गन। ६. मो. गजु (< गयु), धा. ना. गज, अ. फ. गुज, स. गतर, म. हर। ७. धा. अछार, उ. उछारि म. उछाह।

(२) मो. मनु, धा. अ. म. उ. स. मनहु, फ. मनहौ, ना. मानहु। २. धा. ठग ठग मूल ले, अ. फ. ठग ठग मूरि (सूरि-फ.) दे, म. उ. स. ना. ठग (ठग-ना.) ठग मूरि ले, (ले-म.)। ३. धा. अ. फ. रहे ति सब, ना. रहि गए सब, म. उ. स. रहिग सबै (स्वे-म.)। ४. म. मूछार, ना. मुरछार।

टिप्पणी—(१) रेन < रेणु। (२) मुछार < मूर्च्छाउ (१)।

[१६]

दोहरा—मनहू^१ बंध^२ ति अज भर^३ हेति न जान ति थट^४। (१)

वचन सामि^१ भंगु नन करहु^२ सह^३ जोअइ^{*४} नृप बट^५ ॥ (२)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज के] भट मानो आज (इस समय) भी बँधे हुए थे, वह [भट-] समूह कारण नहीं जानता था [कि पृथ्वीराज को क्यों विलंब हो रहा था]। (२) [वे परस्पर कह रहे थे,] “स्वामी के वचन को भंग किसी दशा में न करो, हम सभी राजा (पृथ्वीराज) की बाट देख।”

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) १. मो. मनुहू, धा. ना. अ. मनहु, फ. मनहौ, म. मनौ। २. अ. फ. बंध, ना. बन्ध। ३. धा. अज हुति भरे, अ. अज हुंति भर, फ. अज हौ तिभर, उ. स. अनभूति धर, म. अनहित वरि, ना. अजहै तिभर। ४. मो. हेतिन जान निघट, धा. हैतिनि जानत थट, अ. फ. है तिनि जानत बट, ना. म. उ. स. हैतिन जानत थट (ठाट-ना.)।

(२) १. धा. वचन साह, म. वचन स्वामि, ना. वचनर स्वामि, फ. वचन स्वामु। २. धा. ना. भंगु न करहि, अ. फ. भंग न करै, म. उ. स. भंग न करहि। ३. धा. सह, ना. सुव अ. सब, फ. सच। ४. धा. जोअइ, मो. जोइ (=जोअइ), ना. अ. जोवहि, फ. जोउरि, म. उ. स. देषहि। ५. ना. बाट।

टिप्पणी—(१) भर < भट। (२) बट < वर्त्मन्=माहा।

[२०]

दोहरा—धीर तनु धरि ढाल सिर^१ बाहु दंत उभ रोभ^२। (१)

नृपति^१ नयन त्रिय अंकुर^२ मनहु मदगज^३ सोभ^४ ॥ (२)

अर्थ—(१) [उधर पृथ्वीराज का यह हाल था कि] धीर तनु पर जो ढाल वह धारण किए था, वही सिर था, उसके बाहु उसके उठे और हुए दाँत थे, (२) नृपति (पृथ्वीराज) के

रुके (निकले) नेत्रों में स्त्री का अंकुर था—स्त्री गढ़ी हुई थी—ही, [इस प्रकार राजा ऐसा हो रहा था] मानो मदोन्मत्त गज शोभित हो रहा हो ।

पाठान्तर—(१) १. धा. धीरत्तनु ढर ढार सिर, फ. धीरत्तनु सिर ढाल धरि, म. उ. स. धीरत धरि ढिहंस, बर ना. धीरत्तन धरि ढिहो सुरह । २. धा. बाहु देतिय उभ रोभ, मो. म. उ. स. बहुदंती उभ रोभ (रोस—म.), अ. फ. बाहु दत उभ रोभ, ना. दती उभा रोभ ।

(२) १. धा. त्रिपु । २. मो. नयन त्रिय अकुर, धा. नयन् त्रिय अकुरिग, अ. फ. यन्न त्रिय अंकुरिग, ना. म. उ. स. नयन तन अकुरे । ४. फ. मनौह मदगज, म. मानहु मदगज, स. मनहु मत्त गज । ५. म. सोस ।

टिप्पणी—(१) उभ > उब्भ < ऊर्ध्व = उठा हुआ । रोभ < रुद्ध ।

[२१]

दोहरा—हरषवंत^१ नृप चित्त^२ हुष^३ मेन^४ मझिहि^५ अनुराहु^६ । (१)

मिलित^१ हथ्य कंकन^२ लषिउ^३ कन्ह कहइ इह काहु^४ ॥ (२)

अर्थ—(१) राजा (पृथ्वीराज) का चित्त हर्षित था क्योंकि वह मदन (काम) में अनुराद्ध (संप्राप्त) था । (२) जब उसके हाथ में मिला (बंधा) हुआ कंकण देखा तो कन्ह ने कहा, “यह क्या है ?”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है ।

(१) १. म. हरषचंद । २. म. ना. में ‘चित्त’ शेष सभी में ‘अित्त’ या अित्त्य । ३. धा. हुआ । ४. मो. फ. में ‘मेन’ शेष, सभी में ‘मन’ । ५. धा. मझहि, उ. स. अ. फ. ना. मझइ म. मझइ । ६. मो. अनुराहु, धा. जुधिराहु, म. उ. स. अ. फ. ना. जुधचाव (चाउ—फ. ना.) ।

(२) मो. ना. मिलित, फ. मिलति, शेष सभी में ‘मिलत’ । २. मो. म. हथ कंकत (< कंकन), धा. हथ्य कंकम । ३. मो. लिष्यु (=लिष्यु) म. लिष्यौ, धा. लखिउ, अ. फ. लष्यौ, ना. उ. स. लष्यौ । ४. मो. कन्ह कहि (=कन्हइ) इह काहु, धा. कहहि कन्ह यह काहु, अ. फ. कहइ (कहै—फ.) कक नह (इह—फ.) काव (चाउ—फ.), ना. म. उ. स. कह्यौ (कर्यौ—म.) कन्ह इह (यह—ना.) काव ।

टिप्पणी—(१) १. मेन < मयण < मदन । अनुराहु < अनुराद्ध ।

[२२]

दोहरा—गगन रेणु^१ रवि पुंद लिष^२ धर सिर^३ छंडि फुगिंदु^४ । (१)

इहु^१ अपुव्व^२ धीरत्त तुहि^३ कंकन हथ्य नरिहु ॥ (२)

अर्थ—(१) [कन्ह ने कहा,] “गगन में [पहुँची हुई] रेणु ने रवि पर आक्रमण कर दिया है, और पणीन्द्र (शेष) धरा को सिर से झोड़ चुके हैं । (२) ऐसी दशा में यह तुम्हारी ही अपूर्व धीरता है कि, हे राजा, तुम्हारे हाथ में कंकण [बंध रहा] है ।”

पाठान्तर—(१) १. धा. रेनु, अ. फ. ना. रेणु, म. उ. स. रेन । २. धा. मुंद लिय, अ. फ. म. उ.

स. मु दि लिय, ना छू द लिय । ३. म. उ. स. धर भर, ना. धर भर । ४. मो. फुणंद, धा. अ. फ. फनदि
म. ना. उ. स. फुनिंद ।

(२) १. धा. इहु, मो. इहि, अ. फ. यद्, म. उ. स. इह, ना ईय । २. मा. अत्रव, म. पुव । ३. मो.
धीरय तुही, धा. अ. फ. म. धीरत्त तुहि, ना. धीरज्ज तुहि ।

टिप्पणी—(१) रेण < रेणु । धुद < छुद=आक्रमण करना । फुणिंद < फणीन्द्र । (२) अपुव्व < अपूर्व ।

[= २३]

मुडिल—

वरिअ^१ बाल सुत पंगुर^२ राइ^३ । (१)
उहि व्रत राषि^४ मिलउ* तुम्ह आइ^५ । (२)
तजि^६ सुध्वहि^७ अब जुध्व सहाइ^८ ।[×] (३)
अवास आनि दइ* लियउं* बताइ^९ ।[×] (४)
तिहि तजि चित्त कियउ*^{१०} तुम्ह पास^{११} ।⁺ (५)
छंडिय कन्ह रुदंति अवास^{१२} ।^{१३} (६)
जु सउ भृत मभिम्ह^{१४} एक भृत होइ^{१५} । (७)
सो नृप युवति न^{१६} मूंकइ^{१७} कोइ^{१८} । (८)
हम सउ रजपूत^{१९} सा सुंदरि एग^{२०} । (९)
मुकि जाइ ग्रहि^{२१} बंधइ तेग^{२२} ।^{२३} (१०)
जउ अरि ठट्ट^{२४} कोडि^{२५} दल साज^{२६} ।⁺ (११)
तउ* ढिल्लिअ तषत^{२७} देहुं^{२८} ग्रथिराज^{२९} ।⁺ (१२)
इह नृपति न बुभिम्हयै तोय^{३०} । (१३)
परणि मूंकि सुंदरि अरि* छेइ^{३१} ॥ (१४)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज ने कहा,] मैंने पंगराज (जयचंद) की सुता बाला [सयोगिता] का
वरण किया, (२) ओर उसका [प्रणय—] व्रत रख कर तुम से आ मिला । (३) उस मुग्धा को
छोड़ कर मुझे [अब] युद्ध ही घुहा रहा है (४) [इसलिए] आवास (भवन) में आ कर मैंने
तुम्हें बता दे लिया—सूचना दे दी । (५) उसको छोड़ कर चित्त मैंने तुम सब के पास किया है
(६) और उसे, हे कन्ह, मैंने [उसके] आवास (भवन) में रोता छोड़ दिया है ।” (७) [कन्ह ने
कहा,] “यदि हम सौ भूर्यों में से एक भी भृत्य होता (८) तो वह भी हे राजा, [तुम्हारे
द्वारा परिणीता] युवती को न छोड़ता । (९) [तब जबकि] हम सौ राजपूत हैं, और एक ही सुन्दरी
है, (१०) तो क्या उसे छोड़ कर और घर जाकर हम तेग (तलवार) बाँधेंगे ? (११) यदि शत्रु-समूह
करोड़ का दल भी साजे, (१२) मैं दिल्ली का सिंहासन पृथ्वीराज को दूँगा । (१३) हे राजा तुमसे
ऐसा नहीं समझा था—ऐसी आशा नहीं थी । (१४) तुम परिणीता सुन्दरी को छोड़ कर शत्रु को
छिन्न (नष्ट) करना चाहते हो ।”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

× चिह्नित चरण ना. में नहीं हैं ।

‡ चिह्नित चरण अ. फ. में नहीं है।

‡ चिह्नित चरण अ. फ. में नहीं है।

+चिह्नित चरण म. उ. स. में दो बार आइ है।

(१) अ. फ. चरिय। २. ना. पगइ, म. उ. स. पगइ। ३. मो. राई।

(२) १. मो. उहि वृत रषि, धा. उहि चितु रविख, फ. उछ वृत रषि, म. उ. स. वह वन भग। २. मो. मिल (=मिलउ) तुम्ह आई, धा. अ. फ. ना. मिल्यो तुम (तुम्ह-ना.) आइ, म. मोह वन जाइ, उ. स. मोहि वृत जाइ।

(३) १. म. उ. स. तिहि, (तिहि-म.)। २. धा. सुंभइ, मी. सुधही, अ. फ. सुंभहि, उ. सुधहि। ३. मो. धा. सहाइ, म. रुहाय, अ. फ. सुहाइ, स. सुहाई।

(४) १. मो. अवास आनि दि (=दइ ?) लीयु (=लियउ) बताइ, धा. सु अब दई आवास बताइ, अ. फ. छडिय कन्ह अवासह (अवासहि-फ.) आइ, म. र. स. [सो-उ. म.] अस्थि अवासह देउं (देउ-म.) बताई (बताय-म.)।

(५) १. मो. कीयु (=कियउ), धा. किया, म. उ. स. कियौ ना. कियो। २. उ. स. तुम पासं, तुम पासि।

(६) १. मो. रुदता ती अवास, धा. रुवत अवास, म. उ. स. रुदत अवास, म. रुदंत अवासि, ना. रुदंत अवास।

(७) १. मो. जु सो भृत माहि, धा. ज सउ भ्रित मज्झि, अ. फ. ना. सौ भृत (नति-फ.) मझि, म. उ. स. सौ (सो-म.) सुमट्ट माहि। २. धा. इक भ्रितु होइ, अ. फ. इक भृत (भ्रित-फ.) होइ, म. उ. स. एक मट होइ (होम-म.)।

(८) १. धा. त्रिप यूहीदिन, अ. फ. तऊ (तौ-फ.) न सुदरि, ना. तौऊ न सुंदरि, म. तौ त्रिप नहि न, उ. स. तौ नृप धनहि न। २. धा. म. उ. स. अ. फ. मुक्कै। ३. धा. कोई, म. कोय।

(९) १. धा. हम सउ भ्रित, अ. सो रजपुत्ति, फ. सौ रजपूत, म. हम सौ रज, ना. सौर पुत्त, उ. स. हम सौ रजपूत। २. मो. सा सुद रग, धा. सुदरी एग, अ. फ. ना. सुदरिय (सुंदरी-फ. ना.) एक, म. उ. स. रु सुंदरि एक।

(१०) १. मो. मुनि जाइ ग्रहि, धा. ना. मुकि जाइ ग्रिह, अ. फ. मुकि जाइ ['ग्रिह' नहीं है], म. उ. स. मुकि जाइ ग्रह। २. १. मो. बधि (=बधइ) तेग, अ. फ. म. उ. स. बधहि तेक, ना. बंध तेक। ३. ना. में यहाँ और है : गर्जित कह कही यह सद। राजन बात कीन्ह यह हइ।

(११) १. मो. जु (=जउ) अरि ठर (< ठट ?), धा. जउ अरि थट्ट, अ. फ. ना. जौ अरि थट्ट (थट्ट-फ. ना.), म. उ. स. जौ अरि थाट। २. धा. अ. फ. म. उ. स. कोरि, ना. कौअरि। ३. मो. साजा, अ. फ. साजहि, म. साज।

(१२) १. यह शब्द धा. अ. फ. में नहीं है, म. उ. स. तौ। २. अ. फ. तपत। ३. धा. देहु, अ. फ. देउं, म. देहि, ना. धुं (=धउं), उ. स. देहि। ४. मो. प्रथीराजा, धा. प्रिथिराज, अ. फ. पृथिराजहि, म. प्रिथीराज।

(१३) १. मो. इह नृपति न बूझै (< बझइ) तोय, धा. अ. फ. ना. इहु (यह-अ. फ. ना.) त्रिपति बुझियै (बुझियै-अ. फ.) न तोहि, उ. स. इतनौ नृपति पुच्छये तोहि, म. इतनौ नृपति बुझियै तोहि।

(१४) १. मो. परणि मू कि सुदरि यरि (=अरि) छेइ, धा. सुंदरि तजि जीवन का मोहि, अ. फ. सुदरि तजे ज यन क्यों मोहि, ना. सुदरि तजै ज यन क्यु मोहि, म. उ. स. परनि (ए रन-म.) मुकि सुदरि इह होइ (होति-म.)।

टिप्पणी— (३) मुध < मुग्धा। (७) भृत < भृत्य। (८) मूक < मुक्। (९) एग < एक। (१४) छेअ < छेदय्।

[२४]

दोहरा— चलि चलि सूर ति^१ सथि^२ हुअ रण निसंक^३ मनि^४ भउन^{*५} । (१)
सह अचार सुख मंगलहि^१ मनहु फिरि करइ^{*२} गउन^{*३} ॥ (२)

अर्थ—(१) शूरगण चल चलकर पृथ्वीराज के साथ हो लिए, वे रण के लिए निःशङ्क थे, और उनके मन में वह भवन था [जिसमें संयोगिता थी] । (२) [ऐसा लगता था] मानो आचारों के साथ मुख्य मागलिक कार्य ही लौट कर गमन, कर रहा हो—मानों उन्हीं को वहाँ साथ ले जाने के लिए वह यहाँ आया रहा हो ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. चलचलि सूर ति, धा. चले सूर सहु, अ. फ. चलि चलि सूर सु, म. चलि चलि सूरि त, उ. चलि चलि सूति, ना. चलि मिल सुरस । २. अ. फ. म. उ. स सथि । ३. उ. नरसिक । ४. मो. में 'मनि' है, शेष में 'मन' । ५. मो. भुन (=भउन), धा. अ. फ. भौन, ना. भौम, उ. स. भौन, म. भौन ।

(२) १. धा. भ्रिग लहि, अ. फ. मगही, म. उ. स. मगलह, ना. मंडलहि । २. मो. फिरि करि (=करइ), धा. करे फिरि, अ. फ. कियौ फिरि (फिर-फ.), ना. म. उ. स. करहि (करहि-म) फिरि । ३. मो. गुन (=गउन), धा. अ. ना. गौन, फ. गौनु, उ. स. गौन, म. गौन ।

टिप्पणी—(१) सह=साथ ।

[२५]

गाथा मुडिह— पानि परसि^१ अरु दीठ विलगिगय^२ । (१)
सा^१ सुंदरि^२ कामागनि^३ जगिगय^४ ॥ (२)
षिनु तनु तलप^१ अलप मन किन्नउ^२ । (३)
जउ^{*२*} वरु^२ बारि^३ गए^४ तनु^५ मीनउ^६ ॥ (४)

अर्थ—(१) [संयोगिता ने पृथ्वीराज के] पाणि का स्पर्श किया था, और [उससे उसकी] दृष्टि लग गई थी, (२) [इसलिए] उस सुन्दरी की कामाग्नि जाग उठी थी । (३) एक क्षण [के लिए] वह शरीर से तल्प (पर्यङ्क) पर चली गई और उसने मन को छोटा कर लिया, (४) [उस के शरीर की दशा कैसी हो रही थी] जैसी श्रेष्ठ जल के शेष न रहने पर मछली के शरीर की होती है ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

(१) मो. परस्य (=परसि), धा. अ. फ. उ. स. परस, म. परसि । २. धा. द्रिस्टि, अ. दिष्टि, फ. दिष्ट, ना. द्रष्टि, म. उ. स. दिठ्ठ । ३. मो. म. विलगीय (=विलगिगय), अ. फ. विलगिगय, धा. अलगिगय ।

(२) १. म. सुअ । २. फ. सुदरु । ३. मो. कामागति, अ. फ. कामगिनि, उ. कामाजिन, स. कामागिन । ४. मो. जगीय ।

(३) १. धा. षन तलप, मो. षिनु तनु तलप, अ. फ. षन तलाप, ना. उ. स. षिन तलपह, म. विनत षन । २. मो. अलय मन किनु (किनउ), धा. अलप मनु कीने, अ. फ. लाम मनु कीनउ (कीनौ-फ.), म. तपह मन कीनौ, ना. उ. स. अलपह मन कीनौ ।

(४) १. मो. युं (< जु=), धा. जै, अ. फ. ज्यौ, ना. ज्यु (=ज्यउं), उ. स. ज्यौ, म. जौ ।
२. धा. वहि । ३. फ. वार । ४. धा. उ. स. गये, म. अ. गय, ना. गये, फ. गयो । ५. अ. फ. उ. स.
तन, म. तिन । ६. धा. माने, मो. मानु (=मानउ), म. ना. फ. मीनौ (मीनौ-ना.), अ. मीनउ ।

टिप्पणी—(३) तलप < तल्प=पर्यङ्क ।

[२६]

अडिल— फिरि फिरि^१ बाल^२ गवषिन^३ अषी^४ । (१)
ता सिष देहि^१ वयन^२ वर सषी^३ ॥ (२)
विन^१ उत्तर तु मौन^२ सुष^३ रषी^४ ।+(३)
जिम चातुकि पावस रति नषी^१ ॥+(४)

अर्थ—(१) बाला (संयोगिता) की आँख पुनः-पुनः [जाते हुए पृथ्वीराज को देखने के लिए] गवाक्षों में [जा लगती], (२) ता उसको उसकी सखियों श्रष्ट वचनों में सीख देती । (३) [किन्तु संयोगिता] उन्हें उत्तर दिए बिना मुख को मौन रखती, (४) जिस प्रकार चातकी पावस ऋतु को बिताती है ।

पाठान्तर—+ चिह्नित चरण फ. में नहीं हैं ।

(१) १. मो. फिर फिर । २. फ. बालि । ३. धा. गवखइ, मो. गवाषिन, अ. गवषिनि, फ. गवषिन, उ. स. गवषनि, म. गरबनि, ना. गवषन । ४. मो. अषी (=अषी), धा. अषी, शेष में 'अषिय' ।

(२) १. फ. सुषदेह, अ. सषि देहि, म. ना. सिष दैन, ना. उ. स. सिख देन । २. ना. म. बैन, फ. वयर । ३. मो. संषी (=सषी), ना. म. सिषीय ।

(३) १. धा. विनु । २. धा. अ. मोहन, ना. उ. स. सु मौन, म. सौ मौन । ३. मो. मष, ना. म. उ. स. मन । ४. ना. म. रषीय ।

(४) १. धा. जिम चातग पावस ऋतु नखी, मो. जीम (=जिम) चातुकि (< चातुकि) पावस रति नषीय (=नषीय), अ. ना. जिमि चात्रिक (चात्रिग जिम-ना.) पावस रितु नषिय, म. उ. स. मन वच क्रम प्रीतम रस कषिय (चषीय-म.) ।

टिप्पणी—(१) अषी < अक्षि=आँख । (२) सिष < शिक्षा । (४) रति < ऋतु । नष < नश=काटना, बिताना ।

[२७]

मुडिल— अंगना अंग सउ^{*१} चंदनु लावइ^{*२} ।+(१)
अरु अंगन लाजन^१ समुझावइ^{*२} ॥+(२)
दे^१ अंचल चंचल द्रिग सुदइ^{*२} । (३)
कुल सभाउ^१ तुरी जिम कुदइ^{*२} ॥ (४)

अर्थ—(१) वह अंगना (संयोगिता) अपने अंगों से चन्दन लगाती, (२) और अपने अंगों को लजावश समझाती [कि उन्हें अपनी आतुरता प्रकट न करनी चाहिए], (३) वह अंचल

देकर अपने चंचल नेत्रों को मूँदती, (४) [किन्तु वे उसी प्रकार न मानते] जिस प्रकार अपने कुल-स्वभाव के कारण [बाँधने पर भी] घोड़ा कूदा-उछला करता है ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) + चिह्नित चरण फ. में नहीं है ।

१. मो. अगना अग सु (=सउ), धा. अगना अंगह, अ. अगन अंजन, ना अगनि अंग सु, म. उ. स अगन अगसु । २. मो. चदन लावि (=लावइ), धा ना. म. उ. स. चंदनु (चदन-ना. म. उ. स.) लावहि, अ. चंदन चाचहि ।

(२) १. धा. असु लाजनु राजनु, अ. अरु लाजन राजन, म. ना. उ. स, अरु राजन लाजन । २. मो. समुझावि (=समुझावइ), धा. अ. फ. म. उ. स. ना समुझावहि (समझानहि-म.) ।

(३) अ. फ. म. ना. उ. स. दे । २. मो. मुदि (=मुदइ), ना. म. अ. मुदहि, फ. सुदहि, शेष में 'मूँदहि' (सुंदहि-अ. फ.) ।

(४) १. धा. अ. फ. ना. कुल सुहाइ (सुभाइ-अ. ना., सभाइ-फ.) तुरिया जिम (जिय-धा., जिमि-अ. फ.) पुदहि, मो. कुल सभाउ तुरी जिम कुदि (=कुदइ), म. उ. स विर (चिर-म.) हायन दाहन रवि उददहि ।

टिप्पणी—(३) मुदइ < मुद्रय=बंद करना, मूँदना ।

[२८]

मुडिल— बहुत जतन संजोगी* समवे^१ । (१)
सोम अमृत कमल तुम्ह नु छवे^२ ॥ (२)
इह कहि बाल गवक्षिन* पत्तिय^३ । (३)
पति देषत^४ मन महि^२ नहि रत्तिय^३ ॥ (४)

अर्थ—(१) संयोगिता ने [विकलता-निवारण के लिए] बहुतेरे यत्न किए [किन्तु वे व्यर्थ गए यह देखकर उसने कहा,] (२) “हे सोम (चन्द्रमा), अमृत, और कमल, तुम्हें कोई भले ही न छुवे [क्यों कि तुम्हारे स्पर्श से शीतलता की अपेक्षा करना व्यर्थ है।]” (३) यह कह कर वह बाला गवाक्षों को सप्राप्त हुई (पहुँची) । (४) किन्तु जब उसने पति (पृथ्वीराज) को [युद्ध में न लगकर अपने पास आते] देखा, वह मन में [उस पर] रक्त (प्रसन्नता) नहीं हुई ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. सयोगि (=सजोगी) समवे, म. सजोगि गमाए, शेष सब में 'सजोगि (सजोग-धा.), समाए' ।

(२) १. मो. सोम अमृत कमल तुम्ह न छवै, धा. ना अ. फ. सोम कमल अमृत दरसाए, ना. म. उ. स. सोम (जनु सोम-म. उ.) कमल दिनयर (दिणयर-ना., दनियर-म.) दरसाए ।

(३) १. मो. इह कहि बाल गवाक्षिन (=गवाक्षिन) पत्तिय, धा. अ. फ. ना. म. उ. स. उझकि झकि (झझकि-म.) दिषुउ (दिख्यो-धा. उ. स., दिष्यौ-ना. म.) पन पत्तिय (पुन पत्तिय-धा. प्रनपत्तिय म. उ. स., प्रणपत्तिय-ना.) ।

(४) १. धा. देष्यो, अ. देषन, फ. देषति, ना. म. उ. स. दिषत । २. मो. मिहि (< महि) । ३. धा. अ. फ. ना. अनुरत्तिय, म. उ. स. अलिरत्तिय ।

टिप्पणी—(१) सम्ब (सम्+अब्) = लगाना, प्रयुक्त करना। (२) तु (णु) = व्यंग्य, अपमान अथवा अमान सूचक अव्यय। छव < छिय < स्पृश्=छूना। (३) गवष् < गवाक्ष। पत्त < प्राप्त। (४) रत्त < रक्त।

[२६]

श्लोक— गुरु जनो जि मनो^१ नास्ति तात आत्तात वर्जिता । (१)
तस्य कार्य^२ विनस्यंति यावत्^३ चंद्र दिवाकर^४ ॥ (२)

अर्थ—(१) [संयोगिता ने अपने मन में कहा,] “यदि किसीके मन में गुरुजन [के प्रति आदर] नहीं होता है, और वह तात (पिता) तथा आत्त (ज्ञानी पुरुषों) से वर्जित (रहित) रहता है, (२) तो उसके कार्य जब तक चंद्र तथा दिवाकर होते हैं—अर्थात् सदैव—नष्ट होते हैं।”

पाठान्तर—(१) धा गुरुजनो नाम, अ. फ. गुरुजनो नमो, ना. गुरुजन जमो, म. गुरुजनं नमो, उ. गुरु जनं मयो, स. गुरुजनं मनो। २. धा. अ फ तात मात विवर्जितः, म. उ. स. तात आत्ता (अज्ञा-म. उ.) विवर्जित। ना. तात तातअ विवर्जितः।

(२) १. धा. म, ना. म. उ. स अ. फ. कार्य (कार्य-ना. म. उ. स) म. कारज्यं। २. धा. जाम। ३. मो. म. उ चंद्र दिवाकर, धा. चंद्र दिवाकरः, अ. फ. चंद्रो दिवाकर, ना. स. चंद्र दिवाकरौ।

टिप्पणी (१) आत्त < आत्त = ज्ञानी पुरुष।

[३०]

दोहरा—इह^१ कहि सिर धुनि सखिन सउ^{*२} दिषि^३ सजोगि^४ सुरज^५ । (१)
जिहि^१ प्रिय तन अंगलि फिरइ^२ तिहि^३ प्रियजन^४ कहा^{*५} कज^५ ॥ (२)

अर्थ—(१) राजा (पृथ्वीराज) को देख कर संयोगिता ने सखियों से यह कहा और सिर पीट लिया, (२) “[सखियों,] जिस प्रिय की ओर [लोगों की] उगलियाँ फिरे—उठें, उस प्रियजन से [ही] क्या कार्य (प्रयोजन) ?”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. अ. ना. यह। २. मो. सुधिन सु (=सउं), ना. सधिन सुं (=सउं), धा. उ. स. सखिनि सौं, अ. सखिनि स्यौं, म. फ. सखिन सौं, ना. सधिन सु। ३. धा. अ. फ. दिषि। ४. मो. सयोग सु, फ. सजोग सु, ना. म. उ. स. संजोगिय। ५. म. में ‘रज्ज’, शेष सभी में ‘राज’।

(२) १. फ. जिहु, म. जिहि। २. मो. प्रियजन अंगलि फिरइ, धा. प्रियजन अंगुलि फिरिय, अ. प्रियतन अंगुलि फिरै, फ. प्रियतनु अंगुलि फिरहि, ना. प्रियन अंगुलि फिरै, म. उ. स. प्रियजन अंगुलि करै। ३. धा. ना. प्र. उ. स. तिहि, अ. फ. सो। ४. मो. प्रियजन। ५. मो. कहा कज्ज, धा. कह काज, अ. म. उ. स. किहि काज, फ. कहि काज, ना. कह काज।

टिप्पणी—(२) कहा कथन् < कथ ।

[३१]

दोहा— सुनत^१ सामंतन^२ सत्त कहि^३ पंग पुत्ति^४ धर मंथ^५ । (१)
इहि सत्थहि सामंत सुभट^१ ज वइ^{*२} ठिल्लहि^३ गय^४ दंत ॥ (२)

अर्थ—(१) यह सुनते ही सामन्तों ने सत्य [ही] कहा, “हे पंगपुत्री (सयोगिता), यह [पृथ्वीराज] जो धरा का मस्तक है, और इसके साथ जो सामन्त सुभट है, वे हाथियों के दाँतों को भी ठेल देते हैं, [इसलिए यह न समझना कि पृथ्वीराज युद्ध में भयभीत होकर तुम्हारे पास आया है ।]”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है ।

(१) १. धा. सुनि, ना. म. स. ए । २. धा. सावतनि, ना. सामतहि, म. सामंत जु, स. सावंत जु । ३. धा. सत्त कहि, मो. सत्त किहि । ४. धा. पुत्ति । ५. धा. ना स. घटि मंत, म. घट मत्त ।

(२) १. मो. इहि सत्थहि थत्त सुभट, धा. तुम्ह सत्थहि सामन्त सुभट, ना. इह सत्थ सत्त भट सुभट, म. स. एक लष्भ भर लष्भियँ (लषयौ-म.) । २. मो. ज वि (=वइ), धा. ले, ना. म. जे, स. जै । ३. धा. ठिल्लहि, म. गढै, ना. स. कहै । ४. धा. म. ना. स. गज ।

टिप्पणी—(१) धर < धरा । मंथ < मस्तक । (२) गय < गन ।

[३२]

गाथा— मदन^१ सराल ति विवहा^२ निमिष दइत^३ प्रांन प्राणेन^४ । (१)
नयन^१ प्रवाह ति^२ विवहा दिवा कथय कथा^३ ॥ (२)

अर्थ—(१) मदन के शर रूपी काल से विनष्टा [सयोगिता] के प्राण एक क्षण के लिए दयित (प्रिय, पति) के प्राणों से [अभिन्न रहे] । (२) [किन्तु] उस विनष्टा के नेत्र-प्रवाह उस दिवस की कथा कहते ही रहे ।

पाठान्तर—(१) १. स. मदनं । २. मो. सरालति विवहा, स. सरालति विविहा, म. सराल निवहा, फ. सरालति विषहा । ३. मो. निमिष दइति, धा. विविहारे देत, अ. फ. विवहा (विवह-फ.) देत, म. ना. उ. स. जिह्वा रट्योति । ४. ना. मान प्रायेन, उ. स. प्राज प्राणेन ।

(२) १. ना. पत । २. धा. प्रवाहि, अ. प्रवाहित, फ. प्रवाहिन । ३. धा. अहवा कामा कथ दोइ, अ. फ. अहवा कांती कथा, ना. अहवामा कांती कथा, म. उ. स. अहवमां कत (कंत-उ. स.) कथायं ।

टिप्पणी—आल < काल । विवहण < विव्यवधन=विनाश । दइत < दयित=प्रिय ।

[३३]

कवित्त— हे^१ पृथ्वीराज वामंग^२ सग जो^३ कन्ह^४ नन्ह^५ दल ।^० (१)
हउं^{*१} चहुआन समथ्य^२ हरउं^{*३} रिपुराय तथ्य बल^४ ।^० (२)
मोहि विरुद^१ नरनाह दंद को^२ करइ^{*३} भुवनि^४ वर ।^० (३)
मोहि कप^१ सुरलोक कंप तपिय तह^२ नाग^३ नर । (४)

मम कंषि कपि^१ सुदरि^२ सपहु^३ चडिग^४ कोडि कायर^५ रषत^६ । (५)

इहि^१ भुवनि^२ ठिल्लि^३ कनवज्ज करउ^{४*} इहि^५ अप्पउ^{६*} ठिल्लिय^७ तषत ॥ (६)

अर्थ—(१) [यह देख कर कन्ह ने पुनः कहा] “हे पृथ्वीराज की वामाङ्ग, यदि कन्ह के साथ नन्ह-सा भी दल हो, (२) तो मैं समर्थ चहुवान रिपुराज से वहाँ (रण-क्षेत्र में) [उसका] बल हर लूँ। (३) मेरा विरुद्ध ‘नरनाह’ है, कौन मुझसे [अपनी] भुजाओं के बल से द्वन्द्व करेगा ? (४) मुझसे सुरगण कौपते हैं, आर उसी प्रकार नाग और नरगण कौपते आर तप्त होते हैं। (५) हे सुन्दरी, तुम मत कौपो, मत कौपो, कोटि कायर रक्षित (भृत्य) [अपने] प्रभु (जयचन्द) के साथ चढ चुके—चढाई कर चुके हैं। (६) [फिर भी] मैं [अपनी] इन भुजाओं से कन्नौज को दिखी कर सकता हूँ और इस (तुम्हारे पति) को दिखी का तखत अर्पित कर सकता हूँ।”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के पाठ हैं।

० चिह्नित चरण धा. में नहीं हैं।

(१) १. अ. फ. में यह शब्द नहीं है। २. मो. प्रथिराज वमांग, ना. पृथीयराज वामग। ३ अ. फ. म. उ. स. ना. जो। ४. मो. कन, शेष में ‘कन्ह’। ५. अ. उ. स. नन्ह, फ. मन, म. न, ना तौ नन्ह।

(२) १. मो. हू (<हुं=हउ), अ. फ. हौ, म. ना हु (=हउ), स. हौ। २. मो. सममथ, अ. फ. समच्छ। ३. मा. हरु (=हरउ), अ. फ. हरौ, ना. हरु (=हरउ—ना.), स. हरू, म. हनौ, उ. हरौ। ४. मो. रिपुराय तिथ्य बल, अ. फ. रिपुराइ तथ्यबल, ना. उ. स. रिपुराइ भुजन (भुजनि—ना.) बल, म. रिपुराय भुजबल। (तुलना-चरण ३)

(३) १. ना. विरद। २. मो. अ. चंद को, ना. दुंद को, म. उ. स. दद को, अ. चंद कौ, फ. चद कौ। ३. मो. करि (=करइ), अ. फ. ना. म. उ. स. करै। ४. म. भुजन, उ. स. भुजन।

(४) १. धा. अ. फ. म. उ. स. मो कपहि, ना. मुहि कपै। २. मो. कप तपिय तह, धा. अ. फ. सत्त पायाल (पाताल—धा.), ना. पन्न पन्नग अरु, म. उ. स. पति पनगरु (पगनरु—म.)। ३. ना. नाम, म. भ्रम, उ. स. भूमि।

(५) १. धा. अ. फ. जंपि, ना. सकि, म. स. चपि, उ. में यह शब्द नहीं है। २. फ. सुंदर, म. सुदर। ३. मो. सपहु, धा. अ. सपहु, ना. म. उ. स. सुपहु। ४. मो. चडिग, धा. चिडिग, अ. चडिग, म. चडिगे, फ. चडिग, ना. स. चडिग। ५. धा. कोरि काइर, अ. फ. कोर काइर (काइर—फ.), ना. कोरि कायर, म. उ. स. कोटि कायर। ६. फ. रक्खति।

(६) १. अ. फ. इह, ना. म. उ. स. इन। २. धा. अ. फ. भुवहि, ना. म. स. भुजन, उ. भुज्ज। ३. मो. अ. फ. ठिल्लि, ना. उ. स. ठेलि। ४. धा. कनवज करउ, मो. कनवज करु (=करउ), ना. कनवज करु (=करउं) अ. फ. कनवज्जनी, म. उ. स. कनवज्ज कौ। ५. धा. इह, अ. फ. ना तुहि, म. तौ, स. तौ, उ. तो। ६. मो. ना. अप्पुं (=अप्पउ), धा. अप्पउं, अ. फ. अप्पौ, स. अप्पौ, म. थपहु। ७. ना. स. दिखी, अ. फ. दिखिय, म. दखी।

टिप्पणी—(२) समथ्य < समर्थ। तथ्य < तत्र=वहाँ। (३) दंद < द्वन्द्व। भुव < भुज। वर < बल। (४) तह < तथा। (५) पहु < प्रभु। काडि < काटि। रषत < रक्षित=भृत्य। (६) भुव < भुज।

[३४]

रासा— सुंदरि सोचि^१ समच्छिम^२ गहगह^३ कउ भरि। (१)

तवहि^१ प्रान^२ प्रथिराज^३ त षचिअ^४ बाहु करि^५ ॥ (२)

दिय हय पुठिय^१ भार^२ सु^३ सव्व सु लप्पिनउ^{*४} (३)
करति^१ तुरंग सुरंग^२ पुछ्छि ति वछ्छ नउ^३ ॥ (४)

अर्थ—(१) समक्ष (प्रत्यक्ष के विषय—युद्ध) को सोच कर सुन्दरी हर्ष से पूरित हो गई और [उसने] कंठ भर लिया, (२) तब उसके प्राण पृथ्वीराज ने उसे [उसकी] बाँह के द्वारा खींच लिया, (३) और उस सर्व सुलक्षणा का भार घोड़े की पीठ को दिया, (४) और वह तुरंग घोड़ा भी पूछ तथा छाती के सुरंग (सुन्दर खेल) करने लगा।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं।

‡ चिह्नित शब्द फ. में नहीं है।

(१) १. फ. सोच। २. धा. समज्झि, अ. समुज्झि सु, फ. सम्मज्झ सु, उ. स. समुज्झित ना. समुज्झिन, म. विचारि। ३. धा. गहग्गह, म. समझीय।

(२) १. मो. तबहु, धा. तबहि, फ. तबाह, शेष में 'तबहि'। २. धा. प्राण, अ. फ. राज, म. पान, ना. उ. स. पानि। ३. धा. प्रिथिराइ। ४. धा. सु पिचिय, अ. सुषंचिय, म. सु षचीय, फ. सुवीय। ५. अ. फ. बाहु भरि, म. ना. बाह करि।

(३) १. मो. पुत्तिय, अ. म. उ. स. पुठ्ठि, फ. पुठ्ठि, ना. पुच्छि। २. धा. भानु, म. उ. भीर, स. भोर। ३. धा. अ. जु, फ. ज, ना. में यह शब्द नहीं है। ४. मो. सर्व सुलिप्पिनउ, धा. अ. फ. सव्व सुलच्छिनिय, म. उ. स. सव्व सुलच्छिनिय, ना. सवु सुलप्पिनौ।

(४) १. धा. करउ, अ. ना. म. उ. स. करत। २. म. सुर। ३. मो. पुछ्छित वछ्छनउ, धा. स पुच्छति वच्छ निय, अ. फ. ति (सु-फ.) पुछ्छनि अछ्छनिय, उ. स. सु पुच्छनि वच्छ निय, म. पुठिनि ववनीय, ना. सु पुछनि वच्छनौ।

टिप्पणी—(१) समच्छ < समक्ष। गहग्गह [दे०]=हर्ष से भर जाना। (३) पुठ्ठि < पृष्ठ। सुलप्पि < सुलक्षणी। (४) पुछ्छि < पुच्छ। वछ्छ < वक्ष।

७ . पृथ्वीराज-जयचन्द-युद्ध (पूर्वार्द्ध)

[१]

दोहरा—परणि^१ राउ^२ दिल्ली मुषह^३ रुष किन्निय^{*४} मज^५ आस । (१)
कहइ^{*१} चंद नृप पंग सउ^{*२} बिहि^३ जुध जुहि^४ जम हास^५ ॥ (२)

अर्थ—(१) राजा (पृथ्वीराज) ने संयोगिता का परिणय करके दिल्ली की ओर रुख (मुँह) करने की मन में आशा की । (२) चंद ने इस समय पंगराज (जयचंद) से [इस प्रकार] कहा, जिससे यम (काल) के हास [सहस्र] युद्ध जुटे (हों) ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. फ. परन । २. ना. १. राज, म. राय, स. राइ । ३. धा. अ. फ. समुह, मो. ना. मुषह, म. समुष, उ. स. सुमुष । ४. मो. रुष कनीअ, धा. रुष कीनी, अ. फ. रुष किन्निय, ना. मुषि कि भाय, म. उ. स. रुष किन्नौ । ५. धा. मनु ।

(२) १. मो. किहि (=किहइ), धा. ना. कहहि, ना. कहिहि, अ. फ. कहै, म. उ. स. कहौ । २. मो. पंगसू (=सउ), धा. पंग रख, अ. फ. म. उ. स. पंग दल, ना. सग मौ । ३. ना. जिहि जुद्ध, धा. जुज्झ, मो. युध, अ. फ. म. उ. स. जुद्ध । ४. मो. जुरिहि, धा. अ. फ. ना. जुरहि, म. उ. स. जुरै । ५. मो. यम दास, धा. जिम दास, ना. जम हास ।

टिप्पणी—(१) रुष < फा० रुख=मुँह ।

[२]

गाथा— स ज रिपु^१ दिल्लीनाथ^२ सो ध्वंसनं जगियं आये^३ । (१)
परणेव^४ तव^५ पुत्री युध्वं^६ मंगति^७ भूषनं^८ सोइ^९ ॥ (२)

अर्थ—(१) “जो तुम्हारा रिपु दिल्लीश्वर है, वह तुम्हारे यज्ञ को ध्वस्त करने आया था । (२) तुम्हारी पुत्री को परिणीत करके अब वही तुमसे [तुम्हारी कन्या के लिए] आभूषण [के रूप में] युद्ध माँग रहा है ।”

पाठान्तर—(१) १. धा. अ. फ. सय रिपु, मो. सो ज रिपु, ना. सायाह, उ. स. सायाहि, म. सायादि । २. धा. दिल्ली नाथो, अ. फ. दिल्लीनाथे, म. उ. स. दिल्लीनाथो, ना. दिल्ली थान । ३. धा. स एव आला अम्य धुसन, अ. फ. स एव ए आये या पध्वसनाय, उ. स. साय तु जय विध्वसनो, म. साप तु जिग बिध्वसनो, ना. साय तु जग पविद्धसन ।

(२) १. मो. परणेव, फ. परनौवा, शेष में ‘परणेवा’ या ‘परनेवा’ । २. मो. तव, शेष में ‘पंग’ या ‘पगु’ । ३. धा. ए जुद्ध, अ. फ. जुद्धाह (युद्धाह-फ.) । ४. अ. फ. ना. मागति, म. मागत, स. मांगत । ५. फ. भूषनु । ६. युध्वं शब्द मो. के अतिरिक्त किसी में नहीं है ।

[३]

दोहरा—सुनि सवनन^१ बहुआन कउ^{*२} भयउ^{*३} निसानहि^४ घाउ^५ । (१)
जानु भदव^१ रवि अस्तमन^२ चंपइ^{*३} वदल^४ वाउ^५ ॥ (२)

अर्थ—(१) श्रवणों से चहुआन (पृथ्वीराज) को सुनने पर निशानो पर [इस प्रकार] आघात हुआ [और जयचंद की सेना चारो ओर से दौड़ पड़ी] (२) मानो भादो में अस्त होते हुए सूर्य को वायु [और उससे प्रेरित] बादल दबा (घेर) ले ।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मा. सुनी श्रवन, म. सुन श्रवनन, शे. ष में 'सुनि सवननि' (या 'श्रवननि') । २. मो. चहुआन कुं (= कउ), धा. अ. फ. प्रथिराज कहुं (कह-धा), ना. म. उ. स. चहुवान (कौं-म, को-उ. स.) । ३. मो. भयु (= भयउ), धा. उ. स. भयो, म. अ. फ. ना. भयौ । ४. धा. अ. ना. निसानह, म. उ. स. निसानन । ५. अ. म. उ. स. घाव, ना. थाउ ।

(२) १. धा. उ. भदव, अ. फ. ज्यौ भदवं, म. जनौ भदव, ना. जनुभदव (= भदवं), उ. स. जनु भदव । २. धा. असमनह, अ. अस्तगह, फ. आगस्तगहु, न. उ. स. अस्तमनि । ३. मो. चपि (= चपइ) धा., म. उ. स. चपिय, ना. चपहि, अ. चंपय, फ. चप । ४. फ. बइठ दल । ५. म. अ. बाव, स. बांव ।

टिप्पणी—(१) भदव < भाद्रपद । अस्तमन < अस्तमायन = अस्त होता हुआ ।

[४]

भमरावलि—सलिता जन^१ सत्त समुह^२ लियं । (१)
दुहु राय^१ महाभर^२ यं^३ मिलियं ॥ (२)
करकादि निसा^१ मकरादि दिनं । (३)
वर^१ वधति^२ सेन दुआल मनं ॥ (४)
दुहु राय^१ रषत्त^२ ति रत्त^३ उठे^{*४} । (५)
बिहुरे जन^१ पावस अम्भ^२ बुठे^{*३} ॥ (६)
निसि अध्व विठे ति^१ निसांन घुरे । (७)
दरिआइन^१ जान^२ पहार^३ गु रे^४ ॥ (८)
सहनाइ नफेरिय काहलियं^१ । (९)
रस वीरह वीर चली मिलियं^१ ॥ (१०)
घननंक ति घट^१ ति घंट^२ घुरं^३ । (११)
कल कउतिग^{*१} देव पयाल पुरं ॥ (१२)
लंगि अंबर^१ बंबर^२ डंबरियं^३ । (१३)
बिसरी दिसि अठ ति धुंवरियं^१ ॥ (१४)
समसेर दुसेर^१ समाहि लसइ^{*२} ।[×] (१५)
दमकइ^{*१} दल^० मम्मि^{०२} तराइन^० सइ^{*३०} ॥[×] (१६)

चमके चवरण^१ सनाह घनं ।+[×] (१७)
 प्रति विवित^२ मित्त मउष^३ वनं ॥+[×] (१८)
 दरसी दल कांदल फलरियं^० ।^२ (१९)
 समरे घर कायर बलरियं ॥ (२०)
 जिनके मुष सुच्छ ति मच्छरियं^२ । (२१)
 निरषे तिनके^२ तन अच्छरियं^२ ॥+[×] (२२)
 त्रिप जोय फवज्जह^२ बंदि लियं ॥^३ (२३)

अर्थ—(१) सरिताएँ मानो सप्त सिन्धु में लित हो रही (मिल रही) हों, (२) इस प्रकार लगा जब दोनों राजाओं के महाभट मिले । (३) कर्क के आदि से रात्रि तथा मकर के आदि से दिन [जिस प्रकार बढ़ता है], (४) [उसी प्रकार] सेनाओं के द्विपादों (सेनिकों) के मन [उत्साह से] खूब बढ़ रहे थे । (५) दोनों राजाओं के रक्षित (भृत्य) युद्ध के लिए राते हो उठे, (६) मानो पावस के बहुरने (लौटने) पर बादल व्युत्थित हुए हों—उमड़ पड़े हों । (७) आधी रात्रि के विदूत (अर्जित—प्राप्त) होने पर निशान (घोंसे) घुमड़ पड़े, (८) [और ऐसा लगा] मानो समुद्रों में पहाड़ गिर पड़े हो । (९) शहनाई, नफीरी और काहल [की सम्मिलित ध्वनि में] (१०) वीरों का वीर रस मिल चला । (११) घटों ही घटों का घन-घन घुमड़ने लगा, (१२) और कलह का कौतुक देवपुर (आकाश) और पातालपुर में [व्याप्त हो रहा] । (१३) बबर (धूल) का डंबर आकाश में जा लगा, (१४) और अष्ट दिशाएँ धुंधलेपन के कारण विस्मृत हो गईं । (१५) शमशीर (तलवार) और दुसेल (दोमुहें सेल) की समाह (सजा) शोभित हो रही थी; (१६) वह (सेना) के मध्य इस प्रकार दमक रही थी जैसे [आकाश में] तारागण हों । (१७) चतुरंगिणी सेना का सघन सन्नाह चमक रहा था, (१८) [और] मित्र (सूर्य) का मयूख-वन (किरण-जाल) उसमें प्रतिबिम्बित हो रहा था । (१९) कंदल (युद्ध) के [लिए तैयार] उन दलों की झालरे दरसी—दिखाई पड़ीं—तो (२०) कायरों ने [भागने के लिए] घर और वन का स्मरण किया । (२१) [किन्तु दूसरी ओर] जिनके मुखों पर मूछे थीं—जो वीर थे—और जो मरत्सय—पूर्ण थे, (२२) उनके शरीरों के लिए अप्पराएँ ओखें लगाए हुए थीं । (२३) नृप (पृथ्वीराज) ने [यह] देखकर फौज को बाँट लिया ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

§ चिह्नित चरण धा. में नहीं है ।

+ चिह्नित चरण अ. में नहीं है ।

× चिह्नित चरण फ. में नहीं है ।

० चिह्नित शब्द अथवा चरण ना. में नहीं है ।

(१) १. मो. धा. ना. जन, अ. ज्ञा स. जनु, फ. जाने । २. मो. मुद ।

(२) १. धा. दुइ राइ, अ. फ. दुहु राइ (दुहौ राइ—फ.) ना. दोऊ राय, ज्ञा. स. दोउ राज । २. फ. मउ । ३. अ. फ. यौ ।

(३) १. मो. नशा ।

(४) १. अ. फ. जनु (जनौ—फ.) । २. धा. वर्धति, फ. बद्धत, ना. वर्धत, ज्ञा. स. त्रिद्धत । ३. धा. दुवाल भवं, अ. दुपाल मन, फ. दुपालि मनं, ना. दुवाल मन, ज्ञा. स. दुवालमिनं ।

(५) १. धा. अ. दुहु राइ, (दुहौ राइ—फ.), ज्ञा. स. दोउ राज, ना. दोऊ राउ । २. धा. ना.

रषत्ति ति, अ. नरप्पति, ज्ञा. स. रषत्त सु । ३. अ. फ. रत्ति । ४. मो. उठि (=उठे), धा. अ. फ. ज्ञा. स. उठे ।

(६) १. मो. बिहुरे जन, धा. बिहुरे जनु, मो. अ. फ. बिहुरे जन, ज्ञा. स. बहुरे मन (मनु-ज्ञा.) ।

२. धा. अ. फ. अभ, ना. अभ्र । ३. मो. धा. अ. फ. उठे, ज्ञा. स. बुठे, ना. छुठे ।

(७) १. धा. विधत्त, अ. फ. विधेत, ना. बधेति, ज्ञा. स. विभत्ति । २. ज्ञा. स. धुरं ।

(८) १. धा. ना. ज्ञा. स. दरियादिव, अ. फ. दरिया दव । २. धा. ना. अ. फ. ज्ञा. स. जानि । ३. मो. पाहार, शेष सभी में 'पहार' । ४. धा. नुरे ।

(९) १. वा. सहवाइ फेरि कलाहलियं, मो. सहनीइ नफेरी कला हलियं, अ. फ. सहनाइ नफेरिय (नफीरिय-फ.) काहलिय, ना. ज्ञा. स. सहनाइ (सनाइ-ना.) नफेरि कुलाहलियं ।

(१०) १. अ. फ. चले मिलिय, ना. ज्ञा. स. मिले बलियं ।

(११) १. धा. अ. ठहनकित, फ. ठहनकिनि, ज्ञा. स. अ. ठहन कित, ना. धनंनकिन । २. धा. अ. फ. ना. ज्ञा. स. घट निवट, मो. घटति घूट । ३. ना. घुरें ।

(१२) १. धा. कल कोतिग, मो. कल कुतिग (=कडतिग), अ. फ. कल (कलि-फ.) कौतुक, ना. ज्ञा. स. कल कौतिग ।

(१३) १. ज्ञा. डबर, ना. अम्मर । २. ना. ढढर । ३. ना. ज्ञा. स. उमरियं ।

(१४) १. मं. अठु ति धुधरीय, अ. अध ति, धुधरिय, फ. अधि तु धुधरिय ।

(१५) १. अ. फ. रु सेल, ज्ञा. स. दुसेन । २. मो. समाहि लसि (=लमइ), धा. समाइ निसे, अ. फ. सवाइनि सौ, ज्ञा. स. समाइ नसे, ना. समाहि नसे ।

(१६) १. मो. दमकि (=दमकइ), धा. ना. दमके, अ. फ. ज्ञा. स. दमकै । २. मो. मध्य, धा. अ. फ. मझि, ज्ञा. स. मधि । ३. मो. सि (सइ), अ. फ. सौं ।

(१७) १. धा. चमके चत्तरग, ज्ञा. स. चमकै चवरग ।

(१८) १. धा. प्रतिविवित, ज्ञा. स. प्रतिविव ति । २. धा. मित्ति सज्ज, ज्ञा. स. मित मयूष, ना. मित्त मयूष ।

(१९) १. धा. दरसे दल बद्दल ढलरिया, अ. फ. दरसी दल कीबर ढलरिया, ज्ञा. स. दरसी दल की दल ढलरियं ।

(२०) १. मो. समरी (< समरि < समरे) घर, ना. अ. सुमिरे घर, फ. सुमरे घर, ज्ञा. स. सुमिरै घर । २. अ. फ. बलरिया ।

(२१) १. धा. मुछति मुछरिया, अ. मुछ रु मछ्छरियं, ना. मूछनि मछरीयं, ज्ञा. स. मुछ नमछ्छरिय, फ. मुछ नरु मछ्छरियौ ।

(२२) १. अ. फ. तन केतन । २. फ. अछ्छरियौ ।

(२३) १. धा. फवज्जनि, अ. फवज्ज ति, फ. फवजि तु । २. धा. बट्टि (< बंटि), मो. बटि, अ. बदि, फ. बंद । ३. यहाँ सभी प्रतियों में निम्नलिखित चरण और हैं (धा. पाठ) :—

मुइ माहिरिक चवक राउ दिय ।

भुज दच्छिन अन्वुअ राउ रन्व्यो ।

सिरि छत्र सप्पेत्त जु आनि सन्व्यो ।

भय की दिसि वाम पंडोर भख्यौ ।

कट कध कवध गिरंग लर्यो ।

कूरमे अरंभ जु अंभ अनी ।

सु धरी कवि चद सुनी सु मनी ।

दल पुठ्ठि न मोरिय राउ सुन्यो ।

कवियत्तनि संच सुन्यो सु मन्यो ।

निरवाह चंदेल ति जदमने ।
हय मुक्ति लरे जम स जुरने ।
तिनि मज्झि त संभरि वायु जिसो ।
भुज अर्जुन अर्जुन राउ जिसो ।
भमराउउलि छद प्रवान थियं ।
त्रिप जोइ फवज्जइ वट लिय ।

अग्निम चरण दो बार आया है, और उसकी यह पुनरावृत्ति हाशिये के लेख के सम्मिलित किए जाने के कारण हुई जात होती है, इसलिए पुनरावृत्ति के बीच की पंक्तियाँ प्रक्षिप्त जानी गई हैं ।

टिप्पणी—(१) सलिता < सरिता । समुद्ध < समुद्र । (२) भर < मट । (४) वध्व < वर्धय् । द्विप=दो पैर वाले, मनुष्य । (५) रषत्त < रक्षित=भृत्य । रत्त < रक्त । (६) अभ < अत्र । बुठे < व्युत्थित । (७) विहे < विहत्त [दे०]=अर्जित, प्राप्त । (१२) कठतिग < कौतुक । पयाल < पाताल । (१६) तराइन < तारागण । (१७) चवरंग < चतुरंग । (१८) मित्त < मित्र=सूर्य । मउष्य < मरूख । (१९) काँदल < कन्दल=युद्ध । (२०) वल्लर=वन, अरण्य । (२१) मुच्छ < स्मश्रु । मच्छर < मात्सर्य । (२२) अछछरी < अप्सरा ।

[५]

कवित्त— य^१ दिन रोस रठिवर^२ चपि चहुवांन गहन^३ कह^४ । (१)
सउ^{*१} उप्परि^२ सउ^{*३} सहस बीह^४ अगनित लष्य दह^५ । (२)
तुटि^१ गिर जस^२ थल^३ भरिग^४ भजिग^५ जल गंग प्रवाहह^{*६} । (३)
सह अछ्छरि^१ अछ्छहि^२ विमान^३ सुरलोक नाग तह^४ ।^X(४)
कहि^१ चंद दंद दुहु^२ दलि^३ भयउ^{*४} घन जिम सिरि^५ सारह भरिग^६ । (५)
भर सेस हरी^{०१} हर ब्रह्म तन^२ तिहि समाधि तिहि दिन^३ टरिग^४ ॥[‡](६)

अर्थ—(१) जिस दिन राठौर (जयचंद) को शेष हुआ और उसने [चारों ओर से] दवा (घेर) कर चहुवान (पृथ्वीराज) को पकड़ने के लिए कहा, (२) [उस दिन पृथ्वीराज के] सौ [राजपूतों] के ऊपर [जयचंद के] सौ हजार [दूट पड़े]; और [उसकी] अगणित वीथियों (पंक्तियों) में [तो] दस लाख [सैनिक] थे । (३) गिरियों के टूट-टूट कर गिरने से जैसे भूमि भरी, [उसी प्रकार] गंगा के प्रवाह का जल भी [समुद्र की ओर] भागा (वेग से प्रवाहित हुआ) । (४) सभी अप्सराएँ [मृत वीरों का स्वागत करने के लिए] विमानों पर सुरलोक तथा नागलोक में [आ डटी] । (५) चंद कहता है कि दोनों दलों में इन्द्र (युद्ध) हुआ, और बादलों के समान योद्धाओं के सिर पर तलवारे झड़ी । (६) [सेनाओं के] उस भार से शेष, हरि, हर, तथा ब्रह्मा की समाधि उस दिन टल (छूट) गई ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

० चिह्नित शब्द मो में नहीं हैं ।

X चिह्नित चरण म. में नहीं हैं ।

‡ यह छन्द ना. में दो स्थानों पर है: ३३. १०७ तथा ३५. ५ । दिए हुए पाठान्तर प्रथम स्थान पर के हैं ।

(१) १. धा. जि, ना. अ. फ. ज, म. उ. स. त । २. धा. राठौर, मो. रठिवर, अ. त. ना. राठौर, म. उ. स. रठौर । ३. अ. फ. गहम । ४. अ. फ. ना. कहु, म. उ. स. कहि ।

(२) १. मो. सु (=सड), धा. से, अ. फ. ना. म. उ. स. सौ । २. म. उ. स. उप्पर, फ. उप्पर । ३. मो. सु (=सउ), धा. से, ना. म. अ. फ. मौ, ना. उ. सै, स. स । ४. मो. दीह, धा. बीस, अ. फ. वीय, ना. विवह । ५. म. उ. स. दहि, ना. दहु ।

(३) १. धा. तुटि, अ. ना. डुटि, फ. पुटि, उ. स. छुटि, म. छुठि । २. मो. गिर जस, शेष में 'डूंगर' या 'डुगर' (डूगा-ना.) । ४. ना. सुरिग । ५. धा. अ. फ. भरिग, ना. भजिग, म. उ. स. फुटि (फुदि-स) । ६. मो. जलग प्रवाह [< प्रवाहह], धा. थल जलनि प्रवाहिग, अ. फ. म. उ. स. जल थलति (बलनि-अ. फ.) प्रवाहिग (प्रवाहिगु-फ.), ना. जलग प्रवाहिहि ।

(४) १. धा. अच्छर, ना. अत्थरि । २. मो. 'अछिछहि' ना. अत्थरि, शेष में 'अछ्छहि' । ३. अ. विवान, फ. विना, ना. विवानु । ४. मो. सुरलोक नर नाग तह, ना. सुरलोक नाग तिहि, शेष सभी में सुरलोक (सुरलोग-धा.) बनाइग (विनाइग-धा.) ।

(५) १. सभी प्रतियों में 'कहि' । २. यह शब्द मो. में नहीं है, धा. दुह, फ. दुहौ । ३. अ. फ. ना. दलि शेष, में 'दल' । ४. मो. भयु (=भयउ), धा. अ. ना. भयो, फ. म. उ. स. भयौ । ५. धा. सर, मो. ना. सिर । ६. धा. धरिग, अ. फ. झरिय, ना. झरिगु ।

(६) १. धा. भर सेसु हरी, अ. हर सेसहार, फ. हरि सेसहार, ना. धर सेसहार, म. उ. स. हरि सेस ईस । २. म. उ. स. ब्रह्मानि तनि (तति-म.) । ३. धा. अ. फ. तिहु, म. उ. स. तिहु, ना. त्रिहुं । ४. अ. फ. म. उ. स. तदिदन, ना. ता दिन । ५. अ. फ. डरिय, म. डरिग ।

टिप्पणी—(२) वीह < वीथि=श्रेणी, पंक्ति । (३) तुट < तुट=टूटना । गिर < गिरि । (४) सह=सभी । तह < तथा । (५) दद < दन्द्र । सार=लौह (तलवार आदि लौह के शस्त्रास्त्र) (६) भर < भार ।

[६]

भुजंग— सज्जतं^१ धूम धूमे^२ सुनंतं^३ । (१)
 कैंपिय^१ तीनपुर केलि पत्त^२ ॥ (२)
 डमरु डहडह किगं^२ गवरि कंतं । (३)
 जानियं^१ जोग जोगादि अंतं ॥ (४)
 किम किमे^१ सेस सिर^२ भार रहियं^६ । (५)
 किमे^१ उचासु रवि रथ्य नहियं ॥^० (६)
 कमल सुत कमल^१ नहि अंबु^२ लहियं । (७)
 संकियं ब्रह्म^१ ब्रह्मांड गहियं^२ ॥⁺ (८)
 राम^१ रावन्न कवि किन^२ कहिता^३ । (९)
 सकति^१ सुर महिष बलि दान^२ लहिता^३ ॥^० (१०)
 कंस^१ सिसुपाल पुरबवन^२ प्रभुता । (११)
 आमिया^१ जेन^२ भय लषि^{*३} सुरता^४ ॥ (१२)
 चडिअं^१ सूर आजान^२ बाहुं । (१३)
 तुटिग वन सघन^१ वढी नलाहुं^२ ॥ (१४)

गंग^१ जल जिमन^२ घर हलिय^३ ओजे^{*४} । (१५)
 पंगरे^१ राय राठउर^{*२} फोजे^३ ॥ (१६)
 उप्परइ^{*१} फोज^२ प्रथिराज^३ राजं । (१७)
 मनउ^{*१} वानरा लगिग लकाहि^२ गाजं^३ ॥ (१८)
 जगिगयं^१ देव देवा^२ उनिद^३ । (१९)
 दिष्पिय दीन इंद^१, फनिदं^{*२} ॥ (२०)
 चंपियं^१ भार पायाल दुंद^२ । (२१)
 उड्डिय^१ रेन^२ आयास मुदं ॥ (२२)
 लहइ^१ कोन^२ अगनित्त राउत्त रत्ता^३ । (२३)
 छत्र^१ पिति^२ भार दीसइ^{*३} न पत्ता ॥ (२४)
 आरंभ चक्की^१ रहे कोन^२ संता^३ । (२५)
 वाराह^१ रूपी न कवे^२ धरंता ॥ (२६)
 सेन सन्नाह नव^१ रूप रगा । (२७)
 मनउ^{*१} झिल्लि वइ^{*२} ति^३ त्रिनेत्र गंगा^३ ॥[×](२८)
 टोप टंकारि^१ दीसे^२ उतंगा ।[†](२९)
 मनउ^{*१} बइले पंत्ति^२ बंधी बिहंगा ॥[†](३०)
 जिरह जंगीन^१ गहि अंगि^२ लाई^३ । (३१)
 मनउ^{*१} कंठ कंथीन गोरष पाई^२ ॥ (३२)
 हथरे हथ^१ लग्गे सुहाई^२ । (३३)
 घाय^१ लग्गइ^{*२} न^{०२} थक्कइ^{*३} थकाई ॥ (३४)
 राग जरजी^१ बनाइत्त^२ अछ्छे^३ । (३५)
 देषिअइ^{*१} जानु[×] जोगिंद^{×२} कछ्छे[×] ॥ (३६)
 सख^१ छत्तीस[×] करि[×] कोहु[×] सज्जइ^{×२} । (३७)
 इत्तने[×] सूर[×] वाजित्र बज्जइ^१ ॥ (३८)
 नीसान सादंति^{*१} बाजे^{*२} सुचंगा । (३९)
 दिसा देस दक्खिन्न^{*१} लघ्घी^२ उपंगा ॥ (४०)
 तबल तंदूर^१ जंगी^२ मृदंगा । (४१)
 मनउ^{*१} नृत्य^२ नारद कट्टे^३ प्रसंगा ॥ (४२)
 बजहि वंस विसतार^१ बहु रंग रंगा । (४३)
 जिने मोहि करि^१ सथि^२ लग्गे^३ कुरंगा^३ ॥ (४४)
 वीर^१ गुंडीर सा सोम मृंगा^२ । (४५)
 नचइ ईस सीसं^१ धरो जासु^२ गंगा ॥[×](४६)

सिधु^१ सहनाइ^२ श्रवने^३ उत्तंगा^४ ॥^५(४७)
 सुने^६ अछूछरिअ अछूछ मज्जइ^७ सुअंगा^८ ॥^९(४८)
 नफेरी नवरग^{१०} सारग भेरी । (४९)
 मनउ^{११} नृत्य नइ^{१२} इंद्र आरभ केरी ॥ (५०)
 सिधु सावभक्तनं गेन भेरी^{१३} । (५१)
 भक्के आवभक्त हथ्य^{१४} करेरी ॥ (५२)
 उछूछरहि घाउ^{१५} घनघट घेरी^{१६} । (५३)
 चित्तिता अधिक^{१७} वध्वे^{१८} कुवेरी ॥ (५४)
 उप्पमा षंड नव, नैन भग्गी (जग्गी)^{१९} । (५५)
 मनउ^{२०} राम रावन्न हथ्येव लगगी^{२१} ॥ (५६)

अर्थ—(१) [सुभट जब] धूम-धाम से सजते हुए सुनाई पड़े (२) तो तीनों पुर (आकाश, पाताल, मर्त्यलोक) कदली पत्र [के समान कपित] हो गए । (३) [क्या] गौरीकान्त (शिव) ने डमरू को 'डह डह' किया (४) [क्योंकि] उन्होंने जाना कि योग-योगादिका अन्त हो गया ? (५) क्या शेष का सिर भार-रहित तो नहीं हो गया ? (६) [अथवा] क्या उच्चाश्र (उच्चैःश्रवा) रवि-रथ में नहीं रहा ? (७) [अथवा] कमल-सुत (ब्रह्मा) ने अम्बु (जल-क्षीर सागर) में कमल को नहीं पाया (८) और [इसलिए] शक्ति होकर ब्रह्माण्ड को पकड़ लिया । (९) इसे राम और रावण [का युद्ध] कवि क्यों न कहे ? (१०) [अथवा यह क्यों न कहे कि] शक्ति महिषासुर का बलिदान लाभ कर रही थी ? (११) कंस, शिशुपाल और प्रद्युम्न की जो प्रभुता थी (१२) वह लक्ष्मी जैसे उनसे भयभीत होकर [जयचंद में] रत हुई [यहाँ] भ्रमित हो रही थी । (१३) आजानु बाहु शूर [इस प्रकार] चढ़ चले, (१४) [मानो] सघन वन में अनल-आभा टूट (उत्पन्न हो) कर बढ़ रही हो । (१५) [जिस प्रकार] धरा पर गंगा-यमुना की ओजें (ओजपूर्ण लहरे) हलरा रही हों (१६) उसी प्रकार पंगराज (जयचंद) की फौजे थी । (१७) उनके ऊपर राजा पृथ्वीराज की फौज [ऐसी] थी (१८) मानो बंदर लंका गढ़ पर लग (चढ़) कर गर्ज रहे हो । (१९) देव-देव (शिव) उन्निद्र होकर जग गए, (२०) और इन्द्र तथा फणीन्द्र (शेष) दीन दिखाई पड़ने लगे । (२१) [एक ओर जहाँ सेनाओं के] भार ने पाताल में द्वन्द्व उत्पन्न कर दिया था, (२२) [वहाँ दूसरी ओर] उनके सचरण से उड़ी हुई रेणु ने आकाश को मूढ़ दिया था—आच्छादित कर लिया था । (२३) उस युद्ध में सम्मिलित अगणित राते (सुसजित) रावतों को कौन जान सकता था ? (२४) क्षिति पर उनके छत्रों के भार से पत्ता नहीं दिखाई पड़ता था । (२५) चक्रवर्तियों के आरंभ [हलचल] से [भला] कौन शांत रह सकता था ? (२६) बाराह रूप [भगवान्] भी पृथ्वी को कंधे पर नहीं धारण कर रहे थे । (२७) सेना की नवीन रूप-रंग की सन्नाह [ऐसी लग रही] थी (२८) मानो त्रिनेत्र (शिव) उस प्रकार (शरीर पर) गंगा को झेल रहे हों । (२९) वहाँ तुङ्ग (ऊँचे) टोपों (लोहे की टोपियों) की टंकार (पंक्ति ?) इस प्रकार दीखती थी, (३०) मानो बादलों में बिहगों ने पंक्ति बाँधी हो । (३१) जगीन (मजबूत) जिरह अंगों से कस कर लगाए गए थे, (३२) [वे इस प्रकार लगते थे,] मानो गोरखपथियों ने कंठ में कंथा डाल लिया हो । (३३) उनके हाथों में हथ्ये (दस्ताने) सुदर लगते थे । (३४) उन्हें घाव लगता था किन्तु वे थकावट से थकते नहीं थे । (३५) उनके राग (टोंगों के कवच) और ज़रजीन ऐसी बनावट के [लगते] थे (३६) मानो योगीन्द्रों को [कछौटा] काछे देख रहे हों । (३७) क्रोध

करके छत्तीस प्रकार के शस्त्र वे सैनिक सजे हुए थे। (३८) फिर, इतने ही शूर वाद्यों को बजा रहे थे। (३९) निशान (धौमे) अच्छा शब्द कर रहे थे, (४०) दक्षिण दिशा के देश से लड़ने (प्राप्त किए हुए) उर्पग थे, (४१) तबल, तदूर, तथा जंगी मृदंग थे, (४२) [ऐसा लगता था] मानो ये नारद के नृत्य के प्रसंग में निकले हों। (४३) वंशी विस्तृत रूप से नाना रंगों में—नाना प्रकार से—बज रही थी, (४४) जिन पर मोहित कर कुरग (मृग) साथ लग गए थे। (४५) वीर गुंडोर (गुंड देश के सैनिक) सिगा बाजो के साथ इस प्रकार शोभित थे (४६) मानो ऐसे शिव नृत्य कर रहे हों जिनके सिर ने गंगा को धारण किया हो। (४७) शहनाइयों में [गाया जाता हुआ] सिधू [राग] श्रवणों में [इस प्रकार] ऊँचा (उत्कृष्ट) [प्रतीत होता] था (४८) [मानो] शून्य (आकाश) में अच्छ (निर्मल) अपराएँ अपने सुंदर अंगों को मज्जित कर रही हों—स्नान करा रही हों। (४९) नफीरी, सारंग, मेरी का नया ही रंग था (५०) [जो ऐसा प्रतीत होता था] मानो निजु (विल्कुल) इन्द्र के केलि आरंभ (अखाड़े) का नृत्य हो। (५१) [नर] सिधे और साउझ इस प्रकार बज रहे थे जैसे गगन में मेरी बज रही हो। (५२) झाँझ और आवझ भी कढ़े हाथों से बजाए जा रहे थे। (५३) घनघंट पर हुए आघात का स्वर घेर (घुमड़) कर उछलित हो रहा था। (५४) इस कुवेला में [रण-वाद्यों से] चेतनता अधिक बढ़ रही थी। (५५) [प्रस्तुत] युद्ध के लिए नेत्रों में नौ खंडों की उपमाएँ जगीं किन्तु (५६) मानो [दोनों पक्ष] राम और रावण के हैं, यही उपमा हाथ लगी।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

० चिह्नित चरण मो. में नहीं है।

× चिह्नित शब्द या चरण म. में नहीं है।

+ चिह्नित चरण फ. में नहीं है।

‡ चिह्नित चरण ना. में नहीं है।

(१) १. मो. साजते, ना. साजवें, म. उ. स. भरं साजते (साजतै—म.). २. धा. धून धूमे, उ. स. धो धुम्मे (धूमे—म.), फ. धूम सते। ३. फ. सततं।

(२) १. धा. कपयइ, फ. कषाय, म. उ. स. तहाँ कपिय। २. धा. अ. फ. ना. तीन पुर जेनि (जेम—ना.) पतं (पत्त—धा.), मो. तान पुर केलि पत (=पत्त), म. उ. स. केलि तियपुर कपंतं।

(३) १. धा. डवर वर डहकिय, अ. डवर डहडह किय, फ. बडर डहडहि कुय, उ. स. तहाँ डवर (डंमरू—म.) कर डहकिय, ना. डमरु डुहु डुहु कोय।

(४) धा. मानयं, म. उ. स. तिन जानिय।

(५) १. म. तव किमं किमारू, ना. किमकिम, उ. स. तवं कम कमिर। २. धा. अ. फ. सह। ३. ना. र होय, म. उ. स. सहियं।

(६) १. म. उ. स. तहा किमसु, ना. किमस। २. अ. फ. उच्चेसुवा नयन बहिय, ना. उच्चीस रवि रत्न रहीयं, म. उच्चास रवि सय रहिय।

(७) १. धा. कमलसुत कमठ, अ. फ. कमठ सुत कमठ, म. उ. स. वहाँ कमठ सुत कमल, ना. कमठ सुत कमल। २. म. नह अंबु, ना. उ. स. नहि अंबु, धा. अ. फ. नहि अंबु।

(८) १. धा. अ. जुकि ब्रह्मान, उ. स. तवं सकि ब्रह्मान, म. तव सकि ब्रह्मड, ना. सकि ब्रह्मड मान। २. म. हियस हियं।

(९) १. उ. स. उनं राम, म. उवराव। २. धा. कवि कन्ह, मो. कपि कन, ना. कवि कन्न, म. उ. स. कवि कन्न। ३. मो. कहिता, शेष में 'कहता'।

(१०) १. म. उ. स. उन (उन—म.) सकति, २. अ. फ. सुरलोक बरदान, ना. म. उ. स. सुर र—म.) महिष बलधन (बलदुन—ना.)। ३. धा. अ. फ. ना. लहत।

(११) १. म. मनौ किस्न, उ. स. मनो कंस । २. मो. पुरयवन (=पुरनवन), धा. जुरि मम, ना. जरा जमनु, शेष में 'जुरजमन' ।

(१२) १. धा. संकय, ना. भ्रम्मीयं, म. तनं भ्रम्मिय, अ. भम्मिय, फ. भूमीय, म. उ. स. तिनं भ्रम्मिय । २. धा. अ. फ. एन, ना. म. उ. स. एम । ३. मो. लष, धा. अ. म. उ. स. ना. लच्छि, फ. तनि । ४. म. मुरता ।

(१३) १. म. उ. स. भर चट्टिय । २. म. अजान, ना. अज्जन, अ. आजानु ।

(१४) १. धा. डुट्टि वन सिंघ, फ. डुट्टि नव सघन, ना. अ. डुट्टि वन सघन, म. उ. स. तिन तुट्टि वन सिंघ । २. थट्टीन लाह, धा. तट्टीन लाह, अ. फ. बट्टी न लाह, उ. स. दीसत लाह, म. दिसत ताह ।

(१५) १. म. उ. तिन गग, ना. गगा । २. धा. जमन, अ. ना. जमुन, फ. जमनु, म. उ. स. मौन । ३. धा. धरहिलय, फ. धर लहै, ना. सर हलीय, अ. धर हल, ४. मो. उजे (=ओजे), धा. जूजे, ना. औज, उ. स. ओजे, म. औजे, अ. फ. मौजै ।

(१६) १. धा. पंगुरा, ना. पंगुरे, म. उ. स. भरं पंगुरे (पंगुरै-म.), २. मो. राठुर (=राठडर), धा. फ. राठोर, अ. राठौड़, म. राठौर, ना. रठौर । ३. म. उ. स. मौजै (मौजै-म. स.), अ. फौड़ै, फ. फौजे, ना. फौज ।

(१७) १. मो. उपरि (=उपरह) धा. उप्परे, अ. उप्परह, फ. उप्परै, ना. उप्परहि, म. उ. स. तवै उप्परै (उपरि-उ., उप्परे-म.) । २. अ. फ. रोस । ३. धा. ना. प्रिथिरात ।

(१८) १. मो. मनु (=मनउ), धा. मनो, ना. मनुं (=मनउ), म. मनो । २. धा. अ. फ. लक लागेहि, ना. लंक लकाहि, उ. स. लेन ते लक, म. लिनतक । ३. धा. माज, अ. फ. काज ।

(१९) १. मो. जागिय, म. उ. स. तव (तवे-म.) जगियं, ना. गज्जियं । २. ना. म. देवदेवं, फ. देवी देव । ३. मो. उनद, फ. उन्यद, ना. उनिद निदं ।

(२०) १. धा. दुक्खियं दीन इंद, अ. तहाँ दिक्खियं दीन इंद, फ. तहाँ दक्खियं दीन दीय, म. उ. स. तिनं च पेय पाय, भारं (तुलना० चरण २१) । २. मो. फनद (<फनिद), शेष में 'फनिद' या 'फुनिद' ।

(२१) १. अ. फ. जहाँ चंपियं, म. उ. स. तवै चापियं (चपियं-म.) । २. धा. पायाउ दंदं, अ. फ. म. उ. स. पायाल दुंद, ना. पायाल दुह ।

(२२) १. अ. फ. तहाँ उट्टिय, म. उ. स. घनं उट्टियं । २. ना. रेणु ।

(२३) १. म. ना. उ. स. गिन, अ. फ. लहै । २. ना. कौन । ३. धा. रखत अगणित रत्ता, ना. अगणित रावत्त रत्ता ।

(२४) १. म. उ. स. तिन छत्र । २. धा. छति, अ. फ. ना. उ. स. छिति । ३. मो. दीशि (=दीशह), धा. दीसह, अ. दीसे, फ. म. उ. स. दीसे, ना. सुब्मै ।

(२५) १. धा. आरभ चत्रा, म. उ. स. जु आरभ चक्री (चक्री-म.) । २. मो. रहे केन, ना. रहै कौन । ३. ना. सत्ता ।

(२६) १. म. उ. स. सु बाराह, अ. फ. जु बाराह, ना. जौ बाराह । २. फ. धेकं ।

(२७) १. धा. सिरे सन्नाख नव, म. उ. स. अ. फ. जु सेन सनाह नवं, ना. सन्नाह निव ।

(२८) १. मो. मनु (=मनउ), धा. ना. में यह शब्द नहीं है, अ. फ. म. मनौ, उ. स. तिनं । २. धा. सल्लिवे सीस, मो. शिल्लिवे (<शिल्लिवह) ति, अ. शिल्लिवे सीस, अ. फ. किल्लिवे सीस, स. शिल्लिवे तेग, ना. उ. शिल्लिवे तेम । ३. ना. त्रिनेत तंगा । ४. म. में इस चरण के स्थान पर भी चरण ३० दिया हुआ है ।

(२९) १. अ. तहा, म. उ. स. तिन, मो. ना. में यह शब्द नहीं है । २. धा. टकाल, अ. फ. म. ना. उ. स. टंकार । ३. धा. अ. फ. ना. दीसै ।

(३०) १. मो. मनु (=मनउ) ना. मनु (=मनउ), धा. अ. मनो, म. मनौ, उ. स. मनौ । २. धा. बज्जले खति, मो. वादले पति, अ. वद्दलंपति, ना. वद्दल पति ।

(३१) १. मो. म. उ. स. जिरह जगीन, धा. जिरह जिग्गीन, अ. फ. जिरह जनीर, ना. जरह जंजीर । २. मो. गहि भग, धा. अ. फ. गहि भंग, ना. उ. स. बनि अग मच्छिनि अग । ३. ना. आई ।

(३२) १. मो. मनु (=मनउ), ना. मनुं (=मनउं), अ. फ. म. मनौ, शेष सभी में 'मनो' । २. धा. कच्छ रक्खीन गोरख पाई, अ. फ. ना. देह गोरख (रोरख-फ.) लगारि रषाई (यकाई-फ.), म. उ. स. कठ (कंठ-म. उ.) कती (कथी-म.) सु गोरख बनाई ।

(३३) १. म. उ. स. तिनं हत्थ रे (रे-म.) हत्थ, फ. अ. ना. हत्थ रै हत्थ । २. लग्गी पुहामी, अ. फ. लग्गिय सुहाई, ना. म. उ. स. लग्गी सुहाई ।

(३४) १. धा. बांव, ना. धाई, अ. फ. म. उ. स. तिनं धाई (ध्याई-फ.) । २. धा. मो. लगि (=लगइ), धा. ना. अ. फ. गजै न, म. जेन । ३. मो. थकि (=थकइ), म. थकै न, ना. थकै ।

(३५) १. मो. राग जन जी, धा. राय जल जीन, ना. अ. फ. राग जरजीन, म. उ. स. तिनं राग जर जीव । २. मो. नाइत, धा. विनवन, अ. फ. ना. म. उ. स. बनि वान । ३. म. आजै, ना. अ. फ. अच्छै ।

(३६) १. मो. देखीइ (=देखिअइ), धा. ना. दिक्खयै, म. उ. स. भरं दिष्खियै, अ. फ. दिष्खियहि । २. धा. मानु नर मेष, ना. जानि जोगेंद्रे, अ. फ. मनौ नट मेष ।

(३७) १. उ. स. मन मल्ल । २. मो. ना. कोइ साजे, अ. फ. कोइ सज्जइ (सजाई-फ.), म. उ. स. लोइ साजे ।

(३८) १. मो. एतने सूर बाजिन्न बाजे, धा. इत्तने सोर बाजिन्न बज्जे, अ. फ. ति इत्तनै सौर (सोर-फ.) बाजिन्न बज्जइ (बजाई-फ.), उ. स. इसे सूर सामंत सौ राज राजे, म.-सो राज राजै, ना. इतनीयें भाँति बाजिन्न बाजे ।

(३९) मो. नीसान साद (< सादं ति ?), धा. अ. फ. निसानं निसाहार, ना. म. उ. स. निसानं दिंसानं ति (सु-ना., त-म.) । २. धा. ना. बज्जे, मो. बाजि (=बाजे), म. बाजे ।

(४०) १. मो. दिसा देस दक्षन (=दक्खन), धा. अ. फ. दिसा देस दच्छिन्न, म. दिसा दिषनं देस, ना. दिसा दच्छिनं देस । २. अ. लच्छी, फ. लक्ष्मी, उ. स. लीनी, म. लीने ।

(४१) १. धा. अ. फ. तवळं ति (त-अ. फ.) दूरं ति, ना. तिवळ तंदूर, म. उ. स. तवळं ति दूरं (तदूरं-म.) जु । २. धा. जग्गी (< जगी), म. गोरं, फ. जगा ।

(४२) १. मो. मनु (=मनउ), धा. सुले, अ. फ. सुनै, ना. मनुं (=मनउ), म. मनौ, स. मनो । २. धा. निच्छि, अ. फ. निच्छ । ३. मो. कटे, धा. काहे, अ. फ. कठे, ना. म. उ. स. कहै ।

(४३) १. मो. बजिहि बंस बिसतार, धा. बध बंस विसातल (< विसताल), अ. फ. बधै बंस बिस्तार, ना. म. उ. स. बजै (बजे-म.) बंस बिसतार ।

(४४) १. धा. जिसे मोहिय, अ. फ. जिनै मोहिण, म. उ. स. तिन मोहियं । २. अ. फ. म. उ. स. सथ्य । ३. फ. नगो ।

(४५) १. धा. म. उ. स. वरं वीर, अ. फ. तहां वीर । २. धा. तेसे सुगगा, अ. फ. तैसै सुरंगा, म. उ. स. ससै ससंगा ।

(४६) १. धा. नचै इस सीसै, उ. स. तिन नच्चई ईस । २. धा. धरो जास, अ. फ. धरै जान, उ. स. ते सीस ।

(४७) १. उ. स. सिरं सिंधु । २. ना. सहनादि, फ. समधिताइ । ३. धा. सवणे (< सवणे) ।

(४८) १. धा. अ. फ. सुनै, ना. सुनै । २. मो. मजि (=मजइ) धा. मज्जे, म. उ. स. अ. फ. ना. मजै । ३. ना. म. उ. स. में यहाँ और है : रसे सूर सामंत सुनि जग रगा ।

(४९) १. मो. नफेरी नव रग, धा. नफेरी नवा रंग, अ. फ. नफेरी नवै रंग, म. उ. स. नफेरी नवं रंग, ना. नफोर नव रग ।

(५०) १. मो. ना. मनु (=मनउ), धा. उ. स. मनो, म. मनौ, अ. फ. मनौ। २. मो. नृत्य नइ, धा. म. त्रित्तीनी, अ. फ. ना. नृत्यनी, उ. स. त्रत्यनी।

(५१) १. मो. सिंधु सामग्न गेन मेरी, वा. सिंध सागज्ज उगो न नेरी, अ. फ. सिंग सावक्क उगो न नेरी, ना. सिंध सावद्ध नग्गा ननेरी, म. उ. स. सुने (सुनि-उ.) सिंगि (सग-म.) सावद (सावद्ध) नगी न नेरो (त नेरी-म.)।

(५२) १. धा. सज्झि आवज्झ हत्थ, अ. फ. वजे झिझि (झिझ-फ.) आवझ (आवज्ज-फ.) हत्थे, म. उ. स. मना (मनो-म.), झिझ आवद्ध हत्थै (हथे-म.), ना. मनु झिझि आवद्ध हत्थ।

(५३) १. धा. उच्छरे धौइ, म. उ. स. करी उच्छरी धाव, ना. उच्छरं धाउ, अ. फ. उच्छरे (उछसरे) धाइ। २. धा. धिर घट टेरे, अ. फ. धर (धरु-फ.) घट टेरी, ना. म. उ. स. धन घट टेरी।

(५४) १. धा. चित ते नाहि, अ. चितत नही, फ. चितत नाहि, म. चित चित तिन हीन, उ. स. चित चित तन हीन, ना. जित्त तन हीन। २. धा. बड्ढी, अ. फ. न टूँ, ना. बट्ट, म. थाटी, उ. स. बाढी।

(५५) १. धा. उपमा खड नव नयन सगी मो. उप्पमए षंड नयने न झगी, अ. फ. उप्प षंड नव नयन भगी (लगी-अ.), ना. ओपम षडनने न लगी, म. उ. स. अन्य आपमा षंड ननेनि भगी, ना. उप्पम षड ननन लगी।

(५६) १. मो. ना. मनु (=मनउ), म. मनौ, अ. फ. मनौ, धा. म उ. स. मनो। २. मो. हथेव लगी, म. हथ विलगी, शेष में 'हथे (हत्थ-ना) विलगी'।

टिप्पणी—(२) केलि < कदली। पत्त < पत्र। (५) रहिय < रहित। (६) उच्चासु < उच्चादव। (७) अबु < अभस्। (११) पुरयवन < प्रयुम्न। (१५) जिमज < यमुना। (१८) गाज < गर्ज। (१९) उनिद्र < उन्निद्र। (२१) पायाल < पाताल। दु दं < द्रुद्ध। (२२) मुद्द < मुद्रय। (२५) चक्की < चक्रिन्। सत < शांत। (३९) साद < शब्द। (४०) लधो < लब्ध। (४७) उत्तग < उत्तुङ्ग। (४८) अच्छरिअ < अप्सरस्। (५०) नइ=निश्चय-सूचक अव्यय। केरी < केलि। (५१) गेन < गगन। (५४) वध् < वर्ध्।

[७]

दोहरा— सुनि वज्जन^१ राजन^२ चडिग^३ बहु पषर समहाउ^४। (१)

मनुह^५ लंक विग्रह करन चलउ^{*२} रघुपतिराउ^३ ॥^४ (२)

अर्थ—(१) [जयचद के] बाघों को सुनकर बहुत सी पाखरो और [युद्ध की] सामग्री [के साथ] राजा (पृथ्वीराज) ने [इस प्रकार] चढाई कर दी (२) मानो लंका पर विग्रह करने के लिए राजा राम चले हों।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) धा. सुणिम वयण, अ. फ. सुनिवयन्न, ना. सुनीय वज्ज, उ. स. सुनि वज्जन, म. सुनि वाजना^२ नाभरज्जन् ॥ ३. धा. चडिय, फ. चडिगु, अ. ना. उ. स. चडिग। ४. मो. बहु पषर समहाउ, धा. बहु पक्खर भरराहु, अ. फ. ना. म. उ. स. सहस सष धुनि चाव (चाय-म., चाउ-ना. चाह-उ. स.)।

(२) १. अ. मनुह, फ. मनौ, म. मनौ, उ. स. मनौ। २. मो. चउ (=चलउ), अ. फ. ना. म. उ. स. चडिगौ। ३. अ. राव, म. राय, उ. स. राइ। ४. धा. में इसे चरण का पाठ है

मनु अकाल तेडिय संघन पवय छूट परवाहु।

[प्रथम चरण का 'महराहु' तथा यह चरण धा. में धा. २०० की स्मृति से आगे लगे हैं।]

टिप्पणी—(१) वज्ज < वाद्य। चड=चढ़ना।

[८]

दोहरा— रामदल^{०१} बंनर^० सयल^{०२} उहि रषस बहु बंधु^३ । (१)
असी^१ लष^२ सउ^{*} सम भिरिग^४ सु^५ धनि^६ प्रथिराज नरिंद^७ ॥ (२)

अर्थ—(१) राम के दल में समस्त बंदर थे, और उस(रावण) के [दल में] उसके बहुसंख्यक राक्षस-बन्धु थे । (२) [किन्तु यहाँ तो] असी लाख [सेना पृथ्वीराज के] केवल सौ [राजपूतों] के साथ मिठी, [इसलिए] नरेन्द्र पृथ्वीराज धन्य है ।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है ।

० चिह्नित शब्द धा. में नहीं हैं ।

(१) १. अ. फ. न. म. उ. स. राम दलह । २. ना. म. उ. स. बंद (बंदर—उ.) विषम । ३. धा. औहि (< उहे) रक्षस बहु बंध, अ. फ. उहि रक्ष सम दल बंद (बंद—फ.) ना. म. उ. स. रषस (राषस—म.) रावन बंद (बंधि—ना.) ।

(२) १ धा. अ. फ. अमिष । २. धा. लाष । ३. मो. सु (= सउ) सम, धा. पर सू, ना. दल सु (= सउ), अ. फ. म. उ. स. सौ (सौ—स.) सौ, ना. सौ सु (= सउ) । ४. धा. भिरिग, फ. भिरिग, ना. म. उ. स. भुरिग । ५. मा. के अनिर्दिष्ट यह शब्द किसी में नहीं है । ६. धा. मो. धनि, अ. म. उ. स. धनि । ७. मो. प्रथिराज नरिंद (< नरिंद ?), शेष में 'प्रथिराज नरिंद' ।

टिप्पणी—(१) सयल < सकल । रषस < राक्षस ।

[९]

दोहरा— दल संमुह दंतिय^१ सघन^२ गणि को कहइ^{*३} अगणित^४ । (१)
मनु पव्वय^{०१} विधि^० चरण^{०२} किय^० सहि^३ दिषिय^४ मयमत्त^५ ॥ (२)

अर्थ—(१) सेना के मुख भाग में घने हाथी थे; उन्हें गिनती करके कौन कह सकता है, अगणित थे । (२) [वे ऐसे प्रतीत होते थे] मानो पर्वतों को विधाता ने चरण [प्रदान] कर दिए हैं; वे सभी मदमत्त दिखाई पड़ते थे ।

*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है ।

० चिह्नित शब्द धा. में नहीं हैं ।

पाठान्तर—(१) १. धा. संमुह दंती, ना. म. समूह दंतिय (दंती—ना.) । २. मो. सघन । ३. मो. गणि किहि (= कहइ), धा. गणि को कहि (= कहइ), अ. फ. ना. गणि कु (= को) कहै, म. स. मनत न बनि, उ. गनत बनि । ४. फ. अगणित म. अगिनत ।

(२) १. अ. मनु परवत्त, फ. मनु परवत्ति, म. उ. स. मनो (मनौ—म.) पव्वय । २. ना. वरनन । ३. धा. सह, अ. फ. ना. म. उ. स. सह । ४. धा. दिषिय म. दिषियत । ५. अ. फ. मयमत्त ।

टिप्पणी—(१) समूह < समुह । (२) पव्वय < पर्वत । सह=समस्त । मयमत्त < मदमत्त ।

[१०]

दिषियइ^{*१} इक गय मत्त मत्ता^२ । (१)
छत्र सह रत्त^३ अगइ^{*} घरंता^४ ॥ (२)

जे (१) न अंदून^१ छूटे+*^२ जुरंता^३ । (३)
 वाय^४ बहु वेग भटकंत दंता ॥ (४)
 जिने^५ सिंघली सिघ^६ सुंढे^७ प्रहारे । (५)
 ते^८ सार संमुह^९ घाइ पहारे^{१०} ॥ (६)
 उज्जये वान^{११} सज्जे हकारे^{१२} । (७)
 अंकुसे^{१३} कोस ते नहि^{१४} चिकारे^{१५} ॥ (८)
 मिठ मंगूल^{१६} चहु^{१७} कोद^{१८} बंके । (९)
 भूप^{१९} बाहुठ^{२०} बाजून^{२१} हंके ॥ (१०)
 तेह^{२२} तर जोर^{२३} पट्टे न^{२४} फिल्ले*^{२५} । (११)
 चंपिअइ*^{२६} पानि^{२७} तउ*^{२८} मेर*^{२९} ढिल्ले*^{३०} ॥ (१२)
 रेस रेसमिअ गारी ति^{३१} भल्ली । (१३)
 सेस संदेह संदूखि^{३२} मिल्ली ॥ (१४)
 जु^{३३} रेष^{३४} वइरष*^{३५} रत^{३६} पीत^{३७} चल्ली*^{३८} । (१५)
 मनो वनराइ ढाले ति हल्ली*^{३९} । (१६)
 घंट घोरं न^{४०} सोरं^{४१} समानं । (१७)
 हल्लये मन^{४२} लग्गे विमानं^{४३} ॥ (१८)
 सिधु सा बंधु^{४४} बंधे^{४५} धुरंगा^{४६} । (१९)
 संग संगी त^{४७} डरि येभ^{४८} संग्गा ॥ (२०)
 सीस संयूत^{४९} गज मंप^{५०} मंपइ*^{५१} । (२१)
 देषि^{५२} सुरलोक सहि*^{५३} देस^{५४} कंपइ*^{५५} ॥ (२२)
 दंत^{५६} मणि सुत्ति जर जटित लषे+^{५७} । (२३)
 बीज^{५८} चमकंति^{५९} घन^{६०} मेघ पषे +*^{६१} ॥ (२४)
 इत्त नी (निअ) आस सम्माधि रहियं^{६२} । (२५)
 कहइ*^{६३} प्रथिराज प्रथिराज गहियं ॥ (२६)

अर्थ—(१) एक (कुछ) गज मत्त-उन्मत्त दिखाई पड़ रहे थे, (२) जो सभी [अपने] भागे
 रक्त [वर्ण का] छत्र धारण किए हुए थे, (३) जो अंदुओं (शृंखलाओं) से छूटकर उनसे जुटते
 (बँधते) नहीं थे, (४) जो वायु में बहुत वेग से अपने दाँतों का झटक रहे थे । (५) जो सिंघली
 [हाथी] थे, वे सिंघों पर अपनी सूँडों से प्रहार करते (करने वाले) थे; (६) वे [युद्ध में] सार
 (लौह—शस्त्रास्त्र) के सम्मुख दौड़कर प्रहार करते थे, (७) हँकार (पुकार) लगाने पर उद्यत
 हो कर वे बाना सजते थे, और (८) अंकुश—कोष [के गढ़ाने] पर भी चीत्कार नहीं करते थे ।
 (९) उनके मिठ (महावत) चारों ओर बाँके मंगोल थे, (१०) भूप गण उनको बाहुँटे और बाजू से
 हाँकते थे । (११) उन्हीं के समान कुछ बेगवान भी थे जो पाद-प्रहार नहीं झेलते थे, (१२) यदि
 उन्हें हाथ चोंपा (लगाया) जाता तो वे मेरु को हिला देते । (१३) [उनके हाँकने के निमित्त]

रेशमी रेशों (लच्छियों) वाली नालीकें तथा भल्लियाँ (बल्लियाँ) थीं, (१४) जो उनके देह से दिल्ष्ट तथा उन पर रखे गए सन्दूक से मिली थीं । (१५) [उन पर] जो लाल-पीले बैरवों की रेखा (पंक्ति) चलती थी, (१६) [वह ऐसी लगती थी] मानो वनराजि की डालें हिल रही हों । (१७) उनके घोर घंटों का शोर [पृथ्वी तल पर] समा नहीं रहा था, (१८) [इस लिए] मानों उनके लग कर विमान हिलने लगे थे । (१९) सिन्धु देश के धुरंग (अगों पर धूल डालने वाले—हाथी) बन्धन से बंधे हुए थे । (२०) इन [हाथियों] के संग जो संगी—साथ रहने वाले—थे, वे भी इन इमों (हाथियों) के संग [रहते हुए] डरते थे । (२१) इनके सिरों से संयुक्त (जुड़ा हुआ) गजझंफ उनको झार रहा था, (२२) इनको देखकर सुरलोक तथा समस्त देश काँपता था । (२३) इनके मणि-मुक्ता तथा (जर—चाँदी—सोना) से जड़े हुए दाँत [इस प्रकार] दिखाई पड़ते थे, (२४) [मानो] घने मेघों के पक्ष में विद्युत चमक रही हो । (२५) यहाँ निज (स्वकीय) आशा और समाधि (सुख) में रहते हुए (२६) [जयचंद] कह रहा था, 'पृथ्वीराज को पकड़ो' 'पृथ्वीराज को पकड़ो' ।

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

० चिह्नित चरण मो. में नहीं हैं ।

+ चिह्नित शब्द अ. में नहीं हैं ।

‡ चिह्नित चरण या शब्द फ. में नहीं हैं ।

(१) १. मो. दिषिह, धा. ना. दिखियहि, अ. फ. दिषियं, उ. स. देषियहि, म. दषियहि । २. मो. इक गय मत्त मता, धा. मंत मय मत्तमत्ता, म. मत मयमत मता, शेष में 'मंत मयमंत' (नयमंत—अ. फ.) मंता (मत्ता—अ. फ.) ।

(२) १. धा. ना. उ. स. छत्र छह रंग, छत्र सहरंग, अ. फ. छत्र ह रंग (अंगु—फ.) । २. धा. अगे दुरंता, मो. आगि (= आगह) धरंता, अ. फ. आगं दुरंता, ना. आगं दुरंता, म. उ. स. चौरं (उ. चुरै, स. चौरं) दुरंता ।

(३) १. मो. ज (< जे ?) न अंदून, धा. एमि अ—इसके अनंतर बाद के 'छूटे' शब्द तक धा. में नहीं हैं, अ. फ. एम अंदूनि (अंदूल—फ.), उ. स. छके जेह अंदून, ना. म. जेह अंदून । २. मो. छूटि (= छूटे) जूरता, अ. छूटे जुरंता, फ. ते छूटे जुरंता, ना. उ. स. छूटे जुरंता, म. छूटे दुरंता ।

(४) १. धा. जो वई, अ. फ. बाइ ।

(५) १. धा. जे, अ. फ. जि, म. उ. स. जिते, ना. जितौ । २. अ. फ. सीस सिंदूष, म. सिषला सिष । ३. धा. मुंडे, अ. फ. सुंडै (सुंडै—फ.) म. ना. उ. स. सुडी ।

(६) १. धा. अ. फ. में यह शब्द नहीं है, मो. ना. ते, म. उ. स. तिते । २. मो. संमुह, शेष में 'संमूह' । ३. धा. धावै पहारे, मो. धाइ पहारे, अ. फ. धावइ करारे, ना. धाप हकारै, म. उ. स. धावै (धावे—म.) हकारे ।

(७) १. म. उज्जरं बानं । २. मो. साजे हकारे, अ. फ. सजै हकारे, ना. आवै हकारै, म. स. आवै वकारे ।

(८) १. धा. अ. फ. अंकुसह, ना. म. उ. स. अंकुसं । २. फ. तिहं नहि, नहिं, ना. ते नहि, म. उ. स. तेनं । ३. ना. धिकारे ।

(९) १. धा. मन्न मंगोल मो. मिले मंगूल, अ. फ. मेठ (मंठ—फ.) मंगोल (मंगोस—फ.), उ. स. मीठ मंगोल, ना. मेछ मंगोल, म. मीन मंगोल । २. फ. चहौ । ३. म. दोद, अ. फ. कोट ।

(१०) १. म. मनौ भूप, स. इसे भूप । २. मो. बाहूठ, धा. बाजूनि, फ. बाजुन, अ. बाजनि, शेष में 'बाजूनि' । ३. धा. म. उ. स. बाजून, अ. बापूनि, फ. नाषनि, ना. बाजूनि ।

(११) १. अ. फ. तेर, ना. तेज । २. म. नर जोर, अ. फ. हजेर । ३. अ. फ. पट्टेनि, उ. स. पट्टेव ।

६४८४ धा. ढिले, मो. झिलि (=झिले), अ. झिले, फ. म. झल्ले, उ. स. झिल्ले; ना. झिल्ले ।

(१२) १. मो. चपीइं (=चपिअइं), धा. कपिये, अ. फ. चपिए, ना. म. उ. स. चंपियं । २. धा. प्रानि, अ. फ. पानि, मो. म. ना. उ. स. पान । ३. मो. तु (=तउ), शेष में 'ते' । ४. धा. अ. मेरु, फ. मरुव । ५. मो. ढिलि (=ढिले), धा० ढिले, अ. फ. ठिले, स. ढिले, उ. ठिले, म. तिले ।

(१३) १. धा. अ. रेस रेसम्म नीरोति, म. उ. स. रेसमी रेस नारीति, ना. रेस रसमीति नारीति ।

(१४) १. धा. ना. सेस सदेह सिंदूक (संदूखि-धा.), अ. सीस सिंदूर सिंदूष, म. उ. स. सिरी सीस सिंदूर सोभा (सोभं-म.) सु ।

(१५) १. मो. के अतिरिक्त यह शब्द किसीमें नहीं है । २. मो. विरष (=वइरष) । ३. मो. रत नील पीत, धा. म. उ. स. पतिपात, अ. फ. पतिपत्ति, न. पतिवपत । ४. धा. ना. बली ।

(१६) १. धा. मनो पवनराइ ढालेति ढली, अ. फ. मनौ बनराज बालेति (ढालेति-फ.) ढली, म. ना. उ. स. मनुहु बनराइ द्रुम डाल ढली ।

(१७) १. उ. स. घटें घेन घोरंन, म. घट घोरन सोर, ना. घन घट घोरन घोरं । २. मो. शारं, म. मत्तौ, फ. सज्जे ।

(१८) १. मो. हलये मन, धा. अ. फ. ना. हल ए. मत्त (मत-ना.), म. उ. स. हलं हालय (हालय-म.) मत । २. ना. अ. फ. विवान ।

(१९) १. धा. सीधु संबध, अ. फ. पो सिधु संबधे, ना. विरुद वरदाइ, म. उ. स. विरद वरदाइ (वरदाय-म.) । २. धा. वधइ (< वधे ?) घुरगा, ना. म., उ. म. आगे (आगे-म. अगो-ना.) वृदगा (त्रिदगा-ना.) ।

(२०) १. धा. सुर्ग सुग्री, अ. सुर्ग सुग्रीव, फ. सुर्ग सुगीत, ना. सुगा सगीत, म. उ. स. मनौ स्वर्ग संगीत । २. धा. डरि ईद्र, अ. फ. डरि चंद्र (डरि ईद्र-अ.), उ. स. करि रंभ, म. डरि रभ ।

(२१) १. धा. अ. फ. उ. स. सीस सिंदूर ना. सीस सजुत्त, म. ससी सिंदुराजं । २. धा. गय क्षिप्पि, उ. स. गज जप, म. रज झप । ३. मो. झपि (=झपइ), धा. अ. फ. ना. झंपै, म. उ. स. झपे ।

(२२) १. धा. ना. दिक्खि, म. मनौ देखि । २. मो. सिहि देस, फ. सर्वे देव, ना. सहि देव, शेष में 'सहदेव' । ३. मो. कंपि (=कपइ), धा. अ. फ. ना. कपे, म. उ. स. कपे ।

(२३) धा. दत्त अ. फ. म. उ. स. दति । २. ना. म. उ. स. जरये (जरीयं-म., जरीयै-ना.) सुलक्ष्मी ।

(२४) १. अ. फ. म. उ. स. मनो (मनौ-म.) बीज, ना. मनुं बीज । २. ना. झलकंति, म. झबकंत, उ. स. झमकत । ३. फ. घति । ४. ना. म. उ. स. पषी ।

(२५) १. धा. अ. फ. इत्तनहि सास (सीस-फ.) धरि (धरि-अ. फ.) वारि रहियो (रहियौ-फ.), म. उ. स. इत्तनिय (इत्तनी-म.) आस धरि मध्य (मिधि-म.) रहियं, ना. इत्तनी आस धरि मध्य रहियं ।

(२६) १. मो. कहि (=कहइ) प्रथीराज प्रथीराज गहियं, धा. जु कहि जु कहि प्रथिराज गहियो, अ. फ. न. कहहि पृथिराज पृथिराज गहियो (गहियौ-फ., गहिय-ना.), म. उ. स. कहहि प्रथिराज गहियं सु गहियं ।

टिप्पणी—(१) गय < गज । (२) रत्त < रक्त=लाल । (५) सुंढ < शुण्ड=सुंड़ । (६) पहार < प्रहार । (७) उज्जय < उद्यत । वान < वर्ण । (८) चिकार < चात्कार । (९) मिठ [दे०]=महावत । मंगूल=मंगोल । वक < वक्र । (१०) तेह < तादृश् । (११) तर < वेग, बल । पट्टे < पट्टया [दे०]=पाद-प्रहार । (१२) मेरु < मेरु । (१३) रेस रेसमिअ < रेशमा रेशे (लच्छियाँ) । गारी < नालीक=एक प्रकार का भाला । (१४) सीस < झिल्ल=मिला हुआ । (१५) रत < रक्त=लाल । (१६) वनराइ < वनराजि । ढाल < डाल । (१८) मन=मनु, मानो । (२०) येम < हमे=हामी । (२२) सहि=सभी । (२३) जर < जर (फा०) । (२४) बीज < बिद्युत । पष्य < पक्ष । (२५) निअ < निज=अपना ।

[११]

दोहरा— गहि गहि^१ कहि^२ सेना ति सह^३ चलि हय गय मिलि तव्व^४ । (१)

जिम^१ पावस पुव्वइ^२ अनिल हलिगत वदल सव्व^३ ॥ (२)

अर्थ—(१) [जब] उसने समस्त सेना को 'पकड़ो', 'पकड़ो' कहा, हय, गजादि तब सब मिल कर [इस प्रकार] चल पड़े (२) जैसे पावस में पूर्व की हवा से सब बाइल हिलग—एक दूसरे से मिल—जाते हैं ।

पाठान्तर—(१) १. मो. गिहि गिहि, शेष में 'गहि गहि' । २. मा. किहि, अ. कवि । ३. धा. सेना न सब, मो. सोना ति सह, अ. फ. सेना त सब ना. म. उ. स. सेना सकल । ३. मो. चलि हय गय मिजि सब, धा. अ. फ. चलि (हलि-फ.) हय गय मिलि (मिल-फ.) इक्क (एक-धा, इक्ख-फ.), ना. म. उ. स. हय गय वन उठि (उठि-म.) गव्व ।

(२) १. धा. जाणू, अ. फ. म. उ. स. जनु, फ. जुत्त । २. मो. पवि (पव्वइ), धा. चुव्वइ, म. अ. पुव्वइ, फ. पुव्वहि, उ. स. पुव्वहु । ३. मो. हय गय वदल सव्व, धा. अ. फ. हलि वदल (चंदलु-फ.), बहु भिष (भेक-धा., भिषि-फ.), ना. म. उ. स. हलि गति (हलि गत-ना., हिलि गति-म.) वदल सव्व ।

टिप्पणी—(१) सह=समस्त । (२) हलिगना=हिलगना, पास आना ।

[१२]

अर्ध नाराच— हयगगयं नरभर^१ । (१)

उनव्वि नय^२ जलध्वर^३ ॥ (२)

दिसा निसान^१ वज्जये^२ । (३)

समुद सद^१ लज्जये^२ ॥ (४)

रजोद मद उष्वली^१ । (५)

व्योम^१ पंक संकुली^२ ॥ (६)

तटाक^१ बाल^२ रंगिनी । (७)

चकी चक^१ वियोगिनी ॥ (८)

पयाल पाल^१ पल्लये^२ । (९)

दिगंत^१ मंन^२ हल्लये^३ ॥ (१०)

अनंद ते, निसाचरे^१ ॥ (११)

कु^१ कंपि^२ तुंड साचरे^३ ॥ (१२)

भगंत^१ गग कुल्लये^२ । (१३)

समुद^१ सून^२ फुल्लये^३ ॥ (१४)

अवत्ति^१ छत्त^२ छत्तये^३ ॥ (१५)

सरोज मोज^१ हल्लये^२ ॥ (१६)

अषंड	रेन	मंडने ^१ । (१७)
डरपि	इंदु	छंडने ^१ ॥ (१८)
कमठ पिठ ^१		निठुरे ^२ । (१९)
प्रसलन ^१	भार ^२	मिथुरे ^३ ॥ (२०)
साप ^०	हस ^०	मग्गवे । (२१)
समाधि ^१	आधर ^२	जग्गये ॥ (२२)
अपूरवं	ति	बंधये ^१ । (२३)
जटालु	कालु	लुम्भये ^१ ॥ (२४)
नरिदं	पंगु ^१	पायसं । (२५)
स छत्रि	मगि ^१	आयसं ^२ ॥ (२६)
गहन	जोगिनी ^१	पुरे ^२ । (२७)
आप	आप ^१	विथुरे ॥ (२८)

अर्थ—(१) हय, गज, नर और भट (२) उन्नत होकर नत हुए जलधरों के समान [लगते] थे । (३) दिशाओं में निशान (घौंसे) बजने लगे, (४) [जिससे] समुद्र का शब्द भी लजित हो रहा था । (५) [सेना के सचरण से] रजोद—रज देने वाली भूमि—का मद उत्खंडित हो गया, और (६) व्योम पंक-संकुल हो गया । (७) [रात्रि का आगमन समझ कर] तडाग [—तट] की रंगिनी—क्रीड़ा करने वाली—वाला (८) चकवी चकवे से वियोगिनी हो गई । (९) पाताल [सेनाओं के भार से दबकर] पिलपिला उठा (१०) और दिशाओं के मत्त [गज] हिल गए । (११) निशाचर [रात्रि का आगमन समझ कर] आनंदित हुए, (१२) पृथ्वी काँप गई और तुड़वाले जीव—सचरण करने लगे । (१३) [आकाश—] गंगा के कूल पर भाग कर आए हुए (१४) समुद्र—ध्रुवन (चंद्रमा) फूलने (प्रसन्न होने) लगे । (१५) उन्होंने [अपनी किरणों का] छाता तान दिया, (१६) जिससे सरोज का सुख हिल गया । (१७) [किन्तु] अलंड रेणु से मंडित होने के कारण (१८) इंदु भी डरकर [आकाश गंगा को] छोड़कर भाग निकला । (१९) निष्ठुर कमठ-पीठ (२०) प्रसरण-भार [घड़े पड़ने के कारण] मिथुर (विस्थूल) हो गई । (२१) सर्प (शेष) हंस (प्राणों) की याचना करने लगे, (२२) और [महादेव] समाधि-आधि से जग गए । (२३) अपूर्व रूप से उन्होंने [जटा को] बाँधा, (२४) और उन जटालु—शिव—ने काल को भी लुब्ध कर लिया । (२५) पंगराज (जयचंद) का प्रादेश था, [अतः] (२६) क्षत्रियो ने उससे आदेश माँगा, और (२७) योगिनो पुरेश—पृथ्वीराज को पकड़ने के लिए (२८) वे आप ही आप फैल गए ।

पाठान्तर—० चिह्नित शब्द धा. में नहीं हैं ।

+ चिह्नित शब्द मो. में नहीं हैं ।

§ चिह्नित शब्द फ. में नहीं हैं ।

× चिह्नित चरण म. में नहीं हैं ।

(१) १. ना. सुनिम्भरं ।

(२) १. धा. उनेविये, अ. फ. उने विनै, ना. अनै विनै, म. सुननय, उ. उमब्बियं, स. उनम्मिय ।

२. धा. जलहर ।

- (३) १. म. उ. स. बिस दिसान । २. अ. फ. पञ्जप ।
 (४) १. मो. साद, शेष सभी में 'सद्' । २. फ. लज्ज ।
 (५) १. मो. रजोद मद् उष्पली, धा. रजाद भिद अंखुली, म. रजोद सद् अंखुली, फ. सरताद सद् अंखुली, उ. रजोद मद् उष्पली, ना. रजोद मद् उच्छली, म. स. रजोद मोद उष्पली ।
 (६) १. मां. पेम, धा. वियोम, अ. फ. व्योम, ना. सु व्योम, उ. स. सव्याम, म. सयोम । २. ना. संकली ।
 (७) १. ना. तटाकि । २. धा. बालु, अ. फ. बान, म. बार । ३. अ. फ. रंगनी, म. सोगिनी, उ. स. रींगनी ।
 (८) १. फ. जु चक्र सो वियोगिनी, अ. फ. जु बिक्र सो वियोगिनी, म. उ. स. सुचक्रयो वियोगिनी, ना. चवक्रि सठि जोगिनी ।

- (९) १. धा. पडल, अ. फ. पडल, ना. म. उ. स. पाल । २. म. पलर ।
 (१०) १. ड. स. द्रगत, फ. दिगति, ना. द्रिगत । २. फ. मति ।
 (११) १. धा. अ. फ. अनदने, उ. स. अनदिते ।
 (१२) १. मो. में 'क' शेष सभी में 'कु' । २. धा. कुप, ना. कुपि । ३. ना. कुड वासके ।
 (१३) १. मो. मंगन । २. अ. फ. म. कूलप ।
 (१४) १. ड. स. समुद्र । २. ना. सुन । ३. अ. फ. म. ना. फूलप ।
 (१५) १. धा. चरंति, अ. फ. प्रवर्त, ना. प्रवर्ति उ. स. प्रवृत्ति । २. ना. छत्र, फ. छव, उ. स. छत्रि ।
 (१६) १. धा. भोज सत्तप, अ. फ. भोज सत्तप, ना. भौज सुम्भप, उ. स. भौज लज्जप ।
 (१७) १. धा. मंडणे, ना. मंडले, म. मडयो, उ. स. मडयौ ।
 (१८) १. धा. छंडणे, ना. इंदु छंडले, म. स. इंद्र छडयो, उ. इद्र छडयौ, ना. डंड छडिले ।
 (१९) १. मो. पीठ, अ. फ. पिठ्ठि । २. फ. रनं, म. निवुरं, स. निट्टुर, ना. निट्टुरं ।
 (२०) १. धा. प्रसार, अ. फ. प्रसहि, म. ड. स. प्रसाल, ना. प्रसल । २. म. ड. स. भाल । ३. धा. मिथुरं, अ. मिथुरं, ना. विस्थुलं, फ. म. उ. स. विथुरं ।

(२१) १. धा. में 'इस' के 'स' के पूर्व चरण का अंश वृद्धि है, मो. ना. सपानि इस, अ. फ. साप इस, म. उ. स. छिपान इस ।

- (२२) १. म. समधि । २. धा. अ. ना. आदि, म. आस ।
 (२३) १. धा. अ. फ. अपूरवं ति बधयो, ना. अपूर वंच बद्धप, म. उ. स. अपूर पूर बद्धप ।
 (२४) १. धा. भाग्यो, अ. भाग्यो, फ. भाग्य उ. स. लुद्धप, म. लधप ।
 (२५) १. मो. नरेंद (< नरिंद ?) पंगु, धा. म. उ. स. नरिंद पग, अ. फ. नरिंद पाइ ।
 (२६) १. मो. छत्री मंगि, धा. गसा भुयति, अ. फ. गसा भ्रमति, ना. सभृत्त मंगि, म. उ. स. सु छत्रि (षत्र-म.) मंगि, स. भृत्ता मंगि । २. धा. आइस, अ. फ. आधिस ।
 (२७) १. फ. जोगनी । २. ना. पुरेस ।
 (२८) १. धा. जु अप्प अप्प विप्फुरे, मो. आप आप बिथ्युरे, अ. फ. सु अप्प बिप्फुरे अरे, ना. आप आप बिप्फुरेस, उ. स. सु अप्प अप्प विप्फुरे, म. सु अप जेम विप्फुरे ।

टिप्पणी—(१) भर < भट । (२) उनव < उण्णम < उद्+नन् । नय < नत । (४) साद < शब्द । (५) उष्पली < उक्खलिय < उक्खण्डित=उन्मूलित, उत्पाटित । (९) पयाल < पाताल । (१२) साचर < संचर । (१३) कुल < कूल । (१४) सून < सनु=पुत्र । (१५) प्रवत्ता < प्रवर्तय् । (१७) रेन < रेणु । (१९) निट्टुर < निट्ठुर । मिथुर < विस्थूल । (२०) प्रसलन्न < प्रसरण । (२१) साप < सप=शेष । (२५) पायस < प्रादेश । (२६) आयस < आदेश । (२८) विथ्युर < वि+स्तृ ।

[१३]

दोहरा— सह समांन सह^१ छत्रपति सह^२ सम जुध^३ संयुत्त^४ । (१)

गहन^१ मीन बंदन कहइ^२ जिहि लगगइ^३ लहु वत्त^४ ॥ (२)

अर्थ—(१) [जयचंद-पक्ष के सामंतों में] सभी समान थे, सभी छत्रपति थे, और सभी युद्ध में समानरूप से सस्नुत (प्रशसित) थे, (२) किन्तु पृथ्वीराज को पकड़ने के लिए मीर बदन ने कहा (बीड़ा लिया), जिसे यह लघु बात लग रही थी ।

पाठांतर—*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

+ चिह्नित चरण का 'गहन' के बाद का अक्षर फ. में नहीं है ।

(१) १. धा. मो. अ. फ. स. सह समान सह, म. उ. तुम सह समान, ना. नम वि समान सह । २. मो. धा. सव, अ. फ. ना. म. उ. स. सह । ३. मो. गूध, फ. क्रुद्ध, म. जुद्ध । ४. धा. सजुत्त, अ. फ. सरिजुत्त (सरियुत्त-फ.), म. उ. स. मजुद्ध, ना. सजत्त ।

(२) १. अ. फ. गहहु । २. मो. मर वदन कीउ (= किअउ), धा. मीर वदन हती, ना. म. उ. स. मीर वदन कहै । ३. मो. लगि (= लगइ), धा. लग्गे, ना. म. उ. स. लग्ग । ४. धा. लघुमत्त, म. लहुवान, उ. लहु बद्, स. लहु बद्ध, ना. बहुवत्त ।

टिप्पणी—(१) सह = समस्त । सजुत्त < सस्नुत । (२) लहु < लघु । वत्त < वत्ता < वार्त्ता=वात ।

[१४]

छप्पय— परठिया^१ पंगु राय^२ सु+ रीसं^३ । (१)
भषइ* दोइ^१ दुम्मीन^२ हीने न^२ दीसं ॥ (२)
नीच कंधे^{०१} प्रही^{०२} रोम सीसं^३ । (३)
उप्परइ*^१ फोज प्रथीराज रीसं^३ ॥ (४)

अर्थ—(१) पंगराज (जयचंद) ने [उसे] रोष पूर्वक नियुक्त किया । (२) वह दो दुम्मीयों—मोटी दुमवाली भेड़े खाता था और [इसलिए] हीन (क्षीण) नहीं दिखाता था । (३) उसके कंधे नीचे थे और सिर के बाल झड़े हुए थे । (४) उसने पृथ्वीराज की सेना के ऊपर रोष किया ।

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

० चिह्नित शब्द धा. में नहीं हैं ।

+ चिह्नित शब्द मो. में नहीं हैं ।

(१) धा. पठिय, अ. फ. पठिय, ना. पठिय, म. पठिय, उ. स. सवे पठिय । २. धा. अ. फ. सव पंग, म. उ. स. पंग राय, ना. पंगराय । ३. मो. रीसं, अ. फ. म. उ. स. सुहीस ।

(२) १. सवे दोइ, मो. भषि (= भषइ) दोइ, म. सवे दोय । २. धा. दुम्मान, अ. फ. दुमीन, उ. स. दुम्मीन । ३. मो. ही नयन, अ. फ. ना. हीनैन ।

(३) १. अ. फ. नीच, म. नीच कंधे, ना. उ. स. किय नीच कंधे । २. मो. प्रही, शेष में तुछ (तछ-फ.) । ३. म. रोम सु सीसं ।

(४) १. मो. उपरि (= उपरइ), धा. उप्परे, अ. फ. उप्परै, ना. म. उ. स. परी उघरै, फ. पंग । २. धा. राय प्रथीराज । ३. धा. दीस, म. उ. स. दीसं ।

टिप्पणी—(१) परठि अ < पठिठिय < परिस्थापित अथवा प्रतिष्ठापित । (२) प्रहा = झड़ना [यथा बालों का झड़ना]

[१५]

रसावला—

जे ^१	कौल ^२	पलत्र ^३	भषी ^४	। (१)
मेछ	सव्व ^२		भषी	। (२)
रोम	राहं		रषी ^२	। (३)
वीर	बाहु ^२		पषी ^२	। (४)
संभरेन ^१			लषी । + +	(५)
वनेचरं	त ^१		मुषी ×	(६)
बान	बाहु		षषी ^२ । + ×	(७)
संध ⁺	सा		बध्वषी ^२	। (८)
टक	अठार		षी ^१	। (९)
दिव्य ^१	वाह		लषी २	। (१०)
दुम्मि	साह ^१		मुषी	। (११)
बोजते ^१	न		लषी	। (१२)
पारसी ^१			पालषी ^२ । ^३	(१३)
पंग	पारठ		षी ^१	। (१४)
स्वामिता ^१			चित्तषी	। (१५)
ढिल्लि	ढिल्लइ* ^१		मषी । ^२	(१६)
सठि	हजार		षी ^१ । +	(१७)
पवंग	सा ^१		पारषी ॥	(१८)

अर्थ—(१) जो कौल होते हैं, वे पल (मास) भक्षी होते हैं, (२) [किन्तु] म्लेच्छ सर्वभक्षी होते हैं । (३) वे रोमप्रिय और नखी (बड़े नखों वाले) होते हैं, (४) वे वीर और बाहु भक्षी—बाहु का आश्रय लेने वाले होते हैं । (५) वे स्मृति से लक्ष्य करने वाले होते हैं । (६) वे वनेचरों बदरों (?) के मुख वाले होते हैं । (७) उनका व्याण का [सा] हीन होता है । (८) वे शरीर के सघों (जोड़ के स्थानों) को बौध रखते हैं । (९) अठारह (?) रंक [का घनुष] खींचते (?) हैं । (१०) वे दिव्य बाहु—लक्ष्मी (?) होते हैं । (११) वे मुख पर दुम (दाढ़ी) का साधन करते हैं । (१२) वे बोलते नहीं दिखाई पड़ते—कम बोलते हैं । (१३) वे फारस और बलख (?) के होते हैं । (१४) जे पंग (जयचंद) द्वारा परिस्थापित हैं । (१५) उनके चित्तों में स्वामि भक्ति हैं । (१६) वे दिल्ली को ढीला (शिथिल) करने को शख रहे हैं । (१७) वे साठ हजार हैं । (१८) पलवगो (घोड़ों) के वे पारखी थे ।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

× चिह्नित चरण म. में नहीं है ।

+ चिह्नित चरण ना में नहीं है ।

‡ चिह्नित चरण अ. फ. में नहीं है ।

के (१) १५ आ. अ. फ. उ. स. में यह शब्द नहीं है । २. ना. लोक । ३. मं. ना. स. पलव, शेष में पलव । ४. ना. स. पलव । ५. पलव । ६. पलव । ७. पलव । ८. पलव । ९. पलव । १०. पलव । ११. पलव । १२. पलव । १३. पलव । १४. पलव । १५. पलव । १६. पलव । १७. पलव । १८. पलव ।

(२) १. मा. मेछ सर्व, धा. मेछ सरब, अ. फ. मेछ सव्व, ना. मेछ सव, म. सस्रवनवं, उ. मेस सव, स. मेस सवें ।

(३) १. मो. म. रषी, क्षेप में 'नषी' । २. म. उ. स. में यहाँ और है : वेयजे विद्धषी (विद्धषी-म.)

(४) १. धा. चाहू, मो. बेहू, ना. वाह, अ. फ. म. उ. स. बाहु । २. धा. चखी ।

(५) १. धा. सभे नारं, म. उ. स. सुमरे ना ।

(६) १. धा. में ये दो शब्द नहीं हैं, ना. वच्च रत्त ।

(७) १. मो. हू, धा. ना. बाह

(८) १. धा. संघ सावखी, मो. सिंध सावधषी, अ. फ. सध सा वधषी, ना. सर्वदा विद्धषी, म. उ. स. विद्धि (विद्ध-म.) सा वद्धषी ।

(९) १. म. स. अढरषी । २. मो. के अतिरिक्त सभी में यहाँ और है (स पाठ) :—

खंच (खचि-म.) विम्भारषी । लोट नाराचषी (नार जषी-म.)

और मो. म. तथा ना. के अतिरिक्त सभी में है:

प्राण जोए लषी । कूल वाह (कोल वाहे-म.) चषी ।

(१०) १. अ. फ. हिहि, ना. विज्जु, म. स. बाज । २. धा. बाहू नखी, ना. बाहै लषी, म. स. चाहै लषी ।

(११) १. धा. द्रुम्म सिसा, अ. फ. धर्म साह, ना. दुमो साहै, स. द्रुम्म साहं, म. दुमि साहै, उ. दुम साहै ।

(१२) १. अ. फ. बालते, म. बोतने ।

(१३) १. म. पारस । २. म. उ. स. पारषी । ३. ना. म. उ. स. में यहाँ और है :

बान बाह पषी ।

(तुलना० चरण ४)

(१४) १. धा. पारठुकी, म. पारंढषी, ना. पारढषी ।

(१५) १. धा. स्वामि ना, म. सामिता ।

(१६) १. मो. ढिल ढिली (< ढिलि=ढिलह) धा. ना. ढिल ढाहं, म. ढिलि ढाहं, म. स. ढिलि ढाहं । २. ना. म. उ. स. में यहाँ और है : वीचरत्तं मुषी (वीखरत्तं मुषी-म.) । ना. में यहाँ और भी है: रज्ज रज्ज रषी ।

(१७) १. धा. अ. फ. साहि हजारषी, मो. सठि हैम रषी, म. सठि हजारं मुषी ।

(१८) १. धा. पगवे, म. पवंगे, म. पवंगं, फ. पवगम ।

टिप्पणी—(१) पलज < पल [क]=मांस । (२) राह < राध । (४) पष < पक्ष । (५) संभर < स्मरण । बाह < व्याध । उक्ख [दे०]=हीन । (१३) पारुष < बलख (?) । (१४) पारठु < परिस्थापित ।

[१६]

भुजंग—

हय दल पय दल^१ अगगइ^{*} सुंढारे^२ । (१)

नृपतिन छत्रिन^३ लध्वे न^४ पारे । (२)

सूर^५ सामंत मभमे^६ हजारे । (३)

मनउ^{*२} विटिय^२ कोट मभमे^३ मनारे^४ ॥ (४)

अर्थ—(१) अश्व-दल और पद-दल के आगे [जयचंद की सेना में] सुंढारे (हाथी) थे, (२) नृपतियों और क्षत्रियों का तो पार नहीं मिलता था । (३) शूर और सामंत [उस सेना के] मध्य में हजारों थे, (४) [जो ऐसे लगते थे] मानो कोट (परकोटे) के मध्य में वेष्टित मीनार हों ।

पाठांतर—चिह्नित शब्दसंशोधित पाठ के हैं ।

० चिह्नित चरण धा. में नहीं है ।

(१) फ. हय दल पइ दल, ना. हय दलं पय दल, म. उ. स. हय सेन पय सेन । २. धा. अ. फ. अग्न सुडारे, मो. अग्नि (=अग्न) सुडारे । ना. अग्न सुडारे, म. अग्न सुडारे, उ. स. अग्न सुडार । ३. फ. न यह शब्द नहीं है ।

(२) १ धा. नृपतिन छत्तनु, अ. नृपतिन छन्नन, फ. नृपतिन छत्रति, म. विष तीन, ना. उ. स. त्रिपत्ती नछत्रीन (नुछत्रीनु-ना.) । २. धा. लब्धन, अ. फ. लब्धन, ना. लब्धत, म. उ. स. लब्धन ।

(३) १. म. उ. स. तिन सूर । २. मो. मध्ये, अ. फ. मध्ये, ना. 'म. उ. स. मध्य ।

(४) १. मो. ना. मनु (=मनु), म. मनौ, शेष सभा में 'मनो' । २. म. विदीय, ना. वीदीय । ३. धा. के, ना. मब्ध, म. उ. स. मध्ये । ४. धा. उ. स. मुनारे, अ. फ. मनीरे, म. सुनारे ।

टिप्पणी—(२) लब्ध < लब्धम् । (४) विदिय वेष्टित ।

[१७]

भुजंग— मोरिय^१ राज प्रथीराज^२ वग्ग^३ । (१)
 उठिय^१ रोस आयास लग्ग^३ । (२)
 पथ्य^१ भारथ्य^२ भरि^३ होम^४ जग्ग^५ । (३)
 पुल्लिय^१ षग्ग षंडु वन^२ लग्गं ॥ (४)
 उठिय^१ सूर सामंत तज्जे^२ । (५)
 षोल्लियं सिघ^{*} साहथ्य लग्गे^१ । (६)
 वाजने^१ वीर रा पंग^२ वज्जे^३ । (७)
 मनउ^{*१} आगमे^२ मेह^३ आषाढ गज्जे^४ ॥ (८)
 मिले योध वथ्ये^१ न हथ्ये हकारे^२ । (९)
 उठे^१ गयन लग्गे समं सार^२ मारे । (१०)
 कटे^१ कंध^२ काबंध^३ सघे^४ ननारे^५ । (११)
 परे जंग रंगं मनउ^{*१} मत्तवारे ॥ (१२)
 मरे^१ संमरे राय^२ सं^३ सार^४ सारे^५ । (१३)
 जुरे^१ मल्ल हल्लइ^{*२} नही जे^३ अषारे । (१४)
 जवे हारि हल्लइ^{*१} नही को^२ पषारे । (१५)
 तवे^१ कोपियं^२ कन्ह^३ मयमत्त^४ भारे^५ ॥ (१६)
 जवे^१ अप्पियं मारु हथ्ये^२ दुधारे । (१७)
 फूटे^१ कुंभ कुम्भं नीसान भारे । (१८)
 गये^१ सुंड दंतीनु^२ दंता उभारे^३ । (१९)
 मनउ^{*१} कंदला कंद भिल्ली^२ उषारे ॥ (२०)
 परे पंडुरे^१ वेस ते^२ मीरु सीसं^३ । (२१)
 मनउ^{*१} जोगिनी जोग^२ लागति रीसं^३ । (२२)

वहइ*^१ वान कम्मान^२ दीसै^३ न भानं । (२३)
 भमइ*^१ पिधनी गिध^२ पावै न जान^३ ॥ (२४)
 रुलि पेत रत्त^२ चरंतं^३ करारं^३ । (२५)
 बोलि^२ कंठ कंठी^२ न लग्गी^३ उभारं । (२६)
 सरं^२ श्रोणि^२ रंगं पलं पारि^३ पंकं^४ । (२७)
 वजइ*^१ मंस पंचि गंधि वासि^२ करकं^३ ॥ (२८)
 दुमं ढाल लोलंति हालंति देसं^२ । (२९)
 गये हंसे नंसीय गेहे सुवेसं^२ । (३०)
 परे पांनि जघ^२ धरंगं निनारे^२ । (३१)
 मनउ*^१ मछ्छ कछ्छ^२ तरे तीर भारे^३ ॥ (३२)
 सिरं मा सरोज^२ कचे^२ सा सिवाली^३ । (३३)
 गहे^२ अंत प्रध्वी^२ सु सोहै^३ मराली^४ । (३४)
 तटं^२ रभ रत्त^२ भरंतं^३ विचीरं^४ । (३५)
 कतं स्याम स्वेतं^२ कतं^२ नीरं^३ पीरं^४ ॥ (३६)
 सुरे^२ अंग अंगे^२ सुरंगे^३ सुभटं । (३७)
 जिते^२ स्वामि^२ कज्जे^३ समर्प सुघटं^४ । (३८)
 काल^२ जम जाल हथी^२ समानं^३ । (३९)
 इत्तने^२ जुध अस्तमित भानं^२ ॥ (४०)

अर्थ—(१) राजा पृथ्वीराज ने बाग (लगाम) मोड़ी, (२) तो [उसका] रोष उठा और व
 आकाश से जा लगा, (३) [जिस प्रकार] पार्थ महाभारत में अहं भाव (?) से भर कर जाग पड़े
 (४) और उनका खड्ग खाडव वन [को दग्ध करने] में लग गया था । (५) धूर-सामंत तर्जि
 होकर उठ पड़े, (६) और सिंह के समान लज्जित होकर उन्होंने हाथ खोले । (७) पंगराज के बा
 बज उठे, (८) मानो आषाढ में मेघ आकर गज उठे हों । (९) योद्धा व्यस्त (अलग-अलग) मिले
 और उन्होंने हाथों को हँकारा (वापस या पीछे बुलाया) नहीं, (१०) [उनके उठे हुए हाथ
 गगन से जा लगे, और समान रूप से उन्होंने सार (शस्त्रास्त्र) झाड़े—चलाए । (११) कधे, कैं
 सध—शरीर के जोड़—कट कट कर अलग जा पड़े (१२) और वे जग (रण) के रग स्थल में पे
 जा पड़े जैसे मत वाले [पड़े] हो । (१३) साभर राज (पृथ्वीराज) के द्वारा सारे सार (शस्त्रास्त्र)
 झले गए । (१४) [किन्तु जयचंद पक्ष के योद्धा उसी प्रकार नहीं हिले] जैसे अखाड़े में जुटे हु
 मल्ल नहीं हिलते हैं । (१५) जब इस प्रकार हार कर भी वे हिल नहीं रहे थे, और किसीने प्रचा
 (ललकारा), (१६) तब अति मदमत्त हो कर कन्ह कुपित हुआ । (१७) जब उसने हाथों
 दुधारे की मार दी, (१८) तो [गजों के] कुंभ फूट कर झूमने (झूलने) लगे, और भारी निशा
 (घासो) बजा । (१९) दंतियो (हाथियो), के शुड [कट] गए और उनके दाँत [इस प्रकार
 उखाड़ लिए गए (२०) मानो भिल्लनी ने कदल [लता] के कद उखाड़े हो । (२१) मीरो के सि
 पाडुर वेष में [इस प्रकार] पड़े हुए थे (२२) मानो किसी योगिनी का योग [—पात्र] दिखाई प

रहे हों। (२३) कमान (धनुष) वाण प्रवाहित कर रहे थे। [जिसके कारण] भानु नहीं दिखाई पड़ रहा था। (२४) [योद्धाओं के गिरने के कारण] गिद्धिनो और गिद्ध [इधर-उधर] चकर काट रहे थे, और [वहाँ शवों के पास] जाने नहीं पा रहे थे। (२५) उस रक्त [वर्ण के] क्षेत्र में सोर करते हुए कराल पक्षी (काग) विचरण कर रहे थे, (२६) [जिसके कारण] कंठी (कोकिल) बोल करके कंठ नहीं उभाड़ (खोल) रहे थे। (२७) शोणित का वह रंग-स्थल एक सर [बन गया] था, जिसमें पल (मांस) का पंक पड़ा हुआ था, (२८) [जिसमें और भी] मांस जा रहा था, दुर्गंधि बिंच रही थी, और करंक (हड्डियाँ) निवास कर रही थीं। (२९) वे ढाल जो लोल थीं, और हिलती हुई थीं [आने को] द्रुम, बतला रही थीं। (३०) जो हंस (प्राण) नष्ट होकर निकले रहे थे, वे ही वे हंस थे जो अपने सुंदर घरों को जा रहे थे। (३१) पाणि, जङ्घ, घड़ [शरीर से] अलग पड़े हुए थे, (३२) [वे ऐसे लगते थे] मानो [उस सरोवर के] मच्छ-कच्छ हों जो उसके तीर (तट पर) तैर रहे हों। (३३) [कटे हुए] सिर सरोज थे, और कच शैवाल थे; (३४) अंतड़ी लिए हुए जो गिद्धिनो थी, वही उस सरोवर पर शोभित मराली थी। (३५) उस [सरोवर] का रंभ (शब्द पूर्ण?) रक्त तट चीरों से भरा हुआ था; (३६) कितने ही [उन में से] श्याम और श्वेत तथा कितने ही नोल और पीत थे। (३७) वे सुमट गग सुन्दर अंगाणों [को प्राप्त कर उन] का विलास कर रहे थे, (३८) जितनों ने (जिन्होंने) अपने शरीर को स्वामि कार्य में समर्पित किया था। (३९) [वहाँ पर] हाथी काल के यम जाल के समान थे। (४०) इतने युद्ध के अनंतर भानु अस्ममित हो रहा।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

‡ चिह्नित चरण फ. में नहीं हैं।

० चिह्नित चरण धा. में नहीं हैं।

(१) १. म. उ. स. तबै मोरिय। २. मो. राय प्रथिराज, शेष में 'राज प्रथिराज'। ३. मो. ना. बागं, शेष सभी में 'वग्ग'।

(२) १. धा. अट्टिय, फ. उट्टिया, म. उ. स. वरं उट्टियं। २. मो. लग्गं, शेष में 'लग्गं'।

(३) १. धा. ना. पथ, म. उ. स. मनो (मनौ—म.) पथ्थ। २. अ. भारथ, ना. म. पारथ, शेष में 'पारथ्य'। ३. अ. भरि, शेष में 'हरि'। ४. धा. हेम। ५. धा. जिग्गै।

(४) १. मो. पुलियं, धा. ना. खोलियं, म. मनौ लवियं, उ. स. मनो षोलियं, शेष में 'षोलिय'। २. धा. खाड्योन, अ. फ. षडुअन, म. उ. स. खडून, ना. मंड्योन।

(५) १. मो. उट्टियं, धा. अ. ना. उट्ठियं, म. उठियं रन, उ. स. वरं उट्ठियं। २. धा. ना. ताजे, मो. तागे, म. तजे, अ. उ. स. तज्जै।

(६) १. मो. षोलियं संघ सइय लागे, धा. रोहिया सिंघ साहथ आजे, अ. फ. छोहिय सिंघ साहथ लज्जे, म. उ. स. तत्र षोलियं षग्ग साहथ रज्जै, ना. षोलिय पग्ग साहथ राजे (तुलना० चरण ४)।

(७) १. म. उ. स. सुर बाजने। २. अ. दोररा पंगु, फ. धारु राषैगु, ना. पगरा वीर वीर। ३. उ. स. बज्जै, अ. फ. म. बज्जै।

(८) १. मो. मनु (=मनउ), धा. मनो, अ. फ. मनौ, ना. मनुं (=मनउ)। २. म. आग मै। ३. मो. मेह, शेष में 'मेघ'। ४. अ. फ. म. गज्जै।

(९) १. उ. स. मिले लोह हथ्थ, ना. म. मिले जो धहथ्थ। २. धा. न लग्गे हकारे, अ. फ. न लग्गे करारे, मो. न हच्छे हकोरे, म. उ. स. सुवथ्थं हकारे, ना. ति वथ्थं हकारे।

(१०) १. धा. उडे, म. अ. फ. ना. उडै, उ. स. उडे। २. स. सकंसार।

(११) १. मो. कट, धा. कट्टे, अ. फ. ना. उ. स. कटै, म. कटे। २. यह शब्द मो. में नहीं है।

३. धा. कंथ, ना. कव्वध । ४. मो. सधे, म. संधि, शेष में 'सध' । ५. अ. म. उ. स. निनारे, ना. निरारे ।

(१२) १. मो. मनु, ना. मनुं (=मनउ), अ. फ. म. मनौ ।

(१३) १. धा. डरे, मो. जुरे, म. उ. स. झरं, फ. झरै । २. धा. अ. फ. राइ, म. उ. स. राव । ३. अ. फ. सा, ना. सुं (=मउ), म. उ. स. सो । ४. फ. मार । ५. ना. म. उ. स. झारे ।

(१४) १. जुरे । २. मो. हलि (=हलइ) धा. अ. फ. हल्ल । ३. धा. ते, मो. जे, म. ज्यौ, शेष में 'ज्यौ' ।

(१५) १. धा. जीवे हारि हल्ले, मो. जुरे हल्ल हलि (=हलइ), ना. म. उ. स. जबै हार (हारि-ना.) मन्ने (मन-म.), अ. फ. जबै हारि हल्ले । २. धा. चो, म. का ।

(१६) १. अ. फ. तये, ना. तबै । २. अ. फ. कोपियो । ३. धा. कोम । ४. मो. नीसान (तुल०चरण १४) म. मै सत । ५. धा. गारे ।

(१७) १. अ. फ. जहा । २. अ. फ. मध्ये, म. ना. हथं ।

(१८) १. अ. फ. कटे, म. उ. स. फूटे, ना. फटै ।

(१९) १. धा. गये, अ. फ. अ, उ. स. गहे, ना. म. गहै । २. ना. दंडहि । ३. धा. दता उपारे, ना. दता उभारे, म. दती उभारे, अ. फ. दतौ उपारे ।

(२०) १. मो. मनु (=मनउ), ना. मनु (=मनउ), म. मनौ, शेष में 'मनौ' । २. अ. कदरा, म. कदरा । ३. मो. विहो, ना. भाली (< भोली), म. उ. स. भील ।

(२१) मो. परं पंडरे, उ. स. परे पंगुरे, म. अ. परे पत्तर । २. ना. भेस ते, उ. स. पंडुरे, म. पंगुरं । ३. फ. मीसं ।

(२२) १. मो. मनु (=मनउ), ना. मनुं (=मनउ) अ. फ. म. मनौ, शेष में 'मनौ' । २. धा. जोगिनी जोट, मो. योगिनी योग, अ. जोगिनी पत्र, फ. जोगिनी जत्र । ना. जोगीयां जोग, म. स. जोग जोगीय, उ. जोगि जोगीय । ३. अ. फ. लागंत दीसं, ना. म. उ. स. लागत रीसं ।

(२३) १. मो. बहि (=वहइ), धा. ना. भ. अ. फ. बहै । २. मो. में यह शब्द नहीं है । ३. ना. सुज्जे ।

(२४) १. मो. भमि (=भमइ), अ. फ. भवै, म. उ. स. भमै । २. धा. ग्रिद्धणी ग्रिद्ध, अ. फ. गिद्धिनी गिद्ध (गिद्धि-फ.), म. उ. स. गिद्धनी (ग्रिद्धनी-म.) गिद्ध । ३. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :

लगे रोह रत्ते अरत्ते करारं । मनो गज्जियं मेघ फट्टे पहारं ।

दई कन्ह चहु आन अरि पील सीसं । कही चंद कव्वी उपम्मा जगीसं ।

तितं पंग सघी महापील मत्तं । मनो पंचियं द्रोण बरबाय पुत्तं ।

किधौ पंचियं राम हथिना पुरेसं । किधौ पंचियं मथन गिरि सुर सुरेसं ।

किधौ पंचियं कन्ह गिरि गोपि काजं । धरी सीस ऐसी सुभइं विराजं ।

(२५) १. धा. रुने षेत रत्तं, मो. रुलि षेत रत्तं, अ. फ. रुलै षेत अत्तं, ना. म. उ. स. रुरै (रुरे-म.) षेत रत्तं । २. ना. सरत्तं, म. उ. स. सुरत्तं । ३. मो. किरार, शेष में 'करारं' ।

(२६) १. मो. बोलि धा. घुले, अ. फ. घुलै, उ. स. सुरै, म. घुरे, ना. घुरै । २. धा. संठी । ३. धा. लंगी, ना. लग्गो, म. लागे ।

(२७) १. धा. अ. फ. ना. सरं, म. उ. स. सुरं । २. धा. स्रोण, अ. फ. स्रोण, ना. म. श्रोण, स. श्रोण । ३. धा. पार । ४. ना. वक ।

(२८) १. मो. वजि (=वजइ), म. वजे, ना. बजै । २. धा. मंस नंस सुवैसे, मो. मंस षचि गंधि वासि, अ. फ. बंस नंस सवेसे (वैसे-फ.), ना. म. उ. स. बस (बेस-म.) नेसं सुवसं (सुवेसं-म. उ. स.) । ३. ना. करकं ।

(२९) १. मो. दुमिं दालं लालंति हालंति देसं, धा. दुमं दालं लोलंति हालं सुदेसं, अ. फ. दुमं

(पुमं-फ.) इलि ढालंति हाल सुदेशं ना. म. उ. स. द्रुमं (समं-ना.) ढाज ढा सुलाल सुवेसं (सुदेशं-ना.) ।

(३०) १. धा. अ. फ. हंस नासं लगे हंस वेसं, ना. म. उ. स. हंस नसी (हसी-ना.) मिले (मिले-ना., मिलं-उ.) हंस वेसं ।

(३१) १. ना. जपद्ध । २. अ. निन्यारे, फ. नन्यारे ।

(३२) १. मो. मनु, ना. मनु (=मनउ), म. मनौ, शेष में 'मनो' । २. धा. मत्थ कत्थ । ३. धा. अ. फ. ना. तरंतोर भारे, उ. स. तिरंतं उभारे, म. तिरफं उभारे ।

(३३) १. मो. सरासजं । २. मो. कचे, शेष में 'कच' । ३. अ. सिवालं, फ. विसालं, ना. सवेली ।

(३४) १. धा. ग्रहै, म. गहै । २. धा. म. उ. स. ना. गिद्धी, अ. फ. गिद्ध । ३. मो. सु शोहि (=सोहइ), धा. स सोभे, ना. स साहै, अ. फ. सु सुभे । ४. मो. ना. मराली, धा. मुराली, अ. फ. मरालं, उ. स. मुनाली, म. त्रिनाली ।

(३५) १. धा. वढं, म. तटे, अ. फ. टर । २. मो. धरतं, धा. रंतं, अ. फ. रोटं, म. उ. स. धंभं । ३. धा. भरतं । ४. धा. पिचारे, अ. फ. विचारे, ना. ववीर, म. उ. स. ववीरं ।

(३६) १. ना. सेतं । २. अ. फ. कृतं, म. उ. स. कितं । ३. म. नाल (< नील), धा. नील । ४. धा. फ. पारे ।

(३७) १. धा. धरे, म. अ. फ. वरे, ना. परे, उ. स. वरै । २. अ. फ. अनं । ३. मो. मुरेंगे, धा. अ. फ. ना. म. उ. स. सुरंगं ।

(३८) १. मो. जित, धा. जिते, ना. जिते, शेष में 'जितो' । २. ना. स्याम, म. सामि । ३. मो. काजे । ४. मो. शर्म पं, धा. अ. फ. ना. समप्प (समप्पे-अ. फ.) सुघट, म. समप्पे जु घटं ।

(३९) १. धा. अ. फ. तहां काल, म. उ. स. तिते । २. मो. हाथी, धा. म. अ. फ. हथ्यी, ना. हस्ती । ३. धा. मसाणं ।

(४०) १. धा. अ. फ. भयो इत्तने, हुअे इत्तने, म. दुअं इत्तने, ना. इत्तनौ । २. धा. अस्तमित भाणं, अ. अस्तंसु जान फ. अस्तं सु भानं ।

टिप्पणी—(१) वग < वल्गा=लगाम । (२) आयास < आकाश । (३) पथ्य < पार्थ । होम < अहं (?) (४) षग्ग < खड्ग । (५) ताजे < तर्जित । (६) मेह < मेघ । गाज < गज्ज । (७) वथ्य < व्यस्त=अलग । (१०) गयन < गगन । (१४) अघारा < अक्खाडग < अक्ष वाटक । (२२) रीस < दृश । (२८) वज्ज < वज्ज । (२९) दुम < द्रुम । देस < देशय्=कहना, वतलाना । (३३) सिवाली < शैवाल । (३४) अत < अत्र=आत । (३६) कत < कति < कियद=कितना । (३७) मुर=विलास करना ।

[१८]

गाथा— निसि^१ गत वंछीय^२ भानं चक्की^३ चक्राय सूर सा चित्त^४ । (?)

विधु^१ संयोग वियोगे^२ कुमुदिनि^३ कली^४ कातरा णरा^५ ॥ (२)

अर्थ—(१) जिस प्रकार चको और चक्रवाक निशा के गत होने पर भानु [के आगमन] की वाञ्छा करते हैं, उसी प्रकार शूरों का चित्त था, और (२) जिस प्रकार वियोग में कुमुदिनी कलिका विधु-संयोग [की वाञ्छा करती है], उसी प्रकार कायर नर [उसकी वाञ्छा] कर रहे थे ।

पाठान्तर—(१) १. म. निस । २. मो. वंछीय, धा. छठ्ठिअ, अ. फ. वंछहि, म. वंछिय (< वंछिय), उ. स. वंछिअ । ३. धा. चक्काइ, ना. चक्कीय । ४. धा. सा रयणी, फ. सा रयनी, अ. सूर सार धणी ।

(२) १. मो. विधि, धा. ना. अ. फ. म. उ. स. विधु (विध-म.) । २. धा. संजोगे, अ. फ. वियोगौ,

ना. विजोगो, ना. म. उ. स. वियोगी । ३. मो. कुमदिनि, फ. कुमुदिना, म. कुमुद, ना. कुमुदिन । ४. मो. कलि, धा. कलिके, अ. फ. तु, ना. कलिकाइ । ५. धा. कते राने, अ. फ. कातरा णरा, म. उ. स. कातरा नाच, ना. कातराना ।

[१९]

दोहरा— उभय सहस हय गय परित^२ निमि^२ निग्रह^३ गत^४ भांन । (१)
सात सहस^२ असि मीर हणि^२ थल^३ विटउ^{*४} चहुआन ॥ (२)

अर्थ—(१) दो हजार अश्वो और गजों के गिरने पर भानु निशा के निग्रह-गत हो गया । (२) इसी प्रकार से सात हजार मीरों [को सेना] को मार कर चहुआन (कन्ह) ने रण-स्थल का वेष्टित कर दिया (पाट दिया) ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ का है ।

(१) १. धा. ना. म. उ. स. परिग । २. म. निस । ३. धा. अ. आगत, फ. आगति । ४. मो. ते ।

(२) १. धा. सत सहस, म. सहस सत, ना. उ. स. सत्त सहम । २. म. उ. स. अस मीर हनि, ना. अस मर हनी । ३. मो. थलि, उ. थल विल, शेष में 'थल' । ४. मो. विटु (=विटउ), धा. विट्यो, ना. म. अ. फ. विटयो ।

टिप्पणी—(२) विट < वेष्ट्यु=वेष्टन करना ।

[२०]

कवित— परउ^{*१} गंजि^२ गहिलुत्त^३ नाम^४ गोविद^५ राज^६ वर । (१)
दाहिम्मउ^{*१} नरसिघ परउ^{*२} ना गवर^३ जास धर । (२)
परउ^{*१} चद पुंड़ीर^३ चंद^४ पेक्खो^३ मारंतउ^{*४} । (३)
सोलंकी सारंग^१ परउ^{*२} असि बर^३ मारंतउ^{*४} । (४)
कूरंभ राय^१ पालन देउ^२ बंधव^३ तीन निघट्टिया^४ । (५)
कनवज्ज^१ राडि^२ पहिलइ^३ दिवसि^४ सउ मइ^{*५} सत्त^६ निघट्टिया^७ ॥ (६)

अर्थ—(१) [रण क्षेत्र में] वह गुहिलौत गजित होकर (मारा जाकर) गिरा जिसका श्रेष्ठ नाम गोविदराज था । (२) दाहिमा नरसिघ पड़ा जिसकी धरा नागौर थी । (३) चद्र पुंड़ीर गिरा, जिसको चद ने मार-काट करते देखा था । (४) सोलकी सारंग पड़ा, जो श्रेष्ठ असि (तलवार) झाड़ (चटा) रहा था । (५) कूरंभ राजा पालन देव के तीन बाधव घट गए (मरे) । (६) इस प्रकार कन्नौज-युद्ध में प्रथम दिवस सौ [राजपूतो] में सात समाप्त हो गए ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

‡ चिह्नित शब्द अ. फ. में नहीं हैं ।

(१) १. मो. परु (=परउ), धा. पर्यो, ना. म. पर्यौ, शेष में 'पर्यो' । २. धा. गज, मो. म. गंज, अ. गंध, फ. गधि, ना. स. गजि । ३. मो. गहिलुत, धा. गुहिलोतु, फ. गुहिलौर, ना. गहिलौत,

अ. म. उ. स. गहिलौत । ४. धा. राम । ५. धा. ना. गोइद, म. उ. स. गोयद । ६. धा. जासु ।

(२) १. मा. दाहिमु (=दाहिमठ), शेष में 'दाहिमौ' (दाहिमो-धा.) । २. मो. परु (=परड), धा. पलौ, शेष में 'पर्यौ' । ३. धा. मो. नागवर, शेष में 'नागौर' ।

(३) १. मो. परु (=परड), शेष में 'पर्यौ' । २. धा. पडर । ३. मो. पेक्षो (=पेक्खो), धा. दिख्यो, अ. फ. म. ना. उ. स. पिथ्यौ । ४. मो. मारतु (=मारतड), धा. मारता, शेष में 'मारतौ' ।

(४) १. धा. अ. फ. सोनका सारंगु, ना. सालका सिरदार । २. मो. परु (=परड), शेष में 'पर्यौ' (धा. परगे) । ३. मो. असमर, शेष में 'असि'वर' । ४. मो. झारंतु (=झारतड), धा. झारता, शेष में 'झारतौ' ।

(५) १. धा. कुरम्भ राइ, मो. कोरम (< कुरंभ) राय, ना. फ. कुरम्भ राउ, शेष में 'कुरंभ राव' । २. मो. पालन देउ, अ. फ. पज्जून सौ, ना. पालहननद, म. पाजून दे, शेष में 'पालहन दे' । ३. धा. बध्यो । ४. धा. तित्त तिहिदिया, अ. तिकट्टिया, फ. कट्टिया, म. उ. स. सु कट्टिया, ना. निवट्टिया ।

(६) १. मो. कनज, शेष में 'कनवज्ज' । २. धा. मो. राडि, शेष में 'रारि' । ३. म. पहिलि (=पहिलइ), धा. पहिलइ, ना. अ. म. फ. पहिल । ४. धा. मो. ना. दिवसि, शेष में 'दिवस' । ५. मो. सुमि (=सउमइ), धा. सउमइ, अ. फ. म. ना. उ. स. सो मै (सौम-म.) । ६. मो. अ. फ. सात, धा. सत्त । ७. धा. निघट्टिया ।

[२१]

कवित्त— अर्ध रयणि^१ चंदनी^२ अर्ध^३ अग्गइ^{*४} अंधिआरी^५ । (१)

भोग भरणि अष्टमी सुक्रवारइ^{*१} सुदि रारी^२ ।+(२)

च्यारि^१ जांम जंगलीराय^२ निसि^३ निद्द न पुट्टउ^{*४} । (३)

थल विटउ^{*१} कमधज्ज रहउ^{*२} कंदल आहुट्टउ^{*} । (४)

दस कोस कोस^२ कनवज्ज तइ^{*२} कोस कोस अंतरि^३ अनी^४ । (५)

वाराह रोह जिमि पारधी^१ इम रोकउ^{*२} संभरि^३ घनी^४ ॥ (६)

अर्थ—(१) आधी रात [तक] चंदनी थी, आगे की आधी [रात] अँधेरी थी । (२) भरणी (नक्षत्र) का योग था, अष्टमी की तिथि, शुक्रवार और शुक्ल पक्ष थे, जब रार (लड़ाई) हुई । (३) चार पहर रात्रि तक जागल-नरेश (पृथ्वीराज) ने नौद नहीं खूटी । (४) कमधज्ज (जयचंद) ने रण स्थल वेष्टित कर दिया (पाट दिया) और युद्ध में अधिस्थित (?) रहा । (५) कन्नौज से दस कोस की दूरी तक उसने कोस-कोस के अन्तर पर सेना लगा दी और (६) वाराह को जिस प्रकार शिकारी रुद्ध करता है, इसी प्रकार उसने साभरघनी (पृथ्वीराज) को रुद्ध किया ।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

+ चिह्नित चरण ना. में नहीं हैं ।

(१) १. म. रयन, अ. रेनी, फ. ना. रैन । २. अ. चदिनी, फ. म. चंदनीय । ३. मो. अर्ध, शेष में 'अद्ध' या 'अध्व' । ४. धा. फ. म. उ. स. अग्गै, ना. अग्ग, मो. आगि (=आगइ), अ. अग्गे । ५. म. अंधारीय ।

(२) १. मो. सुक्रवारि (=सुक्रवारइ), धा. वार मंगल, अ. फ. सुक्रवारे (सुक्रवरे-फ.), उ. स. सुक्रवारइ, म. सुक्रवा । २. म. रारीय ।

(३) १. धा. चार, ना. पारि, फ. चारि । २. धा. जगली राउ, अ. फ. जगली रह्यौ, ना. म. उ. स. जंगली (जगलीय-म.) राव । ३. अ. तह, फ. तिह । ४. मो. निद न पुट्ट (=पुट्ट), धा. नीद न, घुट्यो, अ. फ. नीद (निद) न सुध्या, ना. निद न पौट्यौ, म. निद न घुट्यो, उ. स. निद न घुट्यौ ।

(४) १. धा. विट्यौ, मो. विट्ट (=विट्ट), ना. विटे, अ. फ. विटे, म. उ. स. विटयो । २. मो. रहु (=रहउ), धा. रहवो, अ. फ. ना. म. उ. स. रह्यौ । ३. मो. ना. कमधज्ज, शेष में 'चहुवान' । ४. मो. आहुट्ट (=आहुट्ट), धा. म. उ. स. आहुट्यो, ना. आट्यौ, अ. फ. आहूथा ।

(५) १. अ. फ. कोस अंत, ना. कोस कोम कोस । २. मो. ति (=तह), धा. ते, ना. तै, म. तै, शेष में 'ते' । ३. फ. अंतरि, शेष में 'अंतर' । ४. म. अनीय ।

(६) १. अ. जिमि पारधी, फ. जिस पारधी । २. मो. रोकु (=रोकउ), धा. अ. फ. म. ना. उ. स. रुक्यौ । ३. ना. सेभरि । ४. म. धनीय ।

• टिप्पणी—(१) रयणि < रजनी । (२) निद < निद्रा । (४) विट < वेष्ट्य । आहुट्ट < अधिस्थित (?) । (६) रोह < रुध् ।

[२२]

रासा— मित्त^१ महोदधि मभक्क^२ दिसंत^३ प्रसंत^४ तम^५ । (१)
पथिक^१ वधू पथि^२ दिष्ट^३ अहुट्टिय^{*४} चंग^५ जिमि । (२)
जुव जन जुवती गंजि^{०१} सुमत्ति अनंग भय^२ । (३)
जिम^१ सारस रस⁺ लुध्व^२ त^० मुध्व मधुप्प लय^३ । (४)

अर्थ—(१) मित्र (सूर्य) महोदधि के मध्य [जा चुके] थे, दिशाओं को तम ने प्रस लिया था, (२) पथिक-वधू की दृष्टि [प्रियतम के] पथ में उसी प्रकार अधिस्थित (?) थी जैसी [खिची हुई] चंग (पतंग) होती है, (३) युवाओ और युवतियों की सुमति अनंग-नय से [उसी प्रकार] नष्ट हो चुकी थी (४) जिस प्रकार रस-लुब्ध सारस की अथवा [मधु—] मुग्ध मधुप की हो जाती है ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ का है ।

० चिह्नित शब्द मो. में नहीं है ।

† चिह्नित शब्द ना. में नहीं है ।

(१) १. धा. मत्त । २. धा. मज्झि, अ. फ. मंझ, ना. मम्म । ३. धा. दीसत । ४. धा. ना. अ. गसंत, फ. गसंति । ५. म. फ. तिम, ना. इम ।

(२) फ. पथिग, ना. पथिग । २. धा. मो. पथ, फ. पथि । ३. धा. द्रिस्टि, अ. द्रिष्टि, ना. दिष्टि, फ. दिष्ट, म. द्रष्टि । ४. म. अहुट्टीय (< अहुट्टीय) । ५. धा. जग ।

(३) १. मो. जुव जन जुवती (=जुवती) गजि, धा. जिम सुव युवतिन गते, ना. जुव्वन जुवतिनि गत्ति, अ. फ. जुव्वन जुवती रत्ति (रत्त-फ.), म. उ. स. जुव जन जुवतिन गजि (गजि-म.) । २. धा. मत्त अड गुले, मो. सुमत अनग भय, अ. फ. सुट्टि (दिष्ट-फ.) अपप्पनउ, ना. सुमत्ति अनग लौ, म. उ. स. सुमंति (सुमंत-म.) अनग लिय ।

(४) १. अ. फ. जिमि । २. फ. रस लुध्व । ३. धा. त मुध्व मधुप्प ले, मो. मुध्व मधुप्प यल, अ. फ.

जु मद्धु मधूप लउं, ना. समुद्ध मधुप्य लौ, म. समुद्ध समुधतिय, उ. सुमधु मद्धु तिय, स. समुद्धह मधु तिय ।
टिप्पणी—(१) मित्त < मित्र=सूर्य (२) बहुद्विय < अधिस्थित (१) । (४) लुध < लुब्ध । मुध < मुग्ध ।

[२३]

रासा— षेचरह कउ* उयउ* इंदु^१ इंदीवर उदयउ*^२ । (१)
नव विरही^३ नव नेह नव जल नय रुदुउउ*^४ । (२)
भूषन^५ सोभ^६ समीपनि^७ मंडित^८ मंडि तन^९ । (३)
मिलि मृदु मंगल^{१०} कीन मनोरथ सव्व मन ॥ (४)

अर्थ—(१) आकाशचरों (तारिकाओं) के [हर्ष के] लिए इंदु का उदय हुआ, और इंदीवर (नील कमल) उदित हुआ (खिल गया) । (२) नव विरही (पृथ्वीराज और संयोगिता) नव स्नेह के नव जल (अश्रु) का रुदन कर रहे थे । (३) उन्होंने [इसलिए] आभूषणों को समीप ही शोभित होने दिया, उनसे शरीर का सज्जन नहीं किया । (४) केवल [दोनों ने] मिलकर मृदु मंगल किया, और मन में सभी प्रकार के मनोरथ किए ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

‡ चिह्नित शब्द फ. में नहीं हैं ।

(१) १. मो. षेचरह कु (=कउ) उयु (=उयउ) इंदु, धा. अ. फ. षरह चारु च इंदु, ना. षरह चारु रवि इंदु, उ. षर चारुचि इंद, म. स. षर चारु रुचि (जचि-म.) इंद (यंद-म.) । २. मो. इंदीवर उदयु (=उदयउ), धा. ज मंदियवर उदय, अ. फ. जु इंदीवर मुदय, म. उ स. इंदीवर (इंद्रीवर-म.) उदयौ, ना. इंदुवर उदय ।

(२) १. धा. विरहिनि, म. विरहा, उ. स. विहार । २. मो. नव जनय मत्र रुदयु (=रुदयउ), धा. अ. फ. नवज्जलु (नव जल-अ. फ.) नव रुदय, म. उ. स. नवज्जल रुदयौ, ना. नव जल न रुदय ।

(३) १. अ. फ. भूषम । २. मो. सोभ, शेष सभी में 'सुभ' । ३. धा. अ. म. समीपन, फ. समीपनु, ना. महिपन्न । ४. धा. मंडनु, अ. फ. मंडिय । ५. धा. मंडि तनु, म. अ. फ. मंडि तन, उ स. मंड तन ।

(४) १. धा. मुद मंगल, म. मृदु मंग ।

टिप्पणी—(२) रुदय < रुद=रोना ।

[२४]

श्लोक— यतो^१ नीरे^२ ततो^३ नलिनी^४ यतो नलिनी ततो नीर^५ । (१)
त्यजति ग्रहं न यत्र ग्रहनी^६ यतो ग्रहनी ततो ग्रह^७ ॥ (२)

अर्थ—(१) जहाँ नीर होता है, वहाँ नलिनी होती है और जहाँ नलिनी होती है, वहाँ नीर होता है; (२) वह गृह त्याग दिया जाता है जहाँ गृहिणी नहीं होती है, [अतः] जहाँ गृहिणी होती है, वहाँ गृह होता है ।

पाठान्तर—(१) १. अ. फ. जेतो, म. जित, उ. स. जितं । २. धा. नलिनी । ३. म. तित । ४. धा. नीर । ५. धा. अ. फ. यतो (जेतो-अ. फ.) नीर तततो नलिनी (देखिए चरण का पूर्वार्द्ध), म. जितं

नलिनी तितं जलं ।

(२) १. धा. यत्र गेह गेहिनी तत्र, मो. त्यजति ग्रह न यत्र ग्रहनी, अ. फ. ति जत (जति-फ.) ग्रेह ग्रेहनी जत्र, म. उ. स. जतो गृह (जितो ग्रह-म., जतो ग्रह-उ.) ततो (तितो-म.) ग्रहिणी, (ग्रहनी-म.), ना. जत्त गेह ततो ग्रहनी । २. धा. यत्र गेहिनी तत्र गृह, अ. फ. जत्र ग्रहनी तत्र ग्रह, म. उ. स. जत्र गृहिणी (ग्रहनी-म.) ततो गृह (ग्रह-म.), ना. जत्र गेहनी ततो गृह ।

[२५]

कवित— दिनिधर सुय दिन जुध^१ जूह^२ चंपइ^३ सामंतन^४ । (१)
 भर^५ उप्परि^६ भर^७ परहि^८ परइ^९ धरहि^{१०} धावंतन^{११} । (२)
 दल दंतिय^{१२} विछुरहि^{१३} हय जुहय हय^{१४} कननंकइ^{१५} । (३)
 अछिछर^{१६} वर^{१७} हर^{१८} हार धीर धारा^{१९} झननंकइ^{२०} । (४)
 जय जय जु^{२१} घंट^{२२} जोगिनि^{२३} करहि^{२४} करि कनवज^{२५} ढिल्ली वयर^{२६} । (५)
 सामंत^{२७} पंच पेतह^{२८} परिग^{२९} भिरइ^{३०} भति^{३१} भए^{३२} विप्पहर^{३३} ॥ (६)

अर्थ—(१) दिनकर-सुत (धनि) के दिन युद्ध में [पृथ्वीराज के] सामंतो ने [शत्रु के] यूथों को दबाया । (२) भट के ऊपर भट गिरने लगे, और दौड़ते हुए [सैनिक] घरा पर गिरने लगे । (३) सेना के हाथो विछुड़ने-निकल भागने—लगे और हय (धोड़े) हिनहिनाने-किनकिनाने लगे । (४) हर-हार में अक्षर (मोक्ष) का वरण कर धीर वीर तलवारो को झनझनाने लगे । (५) कन्नौज और दिल्ली के वेर [के उपलक्ष्य] में योगिनियो 'जय जय' करती हुई घंटों की ध्वनि कर रही थीं । (६) [पृथ्वीराज के] पाँच सामंत खेत रहे, और युद्ध में दो प्रहर हो गए ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. धा. दिनियर सवि दिव जुह, मो. दिनीअर सुयदिन युध (=जुध), ना. अ. फ. दिन उगगत (उगति-फ., उगत-ना.) भय (यौ-फ.) जूह (जुद्ध-फ., युद्ध-ना.), म. उ. स. दिनयर सुअ दिन जुद्ध । २. मो. यूह (=जूह) । ३. मो. चंपि (=चंपइ), धा. चंपइ, अ. फ. चपै, म. उ. स. चपिय, ना. चंपिग । ४. धा. सावतहि, अ. फ. सावंतनि, मो. म. उ. स. सामंतन, ना. सामंतनि ।

(२) १. धा. पर । २. अ. फ. ना. उ. स. उप्पर । ३. धा. सर । ४. मो. परिहि, धा. परइ, म. नरहि, उ. स. भर । ५. मो. परि (=परइ) धरहि, धा. ना. परहि उप्परि, अ. फ. धरह (धरहि-फ.) उप्पर, म. उप्परि, उ. स. परिहि उप्पर, ना. परहि उप्पर । ६. धा. धावतहि, अ. धावतनि, फ. धाव तितु, म. धावंतत ।

(३) १. धा. दती, अ. फ. दंतीय, म. दतन, ना. दंतिनि, उ. स. दतिन । २. फ. दिबुरहि । ३. म. इ । ४. धा. किननकति, मो. कनकि (=कनकइ), अ. फ. करनकहि, म. किननकह, ना. म. उ. स. किन नंकहि (नकहि-ना.) ।

(४) १. धा. अ. ना. उ. स. अछरि, मो. अछिछर, फ. म. अछर । २. धा. पर, अ. दरि, फ. दर, ना. बरि । ३. ना. हरि । ४. धा. धार धारनि, मो. धर धीरा, अ. फ. धार धरनिव, ना. धार धारणि । उ. स. धार धारन, म. धार धार । ५. धा. झननकति, मो. झननकि (=झननकइ), अ. फ. ना. झननकहि, म. झननंकह, उ. स. झननंकहि ।

(५) १. फ. जय सु, ना. जया सु, दूसरा 'जय' फ. ना. में नहीं है, म. उ. स. जय जया, अ. फ. जय

जय सु । २. अ. फ. म. उ. स. सह । ३. मो. जोगिनि, धा. जुगिनि, शेष में 'जुग्गिन' या 'जुग्गिनि' ।
४. धा. करह, अ. कहहि । ५. धा. ना. म. उ. स. कलि कनवज, अ. फ. कनवज्जिय । ६. म. दिलीय कर ।

(६) १. अ. फ. सावत । २. धा. पित्तहि, मो. पेतह, ना. म. उ. स. पित्तह, अ. मित्तह, फ. मित्तहि । ३. धा. षणिग, फ. परि । ४. मो. भिरि (=भिरइ), धा. ना. म. उ. स. भिरत, अ. भरित, फ. रित । ५. ना. म. उ. स. पंच । ६. धा. मइ, म. भय । ७. धा. विकलहर, अ. फ. विषहर, उ. दुप्पहर ।

टिप्पणी—(१) दिनकर < दिनकर । सुय < सुत । जूह < यूथ । (२) भर < भट । (४) अछिछर < अक्षर । (६) वि < दि ।

[२६]

गाथा— विपहर^१ पहट्ट^२ परिध^३ हय गय नर भार सार^४ पंडेन^५ । (१)

रहरोस पंग^१ भरिधं उधरियं^२ वीर बिबेन^३ ॥ (२)

अर्थ—(१) [जब] दोहर प्रहट्ट हुआ, मारी हय, गज, नर, तथा सार (शस्त्रास्त्र) के खंड-खंड होने से (२) पंग (जयचंद) रमस् (उत्साह) युक्त रोष से भर गया, और वह वीर बंब (?) के साथ निकल पड़ा ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. धा. फ. विषहर, अ. विपहरह, म. विपहर, उ. स. विपहुर । २. धा. पहट्ट, मो. पाटह, ना. पट्टह, म. मडुरति, उ. स. पडुरति, अ. एहट्ट, फ. पट्ट । ३. धा. परयं, फ. परिधं । ४. फ. सीर । ५. मो. पंडेन (< पंडेन ?), धा. अ. फ. ना. हथेन (हथने-अ. फ.), म. उ. सथेन, स. नथेन ।

(२) १. मो. रोस रंग, म. उ. स. रंग रोस, ना. रग जेस । २. धा. ओधरियं, म. उ. स. उठियं, ना. उच्छीयं, अ. फ. उधरीय । ३. मो. वीर ब्यबेन (=बिबेन), अ. फ. चीर (चीरु-फ.) बिबेन, म. वीर बंबेन ।

टिप्पणी—(१) वि < दि । पहट्ट < पहट्ट < प्रहट्ट । (२) रह < रमस् । बिब < बब=बमक, शोर (?) ।

[२७]

कवित्त— परउ^{*१} माल चंदेलु जेन^२ धवली घर गुरजर^३ । (१)

परउ^{*१} भान भट्टी^२ मुआल^३ थट्टा^४ धर^५ अगगर । (२)

परउ^{*१} सूर सामलउ^{*२} जेन^३ बानो^४ मुपि^५ मुख्छह^६ । (३)

हसउ^{*} तिनिहि^१ पंमार^२ जेन विरदावलि^३ अछिछह^४ । (४)

निर्वान^१ वीर धार तनउ^{*२} रुकत हक नरेद दल^३ । (५)

पर अंत पच^१ भये विप्पहर^२ अगनित भंजि अभंग दल^३ ॥ (६)

अर्थ—(१) [युद्ध में] माल चंदेल गिरा जिसने गुजर घरा को धवलित किया, (२) भूपाल भान भट्टी गिरा जो थट्टा की घरा का अग्र (प्रमुख) था; (३) सामला शूर गिरा, जिसका बाना मुख-मुख था; (४) [वह परमार की गिरा] जो उस पर हँसता था और जिसकी विरदावली 'अच्छ' थी, (५) धार का निर्वाण वीर भी [गिरा] जिसकी हॉक पर नरेन्द्र (जयचंद) का दल

रुक जाता था, (६) ये पाँच [जयचंद के] अभंग (न हटने वाले) दल के अगणित योद्धाओं का भजन करके दोपहर होते-होते तक पड़ (गिर) रहे ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. पडु (=पडउ), धा. परयो, शेष सभी में 'पर्यो' या 'पर्यौ' । २. धा. जिन्ह, मो. जेन, अ. फ. जेनि (जैनि-फ.) । ३. मो. गुरजर, शेष सभी में 'गुजर' ।

(२) १. मो. परु (=परउ), धा. पर्यो, शेष सभी में 'पर्यो' या 'पर्यौ' । २. म. भान भाटी, फ. भान भट्टीय, स. मान भट्टी । ३. ना. भूवाल । ४. धा. घटा, अ. फ. घट्टा । ५. धा. घर ।

(३) १. मो. परु (=परउ) धा. पर्यो, शेष सभी में 'पर्यो' या 'पर्यौ' । २. मो. सामंत लु (=सामंत लउ), धा. सावरो, अ. सावरा, फ. साउरो, ना. म. उ. स. सामलौ । ३. अ. फ. जेनि (जैनि-फ.), ४. धा. बानो, मो. बानेत, अ. फ. वानौ, ना. उ. स. वानै, म. वानह । ५. ना. मुषि, शेष में 'मुष' । ६. धा. मुच्छहि, ना. म. उ. स. मच्छह ।

(४) १. मो. हसु (=हसउ) तिनिहि, धा. हसे जेतु, अ. फ. ना. हसै तिनहि, उ. स. हँसै तेन, म. हसै तेम । २. धा. फ. पावार, अ. पावार, म. उ. स. पांवार । ३. अ. फ. विरद वाना दल (दलि-अ.), ना. विरदावलि । ४. मो. अछिछह, धा. अच्छहि, म. अच्छरि, शेष में 'अच्छह' ।

(५) १. ना. व्रीवान (< व्रीवान) । २. मो. धार तनु (=तनउ), धा. धरवर धनुह, अ. फ. धावर (धाउर-फ.) धनी, ना. धावन धनी, उ. स. धावर धनू, म. धावर धरह । ३. धा. नवतर एक नरिंद दल, मो. रुक्त हक नरेंद दल, अ. फ. गन्यो त (ति-फ.) इक नरिंद दल, ना. हने अनेक नरिंद दल, म. उ. स. हनुय (धनुय-म., हनिय-उ.) नरिंद अनेक बल ।

(६) १. धा. अ. फ. ए परत पंच, ना. इन भिरित पंच, उ. स. म. इन परत पंच । २. धा. भउ जुग पहर, अ. फ. भय (भज-फ.) जुग पहर, ना. म. उ. स. भय (भए-ना.) विप्पहर । ३. धा. अगणित भजिअ पंग बल, मो. अगणित भंजि अभग दल, अ. फ. अगणित भंजि (भज-फ.) अभग षल, ना. म. उ. स. अगणित (अगनत-म., अगन-उ.) भजि असष दल ।

टिप्पणी—(१) घर < घरा । (२) अगगर < अग्र । (३) मुच्छ < स्मश्रु=मूँछ । (६) वि < दि ।

[२८]

कवित्त-चडउ*^१ सूर मध्यांन^२ पंगु परतंग गहन किय । (१)

धुर त^२ पेह^२ षह मिलित^२ सवन सुनिजे^५ सुलीय लिय^५ । (२)

तब नरिद^१ जंगलीय कोह कट्टिय^२ सुवंक^३ असि । (३)

घर^२ धुम्मिलि^२ धुंधुलीय^३ मनहु वददल^५ दुतीय^५ ससि । (४)

अरि^२ अरुण रक्त^२ कउतिग*^३ कलह^५ भयउ*^५ न भवह^६ भितंस^९ भर । (५)

सामंतन घट^२ तेरह परिग नृपति सुपठिय^२ पंच सर^३ ॥ (६)

अर्थ—(१) सूर्य मध्याह्न में चढ़ा तो पंग (जयचंद) ने [पृथ्वीराज को] पकड़ने की प्रतिज्ञा की । (२) खुरों से [उड़ी हुई] धूल आकाश से मिल रही थी, और भवणों से यही सुन पड़ता था—'लिया, लिया' । (३) तब जंगली नरेंद्र (जंगली राय) ने क्रोध-पूर्वक बाँकी तलवार निकाल ली । (४) धूमिल और धुंधली घरा पर [वह इस प्रकार लगती थी] मानो बादलों में द्वितीया का शशि हो । (५) [इस समय] शत्रु [पक्ष] के अरुण रक्त का कलह-कौटुक हुआ, किंतु वह भट भ्रम-भय से भीत (?) नहीं हुआ । (६) [पृथ्वीराज के] तेरह सामंत

गिर कर पड रहे [सात पहले मारे जा चुके थे—घा० २५६, पाँच फिर मारे गए थे—घा० २८९, एक यह जगली राय मारा गया], और नृपति (पृथ्वीराज) को भी पाँच बाणों ने विभूषित किया ।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. चड्ड (=चड्ड), धा. उ. स. चढयो, म. फ. चढ्यौ, अ. चढ्यउ, ना. चढ्यौ ।
२. धा. उ. स. मध्यान्ह ।

(२) १. धा. षभिर, अ. फ. षभरि, ना. उ. पुरणि, म. पूरनि, स. सुरनि । २. म. षह । ३. धा. अ. फ. म. उ. स. मिलिय । ४. धा. म. उ. स. इह सुनिय, अ. फ. इह सुनिय, ना. सुनियै सु । ५. धा. ली जु लिय, म. अ. फ. लिय सु लिय ।

(३) मो. नरेंद (< नरिंद), शेष में 'नरिंद' । २. धा. काढोय, अ. कढ्या, फ. कढ्या, ना. म. उ. स. कढी । ३. धा. चंक (< बक), उ. स. वंकि ।

(४) १. धा. धीर, अ. फ. अरि । २. अ. धमिल, फ. धमिलि, म. धुम्मल, उ. स. धूमिलि, ना. धुंधिमिलि । ३. धा. धुंधरिम, अ. फ. धुंधरिग, ना. धूमलीय, म. उ. स. धूमरिय । ४. धा. दल मंझ, अ. धन मध्य, फ. धन मझि, ना. दल मध्य, म. दल मझ, उ. स. दल मझि । ५. अ. फ. द्वितिय, म. हुंतिय ।

(५) १. अ. अरु, फ. अने । २. फ. असु रन रन । ३. धा. कौतुक, मो. कुतिग (=कउतिग) अ. फ. कौतुक, ना. म. कोतिग, उ. स. कौतिक । ४. म. कल, ना. उ. स. कलस । ५. मो. भयु (=भयउ), धा. अ. भयो, फ. ना. म. उ. स. भयो । ६. ना. भयह, अ. फ. भवह, म. उ. स. भयसु । ७. मो. भितंस, फ. भिरंति, शेष में 'भिरंत' ।

(६) १. धा. म. उ. स. सामंतनि घट (निघटि—म.), मो. म. सामंत नघट, ना. सामंत त्रिघट्टि, अ. फ. सावंत सु (त्रि—अ.) घट । २. धा. मो. सुपठीय (सुपठिय—धा.), अ. न लगिग, फ. लगति, उ. स. सपिठिय, म. सपठिय ना. सपठ्ठीय । ३. मो. ससर, शेष में 'सर' ।

टिप्पणी—(१) चड=चडना । परतंग < प्रतिज्ञा । (३) कोह < क्रोध । (५) कउतिग < कौतुक । (६) घट < घट्ट=गिरना । पठिय [दे०]=विभूषित, अलकृत ।

[२६]

दोहरा— संझ सपठिय^१ नृपति रण^२ दिय^३ पारस परि^४ कोट । (१)

रहउ^{*१} सूर सामंत जकि^२ चाहि^{*३} नृपति न^४ चोट ॥ (२)

अर्थ—(१) संध्या को [इस प्रकार] अलंकृत नृपति (पृथ्वीराज) ने [शत्रु के] परकोटे के पार्श्व में रण दिया (किया); (२) किंतु उसके शूर सामंत [यह देख कर] चकित रहे कि नृपति (पृथ्वीराज) को चोट नहीं लगी थी ।

पाठान्तर—*चिह्नित संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. सपठिय, धा. सपत्तिय, अ. फ. म. संपतिय, ना. सपत्ते, में 'सपत्तिय' ।
२. म. त्रिपनि रत, ना. त्रिपति नर । ३. धा. दिय, अ. फ. अरि, ना. परि, म. उ. स. विय । ४. ना. करि म. पर ।

(२) १. मो. रहउ (=रहउ), अ. फ. रहे, ना. म. उ. स. रहै । २. ना. झुकि । ३. धा. दिखिय, मो. वाहि (< चाहि), अ. फ. दिष्पहि, ना. देह, म. उ. स. देषि । ४. धा. ना. म. उ. स. नृपति तन ।

टिप्पणी—(१) सझ < संध्या । पठिय [दे०]=अलंकृत । पारस < पार्श्व । (२) जकि < चकित, (१) ।

[३०]

कवित्त— निसि^१ नवमी सिरि^२ चदु हक्क वज्जी^३ चावदिदिसि^४ । (१)
 भर^१ अभंग सामंत^२ वीर^३ वरषंत^४ मत्त^५ असि ॥ (२)
 अजुत जुत्त^१ आवध^२ इष्ट आरभ सत्त^३ वर^४ । (३)
 एक^१ जीव दस घटित^२ दसात^३ ठिल्लइ^४ जुसहस^५ भर^६ । (४)
 दिठुउ^१ न देव^२ दानव भिरत यूह रत्ति सूरत्त षल^३ । (५)
 सामंत सूर^१ सोरह^२ परिग गण्यउ^३ न^४ पंग अभंग^५ दल ॥ (६)

अर्थ—(१) नवमी की निशा में चन्द्रमा सिर पर था जब चारों दिशाओं में हॉक बीज; (२) अभंग (न हटने वाले) भट और सामंत वीर मत्त [होकर] असि-वर्षा कर रहे थे । (३) वे अजुत आयुधों से युक्त होकर श्रेष्ठ सत्य का इष्टारभ कर रहे थे । (४) एक-एक जीव दस-दस को मारता था, और दस [जीव] सहस मरों को ठेक (पिछड़ा) देता था । (५) इस प्रकार भिड़ते हुए देवता और दानव भी नहीं देखे गए थे, वे युद्ध (?) की रति में अनुरक्त होकर स्खलित हो रहे थे । (६) [पृथ्वीराज के] सोलह शूर सामंत गिर गए जिन्होंने पंग (जयचंद) के अभंग (न हटने वाले) दल को गिना नहीं—कुछ नहीं समझा ।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ का है ।

(१) १. फ. म. निस । २. अ. गत, फ. गति, ना. म. उ. स. सिर । ३. धा. वाजी, ना. वज्जीय । ४. मो. चावदिसि ।

(२) १. म. अ. भिरि, फ. सभरि, ना. भड । २. धा. अ. फ. सावंत, ना. सूरिमा । ३. म. वर, स. बारि । ४. धा. वरषंति । ५. धा. ना. मत्त, मो. अ. फ. ना. मत्त, म. उ. स. मंत्र ।

(३) १. मो. अजुत युन (=अजुत जुत्त), धा. ना. अजुत जुद्ध, अ. फ. सुजुद्ध जुद्ध, म. उ. स. अजुत जुद्ध । २. ना. आवंत, म. आयुध, फ. आउध । ३. म. अ. फ. ना. सत्ति । ४. म. वर ।

(४) १. धा. अ. फ. ना. इक्क । २. ना. घटति म. घटि । ३. धा. अ. फ. त । ४. मो. ठिल्लि (=ठिल्लइ), धा. ठिल्लहि, अ. ठिल्लइ, फ. ठिल्ले, ना. लेहि म. छैले (< ठैले) । ५. धा. सहस, अ. फ. सहस्स, उ. स. सु सहस, म. सुसह, ना. जुत्त सत्थ । ६. म. सत ।

(५) १. धा. दिठुउ, मो. दिधो (< दिधु?), अ. दिध्यो, ना. फ. दिध्यौ, म. उ. स. दिठे (दिठे-म.) । २. फ. देउ । ३. धा. सुहर रत्तरत तिय सुषल, मो. युहरती सूरत षल, अ. फ. सुहर रित्त तिय (वीय-फ.) पियति छल, ना. म. उ. स. जूह रत्त रत्तिय (रत्ते-ना.) सुषल ।

(६) १. ना. सावंत सुभट, अ. फ. सावत मूर । २. धा. सोलह । ३. धा. अ. फ. गन्यो न, ना. गनौ न मो. गण्यु (=गण्यउ) न, म. मारे । ४. मो. ना. अरंग (< अभंग) ।

टिप्पणी—(३) आवध < आयुध । सत्त < सत्य । (५) यूह < युद्ध (?) । खल < स्खलित ।

[३१]

भुजंग प्रयात—भए^{*१} राइ^२ दुइ इक्क^३ अके^४ प्रमान^५ । (१)
 परे सूर सोलह^१ तिने^२ नांम^३ आनं ॥ (२)
 परउ^{*१} मंडली राय^२ मालनं हंसउ^{*३} । (३)
 जिने^१ हक्किआ^२ पंग रा^३ सेन गंसउ^{*४} ॥* (४)

परउ*१ जावलउ*२ जालु३ सामंत भारे३ ।* (५)
 जिने*१ पारिआ२ पंग पंधार सारे३ ॥ (६)
 परउ*१ बागरी२ बाघ३ बाहइ* दु हथ्यो* । (७)
 भिरे१ पंग२ भागइ*३ दुहइ* लग* वथ्यो* ॥ (८)
 परउ*१, वीर जदउ*२ बलीराय३ बांन* । (९)
 जिने*१ नंषिया गयण२ गज३ दंत दांन* ॥ (१०)
 परउ*१ साहतो साह२ सारंग गाजी३ । (११)
 दुहइ*१ सत्त भाषउ२ भलउ*३ हथ्य माझी* ॥ (१२)
 परउ*१ पाधरीय२ रायु३ परिहार राना । (१३)
 पुले१ सेर२ पाजे वजे३ पंगु बांन* ॥ (१४)
 उपटए२ पंग३ आविधि* नीरं । (१५)
 तिहां१ सांघुला सोह२ भुज पार३ भीरं ॥ (१६)
 परउ*१ सिघली राइ२ सातल३ मोरी । (१७)
 लगइ*१ लीह अंगे२ जगी*३ जानि* होरी ॥ (१८)
 भिरइ*१ भोज भाजइ*२ नहीं सार भग्ने३ । (१९)
 भिरइ*१ मल्ल मानै२ नही लोह जागे३ ॥ (२०)
 परउ*१ राय२ भोआल३ उक* चंद सष्पी* । (२१)
 ए कु कुसम नांषे इ२ एकइ३ कित्ति भाषी* ॥* (२२)

अर्थ—(१) दोनों राजा एक ही भंक के (बराब) रप्रमाणित हुए । (२) जो सोलह शूर [पृथ्वीराज-पक्ष के] गिरे उनके नाम [समक्ष] ला रहा हूँ । (३) मालन-हस मंडली राय गिरा, (४) जिसकी हॉक पंग (जयचंद) की सेना को गॉस (शूल) [जैसी] होती थी । (५) जावला तथा जाल्ह नामक भारी सामंत गिरे, (६) जिन्होंने पंग (जयचंद) के सारे पंधारी सैनिकों को गिरा दिया था । (७) बागरी बाघ [राय] गिरा, जो दोनों हाथों से [तलवार] चलाता था, (८) उससे भिड़ने पर पंग (जयचंद) भाग निकला जब उसको व्यस्त रूप से बाघराव बागरी की दोनों [तलवारों] से घाव लगे । (९) बली राय बाने बाला वीर जादव गिरा, (१०) जिसने गगन में गज दंत दान करते हुए फेंके । (११) शाह शहाबुद्दीन को वश में करने वाला सारंग [राय] तथा गाजी (?) गिरे, (१२) दोनों ने सत्य भाषण किया तथा हाथ में भला (यश ?) लिया । (१३) पाधरी राय, और परिहार राणा गिरे, (१४) जिन्होंने खुले सेलों को साजा और जिन [के आक्रमण] से पंग के वानैत भाग गए । (१५) जहाँ पर पंग के (जयचंद) के आयुधों का पानी प्रकट हुआ, (१६) वहाँ सांघुला और सिह [राय] ने अपनी भुजाओं से उस पर पीड़ा डाली थी, (१७) सिहली राय तथा सातल मोरी भी गिरे, (१८) जिनके भगों में [जो रुधिर की] लेखा लगी हुई थी, वह ऐसी लगती की मानो होली [की लालिमा] लगी हो । (१९) भोज [गिरा जो] ऐसा भिड़ा था कि सार (लौह-तलवार) के भग होने पर भी नहीं भागता था, (२०) मल्ल [गिरा जो] ऐसा भिड़ा था कि शस्त्रास्त्रों के लगने पर भी मानता नहीं था । (२१) भोआल (भूपाल) राय गिरा, जिसकी साक्षी चंद ने की, (२२) एक चंद ने उस पर कुसुम फेंके और एक ने उसकी कीर्ति कही ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं।

× चिह्नित चरण ना. में नहीं है।

‡ चिह्नित शब्द फ. में नहीं है।

(१) १. मो. भइ (=भए), धा. मयी (< भइ=भए), अ. फ. भई, (< भइ=भए), शेष में 'भए'।
२. धा. शरीर, फ. रार, ना. म. उ. स. राय। ३. धा. टुकंक, अ. फ. दुहु कंक, ना. म. उ. स. दुअ
(दुव-ना.) कक। ४. धा. मो. अंके, अ. फ. अंक, म. इके, ना. उ. स. इकै। ५. ना. म. उ. स. समान।

(२) १. अ. फ. सोरह। २. धा. तिके, म. उ. स. तिनं, अ. फ. ना. तिनं। ३. म. नांन।

(३) १. मो. परु (=परउ), धा. परे, शेष में 'पर्यो' या 'पर्यौ'। २. धा. मडली राउ, अ. मडली
राइ, फ. मडणे राइ। ३. मो. आलन हंसु (=हंसउ), धा. मालहन हसो, अ. फ. ना. म. उ. स. मालहन
(मलहन-म.) हसो (हसों—ना., मालहण हसा-फ.)।

(४) १. धा. जिने, अ. ना. म. उ. स. जिन, फ. जिन, फ. जिना। २. धा. हकिवा, मो. हाकिवा,
म. उ. स. पारिया, अ. फ. हकिवा। ३. म. पगर। ४. मो. सेन गंसु (=गंसउ), धा. सरवन गसो, अ. फ.
सेन गंसो।

(५) १. मो. परु (=परउ), धा. पर्यो, शेष में 'पर्यो' या 'पर्यौ'। २. मो. जावलु (=जावलउ),
धा. जावला, शेष में 'जावलो' या 'जावलौ'। ३. धा. अ. फ. म. उ. स. जाल्ह, म. जल्ह। ४. धा. अ. फ.
सावंत (साउत-फ.) भारो (भारौ-अ. फ.)।

(६) १. मो. जेने (< जिन), धा. जिने, शेष में 'जिने' या 'जिनै'। २. धा. पारिये, अ. फ. पारियौ
(पारियो-अ.), म. पारिया, ना. पारीआ। ३. धा. अ. फ. पंधार सारो (सारौ-अ. फ.), म. संधार सारे।

(७) १. मो. परु (=परउ), धा. पर्यो, शेष में 'पर्यो' या 'पर्यौ'। २. धा. वारी, ना. बागुरी, म.
बगरी। ३. धा. मो. बाघ, ना. बाघु, अ. फ. बाग, म. राव। ४. धा. दुहथ्य, अ. फ. दुहथ्या, ना. म. उ.
स. दुहथ्यै।

(८) १. मो. भिरु (=भिरउ), धा. अ. फ. भिरे, ना. भिरयौ, म. उ. स. भिरै। २. मो. म. पग,
धा. अ. फ. पंगु (पग-अ. फ.)। ३. मो. भागि (=भागइ), धा. अ. फ. भगो, ना. भगो, उ. स. भगौ,
म. भगै (?)। ४. मो. दुहि (=दुहइ), लग, धा. अ. फ. भरे इत्य, ना. म. उ. स. मिल्यौ (मिल्यो-ना.)
इत्य। ५. धा. वथ्य, अ. फ. वथ्या, ना. म. उ. स. वथ्यै।

(९) १. मो. परु (=परउ), धा. पर्यो, शेष में 'पर्यो' या 'पर्यौ'। २. ना. जादुव, धा. जंदा,
अ. फ. जदो, ना. जहुं (=जहउ) म. जादौ, उ. स. जादौ। ३. धा. फ. ना. राउ, अ. म. उ. स. राव।
४. ना. म. उ. स. बानं।

(१०) १. मो. जेने (< जिन), धा. जिने, शेष में 'जिने' या 'जिनै'। २. धा. फ. नाषिया नैन,
अ. नषिया नैन, ना. नाषीया नैन। ५. धा. गय, अ. फ. गै। ४. धा. अ. फ. नाना, ना. तानं, म. उ.
स. पानं।

(११) १. मो. परु (=परउ), धा. पर्यो, शेष में 'पर्यो' या 'पर्यौ'। २. धा. साहजो सर, ना.
सत्ति सावंत, फ. सत्त साउंत, म. साहतौ सार, उ. स. साहतौ सार। ३. फ. नाजी।

(१२) १. मो. दुहि (=दुहइ), धा. दुहं, अ. फ. दुह, ना. म. उ. स. दुहुं। २. धा. अ. फ. सथ्य
भण्यो, ना. म. उ. स. सथ्य भण्यो (भण्यौ-म. ना.)। ३. मो. भलु (=भलउ), धा. भले, शेष में 'भलो'
या 'भलौ'। ४. म. उ. स. माजी।

(१३) १. मो. पर (< परु?)। धा. पर्यो शेष में 'पर्यो' या 'पर्यौ'। २. ना. म. उ. स. पद्धरी।
३. या. अ. फ. ना. राउ, म. उ. स. राव।

(१४) १. अ. पुलै। २. धा. सेर, मो. सेर, ना. सैल, शेष में 'सैल'। ३. धा. सारंग ले, अ. फ. सांल
पुले, ना. सज्जै पुलै, म. उ. स. साजै पुलै (पुलै-उ. स.)।

(१५) १. धा. जवे, अ. फ. म. उ. स. जवै, म. जबै। २. धा. उप्पटे, अ. फ. ना. उप्पटै, म. उप्पट्यौ,

उ. स. उप्पटो । ३. धा. पंग (< पंग) । ४. धा. अ. फ. ना. म. उ. स. आवद्ध ।

(१६) १. धा. अ. क. तर्हा, ना. उ. म. तव । २. फ. साहि । ३. मो. पाल, धा. अ. क. पारि, ना. म. उ. स. भानि (भान-म.) ।

(१७) १. मो. पर (=परउ), धा. पर्यो, शेष में 'पर्यो' या 'पर्यौ' । २. धा. सीध सिधास, अ. फ. सिवली सिध, ना. म. उ. म. सिधु आ मिधु । ६. धा. सादूर फ. सादिह, म. उ. स. सादह, ना. सादूह ।

(१८) १. मो. लगि (=लगइ), धा. जर्गी, अ. फ. ना. लगी, म. उ. स. लगे । २. धा. अ. फ. लोह अगो, ना. म. उ. स. लोह अग । ६. धा. छगी, म. उ. स. लगी । ४. धा. ना. जानु ।

(१९) १. मो. भरा (< भरि=भरइ), धा. अ. फ. भिर्यो, म. भिरे, ना. उ. स. भिरै । २. मो. भाजि (=भाजइ), धा. अगो, अ. फ. भग्गै, म. भग्ग' उ. स. भग्गै, ना. भग्गौ । ३. मो. सारि भागि (=भाग), धा. सार जग्गे, म. अ. फ. सार भग्गे, उ. स. सार भग्ग, ना. सार भग्गौ ।

(२०) १. मो. भरि (=भरइ), धा. ढरयो, अ. फ. जुर्यो, ना. धर्यौ, म. उ. स. पर्यौ । २. धा. पंग मानो, अ. क. मल हल्ल, म. उ. स. मल्ल (माल-म.), मानो (मनौ-म.) ना. मल मन्नु (=मन्नउ) । ३. मो. लोह लागे, धा. जूर लगे, म. उ. स. अ. फ. जूह लगे, ना. जूह लगौ ।

(२१) १. मो. पर (=परउ) धा. पर्यो, शेष में 'पर्यो' या 'पर्यौ' । २. धा. अ. फ. ना. राउ, म. उ. स. राव । ३. मो. मोआल, धा. ना. उ. स. फ. म हा, ना. म. भौहा, अ. लोहा । ४. मो. उक, धा. उनो, अ. नुले, फ. उभी, ना. म. उ. स. उभे । ५. धा. अ. फ. सष्पी, शेष में 'साषी' ।

(२२) १. धा. म. इके, अ. फ. ना. उ. स. इकै । २. मो. कुसम नाषीइ (< नाषिइ=नाषेइ), धा. कुसुम नखो, अ. फ. कुसुम नषी, म. उ. स. कुसम नषे (नषे-म.), ना. कुस्त नषे । ३. मो. एकि (=एकइ), शेष में 'इके' या 'इकै' । ४. मो. कित भाषी, धा. अ. फ. किति मष्पी, शेष में 'कित्ति भाषी' । ५. यहाँ धा. मो. को छोड़कर सभी में और है :

जिसी मारथं बोहिने दस अठु होमी । चैत सुदि रारि निसि एक नौमी ।

टिप्पणी—(८) खग्ग < खड्ग । वथ्य < व्यस्त=अलग-अलग । (११) साह् < साध्=वश में करना । (१४) सेर < सेल । वज्र < व्रज=त्राना । (१५) आविधि < आयुध । (१९) भग्ग < भाग्न=टूटा । (२१) मोआल < भूपाल । उक < उक्क < उक्त=कथित । साखी < साक्षी । (२२) नांष < नष < नश्=गिराना । कित्ति < कीर्ति ।

८. पृथ्वीराज-जयचन्द-युद्ध (उत्तरार्द्ध)

[१]

कवित— मिले^१ सब सामंत बोलु^२ मगहि^३ त नरेसर^४ । (१)

अप^१ मग लगिअइ^२ मग रषिइ^३ ति इक भर^४ । (२)

एक एक^१ भूमंति^२ दंति दंती^३ ढंढोरइ^{*४} । (३)

जिके^१ पंग राय^२ भिच्च^{*३} मारि^४ मारि कइ^{*५} मोरइ^{*६} । (४)

हए बोल^१ रहइ^{*} कालि^२ अंतरि^३ देहि^४ स्वामि पारथिअइ^{*} । । (५)

अरि असीइ^२ लष को^२ अंगमइ^{*३} परणि^४ राय^५ सारथिअइ^{*६} ॥ (६)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज के] सब सामंत मिले और तदनंतर वे नरेश्वर पृथ्वीराज से यह वचन माँगने लगे, (२) “आप [दिल्ली के] मार्ग लगे ओर [उसके] मार्ग की रक्षा एक [एक] भट करे । (३) एक-एक [भट] जूझते-जूझते दंतियों के दाँत खींच निकाले (४) और जो भी पंगराज (जयचंद) के भृत्य हों, उनको मार-मार कर मोड़ दे—युद्ध स्थल से भगा दे । (५) हमारा यह वचन रह जाए कि कलह के अंतर-से कलह से दूर रखते हुए—हम स्वामी को पार स्थिति देंगे, (६) अन्यथा अस्सी लाख शत्रु [सेना] को कौन अगवेगा—झेवेगा, हे राजा आप सार स्थिति का परिणय कीजिए—वास्तविक स्थिति को स्वीकार कीजिए ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. धा. मेलि, म. उ. स. मिलिह । २. धा. बोइ, ना. म. बोलि । ३. मो. मांगिहि, धा. अ फ मंगहि (=मगहि), म मांगहि, ना मगहि । ४ धा फ ति नरेसर, अ. उ स ति नरेसर, म त नरेसर ।

(२) १ मो आप, धा अप्पु, म अ. फ ना अप्प । २ मो लगीइ (=लगिअइ), धा. लगियइ, अ फ. ना म उ स लगियै । ३ ध अ रखिहि, फ रेष, म उ स रषे, ना. रषीयै । ४ धा अ फ सु मडा भर, म. स. इक इक (इक-स.) उ. इकक भर, ना. त इक भर ।

(३) १. अ. फ. म. ना. उ. स. इक इक । २. धा. अ. ना. म. स. झंझत । ३. धा. दंत दती, अ. फ. दांते दंतिय, ना. दंति दतिनि, उ. स. दंति दतन, म. दंत दतनि । ४. मो. ढंढोरि (=ढंढोरइ), धा. ढंढोरे, अ. फ. म. ना. उ. स. ढंढोरहि ।

(४) १. धा. जिते, मो. जे (< जि) के, अ. फ. जितै, म. उ. स. जिके, ना. जिगे । २. मो. राय शेष में ‘रा’ । ३. मो. भीष्ट (< भीच), ना. भिच (=भिच्च), फ. मीच, धा. अ. उ. स. भीछ, म. निग । ४. म. तेमारि, ना. मार । ५. मो. मारि कि (=कइ), धा. मारिमुडु, अ. मारि कर, फ. मारि करि, ना. मार करि, उ. स. सारिन सुष, म. सारन सुष । ६. मो. मोरि (=मोरइ), धा. मोरे, अ. फ. म. उ. स. मोरहि ।

(५) १. अ. फ. ना. बोलि । २. मो. रिहि (< रहइ), शेष में 'रहै' । ३. स. कल । ४. मो. अंतरि, धा म. उ. स. अंतरे, अ. फ. स. अतरै । ५. अ. फ. देह । ६. मो. पारथीइ (=पारथियइ), धा. ना. म. उ. स. पारथियै, अ. फ. पारथियो ।

(६) १. मो. असीइ, शेष में 'असी' । २. अ. कुण, फ. कुण, फ. कुन, स. की । ३. मो. अगमि (= अंगमइ), शेष में 'अगम' । ४. धा. परिणि, फ. परिन, ना. म. उ. स. विना । ५. धा. राइ । ६. मो. सारथीइ (=सारथियइ), धा. ना. म. उ. स. सारथियै, अ. फ. सारथियो ।

टिप्पणी— (१) नरेसर < नरेश्वर । मग्ग < मार्ग्य = मार्गना । (२) मग्ग < मार्ग । (४) मीच > मिच्च < मृत्य । (५), (६) थियइ < स्थिति (१) ।

[२]

कवित्त— मति घट्टी^१ सामंत^२ मरण हउ^{*३} मोहि^४ दिखावहु^५ । (१)
जम^१ चीठी^२ विणु^३ कदन^{*४} होइ जउ^{*} तुमउ^{*} बतावहु^५ । (२)
तुम गंजउ^{*१} भर भीम तास+ गव्वह^२ मयमत्ता^३ । (३)
मइ^{*१} गोरी साहव्वदीन^२ सरवर^३ साहता^४ । (४)
मुहि सरणहि^१ हींदू तुरक तिह^२ सरणागत^४ तुम^५ करहु^६ । (५)
बूझिअइ^{*१} न^० सूर सामंत हो^२ इतउ^{*३} बोझ^४ अप्पन घरहु^५ । (६)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज ने कहा], “हे सामंतो, तुम्हारी मति घट गई है जो [रण] भूमि में मरने का हउवा तुम मुझे दिखा रहे हो । (२) यदि यम की चिठी के बिना कदन (नाश) होता हो, तो तुम्हीं बताओ । (३) तुमने भट भीम [चौलुक्य] का नाश किया और उसी गर्व में तुम मदमत्त हो गए हो (४) मैंने भी गौरी साहवदीन को सरवर (सारोले ?) में साधा (वश में किया) है । (५) मेरी शरण में हिन्दू तुर्क [दोनों] हैं और उसी मुझको तुम शरणागत कर रहे हो ! (६) तुम सूर सामंत होकर भी समझ नहीं रहे हो, अपना इतना बड़ा बोझ (अहसान) तुम [अपने पास] रक्खो ।”

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

+चिह्नित शब्द फ. में नहीं है ।

० चिह्नित शब्द धा. में नहीं है ।

(१) धा. अ. ना. घट्टिय, फ. घट्टय । २. अ. सावत, फ. साउत । ३. मो. मरण हु (=हउ), धा. मरथ भय, शेष में मरन 'भय' । ४. मो. भूमि, शेष में 'मोहि' । ५. धा. दिखायो, अ. दिषायउ, फ. दिषायौ, ना. सुनावहु ।

(२) १. मो. धा. म. जिम, शेष में 'जम' । २. धा. अ. चिट्टिय, फ. चिट्टय, म. चिटी, ना. स. चिट्ठी । ३. मो. विर, धा. विणु, ना. विनु, शेष में 'विन' । ४. धा. म. उ. स. कहन, ना. मरन, अ. फ. होइ । ५. धा. होइ के मोहि करायो, अ. फ. कहन (कहिन-फ.) क्यों तुमहि सुहायउ (सुहायौ-फ.) म. उ. स. होइ (होइ-म) सो मोहि बतावहु, ना. होइ तौ मोहि दिखावहु ।

(३) १. मो. तुम गजु (=गजउ), धा. तुन गज्जुर, अ. तुम गज्या, ना. तुम्ह गंज्यौ, शेष में 'तुम गज्यौ' । २. धा. गेरव, म. ग्रवइ । ३. धा. उ. स. मै मंतो, म. मै मत्तौ, ना. मय मंतौ, अ. फ. मय मत्तउ ।

(४) १. मो. मि (=मइ) शेष में 'मै' या 'मै' । २. धा. बगोरि साहिध्व साहि, अ. फ. म. ना. उ.

स, गोरी साहाव साहि । ३. धा. सारवर, अ. फ. सारौल । ४. धा. साहत, अ. फ. सुभत्तउ, ना. म. उ. स. साहतौ (साहतो-म.) ।

(५) १. धा. मो. सरण सरण, अ. फ. मो. चरन सरन, ना. मोहि शरण, म. उ. स. मेरै (मेरै-म.) ज (जु-उ. म) सूरनर (सरनि-म.) । २. मो. होदू तरक, फ. हिंदू तुरक, अ. हिंदुव तुरक, ना. हांदू तुरक । ३. मो. तिहि, शेष में 'तिहि' । ४. अ. सरनगति, फ. सानगति । ५. ना. तुम्ह । ६. मो. करह, धा. करो, शेष में 'करहु' ।

(६) १. मो. वूझीइ (=वूझिअइ), फ. ना. म. वूझीये, अ. बुझिय । २. धा. हुइ, फ. हु, ना. तुम, म. हौ । ३. मो. इतु (=इतउ), अ. फ. म. इतौ, ना. में शब्द छूटा है । ४. मो. वूझ, ना. -झ, शेष में 'बोझ' (बौझ-म) । ५. धा. धरो, मो. धरहु, म. रहु, शेष में 'धरहु' ।

टिप्पणी—(१) हउ < भय । (२) जम < यम । (३) गव्व < गर्व । मयमत्त < मदमत्तो । (४) साह < साध्=वश में करना । (६) वूझ < बुझि [यथा 'सूझ-बूझ' में] ।

[३]

कवित— वन रषइ* जउ*^१ सधु विभ^२ वन रषइ*^३ सिघहि^४ । (१)
 धर^२ रषइ ति भुअंग^२ धरणि^३ रषइ त भुअंगहि*^४ । (२)
 कुल रषइ^२ कुल वधू वधू रषइति^२ अप्प^३ कुल । (३)
 जल रषइ जउ*^१ हेम हेम रषइ* त^२ सव्वु जलु । (४)
 अवतारह जब लगि जीवनउ*^१ मरन जीवन जम आवतह^२ । (५)
 रावत्त^० कइ*^० स^०रय^० रषनउ*^{०१} राउत रषइ* राय कह^२ ॥ (६)

अर्थ—(१) [सामंतों ने कहा,] “यदि सिंह वन की रक्षा करता है, तो विध्य वन भी सिंह की रक्षा करता है; (२) धरा को भुजंग (शेष) रक्षा करता है, तो धरणी भी भुजग (शेष) की रक्षा करती है; (३) कुल कुल-वधू की रक्षा करता है, तो वधू भी अपने कुल की रक्षा करती है, (४) जल हिम को [आले के रूप में] रखता है, तो हिम भी समस्त जल की रक्षा करता है । (५) जब तक [के लिए] अवतार (जन्म) है, तब तक जीवन भी है, उसी प्रकार मरण तब होता है जब जीवन में यम का आगमन होता है । (६) रावत की कभी राजा रक्षा करता है, तो रावत भी राजा की रक्षा करता है ।”

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

० चिह्नित शब्द धा. में नहीं हैं ।

(१) मो. वन रषि (=रषइ) जु (=जउ), धा. थान रहे ते, अ. फ. ना. वन रषै जौ, म. वन रष्यौ जे, उ. न. वन राषै ज्यौ । २. धा. वीह, अ. वीझ, फ. वीग, ना. मँझ । ३. मो. रषि (=रषइ) धा. रक्खै, अ. फ. ना. रषहि, म. उ. स. राषहि । ४. मो. सीघहि, धा. ना. सिघह, म. सिघइ ।

(२) १. फ. धइ । २. मो. रषि (=रषइ) ति भुअंग, धा. रक्खै जु भुअंग, अ. फ. रषइत भुजग, ना. रषे जु भुजग, म. उ. स. रोष यौ भुअंग (भुअंग-म.) । ३. फ. धरने । ४. मो. रषि (=रषइ) त भुअंगहि, धा. रक्खै जु भुअंगहि, अ. रषइत भुजंगहि, फ. रषहि तौ भुअंगहि, ना. रष तो भुजगहि, म. उ. स. रषैति भुअंगहि (भुअंगहि-म.) ।

(३) १. मो. रषति, धा. रक्खै, अ. फ. रषइ, म. ना. उ. स. रषै । २. मो. रषित, धा. रक्खै जु, अ. रषइति, फ. रषइत म. रषैति, ना. रषै तु । ३. अ. अप्पु ।

(४) १. मो. रषि जु (=रषइ जउ), धा. रक्खे जो, अ. फ. रषइ जौ, ना रषे जो म. उ. स. रषे ज्यौ (ज्यु-म.) । २. मो (रषि=रषइ) त, धा. रक्खे तु, अ. फ. रषइति (त-फ.), ना रषे तौ, म. उ. स. रषेति ।

(५) १. मो. अवतारइ जब लगि जीवतु (=जीवनउ), धा. अ. फ. आव रहै तब लग (लगि-अ.) जियन (फ. में 'जियन' शब्द नहीं है), ना. म. उ. स. अवतार जबहि लगि जीवतौ । २. धा. जियन जम्मु साबुत रहै, मो. मरन जीवन जम आव वह (१), अ. जियन जम आव तह, फ. जीवन यम आउ तह, ना. जायन जम सह आवतह, म. उ. स. जियन जम्म सब आवतह ।

(६) १. मो. रावत कै (< कह) सरय षनु (=षनउ), अ. फ. रावत रष राइ जौ, ना. रावत जेम रारषनै, म. उ. स. रावत तेह रा (राव-म.) रषनौ । २. मो. राउत रषइ राय कहं, २. धा. रक्खहि राव तिह, अ. रक्ख रावत रष राइ कहं, फ. रषत रषे राइ कह, म. राजन रषहि राव तह, ना. राइ ज रषे राव तह ।

टिप्पणी—(५) वह<तथा=उसी प्रकार । (६) रावत < राजपुत्र । कह<कहा=कभी । रय < राजा ।

[४]

कवित्त— तै* राषउ*^१ हिदुआन^२ गंजि^३ गोरी गाहंतउ*^४ । (१)
 तै राषउ*^१ जालोर^२ चंपि चालुक चाहंतउ*^३ । (२)
 तै राषउ*^१ पंगुरउ*^२ भीम भट्टी दइ* मथ्यउ*^३ । (३)
 तै राषउ*^१ रणथंभ^२ राय जादव^३ सइ हथ्यउ*^४ । (४)
 इह^१ मरण कित्ति राय^२ पंग की जियन कित्ति रा^३ जंगली । (५)
 पहु परणि^१ जाय^२ दिल्ली लगइ*^३ होइ* घरिघरि^४ मंगली ॥ (६)

अर्थ—(१) [सामंतों ने कहा,] “[हे पृथ्वीराज] तू ने गाहन करते हुए—पैठते हुए—गोरी [शहाबुद्दीन] को नष्ट करके हिंदुओं को रक्षा की; (२) तू ने चाहते हुए—[विजय की] आकांक्षा करते हुए—चालुक्य [भीम] का दमन कर जालोर को रक्षा का; (३) तू ने भीम भट्टी की मत्था (हार ?) देकर पंगुर (?) की रक्षा की, (४) तू ने यादवराज के हाथ से रणस्तंभ (रणथंभौर) की रक्षा की । (५) [यह युद्ध] पंगराज की मरण-कीर्ति और जागल राज (पृथ्वीराज) की जीवन-कीर्ति का है । (६) प्रभु [संयोगिता का] परिणय करके दिल्ली जा लगे और घर-घर मंगल हो, [हम सब की यही कामना है] ।”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. तै राषु (= तै राषउ), धा. तै रक्खे, अ. फ. तै रष्यो, म. तै रष्यौ, ना. उ. स. ते (ते-ना) रष्यौ । २. धा. हिदुवाण, म. फ. ना. हिंदवान । ३. मो. गज, शेष में 'गजि' । ४. मो. गाहतु (=गाहतउ), धा. गाहतो, शेष में 'गा तौ' ।

(२) १. मो. तै राषु (=राषउ), धा. तै रक्खे, म. अ. फ. तै रष्यो, ना. उ. स. ते (ते-ना.) रष्यौ । २. ना. नालेरि । ३. मो. चाहंतु (=चाहतउ) धा. साहतो, फ. साहतौ, अ. म. ना. चाहंतौ ।

(३) १. मो. तै राषु (=राषउ), धा. तै रक्ख्यो, म. अ. फ. ना. तै रष्यौ, उ. स. तै रष्यौ । २. मो. पंगुरु (=पंगुउ), धा. पंगुलिय, अ. पंगुली, फ. पंगलौ, ना. म. उ. स. पंगुरौ । ३. मो. भट्टी दि मधु (=इह मथउ), धा. महिध दे मत्थ, अ. ना. म. उ. स. भट्टो दे मथ्य (मथ्ये-म.), फ. भट्टी नै मथ्यौ ।

(४) मो. तै रापु (=राषउ), धा. तै रख्यौ. अ. फ. म. ना. तै रख्यौ उ. स. तै रख्यौ। २. धा. म. रिनथमु। ३. मो. जादव, धा. जाइदौ, ना. जाहु (जादउ), म. जदव, उ. स. जदौ। ४. मो. सि ह्थि (=सइ ह्थिउ), धा. म. सै ह्थै, अ. फ. सौ ह्थै, ना. उ. स. सै ह्थै।

(५) १. धा. उ. स. इहि, म. ना. इह, अ. फ. यइ। २. धा. कीरती, अ. फ. हित्ति राइ, म. ना. उ. स. कित्तिरा। ३. धा. मा. ना. उ. स. रा, अ. फ. राइ, म. रय।

(६) १. धा. अ. म. उ. स. पहु परनि, मो. पुहु सरणि, फ. यौ परन। २. धा. म. जाहु, मो. नाय, अ. फ. ना. जाइ, स. जाई। ३. मो. लगि (=लगइ), धा. लगै, म. लगे, शेष में 'लगै'। ४. धा. जु होइ, म. तौ होय। ५. धा. घरे घर, ना. घराघर।

[५]

कवित—सूर मरण मंगली स्याल^१ मंगल घरि^२ आए^{*३}। (१)

वाय मग^१ मंगली^२ घरणि^३ मंगल जल पाए^{*४}। (२)

क्रपन^१ लोभ मंगली दानि^२ मंगल कछु दिनइ^{*३}। (३)

सत^{*१} मंगल^{*२} साहसिह^{*३} मंगल^{*४} मंगन^{*५} कछु^{*६} लिनिइ^{*७}। (४)

मंगल वार हइ^{*} मरन की^१ ते^२ पति सथइ^{*३} तन पंडिअइ। (५)

पेत चढि^१ युध कम धज सउं^२ मरन सनमुख^३ मंडिअइ^{*४}॥ (६)

अर्थ—(१) [चंद ने कहा,] “शूर मरने में मंगली होता है—मंगल प्राप्त करता है, और स्याल (कायर) का मंगल [युद्ध से भाग कर] घर आने में होता है; (२) वायु मार्ग प्राप्त करने में मंगली होता है—मंगल प्राप्त करता है, और धरणी का मंगल [मेघ से] जल पाने पर हाता है; (३) कृपण लोभ में मंगली होता है—मंगल प्राप्त करता है, और दानी का मंगल कुछ देने पर होता है; (४) साहसी का मंगल सत (सत्त्व-प्रयोग) में होता है, और मंगन का मंगल कुछ लेने (पाने) पर होता है। (५) मंगल का द्वार मरण से होकर है, इसलिए पति (स्वामी) के साथ तन (शरीर) को कटाइए; (६) रण क्षेत्र में पहुँच कर कमधुज (जयचंद) से युद्ध कीजिए और सन्मुख मरण मँडिए।”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं।

X चिह्नित शब्द म. में नहीं हैं।

(१) १. धा. म. सार, अ. फ. स्वार। २. मो. मंगल घर, धा. मंगली ग्रिह, ना. मंगल घरि, फ. मरनथर। ३. मो. आइ (=आप), धा. आये, अ. धा. आयै, ना. स. आयै, म. उ. आयौ।

(२) १. धा. वार मंगल, अ. फ. वाइ मंगली, म. वाय मंगल, ना. उ. स. वाइ मेघ। २. मो. मंगल म. मंगलीय, शेष में मंगली। ४. मो. पाइ (=पाए), धा. पाये, अ. फ. पायै, ना. उ. स. पायै, म. पायौ।

(३) १. धा. क्रिपण, फ. क्रपिन, ना. कृपण, स. क्रपन। २. धा. दीन, मो. अ. फ. म. स. दान, उ. दानि। ३. मो. दिनि (=दिनइ), धा. दीनइ, ना. दिन्ने, उ. स. दिन्नै, फ. दीनै।

(४) १. मो. शत, धा. रत, फ. मत। २. धा. साहसइ, अ. फ. साहस, ना. उ. स. साहसीय। ३. मो. मंगलन मंगन, धा. अ. फ. मंग मंगल, ना. मंगिन मंगल, स. मँगन मंगल, उ. मंगन मंगल। ५. फ. कछु। ६. धा. लीनइ, मो. लिनि (=लिनइ), अ. फ. म. लिने, ना. उ. स. लिन्नै।

(५) मो. मंगल वार हि (=हर) मरन दी, धा. मंगली जु वार होइ मरण की, अ. फ. वार है मंगली मरन कीय, न ना. उ. स. मंगली वार हो (है-म. ना.) मरन की (कीय-ना.)। २. धा. अ. फ. में

नहीं हैं, म. उ. स. जौ । ३. मो. सधि (=सथइ), धा. अ. फ. ना. सत्थै, उ. स. सथइ, म. सथतन ।
४. मो. षडीय (=षडियइ), धा. षडियइ, अ. फ. न. उ. स. षडियै, ना. छडिय ।

(६) १. मो. ना. षेत चढि (=चढइ), धा. अ. पित चढि, फ. पिति चढि, ना. षेतचढि, म. उ. स. चढि षेत । २. मो. युध, कमधज स. (=मउ), धा. राइ राठोर सउ, अ. फ. ना. राइ कमधुज सौ, ना. कमधुज राइ सुं (=मउ), म. उ. म. राइ (राय-म.) पहुपंग सौ (सौ-म.) । ३. मो. सवमुष, शेष में 'सन्नमुष' । ४. मो. मडीय (=मडियइ), धा. मडियइ, अ. फ. म. ना. उ. स. मडियै ।

टिप्पणी—(१) स्याल < सुगा । (२) मग्ग < मार्गे । (५) वार < द्वार ।

[६]

कवित— मरण^१ दीजइ पृथिराज^२ हसहि^३ छत्र^४ करि^५ पइठउ^{*६} । (१)

मीच लगग निअ^१ पायि^{*२} कहइ^{*३} आइ घरि^५ बइठउ^{*६} । (२)

पंच घटि सौ^१ कोस कहइ^२ ठिल्लिअ^३ अस^४ कथ्यउ^५ । (३)

इकु इकु^१ सूरवा^२ पैषि दल वाहत^३ नथ्यउ^४ । (४)

घर घरणि परणि राउ^१ पंगुकी^२ पहुचइ^{*३} यह^४ बडुत्तणउ^{*५} । (५)

जब लगिग^१ गंग जल^२ चंद रवि तव लगि चलइ^{*३} कवित्तणउ^{*४} ॥ (६)

अर्थ—(१) [चंद ने कहा,] “हे पृथ्वीराज, यदि क्षत्रिय को मरण दीजिए, तो वह उसमें प्रवेश करके हँसता है । (२) मृत्यु को अपने पास पाकर वह कहता है, ‘आकर घर में बैठो ।’ (३) सौ में पाँच कोस कम दिखी है, ऐसा कथन लोग कहते हैं । (४) एक एक शूर [रण में] न्यस्त (स्थापित) हो कर [शस्त्र] चलाते हुए [शत्रु] दल को देखे । (५) पगाराज (जयचंद) की [कन्या] को घर-घरनी (परनी) के रूप में वरण करके दिखो पहुँचा जाए, यही बड़प्पन है । (६) जब तक गंगा में जल और चन्द्र-रवि रहेंगे, तब तक [इस विषय का] कवित्व चलता रहेगा ।”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. अ. सरण, फ. सरन । २. मो. दीजि (=दीजइ) प्रथिराज, धा. दिजइ प्रथिराज, अ. फ. दीयौ प्रथिराज, म. दिजे प्रथिराज, ना. उ. स. दिजे प्रथिराज । ३. धा. दसहि, अ. फ. सदै, ना. इसै, म. इसै, उ. स. इसै । ४. धा. उ. स. उत्रिय, ना. अ. फ. छत्री, म. छित्रीय । ५. ना. फ. म. कर । ६. मो. पइठु (=पइठउ), धा. पयठो, अ. पट्ठे, फ. पैठ, ना. अँठ, म. पिटहि, उ. स. पट्टिहि ।

(२) १. म. उ. स. लगीनीय, धा. लगयेय, ना. लग नया । २. धा. अ. फ. पाइ मो. पायइ, (<पायि) उ. स. म. ना. पाय । ३. मो. कहि (=कहइ), धा. कहे, अ. फ. कहयो, ना. म. उ. स. कहै (कहै—स.) । ४. मो. मरण मो. के अतिरिक्त यह शब्द किसी में नहीं है । ५. मो. आइ घरि, धा. घरि आव, म. ना. अ. फ. आयो (आयौ—म. फ. ना.) घर । ६. मो. बइठु (=बइठउ), अ. फ. बैठे, म. विटहि, ना. बैठे, उ. स. बैठहि ।

(३) १. धा. पंच घाट सौ, मो. पाँच घाट सौ, अ. फ. पाँच घाटि सौ, म. स. पच पच सौ, ना. पंच घटि सौ, उ. पंच सौ । २. धा. कहइ, मो. कहि (=कहइ), अ. फ. म. ना. उ. स. कहै । ३. ना. दिखी । ४. अ. फ. सा । ५. धा. कथ्यइ, म. अ. फ. कथ्ये, उ. स. कथ्यै ।

(४) १. धा. इक्क इक्क, मो इकु इकु (=इक्कु इक्कु), अ. फ. म उ स एक एक। २. मो धा सूरवा, ना. सूरिवा, म. सूरिवां, उ. सूरवा, ना. स. सूरिया। ३. धा. उ स. पिक्ख वाहते, अ. फ. पिप्पि चाहतौ (चाहै ते—फ.), ना. म. पिप्पि चाहते। ४. मो. नयउ, धा. वत्थइ, अ. फ. म. वत्थै, ना. वत्थै, उ. स. वत्थै।

(५) १. धा. उ. स. परनि रा, अ. फ. परनि राई, म. परिनि रय, ना. परणि राय। २. धा. के। ३. मो. पडुचि (=पडुचइ) धा. पडुचे, शेष में 'पडुचै'। ४. धा. म. उ. म. इहै, अ. फ. कहाँ, ना. यहै। ५. मो. वडुत्तणु (=वडुत्तणउ), धा. वडित्तनौ, अ. फ. वडत्तनौ, म. ना. वडप्पनौ ना. उ. स. वडप्पनौ।

(६) १. ना. लगे। २. मो. जल, धा. धर, शेष सभी में 'धर'। ३. मो. चलि (=चलइ), धा. चलै, शेष में 'चलै'। ४. मो. कवित्तणु (=कवित्तणउ), धा. अ. फ. कवित्तनौ, ना. म. उ. स. कविप्पनौ।

टिप्पणी—(१) पडुक्क < प्रविश। (२) मोच < मृत्यु। निअ < निज। (४) नत्थ < न्यस्त=स्थापित। (५) वडुत्तण [दे०] = वप्पडन। (६) कवित्तण < कवित्तप।

[७]

गाथा—मिट्यउ*^१ न^२ जाइ कहणो^३ वय^४ कवि चंद सार^५ सा मेंत^६। (१)

प्राची हय गय^७ वहणो रहणो^८ गत चिता नरेद्र तह^९ ॥ (२)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज ने कहा,] “जो कथन मेटा नहीं जा सकता है, कवि चंद वह सार मंत्र कहता है। (२) [दिल्ली की ओर प्रस्थान के लिए यह समय उपयुक्त है जब कि] प्राची (पूर्व दिशा—कन्नौज) के हय, गज, वाहन, रथादि तथा नरेन्द्र (जयचंद) गतचिता [हो रहे] हैं।”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं।

† चिह्नित शब्द फ. में नहीं हैं।

पाठान्तर—(१) १. मो. मिट्यु (=मिट्यउ), धा. अ. फ. मिट्यो, ना. म. मिट्यौग। २. अ. उ.। ३. धा. अ. जाइ कहणो, मो. जाइन दहनो, उ. स. जाइ कहिनो, म. जाय कहनौ, ना. जाइ कहनौ। ४. धा. अ. गटणो, फ. गहना, ना. कहनो, म. उ. स. कहनौ। ५. धा. ना. म. उ. स. सूर। ६. धा. सावंत।

(२) १. धा. आली हयगय वहणो, अ. फ. प्राची हय गय वहणो (फ. में 'गया नहीं है'), म. उ. स. प्राची क्रम्म (क्रम—म.) विधानं। २. धा. रहणो चित्त निदावत, अ. फ. गत चित्त निदावत (नैदाउत—क.) म. उ. स. ना. मान भावई गत, ना. गत चित्त सूर सामत।

टिप्पणी—(१) वय < वद्। मत < मंत्र। (२) रह < रथ। तह < तथा।

[८]

गाथा—सत भट^१ किरण^२ समूरउ*^३ सुरंगो*^४ अरेन^५ जान^६ आयेस^७। (१)

जोगिनिपुर पति^१ सूर^२ पारस मिसि^३ पंगु रायेस ॥ (२)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज के] सौ भटों ने, जो सुरंग (रगीन) किरणों के समान थे, कहा और कर से मानो आदेश (नमस्कार) किया, (२) “योगिनीपुर पति (पृथ्वीराज [स्वतः] राजेस है, पंगु (जयचंद) [अपनी] पारस (पारसीक सेना) के मिस (बलपौर) राजेश है।”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सन्निहित पाठ के हैं ।

० चिह्नित शब्द धा. में नहीं हैं ।

(१) १. धा. सत्रु भट, अ. सप्त भट, फ. सम भट, ना. शत भट, म. उ. स. सितद । २. अ. किरण, फ. म. किरन, ना. करण, उ. स. किरनि । ३. मो. समुरु (=सुमुरउ), धा. समूहे, अ. फ. समूहो ना. समूरो, म. उ. स. समूरौ । ४. धा. सूरौ...मो. सुरगो अरेन जान, अ. सुग्गो ओरणि आणि, फ. सृगौ आरेनु आणि, ना. उरि आरेणि सुग्ग, म. उ. सरे, परनय (सेन-म.) पग ।

(२) १. मो. योगिनि (=जोगिनि < पुरपति, धा. अ. फ. जुग्गिनि (जौगिणि-धा.), ना. पुरपति, जुग्गनिपुर पति, म. उ. स. जुग्गि नि पति भर । २. धा. सूरै, म. सुतौ । ३. धा. पारस मिलि, मो. ना. पारसौ मिस, म. उ. स. पारस मिलि अ. फ. पारसपति ।

टिप्पणी—(१) समूरव < समुलव < समुत्+लप्=बोलना, कहना । अरेन < करेण । आपस < आदेश । (२) राएस < राजेश ।

[६]

श्लोक—

परि^१ पंग कटक्क ति^२ घेरि^३ घनं । (१)
 दस पंच ति^१ कोस निसान धुनं^२ । (२)
 गजराज^१ विराजित^२ मध्य घन^३ । (३)
 जनु^१ वहलि^२ अभम^३ सुरंग वन । (४)
 परि पष्पर सार तुरंग घन^२ । (५)
 जनु^१ हल्लति^५ हेल^५ समुद्र^३ अनं^५ । (६)
 वर वइरष^१ बंबरि^२ छत्र तनी^३ । (७)
 विचि^१ माहीय साहीय^२ सिंघ^३ रनी^५ । (८)
 घर घेह मऊष त पीतपनी^१ । (९)
 दिषि^५ लज्जति^२ रेण^३ सरइ^५ तनी । (१०)
 मननंकहि^१ मेरि^२ अनेक^३ सय^५ । (११)
 सहयाइय^१ सीधुअ^२ राग^३ लियं^५ । (१२)
 निसि^१ सर्व नृपत्ति^३ अनीनु फिरइ^५ । (१३)
 जानु^१ भांवरि^२ भानु सुमेर^५ करइ^५ । (१४)
 दल सव्व^१ संभारि^२ अरत्ति^३ करी । (१५)
 जिन^१ जाय^२ निकस्सि नरिद^३ अरी । (१६)
 गत जांम ति^१ जांम सुपीत परी^२ । (१७)
 जयजय देव अयास^१ करी । (१८)
 नृप जग्गति सव्व तुरग^१ चढे । (१९)
 विनु भान प्रयान नु^२ लोह कढे । (२०)
 चहुअन कमान ति^१ कोपि^२ लियं । (२१)
 मिलि भउहनि^१ षंघि कसीस^२ दिथं । (२२)

सर छूट ति पषन सह मयउ*१ । (२३)
 मद गंध गयंदन^२ सूकि^३ गयउ*३ । (२४)
 मर इक ति विधति^१ सत्त^२ करी । (२५)
 दल देषति नेक* ठुठक परी^१ ॥^२ (२६)

अर्थ—(१) पंग (जयचंद) की कटक [वन्नौज के चारों ओर] सघन घेरा डाले हुए पड़ी है । (२) पन्द्रह कोस तक निसानों (धौसों) की ध्वनि [व्याप्त हो रही] है । (३) उस वन के मध्य [जयचंद की सेना के] गजराज [इस प्रकार] विराज रहे हैं (४) मानो आकाश में सुरंग (सुंदर हो बादलों का वन (=समूह) हो । (५) सार (लौह) की सघन पाषरे जो तुरंगों पर पड़ी हैं [इस प्रकार लगती हैं] (६) मानो हेली से अन्य समुद्र ही हिल रहा हो । (७) वैरखों (ध्वजाओं) और छत्रों की बबर (तड़क-भड़क) बहुत है (८) और उनके बीच में मानों सिंह की रणस्थली साधित (निष्पादित) है । (९) घरा की धूल [उड़कर] सूर्य की किरणों में [ऐसा] पीलापन ला रही है । (१०) कि उसे देखकर शरद की रजनी भी लजित हो जाए । (११) अनेक शत भेरियाँ भननक रही हैं (१२) और शहनाइयाँ सिधू राग में लिस हो रही हैं । (१३) शर्व (काली) निशा में नृपति (जयचंद) की सेनाएँ [इस प्रकार] फिर रही हैं (१४) मानो भानु सुमेरु की भाँवरे भर रहा हो । (१५) समस्त दल को सँभाल (तैयार) कर जयचंद ने एक अरति (बेचैनी) उत्पन्न कर दी है, (१६) जिससे कि उसका शत्रु नरेन्द्र (पृथ्वीराज) निकल कर भाग न जाए । (१७) इस प्रकार तीन प्रहर गत होने पर रात्रि पीत पड़ गई (१८) और देवताओं ने आकाश में [पृथ्वीराज का] 'जय-जय' किया । (१९) नृप (जयचंद) शर्व (काले) तुरंग पर चढ़ा भाग रहा है (२०) और बिना भानु (दिन) के ही सेना के प्रयाण के हेतु शस्त्रास्त्र निकल पड़े हैं । (२१) चहुआन (पृथ्वीराज) ने कुपित होकर कमान (धनुष) लिया (उठाया) (२२) और [उसे] भौंहों से मिलाकर खींचा और [उसे] कशिश दी (तनाव दिया) । (२३) शरो के छूटने से [उनमें लगे हुए] पखों का शब्द हुआ, (२४) [जिससे] गजेन्द्रों का सुगंधित मद सूख गया । (२५) उसके एक शर ने सात हाथियों को वेध डाला, (२६) यह देखकर जयचंद के दल में नैक (बहुत) ठिठक पड़ गई ।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

‡चिह्नित शब्द ना. में त्रुटित हैं ।

Xचिह्नित शब्द और चरण म. में नहीं हैं ।

०चिह्नित चरण धा. में नहीं है ।

‡चिह्नित चरण अ. फ. में नहीं है ।

(१) १. म. उ. स. में इसके पूर्व और है :

त्रिप मंगिय राज तुषार चढे । कवि चंद जयजय राज पढे ।

२. फ. कटिकृति, उ. स. कटिकृति, उ. स. कटिकृत । ३. ना. घेर ।

(२) १. अ. सि, फ. धि । २. ना. म. उ. स. सुन ।

(३) १. ना. गज—['राज नहीं है'] २. धा. विराजहि, म. अ. फ. विराजत, ना. विराजति । ३.

अ. फ. बन ।

(४) १. मो. जन, म. जनौ, शेष में 'जनु' । २. धा. वहर, मो. वहलि, शेष में 'वहल' । ३. मो. धा.

अ. फ. अम (=अम्भ), ना. म. उ. स. अम्भ । ४. म. इन, अ. फ. उन (<वन ?) ।

(५) १. धा. पवग । २. धा. म. उ. स. धनी, ना. धणी, अ. फ. रेंन ।

(६) १. म. जनौ । २. धा. फ. हेम । ३. ना. समुह । ४. धा. उ. स. जनी, म. ना. फ. तनी, अ. तन ।

(७) १. मो. विरष (= वहरष), धा. अ. फ. ना. वेरष । २. धा. ना. अ. फ. बवर, मो. बषरि । ३. धा. तणी ।

(८) १. धा. अ. फ. विच, ना. विचि, मो. विरच ?) । २. मो. महीय सहीय, ना. उ. स. माहिय स्याहिय (उ. में 'स्याहिय' नहीं है), अ. फ. माहि सुअस्वह (अच्छि—फ.) । ३. मो. सिध, अ. फ. होस, ना. संघ । ४. ना. रणा, अ. फ. धनी ।

(९) १. धा. अ. फ. हरि पति (वत्त-अ.फ.) हिमाउन (हिमावन-अ.) पीत पनी, ना. उ. स. हरि पष हुमा (इम-स., उमा-उ.) उपवीत (अपी-स., पति पीत-उ.) वनी (पनी-ना. उ.) ।

(१०) १. धा. अ. फ. देवि, स. जनु । २. धा. यलिय, अ. फ. लजित, ना. में यह शब्द नहीं है, म. उ. स. लजजत । ३. अ. रनि, फ. रेनि, उ. स. रेंनि । ४. फ. सरित; ना. समुह ।

(११) १. मो. अननतहि, धा. भणणकिय, ना. अ. म. उ. स. अननतहि, फ. धननषहि । २. मो. मेर । ३. धा. जनेग, अ. फ. जनेग । ४. मो. सिध ।

(१२) १. मो. सरणार, धा. सरणइनि, अ. सहनाइ, फ. सेहनाइन, म. उ. स. सहनाइय, ना. सहनाइनि । २. मो. सीधू, धा. म. उ. स. सिधुअ, अ. फ. ना. सिधुव । ३. मा. आग, धा. पूरे । ४. अ. फ. म. उ. स. लय ।

(१३) १. म. नित, फ. निश । २. ना. अ. सव्व, फ. सधि, म. उ. स. सव्व । ३. मो. तिहां नृपति, ना. हि नृप । ४. मो. फेरि (< फिर ?) म. फिर शेष में 'फिरे' ।

(१४) १. धा. ना. म. उ. स. अ. जनु, फ. जानौ । २. धा. भावर, फ. भाउर, ना. भामरि । ३. धा. भाण । ४. धा. समेर, फ. नुगेर । ५. मो. केरि (< फिर ?), मा. करय, फ. करी, स. कर, शेष में 'कर' ।

(१५) १. म. उ. स. सव्व, फ. सतू । २. मो. समरि, धा. समोरि, ना. सम्हारि । ३. धा. यरक्त, अ. यरत्ति, फ. यरेर, म. उ. स. अरत्ति ।

(१६) १. म. जिनि, मो. डन (< जिन), अ. फ. जिलि, ना. निज । २. धा. ना. जाइ । ३. मो. नरेंद, धा. म. उ. स. ना. नरिद, ना. अ. फ. विपत्ति ।

(१७) १. ना. त्रि । २. म. करी ।

(१८) १. धा. सय सह अयासनु देव, ना. म. उ. म. जयसह अयासह (अकासह-म.) देव । २. म. उ. स. में यहाँ और है :

कर चपि नरिद सजोगि ग्रही । उपमा चारचार (वरवार-म.) सुभट्ट कही ।

मनों भोर दुझारसि अगितपी । केलका गजराज कमाद झपी ।

य चपि रकेबनि बाल चढ़ी । रबि वेलि किथों गरु काम बढी ।

तरतोन चमंकत पच्छ दिठी । जु मनो तन भान मयूष उठी ।

मुष दपति चंद विराज वर । उद अस्त ससी रवि रथ पर ।

(१९) १. मो. नृप जागति सर्व तुरग, धा. अ. फ. ना. नृप जगति (जगत्-अ., गज्जत-फ., जागति-ना.) सव्व तुरग, म. उ. स. भर त्राप सजे (सजे-म.) सु तुरग (तरग-स.) ।

(२०) १. धा. विणु भाणु पय णहि, अ. क. विन भान पयानह, म. उ. स. मनौ भान पयान ति (त-म.), ना. विन भान पयान ति ।

(२१) १. धा. वि । २. मो. केपि, धा. फ. ना. कोप ।

(२२) १. मो. भुहनि (= भउहनि), धा. अ. फ. ना. भौहनि, म. साहन, उ. स. भोहनि । २. ना. पंच किसीस ।

(२३) १. धा. सर छुटति पंखिण सह भयं, मो. सर छूट ति पंख सह भयु (= भयउ), अ. फ. सव

दथर (सवदथुर-फ.) होत अनो मय, ना. म व स. सर छुटति (छुटत--उ. स.) पष ति (पषनि--ना.) सद भय (सय--उ. स.) ।

(२४) १. धा. अ. फ. गयदनि । २. धा. सुक्क, उ. स. मुक्क, म. अ. फ. ना. सुक्क । ३. मो. गय (= गयट), शेष में 'गय' ।

(२५) १. धा. सर एक स वञ्चित, अ. फ. सर विदत (विदतन-फ.) इक्क, म. सर एक सुविधति, उ. स. सर एक सुविदत । २. अ. फ. सात ।

(२६) १. मो दल दिषिति निक (< नेक) ठठु करी, धा. इल लिखित नयकत ठक्क परी, अ. फ. ना. दल दिषत (दिषति-फ.) नेक (नेकु--ना.) ठठुक्क (टटूक-फ.) परी, म. उ. स. द ल दिषत नैन (नैन-म.) ठठुक्क परी । २ उ स. में यहाँ और है :

तरवारि (तरवानी-उ) हजारक च्यारि परी । प्रथिरान लरत न सक करी ।

इसी प्रकार यहाँ वा अ. फ. में और है :

जह गानर सूरन भीर परी । ठिलह चहुवान तु अप्प वरी ।

किन्तु यह दोनों अनिश्चित चरण उस उक्ति-शृङ्खला को भग वरते हैं जो इस छंद के उपर्युक्त अन्तिम चरण तथा आने वाले छंद के प्रथम चरण में है । मो म. ना. इस प्रक्षेप से मुक्त है ।

टिप्पणी—(२) धुन < धनि । (४) वहाँल < वार्दलिक (१) = छोटे बादल । अम्भ < अम्भ = आकाश (६) जन < अन्य । (८) साहीय < साधित=निष्पादित । (९) मऊय < मयूख । (१०) रेण < रजनी । सय < शत । (१२) लिय < लिप्त । (१३) सर्व < शर्व (१५) अरत्ति < अरति । (१६) अयास < आकाश । (१९) सर्व < शर्व । (२४) पषप < पक्ष । सद < शब्द शब्द । (२४) गयद < गजेद्र । (२६) नेक [न + एक] = बहुत ।

[१०]

भुजंग— ठठके सब सेन नइ*^१ भीर मिरुले^२ । (१)

विजे सब सेन तिक्के नकरे^३ । (२)

चिर^४ चहुआन राठौर जाले^५ । (३)

देविअइ*^६ पंगुरे^७ नयनरे लाले^८ । (४)

कोपियं^९ वीर विजपाल^{१०} पुत्तं । (५)

आवियं जंम हा भार दुत्त^{११} । (६)

संघरे सेन सन्नीह दीह^{१२} । (७)

नौमि तियि घल्लि^{१३} पृथीराज संह^{१४} । (८)

राजसं तामसं वग^{१५} प्रगटं । (९)

मूकिगं सच्च^{१६} सातुक्क^{१७} वट्ट^{१८} । (१०)

सार संपत्त^{१९} आतप्प रच्छ^{२०} । (११)

मनउ*^{२१} आवभं इद्र रुद्र निकस्सं^{२२} । (१२)

निह्वरहि^{२३} ढाल गय^{२४} मत्त^{२५} मत्तं । (१३)

उट्ठियं सूर तामत^{२६} रत्तं । (१४)

भूमि भर धुरण घीठ रे सुपंथ । (१५)

अथि^१ विय हथिय^२ प्रथीराज सथ^३ । (१६)
 बढे^४ वीर सामंत सा वीर^५ रूपं । (१७)
 जिसे सयल सद्दूर^{*} संदेश^१ जूषं । (१८)
 वडे विद्या वाणे सु भाणे उदता^२ ।[×](१९)
 जिसे अर्क फल फूटने ही अंता^२ ।[×](२०)
 कंषि ते कायर लोह रत्नं^३ । (२१)
 जिसे^१ अनिल^२ आरंभ पारंभ^३ पत्तं^४ । (२२)
 इसउ^{*१} युध्व अनुध्व^२ मध्यान हूअ^३ । (२३)
 रहे हारि हथ्यं ति जूअरि^१ जूअं^२ ।^०(२४)
 नामियं अस्सि^१ डिल्ली दिसानं ।^३(२५)
 पुट्टिरे^१ पंगु वज्जे निमानं ।^३(२६)
 चंपड^{*१} चाहि^२ चहुवान^३ हरसिघ^४ नायउ^{*५} । (२७)
 जिसे^१ सेयल ते^२ मिघ^३ गजजूथ पायउ^{*४} ॥^५(२८)

अर्थ—(१) सब सैनिक ठिठक गए और अमीर भ्रान्त हो गए । (२) सब सैनिक भाग खड़े हुए और उन्होंने लड़ने से इनकार कर दिया । (३) चहुआन (पृथ्वीराज) ने राठौर (जयचन्द) को चिरकाल तक जलाया—संतप्त किया—था, (४) [इसलिए इस समय] पंग (जयचन्द) के नेत्र लाल दिखाई पड़ रहे थे । (५) वीर विजयपाल का पुत्र (जयचन्द) कुपित हुआ (६) और अपने जन्म (जीवन) को भारहीन करने के लिए द्रुत आया । (७) किन्तु [पृथ्वीराज ने उसके] दीर्घ सैन्य-संग्रह का सहारा किया (८) और नवमी तिथि को उस [सैन्य-संग्रह] को पृथ्वीराज सिंह ने [रणस्थल में] डाल दिया । (९) रजस् और तमस् के काव्य वहाँ प्रकट हुए, (१०) सबने सात्विक मार्ग का त्याग कर दिया । (११) उस युद्ध में सप्राप्त सार (शस्त्रास्त्र) आतपत्र (छाते) हो रहे थे, (१२) और [वे आयुध ऐसे लगते थे] मानो हन्द्र और रुद्र ने आयुध निकाले हों । (१३) मत्त गज-मद् के निक्षर (१) ढाल रहे थे । (१४) शूर और सामंत लाल हो उठे । (१५) [रण] भूमि में घृष्ट भट स्वपथ को धरण करने लगे । (१६) पृथ्वीराज के साथी दोनों हाथों में [अस्त्र धारण करने वाले] हो रहे थे । (१७) [उसके] वीर सामंत ऐसे वीर रूप में बढ रहे थे (१८) जैसे वे सब सन्देश (सदेह देवो) के यूप (स्तंभ) के सिरे हों (१९) भानु के उदित होने पर विग्रह (?) के बाने वाले [इस प्रकार] गिरने लगे (२०) जैसे अर्क का फल फूटते ही अनंत [भुवों के रूप में] हो [कर उड़] जाता है । (२१) कायर लोग रक्त लौह (शस्त्रास्त्र) देख कर [इस प्रकार] काँपने लगे (२२) जिस प्रकार अनिल के आरंभ (वेग से चलने) से पत्तों में हलचल हो जाती है । (२३) मध्याह्न तक इस प्रकार का अनुद्धत (अपरित्यक्त) युद्ध हुआ (२४) [मानो] जुआड़ी जूए में हाथ (दाँव) हार गए हों । (२५) [इसी समय पृथ्वीराज ने] अपना अश्व दिल्लो की दिशा में मोड़ा (२६) और उसकी पीठ पर पंग (जयचंद) के घौंसे बज उठे । (२७) [जयचंद की सेना पर] आक्रमण करने के लिए चाव (उमंग) पूर्वक चहुवान हर सिंह झुक पड़ा (२८), जैसे शैल शिखर से सिंह गजजूथ पाकर दूट पड़ा हो ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं

‡ चिह्नित चरण मो. ना. म. उ. स. में नहीं है ।

✕ चिह्नित चरण अ फ. में नहीं है।

० चिह्नित चरण धा में नहीं है।

(१) १. मो. ठक्के सब सेनि नि (=नइ), धा. ठठकी सेनि समि, अ. फ. छडुक्य। सेन सब, म. उ. स ठडुक्के सुसेन मन, ना. छडुक्के सेन मन। २. मो. मिलो, शेष सभी में 'मिले'।

(२) १. मो. विजे सब सेन तिके नकरे, धा. विड्डरिय सेन सब्बे नकल्ले, अ. फ. ना विडरियं (विडुरी-ना.) सेन सब्बे (सब्ब-फ. ना.) निकल्ले, म. उ. स. डर विडुरी सेन सब्बे (सब-म.) निकल्ले।

(३) १. मो. चिर, धा. वरि, अ. फ. चाह, म. उ. स. वर वर, ना. बेर। २. म. रठौर। ३. मो. जाले, धा. जूरे, अ. फ. रछ, ना. म. स. झले, (झले-स.), उ. हले।

(४) १. मो. देषोइ (=देविअइ), धा. दिक्खियो, अ. फ. दिक्खियहि, म. उ. स. तवें लक्खिय (तवीय-म.), ना. दिथ्य। २. धा. पगरे, अ. ना. म. उ. स. पगुरा, फ. पिगुरी। ३. अ. फ. म. उ. स. नेन, ना. नन। ४. धा. भरे, अ. फ. म. उ. स. लहे (लहे-म. उ. स.)। ५. ना. म. उ. स. में यहाँ और है (स पाठ) :—

तिन+ उप्पजी रोस उर अभम अर्गा। उत+ निकरे निपति कै नेन मर्गी।

तिन+ लुब्ध नन दीस दि न। तव+ चपय राजने चाहमान।

तिन+ उप्पजी सष धुनि सिगि नार। तिन+ वज्जिय नइ नीसान भार।

लय+ लब्ध क्रत्र राजं सजाई। तिन+ अप्पिय कन कौवड जोई।

तिने+ सुमरियं चित्त गग्रव सद्। उत+ जोइयं मुष्प सामत हद्।

वचनं सुंसद् कवी चद् बोल्यौ। तवे+ भगियं कद्ह मों मो अबोल।

तवे+ लगियं मान रायंति रायं। उनं+ देषिय आज कौ जूह चायं।

+ ना. में चिह्नित शब्द नहीं है।

(५) १. धा. कुप्पियो, अ. कप्पियउ, फ. कपिया, ना. कोीय, म. उ. स. तव कोपिय। २. धा. बीर विजैवाल, ना. वा [र] विजैवाल। ३. म. सुत।

(६) १. धा. अवद्ध राइ जम भार दत्त, अ. फ. आवर्ध करहि जमजाल जुत्त, म. स. तिन आवर्धा (आवध-म.) झारि जमजालि दुत्त, उ. तिन आवधारि जमजालि दुत्त, ना. आवध का। जमजार दुत्त।

(७) १. धा. सप्परे सेन सह सदाइ, अ. फ. सहूर्यौ सेन सनि सो सदाइ, म. उ. स. सब सघरी (सहरे-म., सघरे-म.) सेन (सेन-म. उ.) सनीइ (सीन्नइ-स.) दीइ, ना. सघरे सेन सनाइ दीइ।

(८) १. मो. नौमि तिथि थाल, धा. अ. नौमि तिथि थलह, फ. नौमि तिथि थलि, उ. स. इसौ नौमि तिथि थान, म. इनौ नौमि तिथि, ना. नौमि तिथि वाल। २. धा. प्रिथिराज साइ।

(९) १. मो. राजसं तामसे वग, धा. राजस तामस वेग, अ. फ. राजस तामसं वेद (वे-अ.), म. उ. स. तिन राजस तामस वे, ना. राजस तान सब्बे।

(१०) १. धा. मुक्किय एक, अ. फ. मुक्किय इक, ना. मुक्कीयं सब्ब, म. उ. स. भर मुक्किय सब्ब। २. धा. सानुक, म. सापुक। ३. स. बहं।

(११) १. फ. सार सपत्ति, म. उ. स. सर सार सपत्ति (सपत्ति-म. उ.)। २. धा. ना पत्ते तिरत्थ; म. अ. फ. पत्तेति रच्छ, उ. स. पेटित्ति रच्छ।

(१२) १. मो. मनह, धा. उ. स. मनो, ना. मनु (=मनउ), म. अ. फ. मनौ। २. धा. आवद्ध रुद्र इद्राते कत्थ, अ. फ. आवध (आवद्ध-फ.) रुद्र इद्रानि कछछ, ना. आवध रुद्रानि कत्थ, म. उ. स. आवध इद्र रुद्रानि (रुद्रनि-उ., रुद्रान-म.) कच्छ।

(१३) १. धा. मो. निठरहि, अ. फ. ना निठरइ (निठर-फ.), म. निटरहि, उ. स. वर निड्डरौ। २. फ. में यह शब्द नहीं है। ३. अ. फ. मंत, ना. म. उ. पत्त, म. पत्ति।

(१४) १. धा. पुठ्ठि सावत सामित्त, अ. फ. पुठ्ठि सामंत सीमंत, ना. उड्डिडय सूर सामत, म. उ.

स सबै ठूयं सर सामंत ।

(१५) १. धा. फ. भूमि (भौमि-फ.) भारति (भारथ—अ. फ.) ढर (ढरै—अ. फ.) सोइ पत्थ, म. उ. स. उत्त भूमि वर (भर—म.) धरनि (धरति—म.) ढहि ढरि सुपत्थ, ना. भूमि धर धरणि ढहि ढरि सु पत्थ ।

(१६) १. म. उ. स. तन अथि । २. फ. वह, म. वस । ३. अ. ना. हथि, शेष में 'हथ' । ४. धा. अ. फ. हथ ।

(१७) १. धा. वडे, अ. फ. विडह । २. मो. स. वीर, फ. सा वीत ।

(१८) १. मो. जिसे सयल सिंदूर (=सिंदूर), धा. जिसे सयल सादूल सदेश, अ. फ. जिसौ सेल सादुल भईस, ना. म. उ. स. जिस सल (तेल—उ., सेल—ना.) सदूर (सिंदूर—ना.) सदेस (सदेह—ना.)

(१९) १. धा. उडे विगाबाने स भाने उडतं, ना. म. उ. स. उडै विग्र बाने (बाने—ना.) सु भाने (सुभाने—ना. म.) उदंता ।

(२०) १. धा. जिरे अकुलाये निकट्टे अनत, उ. स. जिसे अर्क फल फूटि होते अनता, म. जिसे सेल सदूक (तुल० चरण १८) फल फुटि ही ते अनता, ना. जिम अर्क फूट हिते अनता ।

(२१) १. मो. कपि ते कायर लोह रत्त, धा. फ. कपे काइरह लोह रत्ते सरत्त, अ. कपे काइरह लोह रत्तौ सरत्त, ना. कपेय कायरं लोह रत्त, म. उ. म. तते कपिय काइर (कायर—म.) लोह रत्त (रत्त—स.) ।

(२२) १. धा. जिसो, अ. जिसौ, फ. जिसो, म. उ. स. मनो (मनौ—म.), ना. मनुं (=मन) । २. धा. अनल । ३. फ. पारन, ना. उ. स. प्रारम । ४. धा. तं ।

(२३) १. मो. इसु (=इसउ), ना. इसा । २. धा. अ. फ. अनुरद्ध, म. उ. स. आवद्ध, ना. आनुद्ध । ३. ना. दुब्ब ।

(२४) १. अ. जिसो वाप, फ. जिसौ ऊप, म. उ. स. जु जूआरि (जूवारि—म.), ना. जिसं जुव्व । २. ना. जुव्व ।

(२५) १. अ. फ. अस्व । २. धा. निसानं ।

(२६) १. अ. फ. पुट्ट ।

(२७) १. मो. चपि (=चपइ), धा. म. चपे, अ. ना. उ. स. चपे, फ. चपौ । २. धा. अ. फ. उ. स. चाइ, ना. राइ, म. चाय । ३. मो. चहवान । ४. धा. हरि सिंघ । मो. नायु (=नायउ), शेष में 'नायो' या 'नायौ' ।

(२८) १. अ. जिसौ, ना. म. जिसै । २. धा. सयल ते, अ. फ. सेल तें, ना. सैल मै, म. उ. स. सेन मै (मै—उ. स.) । ३. मो. सघ (< स्यघ) । ४. मो. पायु (=पायउ), धा. पायो, शेष में 'पायौ' या 'पायौ' । ५. मो. ना. म. उ. स. में यहाँ और है: करे कूह (कह—मो) गज जूह सनमुष धायु (धायौ—ना. म. उ. स.) । पगुराय दल समिति चहु कोद छायु (छायो—ना. म. उ. स.) । किन्तु स्वीकृत-अगले छंद की प्रथम पंक्ति के साथ इस छंद की स्वीकृत अंतिम पंक्तियों की उक्ति-शृङ्खला प्रकट है ।

टिप्पणी—(२) विज्=भागना । (३) जाल < ज्वालय्=जलाना (६) जभ < जन्म । दुत्त < द्रुत । (७) सत्रीह < सत्रिधि=सत्रिह । दोह < दीर्घ । (८) घाल < घल्ल=फेकना । (९) वग < वग्ग < वाक्व । (१०) मूक < मुच्=छोड़ना । सातुक्क < सात्तिक । बट्ट < वर्त्मन् । (११) संपत्त < संप्राप्त (१२) आवद्ध < आयुध । (१३) निहुर < निहूर (१) । (१४) रत्त < रक्त । (१५) धीठ < धृष्ट । (१६) अथि < अस्त्रिन् । विय < द्वय । (१८) सयल < सकल । सदूर < शार्दूल । (१९) वड < पत्त=गिरना । विग्रा < विग्रह (१) । (२२) पारंभ < प्रारंभ । पत्त < पत्र । (२३) अनुरद्ध < अनुद्धत=अपरित्यक्त । (२५) अस्ति < अश्व । (२८) सेयल < शैल ।

[११]

कवित्त— करि जुहार हरसिंधु^१ नायउ^{*२} चहुआन पहिल्लउ^{*३} । (१)
 वरी अनी सा बरिय^२ लष्पु^३ सउ^{*४} भिडउ^{*५} इकिल्लउ^{*६} । (२)
 अगम कयाहउ^{*१} फिरिय^{*२} धरणि पुर पुरसुं^{*३} पुदइ^{*४} । (३)
 एक^१ लष्प सउं^{*२} भिरइ^{*३} एक^५ लष्पइ^{*५} रण^६ रुंधइ^{*७} । (४)
 तिल तिल हुइ त्रुटउं^{*} नहि मुरउं^२ जय जय जउं^{*२} आयास^३ भयुं^४ । (५)
 इम जंपइ^१ चंद विरदिआ^{*२} व्यारि^३ कोस चहुआन गयुं^४ ॥ (६)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज ने जब दिल्ली की दिशा में बाग में डो,] उसको जुहार करके पहला योद्धा चहुआन हरसिंह झुक पड़ा । (२) उसने [शत्रु को] जिस अनीक (सेना) का वरण किया, उसका वरण कर ही लिया, [उससे मुड़ा नहीं] और [शत्रु के] लाख सैनिकों से वह अकेला भिड़ गया । (३) उसका अगम [नाम का] कयाह [जाति का] घोड़ा भी, जब वह [रणभूमि में] फिरने लगा, धरणी को अपने क्षुर (छुरे) के सदृश खुर से खूँदने लगा । (४) [हरसिंह] एक लाख से भिड़ा और एक लाख का उसने रण में रोक रक्खा । (५) वह तिल-तिल होकर टूटा (कट गया) किन्तु [युद्ध से] मुड़ा नहीं, जब [उसको इस वीरता पर] आकाश में 'जय जय' हुआ । (६) चन्द विरदिया कहता है, इस प्रकार [हरसिंह के जूझने से] चहुआन पृथ्वीराज [दिल्ली की दिशा में] चार कोस [आगे निकल] गया ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

‡ चिह्नित शब्द फ. में नहीं हैं ।

(१) १. धा. ना. भ. हरसिंध, अ. वरसिंध, फ. उरसंधि, स. नरसिंध । २. मो. नायु (=नायउ), धा. अ. नयो, म. फ. ना. नयौ । ३. मो. पहिलु (=पहिलउ), धा. पहिलो, शेष में 'पहिलो' या 'पहिलौ' ।

(२) १. धा. वरिय । २. धा. अ. उ. स. सावरी, फ. सावरी, ना. सामरा । ३. धा. अ. म. उ. स. लष्प, फ. लषि । ४. मो. सु (=सउ), धा. सू, अ. सन, फ. सन्न, ना. सुं (=सउ) उ. स. सौं, म. सौ । ५. मो. भडु (< भिडउ), धा. लरयो, अ. फ. ना. म. उ. स. भिरयौ । ६. मो. इकिलु (=इकिलउ), धा. अकलो, अ. फ. अकिलो, ना. म. उ. स. इकलो ।

(३) १. मो. कयायु (=कयायउ), धा. कयाहो, अ. फ. कयाहै, ना. कयाहु (=कयाहउ), उ. स. कायहुअ, म. कायकरि । २. मो. फिरिध (< फिरिय), फिरयौ, ना. फिरै, शेष में 'फिरयो' या 'फिरयौ' । ३. मो. ना. पुर पुर सुं (=सउं), धा. तिल तिल पुर (तुल० चरण ५), अ. पुर पुर सौ, फ. पुरस्यौ, म. उ. स. पुरसौ पुर (पुर-म.) । ४. धा. खुदे, मो. घोदि (< पुदइ ?), अ. फ. खुदइ, ना. पुदैं, म. उ. स. पुंदहि ।

(४) १. धा. अ. फ. इक । २. मो. सु (=सउ), धा. सो, ना. सु (=सउ), अ. फ. म. उ. स. सौं । ३. मो. भिरि (=भिरइ), धा. भिरे, अ. फ. लरइ (लरै-फ.), ना. उ. स. भिरै, म. भिरयौ । ४. धा. अ. फ. ना. इक । ५. मो. लषि (=लषइ), अ. म. उ. स. लषइ, फ. ना. लषहि । ६. उ. रिन, ना. नर । ७. मो. रुंधि (=रुंधइ), धा. रुंधे, ना. रुंधैं, म. उ. स. रुंधहि ।

(५) १. मो. तिल तिल हुइ त्रुटु (=त्रुटउ) नहि मरु (=मरउ), धा. तिलतिल तुट्यो नहीं मुरयो, अ. इतिल तिल होइ तमो जही, फ. तिहौं लोयन भौर ही, म. उ. स. असि घाइ (घाय-म.) झाइ (ज्ञाय-म.)

वज्र (व जे-म.) विषम, ना. तिल तिल कै डुट्यौ नहि मुर्यौ । २. मो जय जय जु (= जउ), धा. ज. फ. मुरि हय हय, ना. जय जय जय, म. उ. स. जै जै जै । ३. धा. ज. फ. म. उ. स. आयास, मो. ना. आकास (आकाश-ना.) । ४. धा. ज. फ. म. उ. स. भौ ।

(६) १. मो० जपि (= जपइ), धा. जपै, शेष सभी में 'जप' । २. मो. म. विरदिया, ना. विरदीय, शेष में 'विरदिया' । रचना में जन्यत्र 'विरदिया' ही है, यथा ८. १४, २. २९, ३. १, ५. १९, ५. ४५, १२. ४०, १२. ४९ । ३. ज. फ. चारि (चार-फ.) । ४. धा. ज. फ. गउ, ना. गय, म. उ. स. गौ ।

टिप्पणी—(५) आयास < आकाश । (६) जप < जल्प् ।

[१२]

दोहरा— परत धरणि हरसिंघ^१ कहं^२ हरषि पंगु^३ दल सव्व^४ । (१)

मनहु जुद्ध^५ जोगिनि^६ पुरह तनु^७ मुक्कयउ^८ सब^९ गव्व^{१०} ॥ (२)

अर्थ—(१) हरसिंह के धरणी पर पड़ते—गिरते—ही सारा पंग (जयचन्द) दल हर्षित हो उठा, (२) [उसे ऐसा प्रतीत हुआ] मानो युद्ध में योगिनीपुर (दिल्ली) के गर्व ने ही [हरसिंह के रूत में] शरीर छोड़ा हो ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है ।

(१) १. धा. हरिसिंघ, मो. हरसिंघ (< हरस्यघ), ज. स. नरसिंघ, फ. हरसिंघ, म. उ. हरसिंघ, ना. हरिसिंह । २. मो. ना. कह, धा. ज. फ. कहु, म. कै, उ. स. कहु । ३. धा. हरिख पंगु, ना. उ. रुकिय पंगु, म. रुकिय पंग, स. रुकिय गयंद । ४. धा. सव्व, उ. सव्व, म. स. श्रव्व ।

(२) १. धा. मनुह, ना. मनुहुं, फ. मनौह । २. मो. युव, म. जुव, ना. जुद्ध । ३. धा. म. स. जोगिन, ना. जुगनि । ४. धा. ज. फ. तन, ना. म. उ. स. तिन । ५. मो. मुक्कयउ (=मुक्कयउ), ज. फ. मुक्कयो, ना. म. मुक्कयौ, स. मुक्कयौ । ६. म. श्रव । ७. ना. चव्व, म. ग्रव, स. अब्व ।

टिप्पणी—(२) मुक्क < मुक् । गव्व < गर्व ।

[१३]

दोहरा— फुनि^१ प्रथिराज अछि^२ देह^३ बलु^४ रठिवर^५ नरेस । (१)

सिर सरोज चहुघानं कउ^६ भमर^७ सख^८ सम मेस ॥ (२)

अर्थ—(१) तदनंतर पृथ्वीराज को आखों से देखकर राठौर नरेश (जयचंद) घूम पड़ा । (२) चहुवान (पृथ्वीराज) का सिर सरोज [के सदृश हो रहा] था, और [उसके ऊपर मँडराने वाले] शख भ्रमर के सदृश वेश के [हो रहे] थे ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है ।

(१) १. धा. ज. फ. पुनि । २. मो. प्रथीराज अछि देह, धा. प्रथिराजहि अत्थि, ज. ना. प्रथिराजहि अछि, फ. प्रथिराजहि अछि, म. उ. प्रथिराज सु अच्छ, स. प्रथिराज सुपच्छ । ३. मो. देह, धा. दल, शेष सभी में 'दल' । ४. ज. दल, फ. बलि, म. उ. स. वर । ५. धा. राठौर, ज. फ. ना. राठौर, म. उ. स. रठौर ।

(२) १. धा. के, ज. फ. कौ, ना. म. उ. कै । २. धा. भवर सार, ज. फ. सार भवर, म. उ. स. भवर सख, ना. भवरि शख ।

टिप्पणी—(१) अछि < अक्षि=आँख । देह < देवख < दृश् । बल < बल्=घूम पड़ना ।

[१४]

कविरा— दिषि सुनहुं प्रथिराज^१ कनक नायो^२ बड गुज्जर^३ । (१)
 हम तुम^४ दुस्सह मिलि तु^५ स्वामि^६ हूजइ^७ तु अप्पु^८ घर^९ । (२)
 हउं^{१०} रविमंडल^{११} भेदि^{१२} जीव^{१३} लागि सरा न छडहुं^{१४} । (३)
 षंड षंड हुइ^{१५} तु^{१६} मुंड^{१७} हर^{१८} हार सु मंडहु^{१९} । (४)
 इह वंसि भजि^{२०} जानइ^{२१} न - कोइ^{२२} हउ^{२३} पति पक अलुम्भयउ^{२४} । (५)
 इम जंपइ^{२५} चंद विरदिआ^{२६} षट त^{२७} कोस चहुवान गयु^{२८} ॥ (६)

अर्थ—(४) कनक बड गुजर झुका, और उसने कहा, “हे पृथ्वीराज [सारी परस्थिति] देख कर सुनो; (२) हमारा ओर तुम्हारा [पुनः] मिलना दुस्सह (कठिन) है, [इसलिए] हे स्वामी तुम स्वयं तो अपने घर हो (पहुँच जाओ), (३) और मैं रवि-मंडल का भेदन करूँ—वीर गति प्राप्त करूँ; जीवन (प्राणो) के लिए सत्य नहीं छोड़ूँगा; (४) मेरा तुंड (मुख—सिर) खंड-खंड हो जाएगा, तो मैं [अपने] मुंड से हर-हार को तो मंडित करूँगा । (५) इस (मेरे) वंश में भागना कोई नहीं जानता है, मैं तो स्वामी के [लाज—] पंक में आरुद्ध हुआ हूँ ।” (६) चंद विरदिया कहना है, इस प्रकार [कह कर कनक बडगुजर के जूझते-जूझते] चहुवान (पृथ्वीराज छः) कोस निकल गया ।

पाठांतर—*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

‡ चिह्नित अक्षर अ र शब्द अ. फ. में नहीं हैं ।

(१) १. धा. दिषि सुनहु प्रथिराज, फ. दिष सुनहु प्रथिराज, ना. म. उ. स. भौ आयस (आइस-ना.) प्रथिराज । २. म. नायौ । ३. धा. वर गुजर, मो. बड गुजर, शेष सभी में ‘बड गुजर’ ।

(२) १. ना. तुम्ह । २. फ. सि । २. ना. म. सामि । ३. मो. हूजि (=हूजइ), धा. हुइ जाइ, स. दुजै, म. न. उ. हुजै । ४. मो. तु अपु (<अप्पु), धा. अपन, ना. इव अप्प, म. उ. स. सु अप्प ।

(३) १. मो. हू, धा. मो. ना. हु (=हउं), म. हौ, उ. स. हौ । २. धा. छडउ, मो. छडु, ना. छडु (=छडउ), म. षंडौ, उ. स. षडौ ।

(४) १. धा. षड षड हु अ, फ. षड षड होइ, म. उ. स. षड षड करि, ना. षडि षड करि । २. नो. अ. तुंड, धा. रुंड, शेष सभी में ‘रुंड’ । ३. मो. मंड । ४. फ. हरि । ५. मो. हार सु मंडु, धा. हार ज मंडउ, अ. फ. हारहि मंडौ, उ. स. हार सु मंडौ, म. हार सु मंडौ, ना. हार सु मंडु (=मंडौ)

(५) १. धा. इह वस भजि, अ. इह वस भजि, म. उ. स. इह वस भजि, ना. इहि वस भजि । २. मो. जानि (=जानइ), धा. जानइ, अ. जाने, फ. गवरे, ना. म. उ. स. जाने । ३. फ. स. कोइ, ना. न कुइ, म. उ. स. न को । ४. मो. हू (=हउ), ना. हु (=हउ), धा. हो, अ. गुरि, फ. जुइ, म. हौ, उ. स. हौ । ५. धा. पक अलुम्भयउ, मो. पक अलुम्भयु, अ. पक अरुम्भयउ, फ. पक असम्भयउ, ना. उ. स. पंक अलुम्भयौ, म. एक अलुम्भयौ ।

(६) १. मो. जपि (=जपइ), धा. जपइ, शेष में ‘जपै’ । २. मो. विरदीउ (=विरदिअउ), ना. विरदीया, शेष में ‘वरदिया’ । ३. धा. षट सु, म. उ. स. षट, ना. षड ति । ४. धा. अ. फ. गउ, म. ग्यौ, उ. स. गौ, ना. गयौ ।

टिप्पणी—(५) अलुम्भ $\leq$ आरुद्ध (१) ।

[१५]

दोहरा— बड हथ्यह^१ बड गुज्जरह^२ मुम्भिक^३ गयउ^४ वैकुंठ^५ । (१)
भीरसघन स्वामिहि^१ परत चषि^२ कबंध^३ अरिदीठि ॥ (२)

अर्थ—(१) बडे हाथों वाला बड गुज्जर (कनक) जूझ कर वैकुंठ गया; (२) स्वामी पर सघन (घनी) भीड (आपदा) पडने पर उसे आखों से [केवल] शत्रु [पक्ष] का कबंध दिखाई पड़ता था (उसको शत्रु का संहार करने के अतिरिक्त कुछ नहीं सूझता था) ।

पाठान्तर—(१) १. धा हथ्यहि, फ. हथ्य, ना. हथी । २. मो. गुजरह, धा. गुज्जरह, अ. फ. गुज्जरत, ना. म. उ. स. गुज्जरह । ३. धा. अ. जुझि, मो. म. झुझि (= झुझि), फ. रुझि, ना. झुझि । ४. मो. ना. फ. म. उ. स. गया (< गयउ), धा. अ. गयउ । ५. मो. वकुठि, धा. वकुठ, शेष सभी में 'वकुठ' ।

(२) १. मो. सघन स्वामिहि, फ. सघन स्वामिह, ना. सघन सामिह, उ. स. सघन सामित, म. सघन सामित । २. मो. चष्य (< चष्य=चषि), अ. फ. चषि, ना. मा. उ. स. चख । ३. धा. अ. फ. कम धुज्ज (कम धज्ज-धा.), ना. कमध, म. निडर, उ. स. निहूर । ४. धा. अरिबद, अ. फ. स (सु-अ.) दिठ्ठ, ना. म. उ. अरि दिठ्ठ ।

[१६]

कवित— धर फुटइ^१ पुरधार^२ तार^३ तुटइ^{*४} सिर^५ उपपरि । (१)
तब^१ नायउ^{*२} रठिवर^३ नृपति^४ पृथिराज सामि छर^५ । (२)
षग्गह सीसु हनंत^१ षग्ग पुप्परिय^२ षरप्पर^३ । (३)
सोनित^१ बिदु^२ परंत^३ पंक^४ विध्विय हि त गय घर^५ ॥ (४)
विरचिअउ^{*१} लोह^२ वर सिंघ सुअ^३ षंडषंड^४ तन^५ षडिव्यउ^{*५} । (५)
नीडर^१ निसंक मुम्भत रण^२ अठ कोस चहुआन गयु^३ ॥ (६)

अर्थ—(१) [जब] धरा घाड़ों के खुरों की धार से फूट रही थी, और उनकी लाला [सैनिकों के] सिरों पर टूट रही रही थी, (२) तब राठौर [निडर राय] स्वामी नृपति पृथ्वीराज के छल (छद्म) में झुक पड़ा । (३) खड्ग से सिरों को मारते (काटते) हुए उसने खोपड़ियों पर खड्ग खड़खड़ाई । (४) [उसके संहार से] जो शोणित विदु गिरे, उनके पक में गज धरा में बिंध (फँस) गए । (५) वरसिंह के पुत्र निडर ने इस प्रकार लौह (तलवार) की रचना की, [तदनंतर] उसका तनु खंड-खंड होकर खंडित हुआ । (६) [इस प्रकार] निश्चिह्न होकर निडर के जूझते-जूझते चहुआन (पृथ्वीराज) आठ कोस चला गया ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

‡ चिह्नित शब्द फ. में नहीं हैं ।

(१) १. मो. फुटि (=फुटइ), धा. तुटइ, ना. फट्टे, फ. म. फुट्टे । २. मो. धा. धार, अ. ताल, फ. तालु, ना. म. उ. स. तार । ३. धा. लाल, अ. लाहर, फ. मूह, ना. धार, म. उ. स. सार । ४,

धा. फुट्टे, मो. तुट्टि (= तुट्टइ), अ. तुट्टइ, ना. तुट्टि (= तुट्टइ), फ. फुटे, म. उ. स. तुट्टे । ५. ना. में यह शब्द नहीं है । ६. म. ऊपरि, धा. उप्पर, ना. लप्परि शेष में 'उप्पर' ।

(२) १. फ. भव, म. उ. स. तहॉ । २. मो. नायु (= नायउ), धा. अ. म. उ. स. नायो, ना. निडुर, फ. नग । ३. मो. म. रठुवर, ना. रठौर, धा. राठोर, अ. राठोर, फ. गतपरौ । ४. म. त्रिप । ५. धा. मो. अ. फ. स्वाभि छर, म. सामि बरि, ना. सामि छर ।

(३) १. मो. सीसह अनत, शेष सभी में 'सीस हनत' (सीस हनत-धा) । २. मो. खूपरिय, धा. खुपरिव । ३. धा. अ. फ. परष्वर (परष्वर-फ), मो. ना. म. उ. स. घनष्वन (घनष्वन-ना.)

(४) १. धा. स्रोतित, अ. फ. उ. म. श्रोतित, ना. म. श्रोतति । २. धा. अ. ना. म. उ. स. बुद, फ. बुदहि । ३. फ. परतु । ४. म. उ. स. पग । ५. मो. विधियदित्त गय धर, धा. विद्धिय गयद धर, अ. विद्धिया गयधर, फ. विटिद्धा ज धर, ना. विद्धी हयगय नन, उ. स. विद्धीय धरध्वन, म. किद्धिय घन घन ।

(५) १. धा. अ. विरचि, फ. विहौपेधि, मो. विरचिउ (= विरचिअउ), ना. उ. स. विरच्यौ, म. तहां विरचि । २. फ. साहि, म. षोलो ३. ना. जय सिध सुय । ४. ना. षड षड ननु, फ. षडनु । ५. मो. षडोव्यु (षडिव्यउ), धा. अ. फ. षडयउ, ना. षडयो म. उ. स. षंडयौ ।

(६) १. मो. अ. नीडर, धा. निडर, ना. म. उ. निडुर, स. निडुर । २. मो. झझत रण, धा. जुझंत रन, अ. जुझत रनइ, फ. जुझत रिण, म. झझत रिनि, उ. स. झुझत रन, ना. अनसकि रण । ३. धा. अ. चहुवान गउ, फ. चहुवान गौ, ना. म. उ. स. नृप हिडयौ ।

टिप्पणी—(१) लार < लाला । (२) उर < छल । (३) पग < खड्ग । (४) धर < धरा । (५) सुअ < सुत ।

[१७]

दोहरा— सम रठुरनि रठुवर^१ निडर^२ मुभिफ गय^३ जांम । (१)
दिनिअर^१ दल प्रथिराज कउ^{*२} चंपि पंग सम^३ तांम ॥ (२)

अर्थ—(१) जब कि राठौरों (अपने सजातीयों) के साथ अडर (निडर) राठौर भी जूझ गया, तब याम (प्रहर) गत हो चुका था, (२) और पृथ्वीराज के दिनकर दल को पंग (जयचंद) ने समस (अंधकार) के समान दबाया ।

पाठान्तर—चिह्नित शब्द सशोधित पाठ का है ।

(१) १. मो. सम रठुरनि (= रठउरनि) रठवर, धा. समर रठोरनि राठवर, अ. फ. ना. सम राठोरनि (राठोरन-फ.) राठवर (राठवरि-फ, रठुवर-ना.), म. सम रठौरन रिठवर, उ. सम रठौरन रठुवर, स. सम रठौर रठुवर । २. मो. अडर, धा. निहइ, अ. फ. निडर, ना. उ. निडुर, म. नियडुर, स. निडुरि । ३. मो. झझि (< झुझि) गय, धा. अ. फ. जुझ गिरि, ना. द झुझि गय, उ. स. झुझिग, म. झुझि गर (= झुझि गर) ।

(२) १. धा. अ. म. उ. स. दिनयर, ना. दिणयर, फ. दिनयर । २. मो. कु (= कउ), धा. कू, म. अ. फ. ना. कौ, उ. स. कौ । ३. धा. चपिउ पंग सम, अ. फ. चप्यौ पंगुस, म. उ. स. ना. राहु पंगु हुइ, म. उ. स. राह पंग मय ।

टिप्पणी(१)—गय < गत । (२) दिनअर < दिनकर । तांम < तमस ।

[१८]

दोहरा— चंपत पिछोरिय गति^१ चषह अपन^२ तन दिष्व^३ । (१)
तन तुरग तिलु ति तिलु कर^१ भयउ^{*२} कन्ह^३ मन भिष्व^४ ॥ (२)

अर्थ—(१) दबाव के कारण पीछे की ओर ही [आनी] गति हाने पर [कन्ह ने] अपनी ओंखों से अपने को देखा, (२) और अपने शरीर और तुरग (घोड़े) का [कटाकर] निज तिल करने के लिए कन्ह के मन भिक्षा आकाक्षा (?) हुई ।

पाठान्तर—* चिह्नित संशोधित पाठ का है ।

(१) १. धा. चप ति पिछोरिय गति चखह, मो. चपत पछिउर गति, अ. फ. चापतह (चापतिह-फ.) पिछोर (पिछोरि-फ.) दिसि (दिख-फ.), ना. चपित अछरि डिम लगि, म. व. स. चपत अछरि रिठ (रिठ-उ.) लगि । २. धा. अ. फ. हय पटन, ना. म. उ. स. चषि (चष-ना. म.) अपन (अपन-ना.) । ३. मा. तन देषि, धा. तनु दख, अ. फ. तन दिष्व, ना. तन दिष्वि, म. तर देष, उ. स. तन देषि ।

(२) १. धा. तुरग तिल निज करन, अ. फ. म. उ. स. तुरग तिल तिल करन, ना. तरंग तिल तिल करण । २. मो. भयु (=भयउ), वा. भया, शेष में 'भयो' या 'भयौ' । ३. मा. कन, शेष सभी में 'कन्ह' । ४. धा. मनु भेष, मा. मन भषि, अ. ना. मन भिष्व, फ. तसति सिष्व, म. उ. स. मन भेष ।

टिप्पणी—(१) चष < चक्षु । (२) भेषि < भेष (१) भिक्षा ।

[१९]

कवित्त— सुनहि^१ बात^२ पषरेत^३ लेहि^४ उठउ^{*५} दल रुक्कउ^{*६} । (१)
चिहिरु होइ चंपइ^{*७} त^८ स्वामि चुटि महि न चुक्कउ^{*९} । (२)
पहु पटन^१ पलानि हटकि हउ^{*२} हनउं^{*३} गयंदह^४ । (३)
समर^५ वीर^६ संघउ^७ मीर नहि^८ परइ^{*९} नरिंदह । (४)
रुक्कियउ^{*१} छगन^२ जयचंद दलु सिर तुटइ^{*३} असिवर कटउ^{*४} । (५)
तब^५ लगि तिहि^६ दल रुक्कियउ^७ जब लगि कन्ह^८ हय^९ वर चढउ^{*१०} ॥[×] (६)

अर्थ—(१) [छगन से] कन्ह ने कहा, “हे पख रैत (पषर डालने वाले) [छगन], मेरी बात सुन; तू [शत्रु के] उठे (उमड़े) हुए दल को रोक । (२) चारों ओर से [शत्रु का] दबाव पड़ रहा है, स्वामी पर चोट पड़ते हुए [इस समय] मही पर मत चूक । (३) प्रभु पृथ्वी-राज के [अश्व] पटन को पलान कर मैं गजेन्द्रों को भी दूर कर उन्हें मारूँगा । (४) समर में वीरों का सहार करूँगा, जिससे नरेन्द्र (पृथ्वीराज) पर भीड़ (सफट) न आए । (५) [यह सुनकर] छगन ने जयचंद की सेना को रोका; उसकी असि के निकलते ही सिर कटने लगे । (६) उसने तब तक शत्रु के दल को रोका जब तक कन्ह उस श्रेष्ठ अश्व (पटन) पर चढ़ा ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

× चिह्नित चरण म. में नहीं है ।

(१) १. फ. सुनिव, म. उ. स. सुनहु, ना. सुनीय । २ म. अ. वत्त, फ. हत्त । ३. मो. वषरेत, धा. विखरेत, अ. ना. वषरेत, फ. म. उ. स. पषरत । ४. अ. फ. लेह, ना. लोह, म. लेहु, उ. स. लेहु । ५. मो. उठ (< उठु=उठुउ) दल रुक, धा. बइठो दल रक्खिउ, अ. फ. बाढो दल (ढल-फ.) रुकौ (रथ्यौ-फ.), ना. उळ्यो दल रुक्यौ, उ. स. ओढौ दल रुक्यौ, म. औढौ दल रुक्यौ ।

(२) १. मो. चिहिरु दाइ चंपित (=चपइत), धा. चिहुरे होइ चपत, अ. ना. चिहुर होइ चापत, उ. स. चिहूँ ओर चपत, म. चहु ओरन चपत । २ धा अ फ स्वामि अदबुइ (अदभुत-अ. फ.) इहु (शोह-फ., यह-अ.) पिक्खिउ, (पिथ्यौ-अ. फ.) मा स्वामि चुटि महि न चुकु (=चुकउ), ना. म. उ. स. अत ओटइ किम चुकौ (बुक्यौ-म.) ।

(३) १. मो. पुहुपटन, ना. पुइपटनि । २ मो. इटकि हू (=इउ), धा. कटक उह, अ. इटकि हो, फ. इलइ, ना. इटकि हु (=इउ), म. उ. स. इटकि करि । ३. मो. हनु (=हनउ), ना. हनु (हनउं), धा. हने, फ. ल्यौइ, म. हनौ, शेष में 'हनौ' । ४. फ. नगुदह ।

(४) १. म. अ. फ. ना. स वर । २ धा धीर । ३. मो. सघरु (=सघरउ), म. घरयौ, ना. संधरौ, उ. स. सग्रहे । ४. धा. भीर वद, म. उ. जिम भीर नइ, स भीरनह । ५. धा. परी, मो परि (=परइ), अ. फ. ना. परे ।

(५) १. मो. रुकियु (=रुकियउ), धा रुक्यो सु, अ. फ. ना. म. उ. स. रुक्यौ । २. फ. छन । ३. मो. तुटि (=तुटइ), धा. तुट्यो, अ. फ. डट्टे, शेष में 'तुट' । ४. मो. कहु (=कडउ), धा. कळ्यो, म. बळ्यौ, शेष में 'कळ्यौ' या 'कळ्या' ।

(६) १. धा. अ. फ. जब । २ धा. सहु, अ. फ. सुतिह, ना. सुतहि, उ. स. सुतास । ३. मो. रुकियु (=रुकियउ), धा. रुक्खियो, अ. फ. ना. उ. स. रुक्यौ । ४. धा. फ. तव सुकन्ह, अ. तव सुकान्ह ना. जब लगि सुकन्ह । ५. उ. स. हे, फ. य । ६ मो. चहु (=चडउ), -ा चळ्यो, शेष में 'चळ्यौ, या 'चळ्यो' ।

टिप्पणी—(३) पहु < प्रभु । (५) तुट < त्रुट् ।

[२०]

दोहरा—चढत कन्ह^१ सामंत हय जय जय कहि सहु^२ देव । (१)

मनहु^१ कमल करिवर किरण^२ कुहर^३ पंगु दल सेव ॥ (२)

अर्थ—(१) सामंत कन्ह के उस अश्व [पट्टन] पर चढते समय सब देवता 'जय जय' कहने लगे । (२) [ऐसा प्रतीत हुआ] मानो कमल कलिका पर [सूर्य की] भ्रष्ट किरण [आसीन होकर] पंगु (जयचंद) दल रूपी कुहरे (कुहासे) का सेवन कर रही हो ।

टिप्पणी—(१) १. अ. फ. कन्ह । २. मो. कहि (=कहइ) सु, धा. कहै सहु, अ. फ. कहि सब, ना. कहै सहु, उ. स. करहि सु ।

(२) १. धा. मनो, फ. मनौइ । २. ना. उ. करिवर अमर, स. कलिमल अमर । ३. ना. कहर ।

टिप्पणी—(२) कर < कलिका ।

[२१]

कवित—तब सु कन्ह^१ चहुआन^२ तुरिय^३ पट्टनु पल्लानउ^{*४} । (१)

हिंसि कनकि कर उठउ^१ मरन अपणउ^{*२} पहिचानउ^{*३} । (२)

उहि करि^१ असिवर त्रिअउ^{*२} गहिवि^३ गजकुंभ उपटइ^४ । (३)
 उहु मारिहि लातहुं धाय^१ देवि^२ अरि दंतह^३ कटइ^४ । (४)
 उह^१ नरु निसंकु^२ हइ^{*३} वर सघह^४ दिष्पहुं वित्तक वित्तयउ^{*५} । (५)
 उहु^१ मुंडमाल हर संठयो^२ उहि रवि रथ ले^३ जुत्तयउ^{*४} ॥^५(६)

अर्थ—(१) तब कन्ह चहुआन ने पट्टन घोड़े को पठाना । (२) वह श्रेष्ठ घोड़ा हींस और गिनगिना उठा, और उसने अपना मरण पहिचान लिया । (३) उस^{*}(कन्ह) ने श्रेष्ठ असि को पकड़ा, और उसको ग्रहण करके गज कुंभों को उत्पाटित करने लगा । (४) और वह (पट्टन) दौड़ते हुए लात मारने और शत्रु [—पक्ष के सैनिकों] को देख कर उन्हें दाँतों से काटने लगा । (५) वह निदर्शक नर (कन्ह) श्रेष्ठ घोड़े पर [उस रण—] घरा में था, जब कि देखो, यह बीतक बीता । (६) वह (कन्ह) हर के मुंडमाल में सस्थित हुआ और वह (पट्टन) लिया जाकर रवि रथ में जोता गया ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. धा. तब कान्हो, अ. फ. तबहि कान्ह । २. फ. चौहुवानु, ना. चहवान । ३. म. तुरी, ना. तुरीय । ४. मो. पलानु (=पलानउ), धा. पल न्यो, अ. फ. पलान्यो, म. ना. पलान्यौ ।

(२) १. धा. हंस किरन कित उठ्ठि, मो. हंस कनकि उठु (=उठउ), अ. फ. हॉस (हास-फ.) क्रम करि उव्यो, म. ना. उ. स. हंसि (हंसि-म.) कनकि (कनकि-ना.) वर उठ्यौ । २. मो. अपणु (=अपणउ), धा. अप्पही, ना. अपनौ, म. उ. स. अप्पन । ३. मो. पहिचानु (=पहिचानउ), धा. अ. फ. पिछान्यो, म. ना. उ. स. पहिचान्यौ ।

(३) १. धा. कह करि, फ. कह कर, म. वह कर, ना. उ. स. उहि कर, केवल मो. म. में 'उहि करि' । २. मो. लीड (=लिअउ), धा. लयो, ना. उ. म. लयौ, स. लह्यौ, अ. फ. गहै । ३. धा. गहव, मो. गहिवि, अ. फ. गहवि, ना. गहिव, म. उ. स. गहिव । ४. मो. उपटि (=उपटइ), धा. अ. उपटइ, फ. ना. उ. स. उपटै, म. उपटे ।

(४) १. मो. उहु मारिहि लात हू धाय, धा. उह मारइ इहु धाइ, अ. फ. वह मारे तह (वह-फ.) धाइ, म. वह मारै लतानि धाय, स. मारै लतानि धाय, ना. वह मारै लातनि धाइ । २. मो. धा. देवि, अ. फ. ना. म. उ. स. पुदि । ३. ना. म. उ. स. दतनि । ४. मो. कटि (=कटइ), धा. अ. कटइ, फ. कटहि, म. कटे, ना. कटै ।

(५) मो. उह, धा. वह, शेष में 'वह' । २. ना. गिसकु । ३. मो. हि (=हइ), धा. हय, अ. फ. है, ना. है, ना. है, म. हैं । ४. ना. सुधर, म. उ. स. सुधर । ५. मो. दिष्पहुं वित्तक वित्तयु (= वित्तवउ), धा. अ. फ. पिष्पहु (पिषिहि-फ.) चित कुचित्तयो, ना. म. उ. स. पिष्पहु वित्तक (चित्तक-ना.) वित्तयौ ।

(६) १. मो. उहु, धा. म. अ. फ. वह, स. वर, ना. तह, उ. स. वर । २. मो. मुंड माल हर सुठयो, धा. म. मुंड माल हर सठयो, अ. फ. सीस हार हरगु थयो, ना. उ. स. मुंड माल हर संठयौ । ३. फ. रथ्यहि, अ. ना. रथ्यह । ४. मो. युत्तयु (=युत्तयउ), धा. जुत्तयो, ना. म. जुत्तयौ, शेष में 'जुत्तयो' । ५. मो. में यहाँ और है: इम जपिय चंद विरदिउ दस कोस चहुआन गउ ।

टिप्पणी—(३) उपट < उत्पाटय् । (६) संठव < सस्थापय् ।

[२२]

दोहरा— धरणी कन्ह परत प्रगट^१ उठि^२ पंगु त्रिप हंकि^३ । (१)
 मनु^{*१} अकाल^२ अवली^३ जरल^४ गहि^५ अतुटि^६ धनु^७ रक^८ ॥ (२)

अर्थ—(१) प्रकट रूप में कन्ह के धरणी पर गिरते ही, पंगु राज (जयचर) [इस प्रकार] हुकार उठा, (२) मानो अकाल में उस [रक] अवली ने जो रो रही हो अटूट धन प्राप्त किया हो ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सञ्ज्ञोपित पाठ का है :

० चिह्नित शब्द धा. में नहीं है ।

(१) १. धा. धरनह कन्हह परत ही, अ. फ. वरनी कन्ह परत ही, ना. मा. उ. स. धरनि कन्ह परतह प्रगट (प्रगटि-म.) । २. धा. अ. फ. प्रगट, मो. उठि, ना. म. उ. स. उछ्यो । ३. धा. ना. त्रिप हक, अ. फ. दल हफ, म. उ. स. नृप हकि ।

(२) १. धा. मन, मो. मनु, अ. फ. तनु, ना. मनु (= मतः ?), म. मनौ, उ. स. मनो । २. यहाँ से 'रक' के पूर्व तक का वंश धा. में नहीं है । ३. मो. अवला जरज, अ. फ. अवली जरल, ना. म. उ. म. सकरह (सकहर-ना. सकर-उ.) हसि । ४. मो. गहिउं तुटि, अ. फ. गहिहि टुटि, ना. गइ टूटि, म. उ. गहिय तुटि । ५. मो. धनु, शेष में 'निधि' । ६. मो. रफि, धा. रक, शेष सभी में 'रक' ।

टिप्पणी—(२) रल < रट=रोना, चिलाना ।

[२३]

दोहरा— तब झुक्ति^१ अतहन परग गहि^२ भयउ^{*३} अप्प^४ बल रूप^५ । (१)
सिर अप्पउं^{*१} स्वामी कजह^२ हनउं^{*३} गयंदन^४ यूप^५ ॥ (२)

अर्थ—(१) तब अतहन ! खड्ग ग्रहण करके झुका और स्वयं बल रूप हुआ; (२) [उसने कहा,] “मैं स्वामी के कार्य के लिए [अपना] सिर अर्पित करूँगा और हाथियों के यूप (धुर-अग्रभाग) को मारूँगा” ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सञ्ज्ञाधित पाठ के हैं ।

(१) मो. झुक्ति, शेष सभी में 'झुकि' । २. मो. षगहि, शेष सभी में 'षग गहि' । ३. मो. भयु (= भयउ), शेष में 'भयो' या 'भयो' । ४. मो. ना. आप, शेष में 'अप्पु' या 'अप्प' । ५. ना. कोटि, म. उ. स. कोट ।

(२) १. मो. अपु (= अपउ), म. अपौ, ना. अप्पौ । २. अ. फ. कर (करि-फ.) स्वामिकै, ना. कर स्वामि कह, म. कर सामिकौ, उ. स. कर स्वामि को (को—उ.) । ३. मो. हनु (= हनउ) ना. हन्यौ, शेष में 'हनौ' । ४. मो. गय धर, ना. अ. फ. गयदनि, म. उ. स. गयदन । ५. मो. अ. जूष (यूप-मो.), ना० जोटि, म. उ. स. जोट ।

टिप्पणी—(१) षग < खड्ग । (२) कज < कार्य ।

[२४]

कवित—सिर तुटइ^{*१} रंघइ^{*२} गयंद कड्डउ^{*३} कटारउ^{*४} । (१)
तउ^{*१} समरी^२ महामाय^३ देवि दीनउ^{*४} हुंकारउ^{*५} । (२)
अमिय कलस^१ आयास लिअउ^{*२} अछरी^३ उछंगह^४ । (३)
तब सु भई परतखि^१ अरीत अरीत कहत कह^२ । (४)

अल्हन कुमार विभ्रम भयउ*^१ रणः किहि वानकि मनि मन्यउ*^२ । (५)

तिम तिम^३ तिलोयन^४ गंगधर तिम तिम संकर सिर धुन्यउ*^५ ॥ (६)

अर्थ—(१) [अल्हन का] सिर जब टूटने (गिरने) लगा, उसने कटार निकाल ली और वह गजेन्द्रो का रुद्ध करने लगा । (२) तब उसने महामाया का स्मरण किया और [उसके स्मरण पर] देवी ने हुक्कार दिया (किया) । (३) आकाश में अमृत-कलश अप्सरा ने उसको क्राव (गाद) में ले लिया, (४) और 'अरिक्त' 'अरिक्त' [अर्थात् अब 'अल्हन' के आगमन से स्वर्गक रिक्तता शेष नहीं रही] कहती हुई वह प्रत्यक्ष हुई । (५) [किन्तु] अल्हन कुमारको विभ्रम हुआ; [उसके] मन में यह विचार बना हुआ था कि रण किस वर्णक (रूप) में हो रहा था, (६) [अतः] ज्यों ज्यों वह यह विचार करता था, त्यों त्यों त्रिलोचन, गंगाधर, शंकर अपना सिर पीट रहे थे [कि वह वीर अब भी पृथ्वी की माया से अपने मुक्तकर उनकी सुडमाल में स्थान नहीं ग्रहण कर रहा था] ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

‡ चिह्नित शब्द ना. में वृद्धित हैं ।

(१) १. मो. तुटि (=तुटइ), धा. म. उ. स. तुटे, अ. डट्टइ, ना. फ. डट्टे । २. मो. रुवि (=रुंधइ), धा. रुधयो, अ. फ. ना. वर धयौ, म. उ. स. रुध्यौ (रुध्यौ-म.) ३. मो. गयंद कडु (=कडउ), धा. ना. उ. स. गयंद कड्यौ, म. करइ कड्यौ, अ. फ. गंद कड्यौ । ४. मो. कटारु (=कटारउ), धा. कटारो, शेष में ना. कटारौ ।

(२) १. मो. तु (=नउ), धा. तिह, अ. फ. तइ, ना. तइ, म. उ. स. तहौ । २. अ. फ. सुमिरी, म. समरीय, उ. स. सुमरिय, ना. समरी । ३. मो. माहमाय, धा. फ. महामाइ, अ. उ. स. महमा, ना. म. महमाय । ४. मो. देवि होनु (> दोनउ), धा. देवि दोन्हो, ना. देविदोहो, अ. फ. देवि दिहौ, म. उ. स. देवि दोनौ । ५. मो. हुकारु (=हुकारउ), धा. हुकारो, म. ना. हुकारौ, शेष में 'हुकारौ' ।

(३) १. फ. असी सकल, म. अमिय सद । २. मो. लीड (=लिअउ), धा. लियो, फ. सियौ, ना. म. लयौ । ४. अ. फ. उलग तह ।

(४) १. धा. भयो परत तिहि रुद, मो. तब सुभई परतकि, अ. फ. भइ पर तिधि सु (सि-फ) तथ्य, ना. म. उ. स. तइ (तहौ मनइ-ना.) सुभई परतधि । २. धा. अ. फ. ना. रुद जय जय सु कहकइ, म. उ. स. अरित अरि कहत वइगइ ।

(५) १. म. कुमार विभ्रम झयु (< मयउ), धा. अ. फ. कुमार विभ्रम, सुभौ (भो-धा.), उ. स. कुमार विभ्रम सुभ्यौ, म. कुमार विभ्रम सुभौ, ना. कुमार झुझ्यौ रिषइ । २. धा. रनक विमानहि मनु मन्यो, मो. रण किहि वानकि मुनि (< मनि) मुन्यु (< मन्यउ), अ. फ. भौ कवि रन मान मन्यौ, म. उ. स. रनकि विमानइ मनु (मन-म. नु-उ.) मन्यो (मन्यौ-म.), ना.—ति मन मन्यौ ।

(६) १. धा. तिम थहि, अ. फ. निम आहि, ना. तामीहि, म. उ. तिहि दरस, स. तिहि दससि । २. धा. सो लोयन, मो. लोयन, म. उ. स. ति (त्रि-म. उ.) लोचन । ३. मो. तिम तिम संकर सिर धुन्यु (धुन्यउ), धा. ना. म. अ. फ. तिम तिम संकर सिर धुन्यो (धुन्यौ-म.), उ. स. तिम संकर सिर धर धन्यौ ।

टिप्पणी—(१) तुट < वृट् । (२) समर < स्मरय् । (३) अमिय < अमृत । आयास < आकाश । अचंडरी < अप्सरा । उलग < उत्तमग । (४) परतक्खि < प्रत्यक्ष । अरीत < अरिक्त । कह < कथा । (५) वानक < वर्णक । (६) तिलोयन < त्रिलोचन ।

[२५]

दोहरा—धुनि^१ सीस^२ ईस^३ सिर^४ अल्हनह^५ धनि धनि^६ कहि^७ प्रथिराज । (१)

सुनि कुप्पउ^१ अचलेश वर^२ मुहि वर देषिवि राज^३ ॥ (२)

अर्थ—(१) ईश (शिव) अल्हन के लिए सिर पीट रहे थे, [यह देखकर] पृथ्वीराज ने कहा, “अल्हन धन्य है, धन्य है ।” (२) यह सुन कर अचलेश कुपित हुआ, और [उसने कहा,] “राजा मेरा बल देखे ।”

पाठान्तर—X चिह्नित शब्द ना में नहीं है ।

(१) १. ना. म. उ. धुनत, स. धुनित । २. ना. भिर । ३. मो. अलनह । ४. मो. धिन धिन, धा. धन धन । ५. मो. किहि (< कहि) ।

(२) १. धा. कुप्यो, मो. कोप्यौ, अ. फ. कुप्पउ, ना. म. उ. स. कुप्यौ । २. म. भर, ना. आ. फ. तव । ३. धा. महो वरन दिविराज, अ. फ. महिर देव विरान, ना. म. उ. स. मुहि बल (बर-ना) देषिव (देखिसु-म., देविव-ड.) राज ।

टिप्पणी—(२) वर < बल ।

[२६]

कवित— करि ज^१ पइज^२ अचलेशु झुक्ति^३ चहुवान षग गहि^४ । (१)

अरि दल बल संघरउ^५ पूरि^६ धर^७ भरत^८ रुधिर दह^९ । (२)

मच्छु ति^१ हेवर^२ फुरहि^३ कच्छु गज कुभ विदारहि^४ । (३)

उअर^१ हंस उडि^२ चलहि हंस^३ मुख कमल विराजहि^४ । † (४)

चउसठि^१ सह, जय जय करहि छत्रपति वरि^२ संचरिग^३ । (५)

बोहिथ्य वीर बाहर तनउ^१ दिल्लिष पति चढि उत्तरिग^२ ॥ (६)

अर्थ—(१) जब अचलेश ने प्रतिज्ञा की और वह चहुवान (पृथ्वीराज) की खड्ग ग्रहण कर झुका, (२) उसने अरिदल-बल का सहार किया और घरा में रुधिर के द्रव पूरित होकर भर गए । (३) [उस द्रव में] मत्स्य श्रेष्ठ अश्व थे, जो स्फुरित हो रहे थे, कच्छप वे गज कुभ थे, जिनको वह विदीर्ण कर रहा था, (४) जो हंस (प्राण) ऊपर [निकल कर] उड़ रहे थे, वे ही हंस थे और जो मुख थे, वे ही उसके कमल थे । (५) चांसठ [योगिनियों] ‘जय जय’ शब्द कर रही थीं, और वे छत्रपतियाँ का वरण कर के संचरण कर रही थी । (६) [इस द्रव से पार होने के लिए] बोहित (जहाज) वीर बाहर पुत्र अचलेश था, जिस पर चढ़ कर दिल्ली पति (पृथ्वीराज) उस द्रव से पार हुआ ।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

† चिह्नित शब्द या चरण फ. में नहीं हैं ।

(१) १. मो. करिज, धा. करिस, अ. फ. करित, ना. करिय, म. करवि, उ. स. करिवि । २. मो. पिज (पइज), धा. ना. म. पेज । ३. धा. झुक्ति, मो. ना. झुक्ति, अ. झुक्ति, फ. झुक्ति, म. प्रबल, ऊमूळल, स. सुळल । ४. धा. गहि, मो. गिहि (< गहि), अ. फ. ना गह ।

(२) १. धा. संपरिग, भो. सिथुर, अ. संघरिग, फ. संघरिग, म. संघरयौ, उ. स. संहरयौ, ना. सघरो । २. फ. पूर । ३. धा. भरति, अ. भरिग, फ. व्रर्ग, म. भरित, ना. उ. स. भरित । ४. धा. ना. दह, म. उ. स. दहि ।

(३) १. ना. सुल्लिह । २. धा. हयवर, अ. फ. हयनर, ना. म. उ. हैवर (हैवर-म.) । ३. मो. फुरिहि (< फुरहि), ना. फिरहि, म. उ. स. तिरहि । ४. धा. ना. अ. फ. म. उ. स. विराजहि, मो. मात्र में 'विदारहि' ।

(४) १. धा. उवर, अ. फ. उवरि । २. धा. अ. फ. उड, म. डिग । ३. अ. फ. तव्व । ४. म. सुराजहि ।

(५) १. मो. चुमठि (= वउसठि), धा. चउमठिठ, ना. चोसठिठ, म. चवसठ, अ. फ. चवसठिठ । २. धा. छत्रपत्तिपरि, अ. फ. छत्रपति ति वर (वर-अ.), ना. छत्रपनिन परि, उ. स. छत्रपत्ति परि, म. वन (> छत्र पतिपरि । ३. अ. संगरिग, फ. समरिग, म. उ. स. संचरिय ।

(६) १. मो. बाहर तनु (= तनउ), धा. बाहर भरिउ, ना. अ. बाहर तनौ, फ. बाहरि तनौ, म. बारह (< बाहर) तनौ, उ. स. बाहर तनै । २. धा. चडियउ तुरिग, म. उ. स. चडि उत्तरिय, फ. चचडि उत्तरिग ।

टिप्पणी—(१) षग < खड्ग । (२) दह < द्रह । (३) मच्छ < मत्स्य । हे < हय । फुर < स्फुर । (४) उवर < उपरि । (५) सद < शब्द ।

[२७]

दोहग — अचल अचेत ज^१ षेत हुअ^२ परी^३ पंग बहुराय^४ । (१)

पटनवर^५ पहु पट छर^६ विम विरच्यहु धाय^७ ॥ (२)

अर्थ—(१) जब [रण—] क्षेत्र में अचलेश अचेत हुआ, पंग (जयचंद) की सेना लौट पड़ी (उसने पुनः आक्रमण कर दिया); (२) [इस समय] पटन पति के पट प्रभु को (?) छलने वाले विजल ने दौड़ कर [युद्ध की] रचना की ।

पाठान्तर—(१) १. धा. जु, अ. फ. म. उ. म. सु, ना. नि । २. ना. हुव । ३. मो. परी, शेष सभी में 'परिग' । ४. धा. बहुराइ ।

(२) मो. पटनवर पुहु पठछर, धा. पटनवर पहु पटछर, अ. पटन कल्यउ पटछर, फ. पछा । कल्यउ पट छर, ना. म. उ. स. पटनछर अह पटछर । २. मो. वहु (= वठउ) वीरच्यहु धाय, धा. विधु विरवर धाइ, अ. विश विरश्शहु धाय, फ. विश वीर बहु धाय, म. उ. स. उठे (उठ-म.) विश विरश्शाय, ना. उठे वीर विरश्शाय ।

टिप्पणी—(२) वइ < पति । पहु < प्रभु ।

[२८]

आर्या कवित्त—कल^१ न कलउ^{*२} अरियन^३ नु^४ मिलउ^{*५} भरहरि न^६ मरगउ^७ । (१)

अजस न लिअउ^{*१} जसहीन न मयउ^{*२} अमरग न लगगउ^३ । (२)

पहु^१ न लज्यउ^२ जीवत न गयउ^३ अपजस नहि^४ सुनयउ^५ । (३)

इयर^१ जिम^२ दवर^३णि रहउ^{*४} गाहंत^५ न^६ गहयउ^७ । (४)

वलि गयउ^१ न मंदिर दिसि^२ रहउ^३ मरण जाणि भुमभउ^४ अनी^५ । (५)
भिक^० लणि^{०१} दाग^{०२} तिलक^{०३} मिसि^{०४} बहु^० बहु^० बहु^० भग्गुलधनी^५ ॥ (६)

अर्थ—(१) [विज्ञ ने] कल (चैन) नहीं किया, वह शत्रुओं से नहीं मिला, और न भय-भीत होकर [रण से] भागा । (२) उसने अयश नहीं प्राप्त किया, और वह यशहीन नहीं हुआ, न वह अमार्ग में लगा । (३) उसने प्रभु (स्वामी) को लज्जित नहीं किया, वह जीते जी [रण क्षेत्र से] नहीं गया और उसने अपयश नहीं सुना । (४) इतर जनो की भौति वह दबैल नहीं रहा और पकड़े जाते हुए पकड़ा नहीं गया । (५) वह मंदिर (घर) की दिशा में लौटकर नहीं चला गया, वहीं बना रहा, और मरना जानकर सेना (युद्ध) में जूझा । (६) विज्ञ का दाग लगा तो तिलक के मिस [अतः] हे भग्गुल धनी, तुम धन्य हो, धन्य हो, धन्य हो ।

पाठांतर— * चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

† चिह्नित शब्द फा. में नहीं हैं ।

० चिह्नित शब्द धा. में नहीं हैं ।

(१) १. धा. अ. म उ. स कलि, मो. ना. कल, फ. कल्य । २. मो. कलु (=कलउ), धा. अ. कल्यउ, फ. कल्यय, ना. उ. स कल्यौ, म. कलिय । ३. धा. अरिनन, म. अतिय, फ. अरिषत, उ. स. असियन । ४. धा. मो. नु, शेष सभी में 'न' । ५. मो. मिलु (=मिलउ), धा. मिलिउ, अ. फ. मिल्यउ, ना. उ. स. मिल्यौ, म. मिलिय । ६. धा. भरहर विनु, अ. फ. भरहरि दिन, ना. हरि भरि नहि, म. भरहरि नह, उ. स. भरहरि नहि । ७. मो. भगु (=भगउ), अ. भग्गउ, धा. भग्गो, ना. म. उ. स. भग्गौ ।

(२) १. मो. अजस न लीउ (=लिअउ), धा. अजस न लिय, अ. फ. अजसु न ल्यउ, ना. अजस न ल्यौ, म. उ. स. अजसु (अजसु-म.) न लयो । २. मो. जसहीन भयु (=भयउ), धा. जसहीन भग्गयो, ना. जसहीन न भयौ, अ. फ. जसहीन न भयउ, म. जस वित भयौ, उ. स. जसविनि भयो । ३. धा. अगमन लगयो, मो. अमग न लगु (=लगउ), अ. फ. आमग (आमग-फ.) न लग्यउ, ना. अमगि नहिन लग्यौ, म. उ. स. अमग्ग न लग्यौ ।

(३) १. मो. पुहु, धा. पहु, शेष सभी में 'पहु' । २. मो. लीउ (=लिअउ), धा. लिअउ, अ. फ. ल्यउ, ना. लीयौ, म. उ. स. लयो (< ल्यो=रजौ) । ३. मो. जीवत न ग्यु (=गयउ), धा. जीवत गह्यो, अ. जीव न गह्यउ, फ. जीव ना गह्यउ, ना. म. उ. स. जीवत न गयौ । ४. फ. नाही, म. उ. स. नह । ५. धा. इम्यो, मो. सुनयु (=सुनयउ), ना. म. उ. स. सुनयौ ।

(४) १. मो. ईयाग, धा. कायर, अ. फ. इयर, ना. अवरणि, म. उ. स. और न । २. मो. धा. ना. जिम, अ. फ. जेम, म. उ. स. ज्यौ । ३. मो. -र, धा. दवरि, ना. दवर, फ. दज्जुरि, शेष में 'दवरि' । ४. धा. न रह्यो, मो. णि रहु (=रहउ), अ. न रह्यउ, फ. बाह्यउ, म. नयो, उ. स. न गयो, ना. णि रह्यौ । ५. म. ग्राह ग्राहत । ६. ना. म. उ. स. न गह्यौ, अ. फ. न गयउ ।

(५) १. धा. ना. चलि गयो, मो. चलि गयु (=गयउ), फ. वलि गयउ, अ. चलि गयउ शेष में 'चलि गयो' या 'चलि गयौ' । २. फ. मंदरु दिसि, म. मंदिर दिसि, ना. मंदिर दिशह । ३. मो. रहु (=रहउ), धा. रह्यो, अ. रह्यउ, शेष में 'रह्यो' या 'रह्यौ' । ४. मो. जानि झुझु (=झुझउ), धा. जानि झुझ्यो, अ. जानि जुझ्यौ, फ. जान जुझ्यौ, म. झुझ्यौ, उ. स. ना. झुझ्यौ । ५. धा. म. उ. स. अनिय ।

(६) १. अ. फ. विज्ञल, म. उ. स. विज्ञदिय, ना. वीज्ञदयौ । २. म. दा, ना. दागु । ३. अ. जिलक, फ. जलीक, म. तिलकहि, ना. उ. स. तिलकह । ४. ना. म. उ. स. भिनह, अ. मिस । ५. मो. बहुल भंगि संभरि धनी, धा.—भग्गुल धविय, अ. बहु बहु बहु भग्गुल धनी, फ. बहु भगल धनी, म. बहु

बह बह भयुर धनीय, छ स. बह बह बह भग्गल धनिय, ना. — हु भग सभर धनी ।

टिप्पणी—(२) भग्ग < भगार्ग । (३) पटु < प्रभु । (४) इयर < इतर । (५) वल < वलय = लोट पड़ना । बहु < बाह [फा.] ।

[२९]

दोहरा—परत देषि चालुक^१ धर^२ करिअ^३ पंग दन कृद । (१)

जिम^४ सु^५ देव इंदहि परसि^६ रहें विटि^७ अरि.जूह^८ ॥ (२)

अर्थ—(१) चालुक विजय को धरा पर गिरते देव कर पंग (जयचंद) के दल ने [इस प्रकार] कुहराम किया, (२) जिस प्रकार इंदर के राक्षस में (रास) [आकर] अरि न्यूय [राक्षस-दल] उन्हें वेष्टित कर (घेर , रहे ।

पाठान्तर—(१) १. मो. फ. चालुक । २. ना. रिण, फ धर । ३ म उ. स. ना. करिग ।

(२) १. धा. इम, अ. जिमि । २. फ स. । ३ मो इदिहि, ना. इदह, म. उ. स. इद्रह । ४. अ. फ परमि । ५ मो. ना. अ. फ. विट, धा. विरि, धा विरि, म वट, उस. वीटि । ६. म. उ. स. अनजूह ।

टिप्पणी—(२) परस < पार्व । विट < वेष्टित ।

[३०]

कदित— राह रूप^१ कमधुज गब्जि^२ लगउ^{*३} अयास कहु^४ । (१)

धार तिथ्य उरि^५ जांनि फिरउ^{*६} पमार न्हान^७ तहं^८ । (२)

रुधिर^९ मधु^{१०} जव जीव करि तनु तिल मिलि पिंड उसि^{११} । (३)

जु रत्त सीस अरि गहिग^{१२} पांनि^{१३} [सो]^{*} गहे^{१४} केसि^{१५} कुसि^{१६} । (४)

करि त्रिपति^{१७} सार नृप पंगु दल^{१८} अबू^{१९} पति जप सब्ब कियु^{२०} । (५)

उग्रहउ^{*२१} ग्रहन^{२२} प्रथीराज रवि सलष अलष भुव^{२३} दान दियु^{२४} ॥ (६)

अर्थ—(१) कमधुज (जयचंद) राहु रूप होकर गर्जन करके आकाश को जा लगा [और उसने रविरूप पृथ्वीराज को ग्रसना चाहा] । (२) [उस ग्रहण से अपने स्वामी को मुक्त करने के लिए] धारा-तीर्थ (रण-क्षेत्र) को हृदय में [अच्छा तोर्थ] जानकर [सलष] पमार उसमें स्नान करने के लिए मुड़ा (३) रुधिर का मधु था, जीवों का यव था, हाथियों के शरीर का तिल था इस प्रकार सब मिल कर उसका [दान का पिंड बना; (४) शत्रुओं के रक्त सिर जो उसने पकड़ रखे थे, वही उसने हाथों में कुश-काँस पकड़ रखे थे; (५) सार (शास्त्रास्त्र) से पंग नृप (जयचंद) के दल को तृप्त कर आबूपति (सलष) ने सब जप किए, (६) तदनंतर सुलष ने अल य भुजदान (प्रहार) देकर पृथ्वीराज रवि को उस ग्रहण से मुक्त किया ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. रहो रोपि, शेष सभी में 'राह रूप' । २. अ. फ. कमधुज गब्ज, ना. कम धब्जगंजि । ३. धा. लम्बो, मो. लगु (= लगउ) अ. फ. लग्यउ, म. लगौ, ना. उ. स. लम्बौ । ४. धा. आयासहि,

अ. फ. आयास कह, ना. आयास कहँ, उ. स. आकासह, म. आसनह ।

(२) धा. धारि तत्थ उर, फ. धार तिथ्य उरि, अ. म. धार तिथ्यउर, ना. धार तिथ्य तिसं । २. मो. फिर (= फिरउ), धा. फिरिउ, अ. फ. फि र्यो, ना. म. उ. स. फिरयौ । ३. मो. पंमार कन्ह, धा. पांवार नन्ह, शेष में 'पामार न्हान' । ४. धा. तहि, फ. तिह ।

(३) १. धा. रुधि, अ. फ. गुदसु (स-फ.) शेष में शेष में 'रुधिर' । २. ना. मछि । ३. धा. जब करि जीव तनु तिलमिलि पिंड उसि, अ. फ. जव (कज-फ.) जीव तिल सु (स-फ.) तन सीस पिंड उस, ना. जव जीव तनुत तिल मिलहि पिंड उस, म. उ. स. जव करिय जीव तनु (तन-म.) तिल नि षड अस (षड असि-म.) ।

(४) १. धा. रत्त सास अरि गहिग, मो. जुरत सीस अरु गहिग, अ. फ. रत्त सुजल कर षग, म. उ. स. जुरित सीस अरि (अरि-म.) गहिय, ना. नचित सीस अरि गहहि । २. अ. फ. तडा, म. मानि, शेष में 'पानि' । ३. मो. गहे, धा. सुदियह, अ. फ. सोहिय, म. ना. उ. स. सोभियहि । ४. फ. हुसा । ५. मो. धा. कुसि, ना. कुश ।

(५) १. धा. अ. फ. ना. म. उ. स. त्रिपति, केवल मो. में 'त्रिपति' । २. अ. फ. पगह नृपति । ३. ना. अखुव, म. अबूज । ४. मो. जप सब कियु (= कियउ ?), फा. जप सबु किय, अ. फ. ना. जस पुवु (पुव्व-ना.) किय, म. उ. स. जप सब किय ।

(६) १. मो. उग्रहु (= उग्रहउ), धा. अउ ग्रहो. अ. ना. म. उ. स. उग्रह्यौ । २. धा. ग्रहति, ना. गहन । ३. मो. भुव, धा. भुज, शेष में 'भुज' । ४. मो. दियु (= दियउ ?), धा. दिय, शेष में 'दिय' ।

टिप्पणी—(१) राह < राहु । गज्ज < गर्ज । (२) तिथ्य < तीर्थ । (५) त्रिपति < तृप्ति । (६) भुव < भुअ < भुज ।

[३१]

दोहरा—दिअउ दान जव्व पंमार बलि^१ अरि पंगह सम^२ षेल । (१)

मरन^३ जानि^३ मन^३ मम्मक ततु^४ लरिग लषन बधेल^५ ॥ (२)

अर्थ—(१) जब [सलष] पमार ने [इस प्रकार] बलि का दान दिया, और शत्रु (जयचद) के साथ उसने खेल किया, (२) मन में मरण का ही तत्त्व जानकर लखन बधेल लड गया ।

पाठान्तर—(१) १. धा. दीउ (=दिअउ) दान पावार जव, मो. दीउ (=दिअउ) दान जब पमार बल, अ. दिअउ (दियौ-फ.) दान पावार जब, ना. दीय दान पामार जब, म. उ. स. दियौ दाम पमार बलि (बल-म.) । २. धा. पगह सब, म. उ. स. सारगसम ।

(२) १. फ. परति । २. फ. मानि । ३. मो. मर (< मन), फ. म । ४. धा. मझ रिउ, अ. मझ रन, फ. बिझि रन, म. उ. स. मझ रत, ना. मम्मरत । ५. मो. लरिग लषन बधेल, धा. गिरि लखिन्ह बधेल, अ. फिरि लषनह बधेल, फ. फिरि लषन हट्टौ, ना. म. उ. स. लरि लषन बधेल ।

[३२]

कवित—जित्ति समरि^१ लषन बधेल अरि हनिग^२ षग वर^३ । (१)

ति घर तृष्टि^४ धरनिहि^५ परिग^६ निवरंति^७ अघ^८ धर । (२)

तिहि गिधधारव^१ रुक्मिण^{०२} अत्र^{०३} गहि^० अंतर लुक्किग* । (३)
तरुणि^१ तेज रस वसिग^२ पवन पवनह घन वज्जिग*^३ । (४)
इहि नादि^१ ईश मथ्यउ धुनउ*^२ अमिअ बिदु^३ ससि^० उल्लसउ*^४ । (५)
विडुरउ*^५ धवर^१ संकिअ गवरि टरिग^२ गग संकर हसउ^३ ॥ (६)

अर्थ—(१) समर मे जहाँ लखन बघेल ने श्रेष्ठ लड़्ग से शत्रुओ का हनन किया, (२) [वहीं] उसका भी घड़ टूट कर धरणी पर गिर पड़ा और उसने आधे घड़ो को समाप्त कर दिया । (३) उसके [घड़ के] लिए गीधो का शोर हाने लगा, और वे [उसकी] आँतो को लेकर अतरिक्ष में लुक गए (अतहित हो गए) । (४) [उसके सूर्य लोक मे पहुँचने पर] तरणि (सूर्य) का तेज और रस (सौन्दर्य) [उसके तेज और रस (सौन्दर्य) के सामने] बासी पड़ गया; उसके पवन (प्राण) पवना स भिड़ गए और घन बजने लगे—एक प्रचंड निनाद करने लगे । (५) उस निनाद को सुनकर [और ऐसे वीर का निघन जानकर] ईश (शिव) ने माथा पीट लिया, और [उनके मस्तक के] चन्द्रमा ने उल्लसित होकर अमृत विदु गिरा दिए; (६) [किंतु इस नाद से ही जब] उनका धवल बैल भडक गया, गोरी शक्ति हो गई, गंगा हट गई, और शकर हँस पड़े ।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ से हैं ।

० चिह्नित शब्द धा. में त्रुटित हैं ।

(१) १. धा. जिते समर, मो. जिति (=जितइ ?) समरि, म. जिति (=जितइ ?) समर, अ. ना. जित समर, फ. जित समर, स. जोति समर । २. धा. आहनति, अ. फ. आहनिव, ना. अरि हने । ३. म. यंग (< पग) बल ।

(२) १. अ. धुकि, फ. धुंक, ना. डट्टि, स. तुट्टि । २. अ. धरि निह, फ. धरुनिह, उ. स. धरनहि, म. ना. धरनिय । ३. अ. फ. परत, ना. डुकत, म. उ. स. धुकत । ४. अ. ना. उ. स. निवरंत, फ. निवरति, म. निवरत । ५. म. अध अध ।

(३) १. धा. तहाँ गिद्ध—, मो. तिहि गिधारवी, अ. रातह अंतावलि, फ. तिह अंतरि पिन, म. उ. स. तहं (तहाँ-म.) गिद्धारव, ना. तिहि गिधारव । २. अ. डलइ, फ. तुलिइ, ना. म. उ. स. रुरिग । ३. मो. अत्र, अ. गिद्ध, फ. गडि, ना. म. उ. स. अत । ४. धा. अतर लगयो, मो. अतर लुक्कि, अ. अतर लग्माउ, फ. अंतर लिगउ, ना. अतह लज्यौ, म. अतह लगीय, उ. स. अतर लग्मिग ।

(४) १. मो. तरुणी, धा. फ. तरुन, अ. तरुनि, ना. तरुणि, म. उ. स. तरनि । २. धा. सम्बासु, अ. फ. गइ (गय-फ.) सुकि (सुकि-फ.), ना. म. उ. स. रसवसह । ३. धा. पमुकि पावन घन चम्प्यो, मो. पवन पवनह घन वज्जिग, अ. फ. लग्मि पवनाहत वग्गउ (हवगउ-फ.), ना. पमुकि पवन घन वज्यौ, उ. स. पवन पवना घन वज्जिग, म. पवन पन घन वगीय ।

(५) १. धा. अ. फ. ना. तिहि (तिहि-ना.) सह म. उ. स. तिहि नाद (नाई-उ.) । २. मो. ईस मथु (=मथउ) धुनु (=धुनउ), धा. सीस संकर धुन्य, अ. फ. ईस मथ्यउ (मथ्यव-फ.) डुल्यउ, ना. ईश मथ्यह धुन्यौ, म. उ. स. ईस मथ्यौ (मथ्यौ-म.) धुन्यौ । ३. अ. फ. ना. म. उ. स. बुद । ४. मो. उलसु (=उलसउ), धा. उलहस्यो, अ. फ. उलहस्यउ, ना. म. उ. स. उलस्यौ ।

(६) १. मो. विडर (=विडरउ) धवर, धा. विडुरबउ धवल, अ. विडुरि वयल, फ. विडरीय व यल, म. विडुरयौ धवल, ना. उ. स. विडरयौ धवल । २. धा. अ. फ. डरिग, ना. डरीय, म. उ. स. डरिय । ३. मो. संकर हसु (=हसउ), धा. सकर हस्यो, अ. संकर हस्यउ, फ. ईशर हस्यउ, उ. स. संकर हस्यो, ना. म. संकर हस्यौ ।

टिप्पणी—(१) षग < खड्ग । (२) रुल < रोरुय=खूब शोर क ना । लुक=छिपना । (४) वसिअ < उषित=वासो, पर्युषित । (५) मथ्य < मस्तक । अमिअ < अमृत ।

[३३]

दोहरा—परत^१ वघेज सुमेज^२ किय रन^३ राठउर*^४ सुभार । (१)
जब दस कोस ढिलिय रही^१ फिर तोमर पाहार^२ ॥ (२)

अर्थ—(१) वघेल [ललन] के गिरत ही रण में राठौर (जयचंद) ने भारी मेला (हल्ला-धावा) किया । (२) जब दिल्ली दस कोस रह गई, तब तावर पहाड राय [युद्ध के लिए] लौटा ।

*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ का है ।

पाठान्तर—(१) १ क परित । २. धा सुमे । ३ धा रठि, म. रिन, फ राठ । ४. मो. राठुर (=राठउर), धा. राठौर, अ. राठयोर, फ राठौर, म. ना. उ. स रठौर ।

(२) १. धा. मो. जब दस को दिली (दिलीय-मो) रहिय (रही-मो.), अ. फ. ना. दस याजन दिल्ली परहि (परहू-ना), म. उ. स. कनवज दिलो (दिलीय, म उ) ककरइ । २ धा फिर तोबर त पहार, अ. फ. फिर तावर पाहार, ना. फिर तूवर पाहार, म. उ. स. तोवर (तौअरि-म.) तिष्ठ पहार ।

[३४]

कवित—दल पंगनि^१ रठवर^२ फुनि ते^३ चंपिय ढिलिय घर^४ । (१)
तब जपइ*^५ प्रथिराज^१ पंड वंसह^२ पाहार नर^३ । (२)
हर हथहि^१ हरि गहहि^२ वाम रषिहि^३ इनि वारहि^४ । (३)
सेस सीसु कपियउ^१ दाड^२ डुलिय^३ भुवि^४ भारह^५ ।[×] (४)
कहइ*^१ चंद अपुण्व^२ सुनु^३ नृप रषइ*^४ बिहु भुज^५ भरउ*^६ । (५)
फिरि कंपि संकि^१ जयचद दल तोमर सिरि^२ टट्टर धरउ*^३ ॥ (६)

अर्थ—(१) राठौर पंग (जयचंद) के दल ने फिर दिल्ली की घरा को दबाया, (२) तब पृथ्वीराज ने कहा “पाडव वंश में पहाड [राय] नर [उत्पन्न हुआ] है ।” (३) हरि ने हर का हाथ पकड़ा और कहा, “हे वामदेव इस बार तुम्ही रक्षा करो ।” (४) शेष का सिर काँप गया और उनकी डाढ भूमि के भार से डोल गई । (५) चंद कहता है, “यह अपूर्व [बात] सुनो, हे नृप, (पहाड राय) तुम [इस धरती को] दोनों भारी भुजाओ से रक्खो ।” (६) तदनंतर जयचंद का दलकाँप करशक्ति हो गया कि तोमर [पहाड राय] ने सिर पर टट्टर (शिरस्त्राण) धारण किया है ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

× चिह्नित चरण म. में नहीं है ।

दिलिय धर, ना. दिल्लीवर, फ. डिलि धारत, म. दिल्लीय भर, उ. स. दिल्लीय भर ।

(२) १. मो. तब जपि (=जपइ) प्रथिराज, धा. तब जप्यो प्रथिराज, अ. फ. तब जंपै पृथिराज, म. उ. स. तब जपिय प्रथिराज, ना. तूअर निष्ठि पहार । २. ना. वसीय । ३. धा. पहरण हर, मो. म. उ. स. पाहर नर, अ. पहार नर, फ. पाहारत नर ।

(३) १. धा. मो. हरि हथहि, अ. हर हथहि, फ. हर हथहि, ना. हरि हथह, म. उ. स. हरि हथ्या । २. फ. गहि, स. गहिहि । ३. धा. वान रक्खहि, अ. फ. ना. वान रषइ (रष-फ. ना.), म. उ. स. वाम रष (रषे-म) । ४. धा. इनि वारह, अ. फ. इहि (इह-फ) वारह, ना. वर वारह, म. इह वीरह, उ. स. इहि वीरह ।

(४) मो. कपोयु (=कपियउ), धा. कपियउ, अ. फ. ना. कपियौ, उ. स. कपिय । २. धा. दाढ, अ. फ. ना. डाढ, उ. स. डढ । ३. धा. दिल्ली, मो. दिल्लीय, अ. फ. दिल्लीय, ना. उ. स. दुहिय । ४. धा. भई, ना. भुइ, अ. फ. भूमि । ५. स. भोरह ।

(५) १. मो. कहिहि, धा. कहै, अ. फ. म. उ. स. कवि, ना. कहि (=कहइ) । २. मा. अपुव, धा. इस अपुव, म. अ. फ. एह अपुव, ना. उ. स. एह आपुव । ३. धा. अ. फ. ना. सुनि । ४. रषि (=रषइ), धा. अ. फ. रक्खहि (रषहि-अ. फ.), म. उ. स. वीर मत्र, ना. नृप रषन । ५. धा. बिहु भुव, अ. फ. बिहु (वेहू-फ.) भुव, ना. दुहु भुज, म. उ. स. उद्धर । ६. मो. भर (=भरउ), धा. भरयो, अ. फ. म. उ. स. भरयौ, ना. भिरयो ।

(६) १. अ. फ. फिर (फिर-फ.) कपियौ जंपि, उ. स. ठठुक्क्यौ सेन, म. ठठुक्क्यौ देवि । २. मो. फ. तोमर मिर, अ. तोमर सिरि, स. तोमर जप, उ. तोमर तव, म. तब तौअर, ना. तिन सम लरि । ३. मो. टट्टर धर (=धरउ), धा. टट्टर धरयो, अ. फ. म. उ. स. टट्टर धरयो, ना. तूवर परयो ।

टिप्पणी—(४) दाढ < दंष्ट्रा । भुवि < भूमि ।

[३५]

कवित्त—वेद कोस^१ हर सिंघ^२ उभय^३ त्रियत^४ बड गुज्जर^५ । (१)

काम^१ बान हर नयन निडर^२ नीडर^३ सोइ^४ सुभम्बर^५ । (२)

छगन पटन^१ पल्लानि कन्ह^२ पंची^३ दिग पालह^४ । (३)

अल्हन द्वादस सकल^१ अचल विद्या गनि^२ कालह । (४)

सिगार^१ विक्क^२ सलषह^३ सुकथ^४ लषन पाहार आहार सुउ^५ । (५)

इत्तनइ^{*} सूर भूभंति ही^१ दिल्लीपति प्रथिराज भउ^२ ॥ (६)

अर्थ—(१) वेद [४] कोस हर सिंह [खींच ले गया], और उभय त्रियत [६] बड गुजर [कनक]; (२) काम-बाण [५] तथा हर नयन [३ —अर्थात् आठ कोस—निडर नीडर उसी सीध में (सीधे दिल्ली की दिशा में) [खींच ले गया]; (३) छगन ने पटन [नामक घोड़े को] पलाना तो कन्ह ने [पृथ्वीराज को] दिग्गाल [१०] कोस खींचा, (४) अल्हन ने कुल द्वादश कोस [खींचा] और अचलेस ने काल की गणना कर (१) विद्या [१४] कोस खींचा, विक्क ने शृगार [१६], सुकथ—पंचाख्यान—[५१] सलष, लषन तथा पहाड़ राय ने आहार [१०, १०१] कोस [खींचा], ऐसा मैंने सुना है । (६) इतने शूरों के जूझते ही पृथ्वीराज दिल्लीपति हुआ—अथवा दिल्ली पहुँच गया ।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. म. वेदे लोस । २. मो. हर सघ, धा. ना. हरि सिंघ, म. हरसिंह । ३. फ. उभउ । ४.

धा. तिअतिहि, अ. तिगनि, फ. तियगुन, ना. तृतीय । ५. मो. गूजर, धा. गुज्जर, शेष में 'गुज्जर' ।

(२) १. धा. अ. फ. इक, मो. ना. म. उ. स. काम । २. फ. तिडर । ३. म. निमुर (< निडुर) ना. निडुर । ४. धा. भुइ, मो. सोइ, अ. फ. भय, ना. भौ, म. उ. स. भूमि । ५. मो. सुझर, धा. मज्झर, अ. फ. सुझर, म. स. सुझर, उ. सुझर, ना. सुभर ।

(३) १. धा. छगन पत्त, अ. छगन पत्त, फ. छगन पति, ना. उ. स. छगन पट्ट, म. चाज पटन । २. मो. कन, शेष सभी में 'कन्ह' । ३. धा. ना. पचीय । ४. धा. अ. फ. म. ना. दृगपालह (दृगपालहि-फ.) ।

(४) १. धा. अ. फ. अल्ह वाल (चाल-फ.) दादसनि, ना. म. उ. स. अल्ह (अल्हन-ना.) वाल दादसह । २. अ. विधा मनि, फ. विना मनि ।

(५) १. अ. फ. म. ना. शृगार (शृगार-फ.) । २. ना. वीर । ३. मो. सिधिह, धा. सालष, ना. सलषन । ४. धा. दिय, अ. फ. ना. लषन । ५. धा. अ. फ. पगुराउ फिरि गेह गउ, मो. लषन पाहार आहार सुउ, ना. सुकथ पहार तिपंच चौ, म. उ. स. लषन पहारति (पनपहारति-म.) पंच चय ।

(६) १. धा. अ. फ. सामत सत्त जुझे प्रथम, मो. इतनि (= इतनह) सूर ह इतिहि, म. उ. स. इत्तने सूर सथ जुझे (झझ-म.) तह ना. इतन सूर जुब्ब त रण । २. मो. धा. अ. फ. दिछी (दिछी-मो. दिछीय-अ. फ.) पति प्रथिराज (प्रथीराज-मो.) भउ, ना. म. उ. स. सोरौ (सोर-म.) पुर (परि-ना) प्रथिराज अय (भौ-ना) ।

टिप्पणी—(२) सूझ < शुद्ध=सीध । (५) सुअ < श्रुत = सुना गया । (६) पत्त < प्राप्त ।

[३६]

दोहरा— दुहु नृपतिन रण धर कुमल^१ लभ्यु^२ सु कित्ति^३ मूर^४ । (१)
जिहि गुनि^१ प्रगटत^२ पिड किय तिहि संघरि गए^३ मूर^४ ॥ (२)

अर्थ—(१) दोनों नृपतियो का रण घरा पर कुशल हुआ, और दोनों ने भूरि कीर्ति लाभ किया । (२) अपने जिस गुण से अपने पिड प्रकट किए थे, उसी गुण से शूर संहार को प्राप्त हुए ।

पाठांतर—(१) १. धा. अित धर कुसल न जेतु मह, अ. फ. राजन भृत धर (धरि-फ.) कुसर हुव, ना. राजाधृति धर कुशल हुव, म. उ. स. राजत अित (अत-म.) धर केलि सह । २. म. लाभ, ना. लव्य । ३. मो. करत्तीय । ४. ना. नूर, म. उ. स. पूर ।

(२) १. धा. तिहि मुख, अ. फ. ना. म. उ. स. जिहि गुन । २. धा. प्रगटस, फ. प्रगटिति, म. प्रगट । ३. धा. तिहि सघरि गय, अ. फ. ते सघरि गय, ना. तिहि सघारिग, उ. स. तिहि उत्तरि सुर, म. तिहि बतर सुर । ४. म. उ. स. मूर ।

टिप्पणी—(१) धर < धरा ।

९ . पृथ्वीराज-संयोगिता का केलि-विलास और षड् कृतु

[१]

प्रडिल्ल— दिल्ली^१ पति दिल्ली^२ संपत्तउ^{*३} । (१)
फिरि पहु^१ पंग राय^२ घरि^३ जत्तउ^{*४} । (२)
जिम राजन^२ संजोगि^२ सुरत्तउ^{*३} । (३)
सुहु दुहु^{*१} कहन^२ चहु^३ हउ^{*४} रत्तउ^{*५} ॥ (४)

अर्थ—(१) दिल्ली पति (पृथ्वीराज) दिल्ली संप्राप्त हुआ—पहुँचा, (२) तदनंतर प्रभु पंगराज (जयचंद) घर कन्नौज गया । (३) जिस प्रकार राजा (पृथ्वीराज) संयोगी में अनुरक्त हुआ, (४) [उस] सुख-दुःख के कहने के लिए मैं चंद अनुरक्त हुआ ।

पाठांतर—*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. म. उ. स. दिल्लीय (दिलीय—मा. न.) ना. दिल्ली । २. मो. दिल्लीय, म. दिल्ली, ना. दिल्ली । ३. मो. सपतु (= सपतउ), धा. सपत्तउ, अ. फ. जु सपत्तउ (सपत्तौउ—फ.), म. उ. स. सपत्तौ, ना. सपत्तौ ।

(२) १. मो. पुहु शेष में 'पहु' । २. धा. रगराउ । ३. धा. फ. उ. स. ग्रह, अ. ना. गृह, म. ग्रह । ४. मो. जतु (= जत्तउ), धा. जत्तउ, अ. ना. उ. स. जत्तौ, म. जतौ, फ. जुत्तउ ।

(३) १. मो. फिरि पुहु पंग राय, ना. जिम जिम राह । २. मो. संयोग, शेष सभी में 'संजोगि' । ३. मो. सु रतु (= रत्तउ), धा. फ. सुरत्तउ, अ. म. उ. स. ना. सुरत्तौ ।

(४) १. मो. सुहु दुह (< दुहु), धा. फ. म. उ. सुहुदुह, ना. दुह दुह । २. म. उ. म. करन । ३. मो. कन्ह, म. बंदि । ४. मो. हु (= हउ), धा. मनु, अ. फ. न, म. उ. स. महि, ना. मन । ५. मो. रतु (= रत्तउ), धा. फ. रतउ, अ. रक्तउ, ना. म. उ. स. मरतौ ।

टिप्पणी—(१) संपत्तउ < संप्राप्त । (२) रत्त < रक्त । (४) सुह < सुख । दुह < दुःख ।

[२]

दोहरा— दिव^१ मंडन^२ तारक^३ सयल^४ सर^५ मंडन^६ कमलानु^७ । (१)
जस^८ मंडन^९ नर^{१०} भर^{११} सयल^{१२} महि^{१३} मंडन महिलांनु^{१४} ॥ (२)

अर्थ—(१) आकाश के मंडन (आभूषण) समस्त तारे होते हैं, और सर के मंडन (आभूषण)

कमल होते हैं, (२) [राजाओं के] यश के मंडन (आभूषण) समस्त भट जर्न होते हैं और मही के मंडन (आभूषण) महल होते हैं ।

पाठांतर—X चिह्नित शब्द ना. में नहीं है ।

(१) १. अ. दिवि । २. फ. मडक । ३. म. तार । ४. मो. सब, अ. सघन, फ. सयनु. ना. म. उ. स. सकल ।

(२) १. अ. उ. स. रन, फ. रनु, म. रिन । २. मो. सय, धा. सयल, म. गहर, अ. फ. सुहर, उ. स. सुभर, ना. में भी 'सयल' रहा होगा, जिस कारण उसमें प्रथम चरण के 'सयल' के बाद दूसरे चरण के 'सयल' तक की शब्दावली उसमें छूट गई । ३. मो. मिहि, ना. घर । ४. मो. मिहिलान, धा. महिलानु, फ. महिलाल ।

टिप्पणी—(१)-(२) सयल < सकल ।

[३]

दोहरा—महिलउ^{*१} मंडन नृपति मिह^२ कनक कंति^३ ललनानि^४ । (१)

तिहि^१ उप्परि^२ संजोगि नग^३ धरि रषु^{*४} वर वानि^५ ॥ (२)

अर्थ—(१) महलों के भी मंडन (आभूषण) राजा (पृथ्वीराज) के निवास की कनक-कातिवाली ललनाएँ थी, (२) और उनके ऊपर [राजा ने] नग के समान वर वर्णी (अच्छे वर्ण वाली) संयोगिता को रक्खा ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. मिहिल (< मिहिलउ), धा. अ. फ. पहिलहि, ना. पहिलै, म. उ. स. महिलन । २. मो. नृपति मिहि, म. मंडन राजग्रिह, ना. मंड नृपति गृह । ३. मो. कन, शेष सभी में 'कंति' । ४. धा. अ. फ. उ. स. ललनानि, मो. म. ललनान ।

(२) १. अ. फ. तिनि, ना. म. स. ता, उ. तात । २. मो. ऊपरि, धा. फ. म. ना. उप्परि, अ. उ. स. उप्पर । ३. मो. संयोगन, फ. संजोगि नामु, म. संजोगि नम, शेष में 'संजोगि नग' । ४. मो. धरि रषु (=रषुड), धा. धरि रक्खयो, अ. फ. विधि रषिष्य, ना. धनि राजन, म. उ. स. धरि राजन । ५. मो. म. उ. स. वलवान (वलवान-म.), धा. वलिवान, अ. फ. वर वानि, ना. वलिवानि ।

टिप्पणी—(१) कंति < कान्ति । (२) वानि < वर्णी ।

[४]

दोहरा—सुभ^१ हरम्य^२ मंडिग^३ निपति दिपति^४ दीप^५ दिव लोक । (१)

सुकु^१ मउष^२ अमृत^३ मरहि करहि^४ जु मनहि^५ असोक ॥ (२)

अर्थ—(१) नृपति (पृथ्वीराज) ने शुभ (सुखदायक) हरम्य बनवाया, जिसके दीप आकाश लोक तक प्रदीप्त होते थे । (२) उसके मुकुरों में [चंद्रमा की] मयूखों का अमृत झड़ा करता था, जो [दंपति के] मन को विशोक किया करता था ।

पाठान्तर—(१) १. अ. सुभ, फ. सुज । २. अ. फ. हरमि । ३. धा. मंडिम, अ. फ. मंडिय ।

मो. दीपत, स. दीपति । ५. ना. दीव ।

(२) १. मो. मुकल, धा. सुकल, अ. फ. मुकल, ना. सुकर, उ. म. मुकुर, म. मुकर । २. धा. मो. अ. मुष (—मउष), फ. मुषु, ना. म. मयूष, उ. स. मउष । ३. म. अमृति । ४. मो. करिहि, ना. करइ, ५. धा. जु मनुह, फ. म. ति मनह ।

टिप्पणी—(२) मुकल < मुकुर । मउष < मयूख ।

[५]

रासा—अगर धूम^१ मुष गउष^{*२} उन्नयउ^३ मेघ जनु । (१)

त^१ मोर मराल^२ निरत्तहि रत्तहि^३ मत्त^४ धुन^५ । (२)

सारंग साटिग^१ रंग पडक ति^२ पंषि रसि^३ । (३)

विज्जुलिका कलसति^१ झमकहि^२ जासु^३ मिसि^४ ॥ (४)

अर्थ—(१) [उस इम्य के] गवाक्षों के मुखों में अगुरु-धूम [शोभित] था, [जो ऐसा लगता था] मानो उन्नमित मेघ हो, (२) जिस [मेघ सदृश धूम] को देख कर मोर तथा मराल नृत्य करते और मत्त ध्वनि में शब्द करते थे, (३) सारंग (चातक) और सारिका क्रीड़ा करते थे और पक्षी गग आनंद पूर्वक चहकते थे, (४) और जिस मेघ सदृश धूम के मिस से [उस इम्य के] कलश बिजली [के सदृश] चमकते थे ।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द सशोधित पाठ का है

‡ चिह्नित शब्द अ. में नहीं है ।

(१) ना. धूप, म. उ. स. धुम्म । २. मो. गुप्प (< गउष), धा. गोउष, अ. ना. गौष, फ. गौषि, म. उ. स. गौषह (गौषहं—म.) । ३. धा. उन्नप, मो. उन्नयन, अ. फ. कि उन्नय, ना. म. उन्नयौ, ना. उ. स. उन्नयो (उन्नयौ—ना. म.) ।

(२) १. मो. त, धा. ना. अ. फ. में यह शब्द नहीं है, म. उ. स. तहय । २. म. उ. स. मरहार । ३. मो. निरत्त टेरहि, धा. निरत्तहि रन्नहि, अ. फ. म. उ. स. निरत्तहि, ना. निरत्तहि रट्टहि । ४. धा. मित्त । ५. मो. धुनं, धा. फ. धनु, अ. धुन, ना. म. उ. स. धनु (धन—उ. स.) ।

(३) १. मो. शारिग साटिग, शेष में 'सारंग सारंग' । २. धा. ना. म. उ. स. पडकहि, अ. पडकहि, फ. पडकरि । ३. मो. अ. फ. ना. पंष । ४. मो. रस, धा. रसि, म. रिस ।

(४) धा. अ. विज्जल काक लसति, मो. विज्जुलिकाक सति, फ. विज्जलका कलसंत, स. विज्जुलिकाकल सानि, म. उ. विज्जुलिका कल सानि । २. धा. झमकहि, अ. झम धुहि, ना. किमकहि । ३. मो. जास, धा. जासु, शेष सभी में 'जासु' । ४. मो. अ. ना. मिस, शेष में 'मिसि' ।

टिप्पणी—(१) गउष < गवाक्ष । उन्नयउ < उन्नमित । (२) रण्=शब्द करना । धुन < ध्वनि । (३) साटिग < सारिको । पंषि < पक्षी । (४) विज्जुलिका < विद्युत् । कलस < कलश ।

[६]

रासा—दादुर सादुर^१+‡^० सोर नव नूपुर^२ नारि घन । (१)

मिलि सुरमधि^१ मधु^० व्रत^२ माधुर^३ मंजु^४ मन । (२)

सलिक^१ पंच पचीस^२ प्रजंक त^३ दून^४ तस^५ । (३)

तहं तहं^१ अथि^२ सुवीन^३ प्रवीन ति^४ दासि^५ दस ॥ (४)

अर्थ—(१) [उस हर्म्य में] सघन नारियों के नव नूपुरों का रव दादुर तथा शार्दूल के शोर के सहग था । (२) [उन नूपुरों के] स्वर के मध्य मधुव्रती और मधुर-प्रिय मधुकर मंजु मन से आ मिलते थे । (३) [उस हर्म्य में] पाँच-पचीस (अनेक) शालिकाएँ (सारियाँ) थीं, और उनमें उनकी दूनों पर्यङ्के (पल्लों) [प्रत्येक में दो-दो] थी । (४) और उन [सारियों] में वीणा में प्रवीण दस-दस दासियों की अथाइयाँ थी ।

पाठान्तर—० चिह्नित शब्द मो. में नहीं है ।

+ चिह्नित शब्द अ. में नहीं है ।

‡ चिह्नित शब्द धा. में नहीं है ।

¶ चिह्नित शब्द फ. में नहीं है ।

(१) १. 'सादुर' शब्द धा. अ. फ. में नहीं है, पूर्ववर्ती शब्द से साम्य के कारण छूट गया है, ना. दादुर, उ. सारुर । २. मो. नव नूपुर, धा. जु नूपुर, अ. सु नूपुर, फ. सुनूपुर, ना. म. उ. स. नवप्पुर ।

(२) १. मो. मिलि सुर मध्य, धा. मिलिलि सुर मध, अ. मिलिसुर मद्धि, फ. मिलि सुर मधु । २. धा. व्रत—कदाचित् पूर्ववर्ती 'मध' के साम्य के कारण 'मधु व्रत' का 'मधु' धा. में छूट गया है, फ. उ. स. मधुव्रत । ३. फ. माधुर, म. माधुरं, ना. मधुर । ४. मो. में यह शब्द नहीं है, अ. मंजि, फ. ना. मंज, म. उ. स. मंजि ।

(३) १. मो. फ. सालुक । २. फ. पाविस, म. पवीस । ३. मो. प्रजतक, अ. म. उ. स. प्रजकति, फ. प्रयकित, ना. व्रजंकति । ४. अ. फ. में यह शब्द छूटा हुआ है । ५. अ. ङस, फ. धिस, ना. रस, म. दस ।

(४) १. धा. तह तह, मो. ताहां ताहां, अ. फ. ना. तह तह, उ. स. तह, म. तहां । २. धा. म. अथि, अ. फ. हथि, ना. अन्धि । ३. मो. सूचि, धा. सुरचीन्ह, अ. ना. सुवीन, फ. सुथान, उ. स. परवीन, म. प्रवी— । ४. म. स वीनति, उ. स. सुवीनति । ५. मो. अ. फ. दास, शेष में 'दासि' ।

टिप्पणी—(१) सोर < शोर [फा.] । (२) सालुक < शालिका=धर के कमरे । प्रजक < पर्यङ्क । (४) अथि < आस्थान = अथाई । वीन < वीणा ।

[७]

रासा—के^१ जुव^२ जूथ^३ जि^४ वाद^५ प्रमादहि^६ मंद^७ गति । (१)

के चल^१ अंचल^२ बायु^३ निरूपहि^४ सद^५ रति^६ । (२)

के वर^१ भाष^२ पराकति^३ संकति^४ देव सुर । (३)

के गुन ग्यान सुजान^१ विराजहि^२ राज वर ॥ (४)

अर्थ—(१) [उस हर्म्य में] या तो जुवती-यूथ, जो [वाद्यों का] वादन करता था, अपनी मंद गति से [राजा को] प्रमादित करता था, (२) या तो वह अपने हिलते हुए अंचल के बायु से शब्द-रति (ध्वनि-प्रेम) का निरूपण करता था, (३) या तो वह श्रेष्ठ प्राकृत अथवा देव-स्वर (देव-वाणी) संस्कृत में संभाषण करता था (४) और या तो वह गुण-ज्ञान-सुजान श्रेष्ठ राजा का मनोरजन (?) करता था ।

पाठान्तर—(१) १. धा. कैव । २. मो. ध्रुव, धा. युव, म. जुअ, शेष सभी में 'जुव' । ३. धा. यूथ, म. ना उ. स. जुथ्य । ४. अ. फ. ना. म. उ. स. ज । ५. म. वावि, ना. वादि, अ. फ. वाधि । ६. धा. प्रमादति, फ. प्रमाहरि, ना. प्रमादिहि । ७. मो. माद, शेष सभी में 'मद' ।

(२) १. म. उ. स. ना. वल, अ. वर, फ. उर । २. अ. फ. अंचर । ३. धा. वाद, अ. वाइ, फ. वीय, ना. वाम, म. वाय, ३. स. षाय । ४. धा. निरुपहि, अ. फ. तिरुपहि । ५. अ. अघ, फ. अदि, ना. साद, म. उ. स. सरद । ६. म. रिति ।

(३) १. म. तेवर । २. धा. भाषि, फ. भाषु । ३. धा. पराक्रिदि, अ. फ. पराजित, उ. स. ना. पराक्रत, म. पराक्रित । ४. धा. संक्रिति, अ. फ. राकृति; म. ससक्रित, उ. स. सकृत, ना. आकृत ।

(४) १. अ. फ. ना. म. उ. स. वर वीन (वर वीन प्रवीन-फ) (तु० पूर्ववर्ती छन्द का अतिम-चरण) । २. अ. फ. विराजहि वीर वर, उ. स. विराजित राजहि वार वर, म. विराजत राज दरवार वर, ना. विराजह राजहि राव ।

टिप्पणी—(२) सह < शब्द । (३) पराक्रति < प्राकृत । सकृति < संस्कृत ।

[८]

रासा—इह^१ विधि विलसि विलास असार सुसार^२ किष^३ । (१)

दइ^{*१} सुष जोग संजोगि^२ सोइ^३ प्रथिराज जिय^४ । (२)

अहनिसि सुधि^० न^० जानहि^१ माननि^२ प्रौढ रति । ‡ (३)

गुरु बंधव भृत^१ लोइ^२ भई विपरीत^३ गति ॥‡ (४)

अर्थ—(१) इस प्रकार विलासो को विलस कर [पृथ्वीराज ने] सुसार (सामर्थ्य-शक्ति) को भी असार कर दिया; (२) वह संयोगिता को सुख-योग प्रदान करे, यही पृथ्वीराज के जी में रहा करता था; (३) मानिनी (संयोगिता) की प्रौढ रति में [पड़ कर] वह दिन और रात की भी सुधि नहीं जानता था—नहीं जानता था कि कब दिन होता है और कब रात; (४) परिणाम-स्वरूप उसके गुरु, बाधवों, भृत्यों और लोक (प्रजा) की गति विपरीत [उसके विरुद्ध] हो चली ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

० चिह्नित शब्द धा. में नहीं हैं ।

‡ चिह्नित चरण अ. फ. में नहीं हैं ।

(१) १. म. उ. स. इन । २. धा. फ. असार तिसार, अ. असार तसार, ना. असार संसार, म. आसर सुसार । ३. म. कीय ।

(२) १. मो. दि (=दइ), धा. दिव, अ. फ. म. उ. स. छै । २. मो. योग सयोग, म. जोगि संयोगि, अ. फ. जोग संयोजन (संयोजनि-फ.) शेष में 'जोग सजोगि' । ३. धा. अ. फ. उ. स. प्रिथी, ना. प्रथी, म. भोगि । ४. म. प्रीय, ना. प्रिय ।

(३) १. धा. अह निसि सुधि न जानन, म. अह निसि सुधि न जानिये, ना. दै सुष सुष सजोग (तुल० चरण २) । २. धा. मानिनि, म. मानिय, ना. प्रभानी ।

(४) १. धा. बंध धव भृति, ना. बंधी । -

म. में यह छंद ९.२४ तथा १२. १२० पर दो बार आता है । ९.२४ का पाठान्तर ऊपर दिया जा चुका है और १२. ६३० में इन चरणों का पाठ है :

ज्यों रति संगम भार न जाने रयन (रयनि-म.) दिन ।

केत कि कुष्ठम लुभाय रह्यौ मनु (मेनु-म.) भ्रमर मन ।

म. में यह छंद दो प्रसंगों में आता है; एक तो पृथ्वीराज के कन्नौज-प्रयाण के पूर्व (९.२४) और पुनः यहाँ पर । प्रथम स्थान पर पाठ धा. मो. का ही है, दूसरे स्थान पर पाठ उ. स. का है । अ. फ. में ये दोनों चरण नहीं हैं ।

टिप्पणी—(४) भृत < भृत्य । लोह < लोक ।

[६]

साटिका —सामग्गं कलधूत नूत^१ सिखरा^२ मधुलेहि^३ मधु^४ वेष्टिता^५ । (१)
वाते^१ सीत सुगंध मंद सरसा^२ आलोल सा चेष्टिता । (२)
कंठी कंठ^३ कुलाहले मुकलया^४ कामस्य^५ उद्दीपनी^६ । (३)
रत्ते रत्त वसंत पत्त^० सरसा^{०१} संजोगि^{०२} भोगाइते^{०३} ॥ (४)

अर्थ—(१) [जिस वसंत में वृक्षों के] शिखरों पर [पुष्पाभरण के कारण] नूतन कलधूत (सोने-चाँदी) की समग्रता हो गई है और मधुलेहिन (भ्रमर) मधु-वेष्टित हो रहे हैं, (२) वात (वायु) शीतल मंद और सुगंधित तथा सरस हो गई है और वह चपलता के साथ चेष्टित हो गई है—बह रही है, (३) कंठी (कोकिल) के कंठ के कोलाहल से मुकुलों (कलियों) में काम का उद्दीपन हो रहा है, (४) तथा जो वसंत सरस [लाल] पत्तों के कारण लाल हो रहा है, संयोगिता ऐसे वसन्त में [पृथ्वीराज द्वारा] भोगायित हो रही है ।

पाठान्तर—० चिह्नित शब्द धा में नहीं हैं ।

यह छंद ना. में २९.८६ आ. तथा ४१ १० है । यहाँ पर ना. का पाठान्तर ४१.१० का दिया जा रहा है ।

(१) १. मो. सामंता, अ. फ. श्यामंग, ना. सामग्ग, म. उ. स. श्यामंग । २. धा. अच्छ, मो. नृ । ३. अ. सिषिरे, फ. ना. शिषरे, म. उ. सिषरे, स. सिषर । ४. धा. अ. फ. म. मधुरेहि, ना. मधुरेय, उ. स. मधुरे । ५. म. उ. समधू । ६. म. चेष्टिता ।

(२) १. अ. फ. वाता । २. धा. सरिसा । ३. म. स ।

(३) १. धा. अ. फ. कूल, मो. म. उ. स. कठ । २. धा. वकुलया, अ. फ. वक्रज, कामानि, मा. कामाय । ४. धा. उद्दीप—‘अ. फ. उद्दीपनो’ म. उ. स. उद्दीपने, ना. उद्दीपन ।

(४) १. धा. में ‘रत्ते रत्त वसंत’ के अनंतर की छंद नहीं शब्दावली की है । अ. फ. रे (रै-फ.) तेते दिवसा तपंति सरिसा, म. उ. स. रत्ते रत्त वसंत मत्त सरसा । २. मो. संयोग, अ. फ. म. उ. स. संजोग ना. संजोगि । ३. मो. भोगायनी, अ. फ. भोगाइते, ना. म. उ. स. भोगायते ।

टिप्पणी—(१) सामग्गं < सामग्र्य=सम्पूर्णता । (४) पत्त < पत्र ।

[१०]

साटिका—दीहा^१ दिव्य^२ सदंग^३ कोप^४ अनिला^५ धावर्त्त मित्ताकर^६ । (१)
रेन^१ सेन^२ दिसान^३ थान मल्लिना^४ गोमग आडंबर^५ । (२)

नीरे नीर^१ अपीन^२ क्षीन^३ छषया^४ तपया तरुया तन^५ । (३)

मलया चंदन^१ चंद मंद^२ किरणा^३ सु ग्रीष्म^४ आसेचन^५ ॥ (४)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज से संयोगिता कहती है,] “[जिस ग्रीष्म में] दिन दिव्य (तप्त लौहादि) [के समान] हो रहे हैं, अनिल (वायु) शब्द करती हुई कुपित हो गई है, और मित्राकर (सूर्य की किरणों) से उत्पन्न आवर्त्त (ववडर) उठने लगे हैं, (२) रेणु की सेनाओं से दिशाएँ तथा स्थान मलिन हो रहे हैं, [यथा] गो-मार्ग (गायों के खरिक्त में जाने-आने के मार्ग) में उठे हुए आडंबर (गर्द-गुबार) से हों, (३) जहाँ जो भी नीर था वह अपीन (क्षीण) हो गया है, रात्रि भी क्षीण हो गई है, और तप (गर्मी) का तनु तरुण हो गया है, (४) मलय [समीर], चंदन और चद्रमा की मंद किरणे ही [ऐसे] ग्रीष्म में [मुरझाते हुए प्राणों का] आसेचन (सिंचन) करने वाले हो रहे हैं ।”

पाठान्तर—चिह्नित शब्द फ. में नहीं है ।

(१) १. मो. दिहा । २. धा. दब्ब, मो. दिव्य, अ. फ. म. उ. स. दिग्ध । ३. मो. शदंज, धा. म. उ. स. सदंग, अ. फ. सुदग, ना. समद । ४. धा. कूप । ५. मो. अनिली, म. अनिलं, फ. अनिलु । ६. मो. धा. अ. फ. मित्राकर (=मित्राकर), ना. म. मित्राकरे ।

(२) १. धा. रेणे, अ. फ. रेने, ना. म. उ. स. रेन (रेण-ना. म.) । २. धा. सेणि । ३. धा. नदीस, मो. दि, शेष अश शब्द का नहीं है, अ. फ. दिसेन । ४. ना. उ. मजिन, स. मिलन, म. मलिने । ५. मो. आडंबर, म. ना. आडबरे ।

(३) १. अ. फ. नीरे नीर, म. नीर नीर । २. धा. अपीन, फ. अपीर । ३. धा. क्षीनि, फ. बीन । ४. धा. म. छषया । ५. स. तरुया । ६. फ. तन ।

(४) १. फ. चदल । २. अ. फ. नद । ३. धा. किरणा, मो. म. ना. किरणी, अ. फ. किरणे, म. उ. स. किरनं । ४. धा. अ. फ. म. ग्रीष्मे च, ना. ग्रीष्मे सु, उ. ग्रीष्म च, स. ग्रीष्म च । ५. मो. अषेमनं, धा. आसेचनं, अ. आषेचन, उ. स. आषेवन, म. आषेमन, फ. में ‘आ’ के बाद अगले छद के ‘वसुधरा’ (चरण. ३) के ‘व’ तक का अश नहीं है ।

टिप्पणी—(१) दीहा < दिवस । सद < सद < शब्द । (२) रेन < रेणु । थान < स्थान । मोमगा < मोमगा । (३) क्षीन < क्षीण ।

[११]

साटिका—झाले^१ वदल^२ मत्त मत्त^३ विषया^४ दामिनि^५ दामायते । (१)

दादुले^१ दल^२ सोर मोर सरसा^३ पप्पीहान्^४ चीहायते । (२)

शृंगाराय^१ वसुंधरा^२ ललितया^३ सल्लिता^४ समुद्रायते^५ । (३)

यामिन्या^१ सम वासरे^२ विसरता^३ प्रावृट्^४ पश्यामि ते ॥ (४)

अर्थ—(१) “[जल से] आर्द्र बादल विषय में मत्त हो रह हैं, और [उनकी प्रिया] दामिनी बमक रही है; (२) दादुरों का दल मोरों के साथ ही शोर कर रहा है और पपीहे चीत्कार कर रहे हैं; (३) लालित्यपूर्वक वसुंधरा ने शृंगार किया है, और सरिता [बढ़कर] समुद्रायित हो रही (समुद्र बन रही) है (४) यामिनी के समान ही [अंधकार पूर्ण] होकर वाधर (दिन) भी जा

रहे (व्यतीत हो रहे) हैं, वर्षा में ऐसा दिखाई पड़ रहा है ।”

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है ।

‡ चिह्नित अक्षर, शब्द और चरण फ. में नहीं हैं ।

+ चिह्नित चरण अ. में नहीं है ।

(१) १. उ. अहे, म स. अब्दे । २. मो. बादल, धा. अ. म. ना. उ. स. बढ़ल । ३. यह शब्द उ. में नहीं है । ४. अ. दिसया, ना. दिशेया, उ. स. विसया । ५. मो. दामिनी, धा. अ. ना. उ. स. दामिन्य, म. दामन्य ।

(२) १. धा. ददूरे, मो. दादुले अ. फ. म उ. स. दादूरं, म. दादूल, ना. दाहुल्यं । २ उ. स. दर । ३. धा उ. स. सरिसा, ना. करण । ४. मो. पषीहान (< पप्पीहान), धा. म. ना. उ. स. पप्पीह ।

(३) धा. अ. सिगाराय, स. शृगारीय । २. मो. चबुधरा । ३. धा. अ. फ. सुललिता, म. ससलिता, स. मल्लिलता, उ. सल्लिलता । ४. मो. सालिता, म उ. स. लीला । ७. म. समुद्राय, उ. सुद्रायते ।

(४) १. ना. जामन्यं । २. उ. स. वासुरो, म. वासरो । ३. धा. अ. फ. विसरिता, मो. ना. विसरजा (विशरजा-म.), म. विसुरता, उ. स. विसरता । ४. मो. परवट, धा. अ. प्रावृट् सु, फ. प्रावृस्य, ना. पुरपट्ट, उ. स. पावस्य, म. पावस्य । ५. मो. पश्चामिते, ना. वस्यामिते, उ. स. पथानते, म. पंथामही ।

टिप्पणी—(१) आले < आर्द्र । (२) दादुल्ल < ददूर । चीह = चीत्कार करना । (३) सल्लिता < सरिता ।

[१२]

साटिका—पित्ते पुत्त^१ सनेह गेह^२ भुगता^३ युक्तानि दिव्या दिने^४ । (१)

राजा छत्रनि साजि^१ राजि^२ षितया^३ नंदाननभासने^४ । (२)

कुसमे^१ कातिक^२ चंद निम्मल^३ कला दीपांनि वर दायते^४ । (३)

मां मुक्कइ^{*१} पिय बाल नाल^२ समया सरदाय दरदायते^३ ॥ (४)

अर्थ—(१) “जो पिता-पुत्रादि के स्नेह और गृह का भोग कर रही है, [अथवा] जो युक्ता (सयोगिनी) है, उसके लिए दिन दिव्य है; (२) राजागण छत्रों को साजकर और [अपनी शक्ति पर शोभित होकर आनंद युक्त आननो से भासित हो रहे हैं; (३) कुसुमों और चंद्रमा की कलाएँ कार्तिक में निर्मल हो गई हैं, और दीप वरदायी हो रहे हैं—दीपदान ने लोग वाञ्छित फल प्राप्त कर रहे हैं; (४) हे प्रिय, बाला को इस [कमल] नाल [के निकलने] के समय में ने छोड़ो [क्योंकि] शरद का दल दिखाई पड़ रहा है ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है ।

(१) १. धा. पत्ते, पत्त मा पित्ते पित्र, अ. फ उ स पित्ते पुत्त (पुत्र-फ) म. पुते पित्रि, ना. पुत्र पुत्रि । २. धा. नेह, गेह । ३. धा. भुगतान, मो. युक्तान, अ. सुक्ता, फ. मुक्तादि, ना. जुगतानि, उ. स. जुगतान, म. जुक्तान । ४. म. दिव्याहने, धा. ना. स. दिव्यादने, फ. दिव्यादन ।

(२) १. धा. अ. फ. साज । २. धा. अ. फ. म. राज । ३. धा. अ. फ. म. ना. छितया, उ. स. छितिया । ४. मो. निदाननभासने, धा. निदादला भासिते, उ. फ. निदाचला भासिते (भासितो-अ.), उ. स. निदायिनीवासने, म. नदाननभासने, उ. स. निदायिनी वासने, ना. नशतिन भासने ।

(३) १. धा. कुसुम अ. म. उ. स. ना. कुसुमे । २. धा. अ. फ. कातिग, ना. म. कंतिक (=कत्तिक), उ. स. षतन । ३. धा. निम्मल, शेष में 'निर्मल' । ४. धा. अ. फ. दीपान (दीपन-फ.) वरदायते (वायते-धा.), उ. स. दीपाय वरदायने, म. दीपा वरदाइने, ना. दीपायन वरदायते ।

(४) १. मो. मूँकि (=मुक्किह), धा. अ. फ. म. उ. स. मुक्के, ना. मूके । २. म. जाल । ३. फ. सरदाइ दरदाइते, उ. स. सरदाथ दरदायने, म. सरदावर दाइने ।

टिप्पणी—(१) गेह < गृह । (२) षित < क्षिति । (३) मूक < मुच् । (४) दर < दल । धा. अ. < दशय् (१) = दिखलाना ।

[१३]

साटिका—छीनं^१ वासर स्वास दीघ^२ निसया शीतं जनेतं^३ वने^४ । (१)

सज्ज^१ संजर^{*२} वान यौवन तथा^३ आनंग^४ आनंगने^५ । (२)

यउ^{*} बाला तरुणी निवृत्तपत्ता नलिणी^१ दीना न जीवा षिणे^२ । (३)

मा कांत^१ हिमवंत^२ मत्त^३ गमने^४ प्रमदा^५ न आलंबने^६ ॥ (४)

अर्थ—“(१) वासर स्वास के सदृश क्षीण हो रहा है, और निशा दीर्घ होने लगी है, वस्तियों और वनों में शीत व्याप्त हो रहा है, (२) यौवन के कारण शय्या संज्वर-कारिणी हो गई है, और अनग ही अनंग [का अधिकार] हो गया है, (३) जो बाला तरुणी है, वह निवृत्त-पत्र (जिसके पत्ते झड़ गए हैं, ऐसी) नलिनी के सदृश इस प्रकार दीन हो गई है कि क्षण भर भी जीवित न रहेगी । (४) हे कान्त, मत्त हेमंत में गमन न करो, क्योंकि प्रमदा आलंबन (अवलंब) हीन हो जावेगी ।”

पाठान्तर—(१) १. धा. अ. फ. छीनं, म. च्छीनं, ना. उ. स. छिन्न । २. मो. सास दीघ, धा. स्वास दिध्व, ना. म. दिग्ध दिग्ध, उ. स. सीत दीघ । ३. धा. सीत जीतं, अ. फ. सीते (सीत-फ.) न जीत । ४. धा. अ. ना. वने, मो. वनं, फ. पिते, म. तने ।

(२) १. धा. अ. फ. सज्जा, स. सेजं, उ. सेत, म. सिज्जा । २. धा. साजर, म. सिज्जर, मो. अ. फ. ना. उ. स. सज्जर (< संजर) । ३. धा. वाण जुव्वन तथा, अ. फ. वास जूह तनया, ना. वान या वनतया, म. उ. स. वानया वनितया (वनितया-म.) । ४. धा. आमंग । ५. धा. आनदने, अ. आनगते, फ. आनंगिते, उ. स. आलिंगने, म. आमगने ।

(३) मो. यु (=यउ) बाला तरुणी व्रतपत्त नलणी, धा. अ. फ. बाला ततु निवृत्त पत्त (निवृत्ति पत्ति-फ.) नलिनी, उ. म. यौ बाला तरुणी वियोग पतनं, म. ज्यौ बाला नलिनी निवृत्ति पतिनी, ना. जे बाला तरुणी व्रतपत्ति नलिनी । २. मो. दोनेश दीना न जीवा षिणे, धा. अ. फ. दीना नि (न-अ. फ.) जीव छिने, म. दीना न नाचाक्षने, उ. स. नलिनी दइते हिम ।

(४) १. धा. अ. फ. सा कांते, ना. मा कंते, प. माक ते, ना. उ. स. मा मुक्के । २. मो. हिमवंत, ना. हिमवत्त । ३. धा. समत, ना. वत्त । ४. अ. फ. गवने, ना. गइने । ५. मो. म. प्रमुदा । ६. धा. अ. निआलंबने, फ. निआलविने, उ. स. निरालंबन ।

टिप्पणी—(२) सज्ज < शय्या । संजर < सज्वर । (३) षिण < क्षण ।

[१४]

साटिका—रोमांजी वन नीर निध्व वरये^१ गिरि डंग^२ नारायते^३ । (१)

पवय^१ पीन^२ कुचानि^३ जानि सयल्ला^४ फुंकार^५ भुंकारये^६ । (२)

शिशिरे सर्वरि^१ वारुणे च^२ विरहा^३ मम^४ हृदय^५ विहारये^६ । (३)

मा कांत^१ मृगवध^२ सिंघ^३ गमने^४ कि देव^५ उव्वारये^६ ॥ (४)

अथ—(१) “[मेरी] रोमावली वन है, श्रेष्ठ स्नेह-नीर ही गिरि और द्रंग की जल की धारा है, (२) [मेरे] पीन कुच मानो समस्त पर्वत हैं, मेरी जो फुझार (सीत्कार) है, वही मानो [पवन का] झकोर है, (३) शिशिर की शर्वरी (रात्रि) में विरह ही वह वारण (हाथी) है जो मेरे हृदय [की वाटिका] को तहस-नहस कर रहा है, (४) उस विरह रूपी मृग (वनचारी वारण) का वध करने वाले सिंह, हे कांत, तुम गमन मत करो; हे देव क्या, नारी के हृदय को इस विरह-वारण से उबारोगे ?”

पाठान्तर—(१) १. धा. रोमाली वन नील भूधरवरं, अ. फ. रोगाली घननील भूधर (भूधरि-फ.) वर, ना. म. उ. स. रोमाली (रोमावली-म, रोमावलि-ना.) वन (ना. में यह शब्द नहीं है) नीर निद्ध (निद्धि-म.) चरयो (निचयो-उ., चरयौ-ना.) । २. धा. रुंगु, अ. फ. उंगु (ऊग-फ.), म. ना. स. दग, उ. दत । ३. धा. नारायते, मो. रारायते, म. नीरायते, ना. नाराइते ।

(२) १. मो. अ. फ. पवया, म. पचय । २. ना. पीर । ३. म. कुवानि । ४. अ. सिथिला, फ. सिथला, ना. सलया, म. उ. म. मलया । ५. अ. फ. कुकार (कुकारु-फ.), म. हुकार, ना. फुकार । ६. मो. झंकारये, धा. झूकारया, अ. फ. झुकारया, ना. म. उ. स. झुकारय ।

(३) १. मो. शिशिरे सर्वनि, फ. शिशिरे सर्वनि, ना. ससिरे श्रव्वरि । २. धा. ना. वारुणी च, अ. वारिणेर्यं, फ. वारणेय, म. वारणोच, उ. स. वारुनीय । ३. म. विरही । ४. धा. सा, मो. मम, शेष में ‘मा’ । ५. मो. हृदय, धा. हिद, अ. फ. हष्ट, ना. उ. स. हद्द, म. सद् । ६. धा. मुहारया, ना. मुच्चारय, उ. स. मुब्बारय, म. सवारय ।

(४) १. धा. कांते, अ. फ. क्रांते, ना. म. उ. स. कते । २. धा. म्रिगवग्ग, अ. फ. मृगवद्ध । ३. म. उ. स. मध्य, ना. सद्ध । ४. धा. गमणे, अ. फ. गवने । ५. मो. देइ अ. फ. दोव, उ. स. दव । ६. धा. भूच्चारया, अ. उच्चारये, फ. उछारया, ना. म. उ. स. उच्चारये ।

टिप्पणी—(१) रोमाल = रोमावली । निद्ध < स्निग्ध । द्रंग < द्रङ्ग = नगर । नार < जल । पवय < पर्वत । सयल < सकल । (३) वारुण < वारण । (४) उव्वार < उद्भवर्तय (१) ।